



स्मारिका



सत्यमेव जयते



विश्व हिंदी सम्मेलन

मॉरीशस, 18-20 अगस्त, 2018





विश्व हिंदी सम्मेलन

‘शुभंकर’ (लोगो) - संकल्पना

भारत का राष्ट्रीय पक्षी मोर और मॉरीशस का राष्ट्रीय पक्षी डोडो दोनों मिलकर 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के अंक 11 को हिंदी में दर्शाते हैं। दोनों पक्षी हिंद महासागर में खड़े हैं और लहरों के रूप में अपने-अपने देश के झंडों के साथ हैं। चूँकि दोनों देशों के राष्ट्रीय प्रतीक एक साथ खड़े हैं, अतः यह दोनों देशों के बीच मित्रता को दिखाता है और मॉरीशस में हिंदी की यात्रा को भी दर्शाता है।

11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के प्रतीक चिह्न अर्थात् लोगो में इस सम्मेलन के लक्ष्यों और मूल भाव को समाहित किया गया है। लोगो में दिखाया गया मयूर भारत का राष्ट्रीय पक्षी और डोडो मॉरीशस का राष्ट्रीय पक्षी है।

स्मारिका

11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन, मॉरीशस

प्रधान संपादक

प्रो. राम मोहन पाठक

संपादक मंडल

डॉ. जगदीश उपासने

श्री सच्चिदानंद जोशी

श्री के.जी. सुरेश

श्री विष्णु प्रकाश त्रिपाठी

श्री प्रभात कुमार



सत्यमेव जयते

विदेश मंत्रालय, भारत सरकार

प्रस्तुत स्मारिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित सम्मानित लेखकों के हैं। विदेश मंत्रालय, भारत सरकार तथा स्मारिका संपादक मंडल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।



विदेश मंत्रालय, भारत सरकार के लिए
मित्तल एंटरप्राइजेज, 485 पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110 092 द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार एवं वितरण



प्रधान मंत्री
Prime Minister



संदेश

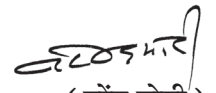
वर्ष 1975 में नागपुर में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन के साथ आरंभ हुई हिंदी की विश्व-यात्रा आज उस मोड़ पर पहुँच गई है, जहाँ से सही मायनों में हिंदी अपनी महत्ता का दावा कर सकती है।

भारत के आर्थिक विकास और उभरती हुई वैश्विक ताकत के रूप में उसकी पहचान के कारण विश्व समुदाय में हिंदी का महत्त्व निश्चित रूप से बढ़ा है। इस बढ़ते महत्त्व और हिंदी वैश्विक स्वरूप के समारोह में पूरे विश्व के हिंदी-प्रेमी इस वर्ष पुनः मॉरीशस में एकत्र हो रहे हैं। इसलिए हर्ष का विषय है कि अगस्त 18 से 20, 2018 तक मॉरीशस में 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

यह भी प्रसन्नता की बात है कि इस अवसर पर सम्मेलन की स्मारिका का प्रकाशन किया जा रहा है। हिंदी के ऐसे महा-आयोजनों के अवसर पर ऐसा प्रकाशन एक औपचारिक परंपरा ही नहीं अनिवार्यता भी है। इसके माध्यम से देश-विदेश के हिंदी सेवियों और लेखकों को हिंदी दशा और दिशा से जुड़े विभिन्न विषयों पर अपने विचार रखने का अवसर मिलता है।

मुझे आशा है कि यह स्मारिका न सिर्फ सम्मेलन की दृष्टि से बल्कि हिंदी के समग्र विकास और लोकप्रियता की दृष्टि से भी उपयोगी साबित होगी।

मैं संपादक मंडल के सदस्यों और देश एवं विदेश के सभी लेखकों को इस अवसर पर समस्त शुभकामनाएँ देता हूँ।


(नरेंद्र मोदी)

नई दिल्ली
अगस्त, 02 2018



**Prime Minister
Republic of Mauritius**



संदेश

मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन के आतिथ्य का स्वर्णावसर प्राप्त करके हमें अति प्रसन्नता हो रही है। इस अद्वितीय जुटाव में आप सबका हार्दिक स्वागत करता हूँ।

विश्व हिंदी सम्मेलन का यह 11वाँ संस्करण भारतीय संस्कृति पर केंद्रित है; हिंदी उसी संस्कृति का अभिन्न अंग है और उसके संवहन की प्रमुख वाहिका भी है। यह सम्मेलन भारतीय प्रवासी समुदाय को भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से परिभाषित अपनी अस्मिता और भाषा के प्रति आत्मीयता ज्ञापित करने का अवसर प्रदान करेगा। विश्व के कोने-कोने से आनेवाले हिंदी विद्वान् सनातन भारतीय संस्कृति तथा उसकी महत्ता पर शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत करेंगे। साथ ही, वे विचार-विमर्श करेंगे कि हिंदी के विकास को बढ़ावा देने के लिए किन नीतियों को अपनाया जाए।

यह सर्वविदित है कि संस्कृत हिंदी की जननी है। शताब्दियों से यह अनेक भाषाओं को स्वयं में समाती रही है। यह खुलापन हिंदी को एक समृद्ध एवं संयोजित भाषा के रूप में उभरने में सहायक बना। भारतीय कवियों, संतों एवं मनीषियों ने हिंदी के संवर्धन में योगदान दिया है। विभिन्न देशों के अन्य रचनाकारों ने हिंदी साहित्य की प्रभा बढ़ाई है और उसका वैश्विक विस्तार निश्चित किया है।

मैं भारत के उन समस्त हिंदी प्रेमियों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने दूत की भूमिका निभाते हुए, सुदूर देशों में हिंदी का विस्तार किया। भारत से दूर देशों में जन्मे उन लोगों के प्रति भी साधुवाद, जिनके प्रयासों से हिंदी विश्व भर में फैली। उनके उत्साह, समर्पण एवं संकल्प के कारण आज हिंदी विश्व की एक प्रमुख भाषा है। सूचना-प्रौद्योगिकी की सहायता से भारतीय सरकार एवं हिंदी प्रेमियों के ठोस कदम के परिणामस्वरूप अब हिंदी की गति उप-महाद्वीप एवं इससे इतर तीव्र होती जा रही है।

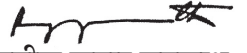
मॉरीशस में भी दशकों से, वस्तुतः भारतीय आप्रवास से ही आप्रवासियों के मन में हिंदी को समुचित स्थान दिलाने का निरंतर प्रयास किया गया। हिंदी मॉरीशस और भारत के बीच एक अतिरिक्त सेतु बनी और इस सेतु द्वारा विश्व भर के हिंदी प्रेमियों तक पहुँचने का मार्ग सुरक्षित हुआ।

11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन परिचर्चा का मंच होगा, जहाँ वैश्विक हिंदी परिवार के राजनेताओं, कर्मठ समाजसेवियों एवं विद्वानों के बीच विचारों का महत्वपूर्ण एवं सार्थक आदान-प्रदान होगा। यह हमारे लिए गर्व का विषय है। मॉरीशस के सभी नागरिक आपके स्वागत एवं सुखद ठहराव हेतु हर संभव प्रयास कर रहे हैं।

मैं पूर्णतः विश्वस्त हूँ कि यह सम्मेलन उन लोगों के लिए एक प्रबल आधार सिद्ध होगा, जो विश्व भर में भारी जागरूकता उत्पन्न करनेवाले इस भव्य समारोह में भाग लेने हेतु उत्साहपूर्वक प्रतीक्षारत हैं।

मेरी उत्कट अभिलाषा है कि 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन उन प्रख्यात विद्वानों द्वारा अनुष्ठित एक ऐसा यज्ञ हो, जो भाषाई एवं सांस्कृतिक विभिन्नता के बावजूद भी एक ही लक्ष्य से अनुप्रेरित हैं। इन आहुतियों द्वारा संपूर्ण वातावरण पवित्र तथा आलोकित हो! विश्व हिंदी सम्मेलन की सफलता की मेरी शुभकामनाएँ।

03 अगस्त, 2018


प्रवीण कुमार जगन्नाथ
प्रधानमंत्री

विदेश मंत्री
भारत



Minister of External
affairs India

सुषमा स्वराज
Sushma Swaraj



संदेश

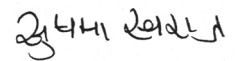
विश्व हिंदी सम्मेलन की अविराम यात्रा, नए संकल्प और नई ऊर्जा के साथ 11वें सम्मेलन की मंजिल तक पहुँची है। संपूर्ण विश्व के करोड़ों हिंदी भाषियों को एकात्मता के सूत्र में पिरोने का यह ऐतिहासिक सम्मेलन तीसरी बार भारत-मॉरीशस सहयोग से मॉरीशस में आयोजित है।

भारत सरकार ने विदेश मंत्रालय को विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन का दायित्व सौंपा हुआ है। हमारी सरकार के वर्तमान कार्यकाल में यह दूसरा सम्मेलन हो रहा है। दसवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भोपाल में बहुत भव्यता के साथ आयोजित किया गया था। भोपाल सम्मेलन के बाद एक अनुशंसा अनुपालना समिति का गठन करके हमने उस सम्मेलन की संस्तुतियों और संकल्पों को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है।

मुझे हर्ष है कि हिंदी को विश्व मंच पर प्रतिष्ठित करने के भारत सरकार के संकल्प और प्रतिबद्धता का मूर्त रूप मॉरीशस में हो रहे 11वें सम्मेलन में दिखाई देगा।

प्रो. राम मोहन पाठक के नेतृत्व और मार्गदर्शन में संपादक मंडल के सदस्यों ने अत्यंत मनोयोग एवं परिश्रमपूर्वक न्यूनतम समय में यह स्मारिका प्रस्तुत की है। हिंदी, नवचिंतन और भारतीय संस्कृति की मूल संकल्पना के विविध पक्षों पर आधारित यह पठनीय स्मारिका 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के स्मृति-उपहार के रूप में इस सम्मेलन में भाग लेनेवाले सभी प्रतिभागियों को समर्पित है।

विश्व हिंदी सम्मेलन की अविराम यात्रा की निरंतरता और सफलता के लिए मेरी ओर से बहुत-बहुत शुभकामनाएँ।


(सुषमा स्वराज)

ऐतिहासिक संकल्प और संकल्पना***

विश्व हिंदी सम्मेलन का संकल्प तथा संकल्पना ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण है। 'सम्मेलन' का अवसर हिंदी का एक ऐसा अद्भुत और विशिष्ट विचार-संगम है, जहाँ विचार की गंगा में अवगाहन कर विश्व के अनेक देशों के हिंदीसेवी और हिंदीप्रेमी हिंदी के अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और भाषा-साहित्य से जुड़े विषयों तथा प्रश्नों पर गंभीर और परिणामी विमर्श करते हैं।

11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी का महाकुंभ है। हिंदी का यह महाकुंभ मॉरीशस के ऐतिहासिक गंगा तालाब के तट पर संपन्न हो रहा है। आशा है, जिस प्रकार सागर मंथन से निकला अमृत कलश देव-मानव सभी के लिए संजीवनी बना, उसी प्रकार 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में विचार मंथन से हिंदी की अक्षय ऊर्जा का अमृत कलश प्रादुर्भूत होगा, जिसका विचार-अमृत हिंदी की भावी प्रगति यात्रा की संजीवनी-शक्ति सिद्ध होगा।

हिंदी भारतीय संस्कृति की संवाहिका है और संस्कृति के निरंतर प्रवाह को दिशाबोध और नवीन ऊर्जा के साथ अग्रसर करती रही है। हिंदी संपूर्ण विश्व और मानव को जोड़ने की भाषा है। 1975 से अब तक संपन्न हो चुके दस विश्व हिंदी सम्मेलनों ने 'विश्व हिंदी' संकल्पना की वैचारिक और व्यावहारिक आधारभूमि तैयार की है। विश्व को जोड़ने में हिंदी की शक्ति का निरंतरता में आभास करते हुए विश्व हिंदी सम्मेलन का संयोजन

अग्रणी भूमिका में भारत करता रहा है। 11वें सम्मेलन का आयोजन मॉरीशस और भारत सरकार के सहयोग से तीसरी बार भारतीयों के श्रम-लहू से सिंचित मॉरीशस की भूमि पर, जहाँ भारतीय संस्कृति सदियों से जीवित और जीवंत है, संपन्न हो रहा है। हिंदी भारत-मॉरीशस संबंधों का सुदृढ़ आधार है।



भारत सरकार हिंदी को विश्व भाषा मंच पर प्रतिष्ठित करने के अपने संकल्प और प्रतिबद्धता के साथ अग्रसर है, जिसका मूर्तरूप मॉरीशस में 11वें सम्मेलन की परिणति के रूप में हमारे समक्ष होगा। विश्व हिंदी सम्मेलन की मौलिक संकल्पना भारत में उद्भूत हुई। 1975 में नागपुर सम्मेलन के बाद प्रायः 43 वर्षों की प्रगति यात्रा में मॉरीशस हमारा सहभागी रहा है। मॉरीशस में 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन के समय एक महत्वपूर्ण और सुखद समाचार मिला है कि हिंदी विश्व में प्रयोग की जानेवाली दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की प्रगति उल्लेखनीय रही है।

वस्तुतः विभिन्न देशों में गत 43 वर्षों में संपन्न हुए दस विश्व हिंदी सम्मेलनों की परंपरा में भोपाल में आयोजित, अत्यंत विशिष्ट दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के बाद 'विश्व हिंदी' की संकल्पना को तीव्र गति

मिली। इस सम्मेलन की अनुशंसाओं के क्रियान्वयन हेतु तीन वर्ष तक निरंतर विदेश मंत्री माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज के मार्गदर्शन में गठित अनुशंसा अनुपालना समिति के माध्यम से ऐतिहासिक महत्व के परिणाममूलक कार्य संपन्न हुए हैं।

भारतीय संस्कृति की 'उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'यत्र विश्वम् भवत्येकनीडम्' अर्थात् वर्तमान वैश्विक संकल्पना 'ग्लोबल विलेज' को मूर्त रूप प्रदान करने के संकल्प के साथ 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित हो रहा है। सम्मेलन के केंद्रीय विषय 'हिंदी विश्व : भारतीय संस्कृति' के विभिन्न पक्षों पर केंद्रित प्रस्तुत स्मारिका में हिंदी और भारतीय संस्कृति के अन्योन्याश्रित संबंधों के साथ ही अंतरराष्ट्रीय संदर्भों में हिंदी की सार्थक भूमिका और हिंदी की प्रगति यात्रा से जुड़े संदर्भों पर देश-विदेश के वरेण्य विद्वानों के विचारों को प्रकाशित लेखों में समाहित करने का प्रयास किया गया है। स्मारिका में यशस्वी साहित्यकार, 'धर्मयुग' के संपादक स्व. डॉ. धर्मवीर भारती एवं भारतीयता के विचार-प्रतीक पुरुष स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र के पूर्वप्रकाशित, किंतु सामयिक महत्व के पठनीय लेखों के साथ ही डॉ. पुष्पा भारती के पूर्व प्रकाशित लेख को भी रुचिकर पठनीयता की दृष्टि से समाहित किया गया है।

हमारा यह प्रयास रहा है कि विषय वस्तु, हिंदी की प्रगति की दिशा तथा हिंदी के विकास से जुड़ी वैचारिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से आठ विविध खंडों में संकलित सामग्री के साथ प्रकाशित यह 'स्मारिका' एक उपयोगी एवं बहुमूल्य संदर्भ ग्रंथ बन सके। हिंदी भाषा, साहित्य, तकनीकी का विकास, हिंदी एवं हिंदी के प्रयोजनमूलक पक्षों पर विचारपूर्ण-पठनीय सामग्री स्मारिका में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

सम्मेलन में जिन विषयों पर चर्चा होगी, उन विषयों पर केंद्रित विचारपूर्ण लेख 'स्मारिका' में ऐसे

विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं, जो सम्मेलन में प्रतिभागी-वक्ता के रूप में सम्मिलित हो रहे हैं। ऐसे विद्वानों के लेख-विचार भी 'स्मारिका' में समाहित किए गए हैं, जो इस सम्मेलन में भाग नहीं ले पा रहे हैं। 'स्मारिका' हेतु बड़ी संख्या में प्राप्त लेखों में से कुछ चुने हुए लेखों को हम स्थान दे सके हैं। सभी प्राप्त लेखों को स्थान देने की बलवती इच्छा के बावजूद यह संभव न हो सका।

'स्मारिका' के लिए कम समयावधि में भारत और विदेशों के सुधी विद्वानों ने जो लेखकीय सहयोग प्रदान किया है, उसके प्रति विदेश मंत्रालय और 'स्मारिका' संपादक मंडल आभारी है। भारत सरकार तथा भारत की विदेश मंत्री और इस विश्व हिंदी सम्मेलन की मुख्य सूत्रधार श्रीमती सुषमा स्वराज ने, अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के बड़े-बड़े कार्यों, विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की विदेश मंत्री के रूप में अपनी वैश्विक भूमिका की व्यस्तताओं के बीच भी 'स्मारिका' के मुखपृष्ठ की संरचना, रंग योजना, आकार तथा अंतर्वस्तु जैसे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विषयों पर हमारा प्रभूत मार्गदर्शन किया। हम उनके प्रति आभारी हैं। 'स्मारिका' संपादक मंडल के सभी सम्मानित सहयोगी सदस्यों के प्रयास से यह स्मारिका आप सभी सम्मेलन प्रतिभागियों और विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर पाना संभव हो सका है। समस्त लेखकों और विदेश मंत्रालय, भारत के अधिकारियों के प्रति हम विशेष आभारी हैं।

कोई भी 'स्मारिका' इतिहास और वर्तमान के बीच वैचारिक सेतु और ऐतिहासिक अभिलेख होती है। आशा है सुधी पाठक और सम्मेलन-प्रतिभागी इस प्रकाशन को अपने दीर्घकालीन विचार मंथन के लिए विशिष्ट अध्ययन सामग्री के रूप में अपनाएँगे और हिंदी संबंधी भावी विमर्श के वैचारिक सेतु के रूप में स्वीकार करेंगे।

—प्रो. राम मोहन पाठक

अनुक्रम

खंड : प्रथम

विश्व हिंदी सम्मेलन : परंपरा एवं उपलब्धियाँ

| | | |
|--|------------------------|----|
| 1. विश्व हिंदी सम्मेलन : परंपरा और उपलब्धियाँ | श्री अनंत राम त्रिपाठी | |
| | सुश्री प्रीति सागर | 3 |
| 2. मॉरीशस : इंद्रधनुष, काँपती प्रत्यंचा | स्व. डॉ. धर्मवीर भारती | 14 |
| 3. संस्मरण : अविस्मरणीय मॉरीशस | डॉ. पुष्पा भारती | 22 |
| 4. भूगोल में दूर सही, लेकिन दिल के करीब हैं भारतवंशी | श्री चंद्रभूषण | 28 |
| 5. विश्व हिंदी सम्मेलन : विराट् का दर्शन | श्री राजेंद्र अरुण | 33 |
| 6. विश्व हिंदी सम्मेलन की सार्थकता | डॉ. कुसुम खेमानी | 37 |

खंड : द्वितीय

हिंदी विश्व एवं सांस्कृतिक जीवन

| | | |
|--|------------------------------|----|
| 7. विश्व हिंदी | स्व. प्रो. विद्यानिवास मिश्र | 45 |
| 8. मानवीय उत्थान के लिए हिंदी | श्रीमती मृदुला सिन्हा | 48 |
| 9. ऐतिहासिक-सांस्कृतिक रामसेतु | डॉ. नरेंद्र कोहली | 51 |
| 10. संस्कृति के संदर्भ में हिंदी का उद्‌विकास | प्रो. गिरीश्वर मिश्र | 55 |
| 11. हिंदी की संस्कृति और उसका विश्वरूप | प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी | 58 |
| 12. हिंदी विश्व को चाहिए दृढ़ इच्छाशक्ति | डॉ. सच्चिदानंद जोशी | 62 |
| 13. हिंदी समाज और हमारी संस्कृति | श्री आलोक मेहता | 66 |
| 14. हिंदी का अश्वमेध : ताकि हम जड़ों से जुड़े रहें | श्री विश्वनाथ सचदेव | 68 |
| 15. हिंदी भाषा की अपार शक्ति | सुश्री ऋता शुक्ल | 72 |
| 16. हिंदी विश्व में भारतीय लोक-संस्कृति | डॉ. विद्याविंदु सिंह | 74 |
| 17. हिंदी विश्व और भारतीय समाज | डॉ. विदुषी शर्मा | 77 |

| | | |
|---|--------------------------|-----|
| 18. भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में समाज और संस्कृति | डॉ. एम. शेषन | 80 |
| 19. हिंदी का सांस्कृतिक संदेश विश्व सुनेगा | श्री कैलाशचंद्र पंत | 83 |
| 20. हिंदी विश्व और सांस्कृतिक जीवन | डॉ. राजेंद्र मिश्र | 87 |
| 21. सर्वजन सुलभ, सर्वजन हिताय हिंदी | डॉ. भरत गुप्ता | 89 |
| 22. संस्कृति का निकुंज और भाषा | डॉ. श्रीराम परिहार | 91 |
| 23. हिंदी विश्व बहुत व्यापक है ! | डॉ. सूर्यबाला | 94 |
| 24. विश्व के भारत-भाव में हिंदी का संदर्भ | डॉ. मोहनलाल सर | 97 |
| 25. विश्व परिप्रेक्ष्य में हिंदी और भारतीय संस्कृति | डॉ. ममता शर्मा | 100 |
| 26. सांस्कृतिक भाषा के रूप में हिंदी : | | |
| सौ साल पुराने संकल्प की अभिनव भूमिका | प्रो. प्रदीप कुमार शर्मा | 103 |
| 27. संस्कृति बचाने की चाह में पनप रही हिंदी | श्री ओमप्रकाश तिवारी | 106 |
| 28. लोक के स्तंभ पर टिका है, विश्व हिंदी का महाराज | श्री राकेश पांडेय | 109 |
| 29. हिंदी से जुड़े मेरे सपने | सुश्री अतीला कोतलावल | 112 |
| 30. विश्व हिंदी और भारतीय संस्कृति | सुश्री नधीरा शिवंति | 116 |
| 31. राष्ट्रहित और हिंदी भाषा | डॉ. नथमल टीबड़ेवाला | 119 |

खंड : तृतीय

हिंदी : विकास की दिशाएँ

| | | |
|---|-------------------------|-----|
| 32. हिंदी विश्व : विकास के विशिष्ट आयाम | श्री केशरीनाथ त्रिपाठी | 123 |
| 33. हिंदी और मातृभाषा में उच्च शिक्षा | प्रो. धीरेंद्र पाल सिंह | 126 |
| 34. स्वाधीनता पूर्व का बंगाल : हिंदी की तीर्थस्थली | डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र | 130 |
| 35. हिंदी की धरती, हमारा आसमान | श्री शशि शेखर | 134 |
| 36. बिंदु-बिंदु हिंदी | प्रो. अशोक चक्रधर | 136 |
| 37. हिंदी और उसकी चुनौतियाँ | श्री जगदीश उपासने | 140 |
| 38. दूसरी भाषाओं को समाहित कर हिंदी बनती जा रही है सभी की अनिवार्यता | श्री हेमंत शर्मा | 146 |
| 39. हिंदी में चिकित्सा लेखन और चुनौतियाँ | डॉ. यतीश अग्रवाल | 152 |
| 40. ...और कचहरियों की भाषा बनी हिंदी | श्री ज्ञानवर्द्धन मिश्र | 156 |
| 41. हिंदी विश्व : विकास की दिशाएँ | डॉ. मृदुल कीर्ति | 158 |
| 42. आँगन में फैले उजास... | श्रीमती चित्रा देसाई | 162 |
| 43. हिंदी : भाषा और संस्कृति | डॉ. कपिल तिवारी | 165 |
| 44. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी क्यों ? | डॉ. सुशीला गुप्ता | 167 |

| | | |
|--|--------------------------|-----|
| 45. संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी : कुछ अहम सवाल | डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव | 171 |
| 46. हिंदी—‘राष्ट्रभाषा’ न बन पाना | डॉ. संतोष कुमार जैन | 175 |
| 47. हमारा समाज : हिंदी और उसकी व्याप्ति | प्रो. टी.वी. कट्टीमनी | 178 |
| 48. इंटरनेट के पंखों पर संस्कृति की चौपाल | डॉ. एम.एल. गुप्त | 180 |
| 49. तकनीकी स्वरूपों में विश्वविस्तारित हिंदी | डॉ. शुभ्रता मिश्रा | 184 |
| 50. विधि में हिंदी | श्री विराग गुप्त | 188 |
| 51. ‘एक देश, एक लिपि’ का सपना | प्रो. गोविंद सिंह | 192 |
| 52. हिंदी का व्यावहारिक और वैज्ञानिक पक्ष | श्री संत समीर | 195 |
| 53. एक आँख हँसती है : दूसरी आँख रोती है | डॉ. देवेन्द्र दीपक | 199 |
| 54. हिंदी-विस्तार के व्यावहारिक कदम | प्रभात कुमार | 202 |
| 55. हिंदी : तन और मन की भाषा | डॉ. परमात्मा कुमार मिश्र | 205 |
| 56. जनभाषा से ही विज्ञान और विकास जन-जन तक | श्री संक्रांत | 208 |
| 57. वैश्विक हिंदी और चित्तभूमि की खेती | प्रो. अवधेश नारायण मिश्र | |
| | डॉ. राजीव रंजन | 211 |
| 58. हिंदी शिक्षण और प्रकाशन के संदर्भ | श्री के.एस. फरहचुल्लाह | 215 |

खंड : चतुर्थ

विदेशों में हिंदी : गिरमिटिया देशों में हिंदी और साहित्य

| | | |
|--|------------------------------------|-----|
| 59. हिंदी का भारतीय और वैश्विक संदर्भ | प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी | 219 |
| 60. हिंदी की वैश्विक निर्मिति के सूत्रधार : प्रवासी तथा विदेशी विद्वान | प्रो. नंद किशोर पांडेय | 223 |
| 61. विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा, साहित्य शिक्षण के आयाम | श्री सुंदरम् पार्थसारथी ताताचारियर | 229 |
| 62. गिरमिटियाओं का हिंदी प्रेम | सुश्री किरण माला सिंह | 231 |
| 63. वैश्विक भारतवंशियों की हिंदी भाषा बनाम भारतीय संस्कृति | प्रो. पुष्पिता अवस्थी | 235 |
| 64. गिरमिटिया देशों में हिंदी भाषा और साहित्य | डॉ. श्रुति वितेश | 240 |
| 65. गिरमिटिया हिंदी भाषा-व्याकरण और साहित्य का वैश्विक संदर्भ | डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय | 244 |
| 66. गिरमिटिया आप्रवास और रामचरितमानस | डॉ. विनोदबाला अरुण | 247 |
| 67. श्रीलंका में हिंदी के बढ़ते कदम | डॉ. शीरीन कुरैशी | 251 |

खंड : पंचम

विश्व को परस्पर जोड़नेवाली हिंदी

| | | | |
|-----|--|----------------------------|-----|
| 68. | विश्व को जोड़नेवाली सामासिक संस्कृति | श्री नंदकिशोर नौटियाल | 257 |
| 69. | गुजराती और हिंदी : अंतर्संबंध के परिप्रेक्ष्य | श्री मनीष विदेह | 261 |
| 70. | विश्व को जोड़नेवाली संस्कृति और हिंदी | डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय | 264 |
| 71. | विश्व को जोड़नेवाली संस्कृति की संवाहिका हिंदी | प्रो. एस. तंकमणि अम्मा | 267 |
| 72. | विश्व-मानसिकता की संस्कृति और हिंदी | श्रीमती वासंती वैद्य | 271 |
| 73. | हिंदी : विश्व को जोड़नेवाली संस्कृति की भाषा | डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र | 274 |
| 74. | विश्व को परस्पर जोड़नेवाली संस्कृति और हिंदी : विविध पक्ष | डॉ. शीतला प्रसाद दुबे | 278 |
| 75. | भारतीय भाषाओं में सौहार्द्र और हिंदी | श्रीमती उषा किरण टिबड़ेवाल | 281 |

खंड : षष्ठ

देवनागरी लिपि और वर्तनी

| | | | |
|-----|--|------------------------|-----|
| 76. | देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता | प्रो. बाबूराम त्रिपाठी | 285 |
| 77. | देवनागरी लिपि का मानकीकरण | श्री कैलाशनाथ पांडेय | 288 |
| 78. | बहुरूपी हिंदी | श्रीमती मालती जोशी | 292 |
| 79. | देवनागरी : विश्व की आधुनिकतम लिपि | डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र | 295 |
| 80. | भाषा पुल है मन के दूरस्थ किनारों पर... | डॉ. नंदलाल पाठक | 298 |

खंड : सप्तम

जनमाध्यम और हिंदी

| | | | |
|-----|---|-----------------------|-----|
| 81. | हिंदी : संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ | श्री हरिवंश | 303 |
| 82. | हिंदी हैं हम | श्री राजीव सचान | 309 |
| 83. | जनमाध्यम और हिंदी | श्री के.जी. सुरेश | 312 |
| 84. | हिंदी पत्रकारिता में भाषा का बदलता स्वरूप | श्रीमती कुमुद शर्मा | 316 |
| 85. | हिंदी और जनसंचार : राष्ट्रीय एकता का आधार | प्रो. बलदेव भाई शर्मा | 320 |
| 86. | संप्रेषण की भाषा और हिंदी पत्रकारिता | प्रो. राम मोहन पाठक | 324 |
| 87. | हिंदी की शक्ति और जनमाध्यम | प्रो. संजय द्विवेदी | 331 |
| 88. | संचार प्रक्रिया और हमारी लोकसंस्कृति | श्रीमती मालिनी अवस्थी | 335 |

| | | |
|---|--------------------------|-----|
| 89. संस्कृति, कलाएँ और हिंदी | सुश्री नलिनी कमलिनी | 339 |
| 90. हिंदीतरभाषी संपादकों की हिंदी सेवा | डॉ. किंशुक पाठक | 341 |
| 91. हिंदी है हर जगह—विंडोज, ऑफिस, ऑनलाइन और मोबाइल ! | श्री बालेंदु शर्मा दाधीच | 346 |
| 92. नित नया होता मीडिया और हमारी भाषा हिंदी | डॉ. धनंजय चोपड़ा | 350 |
| 93. बदलती—बनती मीडिया की हिंदी | डॉ. सुनील कुमार तिवारी | 354 |
| 94. हिंदी का संवर्धन और हिंदी फिल्में | श्री प्रदीप सरदाना | 356 |
| 95. अपना मीडिया और हिंदी | डॉ. दुर्गेश त्रिपाठी | 360 |
| 96. जनसंचार माध्यम और हमारी संस्कृति | डॉ. संदीप पुरोहित | 363 |
| 97. संचार माध्यम और हिंदी | श्री दुष्यंत कुमार राय | 366 |
| 98. दक्षिण भारत में हिंदी का प्रसार | श्री एस. जयराज | 369 |

खंड : अष्टम

स्मरणिका

| | | |
|--|---------------------------|-----|
| 99. देशज-चिंतन और लोकमन के अध्येता—अनिल माधव दवेश्री रजनीश अग्रवाल | | 373 |
| 100. ...और कारवाँ गुजर गया... ! | श्री हरीश नवल | 376 |
| 101. मॉरीशस हिंदी साहित्य में 'अभिमन्यु अनंत' युग | डॉ. कमल किशोर गोयनका | 378 |
| 102. अभिमन्यु अनंत : रचना के शीर्ष पुरुष | डॉ. सरिता बुधू | 383 |
| 103. डॉ. बालशौरि रेड्डी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व | डॉ. सु. कृष्णचंद चोरड़िया | 387 |
| 104. नीलगगन में : बालकवि बैरागी | प्रो. अशोक चक्रधर | 391 |
| 105. स्मृति शेष : डॉ. मधु धवन | डॉ. श्रावणी भट्टाचार्य | 397 |

खंड : प्रथम

विश्व हिंदी सम्मेलन :
परंपरा एवं उपलब्धियाँ

विश्व हिंदी सम्मेलन : परंपरा और उपलब्धियाँ

—श्री अनंत राम त्रिपाठी

—सुश्री प्रीति सागर

हिंदी भाषा के सबसे बड़े सम्मेलन के रूप में स्वीकृत विश्व हिंदी सम्मेलन प्रारंभ से ही हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करता रहा है। विश्व हिंदी सम्मेलन की यह यात्रा सन् 1975 में भारत से शुरू हुई। इसके आयोजन का विचार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा सन् 1973 में प्रस्तुत किया गया। हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को एक आधिकारिक भाषा के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से 10 से 14 जनवरी, 1975 को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के तत्वावधान में भारत सरकार के सहयोग से पहला विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन का बोध वाक्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' था जिसका आशय था हिंदी द्वारा 'एक विश्व एक मानव' की भावना का संचार। सम्मेलन में स्वागत भाषण महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री वसंतराव नाइक द्वारा दिया गया। समापन समारोह की मुख्य वक्ता महीयसी महादेवी वर्मा थीं। उद्घाटन करते हुए भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा, 'हिंदी विश्व की महान भाषाओं में से हैं। (भारत की) ये सभी भाषाएँ देश की सांस्कृतिक विरासत की समान उत्तराधिकारी हैं। ये भाषाएँ भारत की राष्ट्रभाषाएँ हैं और उनमें से हिंदी भारत की राष्ट्रीय संपर्क की भाषा है, क्योंकि इस भाषा का परिवार सबसे बड़ा है। भारत

का प्रत्येक बच्चा अपनी मातृभाषा सीखे, राष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में हिंदी सीखे और अंतरराष्ट्रीय संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी सीखे।' सम्मेलन में कुल सात शैक्षिक सत्रों का आयोजन किया गया जिनमें 'हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति' पर एक पूर्ण सत्र तथा दो अन्य विषयों के अंतर्गत तीन-तीन समानांतर सत्र थे। 'विश्व मानव की चेतना, भारत और हिंदी' विषय के अंतर्गत तीन समानांतर सत्रों के विषय थे—(1) शाश्वत मूल्यों की खोज (2) जनसंचार साधनों की भूमिका (3) विश्व मानव का मूल्यगत संकट और भाषा तथा लेखन के संदर्भ में युवा पीढ़ी की मानसिकता। 'आधुनिक युग और हिंदी : आवश्यकताएँ और उपलब्धियाँ' विषय के अंतर्गत तीन समानांतर सत्रों के शीर्षक थे (1) प्रशासन, विधि और विधायी कार्यों की भाषा (2) ज्ञान-विज्ञान का माध्यम (3) भाषा शिक्षण और सहायक सामग्री। सम्मेलन में तीस देशों के एक सौ बाईस प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अवसर पर एक वृहद् प्रदर्शनी तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आकाशवाणी कलाकारों का संगीत कार्यक्रम, भारतीय कला केंद्र एवं मॉरीशस की कलाकार मंडली 'त्रिवेणी' की प्रस्तुतियाँ प्रमुख थीं। एक अंतरराष्ट्रीय कवि गोष्ठी का भी आयोजन किया गया। आयोजन स्थल को 'विश्व हिंदी नगर' का नाम

दिया गया एवं प्रवेश द्वारों को 'तुलसी', 'मीरा', 'सूर', 'कबीर', 'नामदेव' और 'रैदास' नाम से सुसज्जित किया गया। यहाँ भारतीय भाषाओं के पंद्रह लेखकों को सम्मानित किया गया। इनके अतिरिक्त बारह अहिंदी भाषी लेखकों तथा दो विशिष्ट लेखकों को भी सम्मानित किया गया। इस अवसर पर तीन प्रस्ताव पारित किए गए—

- (1) संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिलाया जाए।
- (2) वर्धा में एक विश्व हिंदी विद्यापीठ की स्थापना हो।
- (3) विश्व हिंदी सम्मेलनों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए विचारपूर्वक एक योजना बनाई जाए।

इस सम्मेलन में 14 जनवरी को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के केंद्रीय कार्यालय के प्रांगण में विश्व हिंदी विद्यापीठ का शिलान्यास और गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रतिमा का अनावरण फादर कामिल बुल्के द्वारा किया गया। इस अवसर पर एक विशेष डाक टिकट भी जारी किया गया।

पहले विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन द्वारा इस बात की पुष्टि हो गई कि हिंदी असाधारण सामर्थ्य-संपन्न भाषा है और वह संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने के गौरव की अधिकारिणी है। इस आयोजन ने पहली बार हिंदी को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया और हिंदी के पक्ष में एक वातावरण निर्मित किया। इस आयोजन का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम यह था कि हिंदी के बहाने दुनिया भर के प्रवासी भारतीय भारत से जुड़े।

दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भारतवंशी बहुल देश मॉरीशस में हुआ। भारतवंशियों के लिए यह विशेष रूप से गौरव का अवसर था, क्योंकि हिंदी द्वारा भारत से उनका भावात्मक एवं रचनात्मक संबंध बना हुआ है। 28 से 30 अगस्त,

1976 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई स्थित महात्मा गांधी संस्थान में आयोजित सम्मेलन के उद्घाटन एवं समापन समारोह की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन मंत्री डॉ. कर्ण सिंह ने की। इस सम्मेलन में डॉ. कर्ण सिंह की अध्यक्षता में भारत के तेईस सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल सहित सत्रह देशों के एक सौ इक्यासी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन में चार पूर्ण शैक्षिक सत्रों का आयोजन किया गया जिनके विषय थे—(1) हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप (2) जनसंचार के साधन और हिंदी (3) हिंदी के प्रचार में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका (4) विश्व में हिंदी के पठन-पाठन की समस्या। सम्मेलन में एक पुस्तक एवं एक चित्र प्रदर्शनी भी लगाई गई। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय कला केंद्र, महात्मा गांधी संस्थान मॉरीशस तथा युवा एवं क्रीड़ा मंत्रालय मॉरीशस की प्रस्तुतियाँ थीं। एक कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। इस अवसर पर मॉरीशस के तीन डाक टिकट जारी किए गए तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' के तृतीय खंड का लोकार्पण किया गया। इस सम्मेलन में पहले विश्व हिंदी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों की पुष्टि करते हुए दो और प्रस्ताव पारित किए गए—

- (1) मॉरीशस में एक हिंदी केंद्र की स्थापना की जाए, जो पूरे विश्व की हिंदी गतिविधियों का समन्वय कर सके।
- (2) एक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका का प्रकाशन हो जो भाषा के माध्यम से ऐसे समुचित वातावरण का निर्माण कर सके, जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे।

मॉरीशस में आयोजित इस सम्मेलन द्वारा हिंदी एक विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस सम्मेलन में न केवल हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रकट हुआ वरन् विश्व की अन्य भाषाओं के समकक्ष हिंदी की

स्थिति का आकलन भी किया गया। इस सम्मेलन द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि भविष्य में हिंदी विश्व स्तर पर अन्य विश्व भाषाओं के साथ महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन पुनः भारत की धरती पर हुआ। 28 से 30 अक्टूबर, 1983 को भारत की राजधानी नई दिल्ली के इंदरप्रस्थ स्टेडियम में आयोजित सम्मेलन के राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष बलराम जाखड़ थे। इस सम्मेलन के आयोजन में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया। उद्घाटन एवं समापन समारोह की अध्यक्ष डॉ. रोनाल्ड स्टुवर्ट मैग्रेगर ने कहा, 'जो भी देश या व्यक्ति भारत को समझना चाहता है तो उसे सर्वप्रथम हिंदी सीखनी होगी, हिंदी की उपयोगिता और विशेषता को समझना होगा।' प्रस्तुत सम्मेलन में तीन पूर्ण सत्र आयोजित हुए जिनके विषय थे—(1) अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी प्रसार की संभावनाएँ और प्रयास (2) भारत के सांस्कृतिक संबंध और हिंदी (3) मानव मूल्यों की स्थापना और हिंदी की भूमिका। इसके अतिरिक्त सम्मेलन के प्रथम दिन 'आधुनिक भारत में हिंदी के बढ़ते चरण' शीर्षक के अंतर्गत छह समानांतर सत्र हुए जिनके विषय थे—(1) आधुनिक भारत में हिंदी साहित्य की विकास रेखाएँ (2) आधुनिक भारत में हिंदी भाषा की प्रगति (3) आधुनिक भारत में हिंदी की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति (4) देवनागरी लिपि: स्वरूप और संभावनाएँ (5) आधुनिक भारत में हिंदी पत्रकारिता की प्रगति (6) हिंदी के विकास में स्वैच्छिक संस्थाओं का योगदान। सम्मेलन के दूसरे दिन 'अंतरराष्ट्रीय संदर्भ और हिंदी' विषय के अंतर्गत तीन समानांतर सत्र हुए जिनके विषय थे—(1) भारतीय मूल के जन समुदाय में हिंदी का प्रचार-प्रसार, समस्याएँ और संभावनाएँ

(2) विश्व के अन्य देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार, समस्याएँ और संभावनाएँ (3) संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों में हिंदी का प्रयोग और संभावनाएँ। सम्मेलन के तीसरे और अंतिम दिन 'हिंदी का अंतर-भारती स्वरूप' विषय के अंतर्गत आयोजित छह समानांतर सत्रों पर विचार किया गया—

- (1) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़)
- (2) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (मराठी, गुजराती और हिंदी की बोलियाँ)
- (3) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (बांग्ला, उड़िया, असमिया)
- (4) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (उर्दू, पंजाबी, कश्मीरी, सिंधी)
- (5) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (भोट, बर्मी और मुंडा परिवार)
- (6) हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ : आदान-प्रदान (संस्कृत, पालि, अपभ्रंश)

इस सम्मेलन में 'हिंदी के बढ़ते चरण', 'विदेशों में हिंदी', 'संचार माध्यम और देवनागरी लिपि' और 'व्यवहार में हिंदी' विषयों पर प्रदर्शनी, हिंदी तथा अंतरराष्ट्रीय भाषाओं की चित्रमय प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में लोकनृत्य, रासलीला, कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। पद्म विभूषण बिरजू महाराज द्वारा 'कहानी कथक की' का संयोजन प्रस्तुत किया गया तथा भारतीय कला केंद्र ने भी कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इस असवर पर सम्मानित इकतालिस विद्वानों में भारतीय भाषाओं के अठारह लेखक, सात अहिंदी भाषी विद्वान, आठ विदेशी हिंदी विद्वान तथा आठ अन्य हिंदी सेवी थे। 'विश्व हिंदी' और 'विश्व के मानचित्र पर हिंदी' शीर्षक दो स्मारिकाओं एवं 'भाषा', 'गगनांचल' और



‘अक्षरा’ पत्रिकाओं के विशेषांकों का लोकार्पण किया गया। इस सम्मेलन में दो सौ साठ देशों से आए छह हजार पाँच सौ छियासठ प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया और यहाँ चार महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए जिसके अंतर्गत सम्मेलन के लक्ष्यों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक स्थायी समिति के गठन का प्रस्ताव रखा गया।

चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन 2 से 4 सितंबर, 1993 को मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में आयोजित किया गया। दूसरी बार मॉरीशस में आयोजित हो रहे इस सम्मेलन के राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष मॉरीशस के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्री श्री मुकेश्वर चुन्नी थे। सम्मेलन का उद्घाटन मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर अनिरुद्ध जगन्नाथ द्वारा किया गया। ‘हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति’ विषय पर दो पूर्ण सत्र थे तथा अग्रलिखित विषयों पर पाँच समानांतर सत्रों का आयोजन किया गया—

- (1) हिंदी योजनाएँ एवं नीतियाँ
- (2) हिंदी साहित्य एवं साहित्यकार
- (3) हिंदी संचार एवं विज्ञान
- (4) बहुफलकीय हिंदी
- (5) हिंदी, भारतीय संस्कृति एवं लोक साहित्य।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भारतीय कला केंद्र, भोजपुरी सांस्कृतिक दल, महात्मा गांधी संस्थान तथा मॉरीशस के कला, संस्कृति, अवकाश एवं सुधार संस्थान मंत्रालय द्वारा प्रस्तुतियाँ दी गईं तथा हिंदी के विकास पर एक प्रदर्शनी लगाई गई। सम्मेलन में भारत और मॉरीशस के अतिरिक्त लगभग दो सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया और मॉरीशस के चार विद्वानों को सम्मानित किया गया। पिछले तीन विश्व हिंदी सम्मेलनों में पारित संकल्पों की संपुष्टि करते हुए सात प्रस्ताव पारित किए गए।

‘आप्रवासी भारतीय और हिंदी’ विषय पर केंद्रित

पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिदाद एवं टोबेगो की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में 4 से 8 अप्रैल, 1996 को आयोजित किया गया। सम्मेलन का आयोजन हिंदी निधि संस्था द्वारा वेस्टइंडीज विश्वविद्यालय के सहयोग से किया गया एवं इस आयोजन के मुख्य संयोजक हिंदी निधि के अध्यक्ष श्री चंका सीताराम थे। भारत के सत्रह सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री माताप्रसाद ने किया। सम्मेलन का उद्घाटन त्रिनिदाद एवं टोबेगो के प्रधानमंत्री श्री वासुदेव पांडे ने किया। सम्मेलन के पूर्ण सत्र का विषय था ‘आप्रवासी भारतीय और संस्कृति’। इसके अतिरिक्त ‘हिंदी भाषा और साहित्य का विकास’, ‘कैरेबियन द्वीपों में हिंदी की स्थिति’ तथा ‘कंप्यूटर युग में हिंदी की उपादेयता’ विषयों के अंतर्गत कई समानांतर सत्रों का आयोजन किया गया। विभिन्न देशों के दो सौ सत्तावन प्रतिनिधि शामिल हुए और दूरदर्शन तथा सेटेलाइट द्वारा इस सम्मेलन का सीधा प्रसारण किया गया। यहाँ भारतीय, अफ्रीकी और पाश्चात्य संगीत की मिश्रित प्रस्तुतियाँ दी गईं। सी-डैक की ओर से कंप्यूटर प्रदर्शनी, पुस्तक प्रदर्शनी तथा ‘हिंदी की बढ़ते चरण’ नाम से हिंदी भाषा के विकास एवं इतिहास की चित्रमय झाँकी प्रस्तुत की गई। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रामलीला कला केंद्र, कानपुर नौटंकी मंडल, गुलाब थियेटर कंपनी तथा भारतीय फीचर फिल्मों की प्रस्तुतियाँ रहीं। इस अवसर पर पाँच प्रस्ताव पारित हुए और पाँच भारतीय तथा तेरह विदेशी विद्वानों को सम्मानित किया गया।

छठे विश्व हिंदी सम्मेलन का केंद्रीय विषय ‘हिंदी और भावी पीढ़ी’ था, जिसका आयोजन 14 से 18 सितंबर, 1999 को लंदन, ब्रिटेन में किया गया। यू.के. हिंदी सम्मेलन समिति, गीतांजलि बहुभाषी समुदाय, बर्मिंघम और भारतीय भाषा संगम, यॉर्क द्वारा गठित राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष डॉ.

कृष्ण कुमार थे। सम्मेलन का उद्घाटन एवं भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व भारत की तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री श्रीमती वसुंधरा राजे ने किया। हिंदी को राजभाषा बनाए जाने के पचासवें वर्ष में आयोजित इस सम्मेलन में इक्कीस देशों के सात सौ प्रतिनिधि शामिल हुए। शैक्षिक सत्रों के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों में डी.ए.वी.पी. द्वारा पुस्तक एवं फोटो प्रदर्शनी तथा सी-डैक द्वारा कंप्यूटर प्रदर्शनी लगाई गई। इस सम्मेलन में हिंदी भाषा एवं साहित्य दोनों पर ही बल दिया गया। इस अवसर पर बीस विदेशी एवं तेरह भारतीय विद्वानों को सम्मानित किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अंतर्गत जापानी विद्यार्थियों द्वारा नाट्य प्रस्तुति, श्रीमती शोभना नारायण द्वारा नृत्य प्रस्तुति तथा श्री भूपेन हजारिका द्वारा गायन प्रस्तुत किया गया। इस सम्मेलन में पारित सात प्रस्तावों में पुनः हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता के प्रस्ताव की पुष्टि की गई।

‘विश्व हिंदी : नई शताब्दी की चुनौतियाँ’ विषय पर आयोजित सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में सूरीनाम हिंदी सम्मेलन आयोजन समिति (सुहोक) द्वारा सूरीनाम हिंदी परिषद्, ग्लोबल ऑर्गेनाइजेशन फॉर पीपुल ऑफ इंडियन ओरिजिन (गोपियो), सूरीनाम विश्वविद्यालय, माता गौरी फाउंडेशन, सनातन धर्म महासभा, आर्य दिवाकर तथा सूरीनाम की अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं और संबंधित संगठनों द्वारा 5 से 9 जून, 2003 को संपन्न हुआ। उल्लेखनीय है कि सूरीनाम की धरती पर भारतवंशियों का आगमन कई दशक पहले 5 जून को ही हुआ था। इक्कीसवीं सदी का इस पहले विश्व हिंदी सम्मेलन के संयोजक श्री जानकी प्रसाद सिंह थे। भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह ने किया। सम्मेलन का उद्घाटन सूरीनाम के राष्ट्रपति श्री रोनाल्डो रोनाल्ड वेनेतिशयान ने किया।

सम्मेलन में दस शैक्षिक सत्रों में निम्नलिखित विषयों पर विचार किया गया—

- (1) विश्व हिंदी के समक्ष चुनौतियाँ और समाधान
- (2) हिंदी की बोलियों में नया सृजन
- (3) विश्व हिंदी एवं सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका
- (4) हिंदी और प्रसारण
- (5) हिंदी और पत्रकारिता
- (6) अर्थव्यवस्था में हिंदी की भूमिका
- (7) हिंदी और शिक्षण व्यवस्था
- (8) भारतेतर देशों में हिंदी का समकालीन रचनात्मक परिदृश्य
- (9) हिंदी में अनुवाद और संदर्भ साहित्य
- (10) भविष्य की हिंदी और हिंदी का भविष्य—एक परिसंवाद

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा ‘हिंदी : हमारी धरोहर’ प्रदर्शनी तथा नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी लगाई गई। दैनिक न्यूज बुलेटिन ‘सम्मेलन समाचार’ का प्रकाशन किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में श्री शेखर सेन द्वारा कबीर और तुलसी पर एकल नाट्य प्रस्तुतियाँ, श्रीमती शारदा सिन्हा द्वारा पारंपरिक भोजपुरी गायन, श्री मनोज तिवारी द्वारा आधुनिक भोजपुरी गीत प्रस्तुति, श्रीमती सुमिता शर्मा द्वारा रामचरित मानस के प्रसंगों तथा श्रीमती महादेवी वर्मा के गीतों पर कथक प्रस्तुति, निजामी बंधुओं द्वारा कव्वाली और दिल्ली के ध्वनि ग्रुप के कलाकारों द्वारा कथक नृत्य प्रस्तुति शामिल रहे। सम्मेलन में श्री मनोज रघुवंशी द्वारा निर्मित ‘विश्व हिंदी की रचना यात्रा’ तथा श्री दिनेश लखनपाल द्वारा निर्मित ‘हिंदी हैं हम’ नामक दो फिल्मों का प्रदर्शन भी किया गया। इस सम्मेलन में बारह से अधिक देशों के प्रतिनिधियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। इस अवसर पर छब्बीस विद्वानों



को सम्मानित किया गया जिसमें दस भारतीय तथा सोलह विदेशी विद्वान थे। सम्मेलन में पारित दस प्रस्तावों में पहला प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा बनाने का संकल्प था।

आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन का केंद्रीय विषय 'विश्व मंच पर हिंदी' था। 13 से 15 जुलाई, 2007 को संयुक्त राज्य अमेरिका की राजधानी न्यूयॉर्क में हुए इस सम्मेलन का आयोजन भारतीय विद्या भवन न्यूयॉर्क के सहयोग से भारत सरकार के विदेश मंत्रालय ने किया। संयुक्त राष्ट्र संघ मुख्यालय के सभागार में उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता भारत के तत्कालीन विदेश राज्यमंत्री श्री आनंद शर्मा ने की। 'संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी' विषय पर पूर्ण सत्र सहित कुल नौ विषयों पर समानंतर सत्रों का आयोजन किया गया था। समानांतर सत्रों के विषय अग्रलिखित थे—(1) देश-विदेश में हिंदी शिक्षण : समस्याएँ और समाधान, (2) वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी (3) विदेशों में हिंदी सृजन (प्रवासी हिंदी साहित्य) (4) हिंदी के प्रचार-प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका (5) हिंदी के प्रचार-प्रसार में हिंदी फिल्मों में भूमिका (6) हिंदी युवा पीढ़ी और ज्ञान-विज्ञान (7) हिंदी भाषा और साहित्य : विभिन्न आयाम (8-अ) साहित्य में अनुवाद की भूमिका (8-ब) हिंदी बाल साहित्य (8-स) देवनागिरी लिपि। इस अवसर पर केंद्रीय हिंदी संस्थान के सहयोग से नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा एक पुस्तक प्रदर्शनी, राष्ट्रीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा 'हिंदी की अंतःकथा—देश से परदेश तक' विषय पर प्राचीन पांडुलिपियों तथा हिंदी के विकास के संबंध में एक प्रदर्शनी और 'सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी का प्रयोग' विषय पर एक प्रदर्शनी आयोजित हुई। साथ ही श्री मनोज रघुवंशी द्वारा निर्मित फिल्म 'हिंदी आज तक' का प्रदर्शन किया गया। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में श्री पंकज उधास द्वारा गजल कार्यक्रम, सुश्री गीता चंद्रन एवं दल

के द्वारा भरतनाट्यम नृत्य की प्रस्तुति और शुरुआत द्वारा सितार वादन शामिल था। हिंदी की समृद्धि के लिए दस मंतव्य पारित किए गए। हिंदी के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान देने के लिए बीस भारतीय विद्वानों तथा बीस विदेशी विद्वानों को सम्मानित किया गया। हिंदी के प्रति युवा वर्ग को आकर्षित करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक हिंदी निबंध प्रतियोगिता आयोजित की गई। प्रतियोगिता के दो विजेताओं—एक हिंदीभाषी और एक अहिंदी भाषी को पुरस्कारस्वरूप भारत सरकार की ओर से सम्मेलन में भाग लेने के लिए न्यूयॉर्क जाने का अवसर प्रदान किया गया।

नवें विश्व हिंदी सम्मेलन का संक्षिप्त प्रतिवेदन

विश्व हिंदी सम्मेलन की इस शृंखला में नवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन 22 से 24 सितंबर, 2012 को दक्षिण अफ्रीका की औद्योगिक राजधानी जोहान्सबर्ग के सैंडटन सेंटर के नेल्सन मंडेला सभागार में संपन्न हुआ। इस सम्मेलन का आयोजन भारत के विदेश मंत्रालय ने हिंदी शिक्षा संघ, दक्षिण अफ्रीका के सहयोग से किया। इस सम्मेलन के सफल आयोजन के लिए भारत की विदेश राज्यमंत्री श्रीमती प्रणीत कौर की अध्यक्षता में एक संचालन समिति गठित की गई। दक्षिण अफ्रीका में भारत के उच्चायुक्त श्री वीरेंद्र गुप्ता के संरक्षण में एक आयोजन समिति का भी गठन किया गया।

नवें विश्व हिंदी सम्मेलन के संकल्प पत्र में महात्मा गांधी की भाषा-दृष्टि अंतर्निहित रही। इस सम्मेलन का केंद्रीय विषय 'भाषा की अस्मिता और हिंदी का वैश्विक संदर्भ' रखा गया था जो आज के समय में प्रासंगिक और भविष्योन्मुखी दृष्टि का परिचायक है। इसमें केंद्रीय विषय के विभिन्न आयामों को नौ समानांतर शैक्षिक सत्रों में विभाजित कर विषय विशेषज्ञों के अलग-अलग समूहों द्वारा व्याख्यायित एवं विवेचित किया गया। समानांतर सत्रों

से पूर्व 22 सितंबर को उद्घाटन सत्र आयोजित किया गया, जिसमें भारत के अतिरिक्त दक्षिण अफ्रीका और मॉरीशस के प्रतिनिधि भी विद्यमान थे। अध्यक्षता विदेश राज्यमंत्री श्रीमती प्रणीत कौर ने की। मुख्य अतिथि दक्षिण अफ्रीका के वित्तमंत्री श्री प्रवीन गोर्धन थे। मंच पर सुश्री इला गांधी, विदेश मंत्रालय के सचिव (पश्चिम) श्री एम. गणपति, दक्षिण अफ्रीका के उप विदेश मंत्री श्री मारियस फ्रांसमन, मॉरीशस के प्रतिनिधि मंडल के अध्यक्ष तथा कला एवं संस्कृति मंत्री श्री मुकेश्वर चुन्नी, संसदीय राजभाषा समिति के पूर्व उपाध्यक्ष एवं विश्व हिंदी सम्मेलन की संचालन समिति के अध्यक्ष व सांसद सत्यव्रत चतुर्वेदी, दक्षिण अफ्रीका में भारतीय उच्चायुक्त श्री वीरेंद्र गुप्ता एवं दक्षिण अफ्रीका स्थित हिंदी शिक्षा संघ की अध्यक्ष सुश्री मालती रामबली थे। उद्घाटन सत्र का प्रारंभ भारतीय सांस्कृतिक केंद्र जोहान्सबर्ग एवं डरबन के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत स्वागत गान से हुआ। दक्षिण अफ्रीका के कोजीनाथी ग्रुप द्वारा प्रस्तुत उत्साहपूर्ण स्वागत गान उद्घाटन सत्र के आकर्षण का केंद्र रहा। श्रीमती प्रणीत कौर एवं अन्य मंचस्थ अतिथियों द्वारा दीप-प्रज्ज्वलन से उद्घाटन सत्र की औपचारिक शुरुआत हुई। श्रीमती प्रणीत कौर ने कहा कि अब हिंदी का एक अंतरराष्ट्रीय भाषा बनने का दावा बनता है। सुश्री मालती रामबली का कहना था कि भाषा रेत की तरह होती है; अगर मुट्ठी में पकड़कर इसका प्रयोग नहीं करेंगे तो उँगलियों से फिसल जाएगी। श्री वीरेंद्र गुप्ता ने युवाओं को हिंदी से जोड़ने की जरूरत को रेखांकित किया। श्री मुकेश्वर चुन्नी का विचार था कि हिंदी बोलने से अपनापन महसूस होता है। श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी ने हिंदी, गांधी और दक्षिण अफ्रीका—इन तीनों के तादात्म्य को साझा किया। उद्घाटन सत्र के दौरान भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित श्री रवींद्र कालिया एवं उनके संपादक मंडल द्वारा संपादित 'विश्व हिंदी सम्मेलन स्मारिका'

तथा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली से प्रकाशित श्री अशोक जजूरिया एवं श्री अमित माथुर द्वारा संपादित 'गगनांचल' पत्रिका के विशेषांक का विमोचन किया गया।

उद्घाटन सत्र के पश्चात तीन विशेष कार्यक्रम संपन्न हुए। प्रथम, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के समन्वयन में राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा, नेशनल बुक ट्रस्ट (नई दिल्ली), सी-डैक तथा गांधी दर्शन समिति (नई दिल्ली) द्वारा आयोजित पुस्तक एवं महात्मा गांधी के जीवन दर्शन संबंधी प्रदर्शनी का उद्घाटन श्रीमती प्रणीत कौर एवं दक्षिण अफ्रीका के वित्तमंत्री श्री प्रवीन गोर्धन द्वारा किया गया। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा संयोजित हिंदी में सूचना प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग संबंधी एक प्रदर्शनी भी लगाई गई। इस अवसर पर म.गां.अं. हिंदी विवि के कुलपति श्री विभूति नारायण राय ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा हिंदी भाषा के उन्नयन हेतु निरंतर किए जा रहे प्रयासों का उल्लेख किया। इसके उपरांत नेल्सन मंडेला सभागार के प्रांगण में दक्षिण अफ्रीका में हिंदी के सबसे बड़े उन्नायक पंडित नरवेद नरोत्तम वेदालंकार की प्रतिमा का अनावरण श्रीमती प्रणीत कौर व श्री प्रवीन गोर्धन द्वारा किया गया। इस अवसर पर सम्मेलन में पधारे विभिन्न देशों के प्रतिनिधि एवं प्रतिभागी भी उपस्थित थे। इसी क्रम में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा सम्मेलन अवधि में प्रकाशित किए गए दैनिक पत्र 'हिंदी विश्व' के स्वागत अंक का लोकार्पण सांसदों श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी, श्री रघुवंश प्रसाद सिंह एवं कुलपति श्री विभूति नारायण राय द्वारा किया गया।

उद्घाटन सत्र के बाद आरंभिक पूर्ण सत्र में दक्षिण अफ्रीका में भारत के उच्चायुक्त वीरेंद्र गुप्ता



ने सम्मेलन के विभिन्न सूत्रों की जानकारी दी। इस अवसर पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के महानिदेशक श्री सुरेश गोयल, विश्व हिंदी सचिवालय मॉरीशस की महासचिव श्रीमती पूनम जुनेजा, दक्षिण अफ्रीका के हिंदी शिक्षा संघ के संयुक्त क्षेत्रीय निदेशक श्री हीरालाल शिवनाथ, सांसद श्री सत्यव्रत चतुर्वेदी मंचस्थ थे। इन लोगों ने भी नवें विश्व हिंदी सम्मेलन की संकल्पना एवं केंद्रीय विषय-वस्तु को विस्तार से पटल पर प्रस्तुत किया। उद्घाटन समारोह एवं आरंभिक पूर्ण सत्र का संचालन भारत के विदेश मंत्रालय की उपसचिव (हिंदी) श्रीमती सुनीति शर्मा ने किया।

सम्मेलन में बड़ी संख्या में विद्यार्थियों एवं युवाओं को शामिल करने के प्रयास किए गए। आरंभिक पूर्ण सत्र के अतिरिक्त नौ समानान्तर शैक्षणिक सत्रों में विभिन्न विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई जिनमें अनेक देशों से आए हिंदी लेखकों, हिंदी सेवियों और हिंदी प्रेमियों ने भागीदारी की। इन समानान्तर सत्रों के विषय थे—महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान का संदर्भ, अफ्रीका में हिंदी शिक्षा : युवाओं का योगदान, सूचना प्रौद्योगिकी : देवनागरी लिपि और हिंदी का सामर्थ्य, हिंदी के विकास में विदेशी/प्रवासी लेखकों की भूमिका, लोकतंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिंदी, ज्ञान-विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी, विदेश में भारत : भारतीय ग्रंथों की भूमिका, हिंदी : फिल्म, रंगमंच और मंच की भाषा और हिंदी के प्रसार में अनुवाद की भूमिका।

प्रथम सत्र में 'महात्मा गांधी की भाषा दृष्टि और वर्तमान संदर्भ' विषय पर आयोजित था। वरिष्ठ समालोचक डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल, वरिष्ठ पत्रकार श्री मधुकर उपाध्याय, प्रख्यात आलोचक श्री विजय बहादुर सिंह, प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक श्री नंदकिशोर आचार्य, सर्वश्री राजभजन सीताराम, निर्मला जैन, गंगाप्रसाद विमल, गोपेश्वर सिंह, भारत

भारद्वाज, रामेश्वर राय, शंभुनाथ, एस. तंकमणि अम्मा तथा इंद्रनाथ चौधुरी आदि विद्वानों ने भी वैचारिक हस्तक्षेप किया। अध्यक्षीय उद्बोधन में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री विभूति नारायण राय ने कहा कि 'सरकार की फाइलों पर चलनेवाली भाषा कभी जनसाधारण की भाषा नहीं बन सकती।' इसी विषय पर गांधी ग्राम के न्याय कक्ष में समानान्तर सत्र में प्रेमचंद विशेषज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका ने कहा कि गांधी जी ने भाषा के प्रश्न को स्वराज से जोड़ा था। सत्र में सोलह शोध-पत्रों का वाचन किया गया एवं अनेक विद्वानों द्वारा विचार रखे गए। अध्यक्षीय उद्बोधन में राजभाषा संसदीय समिति के सदस्य श्री रमेश बैस ने अंग्रेजी के वर्चस्व को दिमाग से निकाले जाने पर जोर दिया।

'सूचना प्रौद्योगिकी : देवनागरी और हिंदी का सामर्थ्य' विषय पर नीति कक्ष में बीज वक्तव्य श्री ओम विकास ने प्रस्तुत किया। विशिष्ट अतिथि सांसद श्री रघुवंश प्रताप सिंह थे। विषय विशेषज्ञ श्री जगदीप सिंह दांगी एवं भाषाविद् श्री परमानंद पांचाल थे। सी-डैक के श्री महेश कुलकर्णी ने विचार रखे। सत्र की अध्यक्षता केंद्रीय हिंदी संस्थान के उपाध्यक्ष प्रो. अशोक चक्रधर ने की। संचालन श्री बालेंदु शर्मा 'दाधीच' ने किया।

सम्मेलन के दूसरे दिन अहिंसा कक्ष में 'लोकतंत्र और मीडिया की भाषा के रूप में हिंदी' विषय पर बीज वक्तव्य 'नया ज्ञानोदय' के संपादक श्री रवींद्र कालिया ने दिया। विशिष्ट अतिथि सांसद श्री मणिशंकर अय्यर, आलोचक श्री शंभुनाथ, विधि विशेषज्ञ श्री कमलेश जैन, कथाकार श्री अखिलेश, पत्रकार श्री कुरबान अली तथा दक्षिण अफ्रीका के श्री फकीर हसन ने विचार रखे। अध्यक्षीय उद्बोधन में 'हिंदुस्तान' के संपादक श्री शशि शेखर ने मीडिया की भाषा के रूप में हिंदी के भविष्य को उज्ज्वल बताया। सत्र संचालन श्री संजीव ने किया।

‘ज्ञान-विज्ञान और रोजगार की भाषा के रूप में हिंदी’ विषय पर सत्र साहित्यकार श्रीमती चित्रा मुद्गल, विशिष्ट अतिथि सांसद श्री निरोंग इरींग, कथाकार ममता कालिया, श्री आर.एस. राजू, दक्षिण अफ्रीका के हिंदी विद्वान श्री मोहम्मद कुजूं मथारू, दक्षिण अफ्रीका की सुश्री शिवा श्रीवास्तव ने अपने विचार रखे। अध्यक्षीय उद्बोधन बिहार विधान सभा के पूर्व अध्यक्ष एवं वरिष्ठ साहित्यकार श्री जाबिर हुसैन ने दिया।

‘हिंदी, फिल्म रंगमंच और मंच की भाषा’ विषय पर अहिंसा कक्ष में आयोजित सत्र में ख्यातिलब्ध रंगकर्मी सुश्री उषा गांगुली के अलावा सत्र की अध्यक्षता प्रसिद्ध कवि श्री बालकवि बैरागी ने की।

‘हिंदी के प्रचार-प्रसार में अनुवाद की भूमिका’ विषय पर बीज वक्तव्य प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी ने प्रस्तुत किया। विशिष्ट अतिथि श्री कैलाश चंद्र पंत थे। अध्यक्षीय उद्बोधन डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने दिया।

‘विदेशों में भारत : भारतीय ग्रंथों की भूमिका’ विषय पर बीज वक्तव्य विख्यात उपन्यासकार डॉ. नरेंद्र कोहली ने दिया। विषय विशेषज्ञ के रूप में राष्ट्रभाषा प्रसार समिति, वर्धा के प्रधानमंत्री श्री अनंतराम त्रिपाठी, दक्षिण अफ्रीका की सुश्री उषा शुक्ला ने विचार रखे। डॉ. रत्नाकर पांडेय ने अध्यक्षीय

उद्बोधन दिया।

‘हिंदी के विकास में विदेशी/प्रवासी लेखकों की भूमिका’ विषय पर न्याय कक्ष में आयोजित सत्र में डॉ. वेदप्रकाश बटुक ने अध्यक्षीय उद्बोधन दिया। रूसी विद्वान सर्गेइ सेरेब्रियानी ने बीज वक्तव्य दिया। ‘अफ्रीका में हिंदी शिक्षण : युवाओं का योगदान’ विषय पर आयोजित सत्र में संसद सदस्य श्री रघुनंदन शर्मा,

विषय विशेषज्ञ नारायण कुमार, श्री सत्यदेव टेंगर तथा श्री भवानी दयाल आदि विद्वानों ने विचार रखे। अध्यक्षीय वक्तव्य डॉ. विमलेश कांति वर्मा ने दिया।

सम्मेलन में हिंदी भाषा के विकास में उल्लेखनीय योगदान देने के लिए भारत तथा अन्य देशों के हिंदी विद्वानों को सम्मानित किया गया। इनमें अमेरिका के डॉ. वेदप्रकाश बटुक, ऑस्ट्रेलिया के श्री पीटर गेर्गार्ड फडलांडर, रूस के श्री सर्गेइ सेरेब्रियानी, चेकोस्लोवाकिया के श्री दागमार मारकोवा, इटली

के श्री माको जोली, चीन के श्री लिऊ अन्वू, मॉरीशस की श्रीमी सरिता बुधू व श्री सत्यदेव टेंगर, थाइलैंड के श्री बमरुंग खाम-एक, श्रीलंका के श्री उपल रंजीत हवातानागामज, बल्गारिया की सुश्री वान्या जाजिवा गनचेवा, अफगानिस्तान के श्री जबल्लाह ‘फीकरी’, सूरीनाम के श्री भोलोनाथ नारायण, यूक्रेन की सुश्री कैटरिना बालेरीवा दोवबन्या, इंग्लैंड के प्रो. कृष्ण



कुमार व विजय राणा, जर्मनी के सर्वश्री इंदु प्रकाश पांडेय व बरबरा लाट्ज, जापान के श्री तिकेदी इशीदा व श्री तोमोको किकुचि तथा भारत के सर्वश्री एस. शेषारत्नम, बालकवि बैरागी, मधुकर उपाध्याय, हिमांशु जोशी, राजेंद्र प्रसाद मिश्र, कैलाश चंद पंत, एम. पियोंग तेजमन 'जमीर', सी.इ. जीनी, रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', जाबिर हुसैन, मधुसूदन त्रिपाठी, ज्ञान प्रकाश चतुर्वेदी, ललितांबा, उषा गांगुली, के. बनजा, गिरजाशंकर त्रिवेदी, हरिवंश, वाय. लक्ष्मी प्रसाद तथा रामभजन सीताराम शामिल थे।

सभागार के 'सत्य मंडप' में पुस्तकों के लोकार्पण की व्यवस्था की गई थी। अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त इस सम्मलेलन में अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया। सम्मेलन के प्रथम दिन सायंकाल प्रस्तुति प्रसिद्ध नाट्यकर्मों श्री शेखर सेन द्वारा संत कबीर के जीवन पर आधारित एकल नाट्य दी गई। सम्मेलन के दूसरे दिन दक्षिण अफ्रीका की सांस्कृतिक संस्था 'अनावृत्ता' द्वारा नृत्य प्रस्तुतियाँ की गईं। समापन समारोह एवं भोजन के उपरांत कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया।

10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन(10 से 12 सितंबर, 2015, भोपाल, भारत) :

10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में 10 से 12 सितंबर, 2015 तक आयोजित किया गया। इस विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान देश-विदेश से आए अनेक विद्वानों, हिंदी मनीषियों एवं अन्य प्रतिभाशाली विशेषज्ञों ने 12 चयनित विषयों पर समानांतर सत्रों में गहन चर्चा के पश्चात महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ कीं।

सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को समयबद्ध तरीके से आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संकल्प लिये जाने पर बल दिया गया। इस संबंध में विभिन्न देशों का समर्थन जुटाने के लिए भारतीय

दूतावासों/मिशनो को और अधिक प्रयास करने चाहिए। भारत में विदेशी भाषाओं को हिंदी माध्यम से सिखाने के लिए एक नया विश्वविद्यालय स्थापित करने की अनुशंसा की गई। विद्वानों ने कहा कि विदेश मंत्रालय की वेबसाइट पर मौलिक हिंदी लेखन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। साथ ही वेबसाइट पर क्षेत्रीय भाषाओं में भी जानकारी उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।

संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी में हिंदी विषयक सत्रों में हिंदी विद्वानों ने कहा कि भारत के प्रत्येक घर में डिजिटलाइजेशन को पहुँचाने के लिए कंप्यूटर की भाषा हिंदी होनी चाहिए। प्राथमिक कक्षाओं से ही कंप्यूटर टंकण अनिवार्य करने पर बल दिया गया। साथ ही भारत सरकार ने जो सर्च इंजन हिंदी में बनाया है वह आम जनता तक पहुँचाया जाए तथा बीमा, चिकित्सा, बैंक आदि क्षेत्रों में हिंदी कंप्यूटर प्रणाली की बाधाएँ शीघ्रातिशीघ्र दूर की जाएँ। देश के सभी वैज्ञानिक, चिकित्सा एवं अभियांत्रिक प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों में विज्ञान संचार इकाई की स्थापना पर बल दिया गया। डिजिटल इंडिया के तहत प्राचीन भारत के वैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित दुर्लभ ग्रंथों जैसे 'भारत की संपदा' आदि साहित्य को निःशुल्क वेबसाइट पर उपलब्ध कराया जाए।

प्रशासन में हिंदी विषयक सत्र में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा और कार्यालयी काम-काज में हिंदी को और अधिक सुगम बनाने के लिए विद्वानों ने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए, जिसमें उच्च न्यायालयों व अन्य न्यायालयों में हिंदी के प्रयोग की सुनिश्चितता, दलित साहित्य को प्रोत्साहन, अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शोध केंद्र, भारतीय रिजर्व बैंक की राजभाषा नीति निजी क्षेत्र के बैंकों में लागू करने पर बल देना आदि हैं।

10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में विद्वानों ने माना कि विदेश (गिरमिटिया देश) में प्रभावी हिंदी

शिक्षा के प्रसार के लिए कुशल प्रशिक्षित शिक्षकों को उपलब्ध कराना उपयोगी होगा। वहाँ की भाषा (बोली) के ज्ञात शिक्षकों को वरीयता दी जाए। यही नियम भारतीय दूतावासों के कर्मचारियों पर भी लागू किया जाए। साथ ही हिंदी शिक्षण में आधुनिक तकनीक के प्रयोग पर बल दिया जाए। इंटरएक्टिव, मल्टीमीडिया पर आधारित नई शिक्षण सामग्री के निर्माण में आवश्यकतानुसार विद्यामूलक और आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। हिंदी प्रेमियों ने सम्मेलन में एक स्वर से माना कि पुस्तक-संस्कृति का विकास करने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए। पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहन कार्ययोजना बनाकर पुस्तकालयों को सबल एवं सुदृढ़ करना चाहिए। ई-पुस्तकालय भी विकसित करने चाहिए।

सम्मेलन में 'हिंदी पत्रकारिता और संचार माध्यमों में भाषा की शुद्धता' पर हिंदी के विद्वानों ने संचार माध्यमों और उनके प्रबंधकों/संपादकों/प्रमुखों से आग्रह किया कि वे अपने-अपने संचार माध्यमों (सभी तरह के टी.वी. चैनल, समाचार पत्र, रेडियो, एफ.एम. चैनल, विज्ञापनदाता, एजेंसियाँ, डिजिटल मंच) से यह सुनिश्चित करें कि उनकी हर तरह की विषयवस्तु से हिंदी साहित्य सभी भारतीय भाषाओं की अस्मिता की मूल लिपि को कमजोर और खंडित करनेवाली कोई भी बात न हो। सम्मेलन में विशेष प्रस्ताव पारित कर केंद्र सरकार से अनुरोध किया गया कि 'अटल बिहारी वाजपेयी केंद्रीय हिंदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय' की स्थापना की जाए।

विदेशियों के लिए भारत में हिंदी अध्ययन की सुविधा बेहतर बनाने के लिए यह प्रस्ताव पारित हुआ कि मानक भाषा/वर्तनी तय होनी चाहिए जिससे विदेशी विद्यार्थियों को शब्दों को पढ़ने-लिखने एवं उच्चारण में किसी प्रकार की असुविधा न हो। भाषा

के साथ-साथ पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति, दर्शन एवं अध्यात्म की जानकारी को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अन्य भाषा-भाषी राज्यों में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए सम्मेलन में स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा हिंदी भाषा के विकास के लिए पत्रिकाओं आदि के प्रकाशन करने के लिए बल दिया गया। साथ ही विद्वानों ने माना कि हिंदी शब्दावली आयोग को हिंदी संस्थाओं से जोड़ा जाए और हिंदी संस्थाओं को हिंदीतर विद्वानों से जोड़ा जाए।

रिपोर्टिंग सत्र के बाद 'बाल साहित्य में हिंदी' विषय पर चर्चा की और सभी विद्वानों और उपस्थित लोगों ने एकमत से बाल साहित्य अकादमी की स्थापना किए जाने पर जोर दिया। साथ ही यह भी कहा गया कि भविष्य में आयोजित होनेवाले विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान आयोजित होनेवाले बाल साहित्य सत्र में विद्वानों के साथ ही बच्चों को भी आमंत्रित किया जाना चाहिए। मौलिक हिंदी में लिखित बाल साहित्य के पठन-पाठन के प्रति रुचि उत्पन्न की जाना चाहिए।

10वें विश्व हिंदी सम्मेलन में यह भी प्रस्ताव पारित हुआ कि 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन सन् 2018 में मॉरीशस में किया जाए जिस दौरान वहाँ स्थित विश्व हिंदी सचिवालय के नए भवन का औपचारिक उद्घाटन भी किया जाए।

सम्मेलन के अंतिम दिन कवि सम्मेलन का आयोजन होना था, लेकिन एक भीषण ट्रेन दुर्घटना के कारण यह कार्यक्रम स्थगित हो गया। तीन दिनों के विश्व हिंदी सम्मेलन की अमिट स्मृतियाँ लिये विद्वान् प्रतिभागी लौटे और यह उनके मन-मस्तिष्क पर कार्यक्रम की व्यवस्था एवं अकादमिक उपलब्धियों की अमिट छाप छोड़ गया।

□

राष्ट्र भाषा प्रचार समिति
वर्धा (महाराष्ट्र)

मॉरीशस : इंद्रधनुष, काँपती प्रत्यंचा

—स्व. डॉ. धर्मवीर भारती

सुदूर देशों की भटती यात्राओं की अनेक स्मृतियाँ हैं; मन की परतों में दबी हुई, जैसे बच्चों की किताबों के पन्नों में जंगली फूलों की पंखुरियाँ और तितलियों के टूटे पंख दबे-छिपे रहते हैं। उबुद (बाली द्वीप) का हरा-भरा सन्नाटा और सरोवर में उतरती सीढ़ियाँ और दूर किसी गाँव में बजता जलतरंग; बावेरिया के आल्पस की वीरान बर्फानी घाटियों में वह खामोश मठ और उसके गिरजे में स्तालिनग्राद से लौटे सिपाहियों की मनौतियाँ; स्कॉटलैंड के सुदूर उत्तर की कड़कड़ाती ठंड में वह स्वच्छ नीली झील और उसमें तैरते हुए दो राजहंसों की लाल वृत्त में चमकती भोली काली-काली आँखें; और भूमध्यसागर के एक छोटे निर्जन द्वीप में उगता हुआ काँपता सूरज और, लेकिन एक अनुभव जो मॉरीशस में हुआ, वह कभी कहीं नहीं हुआ।

स्वागत, अभिनंदन, भाषण, सेमिनार, पार्टियाँ, गोष्ठियाँ, वक्तव्य टेलिविजन, अखबारी भेंटवार्ताएँ—इन सबसे ठूसमठूस भरा हुआ पखवारा अब लगभग बीत चुका है और वापस लौटने के दिन नजदीक आ रहे हैं, और किसी तरह यह शाम बचा पाई है कि मॉरीशस के सुदूर दक्षिणी बिंदु आंसलारे का सूर्यास्त देखेंगे। बोबासां और रोजहिल में बारिश हो रही है पर

मॉरीशस का मौसम अद्भुत है। यहाँ पर ठंड, दो मील बाद गरमी, यहाँ बारिश, चार मील बाद धूप! मोहन महर्षि हमारे साथ हैं, गाड़ी खूबसूरत सजे-सजाए गाँवों और गन्ने के खेतों के बीच लहरीली सड़कों पर तैरती हुई अब एक पहाड़ी घाटी में दौड़ रही है, ढलानों पर जंगल। और यह क्या! मोटर की दाईं ओर सड़क के पार घास के फुटपाथों पर एक ताजा, टटका सतरंगा इंद्रधनुष मेहराव की तरह उठ आया है। इतने नजदीक यूँ उतरकर पकड़ लो! हम आश्चर्यचकित होकर गाड़ी धीमी करते हैं। हाँ, बस यह इंद्रधनुष हमारा है, केवल हमारा। सड़क की दायीं ओर से उठकर गाड़ी पर आकाश में घेरा बनाता हुआ फिर बाईं ओर घास पर टिक गया है; सच, आप विश्वास नहीं करेंगे, बिलकुल जैसे हमारे स्वागत के लिए! गाड़ी फिर चलती है और इंद्रधनुष साथ-साथ चलने लगते हैं, ठीक हमारे ऊपर; ऊपर और इतने पास कि लगता है, बाहर उतरकर दोनों हाथ फैलाओ तो उसके दाएँ-बाएँ बाजू को छू लो। हम चुप हो गए हैं, बादलों, पहाड़ों, फुहार धुले तरुओं की उस घाटी में इस इंद्रधनुष के चमत्कार पर ठगे-से मील दो मील साथ-साथ दौड़ने के बाद सहसा अब इंद्रधनुष पूरा-का-पूरा हमारे दाईं ओर अर्धवृत्त में तना हुआ चल रहा है! आप कभी इस तरह इंद्रधनुष

* प्रख्यात साहित्यकार, 'धर्मयुग' के संपादक स्व. डॉ. धर्मवीर भारती के ये पूर्व प्रकाशित संस्मरण तीन दशक पूर्व के मॉरीशस की स्मृतियाँ जीवंत करते हैं। —संपादक

के छत्र तले महाराजाओं की तरह चले हैं? नहीं न? यह सिर्फ मॉरीशस में संभव है। और केवल उसी शाम नहीं, मॉरीशस में पहुँचने के क्षण से लेकर विदा के क्षण तक हम वहाँ एक और इंद्रधनुष की छाया में चलते रहे, वह था वहाँ के इतने सारे जाने-अनजाने मित्रों के प्रेम का रंगारंग इंद्रधनुष। वे सारे प्यारभरे चेहरे यहाँ भारत में भी हर समय याद आते रहते हैं। पहुँचते ही हवाई अड्डे पर न जाने कौन से खुशनुमा नीले फूलों की विशाल माला लेकर पहुँचनेवाले बैवासिंह। पहली ही शाम की दावत में साहित्यकार और प्रतिबद्धता को लेकर बहस में उलझ पड़नेवाले और विदा के समय आँखों में आँसूभर लानेवाली सदानंद हवलदार, परम स्नेही डॉ. हजारे सिंह, जयनारायण राय, मुनींद्रनाथ वर्मा, विष्णुदयालजी, गौतम तिलक, मंत्रीगण वसंतराय, सत्यकाम बुलेल, मोदन भैया, जयपालजी त्रिवेणी के सदस्य जयनाथ सिंह, प्रेम बर्टन तथा अनेक जिनकी शकलें याद हैं, नाम भूल रहा हूँ—पुराने लेखक मित्र सोमदत्त बखोरी, अभिमन्यु अनंत, शबनम, मधुकर भगत और नए उत्साही पत्रकार मित्र राजेंद्र अरुण, ट्रेनिंग कॉलेज के डॉक्टर रामप्रकाश तथा उनके सभी छात्र। सभी सभाओं में उत्साह से भाग लेने वाले देव-वंश रामनाथ, डॉ. ओरी, गंगा, तोरल, विदेसी तथा अनेक युवा बंधु, नालंदा प्रकाशन के रामलला, हिंदीभवन के श्री एस.एम. भगत, टेलिविजन के डॉ. गोपाल शर्मा, रामलखन, धर्मवीर घूरा और पहले ही टेलिविजन इंटरव्यू में टकराकर फिर मित्र बन जानेवाले नुबिन अकाडू, शिक्षामंत्री डॉ. शोपे, हीरामन और 'अंधायुग' के मॉरीशस के सभी युवा अभिनेता और सबसे बढ़कर मिलते ही, "कैसा है? हम बंबई गया, तुम यहाँ आ गया। अभी महीना एक और ठहरो।"—कहकर प्यार से भेंटनेवाले चाचा (प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम)। मैंने कहा न कि प्यार का एक सतरंगी इंद्रधनुष था, जो शुरू से आखिर तक हम पर छाया रहा, और हमारे मेजबान आर्थिक आयोजन और

विकास मंत्री खेर जगत सिंह और भाभी राधिका जगत सिंह! हम अनजान अतिथि की तरह उनके उस सुंदर कलात्मक घर में गए थे और जब विदा के दिन उस घर से हवाई अड्डे जाने लगे तो लगा जैसे बरसों से जहाँ रहे हों, वह अपना घर छूट रहा हो। इलाहाबाद छोड़कर बंबई आए थे, तब भी मन इतना उदास नहीं था।

यहाँ भारत से इस बात का अंदाज भी नहीं हो सकता था कि वह द्वीप इतना सुंदर है, इतना प्यार भरा है। दक्षिणी तट का शांत, कहीं अंगूरी, कहीं धानी, कहीं फीरोजी, कहीं मंदिर के पुराने पवित्र काई जमे पोखरों जैसे रंगवाला सुहावना समुंदर, द्वीप को चक्र की तरह घेरे हुए लहरें उछालती प्रवाल रेखा, और उत्तरी तट का गहरा नीला और चट्टानों से टकराकर फेन उगलता विशुद्ध महासागर—गाढ़ी काली रात में ज्वालामुखी के शून्य वृत्ताकार क्रेटर पर खड़े होकर सचमुच आकाश छूने और तारे तोड़ लाने का अहसास, नीली धुंध में ढँके पराड़, मीलों फैले गन्ने के खेत, चीड़ के जंगल, पानी की लहराती झीलें, सारे द्वीप में हर सड़क पक्की, छोटे-छोटे कलात्मक कॉटेज, शामारेल की वह रहस्यमयी रंग-बिरंगी धरती और पांपिलेमूस के थालीदार पत्तोंवाले शतदल कमल और सैकत तटों के जादू रेखाओं वाले शंख और चीड़ वनों के बारहसिंगे! अचरज होता है कि इस छोटे-से द्वीप को विधाता ने कैसे प्रेरित क्षणों में गढ़ा होगा! कौन-सा देश है दुनिया में जहाँ प्रकृति ने इतना सौंदर्य बाहर बिखेरा हो और इतना भावभीना प्यार लोगों के हृदयों में! ये दो आयाम हैं, इस इंद्रधनुषी द्वीप के आंतरिक और बाह्य सौंदर्य के!

लेकिन एक तीसरा आयाम और है, जिसके बिना इस द्वीप की कहानी अधूरी रहती है। वह आयाम प्रत्यक्ष नहीं है, अंतर्निहित है—पर एक बार जान लेने के बाद वह भी इस इंद्रधनुष की अदृश्य प्रत्यंचा की तरह हर क्षण इस यात्री के मन में टंकारता रहा। वह आयाम है, उस अभागे इतिहास का, जो इस सुंदर द्वीप के इन प्यार भरे लोगों को पूर्वजों की दुखद नियति

से जुड़ा रहा। आज से सौ, डेढ़ सौ साल पहले चंद फ्रांसीसी और अंग्रेज उपनिवेशवादी मालिकों द्वारा इन भारतीयों के पूर्वज धोखाधड़ी से शर्तबद्ध-कुलियों के रूप में पकड़कर इस द्वीप में लाए गए थे। तब यहाँ ये खुशनुमा खेत नहीं थे, ये सड़कें नहीं थीं। जंगल विषैली झाड़ियों, नुकीली चट्टानों, घातक नागफनियों और रोगाणु फैलानेवाले मच्छरों, डाँसों और बिच्छुओं से भरे पड़े थे। आरामतलब फ्रांसीसी और अंग्रेज इनमें पाँव रखते डरते थे और गुलाम बनाकर पहले लाए गए अफ्रीकी क्रियोल अनुशासनबद्ध नहीं थे। इस विश्वव्यापी उपनिवेशवादी पैशाचिकता के विरुद्ध सबसे बड़ा विद्रोह किया था भारत में हिंदी प्रदेश के बहादुर निवासियों ने, क्योंकि उनकी मातृभाषा हिंदी लल्लो-चप्पो और खुशामद की नहीं, वरन् अक्खड़ आत्माभिमान की भाषा रही थी। वह विद्रोह सबसे ज्यादा चला था वीर कुँवर सिंह के नेतृत्व में भोजपुर प्रदेश में और विद्रोह असफल हो जाने के बाद अंग्रेज सबसे कठोर दंड उसी हिंदी प्रदेश को देने पर तुले थे। वहाँ के गृह उद्योग बरबाद कर दिए गए, खेत

रौंद डाले गए, गाँव-के-गाँव उजाड़ दिए गए और जब वहाँ का निवासी आश्रयहीन होकर भटकने लगा, तब उन्हें फुसलाकर, धमकाकर, धोखा देकर, लालच दिखाकर, कभी-कभी जबरदस्ती उठाकर जहाजों में ठूस दिया गया और कलकत्ता से इन बेबस गुलामों के झुंड पोर्ट लुई पर लाकर उतारे गए और जानवरों की

तरह उन्हें काम में झोंक दिया गया। आज भी पत्थर की वे सीढ़ियाँ, नहाने का वह हौदा, वे कोठरियाँ सुरक्षित हैं, जहाँ उन्हें सैकड़ों-हजारों की संख्या में घास-पात की तरह ठूस दिया जाता था।

हमने वह स्थान बाद में देखा, पर यह पहले से पढ़ा हुआ इतिहास द्वीप पर उतरने के साथ ही, एक अदृश्य प्रत्यंचा की तरह मन में झनझनाने लगा था। यह मीलों लंबा गन्ने का सुहावना खेत—इसमें कितने भारतीय कुलियों को कोड़ों से मार-मारकर गड़ढे खोदकर गाड़ा गया होगा? यह सुहावना नीले

बैठक में उन्हें स्लेट पर ‘अ आ इ ई’ लिखना सिखाया जाता था, लालटेन धीमी हो रही थी कि पहरेंदार देख न ले; वहीं जिसे रामायण, गीता, महाभारत की कथा जितनी जैसी याद होती थी, सुनाते थे ताकि वे नष्ट न हो जाएँ। कभी-कभी ‘लश्कर’ को पता लग जाता था और वे बंदूक लेकर आते थे और तब वे हिंदी सीखनेवाले लालटेन और स्लेट छोड़-छाड़कर खेतों में छिप-छिपकर भागते थे। अँधेरे में भागते हुए गन्ने की पत्तियों से उनके हाथ-पाँव-मुँह लहलुहान हो जाते थे, पर दूसरे दिन फिर मरहम-पट्टी करके रात को वे इसी पत्थर के ढेर पर इकट्ठे हो जाते थे।

फूलोंवाला विशाल वृक्ष— इसमें कितने कुलीन भारतीय म्लेच्छ फिरंगी के हाथों अपमानित होकर फाँसी लगाकर मर गए होंगे? पुराने लोगों ने बताया था कि शाम होते ही कोई घर से नहीं निकलता था, क्योंकि फाँसी लगाकर मरे हुए कुलियों की प्रेतात्माएँ ‘फँसियारा’ बनकर, झील में डूबे कुलियों की प्रेतात्माएँ ‘पनडुब्बे’ बनकर शाम होते ही तांडव करने लगती थीं। आज भी उनके जीवन पर उस इतिहास की एक खौफनाक छाया

अनजाने ही बैठी हुई है। इतने सुहावने मॉरीशस द्वीप की बहारदार शामें किस कदर उदास और सूनी होती हैं—वहाँ अब भी शाम होते ही द्वीप की सारी चहल-पहल अकस्मात मर जाती है। उस पूरे द्वीप में गन्ने के हजारों खेतों के बावजूद किसी को गन्ने के रस की एक बूँद पीते नहीं देखा, क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिस गन्ने

को वे अपना खून-पसीना एक कर उगाते थे, उसका एक टुकड़ा चूसने पर उसके हाथों और जबड़ों को दो शहतीरों के बीच कसकर तोड़ दिया जाता था। आज वे भूल चुके हैं कि गन्ने का रस मीठा होता है, ताजगी देता है—गला सूखने पर पिया जा सकता है। उनकी प्यास इतिहास की यंत्रणाओं ने सुखा दी है!

और इतिहास की यह कड़वी झनझनाहट कभी-कभी बड़े बेमौके मेरे मन को झकझोरने लगती थी। आज वहाँ के भारतीय परिवार समृद्ध हैं, सुशिक्षित हैं, देश-विदेश के अनुभव लेकर आए हैं, फ्रेंच, क्रियोल, अंग्रेजी में निष्णात हैं। किसी सेमिनार में कोई अभी-अभी फ्रांस में शिक्षा पाकर या अमरीका में अध्ययन करके लौटा हुआ भारतीय मॉरीशस बोल रहा है—और मेरा मन है कि सौ साल पहले लौट गया है—इसके पूर्वज आरा, शाहाबाद, आजमगढ़ किस जिले के किस गाँव के कुलीन किसान रहे होंगे? किस मेले-त्यौहार में दलालों ने मिलकर उन्हें समझाया होगा कि मुरिश द्वीप में सोना-ही-सोना भरा है? जाओ और थैली में भर लाओ। कैसे कलकत्ते गए होंगे? किन सपनों के साथ? और जहाज पर चढ़ते ही उनकी मुश्कें बाँध दी गई होंगी, उन्हें अँधेरे तेल भरे तहखाने में ढकेल दिया गया होगा, द्वीप पर उतारकर उन्हें कोठरी में डाल दिया गया होगा, किस फ्रांसीसी मालिक ने उन्हें खरीदा होगा, एक बोरी पहनने, एक बिछाने को दी गई होगी—कोड़ों, ठोकरों, गालियों के साथ वे अपने गाँव को कैसे याद करते होंगे—क्या अर्थ रहा होगा उनके लिए इन झरनों, झीलों, पहाड़ों, सौंदर्य भरे समुद्र तटों का! जब उन्हें कोड़े पड़ रहे होंगे तो क्या वैसा इंद्रधनुष इनके खेत पर भी उगा होगा जैसा मेरी राह पर उग आया था!

और उस समय मुझे सबकुछ भूलकर कैसी मर्मांतक ऐंटन मन में होने लगती थी, यह मैंने कभी जाहिर नहीं होने दिया। एक दिन की अनुभूति मुझे बराबर याद आती रहती है। हम दोनों को भाभी (श्रीमती जगत सिंह) शामरेल दिखाने ले गई थीं।

शामरेल सचमुच एक अद्भुत चमत्कार है। कभी लाखों वर्ष पहले मॉरीशस किसी भयानक ज्वालामुखी विस्फोट से बना था। उसका क्रेटर क्यूर्पिप के पास अब भी है, जिसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ। एक निर्जल बीहड़ स्थल पर कई फर्लांग तक उसी विस्फोट में भूगर्भ से जली-अधजली कितने रंग की मिट्टी निकलकर जम गई है, जो लाखों वर्षों से उसी तरह उन्हीं रंगों के साथ आज भी जमी हुई है—लाल, नीली, काली, फालसही, गेरुआ, सफेद गुलाबी, भूरी, काही, मिट्टी के कितने अजीब रंग—मानो इंद्रधनुष जमकर धरती बन गया हो। शामारेल देखकर लौटते हुए एक पठारी जगह पर रुके। वहाँ एक नदी पहाड़ काटती है, सैकड़ों फीट नीचे गिरती है और दुर्गम उपत्यका के बीहड़ घने जंगलों में होती हुई समुद्र की ओर चली जाती है। अजीब खौफनाक लेकिन जादू में बाँध लेनेवाला मंजर है।

पठार खूब हरा-भरा है और वहाँ एक फल के झाड़ु छापे हुए थे, जिन्हें चीनी अमरूद कहा जाता है (लेकिन वस्तुतः वह दक्षिण अमरीका का कोई पौधा है)। छोटे-छोटे पके-अधपके लाल-हरे अमरूदों के झाड़ु लदे हुए थे। कई स्कूलों की लॉरियाँ आई खड़ी थीं और सैकड़ों बच्चे अपने अध्यापक, अध्यापिकाओं के साथ छोटे-छोटे अमरूद तोड़-तोड़कर जेबों, रूमालों, थैलियों और टोकरियों में भर रहे थे। पुष्पा भी भाभी के साथ उतरकर अमरूद तोड़ रही थीं।

मेरी नजर वहाँ लगे लाइनबोर्ड पर पड़ी, 'ब्लैक रिवर गार्ज।' ब्लैक रिवर क्यों? पानी तो दूध की तरह उज्ज्वल श्वेत है। मालूम हुआ कुली प्रथा के दिनों में अत्याचार से पीड़ित सैकड़ों भारतीय कुली अपमान सहने के बजाय इसी स्थान से इसी भयानक घाटी में कूदकर आत्महत्या कर लेते थे। गोरों ने इस नदी का नाम ही ब्लैक रिवर रख दिया था। बाद में शिकारी कुत्ते छोड़े जाते थे कि उनकी लाशों को नौचें और कोई अधमरा हाथ-पाँव टूटा गुलाम जिंदा बच गया तो वे



उसे खींचकर लाएँ।

भाभी लाल-मीठे, अमरूद चुन-चुनकर 'भाई जी' के लिए लाई थीं, पर उन्हें क्या मालूम कि उनके भाई के मुँह में उस वक्त उन अमरूदों का एक ही स्वाद था—कसैला—उन खौफनाक मौतों का कसैला स्वाद! उस शामरेल को रंग-बिरंगी मिट्टी में कहीं खून से लिथड़ी चटख लाल मिट्टी भी मिल गई होगी। निर्दोष हिंदी भाषियों का रक्त। इस पठार के ये रसीले अमरूद क्या इसीलिए इतने लाल होते हैं।

लेकिन अगर हिंदीभाषियों का यह इतिहास केवल इस अत्याचार के समक्ष आत्मघात का इतिहास होता, तो आज मॉरीशस मॉरीशस न होता और मुझमें उसकी कथा सुनाने की यह उमंग न होती। इन दानवी अत्याचारों के सात गुलामी के इस सबसे शर्मनाक दौर में इन भारतीयों ने अनथक श्रम और निष्ठा का परिचय दिया। जिस प्रकार चट्टानों, नागफनियों, जहरीली झाड़ियों, डाँसों, बिच्छुओं, फ्रांसीसी और अंग्रेज उपनिवेशवादी राक्षसों से भरे द्वीप को आज संसार का सबसे सुहावना द्वीप बना दिया, वह तो अपनी जगह एक करिश्मा है ही, पर उन्होंने किस तरह गुलामी की कड़ियों में पोर-पोर जकड़े हुए होने पर भी अपनी आत्मा को मरने नहीं दिया, अपनी संज्ञा को विस्मृत नहीं होने दिया, अपनी भारतीयता को मरने नहीं दिया, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी परंपरा को जितनी विचित्र स्थितियों में जैसे मानवोपरि प्रयासों से जिंदा रखा, वह कथा किसी भी जाति के लिए गर्व से सर ऊँचा करनेवाली उपलब्धियाँ हैं। उनकी कोई जाति-पाँति नहीं रहने दी गई थी। उनका नंबर बोलकर किसी व्यक्ति को किसी भी औरत के साथ रहने के लिए विवश किया जाता था, एक स्त्री को बारह-बारह व्यक्तियों के साथ रखा गया था, उनको टाट का एक टुकड़ा छोड़कर कोई कपड़ा पहनने की मनाही थी, उन्हें घर के बाहर बीड़ी पीने की इजाजत नहीं थी, वे पूजा नहीं कर सकते थे। जरा से कसूर पर उनके घुटने और कलाई की हड्डियाँ तोड़

दी जाती थीं, दंड विधान इतना कड़ा था—हर व्यक्ति के दो नाम होते थे एक खेत पर, एक घर पर ताकि पुलिस से बच सके (मुसलमान निवासियों के साथ कुछ रियायत थी, क्योंकि वे 'लश्कर' थे यानी सैनिक के रूप में अंग्रेजों के सहयोगी पहरेदार सिपाही—वही पुरानी बाँटो और शासन करो वाली नीति तथा क्रियोलों को रियायत थी, क्योंकि उन्होंने अपनी पैतृक संस्कृति त्याग कर ईसाई धर्म और संस्कृति अपना ली थी और पादरी उनकी रक्षा करते थे, लेकिन शेष भारतीय कुली पशुवत् जीवन बिताने को बाध्य थे। फिर भी वे हारे नहीं, अपनी संस्कृति बचा ले गए।

संस्कृति को बचाए रखने की इस रोमांचक गाथा के अनेक बिंदुओं को मैंने तब जाना, जब पोर्ट लुई का वह मैदान देखा, जहाँ सन् 1910 में उधर से जाते हुए गांधीजी पोर्ट लुई में रुके थे और उस मैदान में उनका भाषण हुआ था और वे हिंदी मिश्रित गुजराती में बोले थे, कहा जाता है कि सविनय अवज्ञा का, सत्याग्रह का विचार उन्हें मॉरीशस के ही एक कार्यकर्ता ने सुझाया था, जो ग्री-ग्री के पास सूरीनाम ग्राम के निवासी थे। जब भारतीय उच्चायोग के सांस्कृतिक केंद्र में हुई लेखक मंच की गोष्ठी के बाद राजेंद्र अरुण और अभिमन्यु के साथ वयोवृद्ध वासुदेव विष्णुदयालजी से मिलने गए और अखबारों फाइलों और पुस्तकों से भरी वह छोटी सी कोठरी देखी, जिसमें सिर्फ उनकी आरामकुरसी के लिए जगह थी और जहाँ से इस साधक ने अनेक वर्षों तक हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण और उपनिवेशवाद का घनघोर विरोध करने का महान् अभियान चलाया था। लेकिन इसका सबसे जीवंत आभास हुआ जब मोताई लांग के हिंदी भवन की अभिनंदन गोष्ठी में बैठा था। आयोजक थे रामलला जी और मुख्य वक्ता थे वयोवृद्ध हिंदी सेवी श्री भगत। भगत जी लंबी बीमारी से उठे थे और अभी भी पूर्णतया स्वस्थ नहीं हुए थे। कुरसी पर मेज के आगे बैठे थे। पीठ मेरी ओर, मुँह श्रोताओं की ओर

और धीरे-धीरे बोल रहे थे पर भाषण मुझे संबोधित था, 'मान्यवर भारती जी, आज जहाँ हिंदी भवन की यह सुंदर इमारत है, जहाँ हम आपका स्वागत करके हर्ष से फूले नहीं समा रहे हैं, वहाँ कभी गन्ने के खेत थे। इन्हीं खेतों के बीच पत्थर की एक ढेरी थी, जो खेत जोतते समय निकले थे। शाम को दिन भर खेतों में काम करने के बाद जब अँधेरा हो जाता था, फ्रांसीसी साहब अपनी कोठियों में लौट जाते थे। पहरेदार चले जाते थे, तब झोंपड़ियों में से कुली छोटी-छोटी लालटेन लेकर इन्हीं गन्ने के खेतों में छिपते-छिपते इस पत्थर की ढेरी पर आकर 'बैठक' करते थे। उसी बैठक में उन्हें स्लेट पर 'अ आ इ ई' लिखना सिखाया जाता था, लालटेन धीमी हो रही थी कि पहरेदार देख न ले; वहीं जिसे रामायण, गीता, महाभारत की कथा जितनी जैसी याद होती थी, सुनाते थे ताकि वे नष्ट न हो जाएँ। कभी-कभी 'लश्कर' को पता लग जाता था और वे बंदूक लेकर आते थे और तब वे हिंदी सीखनेवाले लालटेन और स्लेट छोड़-छाड़कर खेतों में छिप-छिपकर भागते थे। अँधेरे में भागते हुए गन्ने की पत्तियों से उनके हाथ-पाँव-मुँह लहलुहान हो जाते थे, पर दूसरे दिन फिर मरहम-पट्टी करके रात को वे इसी पत्थर के ढेर पर इकट्ठे हो जाते थे। श्रीमान भारती जी, आज उसी स्थान पर हमने मोताई लांग का यह हिंदी भवन बनाया है। छोटे-छोटे गाँवों में हिंदी की पाठशालाएँ हैं, जहाँ विद्यार्थी भारत से हजारों मील दूर यहाँ आपकी, दिनकर जी की, पंत और महादेवी जी की कविताएँ पढ़ते हैं, हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं में बैठते हैं। हम आपसे कुछ नहीं चाहते, केवल यही चाहते हैं कि भारत लौटकर हमें भूलिएगा मत।'।

ईश्वर जानता है कि उस समय मेरा गला रूँध आया था और आँख में छलछलाएँ आँसू बहाने से पोंछते हुए मैंने दीवार से टिके बोर्ड पर देखा था, तो पाया कि हिंदी प्रचारिणी सभा की नींव पड़ी थी सन् 1925 में। जब भारती का जन्म हुआ था उसके एक

वर्ष पहले! भगत जी की वह काँपती-बूढ़ी आवाज मुझे अब भी झकझोरती रहती है।

मॉरीशस की बात क्षणभर के लिए स्थगित कर अगर अपनी एक बात यहाँ कहूँ तो आप अन्यथा तो न लेंगे? मॉरीशस में भी मैंने कहा था और यहाँ फिर यह दोहराना चाहूँगा कि मॉरीशस जाकर इस इतिहास से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर मैंने वह पाया है, जो यहाँ भारत के सरकारी-गैर सरकारी भ्रष्टाचार भरे, असांस्कृतिक वातावरण में धीरे-धीरे लगता था, मैं खोता जा रहा हूँ। यानी यह अहसास कि भाषा की लड़ाई सिर्फ एक राजनीतिक हथकंडा, एक अध्यापकीय प्रस्ताव, एक प्रशासकीय योजना मात्र नहीं होती। भाषा की लड़ाई किसी भी राष्ट्र, किसी भी जाति, किसी भी संस्कृति की इयत्ता की लड़ाई होती है। अगर अपनी एक भाषा नहीं है या है तो उस भाषा को अगर हम उपनिवेशवादी मालिकों की भाषा के समक्ष हीन और दास बनाकर छोड़ देते हैं, तो चाहे हम कुबेर का खजाना हासिल कर लें, मगर हम गुलाम जानवरों से बेहतर नहीं हो पाते। इस भारत देश में जहाँ क्लर्क की नौकरी पाने के लिए कोई तबका अंग्रेजी की गुलामी में लज्जा नहीं महसूस करता, मगर राष्ट्रभाषा हिंदी का विरोध करता है, जहाँ ऑक्सफोर्ड, कैंब्रिज या देशी कॉन्वेंटों में तोते की तरह अंग्रेजी रटकर आनेवाले लेखक, पत्रकार, अफसर और व्यापारी अंग्रेजी के पाँव की धूल माथे पर लगाकर हिंदी की अवहेलना बेशर्मा से करते नजर आते हैं। वहाँ इतनी उम्र बिताने के बाद कभी-कभी इस बात पर शर्म महसूस होती थी कि मैं उसी विशाल हिंदी भाषी समुदाय का एक सदस्य हूँ, जो चुपचाप इतने वर्षों से यह अन्याय सह रहा है।

निहत्थी हिंदी

लेकिन मेरी अपनी मातृभाषा? मेरी अपनी हिंदी? क्या उसमें इस युद्ध की, इस क्रांति की क्षमता है ही नहीं? कहीं कोई विश्वास जैसे खो सा रहा था।

मॉरीशस जाकर हिंदी की लड़ाई के इस मर्मस्पर्शी इतिहास के जीवित संपर्क में आकर जैसे मुझे फिर एक विश्वास मिला। मेरी भाषा ने भी यह लड़ाई लड़ी है, भारत से हजारों मील दूर, अनजाने समुद्रों के पार, अजनबी आकाश के नीचे, गोरों के कोड़ों की मार के बावजूद, फ्रांस की तमाम चिकनी-चुपड़ी दोमुँही संस्कृति और जहाँ सूर्य नहीं अस्त होता, उस विशाल ब्रिटिश सम्राज्य की अतुल शक्ति के आतंक के बावजूद गन्ने के इन खेतों में पत्थरों की ढेरी पर निहत्थी हिंदी ने आजादी की यह लड़ाई लड़ी और जीती है! भारत में भी अंग्रेजी का तौक उतार फेंकने की यह लड़ाई शायद कभी लड़ी जाए? यह विश्वास जैसे लौटता है, मेरे मन में! जब आदमी विश्वास खोता है, तब भी आँखें गीली हो आती हैं। और खोया हुआ विश्वास पाता है, तब भी! इसीलिए और शायद उस दिन हिंदी भवन में आँखें भर आई थीं।

सांस्कृतिक अस्मिता का संघर्ष

खैर, आइए मॉरीशस की बात पर लौटें। गुलामी के इस भयानक शिकंजे में उनकी सांस्कृतिक सत्ता जीवित रहे, इसके लिए कैसे विचित्र प्रयास उन्होंने किए थे। भारतीय संस्कृति अपने उन मिथकों के सहारे जीवित रही है, जो हर युग में नया अर्थ पाते रहे हैं, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन अभागों से उनकी गंगा छीन ली गई थी। लेकिन उस अंधकार में भी उन्होंने अपने लिए एक गंगा आविष्कृत कर ली, किसी भारतीय कुली को स्वप्न आया और वह सुदूर दक्षिण से पागलों की तरह चल पड़ा कि उत्तर के पहाड़ों में गंगा अवतरित हुई है। यह श्रद्धा है, जो जल को गंगाजल बना देती है और वह गंगा आखिर मॉरीशस में गंगा तालाब के रूप में प्रतिष्ठित हुई। हिंदी भवन के पीछे ही खिड़की के पार आज भी गन्ने के खेत हैं और उन खेतों के पार लंबी पर्वतमाला में एक अँगूठा पहाड़ है, पहाड़ के शिखर पर अँगूठे की तरह एक खड़ी

चट्टान। और वहाँ कोई बताता है कि विष्णुदयालजी ने घोषित किया कि वह कैलास शिवलिंग है और उसकी छाया में पहली बार गोरों के आतंक की अवहेलना कर विराट यज्ञ हुआ था, आज से 40-50 वर्ष पहले। और फिर संस्कृति किस तरह जीवित हुई, और है, इसका प्रमाण मिला था उस दिन त्रियोले की विशाल सभा में जहाँ वेशभूषा में, भाषा में, खानपान में, अतिथि सम्मान में संस्कृति सजीव थी।

लेकिन उपनिवेशवाद उस दैत्य की तरह है, जिसका सर कटता है तब भी वह मरता नहीं। उसका दूसरा सर उगने लगता है। द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया और अफ्रीका में अनेक देशों से उपनिवेशवाद को बोरिया-बिस्तर समेटना पड़ा (और यह श्रेय गांधी और सुभाष को जाता है कि सबसे पहले भारत से उपनिवेशवाद को भागना पड़ा और शेष सभी एफ्रोएशियायी देशों की आजादी उसी के कारण और उसी के बाद आई), लेकिन राजनीतिक स्तर पर उपनिवेशवाद हार गया, तो उसने सांस्कृतिक स्तर पर अपना जाल फैलाना शुरू किया। पहले देश की भाषा और संस्कृति से उस देश को विमुख कर अपनी भाषा और संस्कृति का जाल फैलाओ, फिर जब वहाँ के राजनेता, अर्थशास्त्री, प्रशासक और बुद्धिजीवी अपनी जनता से कट जाएँ, तब उन्हें अपनी ओर उन्मुख कर उनके माध्यम से नए ढंग से उनका आर्थिक शोषण शुरू करो। भारत में इसका परिणाम हम देख चुके हैं। मॉरीशस और अंग्रेज उपनिवेशवाद का यह सांस्कृतिक जाल बड़ी चुस्ती और बड़ी बारीकी से फेंका जाता रहा, वहाँ आजादी जनमत संग्रह के आधार पर आई और 60 प्रतिशत (जिनमें अधिकांश भारतीय थे) आजादी के पक्ष में थे, लेकिन 40 प्रतिशत उपनिवेशवादियों का साथ देनेवाले समूह थे, जो आजादी पाने के खिलाफ थे।

मॉरीशस बहुजातीय, बहुभाषीय द्वीप है और उसकी राष्ट्रीयता तब बन सकती है, जब 60 प्रतिशत लोग अपनी भाषा और संस्कृति छोड़कर 40 प्रतिशत

की संस्कृति अपना लें, यानी जिन्होंने खून, पसीने, कोड़े और आत्महत्याओं में से गुजर कर इस वीरान द्वीप को स्वर्ग बनाया और फिर आजादी के लिए लड़े, वे अब अपनी भाषा, संस्कृति, इयत्ता और राजनीतिक सत्ता पर गर्वित हैं।

त्रियोले की सभा में योजना विकास मंत्री, जिनकी सारी शिक्षा फ्रांसीसी और अंग्रेजी में ही हुई, प्रेरित होकर हिंदी में ही बोले। उनका भाषण संक्षिप्त था, लेकिन मर्मपूर्ण; उन्होंने कहा, 'मॉरीशस बनने के लिए यह कतई आवश्यक नहीं कि अपनी पहचान, अपनी विशेषता, अपनी सांस्कृतिक विरासत को हम भूल जाएँ, यद्यपि कुछ लोग ऐसा करने के लिए हमें बार-बार प्रलोभन और आकर्षण दिखा रहे हैं। यदि आज इस संक्रमणकाल में हमने अपनी भाषा एवं संस्कृति को अपने हाथों से छूट जाने दिया तो न हम सही अर्थों में मॉरीशस हो पाएँगे और न अपने उन प्रतापी पुरखों के साथ ही न्याय कर सकेंगे, जिन्होंने घोर यातना के बीच रहकर अपनी भाषा एवं संस्कृति को सुरक्षित रखा था।'

'त्रिवेणी के विशाल जवाहरलाल नेहरू भवन की नींव प्रधानमंत्री द्वारा रखी जानी थी और शिलापट्ट के लिए वे लोग कोई वेद मंत्र चाहते थे। मैंने 'या मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते' वाला मंत्र प्रस्तावित किया, क्योंकि पितरों द्वारा उपासित मेधा मॉरीशस के वर्तमान संक्रमणकाल में विशेष स्मरणीय है। वह मंत्र अब शिलांकित है। उसका संकेत वहाँ के संदर्भ में स्पष्ट है।'

दक्षिण मॉरीशस के रोजाबेल उपनगर में महादेव राममनोहर और रामजियावन द्वारा संयोजित युवा छात्र-छात्राओं की वह गोष्ठी मुझे बहुत प्रिय लगी, जिसमें उन्होंने अपने इस संकल्प की घोषणा की कि भाषा, संस्कृति और राष्ट्रियता की यह लड़ाई वे जम कर लड़ेंगे और पूर्वजों के इतिहास को धूमिल नहीं होने देंगे। वह सभा मेरे मॉरीशस प्रवास की अंतिम विदा गोष्ठी थी और अनगिनत उपहारों और फूलमालाओं के साथ जो भाषण युवा क्रीड़ा मंत्री वसंतराय जी ने

दिया था, वह मानो मेरे लिए सबसे संतोषजनक उपहार था। वे बोले—'हमारे युवक अब जाग गए हैं, अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति अपने दायित्व को पहचान गए हैं और मैं उनसे कहूँगा कि जो आपका अधिकार है, यह आपका है, उसे माँगें मत, आप उसे आगे बढ़कर ले लें।' उस समय युवकों के चेहरों की चमक देखने लायक थी।

संघर्ष और संक्रमण के क्षणों में से भारत से विशेष सहयोग की आशा करें यह स्वाभाविक है। भारत राजनीतिक या भौगोलिक स्तर पर विदेश हो, पर सांस्कृतिक और भावनात्मक स्तर पर वह उनका आध्यात्मिक तीर्थ है। हम यहाँ रहकर यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि वे गंगा को, हिमालय को, प्रयाग को, पटना को, दिल्ली को, गांधी जी को, नेहरू जी को किस भावाकुलता से याद करते हैं।

मॉरीशस की प्रमुख शक्ति है वहाँ का युवावर्ग और उसकी नवजाग्रत इतिहास चेतना। यही इतिहास चेतना इस इंद्रधनुष द्वीप की काँपती प्रत्यंचा है। युवावर्ग के सामने भी अनेक समस्याएँ हैं पर यदि उनका संकल्प दृढ़ हो तो इस प्रत्यंचा को तान कर शरसंधान करना उनके लिए कठिन नहीं। उन सबके प्यार का, सत्कार का मैं क्या उत्तर दूँ, सिवा मैथिलीशरण गुप्त की उस प्रख्यात पंक्ति के कि आपके पितरों का इतिहास आपमें जीवित है, प्रत्यंचा अब भी काँप रही है—

'हे पार्थ, प्रण पूरा करो,
 देखो अभी दिन शेष है।'

और मॉरीशस के सभी मित्रों को कैसे बताऊँ, यहाँ हजारों मील दूर अब भी वही बादलवासी शाम है, वही दिन शेष है, मैं आंसलारे की ओर जा रहा हूँ और उनके प्यार का एक सहस्ररंगी इंद्रधनुष मुझ पर मेहराब की तरह छाया हुआ है।

□

संस्मरण : अविस्मरणीय मॉरीशस

—डॉ. पुष्पा भारती

जब बहुत छोटी थी मैं, तब परियों की कहानियाँ सुनने का बेहद शौक था। परी देश की उड़ान और बचपन के वे सुहाने दिन तो जाने कब के, कहाँ पीछे छूट गए। लेकिन मुझे क्या मालूम था कि इतने-इतने बरसों बाद मैं सचमुच के एक परी देश में पहुँच जाऊँगी? सच! मॉरीशस जाकर एक बारगी तो यही लगा कि यहाँ के लोग हमारे-आपके जैसे ही हाड़-मांस के लोग हैं, लेकिन यह इतना सुंदर देश तो जरूर कभी परी देश रहा होगा। और मेरा प्रौढ़ मन बचपन में पढ़ी परी देश की कहानियों के 'लोकल' को मॉरीशस के चप्पे-चप्पे में खोजने लगा और यह लो, मेरी कल्पनाओं को ठोस आधार भी मिलने लगे। वहाँ घूमते-घूमते एक जगह बड़ी अनोखी लग रही थी—बिलकुल वैसी ही, जैसी उन कहानियों में होती थी, कि अभिमन्युजी ने बताया इस तालाब को 'परी तालाब' कहते हैं। प...री...ता...ला...ब! मेरा हलक सूखने लगा। अभिमन्यु जी कह रहे थे—यहाँ परियाँ स्नान किया करती थीं। वह देखिए, ऊपर पहाड़ की चोटी पर किसी का सिर दिख रहा है न! इसे 'मुड़िया पहाड़' कहते हैं। मुड़िया यानी मुंडी यानी सिर! एक राजकुमार था, जो वहाँ पहाड़ पर बैठकर परियों को स्नान करते हुए देखा करता था। एक दिन परियों ने उसकी यह हरकत पकड़ ली और उसे शाप दिया कि

'जहाँ-का-तहाँ पत्थर हो जा!' बस, तभी से वह वहाँ जमकर पत्थर हो गया है। यहाँ नीचे से सिर्फ उसकी मुंडी दिखाई देती है। खैर, यह कहानी बाद में, पहले आपको मॉरीशस का पहला अनुभव सुनाऊँ!

उस दिन आकाश में बादल कुछ अधिक ही थे। हमारा विमान खासी बॉपिंग के बाद मॉरीशस के हवाई अड्डे पर उतरा। वहाँ पहली दृष्टि में जो मॉरीशस के लोग नजर आए, वे लाल, नीले, केसरी, हरे जैसे चटक रंगों के कपड़े पहने थे। बादलों से घिरा मौसम, गोधूलि वेला और रंग-बिरंगे परिधानों की छटा! देखने में सबकुछ बड़ा भला-भला लग रहा था। हम कुछ कदम आगे बढ़े कि बेहद सुंदर कलछहुँए लाल गुलाबों की गझिन मालाएँ, वहाँ के किन्हीं खास किस्म के ऊदे-नीले फूलों के बेहद खूबसूरत हार और ढेर-ढेर सारे लिली के फूलों के गुच्छे लिये हुए कई लोगों ने हमारा स्वागत किया। कुछ परिचित चेहरे थे, जैसे बखोरी दंपत्ति, मोहन महर्षि और अंजना और अभिमन्यु अनंत। बाकी के लोगों की आँखों में भी जो श्रद्धा और स्नेह झलक रहा था, वह साफ बता रहा था कि यह परिचय शीघ्र ही मैत्री में बदल जाएगा। और उन्हीं सबके बीच वहाँ परिचय हुआ, अपने मेजबान माननीय विकास मंत्री श्री खेर जगत सिंह और श्रीमती राधिका जगत सिंह से।

हवाई अड्डे से घर तक आते-जाते पेरिस के एक छोटे-से टुकड़े सरीखे उस द्वीप की खूबसूरती की झलक मिलती चल रही थी—उतार-चढ़ाववाली, घुमावदार पहाड़ों चढ़ती सड़क पर सुहावनी झाड़व। बोबासाँ आ गया। गाड़ी धीमी हुई और श्रीमती जगत सिंह फुरती से गाड़ी का दरवाजा खोलकर फुर-से पीछे के दरवाजे से अपने घर चली गईं। मैंने सोचा, हमसे पहले ही वे जल्दी से घर में शायद इसलिए गई होंगी कि कुत्तों को बँधवा दें। गाड़ी घूमकर सामने के बहुत सुंदर-से काँच की दीवारोंवाले ड्राईंग रूम के बरामदे के सामने आकर खड़ी हुई। हम उतरे और लीजिए, घर की दहलीज पर श्रीमती जगत सिंह सर पर पल्ला डाले, हाथ में आरती का थाल लिये खड़ी थीं। ओह! तो इसलिए ये फुरती से पहले भीतर भागी थीं। उन्होंने हम दोनों के माथे पर रोली से तिलक किया, थाली में कपूर जलाकर आरती उतारी, हम पर गुलाब की पंखुड़ियों की वर्षा की। दही और मीठे से मुँह जुठारा। धूप, दीप, नैवेद्य से अतिथि का स्वागत करने की बात केवल पढ़ी और सुनी ही थी, लेकिन इस भारतीय परंपरा का पालन भारत से हजारों मील दूर आज भी हो रहा है और हम हैं कि यहाँ अंग्रेजी सभ्यता की कार्टूनी नकल करने में ही अपनी शान समझते हैं। कैसे बताऊँ आपको कि मेरा रोम-रोम किस कदर रोमांचित हो उठा था उन क्षणों में! और फिर पता चला कि केवल यही घर नहीं, पूरा-का-पूरा मॉरीशस ही भीतरी मन से कहीं-न-कहीं भारतीय है।

उस दिन हमने जादूभरे रंगोंवाला समुद्र देखा। प्रवाल रेखा की बात भी तब तक सिर्फ पढ़ी थी। उसका सौंदर्य इतना मोहक होता है, यह देखकर ही जाना जा सकता है। और वहाँ का समुद्र! आप अगर मॉरीशस नहीं गए हैं, तो मैं शर्तिया कह सकती हूँ कि सी ग्रीन रंग आपने सिर्फ वॉटर कलर के डिब्बों में ही देखा होगा। विधाता ने बड़ी फुर्सत के रोमांटिक क्षणों में बैठकर ही

शायद वहाँ हरे रंग की लीला करने की ठानी होगी। वहाँ के जंगलों में हरे रंग के जितने शेड्स मिलते हैं, वह अपने में एक अजूबा लगता है। समुद्र के पानी में हरा, फीरोजी, नीला, अंगूरी, सलेटी और दूधिया रंग तो दुनियावी लगता ही नहीं। पानी साफ, इतना कि तल की बालू और चट्टानें एक साथ नजर आएँ! और रंग तो ऐसे अद्भुत कि मन होता काश! इस समुद्र का एक छोटा-सा टुकड़ा मैं अपने बंबई ले जा पाती। हर पल मुझे लगता रहा कि मानो मैं सचमुच का समुद्र नहीं देख रही हूँ, वहाँ परियों की कहानियोंवाला समुंद्र है। ऐसे ही किसी समुद्र में नीलम देश के राजकुमार को परियों ने भीतर कहीं तल में बड़े प्यार से कैद कर रखा होगा। और मैं अपनी उम्र की सीढ़ियाँ खट-खट-खट बहुत पीछे उतर गई और सोचने लगी, अपने बंधन काटकर किसी तरह राजकुमार वहाँ से छूटकर आएगा तो...

खैर, छोड़िए इस समुद्र और जंगल की बात! मैं आपको बता रही थी कि मॉरीशस भीतर मन में कितना भारतीय है। प्रकृति के अनोखे सौंदर्य की छटा दिखाते हुए अब अभिमन्युजी जहाँ ले गए, वहाँ का माहौल देखकर फिर रोमांचित होने की बारी थी। यह था, त्रियोले का शिवमंदिर। अपने बचपन के नगर लखनऊ का सिद्धनाथजी का मंदिर, इलाहाबाद का शिवाला, बनारस के विश्वनाथजी! सब याद आ गए। वैसी ही पवित्रता, वैसी ही शांति! पच्चीस-तीस बरस से ज्यादा ही बीत चुके होंगे इस घटना को और अब फिर उसी ललक से मैंने मॉरीशस की उस धरती पर नंदी के चरण-स्पर्श किए और हुलसित मन से मंदिर के भीतर गई। छोटे से कद के, धोती और फितुई पहने, पगड़ी बाँधे, तिलक लगाए पंडितजी ने शुद्ध संस्कृत में जब श्लोक पाठ किया, तो जैसे मेरी जनम-जनम की आस्था दूनी होकर वहाँ शिवमंदिर में प्रणामबद्ध हो गई।

ज्ञात हुआ कि पूरे मॉरीशस में सैकड़ों मंदिर हैं। कुछ मंदिरों के नाम सुनिए, आपको लगेगा यह विदेश

की बात नहीं हो रही, अपने ही गाँव-जबार की बात हो रही है—उमानाथ, विश्वनाथ, विष्णु क्षेत्र, रामेश्वरनाथ, नीलकंठ शिवालय, कैलासनाथ, गोकुल, केदारनाथ, काशीक्षेत्र, वृंदावन शिवालय, श्री कबीर स्मृति मंदिर, मिथिलानाथ, हिमाचल त्र्यंबकेश्वरनाथ आदि-आदि। कहिए, हैं न बेहद रोमांचक यह जानना कि भारतीय संस्कृति किस तरह सुदूर प्रदेश में फल-फूल रही है? मंदिरों का कार्य बड़े सुनियोजित ढंग से चल रहा है।

मैंने आपको बताया था न कि परियों को स्नान करते हुए देखनेवाले व्यक्ति को परियों ने पत्थर बन जाने का शाप दे दिया था, पर फिर उनका मन खट्टा हो गया और वे उस स्थान को छोड़कर यहाँ ग्राबासाँ के तालाब में नहाने आती थीं। और इसका हिंदी नाम 'परी तालाब' हो गया था। लेकिन फिर इसे गंगा क्यों कहते हैं? कहते हैं, एक रात को यहाँ से बहुत दूर के एक गाँव में एक अपट्ट ग्रामीण को कोई सपना आया और वह उसी समय आधी रात को एक विशिष्ट दिशा की ओर मुँह उठाकर भागता चला गया। कहाँ जा रहा है, उसे स्वयं नहीं मालूम था। ये रास्ते उसने कभी देखे-जाने भी नहीं थे, पर सपने में देखे थे और कोई शक्ति थी, जो उसे इन अपरिचित राहों पर खींचे लिये जा रही थी। वह केवल एक रट लगाए था—“मिल गई! मिल गई!” बेतहाशा भागते-भागते उसके कदम जहाँ रुके, वह यही परी तालाब था। 'पतितपावनी गंगा मइया की जय' कहकर उसने तालाब में एक डुबकी ली और सारी थकान भूलकर तरो-ताजा होकर फिर उसी गति से लौट चला, अपने अन्य सभी बंधुओं को बताने कि गंगा मइया अवतरित हो गई हैं।

धीरे-धीरे सचमुच यह एक तीर्थ बन गया। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब परीक्षण के बाद ज्ञात हुआ कि सचमुच इस तालाब के जल में वे सब वैज्ञानिक विशेषताएँ और गुण हैं, जो गंगाजल में होते हैं। स्वतंत्रता पाने के बाद तो सरकारी तौर पर एक

विशेष दल भारत आया और यहाँ से गंगाजल लेकर गया और विधिवत यज्ञ-अनुष्ठान के बाद वह जल इस तालाब में डाला गया। तभी से हर बरस शिवरात्रि पर यहाँ गंगाजी का मेला जुड़ने लगा। शिवरात्रि यहाँ का राष्ट्रीय पर्व जैसा हो गया है।

धर्म में मॉरीशस ने इतना ऊँचा स्थान कैसे उपलब्ध कर लिया? वहाँ हिंदू धर्म और संस्कृति की रक्षा किन तपस्वी प्रयासों से की गई है, यह अपने आपमें एक रोमांचक सत्यकथा है। लेकिन वह कथा सुनाने के पहले मैं आपको बहुत संक्षेप में मॉरीशस का इतिहास बता दूँ, तो ठीक रहेगा।

आप अगर विश्व के नक्शे पर नजर डालें, तो अफ्रीका के दक्षिण-पूर्वी तट के पास हिंद महासागर में एक छोटी-सी बिंदी जैसा यह द्वीप अंकित मिलेगा। नन्हा-सा द्वीप, फकत 39 मील लंबा और 29 मील चौड़ा। यहाँ के लोगों की संघर्ष गाथा रोमांचक है।

भारत के हजारों-लाखों लोगों को यहाँ के उपनिवेशवादियों के ठेकेदार बहला-फुसलाकर धोखे से पकड़ लाते थे। गुलाम खरीदने की प्रथा तो कानूनन बंद हो चुकी थी, लेकिन इन्होंने एग्रीमेंट (गिरमिट) की प्रथा चालू की। जिन गरीब लोगों से नौकरी का एग्रीमेंट किया जाता, उसकी शर्तें देखने में तो आकर्षक लगती थीं, लेकिन दरअसल हालत उनकी खरीदे गए गुलामों जैसी ही बना दी जाती थी। एग्रीमेंट के नियम थे : (1) पाँच वर्ष तक मॉरीशस में काम करना होगा। (2) आने-जाने का किराया मालिक देंगे। (3) आदमी की तनखाह पाँच रुपए महीना और औरत की चार रुपए महीना। (4) निम्नलिखित राशन मिलेगा—

- (क) एक सेर चावल आदमी को (ख) तीन पाव चावल औरत को (ग) पाव भर दाल (घ) आधी छटांक नमक (च) आधी छटांक तेल (छ) आधी छटांक सरसों।

- (5) साल में एक बार निम्नलिखित चीजें

मिलेंगी—(क) एक धोती, (ख) एक कमीज, (ग) दो कंबल, (घ) एक फितुई, (च) दो टोपी (6) नौकरी स्वीकार करते समय छह महीने की तनखाह पेशगी दे दी जाएगी। बाकी हर महीने मिलती रहेगी।

और बस, 1834 से लेकर 1923 तक तो प्रति वर्ष हजारों स्त्री-पुरुष इस आकर्षक एग्रीमेंट के धोखे में मॉरीशस आने लगे। किसी-किसी बरस तो 25 से 30 हजार तक लोग आए थे। ये लोग अधिकतर कलकत्ता, मद्रास और बंबई से आते थे। सबसे अधिक संख्या में लोग पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से आए थे। 1872 की रॉयल कमीशन की रिपोर्ट में लिखा मिलता है कि हजारों भारतीय यहाँ किसान, मजदूर, क्लर्क, कारीगर, कुली आदि के रूप में बस गए हैं। अपने देश भारत की भाषा बोलते हैं। उनकी यह भाषा क्रियोल और यूरोपीय लोग भी बखूबी समझते हैं। इसलिए यहाँ एक छोटा-मोटा हिंदुस्तान ही नजर आता है।

लेकिन इस छोटे-मोटे हिंदुस्तान के इन कुली बने हुए गुलामों ने किस तरह गोरे उपनिवेशवादी अत्याचारियों के शासन में अपनी वह भारतीयता बचाकर रखा है, जिसके आगे हम नतमस्तक हो जाते हैं।

हम मॉरीशस के सबसे कमजोर और संघर्षरत क्षेत्र के एक गाँव में गए। उस गाँव में शिवजी का एक मंदिर दिखा। हम सबसे पहले उसके पुजारी से मिलने गए। ठिगने कद के पके बालोंवाले, सिर पर पगड़ी बाँधे, सफेद-चिट्ठे कपड़े, महीन कपड़े की धोती, नीची-लंबी कमीज, बास्कट और कंधे पर अंगोछा, ललाट पर त्रिपुंड, पोपला मुँह, छोटी-चुंधी लेकिन तेज आँखें! बोले, “हम आरा जिल्ला के ससरांव गाँव के हैं। हमारे पिता उदित नारायण मिसिर, दादा रहे रमेसर मिसिर।” उनका खुद का नाम पूछने पर बोले, “हम हैं पंडित सरजूप्रसाद मिश्र लछमी प्रसाद।” मैं समझी नहीं कि दो नामों के बीच में यह जाति संबोधन कैसा? तो पता चला कि ये लोग दो नाम रख लेते थे, एक नाम घर का और

एक सरकारी फाइल का, ताकि पुलिस अत्याचार से कुछ बच सकें। उम्र इनकी है 75 वर्ष की। इनके दादा दो भाई थे। दोनों ससरांव गाँव में रामलीला में राम-लक्ष्मण बनते थे। नाटक-नौटंकी का भी शौक था। एक बार गाँव में एक नाटक कंपनी आई। उनका नाच-गाना देखने को बहुत सारे गाँववाले इकट्ठे हुए। ये लोग भी पहुँचे। असल में नाटक कंपनी के बहाने से ये गुलाम बनानेवालों के ठेकेदार थे। इन लोगों ने गाँववालों से कहा, “हम लोग मरीच द्वीप के रहनेवाले हैं। वहाँ छह महीने काम करते हैं और इतना रुपया कमा लेते हैं कि बाकी छह महीने ठाठ से देश-परदेश घूमते हैं, मौज करते हैं।” गाँववाले चमत्कृत! “अच्छा भइया, तुम्हारे पास खा-पहनकर इतना फालतू पैसा बच रहता है कि ऐसे मजे कर सको?” तो उन्होंने बताया, “अरे और क्या! मरीच देश के पत्थर तोड़ो तो गिनी निकलती है। वहाँ सोना भरा पड़ा है। वहाँ जाए भर की बात है। बस, तुम सब भी मालामाल हो सकते हो।” पंडित जी ने बड़े जतन से याद करते हुए बताया, “हुइहैं जौन है तौन 18 सैंकड़ा औ एक कोड़ी का जमाना (यानी 1,820 के लगभग) जब दादा लोगन को उ ठगेरू लोग पकड़ लिहिन और झांसा-पट्टी देइके इहां लै आए।”

उस वक्त शादी-ब्याह किस तरह होते थे, पूछने पर पता चला कि नौ या पाँच बरस की कन्या का माता-पिता ब्याह कर देते थे। जाति-पांति का तो तब कोई सवाल ही नहीं था। बस, अपनी तरफ के लड़के से ब्याह देते थे। वृद्धा बोली, “अरे ब्याह का क्या! एक ही कोठरी में बहू बेटा-बेटी सब साथ रहते थे।” वृद्धा ने बड़ा कड़वा मुँह बनाकर बताया, “बच्चा होता था, तो गोरे मालिक लोग शक्कर और कपड़ा देते थे, क्योंकि उन्हें एक और मुफ्त का मजदूर जो मिल गया होता था।” इतने में गीली आँखों से अपने पुराने दुःख याद करते हुए जोरी दादा फिर बोल पड़े, “बेटा, बहुत दुःख देखा है हमने! गांधीजी के तो हमें होश नहीं,

हाँ मनीलाल, डकदर अयेल रहे तब हमन का सुख मिला।” और सुख की बात आने पर उन्होंने बताया कि सबसे ज्यादा सुख उन्हें तब मिलता था, जब रात के बैठकों में अपने भारत देश का इतिहास सुनते थे, कथा-कहानी बाँचते थे। भगवान् का नाम लेते थे। बस, वही भगवान् का नाम कुछ ताकत दे देता था कि लौटकर घर पर बोरी बिछाकर, पत्थर का तकिया लगाकर, चावल का माँड़ पीकर सो रहते थे। गरमी हो, सर्दी हो या बरसात, वही बोरी पहनना, वही बिछाना और पत्थर का तकिया! जो लोग कोड़े की मार पाते थे। जिन कोड़ों से इन्हें मारा जाता था, उनके सिरों पर सीसा लगा होता था।) पूटों की चोट और भूख सह नहीं पाते थे, वे या तो ‘पनडुब्बा’ बन जाते थे या ‘फँसियारा’ (पनडुब्बा यानी जो पानी में डूबकर आत्महत्या कर ले। फँसियारा यानी जो गले में फाँसी लगाकर लटक जाए)। जोरी दादा उस समय के अनगिनत दुःख बताते-बताते बीच-बीच में यह कहना न भूलते, “अब सब सुख है, सब आराम है। पहले तो गोरा साहब ‘मेसेपेंगे एतुवा’ कहकर बुलाते थे, यानी कुत्ते के समान ‘तुत-तुत’ कहकर बुलाते थे, पर अब हमरे डकदर चाचा (यानी डॉक्टर रामगुलाम) ने सब दुःख दूर दिया है। डकदर चाचा का हुकुम है, कोई किसी को गाली नहीं दे सकता, थप्पड़ नहीं मार सकता। उनका कहना है, कोई भी किसी को साहब न कहे। उनके कानून में हमें बड़ा सुख है।” ओह, अब जाकर बेचारे अपने को भी इंसान समझने लगे हैं। हम दूसरे गाँव में गए। घर की औरतें भी बाहर चौरस्ते तक छोड़ने आईं। बार-बार कहतीं, “गंगाजी के देस से आए हो, हम पर बड़ा उपकार किया है। दरसन देकर, हमन को भूल मत जाना।” इस दूसरे गाँव में घर ज्यादा साफ-सुथरे थे। जमीन पक्की थी। घर में पड़ा फर्नीचर भी अच्छा था। घर की औरतें सामने तो नहीं आ रही थीं, लेकिन घूँघट की ओट करके दरवाजों की संध में से झाँककर देख-सुन जरूर रही थीं। उन्होंने बच्चों के

हाथ पेप्सी कोला भेजा और इशारों से इसरार किया कि हम पी जरूर लें, नहीं तो उनका दिल दुखेगा। यह आत्मीयता अविस्मरणीय है।

इनकी करुण कथा उन्हीं के शब्दों में शुरू-शुरू में जब कुली भरने शुरू किए गए थे, तो उन्हें नंबर दिए जाते थे—1,2,3,4 आदि और सबको एक लाइन में खड़ा करके साहब के मुँह में जो भी नंबर आ जाता, वह बोलते जाते, जैसे 2 नंबर की औरत 9 नंबर के आदमी के साथ, 19 नंबर की 53 के साथ आदि। यानी इस तरह उनके विवाह कर दिए जाते थे। न जाति का प्रश्न था, न उम्र का! 18 वर्ष के जवान के लिए 40 बरस की औरत और 50 वर्ष के बूढ़े के लिए 15 वर्ष की कन्या। इन लोगों के आगे चलकर जब बच्चे हुए और उन्होंने स्वयं अपने बच्चों के विवाह करने शुरू किए, तो आप जानकर सन्न रह जाएंगे कि फेरों के बाद ऐसा हुक्म होता था कि पिता को स्वयं अपनी बेटी ले जाकर साहब को देनी होती थी। दूसरे दिन सुबह वह उसके दामाद को मिलती थी। यह नियम-सा ही बन गया था, जिसे अपनी आत्मा कुचलकर उन्हें सहना पड़ता था।

उन्होंने सबसे रोचक बात बताई, हिंदी पढ़ने की। उस समय कलम, स्याही, पेंसिल, कागज तो कुछ उन्हें मिलता नहीं था। वे लोग लकड़ी या पत्थर के टुकड़े को घिस-घिसकर चिकना कर लेते थे। उसके ऊपर कालिख पोतते थे। फिर किसी पेड़ की पतली टहनी की नोक से अक्षर खोद-खोदकर लिखना सीखते थे। अक्षर-ज्ञान गाना गा-गाकर सिखाया जाता था—

रामा गति देहूं सुमति देहूं

कख गघ अंगा

यह लव सं खा सह छत्रऊ।

पहली पंक्ति बार-बार दोहराए जा रहे थे। मालूम हुआ कि बुढ़ऊ आगे की सब पंक्तियाँ भूल गए हैं। फिर उन्होंने वर्तनी सीखने की बात बताई। मात्राएँ इस तरह सीखते थे—

र पर मस्ते रंग कानून रा
 हरखिन रि दुरगीन री
 तरकुन रु बरजून रु
 एकले रे दोनै रै
 करमत रो दुचकन्ना रौ
 मस्ते रंग पुरवासी रः

यानी र रा रि री रु रू रे रै रो रौ रं रः और बस, इसी तरह पूरी बाराखड़ी सीखते थे। इसके अलावा जिसे जितनी 'रामायण' याद होती, एक पोथी में लिख लेते थे। फिर उस पोथी से सब लोग 'रामायण' पढ़ते थे। (ऐसी ही एक हस्तलिखित 'रामायण' की प्रति तरुण लेखक श्री मुनीश्वरलाल चिंतामणि ने भारतीजी को हिंदी लेखक मंच की गोष्ठी में भेंट की)। उनके पूर्वजों ने ये प्रतिलिपियाँ बनाई थीं। 'रामायण' पढ़-पढ़कर सब सोचते थे कि पितृवचन मानकर जब भगवान् राम ने भी वन-वन भटककर कष्ट सहे थे, तो भइया हम तो आखिर मानुष ही हैं। अभी कष्ट झेल लें, कभी तो वनवास कटेगा ही।

हिंदी प्रचारिणी सभा, मोताई लांग के श्री एस.एम. भगत ने भी एक बात बताई थी कि सारे मॉरीशस में एक ही ब्राह्मण था, जिसे सत्यनारायण भगवान् की कथा याद थी। उसने वह कथा एक पोथी में लिख रखी थी। वह बीमार पड़ा और जब मरने लगा, तो अपनी पत्नी से वचन लेता गया कि वह उसकी प्रतियाँ करा कर घर-घर में बाँटेगी। ब्राह्मणी की कुछ ही वर्ष पहले मृत्यु हुई है। वह जितने वर्ष भी जीवित रही, उसका सिर्फ एक ही काम होता था। वह पूरे मॉरीशस में पहाड़ी, नदी-नाले पार करके पैदल एक-एक गाँव में जाती और हर मोहल्ले में कथा की एक प्रतिलिपि बाँट आती। इस तरह सारे मॉरीशस में सत्यनारायण की कथा का प्रचार हुआ।

अमानवीय अत्याचार सह-सहकर भी ये लोग अपनी भाषा, अपना धर्म और अपने देवी-देवताओं को भूले नहीं। उन्हीं के बल पर सब सहते चले गए और आज देश के भाग्य निर्माण की बागडोर सँभाले हैं। यह

सब अचरज की-सी बात लगती है।

पोर्ट लुई में इमीग्रेशन स्क्वॉयर का चप्पा-चप्पा इन दारुण कहानियों को दोहराता-सा लगा। किसी भी जेल का जैसा नुकीले सींखचोंवाला फाटक होता है, वैसा बड़ा-सा फाटक पार करके हम उस स्थान पर गए, जहाँ इन कुलियों को लेकर आनेवाले जहाज लंगर डाला करते थे। चारों तरफ ऊँची चारदीवारी है। बीच में सिर्फ एक पतला संकरा जीना है। पत्थर की वे सीढ़ियाँ हमने देखीं, जिन पर कदम रखकर एक-एक कर भारतीय कुली आए होंगे, अभिशप्त जीवन की शुरुआत के लिए। वे सीढ़ियाँ पार करके एक हौदा-सा दीख पड़ता है। यह उनका खुला गुसलखाना था। एक साथ बीस-पच्चीस लोगों को निबटना पड़ता था। उसके बाद देखीं वे कोठरियाँ, जहाँ लाकर उन्हें दूँसा जाता था। गाढ़े सलेटी पत्थरों की बनी वे दीवारें आज भी वैसी-की-वैसी हैं। पता नहीं, कितने बेसहारा लोगों ने अपने माथे उन दीवारों पर पटके होंगे? एक छोटे सी कोठरी थी, जो उनकी रसोई थी। श्री हजारे सिंह ने बताया कि उस समय प्रयोग में लाई जानेवाली हॉडियाँ और तसले आदि कुछ बरतन अभी-अभी मिले हैं, जो ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में सुरक्षित कर लिये गए हैं।

हमने अपनी आँखों में छलछलाते हुए आँसुओं को जैसे-तैसे रोककर उस घाट, उन कोठरियों, उन पत्थर की सीढ़ियों और दीवारों को प्रणाम किया। वे साक्षी हैं इस बात की कि कैसी दारुण यातना सहकर भी इन्होंने अपनी संस्कृति को बचाए रखा और अंत में स्वतंत्रता जीतकर ही चैन की साँस ली। अपनी भाषा और संस्कृति का एकमात्र संबल लेकर कोई जाति कैसे अपराजेय रह सकती है, मॉरीशस इसका ज्वलंत उदाहरण है।

□

शाकुंतल, साहित्य सहवास,
 बांद्रा (पूर्व),
 मुंबई-400 052

भूगोल में दूर सही, लेकिन दिल के करीब हैं भारतवंशी

— श्री चंद्रभूषण

इक्कीसवीं सदी की सबसे अच्छी बातों में एक यह है कि इसने बाहर रह रहे भारतीयों को एक चेहरा दिया है। लेकिन जो मुश्किलें अभी इस चेहरे के साथ जुड़ी हैं, उन पर बात होनी चाहिए। भारत से बाहर करीब 3 करोड़ 10 लाख हिंदुस्तानी रहते हैं। अपने मूल देश के साथ इन सबका जुड़ाव एक-सा नहीं है। कोई यहीं जनमा है तो किसी के सात-आठ पीढ़ी पुराने पूर्वज यहाँ से गए थे। यह जरूर है कि ये सारे लोग किसी-न-किसी रूप में भारत से अपना रिश्ता महसूस करते हैं और इसके साथ अपनी पहचान जोड़ते हैं। प्रवासियों की संख्या के मामले में भारत का मुकाबला सिर्फ चीन कर सकता है, जहाँ से निकले 5 करोड़ लोग पूरी दुनिया में फैले हुए हैं।

भारतीय और चीनी प्रवासियों के बीच तुलना करें तो चीनी अगर ताइवान या सिंगापुर से जाकर भी पेरू या ब्राजील में रह रहे हों तो वे खुद को चीनी मूल का ही बताते हैं और वहाँ के लोग भी उन्हें चीनी मानते हैं। लेकिन आजादी के पहले से पूर्वी अफ्रीकी देशों, केन्या या तंजानिया में बसे भारतीयों में हिंदुओं की पहचान भारतीय और मुसलमानों की पाकिस्तानी बताई जाती है, भले ही उनकी जड़ें छत्तीसगढ़ या कर्नाटक से क्यों न जुड़ी हों।

एक समस्या भारतीयता की अंतर्वस्तु से भी जुड़ी है। भूगोल के अलावा इसका मतलब क्या है? चीनियों

के लिए इसके कुछ ठोस अर्थ हैं। सबसे बढ़कर चीनी भाषा। वे चाहे चीन में पैदा होकर बाहर गए हों या दस पीढ़ियों पहले चीन से अलग हुए हों, चीनी भाषा की कामचलाऊ जानकारी उनके पास होती ही है। किसी भी चीनी से मिलने पर वे उसके साथ इसी भाषा में बात करते हैं। इसका कारण यह है कि चीन में एक भाषा की नीति दो हजार साल से जारी है। इसका अर्थ यह नहीं कि चीन में दूसरी पहचानों का अभाव है। बोलियों और जातीयता के आधार पर उनमें जबर्दस्त गुटबाजी देखी जाती है। हान, तिब्बतन और उइगुर जैसी जातीय पहचानों के अलावा हक्का, कैटनीज और मँडारिन के झगड़े भी देखे जाते हैं, लेकिन भाषा की एकता उन्हें हर जगह चीनी बनाए रखती है।

भारतीय प्रवासियों के साथ न तो ऐसा कुछ है, न होने की दूर-दूर तक कोई संभावना है। अमेरिका में भी हर इलाके में आपको तेलुगु और गुजराती ही नहीं, भोजपुरी, कुमाऊँनी और मारवाड़ी संगठन फलते-फूलते और एक-दूसरे की जड़ें खोदते दिख जाते हैं। भारतीयों और चीनियों के प्रवासी होने की प्रक्रिया भी अलग-अलग रही है। कई इलाकों पर विदेशी कब्जे के बावजूद केंद्रीय सत्ता के स्तर पर चीन को कभी गुलामी नहीं झेलनी पड़ी, जबकि भारत में केंद्रीय सत्ता जैसा कभी कुछ बना ही नहीं, और जो बना भी, वह छीजते-कटते हुए सन् 1857 में अंग्रेजी राज के हवाले

हो गया। इस तरह भारतीय और चीनी प्रवास में सबसे बड़ा फर्क मर्जी और बिना मर्जी का है।

ब्रिटिश साम्राज्य में दास प्रथा का खात्मा सन् 1838 में हुआ। तब से लेकर सन् 1917 तक अंग्रेज न सिर्फ खुद नाम मात्र का एक बॉन्ड भराकर भारतीयों को दूर-दूर की जगहों पर दासों की तरह खटाने ले गए, बल्कि अन्य यूरोपीय देशों को भी ऐसा करने दिया। पूरा कैरीबियन इलाका, मॉरीशस और फिजी इसी प्रक्रिया में आधुनिक सभ्यता का अंग बने। भारतीयों के विदेशों में बसने की तीन बड़ी लहरें मानी जाती हैं। सन् 1870 से सन् 1910 के बीच, फिर द्वितीय विश्वयुद्ध के तुरंत बाद, और अभी भूमंडलीकरण के प्रभाव में। इस क्रम में प्रवासी भारतीयों के बीच एक नई तरह की जातिप्रथा भी उभरी है।

अमेरिका, ब्रिटेन और कनाडा के अमीर भारतीय व्यापारी और प्रोफेशनल अंग्रेजी और थोड़ी-बहुत पंजाबी-गुजराती बोलते हैं। वेस्ट इंडीज, मॉरीशस और फिजी के ऐली-गैली बोलनेवालों का उनके लिए कोई वजूद ही नहीं है। जिंदगी से जुड़ी मजबूरियाँ इन भारतवंशियों को सौ साल से सँजोकर रखी हुई अपनी संस्कृति छोड़ने को बाध्य कर रही हैं। उनके गीत भोजपुरी के बजाए अंग्रेजी में आने लगे हैं और सिर्फ एक पीढ़ी के अंदर हारमोनियम, ढोलक, धन्ताल छोड़कर ये डिस्को से होते हुए नीरस पश्चिमी बाजों में ढलने लगे हैं। इक्कीसवीं सदी ने भारतीय डायस्पोरा को एक चेहरा जरूर दिया है।

फुलौरी के जरिये चटनी की याद

कंचन का गाया और बाबला के संगीत में ढला गाना 'फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी, हमें 1980 के आस-पास सुनने को मिला था। वे भारत में कैसेट क्रांति के शुरुआती दिन थे और सुननेवाले जानते हैं कि इस एलबम ने उन दिनों देश के गली-मोहल्लों में कैसी क्रांति को अंजाम दिया था। बाबला गुजराती पृष्ठभूमि की प्रसिद्ध संगीतकार जोड़ी कल्याणजी-आनंदजी के छोटे भाई थे। जाहिर है, दोनों की संगीत शैली में ज्यादा फर्क नहीं था, लेकिन बाबला ने अपने चटनी संगीत के लिए सुदूर कैरीबियन इलाके में हाथ मारकर अचानक सारा ही खेल ही बदल दिया था।

'फुलौरी बिना चटनी' के बोल बहुत कम श्रोताओं की समझ में आए थे। लिहाजा, इस गीत की कुछ लाइनें यहाँ देना जरूरी है, ताकि गाने में जाहिर होनेवाले समाज का जायजा लिया जा सके। गीत का पहला ही अंतरा है, 'आय वेंट सांग्रे ग्रांदे टु मीट लाल बिहारी/आय पुल आउट माय चौधारी ऐंड टेक आउट तेधारी' 'मी ऐंड माय डार्लिंग वाज फ्लाइंग इन अ प्लेन/द प्लेन कैच अ फायर ऐंड वी फॉल इनसाइड द केन।' गीत के कई शब्दों का मतलब समझ में नहीं आता। 'माय' का उच्चारण अमेरिकी अश्वेत आबादी की तरह 'मेह' है, लेकिन असल चीज है गाने का माहौल।

छुप-छुपकर मिल रहे प्रेमी-प्रेमिका का अचानक हवाई जहाज पर पहुँच जाना, जहाज का आग पकड़ लेना और जलते जहाज से हमारे इस प्रिय जोड़े का

हमारी समस्या यही है कि अंग्रेजीदां प्रवासी भारतीयों को हम चापलूसी की हद तक अपने दिल के करीब मान लेते हैं, उनकी कही हर बात को समझने के लिए दोहराए जाते हैं और उसे वेदवाक्य की तरह छापते हैं, लेकिन मामला जब हाल तक भोजपुरी और दीगर देसी जुबानें बोलनेवाले भारतवंशियों का आता है तो भरपूर संवेदना के साथ उनकी जटिल सभ्यता की बारीकियों में गए बगैर उन्हें अपने ही विस्तार की तरह देखना चाहते हैं।



सीधे गन्ने के खेत में जा पड़ना! यह अंग्रेजी में गाई जा रही भोजपुरी है, जिसे अटलांटिक के पश्चिमी छोर पर वेस्ट इंडीज कहलाने वाले इलाके के सारे देशों त्रिनिदाद-टोबेगो, सूरीनाम, जमैका और गुयाना में करीबियन हिंदुस्तानी या 'ऐली-गैली' के नाम से भी जानते हैं। और इस गीत के मूल गायक तथा रचनाकार हैं 'त्रिनिदाद एंड टोबेगो' के सुंदर पोपो बहोरा, जिन्हें न सिर्फ भारत बल्कि पूरी दुनिया में चटनी संगीत का भीष्म पितामह माना जाता है।

कहना न होगा कि अपने इस गाने के जरिये उन्होंने दुनिया भर के भारतवंशियों को एक सूत्र में बाँध दिया था। आज भी न सिर्फ पश्चिमी अटलांटिक तट के कैरीबियन देशों में, बल्कि दक्षिणी हिंद महासागर के मॉरीशस और रियूनियन में और पूर्वी प्रशांत महासागर के फिजी में हो रही किसी भी हिंदुस्तानी शादी में बजनेवाले गाने चटनी संगीत के ही दायरे में आते हैं और उन पर सुंदर पोपो बहोरा (4 नवंबर, 1943—2 मई, 2000) का कुछ-न-कुछ प्रभाव जरूर देखा जाता है।

कैरीबियन संगीत का ही एक और माहौल हमें त्रिनिदाद एंड टोबेगो से भी जरा पश्चिम के देश सूरीनाम में देखने को मिलता है, जहाँ अंग्रेजी नहीं बोली जाती। कुछ समय पहले तक यह मुल्क हॉलैंड यानी नीदरलैंड्स का उपनिवेश हुआ करता था और आज भी इसकी सरकारी जुबान डच है। इसका फायदा यह हुआ कि यहाँ का समाज अमेरिका के सांस्कृतिक सम्मोहन से बच गया और इसके गीतों में भोजपुरी अपेक्षाकृत ज्यादा समय तक जिंदा रह गई।

यहाँ सुंदर पोपो बहोरा के समानांतर सूरीनामी गायक रामदेव चैतू (6 दिसंबर, 1942—6 जून, 1994) का जादू देखिए। यह गीत भी शायद आपने बहुत पहले कंचन की आवाज और बावला के संगीत में सुन रखा हो, पर उसे भूल जाइए। मूल सुनिए और अंतर्वस्तु पर सोचिए—

राते सपना दिखाय पिया हमको/रात सपना
ना मोरे अंगने में निबिया के पेड़वा
जेकरी छड़यां बिठाय पिया हमको/ रात सपना
ना मोरे नइहर में भइया-भतीजा
जेकरी आसा धराय पिया हमको/ रात सपना
ना मोरे ससुरे में लहुरा देवरवा
जेकर बहियाँ पकड़ाय पिया हमको/ रात सपना

हारमोनियम, ढोलक और बैजो पर गाए इस गाने में जो कसक है, सो तो है ही। मैं इसे सुन-सुनकर गुनता रहा हूँ कि यह गीत किस मनःस्थिति को व्यक्त करता है? कैसे चरित्र को इसमें उकेरा गया है? इसका कुछ अंदाजा मुझे सूरीनाम के पड़ोसी मुल्क ब्रिटिश गुयाना में पैदा होकर 6 साल की उम्र में अमेरिका के न्यूजर्सी में जा बसी 43 वर्षीय नामी पत्रकार गायुत्रा बहादुर की अभी दो साल पहले 2016 में आई बहुचर्चित किताब 'कुली वुमन : द ओडिसी ऑफ इंडेंचर' पढ़कर लगा, जो दरअसल अद्भुत पत्रकारीय कौशल और संवेदना के साथ लिखी हुई उनकी परनानी की जीवनी है।

जैसे हमारे वे कभी थे ही नहीं

पता चला, 1903 में कलकत्ता से छूटे क्लाइड जहाज से जुड़े रिकॉर्ड में गायुत्रा की परनानी की पहचान इस रूप में दर्ज थी। नाम—सुजरिया, ऊँची जात, बाएँ पैर पर दागे हुए का निशान, चार महीने की गर्भवती, साथ में कोई मर्द नहीं। बाद में इतना और पता चला कि वे बिहार की रहनेवाली थीं और जाति से ब्राह्मण थीं। बतौर भारतवासी, हम आसानी से यह जान सकते हैं कि यह पहचान कितने विरोधाभासों से भरी है। गायुत्रा लाख कोशिशों के बाद भी यह नहीं पता कर सकीं कि उनकी परनानी विवाहित थीं या अविवाहित। या फिर उनका संबंध कहीं वेश्यावृत्ति से तो नहीं था।

चार महीने की गर्भवती स्त्री के लिए पानी के जहाज से परदेस जाना भी खुद में बहुत कड़े कलेजे का काम था। जरा सोचिए, पेट से चल रही अकेली

सुजरिया के तन-मन पर वह कैसा दारुण बोझ रहा होगा, जिससे मुक्ति की चाहत ने उस जमाने की सी-सिकनेस को भी पछाड़ दिया, जिसके प्रभाव में एक-से-एक हेकड़ जवां मर्द भी उल्टियाँ करते-करते अधमरे हो जाया करते थे! बहरहाल, तीन महीने का सफर करके सुजरिया गुयाना की राजधानी जॉर्जटाउन पहुँचीं, जहाँ पहुँचते ही उन्हें सतमासा बच्चा हुआ।

उनके शरीर का हाल देखते हुए उन्हें किसी अंग्रेज ओवरसियर का बच्चा देखने का काम मिला, जो उन्होंने कुछ समय तक किया, लेकिन फिर न सिर्फ वहाँ से बल्कि जॉर्जटाउन से ही भाग छूटीं। कुछ दिन भटकने के बाद वे शहर से दूर किसी गाँव में दूध बेचने का काम करनेवाले एक आदमी के साथ रहने लगीं, जहाँ से उस वंश की शुरुआत हुई, जिससे गायुत्रा बहादुर का संबंध है। यह चीज किसी और समाज में उन्हें तलछट बना देने के लिए काफी थी, लेकिन गायुत्रा बहादुर की माँ और मौसियों का कहना है कि उनकी नानी सुजरिया की हैसियत अपने जमाने में फिल्मी सितारों जैसी हुआ करती थी।

गायुत्रा बहादुर अपनी परनानी की कहानी में बताती हैं कि सुदूर इलाकों में जानेवाले इंडेंचर जहाजों में स्त्रियों को ले जाने पर खासा जोर रहता था और इसके लिए कोई शर्त नहीं रखी जाती थी। इसका दूसरा पहलू यह है कि जहाजों पर जानेवाली स्त्रियों में दो-तिहाई ऐसी हुआ करती थीं, जिनके साथ कोई पुरुष नहीं होता था। ले जाए गए लोगों की यात्रा के दौरान मृत्यु का रिकॉर्ड सन् 1854 से 1864 के बीच 8.54 प्रतिशत दर्ज है। यानी 10 हजार में 854 रास्ते में ही साफ हो जाते थे। स्त्रियाँ जितनी स्वाभाविक मृत्यु से मरती थीं, उसके आस-पास ही मामले उनकी हत्या कर दिए जाने के भी हुआ करते थे।

इंडेंचर प्रथा या गिरमिटिया व्यवस्था ब्रिटिश शासन में गुलामी को प्रतिबंधित कर दिए जाने के 80 साल बाद तक नए इलाकों में खेती करनेवाले बागान मालिकों और बड़े ब्रिटिश खेतिहरों को सस्ता श्रम मुहैया कराने का

सफल तरीका बनी रही। इसके तहत 10 लाख से ज्यादा मजदूर भारत से वेस्ट इंडीज ले जाए गए। ठोस तौर पर कहें तो जमैका, ब्रिटिश गुयाना, सूरीनाम और त्रिनिदाद एंड टोबेगो। गायुत्रा बहादुर की खासियत यह है कि अपनी किताब में उन्होंने इंडेंचर के गुलामी से समानता और भिन्नता, दोनों दिखानेवाले पहलुओं को पकड़ा है।

इसमें कोई शक नहीं कि जिन भारतीय स्त्रियों को जहाजों पर तीन महीने का सफर करके वेस्ट इंडीज जाना पड़ा, उनके हिस्से जीवन के अथाह कष्ट आए। लेकिन वहाँ पहुँचकर जो जीवन उन्हें जीने को मिला, वह कई मामलों में बेहतर भी था। किताब से हटकर बात करें तो ब्रिटिश गुयाना के पड़ोसी मुल्क त्रिनिदाद एंड टोबेगो के बहुचर्चित गायक और गीतकार सुंदर पोपो बहोरा ने 'नाना और नानी' शीर्षकवाले गीत में एक अजब, अद्भुत माहौल खींचा है। इसका एक अंतरा देखें—

*‘आगा-आगा नाना चले नानी गोइंग बिहाइंड
नाना ड्रिंकिंग व्हाइट रम ऐंड नानी ड्रिंकिंग वाइन
नाना राइडिंग बाइसिकल ऐंड नानी रिंगिंग बेल
नानी लॉक द हैंडल दे फाल इनसाइड अ वेल’*

लाल पसीने की लयकारी

कहना जरूरी है कि गायुत्रा बहादुर जिस ब्रिटिश गुयाना से आई हैं, वह एक अंग्रेजीभाषी देश है और वहाँ से अमेरिका की ओर पलायन अभी समूचे वेस्ट इंडीज में सबसे ज्यादा है। भोजपुरी और हिंदी के विलोप की आशंका भी यहीं सबसे पहले और सबसे अधिक है। बगल में जिस गैर-अंग्रेजी, डच भाषी सूरीनाम की समृद्ध भोजपुरी परंपरा हमें चौथाई सदी पहले दिवंगत रामदेव चैतू में दिखाई देती है, उसका हाल भी कुछ ठीक नहीं है। पिछले चालीस वर्षों में पढ़े-लिखे भोजपुरी भाषियों का सूरीनाम से हॉलैंड की ओर तेजी से पलायन हुआ है और अभी उनकी कोई डेढ़ लाख आबादी हॉलैंड में ही निवास करती है। इससे एक विचित्र किस्म की संस्कृति का सृजन हो रहा है,



जो एकबारगी किसी आम भारतवासी के मन-मस्तिष्क पर मुश्किल से ही चढ़ सकती है।

यह चीज है, यूरोपीय कुलीनता वाली एक बहुत ही नफीस किस्म की भोजपुरी संस्कृति, जिसमें दुःख कुछ ज्यादा ही छायावादी हो जाता है। अगर आप इसका नमूना देखना चाहते हैं तो बाख और बीथोवन की परंपरा वाले डच संगीत में उकेरी हुई राजमोहन की गायी और उन्हीं की लिखी हुई भोजपुरी गजलें सुनिए। इनमें सबसे चर्चित उनकी 'दुई मुट्ठी' शीर्षकवाली गजल है, जिसमें भारतीय प्रवासियों के सूरीनाम पहुँचने के 140 वर्ष पूरे होने पर उनकी अथाह पीड़ा का वर्णन किया गया है। लेकिन गजल सुनने पर इसका मैनरिज्म ही दिमाग पर हावी होता है, इसके शब्द कहीं दूर बिसर जाते हैं और पीड़ा का ज्यादा हिस्सा गायक तक ही सिमट जाता है। तमाम तरक्कियों के बावजूद इस नफीस गजल में मेरे खयाल से वेस्ट इंडियन भारतीय संस्कृति का संकट ही जाहिर होता है।

अफसोस इस बात से होता है कि अभी तो हमने अपने इन बिछड़े हुए परिजनों से मिलना शुरू किया था, और अभी किस्सा खत्म भी होना शुरू हो गया। अब से तीस-चालीस साल पहले वेस्ट इंडीज अथवा कैरीबियन इलाके के भारतवंशियों ने भारतीय संस्कृति के नक्शे पर अपनी कैसी गहरी छाप छोड़ी थी, नब्बे के दशक से ग्लोबलाइजेशन के जोर और भारत पर बढ़े एन.आर.आई. प्रभाव ने उन्हें अचानक हमसे दूर कर दिया। सन् 1980 में आया 'फुलौरी बिना चटनी' दरअसल भारत पर भारतवंशी सांस्कृतिक प्रभाव का एक सुंदर नमूना था, लेकिन यह प्रभाव उस समय साहित्य के दायरे में और भी ज्यादा देखा जा रहा था, जहाँ मॉरीशस के उपन्यासकार अभिमन्यु अनंत के उपन्यास हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं में धारावाहिक छप रहे थे।

यह चीज आम हिंदुस्तानी के दिल के इतने करीब थी कि 'लाल पसीना' कई लोगों को किसी भारतीय कथाकार की ही रचना लगती थी। मैंने इसे

पढ़ना शुरू किया तो बीच-बीच में हैरान हो जाता था। भाषा लगभग वैसी ही थी, जैसी हम लिखते-बोलते हैं, लेकिन माहौल अलग था और संबंधों का स्वरूप समझने में अड़चनें आती थीं।

अपनी जमीन से हजारों मील दूर एक अनजाने इलाके में फँसे कुंदन सिपाही और उसके साथियों की संघर्ष गाथा पढ़ते हुए आप एक गँवई माहौल में पहुँचे हुए हैं, जहाँ तीखी धूप में स्कर्ट पहने गन्ना काट रही माँ अपने बेटे को 'तीन बुतिकिया बाजार' (फ्रेंच में बुतिक यानी दुकान) से लेमनेड की दो बोटलें पकड़ लाने को बोल रही है। यह बात समझने के लिए अपनी नजर हिंद महासागर के पार ले जाने की क्षमता मुझमें होनी चाहिए थी। हमारी समस्या यही है कि अंग्रेजीदां प्रवासी भारतीयों को हम चापलूसी की हद तक अपने दिल के करीब मान लेते हैं, उनकी कही हर बात को समझने के लिए दोहरे हुए जाते हैं और उसे वेदवाक्य की तरह छापते हैं, लेकिन मामला जब हाल तक भोजपुरी और दीगर देसी जुबानें बोलनेवाले भारतवंशियों का आता है तो भरपूर संवेदना के साथ उनकी जटिल सभ्यता की बारीकियों में गए बगैर उन्हें अपने ही विस्तार की तरह देखना चाहते हैं।

उनकी लिपि और व्याकरण की समस्या, उनके दुःख-सुख, उनके संघर्ष को जानने के ईमानदार जतन हमारी तरफ से बिल्कुल नहीं हो पाते। कई दूसरी भाषाओं के शब्दों के घालमेल के बावजूद वे काफी हद तक हमारी ही जुबान बोलते हैं, लेकिन बात जब उनकी जुबान समझने की आती है तो हम शुद्धतावादी हो जाते हैं। याद रहे, संस्कृति का सौदा कभी एकतरफा नहीं होता। अगर हम भारतवंशियों के भाषिक प्रयोगों, उनकी जिंदगी की स्वतंत्र लयकारी को खुले मन से जानने-समझने की कोशिश करें तो इससे न सिर्फ हमारी भाषा-संस्कृति का विस्तार होगा, बल्कि हमारे भीतर कुछ बड़प्पन भी आएगा, जिसकी जरूरत आज बहुत ज्यादा है।

□

वरिष्ठ संपादक, नवभारत टाइम्स,
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002

विश्व हिंदी सम्मेलन : विराट् का दर्शन

—श्री राजेंद्र अरुण

मॉरीशस में विश्व हिंदी सम्मेलन का होना बहुत अर्थपूर्ण है। इससे आप्रवास के देशों को विश्व की तीन बड़ी भाषाओं में से एक हिंदी से जुड़ने का अवसर मिल रहा है। विश्व के कोने-कोने से आए प्रतिनिधियों से मिलने से हिंदी के विराट् स्वरूप का अनुभव होता है। उन्हें पता चलता है कि हम एक बड़े और विस्तृत परिवार से जुड़े हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में भाग लेनेवाले मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने नागपुर में यह प्रस्ताव रखा था कि हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए एक सक्षम संस्था बनाई जाए। उपस्थित सभी प्रतिनिधियों ने तुमुल ध्वनि से प्रस्ताव का स्वागत किया। सन् 1976 में मॉरीशस में आयोजित दूसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में इसका नामकरण किया गया और कहा गया कि यह संस्था विश्व हिंदी सचिवालय के नाम से काम करेगी। भारत के साथ मिलकर सम्मिलित रूप से हिंदी के विश्वरूप को संगठित करना मॉरीशस के लिए गौरव की बात थी। विश्व हिंदी सचिवालय में भारत और मॉरीशस की साझेदारी का एक अधिनियम मॉरीशस की संसद ने पारित किया। सन् 2007 से यह संस्था कार्यरत है और इसकी प्रथम महासचिव मेरी धर्मपत्नी डॉक्टर वीनू अरुण नियुक्त हुई थीं।

भारत और मॉरीशस का संबंध बड़ा आत्मीय और प्रगाढ़ है। भाषा संस्कृति के क्षेत्र में भारत जहाँ भी कोई अगुवाई करता है, मॉरीशस सदैव उसके पीछे खड़ा रहता है। सन् 1975 के जनवरी मास में प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर, भारत में हुआ और उसके तुरंत बाद 28 से 30 अगस्त, 1976 में मॉरीशस ने द्वितीय सम्मेलन आयोजित किया। 28 से 30 अक्टूबर, 1983 में नई दिल्ली, भारत में तीसरा हिंदी सम्मेलन संपन्न हुआ और उसके बाद 2 से 4 दिसंबर, 1993 में मॉरीशस में चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किया गया। एक लंबे अंतराल के बाद पुनः भारत ने 10 से 12 सितंबर, 2015 में भोपाल में दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया और विधि का विधान देखिए कि भारत के बाद पुनः 11वाँ सम्मेलन मॉरीशस कर रहा है।

28 से 30 अगस्त का दूसरा विश्व हिंदी सम्मेलन मेरे लिए एक बहुत अद्भुत और अविस्मरणीय अनुभव रहा। यद्यपि मैं पत्रकार था, लेकिन किसी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने का इससे पूर्व मेरा कोई अनुभव नहीं था। मैं अगस्त 1973 में मॉरीशस आया और 15 अगस्त, 1974 को मॉरीशस के प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम द्वारा संचालित 'जनता' हिंदी साप्ताहिक समाचार-

पत्र का प्रबंध संपादक बना। अभी मैं मॉरीशस के हिंदी जगत को समझ ही रहा था कि इस सम्मेलन की तिथि आ गई। प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम का आदेश था कि 'जनता' साप्ताहिक पत्र इस सम्मेलन में विशेष भूमिका निभाए। अतः मैं एक विशेषांक निकालने के लिए जुट गया।

प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री अभिमन्यु अनंत से मेरी गहरी दोस्ती हो गई थी। भारत से आए नाटक विशेषज्ञ श्री मोहन महर्षि भी मेरी सहायता कर रहे थे। सामाजिक कार्यकर्ता श्री धनदेव बहादुर और पत्रकार विजय मधु मेरी टीम में सक्रिय सहायक बने। इन पंक्तियों को लिखते समय मुझे आनंद के साथ-ही-साथ एक पीड़ा भी हो रही है कि मेरे सहायक दो मित्र अब नहीं रहे। धनदेव

बहादुर का देहांत दिसंबर 2005 को हो गया और श्री अभिमन्यु का देहावसान अभी 4 जून को हुआ। दोनों हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए कार्यरत थे। अनंत ने तो कहानी, नाटक, उपन्यास और कविता के रूप में 80 पुस्तकें हिंदी जगत को प्रदान कीं। मैं दोनों की आत्मा की शांति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ। अभिमन्यु अनंत का स्मरण आते ही अनेक स्मृतियाँ मन के आंगन में तुलसी के बिरबे की तरह उग आती हैं। सन् 1979 में श्री अटल बिहारी वाजपेयीजी मॉरीशस आए थे। तब वे विदेश मंत्री नहीं थे। श्री मोरारजी देसाई की सरकार का पतन हो गया था। राष्ट्रकुल संसदीय समिति की बैठक में भाग लेने के लिए वे जिंबाब्वे जा रहे थे।

वे दोपहर को मेरे घर भोजन के लिए आए तो मैंने उनसे कहा कि आप के सम्मान में एक साहित्य-गोष्ठी हो जाए तो कैसा रहेगा? अटलजी मुस्कराए और उन्होंने कहा, “नेकी और पूछ-पूछ?” गोष्ठी का आयोजन श्री सोमदत्त बखौरी के घर पर हुआ और जमकर कविता पाठ और साहित्यिक चर्चा हुई। जब अटलजी जाने लगे तो उन्होंने अकेले में

मुझसे कहा, “अभिमन्यु अनंत से तुम्हारी नहीं बनती है क्या?” मैं हँस पड़ा। मैंने अभिमन्यु को अपने पास बुलाया और कहा, “देखो, अटलजी क्या कह रहे हैं? हम दोनों गोष्ठियों में एक-दूसरे की टाँग खींचते हैं इसीलिए सबको लगता है कि शायद हमारी दोस्ती पक्की नहीं है।”

अभिमन्यु ने भी अटलजी से कहा कि ऐसी कोई

बात नहीं है। अरुणजी की पत्नी वीनू मुझे राखी बाँधती हैं और हम गहरे मित्र हैं। ऐसे आत्मीय बंधु विदा हो गए। मात्र स्मृतियाँ ही शेष हैं।

विषयांतर के लिए क्षमा चाहता हूँ। बात 'जनता' के विशेषांक की चल रही थी। एक दिन प्रधानमंत्री कार्यालय से फोन आया कि प्रधानमंत्री आपसे मिलना चाहते हैं। दोपहर बाद 2:00 बजे आप आ जाइए। मैं प्रधानमंत्री से मिलने गया। वे ही विश्व हिंदी सम्मेलन के आयोजन की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता कर रहे थे। उन्होंने मुझसे सम्मेलन और 'जनता' साप्ताहिक के बारे में पूछा और मैंने उनको यथोचित जानकारी दी। इस औपचारिक वार्ता के बाद प्रधानमंत्रीजी ने

कहा कि मैंने आपको इसलिए बुलाया है कि मेरे उद्घाटन भाषण को आप ही लिखें। नागपुर में लिखे गए अपने भाषण से मैं संतुष्ट नहीं था। मैं उनकी बात को सुनकर चकित था। मैंने कहा कि मैंने इसके पूर्व ऐसा कोई भाषण कभी लिखा नहीं है तो उन्होंने कहा कि लिखना तो आपको ही है, लेकिन यदि आवश्यक हो तो आप सम्मेलन से संबद्ध मंत्रियों—श्री दयानंद बसंतराय और श्री जगत सिंह और कैबिनेट सचिव श्री दयेंद्र बरन चौबे से विचार-विमर्श कर लीजिए। मुझे विश्वास है कि आप अच्छा लिखेंगे। प्रधानमंत्री का मेरे ऊपर इतना विश्वास मेरे मन को छू गया। मैं भाव-विभोर हो गया। मैंने प्रधानमंत्री के भाषण का प्रारूप तैयार करके दोनों मंत्रियों—श्री बसंतराय और जगत सिंह तथा कैबिनेट सचिव श्री दयेंद्र बरन चौबे को दिखाया। सभी लोगों ने कहा कि भाषण अच्छा है, लेकिन आपसे एक गलती हो रही है। आपने लिखा है कि विष्णुदयाल बंधुओं ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत काम किया है किंतु आप जानते नहीं हैं क्या कि विष्णुदयाल प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम के विरोधी और प्रतिद्वंद्वी हैं? मैंने कहा, मैं जानता हूँ लेकिन साथ ही यह भी जानता हूँ कि मैं मॉरीशस के प्रधानमंत्री का भाषण लिख रहा हूँ, शिवसागर रामगुलाम का नहीं। मैं भविष्य में इतिहास के सामने प्रधानमंत्रीजी को छोटा नहीं कर सकता। मैं यह भाषण उन्हें दिखाऊँगा और यदि वे चाहें तो स्वयं इस अंश को निकाल सकते हैं।

मैं भाषण का प्रारूप लेकर प्रधानमंत्री के पास गया। उनका स्पष्ट आदेश था कि भाषण नागरी लिपि में लिखा जाए। रोमन लिपि में वे इस भाषण को नहीं पढ़ना चाहते थे। भाषण में आए कुछ शब्द जो उनके लिए अपरिचित थे, उन्हें भी उन्होंने निकालने नहीं दिया। उसमें 'दस्तावेज' एक शब्द था, जिसका अर्थ वे नहीं समझ पा रहे थे; लेकिन

जब मैंने उन्हें अर्थ बताया तो उन्हें यह शब्द बहुत अच्छा लगा। भाषण से उन्होंने कुछ भी निकाला नहीं। हिंदी सेवकों के नाम में से विष्णुदयाल बंधुओं का नाम हटाने के लिए भी उन्होंने मुझसे नहीं कहा, बल्कि दो अन्य हिंदी सेवकों के नाम और इसमें जोड़ने के लिए कहा। वे बोले—रामसुमेर लाला और राजकुमार गजाधर के नाम छूट गए हैं। इन दोनों ने हिंदी के लिए बहुत काम किया है।

सम्मेलन की तिथि जितनी समीप आती जा रही थी, मेरा अनुभव-कोश उतना ही बढ़ता जा रहा था। मैं सीखने को आतुर था और परिस्थितियाँ अनुकूल बनकर मुझे आमंत्रित कर रही थीं। प्रधानमंत्री के हिंदी समाचार समाचार-पत्र का प्रबंध संपादक होने के कारण कोई भी समाचार प्राप्त करने में और किसी से कभी भी मिलने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती थी।

आखिर सम्मेलन की तिथि आ ही गई। हिंदी के पक्षधरों का मेला लग गया। डॉक्टर करण सिंह भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेता बनकर आए और उनके साथ उनकी धर्मपत्नी भी थीं।

हिंदी भाषा और साहित्य के दिग्गज महारथी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आए हुए थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, मनोहर श्याम जोशी, कमलेश्वर, महावीर अधिकारी, राजेंद्र अवस्थी, बालकवि बैरागी, बेकल उत्साही जैसे साहित्यकारों से सम्मेलन सुशोभित हो रहा था। इनके बीच चलनेवाले निर्मल व्यंग्य-विनोद से वातावरण उल्लसित बना हुआ था। मैं उनका कनिष्ठ सहयोगी और शीघ्र उपलब्ध होनेवाला व्यक्ति था। कभी कोई जरूरत पड़ने पर वे सदा मुझे ही खोजते थे।

डॉ. भारती मॉरीशस के समुद्र और इंद्रधनुष को देखकर मुग्ध थे। दहाड़ते हुए समुद्र तट 'ग्री-ग्री' पर उन्होंने एक भावपूर्ण कविता भी लिखी जो 'धर्मयुग' में छपी थी। सम्मेलन में आए आचार्य हजारीप्रसाद



द्विवेदीजी हमारे परम वंदनीय साहित्यकार थे। हम सभी लोग उन्हें देखने और उनसे बतियाने के लिए लालायित रहते थे। सम्मेलन में 'रामकथा' के विशेषज्ञ फादर कामिल बुल्के से भी हमारा परिचय हुआ। उनका स्वभाव और शरीर, दोनों ऋषि तुल्य थे। वे हिंदी बहुत शुद्ध बोलते थे।

इसी सम्मेलन में बालकवि बैरागी के भी निकट आने का अवसर प्राप्त हुआ। वे हमारे घर पर आने लगे और मेरी पत्नी का बनाया हुआ खाना अत्यंत स्वाद लेकर खाते थे। उन्हें एयरपोर्ट तक छोड़ने का भी हमें अवसर प्राप्त हुआ था। साथ में मेरी पत्नी वीनू और मेरा बेटा अनुराग भी थे। अनुराग उस समय

बहुत छोटा-सा था और बहुत ही नटखट बच्चा था। उसने अपना जूता निकालकर कार से बाहर फेंक दिया और थोड़े समय बाद अपनी तोतली भाषा में हँसते हुए कहा कि उसने अपना जूता बाहर फेंक दिया है। कार बहुत आगे निकल चुकी थी इसलिए रुकना और जूता खोजना बेकार था। इस समागम में हम महावीर अधिकारी को नहीं भूल सकते। वे औघड़ स्वभाव के थे। डॉक्टर भारती और कमलेश्वर से उनका अवधूती संलाप निरंतर चलता रहता था। एक दिन वे सब हमारे घर आए हुए थे और श्री महावीर अधिकारी ने मुझे कहा कि तुम ब्राह्मण के बच्चे हो। इन दोनों कायस्थों से बचकर रहना। मैंने हँसकर कहा, "हाँ गुरुजी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।" डॉ. भारती और कमलेश्वर दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

इस सम्मेलन में एक अविस्मरणीय कार्यक्रम अचानक ही हो गया। डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा कि चांदनी रात है। समुद्र तट पर रात में एक कवि सम्मेलन किया जाए। सभी अत्यंत हर्षित हुए। वे हमारे घर भोजन के लिए आए हुए थे। हम त्रिओले में रहते थे और वहीं से थोड़ी दूर समुद्र तट पर

जाने का हमने कार्यक्रम बना लिया। आनन-फानन में अभिमन्यु अनंत और वीनू ने व्यवस्था का जिम्मा लिया। चांदनी रात में समुद्र तट पर जमकर कवि सम्मेलन चला। रातभर चाँद अमृतवर्षा करता रहा और हम लोग साहित्य का अमृतपान करते रहे। हम सबके जीवन में यह एक बहुत ही अनमोल अवसर था।

मॉरीशस में सन् 1976 में पहली बार विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन होना उसके अप्रतिम हिंदी प्रेम का प्रतीक है। सन् 1975 में भारत में हुए सम्मेलन के तुरंत बाद मॉरीशस में हिंदी के लिए इतना विराट् आयोजन करना मॉरीशस के आंतरिक हिंदी प्रेम का परिचय देता है। इस सम्मेलन के आयोजन से हिंदी का विराट् स्वरूप पहली बार दृष्टिगत हुआ। विराट् का यह दर्शन हनुमान के स्वरूप की तरह है जिसने उन्हें राम काज करने के लिए समर्थ और सक्षम बनाया। मुझे आशा है कि यह ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भी हिंदी जगत को विराट् स्वरूप का दर्शन कराएगा।

□

अध्यक्ष,
रामायण सेंटर,
मॉरीशस

विश्व हिंदी सम्मेलन की सार्थकता

—डॉ. कुसुम खेमानी

सर्वप्रथम मैंने विश्व हिंदी सम्मेलन के अद्भुत संयोजन का आनंद मॉरीशस में लिया था, और उसके पश्चात् तो ऐसी लौ लगी कि जब कभी संभव हुआ, मैंने इसमें भागीदारी की। मेरा मानना है कि इस प्रकार के कार्यक्रम से न केवल भाषा का प्रचार होता है, बल्कि इस आदान-प्रदान में हम स्वयं को तौलते हैं और अपनी जमीन की मजबूती को भी परखते हैं।

आज विश्व में हिंदी का स्थान सर्वाधिक बोली जानेवाली तीन या चार भाषाओं के अंतर्गत दूसरे नंबर पर आता है, फिर भी हिंदी! अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, पुर्तगाली आदि भाषाओं की तरह इसलिए विश्वभाषा नहीं बन सकी, क्योंकि उपरोक्त भाषाओं ने साम्राज्यवाद की नींव पर फैलकर प्रभुत्व और शक्ति प्राप्त की, जबकि हिंदी ने अपनी गुणवत्ता एवं प्रवासी भारतीयों की श्रद्धा और आत्मीयता के कारण ही यह दर्जा हासिल किया है। भारत से बड़ी संख्या में भेजे गए मजदूरों ने हिंदी को अपनी 'माँ' माना और उनके कारण आज भी मॉरीशस की लगभग अस्सी प्रतिशत आबादी हिंदी बोलती, लिखती और समझती है। इतना ही नहीं, मॉरीशस तो स्वयं को 'छोटा भारत' कहने में गर्व का अनुभव करता है।

मैंने प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से लेकर आज तक कई सम्मेलनों में भागीदारी की और मुझे अनुभव हुआ है कि हिंदी को विश्वभाषा बनाने में विश्व हिंदी

सम्मेलनों की सशक्त भूमिका रही है। मसलन, जब भी भारत से विद्वान मॉरीशस, त्रिनिदाद, न्यूयॉर्क आदि सम्मेलनों में भाग लेने गए, तो मैंने वहाँ के हिंदी भाषियों और मेरे परिचित हिंदी भाषियों को अक्सर यह कहते सुना है, “अरे! हमें तो हिंदी के इस पक्ष का अंदाजा ही नहीं था!” इतना ही नहीं, बड़ी संख्या में उपस्थित श्रोताओं ने हिंदी के वर्तमान साहित्य में रुचि ली और वे भारत में प्रकाशित होनेवाली अनेक पत्रिकाओं के सदस्य भी बने। इन सम्मेलनों के कारण हमारा आपसी सौहार्द बढ़ा और हमने उन देशों के साहित्यकारों को भारत आने का निमंत्रण दिया। विस्मयकारी था यह जानना कि उनमें से जब कुछ साहित्यकार भारत आए और विभिन्न संस्थाओं ने उन्हें अपने प्रांगणों में आमंत्रित कर उनके कार्यक्रम किए तो वहाँ के श्रोताओं ने भी उनका खुले दिल से स्वागत किया और उनके कार्यक्रमों को अत्यधिक सराहा।

मेरी समझ से इस प्रकार के सम्मेलन आपका परिचय न केवल उस देश के साहित्यकारों से करवाते हैं, बल्कि परोक्ष में साहित्य के साथ विभिन्न संस्कृतियों के बारे में भी आपकी जानकारी सघनता से बढ़ाते हैं, क्योंकि संस्कृति एक ऐसी चीज है जो हमारे दैनंदिन के रहन-सहन, तहजीब, परिवेश आदि के ताने-बानों से बुनी हुई होती है और उसे देख-



परखकर जितना जाना जा सकता है उतना शब्दों की परिभाषाओं से नहीं।

अपनी इस बात की पुष्टि के लिए मैं आप से मॉरीशस के विश्व हिंदी सम्मेलन के समय की कुछेक स्मृतियाँ साझा करना चाहूँगी, जो अक्सर मेरे स्मृति-पटल पर कौंधती रहती हैं—

“धरती पर लेटकर मुझे साष्टांग प्रणाम करतीं उन उम्रदराज महिलाओं को मैंने दोनों हाथ हिलाकर विनम्रतापूर्वक बहुत मना किया, पर मेरे बार-बार बरजने को दरकिनार करतीं वे तीनों वृद्ध महिलाएँ देखते-ही-देखते आगे बढ़ीं और उन्होंने मेरे पैर कसकर पकड़ लिए। “अरे, अरे! माताजी, यह क्या कर रही हैं आप?” कहती हुई मैं अपने पैरों को अपनी ओर सिकोड़कर उन्हें उनसे छुड़ाने का प्रयास करने लगी, पर उनकी झुर्रियों से

भरीं मुट्ठियाँ काफी मजबूत थीं। टूटे-फूटे शब्दों और आँसू झरती आँखों से उन्होंने मुझे समझाया, “चूँकि मेरी मातृभूमि भारत है और मैंने बट्टी-केदार की यात्रा भी की है, (जो कि भारत में एक साधारण और बेमानी-सी बात है) उनके इस परम आनंद का कारण है... भौंचक-सी मैं कभी उनकी ओर देखती, तो कभी बाईं ओर खड़ी बिंदु भाभी की ओर। हालत यह थी कि मारे संकोच के मैं जमीन में गड़ी जा रही थी, पर उनके उद्गारों से मेरा हृदय गद्गद हो रहा था और मन हल्का हो आकाश में उड़ रहा था। भारत में जन्म लेने मात्र से मैं ऐसे अनिर्वचनीय आनंद की अनुभूति की हकदार बन सकती हूँ, यह मेरी कल्पना

के परे था। मैंने हल्के हाथों से उन्हें हटाना चाहा, पर वे मेरे पैरों को छोड़ ही नहीं रही थीं, इसलिए मैं धीरे-धीरे पीछे की ओर खिसकने लगी। अंत में यह स्थिति बनी कि ऊबड़-खाबड़ बालू होने के कारण मेरा संतुलन बिगड़ गया और मैं ऊटपटांग ढंग से बालू में उटंगी- सी गिर गई। मेरी टाँगें सामने थीं और दोनों

हिंदी ने अपनी गुणवत्ता एवं प्रवासी भारतीयों की श्रद्धा और आत्मीयता के कारण ही यह दर्जा हासिल किया है। भारत से बड़ी संख्या में भेजे गए मजदूरों ने हिंदी को अपनी ‘माँ’ माना और उनके कारण आज भी मॉरीशस की लगभग अस्सी प्रतिशत आबादी हिंदी बोलती, लिखती और समझती है। संस्कृति एक ऐसी चीज है जो हमारे दैनंदिन के रहन-सहन, तहजीब, परिवेश आदि के ताने-बानों से बुनी हुई होती है और उसे देख-परखकर जितना जाना जा सकता है उतना शब्दों की परिभाषाओं से नहीं।

हाथ पीछे की ओर की जमीन थामे मेरी पीठ को सहारा दे रहे थे। यह दृश्य देखकर वे तीनों भी सकुचाकर घबरा गईं और इस चक्कर में मेरे पैर छूट गए। दूसरे ही क्षण वे मेरे पास आईं और क्षमा-याचना की तरह मिठास से भरे अपने हाथों को मेरे बालों, चेहरे, पीठ, घुटनों आदि पर फेरने लगीं। मैं दंग थी! और सोचे जा रही थी : क्या सच! मेरी मातृभूमि ऐसी

महान् है? ईमानदारी से कहूँ तो जीवन में पहली बार अपने देश के प्रति मेरा हृदय ऐसा आलोड़ित हुआ कि मेरी आँखों की कोरें भीग गईं।

यह घटना है मॉरीशस की, जहाँ भारत के गाँवों की तरह ही सारे परिवेश में प्रेम का समुद्र हिलोरें ले रहा था।

यह घटना यूँ घटी कि अपनी आतिथेय बिंदु भाभी के साथ मॉरीशस के लुभावने समुद्र तट पर टहलते हुए मेरा ध्यान बरबस नारियल के पेड़ों के नीचे ‘छींटों के घाघरे’ और ‘सफेद ओढ़नी से सिर ढके’ बैठी हुई तीन बड़ी उम्र की महिलाओं की ओर गया। उनके झुर्रीदार चेहरे प्रसन्नता की आभा से दमक रहे

थे और वे कथई रंग के शीशे की तश्तरी में सूजी का हलवा परोसकर एक-दूसरे को दे रही थीं। पता नहीं क्यों, आरंभ से ही मेरा विचित्र स्वभाव वृद्धों के प्रति एक विशेष लगाव महसूस करता है, इसलिए हाल ही में बट्टी-केदार की यात्रा से लौटी मैं लगभग दौड़ती-सी उनके करीब जाकर बोली, “क्या आप लोग बट्टीधाम जाना चाहेंगी? आप लोग भारत आ जाइए। आगे का सारा खर्च और इंतजाम मेरा”। उन तीनों के हाथ रुक गए और वे ‘औसान-चूक’ (हक्का-बक्का) सी मुझे ताकने लगीं। बिंदु भाभी ने जब आगे बढ़कर उन्हें भोजपुरी में मेरा आशय समझाया, तो जैसे उनकी आँखें, नाक, चेहरे की नसें और पूरी देह ही तरल होकर आँसुओं की राह बहने लगी और बस वे सब उस बालू में मुझे साष्टांग प्रणाम करती नजर आईं।

दो-चार मिनट की विश्रांति के बाद जब उनसे चर्चा हुई, तो पता चला कि वे बहुत गरीब हैं और रविवार को काम से छुट्टी होने के कारण आपस में बोलने-बतियाने, सूजी का नमकीन हलवा लेकर मन की भाप निकालने यहाँ आई हैं। बट्टी-केदार तो दूर, अब तो उनकी आत्मा भी मरने के बाद ही भारत जा पाएगी। यह तथ्य चौंकाने वाला था, क्योंकि हम सब इस भ्रम में थे कि सवा सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले मॉरीशस आया यहाँ का हर भारतीय अब पूर्णतः खुशहाल है। मन में प्रश्न उठा, जब यहाँ एक भी भिखारी नहीं है; ‘घेठो’ (झुग्गी-झोंपड़ी की बस्ती) में भी सिर्फ नशेड़ी और आलसी अफ्रीकी जूलू ही नजर आते हैं, तो फिर ये महिलाएँ गरीब कैसे हैं? इस बात का उत्तर ढूँढ़ने के लिए मैंने मॉरीशस के इतिहास पर नजर डाली।

मैडागास्कर के पूर्व में और अफ्रीका से 2,000 किलोमीटर दूर दक्षिण-पूर्व में स्थित 1,865 वर्ग किलोमीटर का मॉरीशस अपनी 330 किलोमीटर की लुभावनी तटीय समृद्धि के लिए आज पूरे विश्व के पर्यटकों की आँख का तारा बना हुआ है। कहने को तो हम यहाँ हिंदी सम्मेलन और कबीर परिसंवाद

के लिए आए थे, पर दरअसल हम सब उस विराट् नीरभ्र आकाश से, गहरे नीले समुद्र में टपके उस सितारे ‘मॉरीशस’ के रूप के लालची थे, ‘जिसे चाँद की आँख से झरा और सागर की गोद में पला’, ‘मुक्तामणि’ कहा जाता है। समुद्र के मध्य में जिस ज्वालामुखी ने फटकर मॉरीशस को जन्म दिया था, आज भी वहाँ के लोग उसे बहुत श्रद्धा से देखते हैं। उस 85 किलोमीटर गहरे और कई किलोमीटर चौड़े गड्ढे के अंदर झाँकने से एक ऐसी अलौकिक अनुभूति होती है तो लगता है कि आप पृथ्वी के गर्भमुख पर खड़े हैं, अस्तित्वहीन...तत्त्वहीन...देहहीन...और क्षणमात्र में ही यह अणुओं का राशिपुंज नश्वर शरीर इस तेज हवा में बिखरकर बिला जाएगा।

मॉरीशस की उर्वरित भूमि का दोहन करने के लिए अंग्रेजों ने ‘भारत’ को कड़ी नजर से घूरते हुए अपने ‘दलालों’ को हुक्म दिया था, “जाओ! धोखे से उस देश के हट्टे-कट्टे जवानों को बहकाकर यहाँ ले आओ।” अभी भारत का ‘बिहारी’ सूखे की चपेट से गुजरा ही था कि ‘अंग्रेजों के दलालों’ ने उन्हें रोजगार और समृद्धि के सब्जबाग दिखाए। भारत का भोला-भाला, मेहनतकश किसान उनके चंगुल में फँसता चला गया और इनके निर्देशानुसार तन पर केवल एक कपड़ा और हाथ में ‘मानस’ की गुटका लिए मॉरीशस रवाना हो गया, लेकिन उन्हें खुशी और समृद्धि की जगह मिला क्या? क्या हथ्र हुआ उनका? यही कि गन्ने के खेतों में गहरे गड़े खूँटे में बैँधी सांकलों से इन बेड़ीवाले मजदूरों को कसकर खुले आसमान के तले तपते सूरज, तेज बारिश और ओलों की बौछार में चौबीसों घंटों खटने के लिए बाँध दिया गया। उनकी पत्नियाँ कहीं दूर रख दी गईं ताकि पति की अनुपस्थिति में उन पर अहर्निश बलात्कार होते रहें और बाकी समय में वे भी अपने आस-पास के खेतों में काम करें। खेतों से बीने हुए रूखे-सूखे अनाज का दलिया लेकर वे कभी-कभार ही पतियों के पास खेतों पर जा पार्ती और पति को भी



ईद के चाँद की तरह ही कभी-कभार घर आने की अनुमति मिलती। उस 'जेटी' को आज भी एक स्मारक की तरह 'कुली जेटी' के नाम से सुरक्षित रखा गया है, जिस पर भारत से लाकर लोगों को कोड़ों की बौछारों के बीच उतारा गया था। मॉरीशस के जवान उस जेटी को साष्टांग दंडवत् करते हैं, क्योंकि वहाँ उनके पुरखों का खून बहा था।

यह सही है कि भारतीय किसानों से भरे ये जहाज मॉरीशस से आगे डरबन, केपटाउन, जोहानिसबर्ग, त्रिनिदाद, टोबेगो, सूरीनाम तक और इधर फिजी तक गए थे और इन सभी जगहों में भारतीय मूल के निवासियों ने अपने परिश्रम और सूझ-बूझ से अपनी आर्थिक स्थिति काफी सुधार ली है, पर इनके समाज और संस्कृति की स्थिति उतनी सुडौल नहीं रह पाई है, जितनी मॉरीशस की। वैसे तुलसी का बिरवा, हनुमान मंदिर और ध्वजाएँ तो आपको सभी जगह दिख जाएँगी, पर हिंदी भाषा और संसद में भारतीय मूल का वर्चस्व केवल मॉरीशस में ही दिखेगा। वैसे यहाँ के लोग क्रियोल और फ्रेंच भी बोलते हैं, पर अधिकांश आबादी भोजपुरी मिश्रित हिंदी में ही बातचीत करती है, जबकि डरबन आदि जगहों में केवल नाम और संबोधन ही हिंदी के बचे हैं, बाकी सबकुछ अंग्रेजी में है।

मॉरीशसवासियों के नामों में एक विचित्र-सा परिदृश्य दिखाई पड़ा : मुंशी प्रेमचंद, रवींद्रनाथ टैगोर, सत्येन बोस आदि नाम यहाँ बहुप्रचलित हैं; उपाधियों और जातियों समेत पूरे के पूरे। मसलन्, सत्येन बोस 'होलास', मुंशी प्रेमचंद 'बोरचंद' आदि। इसका कारण यह है कि सात समुद्र पार घर-द्वार से बिछड़े, आखिर ये 'राम भजन', 'सीताराम', 'काशीनाथ' अपने बच्चों को नाम क्या देते? अखबारों में से तैर कर भारतीय मिट्टी से निकले जो भी प्रसिद्ध नाम इनके कानों तक पहुँचे, तो इन्होंने बहुत सम्मान से इन्हें अपने भविष्य को सौंप दिया। आज वे हर बात में 'मॉरीशस' को 'छोटा भारत' कहते सुनाई पड़ते हैं।

मॉरीशस में यहाँ चीनी और मुस्लिम आबादी भी है, पर मुख्यतः यहाँ की आबादी का बड़ा हिस्सा हिंदू धर्मवालों का है। इतिहास गवाह है कि यहाँ कभी भी, किसी भी क्षण धर्म को लेकर कोई हंगामा नहीं हुआ। शिवरात्रि के पर्व पर काँवड़िये कंधों पर काँवड़ रख जब गंगा तालाब जाते हैं, तो उनके क्रिश्चियन और मुसलमान मित्र साथ-साथ चलते दिखते हैं। यहाँ दिवाली, ईद, उगादी, गणेश चतुर्थी आदि के समानांतर ही ईसाइयों का 'फादर लवाल' एवं फरवरी में चीनियों का नववर्ष 'वसंत उत्सव' के नाम से खूब धूमधाम से मनाए जाते हैं। यह देखकर अचरज हुआ कि यहाँ घर के दरवाजों पर ताले नहीं लगाए जाते और पुलिस भी नहीं के बराबर ही है। यह पूछने पर कि यहाँ पुलिस की क्या भूमिका है, पता चला कि "यदि आपने अपनी गाड़ी की चाबी, गाड़ी में ही रहने दी है, तो आपको जेल हो जाएगी।" "कारण?" "यदि कोई बच्चा उत्सुकतावश गाड़ी चला बैठे और मर जाए, तो 'मॉरीशस का राष्ट्रीय नुकसान' होगा। यहाँ आबादी कम है, और हर जान कीमती है।" जबकि पोर्टलुई (मॉरीशस की राजधानी) की बासठ सदस्यों की संसद का हर सदस्य अपनी गाड़ी 'निषिद्ध इलाके' से दूर खड़ी करवाकर साधारण आदमी की तरह पैदल चलकर संसद तक आता है। हम लोगों ने प्रधानमंत्री को फाइलों का पुलिंदा हाथ में लिए संसद में आते देखा है। सरकार की ओर से सबको एक से बढ़कर एक कीमती गाड़ियाँ (फोनों सहित) मुहैया हैं, पर इनके बच्चे बस पकड़कर स्कूल जाते हैं। मैंने स्वयं देखा कि उप-प्रधानमंत्री की पत्नी को घर का सारा काम—खाना बनाना, कपड़े धोना, घर पोंछना आदि खुद करना पड़ता है। मॉरीशस को अपने नागरिक से बस एक ही अपेक्षा है, आप कर्मठ जीवन जीना सीखें। बैठे-ठाले का यहाँ भगवान् भी मालिक नहीं है। यहाँ के 'घेठो' इसका सत्यापन करते हैं।

मॉरीशस के पर्यटन उद्योग, कपड़ा उद्योग, चीनी

उद्योग और अब सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) ने यहाँ रोजगार के असंख्य साधन उपलब्ध करवा दिए हैं और यहाँ का आम आदमी काफी खुशहाल है। यहाँ आज तक डकैती और चोरी की कोई घटना नहीं हुई है, न ही यहाँ कोई भिखारी दिखाई पड़ता है। तो क्या यह स्वर्ग है? नहीं! यहाँ भी उन महिलाओं की तरह ही किस्मत के मारे लोग हैं, जिनके घर-परिवार में कोई नहीं है और सरकार की पेंशन के बावजूद इस उम्र में भी उन्हें थोड़ा-बहुत काम करना पड़ता है। वैसे यहाँ उन्हें रहने, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, की कोई तकलीफ नहीं है।

मॉरीशस एक ऐसा अनुभव है, जो अपनी स्मृति मात्र से ही हृदय में जवाफूलों, कमल-पुष्पों और चंपाओं की खुशबू भर देता है। आपकी रसना वहाँ के रसीले आम और लीची के लिए ललचाने लगती है और शरीफे! जिन्हें वहाँ 'रामफल' कहते हैं, आपकी समस्त इंद्रियों को तृप्त कर देते हैं। मॉरीशस की हवा, नारियल के दरख्तों से भरा समुद्र तट, उसके अंदर बसे मूँगा-प्रवाल के पहाड़ आपके स्मृति-पटल पर हमेशा स्फटिक मणि-से कौंधते रहते हैं। इस अनुभव को आप चाहकर भी अपने स्मृति-पटल से नहीं पोंछ सकते, विशेषकर सफेद बालू के अंदर आती नीली लहर जब आपके सर्वस्व को स्वयं में तिरोहित कर, उस समुद्र की ही एक बूँद बना लेती है, तब आप अपने न होने से दुःखी नहीं, बल्कि एक ऐसे अनिर्वचनीय आनंद से भर जाते हैं, जो वाक् और अर्थ की सीमा के परे है और इसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

मॉरीशस के बरअक्स ही त्रिनिदाद में भी भारतीय मूल के लोगों ने हमारा तहेदिल से स्वागत किया और अपने भाषणों में भारत को अत्यधिक गौरवान्वित किया। यह तथ्य कि त्रिनिदादियों के मन में भारतीयों के लिए अत्यधिक प्रेम है और वे रुपए-पैसे को कोई अहमियत नहीं देते, मैं वहाँ के सबसे धनाढ्य व्यक्ति की पत्नी से यह सुनकर अभिभूत हो गई कि उसने यह

जानते हुए भी कि मेरी वकत उसके सामने पासंग भर नहीं है, अत्यंत गंभीरता से मुझसे पूछा कि यदि मेरी कोई बहन हो तो वे उसे अपनी बहू बनाना चाहेंगी। मैं अवाक् थी और सोच रही थी कि क्या और भी कहीं ऐसा होता है? यह सब जानना विश्व हिंदी सम्मेलन की ही देन थी, वरना क्या यह संभव था कि मारवाड़ी परिवार की घर-गृहस्थी में उलझी एक महिला सात समुंदर पार कर त्रिनिदाद जैसे सुदूरवर्ती स्थान पर जाए और सम्मेलन में अंश ग्रहण करे? मैं फिर से दोहराना चाहूँगी कि संस्कृति रोजमर्रा की जिन महीन बातों से बुनी जाती है, वे सब यहीं हैं और जिनसे मेरा परिचय विश्व हिंदी सम्मेलन के कारण हुआ। मैंने त्रिनिदाद में वह मकान भी देखा जिसका जिक्र व्ही.एस. नॉयपाल ने 'ए हाउस फॉर मिस्टर विश्वास' में किया है। उस मकान बरामदे की मुँडेर पर हनुमान जी की मूर्ति बनी हुई है। वहाँ के घरों के प्रवेश-द्वार पर तुलसी के बिरवे, ध्वजाएँ और हनुमानजी का छोटा-सा सिंदूर-पुता मंदिर अवश्य ही परिलक्षित होते हैं।

कहना चाहूँगी कि विश्व हिंदी सम्मेलन धर्म और मजहब आदि से ऊपर उठकर समरसता की भावना का संवाहक है और 'ऋग्वेद' के मंत्र—

‘ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं

सं वो मनांसि जानताम

देवा भागं यथा पूर्वं

सञ्जानाना उपासते?

को सिद्ध करता है।

मेरा विश्वास है कि मॉरीशस की धरती पर होनेवाले मेरे विश्व हिंदी सम्मेलन के समान ही निकट भविष्य में मॉरीशस में होनेवाला 11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन भी पूर्णतः स्मरणीय होगा।

□

अध्यक्ष, भारतीय भाषा परिषद्,
 शेक्सपीयर सरणी,
 कोलकाता

खंड : द्वितीय
हिंदी विश्व
एवं सांस्कृतिक जीवन

विश्व हिंदी

—स्व. प्रो. विद्यानिवास मिश्र

विश्व हिंदी की बात उठाते समय ऊपर से बड़ा बेतुका लगता है कि अपने देश में हिंदी पूरी तरह प्रतिष्ठित नहीं, फिर विश्व हिंदी की बात की जा रही है। परंतु हिंदी विश्वभर में फैली हुई है, यह निर्विवाद है। हिंदी का अध्ययन-अध्यापन भारत से बाहर सौ से अधिक विश्वविद्यालय में हो रहा है। हिंदी में रचना करनेवाले और हिंदी का संचार माध्यमों में उपयोग करनेवाले भारत से बाहर फैले हुए हैं, यह सब भी सत्य है। अब तक कई विश्व हिंदी सम्मेलन हो गए। इन सबको हम महत्त्व न भी दें तो भी कम-से-कम हिंदी की विश्वभाषा बनने की क्षमताओं का आकलन कर सकते हैं। विश्वभाषा की तीन अपेक्षाएँ होती हैं—पहली तो इसमें बोलने-समझने वालों का विस्तृत भौगोलिक वितरण। आज भारत के बाहर नेपाल, भूटान, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड, हांगकांग, फिजी, मॉरीशस, त्रिनिदाद, गयाना, सूरीनाम, इंग्लैंड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में हिंदी भाषी प्रचुर संख्या में हैं। वैसे हिंदी समझनेवाले और भी अधिक देशों में हैं। हिंदी भाषी यूरोप के अनेक देशों में पश्चिम एशिया के देशों में अब बस गए हैं। ये सभी हिंदी भाषा में प्रयोक्ता द्वि-भाषाभाषी या त्रि-भाषाभाषी होते हुए भी हिंदी में अपनी निजी पहचान रखते हैं।

विश्वभाषा की दूसरी अपेक्षा है कि वह भाषा लचीली हो, उसमें भिन्न-भिन्न संदर्भों की अभिव्यक्ति की क्षमता हो उसमें प्रयुक्ति के स्तर हों। साथ ही, उसका एक सर्वस्वीकृत मानक रूप हो और उसमें उपमानकों की कुछ दूर तक स्वीकृति होते हुए भी परस्पर सम्प्रेषणीयता किसी-न-किसी स्वीकृत मानक के माध्यम बनी हुई हो। हिंदी में यह गुण हैं। उसका प्रमुख कारण है कि हिंदी स्वयं अनेक जनपदीय भाषाओं और मध्ययुग से लेकर आज तक अनेक साहित्यिक भाषाओं से रस में सिंची हुई है। हिंदी मेरठ के आस-पास की बोली मात्र नहीं है। उसमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, पहाड़ी, बुंदेली, बाघेली, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नीमाड़ी और जानेवाली कितनी उपजन भाषाओं के शब्द-भंडार मुहावरे और उनकी लोकोक्तियाँ रच-पच गई हैं। इनके अलावा हिंदी भाषा का भारत की अन्य भाषाओं के साथ शताब्दियों से घनिष्ठ संपर्क होने के कारण हिंदी के विविध रूप उन-उन भाषाओं के संपर्क से बने। तीर्थयात्रियों, व्यावसायियों और साधु-संतों के कारण ऐसी हिंदी का रूप विकसित होता रहा है और होता जा रहा है, जो हिंदी न बोलनेवाले एक भाषाभाषी के द्वितीय भाषाभाषी से संपर्क के लिए अपरिहार्य माध्यम बन रहा है। हिंदी ने फारसी, अरबी, अंग्रेजी के शब्द भी खपाए हैं। इन सबके बावजूद और आगे अंग्रेजी अनुवाद के बावजूद हिंदी की अपनी प्रकृति भी बनी हुई है जिसके कारण कोई ऐसा अतिरेक नहीं



हो पाता जो हिंदी को खिचड़ी या अपमिश्रित भाषा बनने की ओर ले जा सके। दूसरे शब्दों में, हिंदी की अस्मिता दबावों में भी प्रखर है बल्कि यों कहें कि दबाव हिंदी की अस्मिता को और अधिक दृढ़ और सक्रिय बना रहे हैं। मॉरीशस जैसे देश इसका प्रमाण हैं।

विश्वभाषा की तीसरी अपेक्षा है कि भाषा में विश्वमन का मान हो। हिंदीभाषी अपने देश में भी अनेक राज्यों में निवास करने के कारण प्रांतीयता से ऊपर उठा हुआ है और उसके पास ऐसे साहित्य की विशाल परंपरा है जो विश्वमन को संबोधित है। सामान्यजन को विशेष रूप से संबोधित है। हिंदी भाषा के माध्यम से फिजी, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस जैसे देशों की स्वाधीनता की आवाज पं. तोताराम सनाढ्य, भवानीदास, नरदेव शास्त्री, बनारसी दास लोगों ने सबसे पहले उठाई। हिंदी में विश्व साहित्य के अनुवाद हुए और हिंदी का साहित्य विश्व में अनूदित हुआ।

किंतु ये तो भाषा की बात हुई। हिंदी साहित्य पर विचार करें तो चार बातें बिल्कुल साफ नजर आती हैं। एक तो यह कि हिंदी साहित्य में परंपरा के साथ ही परिवर्तन की आकांक्षा निरंतर रही। सिद्धों के दोहो से शुरू करके हम आज के युग तक विभिन्न सोपान देख सकते हैं या मूल्यों की जांच करके उन्नत मूल्यों की संस्थापना के ही सोपान हैं। मध्ययुग ने मोक्ष का अतिक्रमण करके भक्ति की प्रतिस्थापना की और भक्ति का प्रमाण माना समस्त प्राणियों के साथ तादात्म्य में सबकी पीर अपनी पीर मानने में और ईश्वर में रहते हुए जगत में रहने में। दूसरी बात यह दिखाई पड़ती है कि हिंदी साहित्य सामान्य से सामान्य को संबोधित है। वह हर कर्म और हर व्यवसाय को गरिमा देने का अभ्यास करता है। वहाँ समता का साम्राज्य है। जिसे प्रभु कहके पुकारा जाता है, वे स्वयं भक्तों के अधीन हैं। राज्यसत्ताओं को इस साहित्य ने कभी स्वीकृति नहीं दी, यहाँ तक कि रीतिकाल के दरबारी कवियों ने भी स्वाभिमान का परिचय दिया, आश्रयदाता

की औपचारिक स्तुति करते हुए भी उनके द्वारा न परिचालित हुए, न राज्य दरबार के वैभव विलास से प्रभावित हुए। वे लोकमत के प्यार की विविध नौ दशाओं का ही अंकन करते रहे और उसमें राधाकृष्ण के सनातन प्यार की झांकी पाते रहे।

आधुनिक काल में हिंदी स्वाधीनता आंदोलन की वाहिका बनी। स्वाधीन होने के बाद भी निरन्तर सत्ता पर चोट हिंदी साहित्य में ही सबसे अधिक हुई। नए मतवादों का ग्रहण और उनका मंथन हिंदी साहित्य में सर्वाधिक हुआ। हिंदी कवियों में ही पहली बार एशिया के जागरण की बात बीसवीं सदी के पहले दशक में की गई। चौथे दशक में पर्यावरण की चिंता सबसे पहले मुखर हो आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने की। हिंदी की लोकभाषाओं में सन् सत्तावन के स्वाधीनता-संग्राम और उत्तरवर्ती किसान आंदोलन के बारे में गीत और आख्यान रचे गए। आधुनिक हिंदी कविता की ताजगी और विश्व नागरिक वृत्ति के बारे में प्रो. जोसेफीन माल्स ने लिखा है कि ऐसी विश्व नागरिक से हम अमेरिकी कवियों को रश्क होता है। हिंदी की आधुनिकता आयातित आधुनिकता नहीं है। उनका केंद्रीय स्वर अधिक सार्वभौम है। वह मनुष्य संबोध्य है, विशिष्ट मनुष्य नहीं।

तीसरी बात यह है कि विश्वमत के लिए भीतर से भाव चाहिए, खुलापन स्वीकार करने का भाव चाहिए, लागलपेट से छुटकारा चाहिए। हिंदी साहित्य में एक सहज फक्कड़ भाव है, कहना यह चाहिए कि साहित्य हमारे लिए सहज की साधना है।

सहज होना बड़े कठिन आत्मसंयम और परिश्रम और विसर्जन से आया है। हिंदी जन जहाँ गए, वहाँ उन्होंने वहाँ की परिस्थिति से अपने को समायोजित किया, वहाँ के मनुष्य और वहाँ की प्रकृति में अपने को रमाया। वे वहाँ खपे नहीं, उन्होंने एक राह निकाली कि अपनी विशेषता का सहभागी दूसरों को बना दें और अपने को वहाँ के सामान्य से जोड़ दें। हम देख रहे हैं

कि सहजता ही आज के विश्व की सबसे बड़ी माँग है। मानवीय संबंधों में इतनी कृत्रिमता, मानव व्यवहार में इतना दुराव, इतना बनावटीपन, मनुष्य केंद्रित विश्व की अवधारणा के कारण प्रकृति से इतना कटाव और प्रकृति विजय का इतना थोथा अहंकार, तकनीकी के विकास के नाम पर जीवन के ऐसे यंत्रीकरण से सब चिल्ला-चिल्लाकर पुकार रहे हैं, बस-बस, अब अधिक नहीं। जीवन जिया नहीं जा सकता यदि वह सहज न हो। खुले आकाश, उदार धरती, स्वच्छ हवा, निर्मल जल और चटकीली धूप जीवन की प्रथम आवश्यकताएँ हैं। इनकी चर्चा ही नहीं, इनके लिए सब कुछ न्यौछावर करने का भाव सबसे अधिक हिंदी साहित्य में है।

उदाहरण देना चाहें तो सूरदास के उन्मुक्त प्यार के वर्णन से शुरू करें जहाँ मुक्त गगन के वितान के नीचे विराट् पुरुष का आभिसार राधा से होता है, जैसे बादल या बिजली से आभिसार हो रहा है और अज्ञेय आए, केदार नाथ सिंह तक आए जहाँ धूप से हवा से, पुष्प से, आकाश से, सबसे उधार लेकर जीवन बनता है, वहीं जीवन प्यार को अर्पणीय होता है या जीने की शर्त के साथ आकाश के खुलेपन की माँग की जाती है। हिंदी का विश्व मन किसी एक समुदाय या किसी विशेष मानवजाति के लिए नहीं, वह निखिल लोक के लिए है और वह मनुष्य को आवाहित करता है कि मनुष्य के अहंकार की खोली से निकलो और इन सबके बीच आओ। यह कोयल, यह मोर, यह गाय, यह बछड़ा, यह नदी, यह टेकड़ी, यह तितली, यह फूल। इनके साथ अपनी सरगम मिलाओ। हिंदी ने खुले मन से चारों ओर से प्रभाव लिये हैं। अपने को भरपूर भरा है, तरह-तरह की हवाओं से परंतु साथ ही हिंदी ने अपने प्राणों का संधान करके इन हवाओं में नए प्राण फूँके हैं।

हिंदी की अंतिम विशेषता यह है कि वह जोड़ने को ही अपना मुख्य कर्म समझती रही है। उसने तोड़ने की शक्तियों की चुनौती स्वीकार करते हुए बराबर जोड़ने का काम किया है। उसकी इस संधि की शक्ति

में विनम्रता का स्वर रहा है। इस विनम्रता और दूसरों की चिंता के साथ-साथ दूसरे में अपने को पाने की ललक साध के साथ-साथ निरंतर स्वरूप-विमर्श की ओर हिंदी का ध्यान रहा है। उसने अपना 'स्व' छोटा रहने नहीं दिया है।

ये सारी क्षमताएँ जिस भाषा में होगी, वह निश्चय ही विश्व भाषा होगी। अब विश्वभाषा के रूप में पहचान के लिए कुछ नहीं करना है, पर उसकी प्रतिष्ठा के लिए कुछ कार्यक्रम अपेक्षित हैं। पहला तो यह कि संगणक में तथ्याधारकोष तैयार किया जाए, जिसमें हिंदी संस्थाओं, हिंदी शिक्षण विधियों, कार्यक्रमों और पाठ्यक्रमों, हिंदी पत्र-पत्रिकाओं, हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों, हिंदी लेखकों, हिंदी भाषा की व्याकरणिक विशेषताओं, हिंदी साहित्य-संस्कृति के पारिभाषिक शब्दों और हिंदी भाषा साहित्य के इतिहास का पूरा आकलन हो। यह शोधकर्ताओं और समस्त हिंदी चाहकों को सॉफ्टवेयर के रूप में सुलभ हो। दूसरा काम यह है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान दिलाया जाए। इसके लिए विश्वभर में अभियान चलाना होगा और भाषाविदों के माध्यम से राज्यसत्ताधारियों को मानना होगा कि हिंदी में विश्वभाषा की समस्त क्षमताएँ मौजूद हैं। इन सबके लिए आवश्यक पहला कार्यक्रम है कि हिंदीभाषी हिंदी भाषा को प्रतिष्ठा दें, भाषा-भाषी जब तक अपनी भाषा को प्रतिष्ठा नहीं देता, तब तक दूसरे प्रतिष्ठा नहीं देते। हिंदीभाषी अधिकतर आत्मविस्मृति के शिकार हैं, जैसे हनुमानजी को स्मरण कराना पड़ता था कि आपका बल इतना है, उसी प्रकार हिंदीभाषियों को स्मरण कराने की आवश्यकता है कि आप अपनी शक्ति पहचानें, किसी हीनभाव से ग्रस्त न हों, किसी की प्रभुता से आतंकित न हों। यह करेंगे तभी हम विश्व हिंदी का विश्वमत रच सकेंगे।

□

सौजन्य - डॉ. दयानिधि मिश्र,
एम-3, बादशाहबाग,
वाराणसी-1

मानवीय उत्थान के लिए हिंदी

— श्रीमती मृदुला सिन्हा

किंसी भी सनातन समाज में विभिन्न क्षेत्रों में बसे लोगों की विभिन्न भाषाओं को एक भाषा में जोड़ने की आवश्यकता होती है क्योंकि सनातन समाज का, भारत के परिप्रेक्ष्य में पाँच हजार वर्षों के पूर्व का भी इतिहास मिलता है। जहाँ, जो लोग बसे, आपस में दूरियाँ थीं, संप्रेषण हेतु एक-एक स्थान की अपनी कुछ भाषाएँ बन गईं। अपने स्थान पर ही भाषाएँ विकसित हुईं। सदियों से आई भाषा संस्कृत उन भाषाओं को जोड़ती रही। संस्कृत से निकली प्रमुख भाषा हिंदी के विद्वानों द्वारा साहित्य का सृजन होने लगा। संस्कृत में वेद से लेकर पुराणों तक, जितने जीवन सूत्र दिए गए, उन्हें हिंदी ने भी अपने साहित्य में सँभालने-सँजोने की कोशिश की। विभिन्न लोक-संस्कृतियों एवं लोक-भाषाओं तथा बोलियों में सँजोए गए लोक-संस्कार, लोकगीत, रीति-रिवाज, पूजा पद्धति—सबों को सँजोते हुए इस निष्कर्ष पर आया जा सकता है कि भारतीय संस्कृति मानवीय संस्कृति है और इस संस्कृति के सूत्रों को संभालते हुए देश के विभिन्न राज्यों की बोलियों को ही सँवारने का नहीं, बल्कि विश्व के विभिन्न भागों में अपनी संस्कृति के सूत्रों का रोपण संस्कृत और हिंदी भाषा में लिखे गए साहित्य के द्वारा भी होता रहा है।

भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति रही है, जोड़नेवाली। सभी विभिन्नताओं का समायोजन

करनेवाली। जिस सनातन संस्कृति के प्रमुख सूत्र 'विश्वबंधुत्व', 'यत्र विश्वम् भवत्येक नीडम्' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' रहे हों, वह संपूर्ण विश्व को अपने अंदर समाहित करने का प्रयास करती रही है। आपसी एकता एक देश या विश्व की ही क्यों न हो, उसे लाने में भाषा का बहुत बड़ा योगदान रहता है। किसी भी समाज और देश की भाषा लोगों को जोड़ती है। उस भाषा में लिखे गए साहित्य उस समाज के सुख-दुःख, हास-परिहास, युद्ध-शांति और घात-प्रतिघात की कथाओं को अपने अंक में भरता है। इन कथाओं और काव्यों के द्वारा ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने इतिहास को सँजोया जाता है। हर वर्तमान पीढ़ी अपनी-अपनी भाषा में अपने इतिहास को पढ़कर या सुनकर गौरवान्वित होती है। अगली पीढ़ी में गौरव का भाव भरती है। हर व्यक्ति को अपनी भाषा सुमधुर लगती है। एक भाषा को जाननेवाले दो, दस या सौ-सैंकड़ों की संख्या में एक साथ बैठते हैं। उनमें एकता की अनुभूति अपने आप जाग्रत हो जाती है। यह एकत्व, बाँधने का सूत्र है। खान-पान, रहन-सहन और वेशभूषा में कितना भी अंतर क्यों न हो, भाषा आपसी एकता के सूत्र को सुदृढ़ करती है। अपनी भाषा हर व्यक्ति के लिए कर्ण मधुर होती है, संस्कृति की संवाहिका भी।

दरअसल, मानव शरीर में जो स्थिति ऑक्सीजन

की है, वही स्थिति समाज जीवन में भाषा की है। प्रसन्नता की बात है कि आज कई देशों में हिंदी लिखी और बोली जाने लगी है। कई देशों के विश्व विद्यालयों में पढ़ाई भी जाती है। अनेकानेक विश्व की भाषाओं के साहित्य के अनुवाद हिंदी और हिंदी साहित्यकारों की प्रमुख पुस्तकों के अनुवाद विभिन्न विश्व भाषाओं में हो रहे हैं। विश्व के चिंतकों, दार्शनिकों, शिक्षाविदों, इतिहासकारों एवं राजनीतिज्ञ हिंदी भाषा में लिखे साहित्यों को पढ़कर हमारी सामासिक संस्कृति से अवगत होते आए हैं, और भारतीय दर्शन और व्यवहार से भी। आज के कालखंड में इस स्थिति में बढ़ोत्तरी हुई है।

यह सच है कि भारतीय संस्कृति ममतामूलक एवं समता स्थापक संस्कृति है। इसलिए विदेशी भी इससे प्रभावित होते हैं। हर भाषा में संप्रेषण की शक्ति होती है। हिंदी इस कार्य में दक्ष है। चूँकि यह समृद्ध भाषा सांस्कृतिक मूल्यों की संवाहिका है, इसलिए दूसरी संस्कृतियों को भी प्रभावित कर अपने अंदर समाहित कर लेती है।

अनादिकाल से समय-समय पर भारत से साधु-संत, विचारक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और साहित्यकार भी विदेश भ्रमण के लिए जाते रहे हैं। व्यापारीगण जाते ही रहे हैं। वहाँ अधिकतर लोगों ने हिंदी भाषा में ही बातचीत की। वे केवल धर्म, राजनीति और व्यापार की बातें नहीं करते। उनके बातचीत और व्यवहार में हमारी संस्कृति के सूत्र भी प्रगट होते रहे हैं, जिनसे वहाँ के लोग (विदेशी) जुड़ते रहे। स्वामी विवेकानंद के शिकागो भाषण से दुनिया की धार्मिक विचारधाराओं में हलचल मच गई थी। यूँ तो संपूर्ण व्याख्यान सारगर्भित था, परंतु 'प्यारे भाइयो और बहनो' का संबोधन ने ही उपस्थित जनों को भारतीय संस्कृति के मूल सूत्र में बाँध लिया। 19वीं सदी में स्वामी विवेकानंद के यूरोप और अमेरिका यात्राओं ने वहाँ के अनेकानेक जिज्ञासुओं

को भारत की संस्कृति से जोड़ा। भगिनी निवेदिता, जिनका नाम मार्गेट एलिजाबेथ नोबेल था, स्वामीजी से प्रभावित होकर भारत आ गई। भारतीयों के लिए उनकी सेवा उल्लेखनीय है। वे भारत माँ की दत्तक पुत्री बन गईं।

आज का समय इंटरनेट (जाल) का युग है। यह भी सिद्ध हुआ है कि देवनागरी लिपि इंटरनेट के लिए सबसे अधिक उपयुक्त लिपि है। पिछले 30 वर्षों में भारत से लाखों नौजवान पढ़ाई या नौकरी के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों में गए हैं। अधिकांश वहीं रह गए। अधिकतर परिवार हिंदी भाषी हैं। वे अपनी भाषा के कारण अलग पहचाने जाते हैं। साथ ही, वे हिंदी के कारण उन्हें अपने साथ जोड़ते भी हैं।

तीन-साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व भारत से मजदूर मॉरीशस, फीजी, गुयना और सूरीनाम गए। वे वहीं रह गए। वे मराठी, भोजपुरी, मलयालम, हिंदी की सगी बहनों (भाषाओं) का ही प्रयोग करते रहे। तीन सौ वर्षों से वे वहीं बसे हैं। उनके परिवारों की तीसरी-चौथी पीढ़ियों में से ही वहाँ भारतीय राज कर रहे हैं। उन्होंने अपने साथ धरोहर के रूप में ले गई अपनी सामासिक संस्कृति भी जीवित रखी है।

आज देश के वृहत और विभिन्न भाषा-भाषी को एक सूत्र में जोड़ने में हिंदी का बड़ा योगदान है। हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी ने पिछले चार वर्षों में विभिन्न देशों का दौरा किया है। उन्हें सुनने लाखों की संख्या में उस देश के भारतवंशी इकट्ठे होते हैं। हिंदी में उनका भाषण सुनकर अति प्रसन्न होते हैं। उनके भाषण में अपनी सामासिक संस्कृति के सूत्रों में विदेशों में बसे भारतीय ही नहीं, विदेशियों को भी बाँधने के सूत्र रहते हैं। अब भारत की सही पहचान विदेशों में हो रही है।

19वीं सदी में महान दार्शनिक मैक्समूलर, जो संस्कृत के विद्वान् थे, संस्कृत में लिखे ग्रंथों का जर्मनी में अनुवाद किया। जर्मनी के विद्वान गेटे ने भी



संस्कृत और उसके माध्यम से संस्कृत साहित्य का गहरा अध्ययन किया।

“यत् देश प्रसूतस्य, ब्राह्मणा अग्रजन्मना।”

धर्म की शिक्षा के लिए दुनियाभर के लोग भारतीय ब्राह्मणों के पास तो तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इतिहास के एक कालखंड में भारतवर्ष के विश्वगुरु होने की प्रसिद्धि मिली। यूँ तो भारतवर्ष को सोने की चिड़िया कहा जाता था, लेकिन धन-संपदा के कारण विश्वगुरु का पद नहीं मिला। सामासिक संस्कृति, संस्कृत भाषा, भारतीय जीवन दर्शन और विश्व कल्याण के विविध ज्ञान के कारण ही विश्वगुरु का पद प्राप्त हुआ। मानव कल्याण के सूत्रों से भारतीय संस्कृति भरी पड़ी है। विश्वास है कि परिवार, समाज और सरकार मिलकर हिंदी को विकास पथ पर बढ़ाते रहेंगे। भाषा बढ़ेगी तो हमारी सामासिक संस्कृति भी जीवंत रहेगी। भाषा, संस्कृति और मानवता का भी कल्याण होगा।

हर क्षेत्र में हिंदी को प्राथमिकता और बढ़ावा देने की आवश्यकता है। हिंदी में बोलचाल के साथ साहित्य सृजन होना चाहिए। गर्व होता है कि देश में एक ओर अंग्रेजी का वर्चस्व बढ़ रहा है तो दूसरी ओर हिंदी भी विस्तार ले रही है। अमेरिका के हजारों पुस्तकालयों में हिंदी के विद्वानों द्वारा रचित रचनाएँ संग्रहीत हैं। साहित्यकारों द्वारा अपने पौराणिक चरित्रों और कथानकों को भी लिखा जा रहा है। उन कालजयी पुस्तकों में मनुष्य जीवन को उन्नत बनाने तथा समाज में नीतिगत व्यवस्थाओं की भरपूर चर्चा है। उन पुस्तकों का अनुवाद विभिन्न विदेशी भाषाओं में हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे परिवारों में हिंदी बोली जाए। अंग्रेजी के साथ अन्य विदेशी भाषाओं का पठन-पाठन-लेखन हो, लेकिन उनके पाँवों तले हिंदी नहीं कुचली जाए। भारतीय सामासिक संस्कृति की संवाहिका हिंदी को

जीवित ही नहीं, जीवंत रखना है। वैज्ञानिक नियमों पर खरी उतरनेवाली भाषा को घर-परिवार, समाज और सरकार से भी सहयोग और प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

प्रसन्नता है कि विदेश में भारतवंशियों द्वारा विदेशी भूमि पर हिंदी प्रशिक्षण केंद्र, भारतीय संगीत, योग के प्रशिक्षण के साथ-साथ भारतीय व्यंजन बनाने की भी शिक्षा दी जा रही है।

जिस प्रकार विदेशी भूमि पर भारतीयों द्वारा चलाए जा रहे भोजनालयों में विदेशियों की संख्या अधिक रहती है, उसी प्रकार भारतीयों द्वारा आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी विदेशियों की रुचि बढ़ी है।

हिंदी भाषा के प्रयोग से बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन आवश्यक है, हिंदी भाषियों का अपनी भाषा पर गौरवान्वित होना। घर में बच्चों से हिंदी ही बोलना। यह जानकर प्रसन्नता होती है कि विदेशों में बसे परिवारों में अब अपने बच्चों से हिंदी में बोलने का चलन बढ़ रहा है। परिवारों में जीवंत रहनेवाली भाषा समाजरूपी झाड़ियों में जाकर कभी मुरझा नहीं सकती। थोड़ा-बहुत मुरझापन आया भी तो हिंदी के लिए अपने को गौरवान्वित समझनेवाले लोग पुनः अपनी भक्ति से सींचकर पुनर्जीवन प्रदान करेंगे। प्रयास प्रवाहित होते रहना चाहिए।

हिन्द महासागर स्थित विकास की चोटियों को छूते मॉरीशस देश में ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भाषा और एकत्व की भाव भव्यता और बंधुत्व भाव को दर्शाता है। भारत का विदेश मंत्रालय भी ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ भारतीय दर्शन के सूत्रों में गुँथा है। भारत सरकार का विदेश मंत्रालय निरंतर इस भावना को आगे बढ़ा रहा है।

□

महामहिम श्री राज्यपाल
गोवा प्रदेश, राजभवन
पणजी, गोवा-403 004

ऐतिहासिक-सांस्कृतिक रामसेतु

—डॉ. नरेंद्र कोहली

9 अक्टूबर, 2007 के 'इकनॉमिक टाइम्स' में एक निबंध छपा है, 'सेतु समुद्रम प्रोजेक्ट : इट्स ऑल ए मैटर ऑफ़ फेथ...इज नाट इट? (अंग्रेजी में) यह निबंध सुदर्शन रॉड्रिग्स, जैकब जॉन, रोहन ऑर्थर, कार्तिक शंकर और आर्ति श्रीधर की एक लंबी रपट' उद्धृत है। स्पष्ट है कि यह निबंध रामसेतु के विषय में न होकर सेतुसमुद्रम परियोजना के विषय में है। इस रपट के लेखकों की मान्यता है कि यह एक पुरानी योजना है, जो नौवीं बार पुनर्जीवित की गई है। इस योजना के विषय में पर्यावरणविदों और अर्थशास्त्रियों ने अपनी चिंता व्यक्त की है। उनका कहना है कि परियोजना में व्यय का जो अनुमान दिया गया है, वस्तुतः इसमें उससे कहीं अधिक व्यय होनेवाला है। समुद्र में से गाद निकालने या तल-मार्जन के व्यय को जान-बूझकर बहुत कम आँका गया है, ताकि योजना का समर्थन किया जा सके। यह चिंता उन वैज्ञानिक शोधों पर आद्धृत है, जो यह उद्घाटित करते हैं कि पाल्क खाड़ी में एक वर्ष में तलछट की मात्रा एक सेंटीमीटर बढ़ जाती है। कुछ और अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि तलछट की मात्रा इससे पच्चीस से पचहत्तर गुणा अधिक हो सकती है, किंतु सन् 1989 ई. के पश्चात् के पर्यावरणविज्ञान, अर्थशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, सागरविज्ञान, समाजशास्त्र तथा सुरक्षा-क्षेत्र के सारे अध्ययनों, शोधों और रपटों को भारत सरकार द्वारा कूड़े की टोकरी

में डाल दिया गया है। वायु के वेग, समुद्री झंझावातों तथा सुनामी जैसे संकटों के आधुनिक आँकड़ों की भी अनदेखी की गई है। इस निबंध के लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सेतुसमुद्रम परियोजना पर जो व्यय होगा और उस मार्ग को जहाजरानी के उपयुक्त बनाए रखने के लिए जो स्थायी व्यय होगा, वह भारत सरकार के धन को समुद्र में बहाने के समान है। उसकी आय उसके व्यय से बहुत कम होगी। उससे विदेशी धन आएगा नहीं, विदेशी ही हमारा धन लेकर जाएँगे। सागर का वह भाग हमारा न होकर अंतरराष्ट्रीय होगा, अतः उसमें विदेशों के सैनिक और व्यावसायिक समुद्री बेड़े अपनी मनमानी करने को स्वतंत्र होंगे। उनकी मान्यता है कि इस परियोजना से हम प्राकृतिक विभीषिकाओं तथा विदेशी नौसेनाओं के उत्पात को आमंत्रित करेंगे। केरल और तमिलनाडु के बड़े क्षेत्रों के लिए बहुत संकट होगा।

किंतु इस समस्या का एक अन्य पक्ष भी है और वह इसका धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पक्ष है। अतः मद्रास उच्च न्यायालय का सरकार से पूछा गया यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है कि देश की प्रगति के नाम पर क्या सरकार ताजमहल को तोड़ देगी? इस संदर्भ में यह विचार किया जा सकता है कि मथुरा के तेलशोधक कारखाने और मायावती के ताज कॉरिडोर के संबंध में सारा शोर—

शराबा अनावश्यक था, क्योंकि वह सब भी तो देश की प्रगति के नाम पर ही हो रहा था। दिल्ली में मेट्रो के लिए एक भूमिगत मार्ग इसलिए स्वीकृत नहीं हुआ, क्योंकि उससे हुमायूँ के मकबरे के दरक जाने का काल्पनिक भय था।

और यहाँ तो संबंध राम का है। राम, जो इस देश की सांस्कृतिक और धार्मिक आस्था के प्रतीक हैं; भारत के आराध्य हैं, किंतु राम का एक निर्गुण रूप भी है। वे परब्रह्म परमेश्वर के रूप में स्वीकृत हैं। वे निर्गुण निराकार हैं। पूर्ण ब्रह्म हैं। निर्गुण निराकार ब्रह्म के रूप में मध्य काल के सारे कवियों और उनको माननेवाले संप्रदायों के वे आराध्य हैं, किंतु उनके लिए ऐतिहासिक प्रामाणिकता का कोई संकट नहीं है। निर्गुण ब्रह्म शरीर धारण कर इस पृथ्वी पर आया ही नहीं। उसने जन्म नहीं लिया, उसने विवाह नहीं किया, वह वन नहीं गया, उसकी पत्नी का हरण नहीं हुआ, उसने लंका पर आक्रमण करने के लिए सेतु-निर्माण नहीं किया। इसलिए सारा विषय उस सगुण साकार का है, जो शरीर धारण कर इस पृथ्वी पर आया। ब्रह्म ने अपनी इच्छा से शरीर धारण किया और श्रीराम के रूप में जन्म लिया। जन्म लिया तो जन्मोत्थान भी होगा; और है। उन्होंने विवाह किया। वे वन गए। राक्षसों से उनका विरोध था और उसके परिणाम स्वरूप सीता का हरण हुआ और राम को लंका तक जाने के लिए सेतु-निर्माण करना पड़ा। इस सेतु-निर्माण का विस्तृत वर्णन 'वाल्मीकि रामायण' से आरंभ होता है और प्रायः सारी रामकथाओं में मिलता है। यहाँ तक कि भारत के उत्तर से दक्षिण तक का वर्णन करना हो तो उसे 'आसेतु हिमालय' कहकर प्रस्तुत कर दिया जाता है। यहाँ हिंद महासागर से भी अधिक महत्व राम-सेतु का है।

सेतु-बंधन का वर्णन प्रायः सारी रामकथाओं में समान ही है। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में राम अपनी सेना के साथ सागर-तट पर आते हैं; और पार उतर जाने के लिए समुद्र से मार्ग की याचना करते हैं। समुद्र अपनी जड़ता दिखाता है और राम

की प्रार्थना का उसपर कोई प्रभाव नहीं होता। राम का सात्विक क्रोध जाग उठता है और वे न केवल लक्ष्मण को धनुष-बाण लाने के लिए कहते हैं, वरन् यह घोषणा भी कर देते हैं कि वे अग्निबाण से समुद्र का जल सुखा देंगे। उन्होंने अग्नि-बाण का संधान किया। बाण चला नहीं है किंतु समुद्र के हृदय में अग्नि धधक उठी। जलचर जलने लगे, किंतु बाण तो अभी चला भी नहीं है। लगता है कि उसके परिणाम की आशंका से ही समुद्र में बसे जीवों में हलचल मच गई है। उनका कष्ट देखकर स्वयं समुद्र, हाथ में मोतियों से भरा थाल लेकर ब्राह्मण के वेश में प्रकट हो गया और विनयपूर्वक बोला कि आपकी शक्ति से मैं सूख जाऊँगा। किंतु न उससे मेरी मर्यादा रह पाएगी, न आपकी।

यहाँ राम स्वयं नारायण ही हैं; अतः प्रकृति के स्वामी हैं। उनकी इच्छा मात्र से प्रकृति में वह घटना घटित हो जाएगी, जो वे चाहते हैं। किंतु प्रभु ने पाँच जड़ तत्व उत्पन्न किए हैं। उनकी विशेषता जड़ बने रहने में ही है। जड़ तत्व, चैतन्य के समान व्यवहार करे, यह तो प्रभु की इच्छा का ही उल्लंघन होगा। अतः समुद्र का न सूखना ही प्रकृति का विधान है। समुद्र आश्वासन देता है कि उसके सूखे बिना भी राम की सेना सागर पार कर सकती है और उसके लिए उपाय यह है कि राम समुद्र के ऊपर एक सेतु बंधवाएँ। वह यहाँ तक कह देता है कि आपकी सेना में नल और नील नामक दो भाई हैं, जो सेतु-निर्माण में समर्थ हैं। आप उन्हीं को आदेश करें। प्रायः रामकथाओं में सेतु-बंधन का कार्य केवल नल करता है किंतु 'मानस' में यह कार्य नल और नील मिलकर करते हैं।

कंबन ने सेतु-निर्माण का विस्तृत वर्णन किया है। उसमें अद्भुत काव्य-तत्व है। उपमाओं और रूपकों के ढेर लगे हैं। किस प्रकार वानर बड़ी-बड़ी शिलाएँ लाते हैं और उनको एक के ऊपर एक पटकते हैं। उस पटकने और उसके प्रभाव के संबंध में कंबन ने अलंकारों का एक सुंदर संसार प्रस्तुत किया है।

वाल्मीकि ने इस सारी घटना का वर्णन कुछ

अधिक विस्तार और युक्तियुक्त ढंग से किया है। मुझे लगता है कि उन्होंने अनेक नए प्रकार के संकेत दिए हैं, जो मात्र काव्यात्मक न होकर तथ्यात्मक हैं, ऐतिहासिक हैं। आदि कवि तो वाल्मीकि ही हैं। उनका अध्ययन और विश्लेषण आवश्यक है। इतिहास की सूचनाएँ तो वे ही देंगे। यहाँ भी राम जब अपनी सेना के साथ सागर-तट पर पहुँचते हैं तो सागर प्रकट नहीं होता। वे तीन दिनों तक अनुनय-विनय करते हैं; किंतु सागर के स्वभाव की जड़ता के कारण कोई विशेष लाभ नहीं होता। राम का शौर्य जागता है और वे धनुष पकड़ लेते हैं।

वाल्मीकि आदि रामायणकार हैं। जो कुछ इसमें है और बाद के रामकथाकारों ने किसी कारण से उसका चित्रण नहीं किया, मान लेना चाहिए कि उन्होंने उसे छोड़ दिया। क्यों छोड़ दिया? अनावश्यक मान कर अथवा कालांतर के कारण उसे न समझने के कारण या फिर अपनी मौलिकता के मोह में?

मानस में राम ने बाण चढ़ाया अवश्य किंतु प्रहार नहीं किया, बाण छोड़ा नहीं। किंतु वाल्मीकि के राम अपने तीखे बाणों से समुद्र पर प्रहार करते हैं। कंबन और कृतिवास ने भी वाल्मीकि का ही अनुसरण किया है। विचारणीय है कि यदि 'बाण' का अर्थ वही माना जाए, जो हम आज समझते हैं, तो असंख्य बाण मारने पर भी समुद्र के जल पर उसका क्या प्रभाव हो सकता है? वे सारे बाण समुद्र में जाकर डूब जाएँगे और समयानुक्रम में सड़-गलकर समाप्त हो जाएँगे। तो ऐसे बाण मारने का क्या लाभ? किंतु वाल्मीकि कहते हैं कि राम के उन बाणों का भयंकर प्रभाव हुआ। बाणों के प्रहार से समुद्र में भयंकर तूफान उठने लगे, जल के पहाड़ उठ-उठकर गिरने लगे, धुआँ उठने लगा और बड़ी-बड़ी लहरें चक्कर काटने लगीं।

हम जानते हैं कि महासागर के गर्भ में भी एक पूरा संसार बसा हुआ है। वहाँ विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े जीव-जंतु ही नहीं, अनेक प्रकार के चल-अचल वानस्पतिक जीव और हमारे लिए अपरिचित जलचर

भी हैं। राम के बाणों से, समुद्र के भीतर बसा वह सारा संसार, समस्त जलचर जीव, क्षुब्ध हो उठे। वह सब कुछ इतना भयंकर था कि जब राम ने पुनः अपना धनुष खींचा तो कठोर दंड के समर्थक, स्वयं लक्ष्मण कूदकर उनके निकट आ गए। उन्होंने राम का धनुष पकड़ लिया, “बस—बस। अब नहीं। अब नहीं।”

और तब लक्ष्मण ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कही कि अब आप सुदीर्घ काल तक उपयोग में लाए जानेवाले किसी अच्छे उपाय पर दृष्टि डालें, कोई दूसरी उत्तम युक्ति सोचें। “दीर्घ भवान् पश्यजतु साधुवृत्त।”

स्पष्ट है कि लक्ष्मण तक को लगा कि यह विनाशकारी उपाय न तो हितकारी है और न दीर्घकालीन है। यह तात्कालिक उपाय है। सागर को सुखाकर शायद वानर-सेना तो पार उतर जाए; किंतु विश्व-मानवता के लिए, अन्य जीवों के लिए, सागर के जलचरों के लिए, वनस्पति के लिए कदाचित् यह हितकारी न हो।

उसी समय अंतरिक्ष में अव्यक्त रूप से विद्यमान महर्षियों और देवर्षियों ने भी “हाय, यह तो बहुत कष्ट की बात है। अब नहीं, अब नहीं।” कहते हुए बहुत जोर से कोलाहल किया।

ये वे शक्तियाँ हैं, जिनसे मनुष्य चाहे अपरिचित हो, किंतु वे अपने स्थान पर स्थित प्रकृति की रक्षा करती रहती हैं। ‘महाभारत’ में भी जब अर्जुन पाशुपतास्त्र प्राप्ति कर अपने भाइयों के पास लौटा था और उसके भाइयों ने उत्सुकतावश ही उसका प्रयोग देखना चाहा था, तब भी आकाश से अनेक महर्षि और देवर्षि उतर आए थे; और उन्होंने पांडवों को उस अस्त्र के, चाहे प्रदर्शन के लिए ही क्यों न हो, किए जानेवाले प्रयोग के संकट बताए थे।

श्रीराम को अपनी सेना के साथ लंका तक पहुँचना है। उनके और लंका के मध्य सागर का जल है। उस जल को सुखा दिया जाए, तो वहाँ मरुभूमि प्रकट होगी, जिसपर वानर पैदल चलकर लंका तक पहुँच जाएँगे। किंतु समुद्र के जल को सुखाने के लिए वे जिस शक्ति का प्रयोग करेंगे, वह कोई अलौकिक



शक्ति न होकर भौतिक शक्ति ही है। वह उनका शस्त्र-बल है। 'रामायण' के बाद के काल में चाहे हमारे कवियों ने उस शक्ति का स्वरूप न समझा हो और उसे कोई अलौकिक शक्ति मानकर, सुंदर उपमानों से सजाकर उसका काव्यात्मक वर्णन किया हो, किंतु आज परमाणु शक्ति के युग में, जब हम जानते हैं कि पदार्थ को ऊर्जा में परिणत किया जा सकता है, हमें यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि राम किस प्रकार की शक्ति के प्रयोग की धमकी दे रहे हैं? लक्ष्मण ही नहीं, देवर्षियों को भी समझ में आ रहा है कि यदि समुद्र अपने हठ पर अड़ा रहा और राम को अपनी शक्ति के प्रयोग को बाध्य होना पड़ा, तो वह इतना बड़ा उत्पात होगा कि समस्त जीवों के लिए प्रलय की-सी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। प्रकृति इतने बड़ी दुर्घटना की अनुमति नहीं देती।

तब जल के मध्य में से समुद्र स्वयं प्रकट होता है। विनयपूर्वक अपनी जड़ता के लिए क्षमा माँगता है और स्पष्ट करता है कि सागर की गहराई अथाह है। यदि सारा जल सूख भी जाए, तो भी वानरों के लिए शायद उस अपार गहराई को पार करना संभव न हो। जल के सूखने से उसके सहारे जीवित रहनेवाले जंतु तो मरेंगे ही, जल को सुखाने के लिए राम के शस्त्रों से जो ताप उत्पन्न होगा, उसके भी दुष्परिणाम होंगे, जिन्हें पृथ्वी सहन नहीं कर पाएगी। अतः राम कोई दूसरा उपाय करें। दूसरा उपाय है, सेतु-बंधन।

मैं अभी आस्था की नहीं, केवल भौतिक प्रमाणों की बात कर रहा हूँ। भूगोल की दृष्टि से, सेतु-निर्माण के समय जिस भूमि पर राम ने शिव की आराधना की, वह रामेश्वरम तो आज भी है। वहाँ पहले जो रजवाड़ा था, उसका नाम ही रामनाड अर्थात् राम की भूमि था। वह जिला आज भी इसी नाम से जाना जाता है। वहीं से आगे समुद्र तट पर धनुषकोडि रेलवे स्टेशन था, जो 1960 ई. के समुद्री तूफान में नष्ट हो गया। रामनाड के राजा की उपाधि 'सेतुपति' थी। कहीं कोई सेतु था, तभी

तो राजा सेतुपति था। उपग्रह चित्रों में भी स्पष्ट रूप से सेतु दिखाई पड़ता है।

यह सेतु कहीं पानी के तीन फुट नीचे है, कहीं तीस फुट। ईश्वर की कृपा है कि नासा ने सेतु के चित्र उसकी संपूर्णता में संसार के सम्मुख प्रस्तुत कर दिए हैं, जिसे वे 'एडम्स ब्रिज' की संज्ञा देने को ललचा रहे हैं। अब और क्या साक्ष्य चाहिए हमारे देश के इन पुरातात्विक धुरंधरों को?

मुझे उनकी मान्यताओं के विषय में कुछ नहीं कहना। वे अपनी मान्यताओं के अनुसार अपना जीवन जीने को स्वतंत्र हैं, किंतु अपनी इन मान्यताओं के कारण वे किसी भी आध्यात्मिक संस्कृति विचारधारा से संबंधित किसी आध्यात्मिक पुरुष, किसी अवतार, किसी विकसित आत्मा का लौकिक इतिहास लिखने के अयोग्य हो जाते हैं। हमारी कठिनाई यह है कि ऐसे ही लोगों ने इस देश का इतिहास लिखने का बीड़ा उठा लिया है। मेरी दृढ़ धारणा है कि इन लोगों को पिछले दो सहस्र वर्षों के परे के, तथा आध्यात्मिक-सांस्कृतिक पुरुषों के इतिहास पर कलम उठाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है क्योंकि वे उसके प्रमाण एकत्रित करने के स्थान पर उसे नष्ट करने का दृढ़बद्ध संकल्प किए हुए हैं और सदा से उसका प्रयत्न करते रहे हैं। वे एक कट्टरपंथी संप्रदाय के सदस्य हैं, जो अपनी मान्यताओं के बाहर किसी विचार के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। उनका संगठन सांप्रदायिक और संकीर्ण है। उनकी चिंतन में विचार-भेद और वैविध्य के लिए कोई स्थान नहीं है। उनके लिखे इतिहास को अधिक-से-अधिक एक संप्रदाय विशेष के द्वारा, एक विशेष लक्ष्य के लिए लिखा गया इतिहास ही माना जा सकता है। अतः राम-सेतु जैसे किसी भी विषय पर उनकी ऐतिहासिक मान्यताओं का कोई महत्व नहीं है।

□

संस्कृति के संदर्भ में हिंदी का उद्‌विकास

— प्रो. गिरीश्वर मिश्र

चूँकि भाषा स्वभाव से ही अनिवार्य रूप से एक सामाजिक उत्पाद है इसलिए भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन के समानांतर भाषा के रूप भी बदलते जाते हैं। प्रत्येक भाषा अनिवार्यतया संस्कृति में ही पलती-बढ़ती है और सामाजिक संवाद और संचार के उपक्रम में ही उसका जन्म और विकास होता है। इसके साथ ही यह तथ्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि भाषा संस्कृति के निर्माण में भी सक्रिय योगदान देती है। जहाँ तक 'हिंदी' का प्रश्न है, यह उल्लेखनीय है कि 'हिंद' शब्द 'सिंधु' का ही विकसित रूप है। अवेस्ता में 'हेंदु' और पुरानी पहलवी में 'हिंद', 'हिंदूक' और 'हिंदुश' का प्रयोग मिलता है। ऐसे ही मध्यकालीन ईरानी भाषा में 'हिंदिक' का प्रयोग दिखता है। कदाचित यही 'हिंदिक' ही हिंदी का मूल है। आरंभ से ही 'हिंदी' एक देशवाची शब्द रहा है। 'जबाने हिंदी' का उपयोग हिंद क्षेत्र की भाषा को इंगित करने के लिए किया गया और संस्कृत भाषा की प्रसिद्ध रचना 'पंचतंत्र' को जबाने हिंदी की पुस्तक कहा गया। तुलसी और कबीर आदि ने हिंदी नहीं बल्कि 'भाषा' का प्रयोग किया। अमीर खुसरो और बाद में अबुल फजल ने जो भाषाओं की गणना की, उसमें भी हिंदी जैसी किसी स्वतंत्र भाषा का नाम नहीं मिलता है। सत्रहवीं सदी आते-आते 'हिंदी' और 'हिंदवी' समानार्थक हो चले थे और मध्य देश की भाषा का बोध कराते थे। दक्षिण

में बीजापुर और गोलकुंडा में प्रयुक्त हिंदी खड़ी बोली थी। दक्षिण में 'दक्खिनी हिंदी' और 'हिंदवी' का प्रयोग हुआ, जो फारसी लिपि में लिखी जाती थी। इस तरह 'हिंदी' भारत के देशवासियों द्वारा प्रयुक्त भाषा के लिए प्रयुक्त हुआ। हिंदी हिंद की भाषा और हिंदवी हिंदुस्तानियों की भाषा हो गई। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 'हिंदुस्तानी' शब्द का प्रयोग उचित समझा। यह रेखा या उर्दू के समानार्थक भाषा थी। सन् 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज में गिलक्राइस्ट ने हिंदुस्तानी भाषा के अध्ययन की परंपरा का श्रीगणेश किया। वे हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी को समानार्थी ही मानते थे। इंशा अल्ला खान ने हिंदी का उपयोग मध्य देश की भाषा को व्यक्त करने के लिए किया। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से यह मत स्थिर हुआ है कि पश्चिमी हिंदी शौरसेनी अपभ्रंश भाषा से; पूर्वी हिंदी अर्धमागधी से, पहाड़ी नागर अपभ्रंश से तथा बिहारी मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई।

भाषा संस्कृति की संवाहिका होती है। हिंदी के विषय में यह बात और ज्यादा सही और सटीक ठहरती है क्योंकि यह अन्य भाषाओं की तरह टिककर किसी एक स्थान या क्षेत्र में सीमित या बँधी नहीं रही। इसका विस्तार भारत के अनेक भागों में और प्रवासी भारतीयों के साथ विदेश में भी हुआ। अतः भौगोलिक उपस्थिति की दृष्टि से हिंदी का विस्तार-क्षेत्र संस्कृत भाषा को छोड़कर किसी भी अन्य भारतीय भाषा की तुलना में

अत्यंत व्यापक है। हिंदी ने उन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के सांस्कृतिक जीवन में स्पंदन का संचार किया और उन विभिन्न क्षेत्रों स्वयं में ढलती गई। आज भाषा के अध्येतागण करीब पचास तरह की हिंदी का उल्लेख करते हैं जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है।

हिमाचल की तराई से लेकर दक्षिण में नर्मदा तथा विंध्य पर्वत श्रेणियाँ, पंजाब, सिंध और गुजरात, बंगाल और छोटा नागपुर के बीच के क्षेत्र को प्रायः हिंदी-क्षेत्र की परिधि में रखा जाता है। यहाँ शिक्षा, साहित्य और पत्रकारिता की भाषा

प्रमुखता से हिंदी है। मूलतः आर्य भाषा परिवार से आनेवाली हिंदी उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और हरियाणा आदि प्रदेशों में प्रमुख रूप से जन भाषा के रूप में बोली जाती है। बोलचाल में हिंदी के अनेक रूप मिलते हैं जिनमें अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, कन्नौजी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी, बघेली, मगही, गढ़वाली, मैथिली, निमादड़ी, कुमाऊँनी, ब्रज, खादी बोली, मालवी, मारवाड़ी और मेवाती प्रमुख रूप से आते हैं। इन्हें उपभाषाएँ/जन

भाषाएँ कहा जाता है। यहाँ पर हिंदी क्षेत्र की सीमाओं को स्पर्श करती हुई भाषाओं का भी उल्लेख करना ठीक होगा। हिंदी क्षेत्र के पूर्व में बाँग्ला और उड़िया, दक्षिण में तेलुगु और मराठी, उत्तर में नेपाली और पश्चिम में पंजाबी, गुजराती और सिंधी भाषाएँ आती हैं।

हिंदी क्षेत्र का देश की संस्कृति में उल्लेखनीय योगदान है। यहीं गंगा यमुना बहती हैं, राम और कृष्ण की लीला का स्थान भी यहीं है, भगवान् विश्वनाथ यहीं विराजते हैं, राजस्थान की वीरता की कथा, सूर, कबीर, तुलसी, विद्यापति, मीरा, और जायसी की रचनाएँ यहीं

हुई हैं। अमीर खुसरो, रहीम और रसखान भी यहीं हुए हैं। गुरु नानक की वाणी भी हिंदीमय है। संगीत की पूरी परंपरा हिंदी से अनुप्राणित है।

यह मानना अधिक उचित है कि हिंदी एक भाषा नहीं अपितु एक भाषा समष्टि को इंगित करती है। चूँकि भाषा का मूल रूप मौखिक है वह एक वाक्-व्यापार है अतः उसमें परिवर्तन स्वाभाविक है जो वह देश और काल से अनुबंधित होता है। जिसे हम 'बोली' कहते हैं, उसमें बड़ी विविधता मिलती है। पूरा हिंदी

क्षेत्र हजार मील से ज्यादा विस्तृत है और उसमें क्षेत्रीय भेद स्वाभाविक रूप से मिलते हैं। ऐसे में कई भाषाएँ मौखिक और लोक प्रचलित हैं तो कुछ में परिपक्व और स्तरीय साहित्य रचना भी प्राप्त होती है। इस तरह ग्रामीण रूप से ऊपर उठकर मारवाड़ी/राजस्थानी, ब्रज, अवधी, मैथिली, बुंदेली, मगही, छत्तीसगढ़ी और खड़ी बोलियाँ साहित्यिक दृष्टि से अधिक संपन्न हो चली हैं। आज खड़ी बोली हिंदी इन सबमें अग्रगण्य हो चली है। उल्लेखनीय है कि सुदूर मध्य दक्षिण में बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुंडा में दक्खिनी, दकिनी

या दक्खिनी हिंदी का रूप मिलता है जिसे हिंदी या हिंदवी कहा गया था। यह दक्षिण की किसी भी भाषा के निकट नहीं है। राजकीय संरक्षण से इसे बड़ा बल मिला था। आज विभिन्न बोलियों-उपभाषाओं के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भी बढ़ रही है। राजस्थानी और मैथिली के साथ भोजपुरी भी अपने को स्वतंत्र भाषा के रूप में परिगणित होना चाहती है। हिंदी के समष्टिगत रूप को ध्यान में रखने से हिंदी की शक्ति बढ़ती है।

उल्लेखनीय है कि आंध्र प्रदेश, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, मणिपुर, पंजाब, बंगाल, अंडमान व निकोबार

द्वीप समूह, अरुणाचल प्रदेश, लक्ष द्वीप, और मिजोरम में हिंदी बोलने वाले दूसरे स्थान पर हैं। नागालैंड, सिक्किम और चंडीगढ़ में भी अच्छी संख्या में हिंदीभाषी हैं। महाराष्ट्र, उड़ीसा, दादरा और नगर हवेली में भी काफी हिंदी भाषी बसते हैं। यह जरूर है कि जहाँ हिंदी क्षेत्रों में वे अधिकांशतः वे गाँव में रहते हैं, हिंदी क्षेत्र के बाहर शहरों में हिंदी अधिक प्रयुक्त होती है।

वस्तुतः भाषा का लोकाधार महत्वपूर्ण होता है और भारत के लोग विदेश में भी हिंदी का प्रयोग करते हैं। भारत के बाहर पाकिस्तान, बाँग्लादेश, बर्मा/म्यांमार और इंग्लैंड में बसे बहुप्रवासी भारतीय हिंदी का उपयोग करते हैं। फीजी, मॉरीशस, सुरिनाम, त्रिनिदाद, गयाना और दक्षिण अफ्रीका में भी हिंदी भाषी बसते हैं। नेपाल, भूटान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और श्रीलंका में भी हिंदी जानने और बोलनेवाले हैं। रोजगार और व्यापार की तलाश में अमेरिका, जर्मनी, खाड़ी के देशों में भी हिंदी भाषी पहुँच चुके हैं। वस्तुतः अब हिंदी किसी क्षेत्र विशेष की सीमा से नहीं बँधी है।

हिंदी भारतीय राष्ट्रभाषा हो, इस पर बहस जारी है और शायद आगे भी जारी रहेगी, परंतु हिंदी का राष्ट्र के लिए अवदान अविस्मरणीय है। भारत के स्वाधीनता संग्राम में हिंदी का विशेष योगदान रहा है। तब अनेकानेक अहिंदी भाषी जनों ने हिंदी को अपनाया था। हिंदी का राष्ट्रीय स्वरूप दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय, सुभाष बाबू, केशव चंद्र सेन, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी प्रभृति महानुभावों के योगदान से समृद्ध है। इन सबने समाज से जुड़ने और जोड़ने में हिंदी का उपयोग किया। यही नहीं, पंजाब के गुरु नानक, महाराष्ट्र के नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता, आसाम के शंकर देव, बंगाल के महाप्रभु चैतन्य आदि संतों की वाणी का रस हिंदी में प्रवाहित हुआ।

संस्कृति की दृष्टि से हिंदी का अवदान अनेक क्षेत्रों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में प्राप्त होता है। हमारे द्वारा प्रयुक्त शब्द अनुभव के सार-संक्षेप हुआ करते

हैं। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में हिंदी ने बड़ी लंबी दूरी तय की है। हिंदी के प्रचार प्रसार में फिल्मों ने एक अनुकूल वातावरण बनाने में विशेष भूमिका निभाई है। वह सहजता से बोधगम्य और प्रभावी है। हिंदी फिल्मों में काम करने के लिए अन्य भाषाओं से लोग आ रहे हैं। हिंदी सिनेमा बड़ा ही लोकप्रिय हो रहा है। आज हिंदी को जानने, समझने और बोलने वाले लोग देश में चारों ओर मिलेंगे। हिंदी में भाव प्रकट करना और दूसरों के भावों को समझना सरल है। वह चेतना का भी निर्माण करती है और संस्कृति की पहचान भी बनती है। अंग्रेजी वर्चस्व के शिकार होने के बावजूद भी जन-संचार माध्यमों, टेलीविजन और मीडिया में हिंदी की उपस्थिति बढ़ी है।

भारतीय संविधान की संकल्पना थी कि हिंदी का विकास इस तरह हो कि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के तत्वों को ग्रहण कर जन-जन की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। आज भारत की तमाम भाषाओं का साहित्य हिंदी में अनूदित होकर व्यापक जनसमुदाय तक पहुँच रहा है। व्यापार, मनोरंजन और कला के क्षेत्रों में हिंदी की उपस्थिति उल्लेखनीय है। वेबसाइट, फिल्म और धारावाहिक सीरियल हिंदी में हैं।

यह रेखांकित करना जरूरी है कि हिंदी लोकमानस के अधिक निकट है और उसकी शक्ति लोक से आती है। आज भी व्रतों, अनुष्ठानों, वाचिक कथाओं, लोक गीतों आदि में हिंदी पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरित हो रही है, निरक्षर या अनपढ़ों के बीच भी। लोक नृत्य, लोकाभिनय में और जीवन में समाए संस्कारों, ऋतुओं, निराई, रोपनी, बुआई, आदि विभिन्न अवसरों के गीतों में हिंदी का एक लोक सजीव है। माटी की सौंधी गंध नौटंकी, रामलीला, आल्हा, ढोला, कजरी, बारहमासा, फाग, बिरहा, पूरबी, चैता और स्वांग जैसे लोक पर्वों और उत्सवों में जीवंत है।

□

कुलपति

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय
हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

हिंदी की संस्कृति और उसका विश्वरूप

—प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी

हिंदी भाषा और उसके साहित्य ने कभी स्वतंत्र होने की चेष्टा नहीं की है। विशिष्टता उसका गुण नहीं। सबको लेकर चलना, सामान्यतः ही उसकी विशेषता है। सबको लेकर चलना ही हिंदी संस्कृति की अनन्यता है। भाषा संस्कृति की देन है अतएव भाषा की अपनी संस्कृति हो सकती है—बहुभाषिक देश होने के कारण यहाँ स्थिति थोड़ी भिन्न है। यहाँ एक भारतीय संस्कृति है जो एकक नहीं, सामासिक संस्कृति है और, दूसरे हर प्रदेश से जुड़ी भाषाओं से संबद्ध प्रदेश की एक प्रादेशिक संस्कृति होती है। प्रादेशिक संस्कृति प्रदेश के कुछ विशिष्ट सांस्कृतिक पक्षों की ओर संकेत करती है, परंतु संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रादेशिकता को कथ्य और अनुभूति के प्रकारों के साथ नहीं जोड़कर शैली के साथ संबद्ध किया गया है। उदाहरण के रूप में दंडी ने 7-8वीं शती में ढंग, विधि तथा शैली के लिए 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया था और उदाहरणतः, भारत के दो प्रदेशों के आधार पर वैदर्भ तथा गौड़ीय, दो प्रकार की काव्यशैलियों की बात की थी—

उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु अथवा गौडष्वक्षरडंबरः

और भी शैलियों का दंडी ने उल्लेख किया है। शैली यहाँ प्रादेशिक भिन्नता को चिह्नित करती है। यह प्रादेशिक भिन्नता विषय-वस्तु की नहीं, शैली की भिन्नता है, यद्यपि विषय-वस्तु में निहित सांस्कृतिक विशिष्टता की उपेक्षा नहीं की जा सकती मगर, जब

कोई भाषा किसी देश में सत्ता की भाषा बन जाती है, उसे उच्च स्थान प्राप्त हो जाता है तो उस भाषा का यह प्रयत्न बन जाता है कि वह सांस्कृतिक परंपरा के एकक रूप को स्वीकृति दे, विविधता को विनियोजित करे। संस्कृत भाषा के बारे में यह बात आमतौर से कही जाती है कि इस भाषा ने भारत के उच्च वर्ग की भाषा बन जाने के कारण लोक-प्रचलित, प्रादेशिक, भाषिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं को अपने में समेटकर भारतीय संस्कृति के एकक रूप को ही प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है परंतु तथ्य दूसरे संकेत भी देते हैं। संस्कृत के व्याकरण में पाणिनी ने संस्कृत के दो डिस्कोर्सों की बात की है। एक आम जनता के द्वारा प्रयोग में लाए जानेवाला डिस्कोर्स और दूसरा, जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत ने भी दो नाट्यों की बात की है। एक जनता के लिए और दूसरा, नाटक की परिपाटी के अनुसार। मगर यह 'स्व' और 'पर' का अंतर नहीं, एक आंतरिक और दूसरा बाह्य नहीं। लोक एवं शास्त्रीय, दोनों ही एक संस्कृति के दो पक्ष हैं, एक ही सांस्कृतिक नैरंतर्य के दो स्तंभ हैं। इसी तरह भारतीय संस्कृति एवं हिंदी संस्कृति के बीच द्वंद्व भी है, समझौता भी है और एक-दूसरे के संपूरक भी हैं। भारतीय संस्कृति और हिंदी संस्कृति की संपूरकता की यही अवधारणा है।

हिंदी के बारे में यह कहा जाता है कि यह एक

भाषा नहीं है, भाषाओं का समाहार है। मध्यदेश की सारी भाषाओं को समेटकर एक भाषा के अंतर्गत समाहित करने का काम हिंदी का रहा है। हिंदी को केवल खड़ी बोली से परिभाषित नहीं किया जा सकता। मैथिली, ब्रज, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि को हिंदी के अंतर्गत ही स्थान मिला है। हिंदी की अवधारणा एक छाते के समान है जिसके नीचे ये सारी भाषाएँ रची-बसी हुई हैं, मगर सवाल उठता है कि मध्यदेश की भाषा होने के कारण और भौगोलिक दृष्टि से एक विस्तृत क्षेत्र से जुड़े होने के कारण क्या इस अवधारणा को स्वीकृति मिली है? क्या हिंदी ब्रज, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी, मालवी, बुंदेलखंडी, खड़ी बोली को समायोजित कर अपने प्रभुत्व को प्रमाणित कर रही है? क्या यह शक्ति की भाषा का प्रतीक है? शक्ति की भाषा बनने के लिए राजनीतिक प्रभुत्व तथा अपने स्वरूप को वैधानिक रूप देना जरूरी होता है, शक्ति मिलते ही वैधानिक रूप की बात आती है। मगर आश्चर्य की बात है कि हिंदी ने यह काम कभी नहीं किया। अपने स्वरूप को मानकीय रूप देकर उसे ठोस बना देना हिंदी का कभी भी काम नहीं रहा। लचीलापन उसका सबसे बड़ा गुण है। यह भाषा सबकी भाषा है। सब इसको अपने-अपने ढंग से प्रयोग में लाते हैं। जरा सोचिए, हिंदी का प्रमाणिक व्याकरण कामताप्रसाद गुरु ने 1921 में और फिर किशोरीदास वाजपेयी ने 1958 में प्रकाशित किया था—बीच में छुट-पुट काम हुए।

यह बात नहीं कि हिंदी का कोई मानक या परिनिष्ठित रूप नहीं है, मगर साथ ही, उसमें एक जबरदस्त लचीलापन है। दूसरे के द्वारा अपने को ग्रहण करवाने का अदम्य आकर्षण है। हिंदी का यह द्वैत रूप है जो और किसी भाषा में दिखाई नहीं पड़ता। मगर यह बात भी सच है कि बहुत अधिक परिनिष्ठता के प्रति आकर्षण इस भाषा में कभी भी दिखाई नहीं पड़ा और यदि उस दिशा में कोई कोशिश हुई तो उसे नकार

दिया गया। इसका सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि सन् 1950 के बाद संपर्क और राजभाषा का ओहदा मिलते ही भारत सरकार की ओर से डॉ. रघुवीर ने दो जिल्दों में परिभाषिक शब्दावली के कोश तैयार किए, मगर उसका प्रयोग ही नहीं हो पाया और कोश बेकार सिद्ध हुए। इसलिए जब विद्वान वर्ग हिंदी के गलत प्रयोग, अंग्रेजी के साथ मिलाकर हिंदी के द्विभाषिक कोड का प्रयोग करते हैं, यथा 'मैं सनराइज से सनसेट तक काम करता हूँ' का उल्लेख कर अपना असंतोष प्रकट करते हैं तो स्वाभाविक रूप से एक यथार्थ (वस्तु स्थिति) की ओर भी संकेत कर देते हैं और वह यह कि हिंदी का एक परिनिष्ठित रूप है और दूसरा, उसका एक व्यावहारिक रूप भी है। हिंदी संस्कृति का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है। इनमें से कौन सा अधिक महत्वपूर्ण है, कहना मुश्किल है। अपने-अपने स्थान पर दोनों का बराबर महत्व है।

फिर भी सवाल रह जाता है कि हिंदी की एंग्रेला कॉन्सेप्ट (छाता अवधारणा) के पीछे रहस्य क्या है? समाजशास्त्र, संस्कृति तथा राजनीतिक इतिहास के प्रभाव स्वरूप एक भाषा और दूसरी भाषा में अंतर स्पष्ट होता है। एक ही भारोपीय परिवार की भाषा होने के बावजूद हिंदी, मराठी, बाँग्ला, पंजाबी, असमिया आदि में सांस्कृतिक दृष्टि से अंतर दिखाई पड़ता है। इस देश में संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी राजनीतिक प्रभुत्व की भाषाएँ रही हैं। कई भाषाएँ अधीनस्थ भाषाएँ रही हैं। सोशियोलॉजी ऑफ ट्रेड, इंडस्ट्री तथा अर्थनीतिक विकास से जुड़ी भाषाएँ गिनाई गई हैं। कुछ भाषाएँ सो शियोलॉजी ऑफ कॉम्बैटिव सरवाइवल की प्रतीक बनी हुई हैं। हिंदी इनमें से अलग है। भारत के बहुत से द्वैत अनुभूतियों की तरह इसके भी दो रूप हैं। उदाहरण के रूप में, भारत निर्गुण और सगुण, दोनों को स्वीकारता है। साधारणीकरण तथा पृथक्करण नाटक की यह द्वैत अनुभूति स्वीकृत है। लोक और शास्त्र नैरंतर्य के दो स्तंभ हैं। विरुद्धों की संपूरकता भारतीय विचारधारा की बुनियादी बात है। इसीलिए यहाँ सुर और असुर, सौंदर्य



और भयंकर एक-दूसरे के विरोधी नहीं, संपूरक हैं। इसी प्रकार हिंदी लोक की भाषा है तो भारतीय समाज के एक वृहत् हिस्से में प्रचलित भाषाओं के माध्यम से प्राप्त अर्थ के विस्तृत क्षेत्र के लगातार की भी भाषा है। दूसरे शब्दों में, अभिलेखी भाषा है।

वस्तुतः हिंदी एक बहुभाषिक उपस्थिति है जिसका आधार सामुदायिक विचार दृष्टि है, की भावना है। इसीलिए हिंदी परंपरा के नानात्व का समावेशन कर पाती है। सही मायने में हिंदी परंपरा है—जो रोमिला थापर कहती हैं। परम पर का है और इस प्रकार की भावना उसके चरित्र के साथ जुड़ी है। साहित्य का भी यही अर्थ है, मगर हिंदी समानांतर परंपराओं के साथ नहीं जीती है, वैकल्पिक परंपराओं के साथ जीती है। इसीलिए इसमें वैश्विकता वर्तमान है। सारे विश्व भर में कबीर, तुलसी, प्रेमचंद की प्रसिद्धि हिंदी के वैश्विक रूप को अभिव्यक्त करती है।

सूरीनाम में हिंदी में सूरीनामी का प्रभाव दिखता है, दक्षिण अफ्रीका में नेटाली का और मॉरीशस में भोजपुरी का। आज विश्व के दरबार में, संयुक्त राष्ट्र संघ में, अंतरराष्ट्रीय मेज पर राजनेताओं के द्वारा हिंदी का प्रयोग आम बात है। हमारे पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र भाई मोदी इसके अग्रदूत हैं।

महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, सुभाष चंद्र बोस, आचार्य काका कालेलकर, विनोबा भावे की अपनी भाषाएँ गुजराती, बँगला और मराठी थीं, लेकिन उन

महापुरुषों ने हिंदी भाषा में देश को जोड़ने की ताकत को पहचाना था। महात्मा गांधी जी ने 21 जनवरी, 1918 में एक पत्र के द्वारा टैगोर से पुछवाया था कि उन्हें इंदौर में आयोजित हिंदी सम्मेलन में हिंदी को लेकर बोलना है। क्या आप इस संबंध में कोई सलाह दे सकते हैं? रवींद्र नाथ ने 24 जनवरी, 1918 के पत्र में लिखा, 'महात्माजी आपको यह कहना होगा कि हिंदी

इस देश की राष्ट्रभाषा है परंतु दूसरी भारतीय भाषाओं की उन्नति और विकास के लिए हिंदी को लगातार सहयोग देना होगा।'

आज हिंदी समेत भारतीय भाषाओं में इंटरनेट का प्रयोग अंग्रेजी में इंटरनेट के प्रयोग से अधिक हो गया है। अनुमान है कि वर्ष 2021 तक हमारे देशवासी अंग्रेजी से अधिक हिंदी भाषा में इंटरनेट का उपयोग करने लगेंगे और विश्वभाषा के रूप में हिंदी की स्वीकृति बढ़ती रहेगी।

हिंदी विश्व बाजार में प्रभावशाली भाषा बनकर उभर रही है। इस बाजार के लिए विश्व की सबसे बड़ी कंपनियाँ हिंदी को ध्यान में रख कर सुविधाएँ विकसित कर रही हैं। वैश्वीकरण का मूलमंत्र है, नफा कमाना। कॉरपोरेट संस्थाएँ अब समझ गई हैं कि व्यापार में नफा के लिए भारत में अपने व्यवसाय के प्रसार के लिए हिंदी का प्रयोग जरूरी है। कंप्यूटर प्रोग्रामिंग के जानकारों का मानना है कि कंप्यूटिंग लैंग्वेज के लिए संस्कृत/हिंदी एक अनुकूल भाषा है। देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता भी सराही जाती है आज विदेशों में हिंदी सीखनेवालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है।

हिंदी का एक राष्ट्रीय रूप है, विशेष रूप से स्वाधीनता आंदोलन के समय हिंदी सीखना एक राष्ट्रीय कृत्य माना जाता था। सन् 1947 से पहले हिंदी एकमात्र भाषा थी जिसने अनुवाद का काम सर्वाधिक किया। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यों के अनुवाद के माध्यम से हिंदी ने देश को जोड़ने का महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य किया। इसका एक राष्ट्रीय, दूसरा प्रादेशिक या क्षेत्रीय, तीसरा, अर्ध-क्षेत्रीय (दलित साहित्य) तथा चौथा, पॉप संस्कृति से जुड़ा टपोरी रूप है। खासतौर से यह बात कही जाती है कि हिंदी फिल्मों में हिंदी संस्कृति का कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ एक पॉप कल्चर, अप-संस्कृति का विस्तार होता है। मगर यथार्थ यह है कि लाखों-करोड़ों की संख्या में लोग उसे हिंदी फिल्म कहते हैं और इस यथार्थ को झुठलाया नहीं जा सकता।

हिंदी के जन्मकाल में यह भाषा युगपत् भाषिक तथा लिखित, संस्कृत तथा प्राकृत, मौखिक (orality) तथा पाठगत (textuality) के समाहार के रूप में प्रकट हुई थी। इस भाषा के लिए साहित्य तथा समुदाय (community) एक-दूसरे के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हैं और परिणामतः इस भाषा ने, पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, 'साहित्य को मानव समाज के सामूहिक चित्त की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है'। यह सोचना गलत नहीं होगा कि साहित्य अकादेमी की ओर से शिशिर कुमार दास द्वारा भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य के समाकलित इतिहास रचना के रीति विधान जुटाने का काम बड़े आश्चर्यजनक ढंग से इसी भाषा ने किया है। भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य की रचना के रीति विधान (methodology) का उल्लेख करते हुए डॉ. दास कहते हैं कि भारतीय साहित्य भारतीय जनता की स्मरणीय अभिव्यक्तियों का समाहार है। साहित्य की यह सत्ता राजनीतिक अनिवार्यता से निर्धारित नहीं हुई वरन् समुदाय (communality) की भावना

से निर्धारित हुई है, जो भावना सदियों से हमारे भीतर मौजूद है।

साहित्य और समुदाय को एकीकृत रूप में देखने की इस परंपरा ने हिंदी के विद्वानों को निःसंकोच हिंदी के अंतर्गत दूसरी भाषाओं को जोड़ने का आधार प्रदान किया है। रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि अपभ्रंश रचनाएँ सदा से भाषा काव्य के अंतर्गत मानी जाती रहीं। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने अपभ्रंश काव्य को 'पुरानी हिंदी' कहा है। 'बोधगान ओ दोहा' को राहुलजी ने बाँग्ला नहीं हिंदी माना है। उनका कहना है कि दोहे की परंपरा हिंदी में विद्यमान है, बाँग्ला में नहीं। राहुलजी ने अपभ्रंश काव्य को 'पुरानी हिंदी' का संग्रह कहा है। उस समय के कवियों में स्वयंभू को हिंदी का सर्वोत्तम कवि कहा है। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि यदि यह कहा जाए कि राजस्थानी और हिंदी आदिकाल में एक थीं तो अत्युक्ति नहीं होगी।

हिंदी संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि बहुत सी जातियों, सभ्यताओं, प्रदेशों, धर्मों तथा भाषाओं का समाहार होने के फलस्वरूप इसके किसी एक हिस्से का आविष्कार भारतीय साहित्य के दूसरे हिस्से की खोज के लिए हमें रास्ता दिखाते हैं : हिंदी का भक्ति काव्य हमें अंततः तमिल आलवारों तक पहुँचा देता है।

इस भाषा में सांस्कृतिक विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति है। समुदाय के आश्रय से ऐतिहासिक क्रियात्मकता का प्रतिफलन है। प्रादेशिक अस्मिता का प्रसार है मगर साथ ही उसकी विषय-वस्तु, सबको समेटने की चाह, द्वंद्व तथा समझौते की स्थितियाँ पैदा करता है और तब (हिंदी) क्षेत्र और (भारत) देश एक-दूसरे के संपूरक हैं, इसका एहसास हो जाता है। और इस तरह हिंदी संस्कृति अलग होते हुए भी भारतीय संस्कृति का हिस्सा बन जाती है।

□

केंद्रीय हिंदी संस्थान
(दिल्ली कार्यालय)

इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली

हिंदी विश्व को चाहिए दृढ़ इच्छाशक्ति

—डॉ. सच्चिदानंद जोशी

प्रखर राष्ट्रवादी हिंदी सेवी माधवराव सप्रेजी पर शोध कार्य करते समय उनके एक निबंध की एक पंक्ति ने मुझे बहुत छुआ था, “सारांश में भारत राष्ट्र का भविष्य केवल दो बातों पर अवलंबित है। एक तो भारतवासी अपने राष्ट्रीय साहित्य का सम्यक ज्ञान प्राप्त करें और दूसरी बात यह कि सभी शिक्षालयों में शिक्षा मातृभाषा के द्वारा दी जाए।” आज जब इस वाक्य के लिखे जाने के सौ वर्ष बाद हम हमारे आस-पास दृष्टिपात करते हैं तो क्या दिखाई देता है? आज हमारे यहाँ शिक्षा व्यवस्था और समाज में निर्वासन का सबसे ज्यादा दंश हमारी अपनी भाषाएँ भोग रही हैं। आज जब कुछ स्वनामधन्य बुद्धिजीवी इस बात को कहते गर्व से फूले नहीं समाते कि “अंग्रेजी तो अब समूचे विश्व की संपर्क भाषा बन गई है।” तब मन विषाद और ग्लानि से भर उठता है। भारत और भारतीय संस्कृति से मेल रखनेवाले अन्य देशों में अंग्रेजी गुलामी का प्रतीक रही और अंग्रेज शासकों ने उसे शासकों की और प्रकारांतर से दमन की भाषा बनाए रखा। उसी अंग्रेजी को आज संपर्क भाषा के रूप में स्वीकारते हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी गर्व का अहसास करते हैं, यह खेद की बात है।

जब सूचना क्रांति का जन्म हुआ और हम

संगणक युग में आ गए, तब संगणक की मूल भाषा अंग्रेजी ही थी। वैसे संगणक की मूल भाषा तो बायनरी थ्योरी ही है जिसमें एक आंकड़ा शून्य है और दूसरा आंकड़ा ‘शून्य नहीं’ है। चूँकि वह आकृति ‘एक’ अंक जैसी दिखती है इसलिए कहा गया कि संगणक की बायनरी भाषा में ‘शून्य’ और ‘एक’ का समावेश है, लेकिन बायनरी सूत्रों को जब भाषा के रूप में अभिव्यक्ति मिली या दी गई जो प्रारंभ में वह भाषा अंग्रेजी ही थी। ऐसे में संगणक का प्रयोग करने के लिए अंग्रेजी की अनिवार्यता बढ़ी। तब कुछ लोगों ने इस बात पर भी गर्व महसूस किया कि “हम भारतीयों का अंग्रेजी बोलने में कोई सानी नहीं है।” उस समय अपनी अंग्रेजी पर गर्व करनेवालों ने कतई यह नहीं सोचा कि ऐसा करके हम अपनी भाषाओं का कितना नुकसान कर रहे हैं? सूचना प्रौद्योगिकी के अविर्भाव ने अन्य भाषाओं को कितना पीछे धकेल दिया, हम सब जानते हैं। उस धक्के से अब जाकर उबर पाई हैं हमारी भाषाएँ। ऐसे में हम कैसे अपनी मातृभाषाओं को समूची व्यवस्था से बाहर निकाल कर ऐसी दंभोक्ति कर सकते हैं?

हिंदी का विश्व बहुत समृद्ध और व्यापक है। हिंदी बृहत्तर भारतीय समाज की प्रमुख संपर्क भाषा रही है। अनादिकाल से इसमें संवाद हो रहा है तथा

साहित्य का सृजन किया जा रहा है। हिंदी भाषा का विश्व सिर्फ साहित्य तक सीमित नहीं था, लेकिन ऐसा भ्रम फैला दिया गया कि हिंदी साहित्य की भाषा तो हो सकती है, विज्ञान की भाषा नहीं हो सकती, संपर्क की भाषा नहीं हो सकती। इसी भ्रम के चलते हिंदी को आधुनिक आविष्कारों और तकनीक से दूर कर दिया गया। ऐसा सिर्फ हिंदी के ही साथ हुआ हो, ऐसा नहीं है। ऐसा उन तमाम क्षेत्रीय भाषाओं या स्थानीय भाषाओं के साथ भी हुआ, जिनका अपना संसार हिंदी के सानिध्य में फल-फूल रहा था। दुर्भाग्य से हिंदी के साथ ऐसा नहीं हुआ। हिंदी के विश्व को तकनीक का वैसा साथ आरंभिक दिनों में नहीं मिला जैसा मिलना चाहिए था। यही कारण रहा कि हिंदी की व्यापकता को बढ़ाने के तमाम प्रयासों के बाद कहीं तकनीक से, तो कहीं दृढ़ संकल्प की कमी से हिंदी अपने दायरे में कमजोर पड़ती गई।

संकल्प शक्ति का उल्लेख आया तो उस संदर्भ में भोपाल में हुए पिछला विश्व हिंदी सम्मेलन से जुड़ी एक घटना याद आ जाती है। निस्संदेह पिछला सम्मेलन कई मायनों में यादगार रहा और उस सम्मेलन के बाद से हिंदी को लेकर और ऐसे सम्मेलनों की उपादेयता को लेकर भी दृष्टिकोण में बदलाव आया है। भोपाल के विश्व हिंदी सम्मेलन ने हिंदी सम्मेलनों को सिर्फ साहित्य के दायरे में सिमटा देने की प्रवृत्ति को खारिज करते हुए हिंदी से जुड़े विभिन्न आयामों पर विस्तृत चर्चा कराने की क्रांतिकारी पहल की। यहाँ चर्चा उस बात की नहीं है, चर्चा संकल्प की है। हिंदी को बढ़ावा दिए जाने की वकालत करते हुए सम्मेलन के दौरान कुछ जनजागरण के अभियान भी भोपाल में हुए, जैसे कि दुकानों के बोर्ड को हिंदी में लिखने का आग्रह करना आदि। लेकिन उसमें सबसे महत्वपूर्ण यहाँ वह संकल्प, जिसके चलते मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री भी उस दौरान बाजार में

घूमे और व्यापारियों से अपने बोर्ड हिंदी में लिखने का आग्रह किया। दुकानदारों को हिंदी में बने बोर्ड दिए भी गए ताकि वे उन्हें अपनी दुकानों पर लगाएँ।

हिंदी संबंधी व्याख्यान या चर्चा में एक प्रश्न अक्सर मैं श्रोताओं से करता हूँ “आप जब ए.टी. एम. में जाते हैं और वहाँ भाषा का विकल्प सामने आता है तो आप कौन सी भाषा चुनते हैं?” बताने में कष्ट होता है लेकिन यह सत्य है कि अधिकांश लोग अंग्रेजी का ही विकल्प चुनते हैं। दलील यह कि अंग्रेजी में ‘ट्रांजेक्शन इजी’ है। अब यदि हम हिंदी में लेन-देन करेंगे ही नहीं तो हम कैसे जान पाएँगे कि हिंदी में लेन-देन कठिन है या आसान? संकल्प को मन में लाना, उसे एक बार के लिए कृति में उतारना और उसे अपने जीवन में हमेशा के लिए ढालना, तीनों अलग बातें हैं।

‘सरस्वती’ के सितंबर 1917 के अंक में सप्रेजी का एक निबंध छपा था, ‘राष्ट्रीयता की हानि का कारण’। इस निबंध में सप्रेजी एक स्थान पर लिखा है, “यदि इस देश के लिए किसी एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता ही है तो वह अंग्रेजी भाषा कदापि नहीं हो सकती। यह अधिकार हिंदी भाषा का है। हाँ, यह बात सच है कि इसे समझने और बोलने में दक्षिण के कुछ लोगों को कठिनता मालूम होती है, परंतु यह कठिनता थोड़े ही परिचय से दूर की जा सकती है। हिंदी ऐसी सरल भाषा है कि इसे साधारण बुद्धिवाला मनुष्य भी प्रायः छह महीने में सीख सकता है। सामयिक साहित्य के पाठक अच्छी तरह जानते हैं कि हिंदी इस देश की राष्ट्रभाषा हो चुकी है। अब राष्ट्रीय दृष्टि से प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह कम-से-कम दो भाषाएँ अवश्य सीखे, एक अपनी मातृभाषा और दूसरी राष्ट्रभाषा (हिंदी)।”

आज से एक सौ एक वर्ष पूर्व भी सप्रेजी ने हिंदी सीखने को लेकर दक्षिण के कुछ राज्यों में

होनेवाली परेशानी और उसके उपायों पर चर्चा की थी, लेकिन उन राज्यों में हिंदी की बेहतर शिक्षण व्यवस्था उपलब्ध होने से आज वहाँ हिंदी राज्य की प्रमुख संपर्क भाषा बन गई है।

आज हमारे कुछ साथी हिंदी की वकालत करते इस बात पर संतोष व्यक्त करते हैं कि हिंदी बाजार और विज्ञापन की भाषा बन चुकी है। उनका सोचना कितने भोलेपन का परिचायक है? वे भूल जाते हैं कि मूल रूप से बाजार के दो अंग होते हैं, एक बेचनेवाला और एक खरीदनेवाला। बाजार की भाषा और बाजार का चलन कैसा हो, यह

तो बेचनेवाला ही नियोजित तथा नियंत्रित करता है। इसलिए वह अपनी सुविधानुसार भाषा का भी चयन करता है। जो लोग हिंदी को बाजार की भाषा मानने का भ्रम पाले हैं, वे भूल जाते हैं कि बाजार में बेचनेवाले की भाषा हिंदी नहीं है। बेचनेवाले ने अपने धंधे में मुनाफा कमाने के लिए खरीदनेवाले की भाषा हिंदी बना रखी है, वह भी सीमित मात्रा में। इसलिए वे उत्पाद जो खपत में ज्यादा है लेकिन दाम में कम है, उन पर हिंदी की छाप देखी जा सकती है। लेकिन जो उत्पाद दाम में ज्यादा या बहुत ज्यादा है उनका पूरा व्यवहार अंग्रेजी में ही है। बाजार ने तो बल्कि ऐसा करके भाषा के आधार पर एक नया वर्ग संघर्ष पैदा करने का प्रयास किया है। एक वे हैं जिनकी क्रय क्षमता अधिक है तथा जिनकी भाषा अंग्रेजी है और दूसरे वे, जिनकी क्रय क्षमता कम या बहुत कम है तथा जिनकी भाषा हिंदी है। भारतीय सिनेमा कलाकार इसके बहुत अच्छे उदाहरण हैं, जो काम तो हिंदी

फिल्मों में करते हैं, लेकिन बोलने या लिखने में हिंदी का इस्तेमाल करने से कतराते हैं या संकोच करते हैं।

बहुत थोड़े फर्क से ऐसा ही कुछ हमारी शिक्षा के साथ भी हुआ है। शिक्षा में भी हमने भाषा के आधार पर एक अलग वर्ग संघर्ष पैदा कर दिया है। अध्ययन अध्यापन का माध्यम क्या हो, इस पर

आजादी से लेकर आज तक सिर्फ बहस और प्रयोग ही करते आ रहे हैं। पता नहीं हमें अब और किन विद्वानों की सम्मति चाहिए इस बात को समझने के लिए प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए जिससे हमारे ज्ञान का आधार मजबूत हो सके।

अंग्रेजी माध्यम का भूत तो हमारे सिर पर था ही, अब अन्य विदेशी भाषाओं का भी भूत हमारे सिर पर मँडराने लगा है। अध्ययन प्रणाली में हिंदी पहले 'विशेष' भाषा से 'सामान्य' भाषा में बदली और अब वह 'वैकल्पिक' बनकर बाहर हो जाने की कगार पर है। इस बारे में जो दलीलें दी जाती हैं, वे भी कम रोचक नहीं हैं। एक तो यह कि हिंदी को अलग से पढ़ाने की आवश्यकता क्यों है? वह तो बच्चे घर पर ही सीख जाते हैं। यह दलील कितनी खोखली है, इसका प्रत्यय हमें अपने घर में या आस-पास स्वतः ही मिल जाएगा। इसके लिए विशेष शोध करने की आवश्यकता नहीं होगी। दूसरी दलील इससे भी ज्यादा खतरनाक लेकिन मजेदार है और वह यह कि हिंदी 'स्कोरिंग' नहीं है। आज जबकि हमारा पूरा ध्यान ज्ञान पर नहीं प्राप्तांकों के प्रतिशत पर टिका है, यह दलील कैसे अस्वीकार की जा सकती है? जिन भाषाओं को 'स्कोरिंग' माना गया उनमें फ्रेंच प्रमुख है। हम यह बात कब समझेंगे कि जो भाषा

हमारी है ही नहीं उसे पढ़ाने वाले भी उसे कहीं से सीखकर या पढ़कर ही सिखाएँगे। अपने सीमित ज्ञान के आधार पर वे पढ़ाएँगे भी और परीक्षा भी लेंगे। इसलिए जितना दायरा उनका होगा, उसी के आधार पर अंक भी बँटेंगे। ऐसे में उस भाषा का स्कोरिंग होना तो लाजिमी ही है। जब माता-पिता गर्व से अपने बच्चे की अंकसूची दिखाते कहते हैं कि उनके बच्चे को फ्रेंच में सर्वाधिक अंक मिले हैं तो पूछने की इच्छा होती है कि क्या कहीं उनके मन में इस बात का जरा भी खेद है कि उनके बच्चे ने हिंदी की जरा भी पढ़ाई नहीं की।

हिंदी के साथ एक और प्रचार यह किया गया कि हिंदी भाव प्रधान भाषा है लेकिन इसमें वृत्तिकता (प्रोफेशनलिज्म) का अभाव है। आरंभ में इस प्रचार का गूढ़ अर्थ नहीं निकाला गया। भाषा का भाव प्रधान होना, भाषा की एक विशेषता ही है। भाषा का प्रवाह भावाभिव्यक्ति के लिए श्रेष्ठ हो तो इसमें किसी को क्या दोष नजर आ सकता है? लेकिन इस भ्रमजाल के कारण हिंदी को वृत्तिकता से दूर किया जाता रहा है। हिंदी एक भाषा के रूप में स्थापित हुई लेकिन एक माध्यम के रूप में स्थापित होने के लिये संघर्ष करना पड़ा। हिंदी में हिंदी भाषा की तो पढ़ाई हो सकती है लेकिन प्रबंधन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी अथवा चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई नहीं हो सकती, यह विचार वर्षों तक हिंदी को पीछे धकेलने में सफल रहा। आज जब कुछ स्थानों पर चिकित्सा विज्ञान अथवा प्रौद्योगिकी हिंदी में पढ़ाए जाने का क्रम शुरू हुआ है, तब भी उसे संदेह की नजरों से देखा जा रहा है। एक मजबूत संकल्प और उसके दृढ़निश्चयी क्रियान्वयन के बगैर उसका सफल हो पाना संभव नहीं दिखता है।

हिंदी को लेकर इन दिनों बहुत सारे प्रयोग और तकनीकी आविष्कार हुए हैं। उनके कारण हिंदी के सांस्कृतिक क्षेत्र में वृद्धि हो सकती है लेकिन हमारे मन के कुछ दुराग्रह और कुछ कारण हैं जिनके

कारण हम हिंदी को उसके निर्दिष्ट स्थान तक नहीं पहुँचा पा रहे हैं।

माधवराव सप्रेजी ने अपने लंबे निबंध 'हमारे सामाजिक हास के कुछ कारणों का विचार' जो 'सरस्वती' के जुलाई से अक्टूबर 1915 के बीच छपा था, में विदेशी भाषा और विदेशी शिक्षा भी हास का एक प्रमुख कारण बताया है। आधुनिक शिक्षा पाना और विदेशी शिक्षा पाना, इसमें फर्क है। उसी प्रकार विदेशी भाषा सीखना और उसी को प्रयोग में लाना, इसमें भी फर्क है। हम लोग शारीरिक अथवा भौगोलिक परतंत्रता या स्वतंत्रता की बात तो कर लेते हैं, लेकिन मानसिक और वैचारिक परतंत्रता के खतरों को नहीं समझ पाते।

हिंदी भाषा का विश्व निस्संदेह बढ़ा है और नित नए व्यापक फलक उद्घाटित हो रहे हैं। लेकिन अभी भी सर्व स्वीकार्य संपर्क भाषा के रूप में जिस संपूर्णता का सम्मान हिंदी को मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी को वर्गीय भेद से ऊपर उठाकर समाज में सर्वोच्च स्थान पर बैठाने का संकल्प दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ लिया जाना चाहिए। जिस दिन हिंदी अपने पूरे वैभव के साथ क्षितिज पर छा जाएगी, ऐसी बहुत सी समस्याएँ जिनसे आज भारत या अन्य देश जूझ रहे हैं, अपने आप समाप्त हो जाएँगी। बहुत सारी बातें जो हिंदी के माध्यम से सहज साध्य हैं, वे किसी विदेशी भाषा के माध्यम से संप्रेषित नहीं की जा सकतीं। यह बात हम जितनी जल्दी समझ जाएँगे और दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ उस पर अमल कर पाएँगे, उतना ही अच्छा होगा हिंदी के लिए।

□

सदस्य सचिव,

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र,

11, मान सिंह रोड,

नई दिल्ली-110011

हिंदी समाज और हमारी संस्कृति

— श्री आलोक मेहता

संस्कृति का मूल आधार भाषा है और भाषा का चरमोत्कर्ष साहित्य में प्रकट होता है। भाषा और साहित्य का उत्थान समाज, संस्कृति और जीवन का उत्थान है। सारी आधुनिक चुनौतियों के बावजूद हिंदी आश्चर्यजनक उन्नति कर रही है। पूर्वोत्तर और दक्षिण भारत में ही नहीं, अमेरिका, यूरोप और चीन जैसे एशियाई देशों में भारत की बढ़ती सामाजिक-आर्थिक भाक्ति के साथ हिंदी के पठन-पाठन के प्रति तेजी से लगाव देखने को मिल रहा है। दूसरी तरफ मशीनी युग सामाजिक जीवन को सस्ता और अर्थहीन बना रहा है। इससे हिंदी समाज-संपूर्ण भारत को बचाने का उपाय संस्कृति की रक्षा और निर्माण की चिर जागरूक चेष्टा और उस चेष्टा की आवश्यकता में अखंड विश्वास का ही मार्ग है। इस शक्ति को उत्पन्न करने का एकमात्र रास्ता है—शिक्षा। शिक्षा जो निजी साक्षरता, हिंदी का ज्ञान, जानकारीयों नहीं हों, वरन् समाज में व्यक्ति की रुचि संस्कार की, परख करने की क्षमता और संस्कृति के प्रति जगाव एवं गौरव की हो। बिना गहरी और विस्तृत अनुभूति के संस्कृति नहीं है।

हिंदी समाज का वर्तमान इतने बड़े दायरे में फैला हुआ है कि उसमें परंपरा भी निभ रही है, आधुनिकता भी ध्वनित हो रही है और उत्तर आधुनिकता भी अपना रूप गढ़ रही है। इस दायरे की व्यापकता शिल्प और शैली में भी है और वस्तु तथा विचार में भी। कहीं नए

विचार पर परंपरावादी भौलियों में व्यक्त हो रहे हैं, तो कहीं नए शिल्प और मुहावरों में परंपरावादी कथ्य को आयाम दिए जा रहे हैं। आज हिंदी का युवा साहित्यकार पारंपरिक जीवन मूल्यों को अपने संघर्षों के आईने में परख रहा है। सच यह है कि परंपरा के घर से निकलकर ही आधुनिकता की पहचान की जा सकती है। संस्कृत हिंदी की जननी है। संस्कृत में सभ्यता और संस्कृति के वाहक लोग 'आर्य' अथवा 'सूर्य' कहलाते थे। वास्तव में ये लोग चिंतन के मिथक थे। सतत मनन से जीवन को भौतिक तथा आध्यात्मिक स्तरों पर संपन्न करते थे। आर्य शब्द 'ऋ' धातु से बना है। इसका अर्थ 'जाना, चलना, आगे बढ़ना' है। निरंतर चलते-फिरते भारतीय मनीषी और व्यापारी भारत की सीमाएँ पार कर दूर-दूर तक यात्रा करते थे। 'चरैवेती-चरैवेती' हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। नए विचारों द्वारा नए आविष्कार, नए आविष्कारों, नव-निर्मित पदार्थ, उनसे नए जीवन-स्तर और इनमें नए जीवन क्रमों का प्रसार इनको लेकर हम पश्चिम की ओर अग्रसर हुए।

हिंदी समाज को अपनी संस्कृति पर गौरव के साथ साथ जननी संस्कृत की गौरव-गाथा का भी स्मरण रखना होगा। चार हजार वर्ष ईसा पूर्व, नदियों और भीषण वनों को पार करते हुए भारतीय यूरोप की ओर अग्रसर हुए और यूरोप की भाषाएँ संस्कृत से जुड़ीं। JepeerceleS eqbpeerceleS wJeoS

kebvenepcele जैसे मूलभूत शब्द संस्कृत के मातृ, पितृ, सूनू, दुहित के वंशज हैं। भारत की यूरोप को, और उसके द्वारा आधुनिक संसार को सबसे बड़ी देन भारत का परिष्कार है—ऐसी भाषा, जो सतत सर्जनशील है। इस पृष्ठभूमि में हिंदी समाज को समय के साथ अपनी भाषा को अधिक ग्राह्य और व्यापक बनाना होगा। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। प्राचीनकाल में हिंदू संस्कृति ही भारत की प्रतिनिधि संस्कृति रही है। इसके दो कारण रहे हैं—एक तो हिंदू संस्कृति ने अपनी विविधता और समन्वय वृत्ति से बौद्ध, जैन आदि मतों के अधिकांश मूल्यवान विचारों एवं शिक्षाओं को बहुत कुछ आत्मसात किया। दूसरे, भारत में जैसा सर्वांगीण विकास हिंदू संस्कृति का हुआ, वैसा किसी दूसरी संस्कृति का नहीं हो सका।

संस्कृति से जुड़ा मुद्दा है—हिंदी समाज की सक्रियता का। अपनी भाषा और संस्कृति पर गौरव के साथ अपने कर्तव्य को भी याद रखना होगा। हिंदी के अध्यापकों, लेखकों, प्रकाशकों, पत्रकारों, छात्रों और विभिन्न क्षेत्रों से जुड़े हिंदीभाषी लोगों की संख्या करोड़ों में है। फिर भी ऐसा क्यों होता है कि हिंदी समाज पुस्तक प्रेमी समाज नहीं बन पाया है? चीनी, जापान, जर्मन या अंग्रेजी भाषियों के देशों में क्या आधुनिक संसाधन नहीं पहुँचे हैं? टेलीविजन या इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम भारत से कम नहीं हैं। फिर हिंदी समाज के लिए पुस्तकों के लिए गहरे लगाव का संकट क्यों है? हर हिंदी प्रेमी यदि पाँच-दस लोगों को हिंदी पुस्तक खरीदने के लिए प्रेरित करने लगे, तो हिंदी में श्रेष्ठ पुस्तकों के प्रकाशन और बिक्री की संख्या करोड़ों में पहुँच सकती है। पाठकों की अपेक्षाओं के अनुरूप पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिए। जिस तरह पुराने समय में हर मंदिर के साथ गुरुकुल और आयुर्वेद औषधि वितरण केंद्र होता था, वर्तमान दौर में अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए चिंता करनेवाले हर मंदिर, गुरुद्वारे में थोड़ा स्थान पुस्तकालय और पुस्तक बिक्री

केंद्र के लिए क्यों नहीं रख सकते? इससे बौद्धिक और सर्जनात्मक जिंदगी में व्यापक सक्रियता और हिस्सेदारी बढ़ेगी। अभी तो पुराने शहरों-कस्बों में वर्षों से चल रहे अधिकांश पुस्तकालयों की दशा खराब हो रही है। ऐतिहासिक पुस्तकालयों के दुर्लभ ग्रंथ तक सुरक्षित नहीं रखे जा रहे हैं। आखिरकार बाँग्ला, मराठी, मलयालम, तमिल जैसी भारतीय भाषाओं में पुस्तक प्रेमी पाठकों की कमी नहीं है। फिर हिंदी समाज पुस्तक प्रेमी क्यों नहीं बन पा रहा है? हिंदी को संविधान की राजभाषा मानकर सरकारी औपचारिकता का कर्मकांड बनाए रखने से भाषा और समाज, दोनों के लिए समस्याएँ पैदा होंगी। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने दशकों पहले लिखा था—‘हमें जीवन को कर्ममय बनाने के लिए भाषा की गति को बढ़ाना चाहिए। भाषा की शिथिलता जीवन को शिथिल कर देती है।’ जो आत्म संघर्ष, स्वाभिमान और निरंतरता हिंदी साहित्य में है, वह हिंदी समाज में पूरी तरह नहीं बन पा रही है। साहित्य और समाज की यह दूरी घातक सिद्ध हो सकती है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट में भी इस बात को रेखांकित किया गया था कि विकास के लिए सांस्कृतिक परंपरा का उपयोग होना चाहिए और इस उपयोग में मनुष्य की भाषाओं की रक्षा शामिल है। सबसे अधिक आवश्यकता हिंदी समाज की जागरूकता की है। हिंदी एक खुली और ग्रहणशील भाषा है और उसने भाषाओं के साहित्य की महत्वपूर्ण पुस्तकों को अनूदित कर अपना बनाया है। हिंदी ने अपनी अखिल भारतीयता को बहुत ईमानदारी और निष्ठा के साथ निभाया है। हिंदी समाज का दायित्व है कि वह इस भारतीयता को श्रेष्ठतम निरूपित करते हुए विस्तार के लिए व्यापक अभियान चलाए।

□

वरिष्ठ पत्रकार,
 ए-16, नवभारत टाइम्स हाउसिंग सोसायटी,
 मयूर विहार, फेज-एक,
 दिल्ली-110091

हिंदी का अश्वमेध : ताकि हम जड़ों से जुड़े रहें

— श्री विश्वनाथ सचदेव

एक और विश्व हिंदी सम्मेलन होनेवाला है। यह ग्यारहवाँ सम्मेलन होगा। लगभग आधी सदी पहले सन् 1975 में नागपुर से शुरुआत हुई थी, विश्व हिंदी सम्मेलनों की। मॉरीशस और त्रिनिदाद को लेकर इंग्लैंड, अमेरिका तक हिंदी के झंडे गाड़ता हुआ यह अश्वमेधी घोड़ा अब फिर मॉरीशस पहुँचा है। यह सही अवसर है जब इस अश्वमेध यज्ञ की उपलब्धियों और अनुपलब्धियों का आकलन किया जाए। किन उद्देश्यों और किन अपेक्षाओं के साथ नागपुर में विश्व हिंदी सम्मेलन की शुरुआत हुई थी और इन 43 सालों में उन अपेक्षाओं की कसौटी पर हमारा यह अंतरराष्ट्रीय प्रभास कितना सफल रहा है ?

सबसे पहले तो मैं यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि अबतक के दस विश्व सम्मेलनों में से सिर्फ एक सम्मेलन में भाग लेने का ही मुझे अवसर मिल पाया है। इसलिए मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मुझे पता है उन सम्मेलनों में क्या-क्या हुआ था ? मेरी जानकारी का आधार इन सम्मेलनों में भाग लेने वाले कुछ व्यक्तियों से हुई बातचीत या फिर उनके द्वारा पत्र-पत्रिकाओं में लिखे गए आलेख ही हैं। मैं इसे दुर्भाग्य ही समझता हूँ कि इन विश्व सम्मेलनों का कोई आधिकारिक लेखा-जोखा तैयार नहीं हुआ। यदि हुआ भी है तो उसे इस तरह प्रसारित नहीं किया गया है कि अधिक-से-अधिक लोगों तक उसकी जानकारी पहुँच

सके। फिर भी, यह सही है कि जब-जब यह सम्मेलन हुए हैं, इनकी सफलता के दावे अवश्य किए गए हैं। जिस एक सम्मेलन में भाग लेने का मुझे अवसर मिल पाया, उसके आधार पर तो मैं यही कह सकता हूँ कि कुछ उपलब्धियाँ तो होंगी, पर मेला अच्छा था। मैं जानता हूँ कि यह बात बहुतों को अच्छी नहीं लगेगी, पर शायद सच यही है। कड़वा है, फिर भी हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। वैसे, मेलों का भी कोई कम महत्त्व नहीं होता।

मुझे ऐसा लगता है कि हिंदी को लेकर पिछले ईमानदार कोशिश करनेवाले भी बहुत हुए हैं। अब भी हैं, पर इस सच्चाई से आँख नहीं चुराई जानी चाहिए कि हिंदी के, या यूँ कहना चाहिए, राजभाषा हिंदी के विकास के नाम पर बहुत कुछ ऐसा हुआ, हो रहा है, जो बहुत ज्यादा विश्वास नहीं जगाता।

नागपुर में जब 1975 में पहला विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किया गया था तो मंच से कहा गया था, 'सांस्कृतिक शक्ति के रूप में भारत का उन्मेष उतना ही जरूरी है, जितना आर्थिक एवं राजनीतिक। विश्व हिंदी सम्मेलन को हिंदी के मार्ग को आत्मविश्वास का प्रकाश देना है...' यही इस सम्मेलन की भूमिका है, इसका मंतव्य है, गंतव्य है।'

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने वर्ष 1973 में

विश्व हिंदी सम्मेलन का विचार देश के सामने रखा था। इस विचार को वास्तविकता में परिणत करने में दो साल लगे।

दूसरा सम्मेलन मॉरीशस में 1976 में हुआ था। इस सम्मेलन में यह तय किया गया कि मॉरीशस में एक विश्व हिंदी केंद्र की स्थापना की जाए। वहीं एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका के प्रकाशन का भी प्रस्ताव पारित हुआ था। प्रस्तावित पत्रिका का उद्देश्य एक ऐसा वातावरण बनाना था जिसमें मानव विश्व का नागरिक बना रहे तथा विज्ञान तथा अध्यात्म की महान शक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण करे। नागपुर सम्मेलन की तरह ही यहाँ भी हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाए जाने की बात कही गई।

फिर तीसरा सम्मेलन नई दिल्ली में 1983 में हुआ। वहाँ बाकी बातों के

अलावा इस बात को रेखांकित किया गया कि 'इस मंच को भारत में भाषाई सहयोग का युग भी आरंभ करना है।' चौथा विश्व हिंदी सम्मेलन दस साल बाद मॉरीशस में हुआ जिसमें निजी एवं सार्वजनिक जीवन में हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग की बात रखी गई। फिर सम्मेलनों का यह क्रम चल पड़ा। त्रिनिदाद, लंदन, सूरीनाम, न्यूयॉर्क, दक्षिण अफ्रीका होते हुए अब फिर हिंदी के इस अश्वमेध का घोड़ा मॉरीशस पहुँचा है। इस दौरान विभिन्न सम्मेलनों में जो प्रस्ताव पारित किए

गए, उनमें कुछ लागू भी हुए, पर बड़ी उपलब्धि यही रही कि भारत के बाहर भी कुछ देशों में हिंदी भाषा और साहित्य से जुड़े लोग एकत्र हुए। इन सम्मेलनों की और उपलब्धियाँ रही हों, यह बात अवश्य रेखांकित होती रही कि 75 करोड़ भारतीयों की भाषा हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में स्वीकार किया

हिंदी को इस देश की अस्मिता, इस देश की संस्कृति और अपनी पहचान के रूप में देखना गलत नहीं है। हिंदी के समर्थन में यह तर्क अपनी जगह सही है, लेकिन भाषा के संदर्भ में जब हम इस शब्दावली का उपयोग करते हैं तो व्यापक सोच-विचार के लिए जगह नहीं बचती। एक वैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक, आधुनिक सोच के साथ हमें अपनी भाषा के विभिन्न पहलुओं के बारे में सोचना होगा। इसके लिए जरूरी है कि हिंदी को कविता-कहानी की सीमाओं से मुक्त किया जाए। साहित्य किसी भी भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग हो सकता है, पर साहित्य ही भाषा का सबकुछ नहीं होता। भाषा का रिश्ता समाज से है।

जाना चाहिए। न्यूयॉर्क में जब विश्व हिंदी सम्मेलन हुआ था तो इस उपलब्धि को बार-बार उछाला गया था कि हिंदी यू.एन.ओ. की भाषा अभी भले ही न बनी हो, पर विश्व संस्था के सभा भवन में विश्व हिंदी सम्मेलन का उद्घाटन हुआ है। तब इसे संयुक्त राष्ट्र संघ के दरवाजे पर हिंदी की धमाकेदार दस्तक कहा गया था, पर दरवाजा अभी खुला नहीं है और मेरा सवाल है, दरवाजा खुल भी गया तो क्या हो जाएगा?

एक संतोष की भावना, एक गर्व का अहसास जरूर हो सकता

है, इस बात से कि हमारी भाषा दुनिया की उन सात भाषाओं में से एक हो जाएगी, जिनमें विश्व-पंचायत यानी संयुक्त राष्ट्र संघ का काम-काज चलता है। जिन चार भाषाओं को यू.एन.ओ. की भाषा के रूप में स्वीकारा गया था, वे विश्व-युद्ध में जीते हुए राष्ट्रों की भाषाएँ थीं यानी ताकतवर का डंडा काम आया था, भाषा की संपन्नता या क्षमता नहीं। बाद में भी जब अरबी भाषा को यह कथित गौरव मिला, तब भी कारण आर्थिक ताकत थी। इस दृष्टि से देखें

तो यू.एन.ओ. की भाषा के रूप में हिंदी की स्वीकृति कराकर हम अपने ताकतवर होने का गर्व कर सकते हैं। हमें इस बात को भी समझना होगा कि 21वीं सदी में शस्त्र की ताकत से भी कहीं अधिक बड़ी ताकत आर्थिक ताकत है। शस्त्रों की भाषा नहीं, बाजार की भाषा महत्वपूर्ण होगी अब। हमारी हिंदी सवा अरब भारतीयों की राजभाषा है। देश के दो-तिहाई लोग इस भाषा को समझते हैं, इसका व्यवहार करते हैं। इसका सीधा-सा अर्थ यह है कि हिंदी के माध्यम से दुनिया को एक बहुत बड़ा, संभावनाओं से भरा बाजार मिलेगा। आज दुनिया ललचाई आँखों से इस बाजार को देख रही है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति निक्सन ने जब अपने देशवासियों से यह कहा था कि उन्हें हिंदी सीखनी चाहिए तो इसका कारण यह नहीं था कि निक्सन हिंदी के समृद्ध साहित्य से प्रभावित हो गए थे, या फिर हिंदी के प्रति उनके मन में प्रेम उमड़ आया था। उनकी निगाहें उस बाजार पर थीं जो हिंदी के माध्यम से अमेरिका या अन्य किसी भी विकसित समझे जानेवाले राष्ट्र को मिल सकता है। अकारण नहीं है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापन ग्रामीण भारत की दीवारों पर देवनागरी में लिखे दिखाई देने लगे हैं। सीधा-सादा व्यापार है यह। हमें इस व्यापार का मतलब समझना है अर्थात् हमें अपनी भाषा को इस व्यापार की आशाओं अपेक्षाओं के अनुरूप बनाना है। तब हिंदी अपने आप विश्व-भाषा बन जाएगी। तब हिंदी विश्व के वंचितों की नहीं, विश्व के आर्थिक संभावनाओं वाले ताकतवर बाजार के रूप में स्वीकारी जाएगी। तब हमें हिंदी को यू.एन.ओ. की भाषा बनाने का राग अलापने की जरूरत नहीं रहेगी। तब हिंदी अपनी ताकत पर विश्व में सम्मान पाएगी। हिंदी को ताकतवर बनाने की दिशा में विश्व हिंदी सम्मेलन जैसे आयोजन क्या मदद कर सकते हैं, यह प्रश्न महत्वपूर्ण है।

हिंदी को इस देश की अस्मिता, इस देश की

संस्कृति और अपनी पहचान के रूप में देखना गलत नहीं है। हिंदी के समर्थन में यह तर्क अपनी जगह सही है, लेकिन भाषा के संदर्भ में जब हम इस शब्दावली का उपयोग करते हैं तो व्यापक सोच-विचार के लिए जगह नहीं बचती। एक वैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक, आधुनिक सोच के साथ हमें अपनी भाषा के विभिन्न पहलुओं के बारे में सोचना होगा। इसके लिए जरूरी है कि हिंदी को कविता-कहानी की सीमाओं से मुक्त किया जाए। साहित्य किसी भी भाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग हो सकता है, पर साहित्य ही भाषा का सबकुछ नहीं होता। भाषा का रिश्ता समाज से है। भाषा समाज को जोड़ती है, व्यक्ति को व्यक्ति के नजदीक लाती है, व्यक्ति को समाज का हिस्सा होने का अहसास कराती है। उसे एक संस्कृति की पहचान देती है। आवश्यकता इस अहसास को विस्तार देने की है, मजबूत बनाने की है।

हिंदी को वैश्विक भाषा बनाने का सपना देखना गलत नहीं है, लेकिन यह देखना कहीं ज्यादा जरूरी है कि अपने देश में, भारत में हिंदी की आज क्या स्थिति है। हिंदी हमारी राजभाषा है इस दृष्टि से हिंदी की स्थिति सर्वाधिक मजबूत होनी चाहिए थी, पर यह स्थिति समय के साथ-साथ कमजोर होती जा रही है। रहे होंगे कुछ तर्क उस समय की सरकार के सामने, जब अंग्रेजी को सह-राजभाषा के रूप में स्वीकारा गया था, पर आज जिस तरह वह पटरानी बनी हुई है, और जिस तरह अंग्रेजी हमारी रोजमर्रा की जिंदगी पर छाती जा रही हैं, उसे देखते हुए तो यही लगता है कि विश्व हिंदी सम्मेलन जैसे आयोजनों से हम कहीं-न-कहीं स्वयं को ही भूलने में लगे हुए हैं। कहाँ तो त्रिनिदाद में हुए ऐसे सम्मेलन में यह सपना देखा गया था कि विश्वव्यापी भारतवंशी समाज हिंदी को अपनी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित करेगा, और कहाँ सच्चाई यह है कि अपने ही घर भारत में अंग्रेजी अधोषित संपर्क भाषा

के रूप में हावी होती जा रही है। वैश्विक हिंदी की बात करनेवालों को पहले घर में हिंदी की स्थिति पर भी विचार करना होगा। इस बारे में भी सोचना होगा कि भारत जैसे देश में पहली कक्षा से ही, या उससे भी पहले से, यानी नर्सरी कक्षाओं से, बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने की क्या जरूरत है? शिक्षा की इस नीति का हिंदी और बाकी भारतीय भाषाओं पर क्या

असर पड़ रहा है, कहीं-न-कहीं यह सवाल भी विश्व हिंदी सम्मेलन के मंच पर उठना चाहिए। बिना नींव का आकर्षक भवन बन तो सकता है, पर किसी हवा का पहला ही झोंका उसे खंडहर भी बना सकता है, इस खतरे को हमें देखना भी होगा

और समझना भी होगा। समझना होगा कि आज जिस तरह सारे देश में अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खुल रहे हैं, और भारतीय भाषाओं के माध्यमवाले स्कूलों के बंद होने की नौबत आ रही है, वह एक सामासिक समाज की हमारी पहचान के लिए भी एक खतरा है।

नागपुर में हुए पहले सम्मेलन से लेकर अब तक के आखिरी सम्मेलन में अनेक विषयों पर चर्चा हुई है। कुछ नमूने देखिए—विश्व-मानव की चेतना तथा हिंदी, आधुनिक युग और हिंदी, हिंदी की अंतरराष्ट्रीय स्थिति, शैली और स्वरूप, विश्व में हिंदी को पठन-पाठन की समस्याएँ, मानव-मूल्यों की स्थापना में हिंदी की भूमिका, हिंदी और भावी पीढ़ी आदि। ये और ऐसे विषय निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं। विश्व हिंदी सम्मेलन जैसे मंच पर कहीं यह चिंता भी ध्वनित होनी चाहिए कि हिंदी

समेत सभी भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी के कारण किस तरह का संकट छा रहा है?

सही है कि विश्व हिंदी सम्मेलन का यह घोड़ा विश्व-विजय के लिए नहीं छोड़ा गया। यह भाषा की क्षमता और महत्ता को सिद्ध करने की एक कोशिश है। बुनियादी ईमानदारी का तकाजा है कि

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी को जनभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करे। अपने देश में, और दुनियाभर के देशों में हिंदी को एक सशक्त, समर्थ, समृद्ध भाषा के रूप में पहुँचाएँ। संदेश यह हो कि हिंदी एक जोड़नेवाली भाषा है और इसकी शुरुआत अपने देश से हो। हिंदी की मजबूती देश की बाकी भाषाओं की

मजबूती के साथ जुड़ी है। हिंदी के इस अश्वमेध का घोड़ा समता और मैत्री का संदेश लेकर पहले सारे भारत में घूमे। आसेतु-हिमालय पूरे भारत में हिंदी को दिल और दिमाग से भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकारा जाए। हिंदी को देश की राजभाषा बनाया जाना एक सही कदम था, पर यह कदम सार्थक तभी होता यदि सारे देश में हिंदी को अपनी पहचान के रूप में स्वीकारा जाता। वह नहीं हुआ। 'अ' से अनार के बजाए 'ए' से एप्पल सीखना आज हमें जरूरी लगने लगा है। यह एक त्रासदी भी है और षड्यंत्र भी अपनी जड़ों से कटने का। जब हम इस त्रासदी को समझेंगे तभी हिंदी की जय होगी।

□

संपादक-नवनीत
 भारतीय विद्या भवन
 मुंबई-400001

हिंदी भाषा की अपार शक्ति

—सुश्री ऋता शुक्ल

भारतीय संस्कृति के जागरूक पहरुआ और प्रखर प्रतिभा संपन्न लेखक, पत्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी ने बहुत पहले भविष्यवाणी की थी—

अपने सांस्कृतिक गुणों के कारण एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, पूरे विश्व की एक महत्त्वपूर्ण भाषा बनेगी।

आज उस तपी पुरुष की भविष्यवाणी सफल सिद्ध हुई है।

हिंदी भाषा की अपार शक्ति उस समृद्ध परंपरा में सन्निहित है, जो वैदिक वा मय के नाम से विश्वश्रुत है। हमारा सांस्कृतिक जीवन वस्तुतः आर्षकालीन प्रज्ञानभूति से पोषित, संवर्धित है। अंतश्चेतना की दिव्य अनुभूति, विधाता के विराट् सृजन यज्ञ का प्रमाण बनी यह जीवधर्मा सृष्टि, अनंत ऊर्जामयी प्रकृति और इस संसृति की रसमयता को अभिव्यक्ति देने के लिए मनुष्य को वरदान स्वरूप प्राप्त वाणी का अक्षय वरदान। इन्हीं संस्कारों की कोख में हिंदी का स्वरूप ढला है। हिंदी भारतीय लोकचेतना की सांस्कृतिक उदात्तता से ऊर्जस्वित है।

‘सियाराममय सब जग जानी’ का उद्घोष करनेवाले तुलसी बाबा की अनन्य निष्ठा मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के प्रति थी। जगज्जननी जानकी उनके लिए चिर वंदनीया थीं। रामकथा को भाषाबद्ध करने की संकल्पशीलता उनकी प्रखर भविष्यनुता

का परिचय देती है। हिंदी का बिरवा तुलसी, सूर, कबीर, जायसी, अमीर खुसरो, रसखान, रहीम, बिहारी आदि कालजयी कवियों के द्वारा बड़े जतन से पोषित किया गया था। भारतीय सांस्कृतिक जीवन का विराट् स्वर इन शब्द शिल्पियों की आत्मा में सहज निनादित था। सत्य है, मन हिमवान हो, आत्मा समुन्नत कैलास शिखर हो, अनुभूतियाँ क्षीरसागर-सी तरंगायित हों, तभी मानवीय संवेदना का विश्वव्यापी अनुष्ठान पूरा हो सकता है।

मेरे अद्यतन उपन्यास ‘कब आओगे महामना’ में हिंदी की वैश्विकता का अमरत्व सिद्ध करनेवाले पंडित मदनमोहन मालवीय की सांस्कृतिक अस्मिता का शंखनाद प्रतिध्वनित है—

नवशती के द्वार पर हिंदी भाषा के प्रति आस्था चिर वरेण्या होगी। इसकी प्रखर शब्द मेधा ही हमारे शुभ कर्मों की संवाहिका होगी। तुलसीदल-सा इसका सौरभ ज्ञान, योग और भक्ति की त्रिगुणात्मिका शक्ति से विश्वमानस में भारत का सांस्कृतिक वैभव भरेगा और हिंदी का निरभिमान तप ही विश्वपटल पर भारत की सच्ची पहचान बनेगा।

हमारी आत्मा का धन है, हिंदी! बाह्य और आंतरिक समृद्धि से परिपूर्ण प्रांजल भाषा है, हिंदी! लोकचेतना के कवि गोपाल सिंह नेपाली की पंक्तियाँ हैं—

दो वर्तमान को सत्य सरल,
 सुंदर भविष्य के सपने दो
 हिंदी है भारत की बोली तो अपने
 आप पनपने दो।

गिरमिटिया श्रमिक के रूप में हाड़ मेहनत करने के लिए हमारे पुरखे बाहरी देशों में ले जाए गए। उनका पाथेय अपनी भाषा और संस्कृति थी। विषम परिस्थितियों में भी उनका बैठका 'रामायण' और 'हनुमान चालीसा' के नियमित गायन से स्पंदित था।

आज विश्व के अधिकांश देशों में हिंदी पूरी आन-बान-शान के साथ प्रतिष्ठित है। भारत के लोक प्रतिनिधि विदेशों में वंदेमातरम् तथा जयहिंद की पुलकध्वनि का अभिवादन सुख प्राप्त कर रहे हैं। यह गौरवबोध प्रत्येक भारतवासी का है। हिंदी की अनंत ऊर्जामयी भागीरथी सर्वत्र प्रवहमान देखी जा सकती है। वस्तुतः हिंदी भारतीयता के सर्वोच्च गुणों की अभिव्यक्ति का सशक्त संसाधन है।

सशक्त संसाधन है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की दो पंक्तियाँ दशकों से हिंदी परिवारों का शैशव सुख बनी हुई हैं—

मेरी भाषा में तोते भी राम राम जब कहते हैं,
 मेरे रोम रोम में मानो सुधा स्रोत तब बहते हैं।

भारतीय संस्कृति और दर्शन के अग्रचेता सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने हिंदुत्व को विचार स्वातंत्र्य, आत्मानुशासन, ज्ञानसाधना और वैश्विक एकता का स्वप्न करनेवाली संस्कृति कहा। हिंदी भाषा इसी ऊर्जस्विनी संस्कृति की संवाहिका है।

श्वास का ऋण उतारने के लिए लेखनी से बड़ा कोई दौलत नहीं होती। मेरे परिवार में चार पीढ़ियों से हिंदी भाषा में सृजन धर्म का निर्वहन

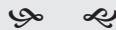
होता चला आ रहा है। मेरा मानना है कि जन्म का ऋण उतारने के लिए हिंदी माँ की सेवा से बड़ा कोई तप नहीं हो सकता।

□

मोराबादी, राँची

हिंदी में अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता है।

—राजा राममोहन राय



उसी दिन मेरा जीवन सफल होगा, जिस दिन मैं सारे भारतीयों के साथ हिंदी में वार्तालाप करूँगा।

—शारदाचरण मित्र

हिंदी विश्व में भारतीय लोक-संस्कृति

—डॉ. विद्याविंदु सिंह

भारतीय संस्कृति का प्रभाव पूरे विश्व पर हिंदी के लिखित एवं वाचिक साहित्य के माध्यम से पड़ा, जिसमें सर्वाधिक श्रेय गोस्वामी तुलसीदास की रामकथा और पंचतंत्र, हितोपदेश, बैताल पच्चीसी की कथाओं के साथ ही लोककथाओं, लोकगीतों का है। भारतीय संस्कृति के प्रति गौरवबोध और इस सम्मान भाव को वैश्विक स्तर पर बचाए रखने का प्रयास भी प्रवासी भारतीयों का बराबर रहा है।

किसी शायर ने लिखा है कि जीवन में कला, साहित्य और संस्कृति का महत्त्व सर्वाधिक इसलिए है कि उसका लक्ष्य संसार को देना होता है।

भारत की संस्कृति का आत्मबोध, जोड़ की चेतना, विड्गव मंगल भाव, वसुधैव कुटुम्बकम् और जड़-चेतन समस्त प्रकृति में आत्मीयता की दृष्टि आदि की अपनी विशिष्ट पहचान है। भारतीय संस्कृति के इन मूलतत्त्वों को सार्वभौम और शाश्वत मान्यता पूरे विश्व में मिली है। अब सभी यह आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं कि अपनी संस्कृति से परिचित होने के साथ ही दूसरी संस्कृतियों को भी जानना और समझना अनिवार्य है क्योंकि अब हम विश्व ग्राम की कल्पना करने लगे हैं। यह विश्व ग्राम भारतीय संस्कृति की उस अवधारणा के बिना आदर्श रूप नहीं पा सकता जहाँ केवल लेने का नहीं बराबर देते रहने का, परमार्थ चिंतन में सर्वस्व अर्पित करने का भाव है।

पूरे विश्व में भारतीय लोक संस्कृति में रचे-बसे लोकमन के प्रति लोगों का आकर्षण और रुझान है। क्योंकि भारतीय लोक मानस विशाल होते हुए भी दर्पस्फीत नहीं है, बहुत ही विनयी मन है। लोकमन संपूर्णता का आराधक मन है साथ ही वह समस्त परिवेश के साथ रिश्तों की मिठास को बनाए रखनेवाला, अधिक जोड़ वाला मन है। लोकमन बहुत ही सजग है, वह प्रमादी मन नहीं है। उसमें खुलापन है, वह निव्र्याज हँसी हँस सकता है, उलाहने दे सकता है, तेजस्विता दिखा सकता है और आमंत्रण दे सकता है कि हिल-मिलकर सब काम करो।

लोक-साहित्य की भाषा संक्षिप्त होती है, अनावश्यक विस्तार नहीं होता। कथा का पूरा अंश छोड़ दिया जाता है। कथा एक छलांग लेती है और केवल मार्मिक प्रसंग लेकर कथा आगे बढ़ जाती है पर सूत्र बना रहता है।

विश्वभर में फैले वाचिक परंपरा के ये गीत और कथाएँ हमें याद दिलाती हैं कि अपने सुख में इतना न खो जाएँ कि अपने आस-पास के परिवेश और उसके सुख-दुःख को भूल जाएँ। ये हमें बताते हैं कि छोटे-से-छोटे प्राणी के भी सुख-दुःख की चिंता करना मानव धर्म है। यह लोक मन दिन डूबने के बाद वृक्षों के पत्ती और फूल तोड़ने की वर्जना करता है क्योंकि वे सो रहे होते हैं। यह लोक मन गहराई रात में जलाशय

से जल भरने से पूर्व उसे कंकड़ मारकर जगा लेता है, सोते व्यक्ति का धन न लेने का निर्देश करता है, किसी पक्षी का बसेरा उजाड़ महापाप समझता है, मादा पशुओं के वध का निषेध करता है क्योंकि उससे उसकी वंश परंपरा प्रभावित होती है। वह हरी-भरी, फूली-फूली डाल काटने की मनाही करता है। आम उसका पुत्र है, तुलसी बेटी है, कमल दामाद है। कोयल के बिना उसका बगीचा सूना है, हंस के बिना पोखर। वह पिछवाड़ा के पीपल दरवाजे की नीम और आँगन की तुलसी को पानी दिए बिना स्वयं जल नहीं पीता। वह रात रातभर कहानियों और गीतों को कह सुनकर बड़ से बड़ कष्टकारी क्षण काट लेता है। उसकी हर कथा और गीतों के अंत में सबके अच्छे दिन लौटने की कामना होती है कि सबके घर अन्न धन का भंडार भरे, संतान का मुख देखने का सौभाग्य मिले। जब संसार छोड़कर जाए तो सीधे स्वर्ग जाए।

प्रवासी भारतीयों ने अपनी धरती से, अपनों से बिछुड़ने का दर्द और गिरमिटिया मजदूर बनकर जो अन्याय और पीड़ा धैर्यपूर्वक झेली, उसके पीछे भारतीय लोकगीत, कथाओं, 'रामचरितमानस' व 'हनुमान चालीसा' का संबल था।

लोक साहित्य बड़े-से-बड़े विपत्ति को भी सहने की क्षमता देता है। उसमें विपत्ति देनेवाले के लिए भी मंगलकामना होती है। सबसे अधिक विपत्ति सहने की क्षमता जैतसार और निरवाही के गीतों में मिलती है। ये गीत वे अपने साथ ले गए थे, जो आज भी वहाँ प्रचलित हैं। लोकमंगल की भावना से ही सबसे पहले देवी गीत गाया जाता है।

एक अवधी देवी गीत का भाव है—शीतला माता सातों बहनों (सप्त मातृकाओं) के साथ चल पड़ी। उनके पाँवों में घुँघरू हैं। वे नदी तट पर खड़ी होकर केवट को पुकार रही हैं—केवट! मेरी लश्कर को पार उतारो, मैं देश देखने जाऊँगी। केवट कहता है कि माँ! देश तुम्हारे देखने लायक नहीं रह गया है, भयानक

और धिनौना हो गया है। चारों ओर जुल्मों सितम और मार काट है, घोर अँधेरा है, लोग दुखी हैं। माता कहती हैं कि मैं जाते ही अज्ञान के वज्र किवाड़ खुलवाऊँगी, ज्ञान के दीप का उजाला कराऊँगी। जुल्मियों, पापियों का घमंड दूर करूँगी और दुखियों का दुःख-ताप हरण करके उन्हें शीतल करूँगी।

सातो बहिनी सीतला माई गोड़वा घुँघरू सोहै,
 मैया ठाढ़ी भई नदिया के तीर त केवटा पुकारैं हो
 अरे अरे केवटा बेटउवा तूँ नइया लै आवहु रे,
 केवट मोरी लश्कर परवा उतारौ मैं देस देखन जाबों रे
 काउ तूँ देसवा देखन जाबू, देसवा भियावन हो।
 मैया हनि गई बजर केंवड़िया त लोगवा दुखित भये हो।

यह गीत गुलामी के दर्द को अभिव्यक्ति देता है। माँ अन्याय का प्रतिकार करेंगी, यह विश्वास देता रहा है।

राम के प्रति यह अनुराग वहाँ इतना है कि लोगों ने बताया कि यहाँ मॉरीशस आदि देशों में संसद् की कार्यवाही से पहले रामचरितमानस ग्रंथ बाँटे जाते हैं।

राम कथा के जो लोकगीत वहाँ प्रचलित हैं, उनमें श्रीराम सीता की अनुपम छवि का दर्शन है—कलश पर दीपक, मिट्टी के नए सकोरे में धान जैसी शोभा है सीता के भाल की, राम के ललाट की—

“जैसे कलस पर दिया झलाकै,
 कोरी परइया म धान हो।
 वइसै सिरिराम कै मथवा झलाकै,
 सीता कै झलकै लिलार हो॥”

सीता की सुकुमार तन्वंगी देह की उपमा पान से और सुडौल सुचिक्कन शरीर की उपमा सुपारी से देना इसी सहज सौंदर्य दृष्टि का परिणाम है। सीता फूल सी सुकुमारी सुंदर और कोमल तथा हल्की-फुल्की हैं। वे केसर सी सुगंधवाली हैं।

“पनवाँ की नइया सीता पातरि
 सोपरिया ऐसन दुरदुर हो,
 सीता फुलवा बरन हलुकइया,



केसर यस गमकें हो।।”

भारत का श्रम विदेश गया। मॉरीशस, फिजी, ब्रिटिश गयाना, सूरीनाम में बसे प्रवासी भारतीय अपना श्रम लेकर अपनी संस्कृति और धर्म के प्रति अटूट आस्था लेकर विदेश गए। वहाँ के पत्थर हटाकर सोना उपजाया। उस देश को समृद्ध किया, पर उनके अपने जो यहाँ छूट गए थे, उनकी व्यथा-कथा कहने वाले गीत आज भी मन को आंदोलित कर देते हैं, इनमें अपने पूर्वजों का दर्द वे महसूस करते हैं।

श्रम की थकान को भुलाने के लिए श्रमगीत वे अपने साथ ले गए थे। इसमें श्रम के पसीने के साथ मन का उल्लास, हृदय की पीर सब समाहित है और बाहर आने के लिए आकुल रहता है।

उनके साथ जो संस्कार गीत गए वे आज भी सुरक्षित हैं और उनके बिना संस्कार पूरा नहीं होता।

मुझे भारत में अपने कुछ लोकगीतों की केवल एक-एक पंक्तियाँ मिली थीं, पूरा लोकगीत मिला मॉरीशस में, सूरीनाम में। एक लोकगीत सीता की विदाई का है।

पूरा विश्व अनुभव कर रहा है कि आज का समय ऐसी चुनौतियों का है जब साहित्य का दायित्व सबसे अधिक बढ़ गया है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब समाज दिशाहीन हुआ है, अपसंस्कृति हावी हुई है, साहित्य ने ही उसे सँभाला है। जब हम भारत के समाज की बात करते हैं तो उसमें भारत की संस्कृति गुँथी हुई होती है, किंतु साहित्य में कुछ गुट ऐसे भी हो गए हैं जो संस्कृति को नकारने पर उतारू हैं। ऐसे समय साहित्य की जागरूकता को बढ़ाने की जरूरत है।

हिंदी भारतीय संस्कृति की संवाहक है, अस्मिता की पहचान है, नदी की धारा की तरह उसे आगे ले जानेवाली है। इसमें पूर्वजों की, पूर्वज भाषाओं की साहित्यिक धरोहर को सुरक्षित ही नहीं रखा, उसे निरंतर समृद्ध भी किया है।

संस्कृत वाङ्मय का पूरा सांस्कृतिक वैभव हिंदी

के माध्यम से जन-जन तक पहुँचा है हिंदी की बोलियों में अपनी वाचिक परंपरा से इस वैभव को निरंतर पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित किया। साहित्य का संबंध सदैव संस्कृति से रहा है।

संस्कृति एक जगह ठहरती नहीं। उसकी गतिशीलता और प्रवाह में ही समाज का हित है। हम जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह भाषा भी संस्कृति की भाँति जीवन को आगे बढ़ानेवाली होती है। जिस प्रकार अपनी संतान के प्रति प्राणियों में मंगलभाव रहता है उसी प्रकार आने वाली पीढ़ी के प्रति भी उसी मंगलभाव का प्रसार करता रहता है साहित्य। जहाँ इस शिव भाव के विरुद्ध किसी बात की आशंका होती है जहाँ ऐसे बंधन होते हैं जो अभिशाप के रूप में समाज में व्याप्त हों, तब उन अभिशापों के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त किए जाते हैं।

कुछ साहित्यकार साहित्य के इस लोकधर्मी स्वरूप की अवधारणा को आदर्शवादी, थोथी परंपरा या सतही साहित्य कहकर नकारते हैं। उनके वैचारिक टकराव और व्यक्तिवाद को अधिक महत्त्व देने के कारण प्रायः लोग उनकी ओर आकर्षित होकर अपनी परंपरा को हेय भाव से देखने लगे हैं, किंतु आज भी भारत का यह जोड़नेवाला भाव सबके मन में श्रद्धा भाव जगाता है।

इतिहास साक्षी है कि हिंदी साहित्य ने समाज को सदैव मार्ग दिखाया है। संस्कृति एक दूरगामी दृष्टि रखती है और कभी-कभी तात्कालिक महत्त्व को उतने अधिक ध्यान में नहीं रखती, पर उसे परखती जरूर है। यह परिवर्तन सदोदेश्य भी होता है। यह परिवर्तन समष्टि प्रयास से आता है। उसके लिए समाज को जागरूक रहना पड़ता है और यह जागरूकता साहित्य देता रहता है।

□

हिंदी विश्व और भारतीय समाज

—डॉ. विदुषी शर्मा

भाषा को 'संस्कृति की संवाहिका' कहा गया है और यह सही भी है क्योंकि भाषा संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है, लेकिन संपूर्ण संस्कृति नहीं। कुछ विद्वानों का मत है कि हम जो कुछ भी वर्तमान में हैं, वह संस्कृति है और जो कुछ हमारे पास है, वह सभ्यता का प्रतीक है। यानी आधुनिक सुख-सुविधाएँ तथा मनोरंजन के साधन तथा जीवन यापन को सरल, सहज और आनंदमय बनाने के सभी आरामदायक यंत्र हमारी उन्नति और सभ्यता की निशानी तो हो सकते हैं, परंतु हमारी संस्कृति के परिचयक नहीं। संस्कृति मनुष्य के आंतरिक गुणों का प्रतिनिधित्व करती है। इन गुणों में सरलता, सहजता, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा, आत्मविश्वास, धैर्य, सहनशीलता, दया, प्रेम, (वैश्विक प्रेम) शालीनता आदि सांस्कृतिक गुण हैं। हमारे समाज में अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनके पास भौतिक सुख-सुविधाएँ नहीं थीं, किंतु हममें से कोई भी उन दिव्य पौराणिक महापुरुषों के लिए यह नहीं कह सकता कि वह संस्कृति-संपन्न नहीं थे। उन्होंने अपने जीवन को केवल कुछ भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित रखा।

*'साई इतना दीजिए जा में कुटुम्ब समाए,
में भी भूखा ना रहूँ, साधु भूखा ना जाए।'*
इसी के साथ

*'पहला सुख निरोगी काया,
दूजा सुख घर में हो माया,
तीजा सुख कुलवंती नारी,
चौथा सुख पुत्र हो आज्ञाकारी,
पंचम सुख स्वदेश में वासा,
छठवाँ सुख राज हो पासा,
सातवाँ सुख संतोषी जीवन,
ऐसा हो तो धन्य हो जीवन।'*

यानी इन महापुरुषों ने अपनी संस्कृति को आंतरिक गुणों के माध्यम से सहेज कर रखा तथा उसी का प्रचार-प्रसार भी किया। हमारा भारत वर्ष सौभाग्यशाली रहा है कि ऐसे दिव्य पुरुषों ने हमारे धरती पर जन्म लिया। उनमें हमारे सभी ऋषि-मुनि, जिन्होंने हमारा सारा साहित्य रचा। इनमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, गुरुनानक देवजी, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि के नाम लिये जा सकते हैं। यदि यह कहा जाए कि इन युगद्रष्टा युगपुरुषों ने अपने संपूर्ण जीवन में अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को जुटाने में भी असमर्थ रहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, परंतु आज इतिहास में इनका नाम अमर है केवल इनके अद्वितीय, आंतरिक गुणों के कारण।

पंडित नेहरू ने अपनी पुस्तक 'भारत एक खोज' में सभ्यता और संस्कृति के अंतर को कुछ यूँ

स्पष्ट किया है, 'सभ्यता में संस्कृति का विकास होता है और उससे दर्शन, साहित्य, नाटक, कला, विज्ञान और गणित विकसित होते हैं जो सांस्कृतिक, बौद्धिक उन्नति का पर्यायवाची है और सभ्यता, भौतिक विकास का समानार्थी। सभ्यता बाह्य क्रियात्मक रूप है, संस्कृति विचारधारा का परिणाम है।'

हमारी भाषा हमारी संस्कृति की द्योतक है। जब हमारी भाषा की लिपि का आविष्कार भी नहीं हुआ था सांकेतिक भाषा, आँखों की भाषा सबसे महत्वपूर्ण थी। यही हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान भी कही जा सकती है, जैसे भारतीय नारी भारत की भाषा में उसके आकर्षण समर्पण का इकरार भारतीय नारी, भारतीय प्रेमिका की सांकेतिक भाषा में उसकी लज्जा, प्रेम, सौंदर्य, आकर्षण, समर्पण, इनकार, इकरार, डाँटना, स्वीकारना आदि सभी कुछ शामिल है। इन सबको जब लिपि, और वह भी देवनागरी लिपि प्राप्त हुई हो तो यह हिंदी का गौरव बन विश्व पटल पर उभरी। इन सबके लिए हमारे हिंदी साहित्य में बिहारीजी का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है—

‘कहत, नटत, रीझत, खीझत,
मिलत, खिलत, लजियात,

भरे भौन में करत हैं नैन ही सों बात।’

वास्तव में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, भारतीय साहित्य जितना अधिक प्रचारित-प्रसारित है—वृहद् है, अनूठा है, विविध है उतना किसी और

देश का नहीं। हमारे भारतीय साहित्य में वेद, पुराण, श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, महाकाव्य आदि की उपलब्धता है, वह किसी अन्य सभ्यता के पास हो, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अभी हमने सिर्फ साहित्य की बात की इसलिए की है क्योंकि साहित्य की वैश्विक स्तर पर उपलब्धता प्राप्त करने का एक

महान हेतु बनी है 'हिंदी'। क्योंकि इसी साहित्य को आम पाठक वृंद की पहुँच एवं समझ तक सरलता से बनाए रखने के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया है।

भारत और अन्य देशों में 60 करोड़ से अधिक लोग हिंदी भाषा बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरीशस, गयाना, सूरीनाम और नेपाल की अधिकतर जनसंख्या हिंदी भाषा का ही प्रयोग करती है।

हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा

,संपर्क भाषा, जनभाषा के विभिन्न सोपानों को पार कर 'विश्व भाषा' बनने की ओर निरंतर अग्रसर है।

जब विश्व के अन्य देश अपनी मातृभाषा को अपनाना, अपनी पहचान बताना गौरव की बात मानते हैं तो हम हिंदुस्तानी हिंदी को अपनाने से क्यों कतराते हैं? राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सभी कार्य यथासंभव हिंदी में ही होने चाहिए। हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार विद्यार्थी जीवन से ही प्रारंभ हो जाना चाहिए ताकि हिंदी का धारा प्रवाह प्रसार हो सके। इस विषय पर जगदीश त्यागी का यह दोहा अनुकरणीय सिद्ध हो सकता है—

'गूँज उठे भारत की धरती,
 हिंदी के जय गानों से,
 पूजित, पोषित, परिवर्धित हो बालक,
 वृद्ध, जवानों से।'

हिंदी विश्व और भारतीय समाज एवं संस्कृति-समाज के प्रत्येक अवस्था में भाषा उसकी संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है। संस्कृति में परिवर्तन के साथ भाषा में भी परिवर्तन होता है क्योंकि भाषा संस्कृति शब्द बहुत व्यापक है। यह किसी व्यक्ति विशेष से परिभाषित नहीं होती। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का संबंध है, वह अपने मूल्य, मान्यताओं और शाश्वत स्वरूप के कारण जानी जाती है। हालाँकि भारतीय संस्कृति वैश्विक संस्कृतियों की परंपरा में अति प्राचीन है। वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता आदि में जो ज्ञान की धारा बह रही थी वह आज भी हमारे देश में निरंतर प्रवाहित है। बुद्ध और महावीर की करुणा, अहिंसा, जीवों के प्रति दया, सद्भाव, भाईचारा, सर्वधर्म समभाव, प्रकृति, पर्यावरण के प्रति मनुष्य का समर्पण आज तक इस देश में जीवित और जाग्रत है। मध्य काल के दौरान निर्गुण और सगुण संतों की वाणी आज तक अपनी प्रासंगिकता और सार्थकता बनाए हुए है। कर्म की प्रधानता, श्रम का महत्व, संघर्ष और बेहतर करने का स्वप्न आदर्श जीवन मूल्य बनाए गए हैं जो आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। रैदास, कबीर, तुलसी, मीरा, नामदेव, नानक आदि सभी हमारी अक्षुण्ण संस्कृति के महान् गायक रहे हैं। भाई-भाई का प्रेम, पिता-पुत्र, माँ-बेटा तथा जितने भी भी रिश्ते, जैसे ताई, मौसी, मामी, बुआजी आंटी नहीं हैं। इन सबके बीच मर्यादा अपने आप तय हो गई है, क्योंकि इस तरह के चरित्र भारतीय समाज में उपस्थित होते रहे हैं जिनका विशेष मूल्य और महत्व है। भारतीय संस्कृति को कोई भी नष्ट नहीं कर सका।

भारतीय संस्कृति की अवधारणा यह रही है तो उसके मूल में कुछ बुनियादी तत्व अवश्य रहे हैं,

उनमें प्रमुख है, अध्यात्म की भावना। यह अध्यात्म सभी धर्मों, संप्रदायों की विशेषता रही है। यह शक्ति रही है जिसके चलते अनेक धर्म, संप्रदाय, भाषा, रीति-रिवाज, त्योहार यहाँ फलते-फूलते रहें। सर्व धर्म समभाव तथा वसुधैव कुटुंबकम का मूल मंत्र जिससे सभी लोगों के बीच समन्वय स्थापित करने में आसानी होती है।

'परहित सरिस धर्म नहीं भाई,
 परपीड़ा सम नहीं अधमाई।'

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा एवं भारत की संस्कृति विश्व में एकता का निर्माण करती है। तभी तो भारत जैसा बहुभाषिक, संस्कृति बहुल समाज दुनिया में दुर्लभ है। भाषा एवं संस्कृति हमारी ताकत है। यही राष्ट्रीय एकता और अखंडता का प्राण तत्व है। कोई भी भाषा किसी भी भाषा से कम नहीं। भाषा बोलनेवालों से ही उनका समाज बनता है। वही उनकी पहचान है। आज वर्तमान स्थिति में भारत में अधिकांश भाषाएँ मर रही हैं। उस भाषा में निष्ट संस्कृति भी मर रही है। भाषा की रक्षा समाज एवं संस्कृति की रक्षा करना है क्योंकि यह सर्वविदित है कि भाषा, समाज और संस्कृति एक-दूसरे से संयुक्त है। एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व कमजोर होगा। संस्कृति की रक्षा, समाज और भाषा की रक्षा है। हम सब भारतीयों का यह पावन कर्तव्य है कि हम हिंदी भाषा और उससे संबंधित सभी उपभाषाओं का भी यथासंभव प्रचार-प्रसार और रक्षण करें जिससे उस विशेष समाज में उस संस्कृति विशेष की रक्षा की जा सके क्योंकि भारतीयता की पहचान है 'विविधता में एकता'।

अंत में बस यही कि—

'तू हिंदी है हिंदी को पढ़ता चला जा,
 और हिंदी के पथ पर बढ़ता चला जा।'

□

भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में समाज और संस्कृति

—डॉ. एम. शेषन

आज जब विश्व के एकध्रुवीय हो जाने का नारा बुलंद हो रहा है, भूमंडलीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत हो चुकी है और कंप्यूटर क्रांति का प्रभाव पुरजोर रूप में दिखाई देने लगा है, तो हमें यह भी महसूस होने लगा है कि विश्व के इतिहास में बीसवीं शताब्दी की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ—उपनिवेशवाद का खात्मा, रूसी क्रांति, दो विश्वयुद्ध, फासिज्म का उदय और पराजय, गांधीवाद का उदय, वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति, मार्क्सवादी विचारधारा का फैलाव, सोवियत संघ का खात्मा आदि ने भी हमारे भारतीय समाज, साहित्य और संस्कृति पर प्रभाव डाला।

आज हमारे देश में वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गई है और उसकी प्रगति तेज रफ्तार पर है। इस वैश्वीकरण ने हमारी कार्यशैली, हमारे चिंतन, हमारी सोच, हमारी जीवन-शैली में आमूल परिवर्तन करना शुरू कर दिया है। ग्लोबलाइजेशन भौतिक रूप से हमारे लिए उतना खतरनाक नहीं है जितना हमारे मानसिक धरातल पर इसका भयावह प्रभाव लगा है।

वैश्वीकरण की शुरुआत व्यापार-वाणिज्य से शुरू हुई। इस वैश्वीकरण की स्थिति में बाजार और बाजारवादी नीतियों के कारण हमारी भाषा, हमारा साहित्य और हमारी संस्कृति सर्वाधिक प्रभावित हो रहे हैं।

वैश्वीकरण की अवधारणा यों तो बड़ी श्रेष्ठ लगती है जिसके तहत सारे विश्व में एक भाषा, एक संस्कृति, यानी 'जियो और जीने दो' का भाव अंतर्निहित है और हमारी भारतीय संस्कृति तो इस मूल मंत्र को ही लेकर चलती है।

'सर्वे भवन्तु सुखिना, सर्वे सन्तु निरामया।'

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्॥'

किंतु भाषा के परिप्रेक्ष्य में देखें तो भाषा केवल विचार नहीं, भाषा केवल भावना या इच्छा नहीं, न ही भाषा केवल जातीयता का बोध कि 'मैं तमिल हूँ, मैं पंजाबी हूँ, आदि-आदि बोधक है, अपितु भाषा है संस्कार, भाषा है अपनी पहचान, भाषा है हमारी राष्ट्रीय आस्मिता बोध। वैश्वीकरण के बहाने हमें यह बोध खोना नहीं चाहिए। हम यही बात भूलकर अंग्रेजी को आज भी आधिकाधिक अपनाते जा रहे हैं। हम यह भूलते जा रहे हैं कि अंग्रेजी का संबंध हमारे पेट से है, हमारी संस्कृति से नहीं, जबकि हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं का संबंध हमारे हृदय से है। कहीं अंग्रेजी हमारी लोक संस्कृति पर हावी होकर हमारे अपनों के संबंधों की मधुरता न छीन ले, हमारी मिट्टी की सुगंध को न छीन ले, हमें प्राकृतिक सुगंधियुक्त पुष्पों से वांचित करके कृत्रिम सौंदर्य को ही देखने के लिए बाध्य न कर दे। हमें सचेत होने की जरूरत है।

इस संदर्भ में मुझे भाषा विषयक दो उदाहरण यहाँ स्मरण आते हैं। पहला, महात्मा गांधीजी ने लिखा है, 'मेरी मातृभाषा में जितनी भी खामियाँ क्यों न हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जैसे माँ की छाती से बच्चा। मुझे यही जिंदगी देनेवाला दूध दे सकती है। मैं अंग्रेजी को उसकी जगह प्यार करता हूँ लेकिन अगर वह उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा।'

ठीक ऐसे ही उद्गार अंग्रेजी के कट्टर समर्थक रिचर्ड मुलकास्टर ने सन् 1852 में जब अंग्रेजी की अकिंचनता का इंग्लैंड में ही मजाक उड़ाया जाता था, प्रस्तुत किया। उन्होंने लिखा :

“मैं रोम से प्यार करता हूँ, किंतु लंदन को उससे अधिक, मैं इटली का समर्थक हूँ, पर इंग्लैंड का उससे भी अधिक समर्थन करता हूँ। मैं लैटिन का आदर करता हूँ, किंतु अंग्रेजी की पूजा करता हूँ।”

यदि इस पर भी हम विदेशी भाषा के आश्रय में सिर छिपाते हैं और अपनी मातृभाषा की उपेक्षा करते हैं तो हमारे लिए यह स्थिति बड़ी लज्जाजनक है और गांधीजी के शब्दों में कहें तो 'लोगों के बनाए घरों में बिना बुलाए मेहमान की तरह शर्मिंदगी के साथ भिखारी या गुलाम की तरह रहना, यह हमें कतई मंजूर नहीं।

आज यह यक्ष प्रश्न हमारे मनोमस्तिष्क पर हावी होता जा रहा है कि भू-मंडलीकरण, वैश्वीकरण, खुला बाजार, उदारीकरण कहीं हमारी भाषा और साहित्य की गहरी जड़ों को उखाड़कर छिन्न-भिन्न न कर दे। हमारी युवा पीढ़ी का चिंतन सतही होता जा रहा है। चार्वाक दर्शनयावत् जीवेत सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा धृतं पिबेत्' यह हमारा नारा बनता जा रहा है। हमारा उपभोगवादी संस्कार बढ़ता जा रहा है और उसके साथ समाप्त होता जा रहा है हमारा भाषायी संस्कार, हमारी सांस्कृतिक अभिरुचियाँ। हमारे चारों तरफ की अफरा-तफरी

में हम अपने पैरों के नीचे से खिसकती जमीन को महसूस नहीं कर पा रहे हैं। वस्तुतः भू-मंडलीकरण या तो हमारी भारतीय भाषाओं का दोहन करता है, फिर ट्रियाज (छाँटनी) के सिद्धांत की तरह उसे छाँटकर हाशिए पर फेंक देता है।

आज विश्व में अनुमानतः डेढ़ सौ करोड़ लोगों द्वारा व्यवहृत अंग्रेजी और करीब सौ करोड़ लोगों की भाषा चीनी के बाद तीसरा स्थान हिंदी का रहा है। किंतु स्थिति तेजी से बदल रही है। हिंदी असंख्य लोक गायकों की, साहित्य चिंतकों की, विद्वान् मनीषियों की, भाषाविदों की और इन सबके ऊपर हमारे जनमानस की भाषा है। इसमें हमारी मिट्टी की गंध है, वर्षा की फुहार है, पुष्पों की सुगंध है, इसमें रोटी की महक है, कृषक का पसीना है, मजदूरों के हाथों के छाले हैं, इसमें माँ की लोरी है, मातृभाषा का प्यार है। ऐसी हमारी अपनी मातृभाषा के लिए हमें जागने की जरूरत है।

वैश्वीकरण के संबंध में उठे इस विचार का एक अन्य पक्ष भी है जिस पर हमारा ध्यान जाना चाहिए। भू-मंडलीकरण या वैश्वीकरण के केवल खतरे-ही-खतरे हैं, ऐसा नहीं। हमारे भारतीयों के हृदय में विश्वबंधुत्व की आस बहुत प्राचीन समय से परिव्याप्त रही है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' का नारा हम बहुत समय से लगाते रहे हैं और जहाँ पूरी वसुधा ही कुटुंब बन जाए वहाँ 'स्व' का भाव शेष नहीं रहता। 'स्व' की भावना 'पर' में यानी अहं की हद में परिणत हो जाती है। सर्वत्र आदान-प्रदान परिव्याप्त होने लगता है और तब साम्राज्य, धर्म, साहित्य, भाषा ये सब वैश्वीकरण की दिशा में अग्रसर होने लगते हैं, तब भाषा को भी अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पहलू मिलने लगते हैं। किंतु अगर इन सब उपलब्धियों के बदले हमारी अपनी मातृभाषा की जड़ें खोखली होने लगे तो हमें सचेत हो जाना चाहिए।



भारत के मध्यवर्गीय समाज का, बल्कि मध्य वित्तीय समाज का जो स्वरूप है, सोच है, वह तत्काल भ्रम में है कि क्या अपनाया जाए, क्या नहीं। उसके सामने कुछ स्पष्ट नहीं, इसलिए वह उस तरफ विशेष रूप से आकर्षित हो रहा है, जिधर चकाचौंध है, भाषा की कृत्रिमता है, असहजता है। आज बाजार का हमला सबसे पहले विचारों और हमारी भाषा पर हो रहा है। यह धारणा सिर्फ हिंदी की नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के समक्ष एक संकट और चुनौती बनकर खड़ी है। विदेशीपन और अंग्रेजियत से हम सब आज इस तरह से ग्रस्त हैं कि उसके पीछे की कुरूपता हमें नजर नहीं आती।

हिंदी के वैश्वीकरण के संदर्भ में विश्व के स्तर पर हिंदी के प्रयोग की चर्चा करना यहाँ न्याय संगत होगा। विदेशों में हिंदी के पठन-पाठन और प्रचार-प्रसार का कार्य दो धाराओं में हो रहा है। एक वे देश जहाँ भारतीय श्रमिक लगभग सौ डेढ़ सौ साल पहले गए थे, आज वहाँ प्रमुख नागरिकों में उनकी गणना होती है। फिजी, मॉरीशस, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि देशों में जहाँ भोजपुरी, अवधी भाषी लोग आज भी बड़ी संख्या में हैं, वहाँ हिंदी की धारा प्रवहमान है। दूसरे, ब्रिटेन, कनाडा, अमेरिका, नीदरलैंड, स्वीडन, जर्मनी, नॉर्वे आदि। इनमें दक्षिण अफ्रीका के अप्रवासियों को भी शामिल किया जा सकता है।

दक्षिण पूर्वी एशिया में यानी म्यांमार-बर्मा-थाइलैंड, सिंगापुर, मलेशिया में बसे भारतीय मूल लोगों के बीच हिंदी का प्रचलन है। हिंदी की धारा किसी-न-किसी रूप में वहाँ विद्यमान है। केवल

थाइलैंड में हिंदी जाननेवालों की संख्या लगभग एक लाख है।

हिंदी स्वयं में विश्व समाज को समाहित किए हुए है। हिंदी में आर्य, द्रविड़, पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्द, हिंदी के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को, अंतरराष्ट्रीय शैली को अभिव्यक्ति देनेवाले आयाम हैं। हिंदी को भारत ही नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलाने के लिए भारत के साथ विश्व के अन्य देशों को भी निष्ठापूर्वक उसका समर्थन करना होगा।

हिंदी अब साहित्य के दायरे से निकलकर प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में भी अपनी विजय पताका फहरा रही है। वैश्विक बाजार के कारण हमारी भाषाओं के शब्द ग्रहण करती ही है। कबीर ने भाषा को 'बहता नीर' कहकर उसकी प्रकृति को ठीक रेखांकित किया था। बाजार के वैश्वीकरण से जहाँ हिंदी और भारतीय भाषाओं के दिन फिरते नजर आ रहे हैं, वहीं उसकी प्रकृति में विकृति के लक्षण भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। भाषा में अंग्रेजी भाबों की अंधाधुंध भरमार हिंदी के स्वरूप को बिगाड़ रही है। इसे 'भाषा का प्रदूषण' ही कहा जाएगा। मानो विश्व अंग्रेजी भाबों के मायाजाल में पिरोई गई हिंदी को समाज में स्वीकृत किए जाने का वैश्विक अभियान चल रहा है। इससे बचना ही होगा। उपाय सभी मिलकर ढूँढ़ें!

□

‘गुरुकृपा’

790, रामस्वामी सालै,
के.के. नगर,
चेन्नई-600078

हिंदी विश्व की सरलतम भाषाओं में है।

—आचार्य क्षितिमोहन सेन

हिंदी का सांस्कृतिक संदेश विश्व सुनेगा

—श्री कैलाशचंद्र पंत

दुनिया इस बात पर विस्मित होती है कि विदेशी आक्रांताओं के अनेक आक्रमणों और निर्मम आघातों के बाद भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति कैसे अक्षुण्ण बनी रह सकी। इस तथ्य से भारतीय भी अपरिचित नहीं हैं। परंतु वे विस्मित नहीं होते। उनके समक्ष वे आदर्श बहुत साफ हैं, जो ऋषियों ने रखे थे। उन आदर्शों और मूल्यों को पुस्तकों-पोथियों में ही नहीं रखा गया, संस्कारों में ढालकर भारतीयों के रक्त में प्रवाहित कर दिया गया था।

गोस्वामी तुलसीदास की यह उक्ति ग्रामीणों तक को कंठस्थ है—

‘परहित सरस धरम नहि भाई।

पर पीड़ा सम नहि अधमाई।’

भारत की साहित्य परंपरा में यही दृष्टि दिखाई देती है। उसकी उपलब्धि मानववाद से परे जाकर चराचरवाद तक पहुँचती है। हिंदी साहित्य भी, स्वाभाविक रूप से, उसी परंपरा का, उसी संस्कृति का वाहक रहा है। यही महत्त्वपूर्ण बिंदु है, जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रेखांकित करते हुए विरुद्धों में सामंजस्य कहा था। हमारी सांस्कृतिक धारा ने सहिष्णुता का, सौहार्द का, समन्वय का जो संस्कार भारतीयों को सौंपा था, वह केवल हिंदी साहित्य ही नहीं, भारतीय साहित्य में निरंतर पुष्टि पाता रहा। इस विशेषता ने भारत को अन्य सभ्यताओं से अलग पहचान दी। एक ओर देश में विभिन्न मतवाद प्रचलित

हुए, उन्हें भी सम्मान दिया गया और जो बाहरी मतवाद आए, उनको भी आश्रय देने में कोई संकोच नहीं किया गया। उनके प्रति घृणा या असहिष्णुता या अपमान का भाव भारतीयों ने नहीं रखा। यही कारण था कि भारत के संविधान में ‘सेक्युलर’ शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं समझी गई थी। जिन अर्थों और संदर्भों में ‘सेक्युलर’ शब्द आज प्रयुक्त होता है, वह तो भारत का मूल चरित्र है। यहूदी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि दुनिया में भारत ही एकमात्र देश है, जहाँ यहूदी प्रताड़ित नहीं किए गए। यह गुण भारत के भीतर ही व्यक्त नहीं हुआ। जिन भारतीयों को मजबूरी में विदेशों में जाकर बसने को मजबूर होना पड़ा अथवा जिन लोगों ने दूसरे देशों को अपनी कर्मभूमि बनाया, उनके व्यवहार में भी भारत की यह विशेषता परिलक्षित होती है। जहाँ बसे, उस भूमि को अपना बना लिया और वहाँ के स्थानीय निवासियों के साथ आत्मीय रिश्ते स्थापित कर लिये। स्वीकार करना चाहिए कि ये उन्हीं संस्कारों के फलस्वरूप संभव हुआ, जो उनकी धमनियों में हजारों वर्षों से संचरित हो रहे थे। इन सबके पीछे वही धर्म था, जिसके लिए स्वामी विवेकानंद ने कहा था—

“तुम जो युगों तक धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था, उसके लिए अन्य सबकुछ साहसपूर्वक सहन किया था, यहाँ तक कि मृत्यु तक



को गले लगाया था। विदेशी विजेताओं ने मंदिर के बाद मंदिर तोड़े, किंतु जैसे ही वह आँधी गुजरी, मंदिर का शिखर पुनः खड़ा हो गया।”

यही है भारत की आंतरिक शक्ति, जो ध्वंस के बाद भी निर्माण कर लेती है।

भारत का सांस्कृतिक संदेश साहित्य के माध्यम से सारी दुनिया तक पहुँचा। इसका प्रमाण रोमानिया के कवि मिहाई एमिनेस्कु की इस कविता में देखा जा सकता है—

तेरा समस्त जीवन लगता बस एक क्षण
एक मधुर क्षण लगता अनंत काल।
अब अव्यक्त था तब असत् था
यद्यपि प्रत्येक सत् इसमें निहित था
क्या वह गह्वर था, गुफा थी
जल का अनंत विस्तार था

रोमानिया के कवि की इस कविता को पढ़कर क्या जयशंकर प्रसाद की कामायनी की पंक्तियों की याद नहीं आ जाती। उन्होंने भी तो कुछ ऐसा ही तत्त्वज्ञान व्यक्त किया—

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन।

कहने का तात्पर्य यही है कि भारतीय चिंतन और दर्शन ने संसार को प्रभावित किया। एक ओर भारतीय अपनी संस्कृति को संरक्षित रख सके तो दूसरी ओर विदेशी विद्वानों को उसके प्रति आकर्षित कर सके।

विकास की कड़ी में जब खड़ी बोली ने हिंदी भाषा के रूप में आकार लेना शुरू किया, तब मानो देश को संस्कृत की उत्तराधिकारी भाषा मिल गई। हिंदी भाषा के विकास के प्रारंभिक चरणों में ही उसे राष्ट्रीय दायित्व के निर्वहन का बोध हो चला था। जिसे आधुनिक काल कहा जाता है और जिसके जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्र रहे। उनकी रचनाओं में तथा उनकी मंडली के सभी लेखकों

की रचनाओं में वह छटपटाहट और दायित्व बोध स्पष्ट देखा जा सकता है। भारतेन्दु का तो मूलमंत्र ही यह था—

निज भाषा उन्नति अहै,
सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के,
मिटत न हिय को सूल।।

हिंदी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मात्र दो सौ वर्षों में साहित्य की सभी विधाओं में हिंदी के लेखकों ने श्रेष्ठ रचनाएँ देने की क्षमता अर्जित कर ली। कविता तो हिंदी की परंपरागत विधा थी। लेकिन गद्य लेखन में जिस तरह की प्रौढ़ता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बाद दिखाई दी, वह चकित करती है। प्रेमचंद हों या प्रसाद, आचार्य शुक्ल हों या आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अमृतलाल नागर हों या नरेश मेहता, अज्ञेय हों या निर्मल वर्मा, विद्यानिवास मिश्र हों या मनोहर श्याम जोशी—इन सभी ने उपन्यास, कहानी, निबंध, ललित निबंध, आलोचना, यात्रा-वर्णन, डायरी, रिपोर्टाज सभी दिशाओं में सार्थक काम किए। नाटक और रंगमंच में भी हिंदी पीछे नहीं रही। प्रसादजी, हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों तथा गिरिजा कुमार माथुर के रेडियो रूपकों ने हिंदी साहित्य को समृद्ध बनाया। आलोचना की मजबूत नींव तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रख दी थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नए आयाम दिए। हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने में अनेक अन्य लेखकों का भी योगदान है। उसी के कारण आज हिंदी विश्व के अनेक देशों में सम्मान प्राप्त कर रही है और विश्व भाषा बनने की अपनी क्षमता सिद्ध कर रही है। इन लेखकों में भारत की सांस्कृतिक धारा को लक्ष्य किया जा सकता है।

हिंदी की यही सांस्कृतिक धारा एक अन्य रूप में विदेशों तक पहुँची। जो लोग ब्रिटिश शासनकाल में गिरमिटिया बनाकर मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, फिजी, केन्या, दक्षिण अफ्रीका ले जाए गए थे,

उन्होंने कठिन संघर्ष किया। उनका सहारा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' मात्र थे और भारत की मधुर स्मृतियाँ उन्हें ताकत प्रदान करती थीं। उन लोगों ने कठोर पुरुषार्थ से उन देशों की आर्थिक स्थिति सुधारी और अपनी जगह बनाई। उन्हें औपनिवेशिक पराधीनता से मुक्त कराने का संघर्ष किया। आज वे उन देशों के प्रमुख पदों पर आसीन हैं। अपनी संस्कृति के बीज तत्त्वों को संरक्षित रखते हुए हिंदी भाषा को अपनी एकता के लिए न केवल बचाए रखा, बल्कि उसके प्रचार का दायित्व भी निभाया। भारत के प्रति उनकी भावना कितनी आत्मीय है, यह वहाँ जाकर ही अनुभव किया जा सकता है। पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिदाद एंड टोबैगो में आयोजित था। वहाँ के निवासी भारतवंशियों की धर्म के प्रति आस्था और हिंदी भाषा के प्रति गहरा लगाव देखकर आश्चर्य हुआ था। भारतीय प्रतिनिधिमंडल के लिए एक कार्यक्रम पोर्ट

ब्लेयर से कुछ दूर श्री आदेश के आश्रम में आयोजित था। आदेशजी वहाँ संस्कृत और नृत्य की शिक्षा देते थे। कार्यक्रम में त्रिनिदाद की तत्कालीन संस्कृति मंत्री सुश्री उमा बुधरामजी आईं। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि भारत को हम अपनी नानी माँ मानते हैं। इसीलिए भारत और हिंदी से हमारा रिश्ता आत्मीय है। नानी माँ वाला संबोधन हृदयस्पर्शी था। हममें से अनेक प्रतिनिधियों की आँखें गीली थीं। यह गीलापन ही तो भारतीय संबंधों के गहरे रिश्तों का साक्षी है। इस बात का उल्लेख मैंने दसवें

विश्व हिंदी सम्मेलन में आए प्रतिनिधियों के सम्मान में आयोजित समारोह में किया, तब फिजी के श्री महाराज (पूरा नाम भूल रहा हूँ) उठकर आए और मेरे गले लगकर आँसू बहाने लगे। भारत की यह याद संवेदन के किस तल को स्पंदित करती है, इसको समझकर ही हम समझ सकेंगे कि भारतीय संस्कृति और संस्कार किस कदर हमें

हिंदी की यही सांस्कृतिक धारा एक अन्य रूप में विदेशों तक पहुँची। जो लोग ब्रिटिश शासनकाल में गिरमिटिया बनाकर मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गुयाना, फिजी, केन्या, दक्षिण अफ्रीका ले जाए गए थे, उन्होंने कठिन संघर्ष किया। उनका सहारा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' मात्र थे और भारत की मधुर स्मृतियाँ उन्हें ताकत प्रदान करती थीं। उन लोगों ने कठोर पुरुषार्थ से उन देशों की आर्थिक स्थिति सुधारी और अपनी जगह बनाई। उन्हें औपनिवेशिक पराधीनता से मुक्त कराने का संघर्ष किया। अपनी संस्कृति के बीज तत्त्वों को संरक्षित रखते हुए हिंदी भाषा को अपनी एकता के लिए न केवल बचाए रखा, बल्कि उसके प्रचार का दायित्व भी निभाया।

बाँधते हैं। यह बंधन ही हमें व्यक्ति से परिवार, परिवार से कुटुंब, कुटुंब से समाज, समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व और फिर समष्टि से जोड़नेवाला सोपान है। डेढ़-दो सौ वर्षों से विदेशों में बस गए लोगों को माटी की गंध इसीलिए भाती है, क्योंकि वह आत्मीय रिश्तों को पिरोना सिखाती है। उनकी इस जीवन शैली का प्रभाव उन देशों के अन्य समाजों पर भी पड़ा। सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में, जो सूरीनाम में हुआ था, एक सत्र तुलसी साहित्य में सांस्कृतिक तत्त्व-विषय पर आयोजित हुआ था। सूरीनाम के एक हिंदी

लेखक ने उन तत्त्वों की धार्मिक धरातल पर व्याख्या की, जो स्वाभाविक था। भारतीय संस्कृति को धर्म से अलग कर नहीं देखा जाता। उनके बाद भारत से पहुँचे एक वामपंथी लेखक ने तुलसी की आलोचना की। उस सत्र में विरोध का तीव्र स्वर उठा और वामपंथी लेखक को बैठना पड़ा। सूरीनाम के उस भारतवंशी का प्रत्यक्ष अनुभव था कि रामचरितमानस ने उनके पूर्वजों को किन कठिन परिस्थितियों में जीवन जीने का संबल दिया था और आज भी वह उनको आध्यात्मिक शक्ति प्रदान कर



रही है। मॉरीशस के भारतवंशियों ने गंगासागर को एक धाम के रूप में निर्मित किया और पिछले वर्ष ही वहाँ भव्य राम मंदिर का भव्य निर्माण संपन्न हुआ। इस धार्मिकता का भारतीय जीवन से नाभि-नाल का रिश्ता है।

इन घटनाओं का उल्लेख यह संकेत करने के लिए है कि भारतवंशियों ने भारत से बाहर भारत को किस तरह जिंदा रखा है। उन्हीं आदर्शों से प्रेरित होकर वे अपने सांस्कृतिक संबंधों को ज्यादा मजबूत बनाने के लिए हिंदी भाषा की आवश्यकता अनुभव करते हैं। अपने ही साधनों से उन लोगों ने (भारत वंशियों) सनातन धर्म सभा बनाई, आर्य समाज मंदिर स्थापित किए, हिंदी और संस्कृत के स्कूल खोले। उनके जीवनादर्शों का प्रभाव उन देशों के सामाजिक जीवन पर व्यापक रूप से पड़ा है। आज यूरोप और अमेरिका में भारत के पारिवारिक जीवन को समझने के लिए गहरी रुचि ली जा रही है। इसका स्पष्ट अर्थ है, हिंदी के माध्यम से संस्कृति के तत्त्व बाहरी दुनिया तक पहुँच रहे हैं।

भारत की स्वतंत्रता के बाद हिंदी का महत्त्व अनेक कारणों से यूरोप और अमेरिका को भी समझ में आ रहा है। आज तो विश्व के 150 से अधिक विश्व-विद्यालयों में हिंदी का पाठ्यक्रम संचालित हो रहा है। अनेक विदेशी विद्वानों ने हिंदी प्रचार में योगदान दिया है। तत्कालीन सोवियत संघ के श्री वारानिकोव, ऑस्ट्रेलिया के श्री बॉझ, इटली की कु. मारिया, जैसे अनगिन विद्वान् हिंदी के महत्त्व को प्रतिपादित करते दिखाई देते हैं।

एक विदेशी राजदूत ओदोनेल स्मैकल ने अपनी हिंदी कविता में उसे ऐसी अमृत धारा बताया, जिसकी वह बूँद-बूँद पीते हैं।

आखिर हिंदी में ऐसी क्या बात है, जिससे विदेशी भी आकर्षित हो रहे हैं। इसका कुछ संकेत तो प्रारंभ में ही कर दिया है। लेकिन जैनंद्रजी ने 1983 में तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन में बहुत स्पष्ट रूप से कहा था—

“मानव मूल्यों की बात जब सोचता हूँ तो पहला प्रश्न मन में यह उठता है कि क्या इसका संबंध

आध्यात्मिक मूल्यों से नहीं है और क्या भारत स्वयं में अध्यात्मनिष्ठ देश नहीं रहा? हिंदी इस बात की सूचना देना चाहती है कि भाषा के रूप में वह जिस आस्था पर खड़ी है, वह किसी भी बहाने मानव निरपेक्ष नहीं हो सकती। मानव-मूल्य ही इसका आधारभूत मूल्य है। हिंदी का उद्गम उस भारत भूमि पर हुआ, जिसने विभिन्न प्रभावों के संदर्भ में परत्व के भीतर अपनत्व का तत्त्व देखा है। सच तो यह है कि यही मानव मूल्य की सिद्धि है।”

पूरा हिंदी साहित्य इसी आदर्श से प्रेरित है और यह अपनापन विदेशियों को हिंदी की ओर लुभाता है। रवींद्रनाथ टैगोर की गीतांजलि में विदेशियों को अध्यात्म तत्त्व की रागात्मकता ने ही तो प्रभावित किया था। इसीलिए वह नोबल पुरस्कार की हकदार बनी थी।

हिंदी भाषा का विश्वव्यापी विस्तार हो रहा है। हम एक वृहत्तर भारत के प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। हिंदी के माध्यम से भारत के सांस्कृतिक मूल्यों का परिचय विदेशी प्राप्त कर रहे हैं। जैसे-जैसे इन मूल्यों का प्रसार होगा विश्व उन तनावों से मुक्त होगा, जिनमें जीने को विवश है। तमाम भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बावजूद जो बेचैनी पश्चिमी दुनिया को परेशान किए है, उसका समाधान भारत के आध्यात्मिक दर्शन में मौजूद है। हिंदी भी इन सबको किनारे करते हुए अपने ध्येय पथ पर बढ़ती जा रही है। जयशंकर प्रसाद की इन पंक्तियों में हिंदी की आधार पीठिका देखी जा सकती है—

शक्ति के विद्युत कण,

जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय।

समन्वय उनका करें समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

मानवता की यह ध्वनि किसी-न-किसी दिन पूरा विश्व सुनेगा और हिंदी विश्व भाषा इन्हीं मूल्यों के कारण बनेगी।

□

अध्यक्ष

हिंदी भवन, भोपाल

हिंदी विश्व और सांस्कृतिक जीवन

—डॉ. राजेंद्र मिश्र

भारतीय संस्कृति बुनियादी तौर पर वाक् केंद्रित संस्कृति रही है। प्रायः यह मान लिया जाता है कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। ध्यान और धैर्य से देखें तो यह केवल माध्यम भर नहीं है, बल्कि मानवीय अस्तित्व का अपरिहार्य हिस्सा है। हमारा जीना मुख्यतः भाषा में जीना होता है। हम उसमें सोच-विचार करते हैं, उसमें हमारी स्मृति बसती है, कल्पना को फैलाने, पनपाने का आकाश उपलब्ध होता है। वाक् और चित्त की रचनात्मक धारणाएँ मुक्त होती हैं। इसीलिए शताब्दियों से यह माना जाता रहा है कि वाक् और चित्त के समाहार में ही मनुष्य के जीने के संस्कार जन्म लेते हैं। भाषा संस्कृति की तीसरी आँख है।

जहाँ तक हिंदी भाषा का सवाल है पिछले एक हजार वर्षों के भारतीय इतिहास में उसकी उपस्थिति की दो-तीन विशेषताएँ ऐसी हैं, जो अन्य भाषा में नहीं पाई जातीं। पहली तो यह कि हिंदी किसी एक भाषा का नाम न होकर भाषा-समूह का नाम है। मध्य देश के अनेक जनपदों और उनमें व्यवहृत बोलियों के वैविध्य को हिंदी सहज भाव से धारण करती है। मुझे याद आता है कि बरसों पहले अज्ञेय ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि सही अर्थों में हिंदी एक सांस्कृतिक क्लियरिंग हाउस का काम करती रही है। अपने स्वभाव और अपनी प्रादेशिक स्थिति के कारण

इसमें निरंतर एक सांस्कृतिक केंद्रोन्मुखता रही और इसलिए भारत-भर में होनेवाले सांस्कृतिक विकास को, चिंतन की नई प्रवृत्तियों को उसने ग्रहण किया और फिर समस्त देश में वितरित किया। दक्षिण भारत के और महाराष्ट्र के प्रभाव हिंदी ने ब्रज मंडल में ग्रहण किए और सुदूर नेपाल से सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को ग्रहण कर उसने सुदूर दक्षिण तक फैलाया।

समूचे भक्तिकाल में कबीर, तुलसी, जायसी, सूर आदि कवियों ने अपने रचनात्मक उद्यमों में हिंदी को प्रतिष्ठित करते हुए उसे जो सांस्कृतिक व्याप्ति दी, उसका असर आज भी विद्यमान है। तुलसी संस्कृत के विद्वान् थे। वे चाहते तो संस्कृत में सहजता के साथ कविता लिख सकते थे। लेकिन उन्होंने अवधी में रामकथा रचकर उसे संस्कृत जैसी प्रतिष्ठा दी। जायसी फारसी के ज्ञाता थे, लेकिन उन्होंने बोली में 'पद्मावत' लिखकर उसे उदार विस्तार दिया। इन कवियों ने लोक और शास्त्र के द्वंद्व को ध्यान में रखते हुए ऐसा रचनात्मक परिदृश्य कायम किया, जो कथ्य में ही नहीं, कथन में भी विशाल था। इसे ध्यान से देखा जाना चाहिए कि आधुनिक समय में विभिन्न कारणों से जो लोग दूसरे देशों में गए तो रामचरितमानस को अपने साथ ले गए। आज भी हिंदी को जो अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा मिली है, वह विभिन्न बोलियों को मानवीय संस्कारों में जीने का साहस और शक्ति देती हैं।



बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता आंदोलन की जो भूमिका तैयार की गई थी, उसमें भाषा का विमर्श भी शामिल था। महात्मा गांधी की कोई भी कल्पना तुलसी के बगैर नहीं की जा सकती। इसी तरह साहित्य में भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल, निराला और त्रिलोचन के अवदान को तुलसी के बिना परिभाषित नहीं किया जा सकता। गांधी यह जानते थे कि मनुष्य का जीना मूलतः भाषा में जीना होता है। इसलिए भाषा के प्रश्न को उन्होंने स्वाधीनता का एक केंद्रीय प्रश्न बनाया था। वस्तुतः यह वाक् का चित्त में समावेश था। स्वाधीन देश की कल्पना स्वाधीन भाषा के बगैर नहीं की जा सकती थी।

यदि हम ध्यान से देखें तो यह तथ्य उजागर होता है कि हिंदी कभी भी प्रतिष्ठान की भाषा नहीं रही। इसका परिणाम यह हुआ कि उसने प्रतिष्ठान से अलग होकर एक परंपरा का संवहन और विकास किया। अज्ञेय के अनुसार, “उसने यह चेतना और विश्वास बनाए रखा कि परंपरा वह या उतना-भर नहीं जिसे प्रतिष्ठान चलाए रखता है, बल्कि उससे अलग और कभी-कभी उसके प्रतिकूल भी परंपरा वह चीज है, जो जन-समाज में जीवित रहती और उसे अनुप्राणित करती है।” इस जीवंत और लोकव्यापी परंपरा के बोध ने ही हिंदी के समाज को बनाए रखा और उसे गहरा आत्मविश्वास और विशद दृष्टि दी।

दुर्भाग्य से हमारा यह समय भाषा के

अवमूल्यन का समय बनता जा रहा है। शब्द की अर्थवत्ता को कुंद करने की कोशिश में हम एक त्रासदी में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें अंतःकरण का आयतन दिन-ब-दिन सिकुड़ता जा रहा है। बाजार के दबावों, उपभोक्ता संस्कृति और विज्ञापन की मजबूरियों के कारण ‘हिंग्लिश’ का विकास हुआ।

जहाँ तक हिंदी भाषा का सवाल है पिछले एक हजार वर्षों के भारतीय इतिहास में उसकी उपस्थिति की दो-तीन विशेषताएँ ऐसी हैं, जो अन्य भाषा में नहीं पाई जातीं। पहली तो यह कि हिंदी किसी एक भाषा का नाम न होकर भाषा-समूह का नाम है। मध्य देश के अनेक जनपदों और उनमें व्यवहृत बोलियों के वैविध्य को हिंदी सहज भाव से धारण करती है। बरसों पहले अज्ञेय ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि सही अर्थों में हिंदी एक सांस्कृतिक क्लियरिंग हाउस का काम करती रही है। अपने स्वभाव और अपनी प्रादेशिक स्थिति के कारण इसमें निरंतर एक सांस्कृतिक केंद्रोन्मुखता रही और इसलिए भारत-भर में होनेवाले सांस्कृतिक विकास को, चिंतन की नई प्रवृत्तियों को उसने ग्रहण किया और फिर समस्त देश में वितरित किया।

इन सबके बावजूद अपने रचनात्मक संस्कारों के कारण हिंदी इनका निरंतर प्रतिरोध कर रही है।

कोई भी भाषा केवल कविता, कहानी या उपन्यास के कारण ही संपन्न नहीं बनती है। वह विभिन्न अनुशासनों में प्रयोग के आधार पर विकसित होती है। यह सुखद है कि आज के दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री आदि भी हिंदी में सोचते, रचते हैं तथा स्वाधीनता के अर्थ को समझने का उद्यम कर रहे हैं।

हम उतनी दूर तक ही जा सकते हैं, जहाँ तक हमारी भाषा हमें ले जाती है। इसके लिए सबसे पहले राष्ट्रीय होकर ही हम अंतरराष्ट्रीय संसार में उचित सम्मान पा सकते हैं। हिंदी में वह अद्भुत शक्ति है, जाहिर है कि इसीलिए वह एक विश्वव्यापी अर्थ का संधान कर रही है।

□

सी-16, शैलेंद्र नगर,
रायपुर, (छ.ग.)

सर्वजन सुलभ, सर्वजन हिताय हिंदी

—डॉ. भरत गुप्ता

हिंदी 40 प्रतिशत भारतीय बोलते हैं, 80 प्रतिशत समझते हैं। भारत की आबादी लगभग विश्व आबादी की एक बटा पाँच है। भारत में चालीस प्रतिशत लोग हिंदी बोलते हैं और करीब अस्सी प्रतिशत उसे पूरी या अधूरी समझते हैं। चालीस प्रतिशत बोलनेवालों से अस्सी प्रतिशत समझने वालों का अधिक महत्त्व है। इसकी चर्चा अधिकांश नहीं होती। यदि इस तथ्य को स्वीकार कर लिया जाए तो हिंदी की वास्तविक उपयोगिता सर्वविदित हो जाएगी और इसकी व्यापकता को लेकर जो निरर्थक बहस होती है, वह भी समाप्त हो जाएगी। हाल ही में मैंने देखा कि मजदूर वर्ग के तमिल और कन्नड़ लोग कच्ची हिंदी में ही बात करते हैं। इसी आधार पर बॉलीवुड चलता है और इसी कारण संसद् में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है।

हिंदी विश्व का विस्तार और उसकी स्थापना पहले भारत में है और फिर शेष दुनिया में। हिंदी का जो स्वरूप पहले भारत में बनता है, उसी के आधार पर बाहरी दुनिया अपनी हिंदी का प्रयोग करेगी। तो आइए देखें हिंदी को क्या-क्या शक्तें देने के प्रयास हुए हैं।

मुद्रण पूर्व हिंदी अथवा किसी भी भाषा के स्वरूप पर केवल बोलनेवालों का अधिकार था। उसमें सामानीकारण यानी यूनफॉर्मिटी पैदा करने

का कोई साधन नहीं था। मुद्रण के बाद भाषा सुनी ही नहीं, देखी भी जाने लगी। एक मुद्रित लिपि के रूप में उसकी एक परिधि हो गई, जैसे एक राज्य की सीमा होती है। उस सीमा के द्वारा उस सीमा में रहनेवालों की पहचान बनी। तभी हिंदी प्रदेश व गुजराती प्रदेश या तमिल प्रदेश की पहचान होने लगी। वहाँ रहनेवाले हिंदी भाषी व तमिल भाषी कहलाए जाने लगे। मुद्रण से पहले भाषाएँ थीं, बोलनेवाले थे, भाषाई प्रदेश थे, लेकिन उनकी सीमा का निर्धारण होकर वे भाषाई आधार पर राज्य या राष्ट्र नहीं बने थे।

भाषाई आधार पर राष्ट्रों की रचना अठारहवीं शताब्दी में यूरोप में हुई। सन् 1935 में नेहरू की सरपरस्ती में कांग्रेस ने भारत में आजादी के बाद भाषाई राज्य बनाने का फैसला कर लिया था। इस फैसले के पीछे केवल योरोप का अंधानुसरण था। यूरोपीय राष्ट्रवाद भाषाई आधार पर बना था, जबकि भारत में भाषा को आधार बनाकर कोई व्यक्ति अपनी पहचान या आईडेंटिटी घोषित नहीं करता था, क्योंकि हर व्यक्ति बहुभाषी था और एक भाषा से अपनी पहचान बनाने से उसे कोई लाभ नहीं था। न उसे प्रांतीयता मिलती थी, न राष्ट्रीयता। भारत का राष्ट्रवाद भरतखंड, जंबूद्वीप, कर्मभूमि इत्यादि

भौगोलिक इकाई को मान कर चल रहा था। व्यक्ति की पहचान गोत्र, प्रवर, वर्ण, मूल और जात से थी। मुद्रण ने एक नई मानसिकता को जन्म दिया। अपनी प्रांतीय या देशज भाषा के प्रति एक नया अनुराग पैदा हुआ, जिसका नाम हुआ मातृभाषा प्रेम। जो भारतीय कभी अनेक भाषाओं के प्रेमी थे और अलग-अलग काम के लिए अलग भाषाओं का इस्तेमाल करते थे, जैसे शास्त्र के लिए संस्कृत, साहित्य और संगीत के वास्ते ब्रज या अवधी (दक्षिण में तेलुगु या मलयालम या तमिल) वे सब अपनी जन्म की भाषा में ही सबकुछ करने का दम भरने लगे। बहुभाषीय भारत में मातृभाषा अनुराग ने अन्य भाषाओं के प्रति आकर्षण कम ही नहीं किया, वरन् एक वैमनस्य भी पैदा कर दिया। यह सब नेहरू के यूरोपीय अंधानुकरण का परिणाम था।

समग्र भाषाओं का विकास एक साथ होता है। पिछले सात सौ साल में ही नहीं, तीन हजार साल में यही क्रम रहा है। संस्कृत एवं प्राकृत एक साथ विकसित हुईं और परस्पर अनुग्रहीत हुईं। तुर्की, फारसी और अरबी ने प्रभाव डाला और उर्दू जैसी बोली का जन्म हुआ, लेकिन तत्सम शब्दों की राशि से तथा शास्त्र चिंतन के द्वारा जो ऊर्जा संस्कृत ने नई भाषाओं को जन्म देने में प्रदान की, वह काम अंग्रेजी नहीं कर पाई। वह हिंगलिश तक नहीं बना पाई। हिंगलिश का प्रयोग आलस्य और वर्ग सम्मोहन के कारण अधिक होता है, किसी अंग्रेजी-इतर वर्ग से बात करने के लिए नहीं।

उर्दू का सर्वप्रथम प्रयोग विदेशी लश्कर द्वारा भारतीयों से बात करने के लिए होता था, विदेशी शासक जातियों के द्वारा। केवल बीसवीं शताब्दी में वह इस्लाम के साथ उर्दू का संबंध धार्मिक आधार पर बना और उर्दू मुसलमानों की

भाषा करार दी गई। उसी आधार पर वह आज पाकिस्तान की भाषा है, जबकि इतिहास में वह कभी उस इलाके में बोली नहीं गई। आज उर्दू क्षेत्र या जातियों के आधार पर बोली जानेवाली भाषा नहीं, अपितु धार्मिक आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप के मुसलमानों की भाषा बना दी गई है। जिन बंग भाषियों ने यह पहचान स्वीकार नहीं की, उन्हें अलग देश बनाना आवश्यक हो गया।

व्यावहारिक रूप में सभी भाषाओं को अब अधिक-से-अधिक प्रयोग में लाना चाहिए। व्यावहारिकता के कारण हिंदी का प्रयोग अधिक होगा। रास्ता है भारतीय भाषाओं के अधिक प्रयोग का। निचली अदालतों में, निचले प्रांतीय दफ्तरों में सामान्य देशज भाषाओं का इस्तेमाल हो। केवल केंद्र या उच्च स्तर पर अंग्रेजी कम, हिंदी अधिक का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हो। अंग्रेजी-प्रयोग विदेश गमन या संपर्क तक सीमित हो जाएगा। प्रवेश परीक्षा में ही हिंदी, अंग्रेजी अतिरिक्त तीन भाषाओं में सक्षमता होनी चाहिए, देश की जनता के पास बने रहने के लिए और अंग्रेजी का आधिपत्य घटाने के लिए। इन अन्य भाषाओं के विकास में हिंदी का विकास है।

समग्र भारतीय भाषाओं का विकास अब एक नई अध्ययन प्रणाली माँगता है, जिसमें पारंपरिक एवं आधुनिक सक्षमता हो और संस्कृत स्रोत सुलभ विचारों की ऊर्जा हो। सभी भाषाओं का उदय भारतीय अस्मिता तथा गौरव को केंद्रित करके सरल एवं स्वाभाविक रीति से संपन्न हो सकता है, सर्वजन सुलभ हिंदी निःसंदेह सर्वजन हिताय बनेगी।

□

फ्लैट नं.-1103, टावर-डी,
सेलिब्रिटी होम, पालम विहार
गुरुग्राम, (हरियाणा)

संस्कृति का निकुंज और भाषा

—डॉ. श्रीराम परिहार

जिस तरह एक नदी अपने उद्गम से निकलकर सागर-संगम तक प्रवाहमयता के साथ नाना तरंगों एवं उतार-चढ़ावों, मोड़ों बाँकपन के साथ सतत बहती रहती है, भाषा की प्रवाहमयता का गुण-धर्म भी उसी तरह विकसनशील है। इस विकसनशीलता के भीतर ही भाषा की संस्कृति के ऊर्जावान अँकुर झाँकते हैं।

सामान्यतः संस्कृति मानव के सम्यक् कर्मों का समूह है। ये कर्म दैहिक, मानसिक, बौद्धिक और प्राकृतिक हो सकते हैं। अतः मानव की सम्यक् कृति ही संस्कृति है। यह मानव के चिंतन की उपज है। संस्कृति में मूल्य, विचार, दृष्टि, नियम, आस्था, विश्वास, मानसिक और कायिक व्यवहार शामिल है। संस्कृति के सारे तत्त्व समाज विशेष में रहनेवाले लोगों को नियंत्रित और संचालित करते हैं। मनुष्य की वाक् शक्ति उसके संपर्क में आनेवाली वस्तुओं, प्रकृति-परिवेश, व्यवहार और चिंतन को एक नाम देती है, उसके लिए शब्दों का निर्माण करती है और भाषा द्वारा उसे व्यक्त करती है। भाषा का विकास मनुष्य ने प्रकृति के साथ रहकर और अपने संगी-साथियों के साथ रहकर ही किया। उसने अनुभव जुटाए और दूसरों को उन्हें बताया। उसने वस्तुओं को नाम दिए। इस प्रक्रिया में संस्कृति उसके अनुभवों और भाषा के विकास की स्रोत बनी, साथ ही भाषा के द्वारा संस्कृति के विकास के चहुँदिस मार्ग खुलते गए। भाषा न होती

तो संस्कृति का विकास न होता, किंतु दूसरी तरफ संस्कृति के विकास ने भी भाषा के विकास को गति दी। उसका शब्द-भंडार विकसित हुआ। उसकी भंगिमाएँ बनीं। शब्द की शक्ति में अर्थ की अनेक छवियाँ प्रकट हुईं। सांस्कृतिक परिवेश भाषा का क्रीड़ास्थल है, जहाँ भाषा अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण और समुचित विकास करती है।

संस्कृति देशकाल से निपजती है। काल और देश के मध्य ही समूची सृष्टि स्वयं में नियमबद्ध चल रही है। भूगोल और जलवायु, जीवन, समाज और राष्ट्र को नित-नूतन संस्कार देते रहते हैं। संस्कारों की सरणियाँ संस्कृति के स्वरूप के निर्धारण में महती भूमिका निभाती हैं। चूँकि जीवन का संपूर्ण विलास भाषा में अभिव्यक्त होता है, इसीलिए संस्कार और संस्कृति की सारी ऋचाएँ भाषा-निबद्ध लिखित और वाचिक साहित्य में रूपायित होती रहती हैं। इसीलिए भाषा विशेष के शब्द और अर्थ आकाशीय शून्य में पैदा नहीं होते हैं, उनका गहरा जुड़ाव भूमि और भूमिजन से होता है। इसीलिए प्रत्येक शब्द अपने साथ अपने अर्थ में हजारों साल की जीवन-परंपराओं का प्रकाश समेटे हुए रहता है। संस्कृति की भाषा देश और काल में स्थित सृष्टि-जीवन की संस्कृति का ही अभिव्यक्तीकरण है। इन्हीं अर्थों में भाषा स्वयं में भी एक संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति प्राचीनतम है। वह अखंड है।

उसकी एकता वंदनीय है। यह एकता, अखंडता और सुंदरता उसकी भाषाओं से भी प्रकट होती है। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम है तो भारतीय भाषाओं की जननी 'संस्कृत' भाषा भी विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। भारतीय संस्कृति भावात्मक तथा आंतरिक रूप से अखंड है तो भारतीय भाषाएँ लिपि, वर्ण और उच्चारण में भिन्न होते हुए भी मानवीय भावों की उदाय और समान भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अखंड हैं। भारतीय संस्कृति प्रकृति के सान्निध्य में विकसित हुई है। भारतीय भाषाओं में भी मानव, मधुमक्खियों, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं, स्तनधारी जीवों, समुद्री जीवों, नदियों, हवा, वर्षा आदि से प्राप्त संकेत—शब्द, स्वाद, गंध, स्पर्श, रूप आदि से प्राप्त अनुभवों को शब्द देती हुई प्रकृति के सान्निध्य में विकसित और समृद्ध होती रही हैं। भारतीय संस्कृति से निकली हुई संस्कृत भाषा ने संस्कृति को रक्षित और विकसित किया। संस्कृत ने हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के शब्द-भंडार और रचना-शैली को भी गहरे प्रभावित किया। संस्कृत और संस्कृति अनुपूरक और अविभाज्य हैं।

'संस्कृति की भाषा' का सीधा संबंध भाषा संस्कृति की अभिव्यक्ति से है। इसीलिए कह सकते हैं कि भाषा केवल भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं होती है, बल्कि वह अपनी अर्थवत्ता में अपने अतीत, वर्तमान एवं भविष्य-जीवन और देशकाल की अनेक प्रतिच्छवियाँ प्रदर्शित करती हुई अभिव्यक्त होती है। चूँकि भाषा का सीधा संबंध व्यक्ति-जीवन और समाज-जीवन से होता है, जीवन और समाज संस्कृति की उत्सभूमि होते हैं। अतः भाषा में जिस तरह का जीवन, उसकी विचार-अनुभूति और समाज-जीवन की धड़कनें तथा हलचलें अभिव्यक्त होती हैं; वे ही दरअसल संस्कृति की भाषा का यथेष्ट होती हैं। भाषा में मौखिक और लिखित दोनों रूपों में जो भी कहा जाता है, वह जीवन, सृष्टि और समाज में घटित हुआ सच होता है। कल्पना की उड़ान भी सृष्टि

और जीवन की वास्तविकताओं से ही बिंब और प्रतीक लेकर अपना अर्थ-विस्तार और प्रभाव-विस्तार करती हैं। वास्तव में भाषा की सृजनात्मकता ही सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की सकारात्मक विकसनशील प्रक्रिया है।

समय-समय पर होनेवाले मानवीय व्यवहार और सामाजिक परिवर्तनों के कारण संस्कृति में उतार-चढ़ाव आते हैं। भारत में अनेक विदेशी आक्रांता आए। अनेक संस्कृति के पोषक आए, लेकिन इसके बावजूद भारतीय संस्कृति की परंपरा का रंग फीका नहीं पड़ा। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि संस्कृत भाषा का रंग भी फीका नहीं पड़ा। विदेशी आक्रांताओं के साथ उनकी भाषाएँ भी आईं, उन्होंने संस्कृत भाषा और भारतीय भाषाओं को चुनौती भी दी, लेकिन हमारी भाषाओं का प्रभुत्व और महत्ता कम नहीं हुई। संस्कृति की ही तरह सभी भारतीय भाषाओं तथा हिंदी का शब्द-भंडार एक-सा है और व्याकरणिक संरचना में भी बहुत कुछ समानताएँ हैं। संस्कृति और हिंदी में प्रकृति की जो समानताएँ दृष्टव्य हैं, वे बहुत उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण हैं।

हिंदी की अपनी एक संस्कृति है। वैदिक संस्कृत से लेकर लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी तथा उसकी अनेक बोलियों, उपबोलियों का समृद्ध संसार भाषा की संस्कृति का ही शाब्दिक आगार है। चूँकि लिपिकीय-संकेतों की वैज्ञानिकता, उनके उच्चारण का स्थान-निर्धारण और उनमें अंतर्निहित विभिन्न अर्थ-ध्वनियाँ भाषा के वे संस्कार होते हैं, जिससे वह अपनी संस्कृति का निर्माण करती है। प्रत्येक भाषा की इस संरचनागत और अर्थगत विकासमान समृद्धि के संपुट में ही भाषा की संस्कृति का मोती आभामय रहता है।

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत है। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को सीखने में जितनी मदद संस्कृति करती है, उससे कहीं अधिक संस्कृत करती है। क्योंकि संस्कृत के माध्यम से प्राचीन संस्कृति को तो जानने-समझने में सुविधा

होती ही है, भाषा के व्याकरण, शब्द-भंडार और भाषा-संरचना को सीखने में भी आसानी होती है। भारतीय संस्कृति से संस्कृत भाषा का प्रगाढ़ संबंध रहा है।

समाज, संस्कृति और भाषा का अटूट रिश्ता है। भारत की एक संस्कृति है। उसके अनेक परिचायक और पोषक तत्व हैं। भारतीय संस्कृति के ये सूत्र या स्रोत ही हिंदी सीखने या समझने का आधार हैं। हिंदी के अनेक शब्द वस्तुबोधक, विचारबोधक तथा भावबोधक हैं। ये शब्द संस्कृति के भौतिक, वैचारिक तथा दार्शनिक-आध्यात्मिक तत्वों का परिचय देते हैं तथा नामकरण करते हैं। भारतीय संस्कृति में जहाँ भूगोल की सत्ता स्थापित है, जिस तरह की भौगोलिक स्थिति है, उसी के अनुरूप हिंदी में पहाड़, नदी, तट, सरोवर, खेत, मैदान, वृक्ष, लता, समुद्र, पशु, पक्षी और अंतरिक्ष नाम धरकर उपस्थित हुए हैं। अतः संस्कृति से संबद्ध होकर हिंदी की अपनी एक जातीय संस्कृति बन गई है, जिसे डॉ. रामविलास शर्मा ने समाज के संदर्भ में हिंदी जाति की संस्कृति कहा है।

भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियाँ आकर मिलती हैं। विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर ने भारतवर्ष को इसी अर्थ में 'महामानवर समुद्र' की संज्ञा दी है। ये सब संस्कृतियाँ भारतीय संस्कृति में समाहित होकर अपनी पहचान खो चुकी हैं। संश्लेषण की यह प्रक्रिया सिद्ध करती है कि भारतीय संस्कृति में आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता है। यह क्षमता हिंदी में और अन्य भारतीय भाषाओं में भी है। हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में भी संस्कृति की ही तरह अनेक भाषाओं का संश्लेषण हुआ है। यह पाचन-क्षमता हिंदी की शक्ति है।

भारतीय संस्कृति में प्रतीकों के साथ ही मिथकों का महत्वपूर्ण स्थान है। मिथकों का किसी भी संस्कृति या संस्कृति विशेष पर आधारित जीवन-विधि को उसके आदिम स्वरूप और विकास-प्रक्रिया में समझने में भरपूर योगदान होता है। भारतीय संस्कृति

के मिथक भारतीयता के मूलभूत आदिम विश्वासों, मूल्यों और जीवन-सत्यों को उनके कल्याणक स्वरूप में व्याख्यायित करते हैं। भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित मूल्यों की अंतःतहों को उघाड़ने और उनके सत्व को प्रकट करने में हिंदी भाषा सहित सभी भारतीय भाषाओं ने देश-काल अनुसार अर्थ प्रस्तुति करते हुए अपनी शब्द-संरचना और रूपक-विधान से स्वयं को समृद्ध किया है। इन सांस्कृतिक मिथकों से हिंदी एवं अन्य भाषाओं की अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शक्ति प्रदर्शित होती है तथा हिंदी एवं अन्य भाषाओं के अभिव्यंजक स्रोत एवं भाषा-भंगिमाओं के दर्शन होते हैं। भाषा के माध्यम से संस्कृति के गूढ़ संदर्भों के गुनन के अभिप्राय स्पष्ट होते हैं। भाषा की सर्जनात्मकता जन्म लेती है। हिंदी की सर्जनात्मक क्षमता में उसके विकास की संभावनाएँ खुलती हैं। मिथकों का बहुविध और बहुअर्थगर्भित प्रयोग भाषा की सर्जनात्मक क्षमता के कारण होता है और यह साहित्य के द्वारा ही अधिक संभव है। अन्य कलारूपों में अर्थ-अतिक्रमण और अर्थ-विस्तार की संभावनाएँ सीमित होती हैं।

भारतवर्ष हिंदी भाषा की जन्म-स्थली है। इसलिए हिंदी एवं भारतीय भाषाएँ भारतीय भूमि, समाज एवं संस्कृति से गहरे जुड़ी हैं। अतः इस दृष्टि से हिंदी एवं भारतीय भाषाओं की आत्मा और कलेवर को समझने के लिए भारत की भूमि, समाज और संस्कृति को जानना-पहचानना आवश्यक है। हिंदी एवं अन्य अनेक भारतीय भाषाओं की लिपि देवनागरी है। भारतीय संस्कृति भी हिंदी एवं भारतीय भाषाओं से गहरा सांस्कृतिक संबंध रखती है। अतः संस्कृति हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को सीखने का महत्वपूर्ण और अनिवार्य स्रोत है, जिसमें मनुष्य की प्रतिभा, सर्जनात्मकता, अनुकरणक्षमता और विवेक की महती भूमिका है।

□

आजाद नगर, खंडवा (म.प्र.)

हिंदी विश्व बहुत व्यापक है!

—डॉ. सूर्यबाला

हिंदी विश्व बहुत व्यापक है। देश से विदेशों तक अधिसंख्य भारतीयों, भारतवंशियों और प्रवासी भारतीयों की आत्मा में बसती है हिंदी। देश में और देश से हजारों मील दूर बसनेवालों की भी पूजा, आरती, अर्चना, वंदना, नाते-रिश्तों की पहचानों और शोडषोपचार से सोलहों संस्कारों तक छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े उत्सव, आयोजन, आशीर्वचन और अभिनंदन हिंदी के बिना अधूरे से लगते हैं। हिंदी एक भाषा से कहीं ज्यादा एक अहसास है, एक आश्वस्ति है, आह्लाद और अवसाद की हिस्सेदारी है, और है हमारे संस्कार संहिताओं की शरणस्थली। अनायास प्रसाद याद आ जाते हैं—यह नीड़ मनोहर कृतियों का—उन्होंने विश्व को रंगस्थली माना है, हिंदी हमारी सोच और संस्कारों की रंगस्थली है।

लेकिन ऐसा लगता है, जैसे ऊपर-ऊपर एक सम्मोहक स्वप्न का बखान करते हुए, अंदर-अंदर हम कहीं एक मोहभंग के अंदशे से गुजर रहे हैं, किंतु उसे स्वीकारना नहीं चाहते। एक-दूसरे से कतराते हुए निकल जाना चाहते हैं। जानते सब हैं, लेकिन जुबान पर नहीं ला रहे हैं। संभवतः इसलिए कि अप्रिय क्यों बोला, कहा जाए। तिनके एक-एक कर बिखर रहे हैं, इस नीड़ के। घोंसला उजड़ रहा है, लेकिन हम गिरते शहसवारों की तरह प्रशस्तिगान गाए जा रहे हैं। एक अबोला समझौता है, 'अप्रिय'

यथार्थ न कहकर लोगों की उम्मीदों के हौसले को बनाए रखा जाए। एक विचित्र दुर्भाग्यपूर्ण विसंगति की चपेट में आज पूरा हिंदी विश्व है, जो हिंदी को लेकर बनाए एक मोहक कोलाज को बार-बार दिखाकर लोगों को उस पर विश्वास कराने के लिए बाध्य है और लाचार है।

यह हिंदी विश्व का विद्वत्समाज है। हम स्वयं इसमें शामिल हैं। हिंदी की स्थिति को बेहतर और बेहतर बताने और दिखाने के कुशल अभिनय में हम निष्णात हो चुके हैं। एतदर्थ प्रत्यक्ष कोणों से लाभान्वित भी हो रहे हैं। मंचों-अभिभाषणों से हिंदी के प्रचार, विकास और प्रगतिगामी पक्षों की जोरदार प्रशस्ति हो रही है, जिन्हें लगातार सुनते हुए हम अनायास उस प्रशस्ति स्वप्न में जीने के अभ्यस्त होते जा रहे हैं।

लेकिन, और यह लेकिन बहुत महत्वपूर्ण है। हमारे सभ्य, आधुनिक और तथाकथित सुसंस्कृत हिंदी-विश्व से हमारे बहुत अपने शब्द अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। हमारी दिनचर्या से पंखा, बिजली, खाट, कमरा, कलम, रसोई, घंटी, फल, पुस्तकें, मित्र, सहेली, कागज, छात्र सब लुप्तप्रायः हैं। उनकी जगह फ्रेंड, बैड, रूम, बेल, किचन और पेपर काबिज हैं। हिंदी के शब्दकोशों और सामान्यजनों की बोली जानेवाली भाषा में 'लोकप्रिय' की जगह 'पापुलर' और विवादित की जगह कंट्रोवर्सी जैसे शब्दों ने ले

ली है। कैसे हमारी भाषा में माता-पिता की जगह पेरेंट्स, रविवार की जगह संडे, और यातायात की जगह ट्रैफिक आम होता चला गया, हम समझ ही न पाए। हम कैसे आवेदन की जगह एप्लीकेशन, शिक्षा की जगह एज्यूकेशन, दूर की जगह आउट ऑफ रीच

होकर गर्व का अनुभव करते गए, यह हम जैसे भद्र सुसंस्कृत जनों की चिंता का विषय नहीं रहा। 'असुरक्षा' के भय से हिंदी के समाचार पत्र घबराकर सत्तर प्रतिशत अंग्रेजी शब्दों वाली 'शेयर्ड वोकब्यूलरी' की भाषा में अखबार छापने लगे। वजन की जगह 'वेट' घटाने-बढ़ाने लगे। 'डिप्रेशन' से उबरने की टॉप थेरेपी बताते हुए देश की अर्थव्यवस्था को 'एक्सेलेंटेशेप' में लाने की कोशिश करने लगे।

'ग्लोबल मेलिटिंग' की चिंता के साथ क्या हमारी भाषा, शब्दावली में हो रही क्षति भी हमारी

चिंता के केंद्र में है? क्या हम यह सोचकर कभी व्यथित होते हैं कि इस तरह इस्तेमाल से बाहर होते जाने के कारण धीरे-धीरे हमारे अपने शब्द अपनी 'सामर्थ्य', अपनी शक्ति और तेज खोते जा रहे हैं। अब आधुनिक भद्रजनों के बीच स्वयं हमारे मुंह से 'पेरेंट्स', 'स्टूडेंट्स' और बुक्स ही निकलता है... क्रमशः 'पुस्तकें', 'छात्र' और माता-पिता उनके बीच अशक्त से महसूस होने लगे हैं। निश्चित रूप से आधुनिकता की दौड़ और तथाकथित संस्कृतियों

के संक्रमण की चपेट में आए हम सुसंस्कृत लोग ही अपने अंधे मोड़ को नहीं देख पा रहे हैं। यह स्थिति, यह खतरा कमोबेश सभी भारतीय भाषाओं पर मँडरा रहा है।

यहाँ पर स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि

ऊपर-ऊपर एक सम्मोहक स्वप्न का बखान करते हुए, अंदर-अंदर हम कहीं एक मोहभंग के अंदशे से गुजर रहे हैं, किंतु उसे स्वीकारना नहीं चाहते। एक-दूसरे से कतराते हुए निकल जाना चाहते हैं। जानते सब हैं, लेकिन जुबान पर नहीं ला रहे हैं। संभवतः इसलिए कि अप्रिय क्यों बोला, कहा जाए। तिनके एक-एक कर बिखर रहे हैं, इस नीड़ के। घोंसला उजड़ रहा है, लेकिन हम गिरते शहसवारों की तरह प्रशस्तिगान गाए जा रहे हैं। एक विचित्र दुर्भाग्यपूर्ण विसंगति की चपेट में आज पूरा हिंदी विश्व है, जो हिंदी को लेकर बनाए एक मोहक कोलाज को बार-बार दिखाकर लोगों को उस पर विश्वास कराने के लिए बाध्य है और लाचार है।

स्वाभाविक रूप से दूसरी भाषाओं से आए शब्दों को अस्वीकारना और जबरदस्ती नकली हिंदी शब्दों का निर्माण भी हास्यास्पद है, इसलिए अर्दली, इंजिन, प्लेटफॉर्म, कंप्यूटर और मोबाइल जैसे शब्द, भाषा के प्रवाह में अवरोध नहीं उत्पन्न करते, लेकिन जब हम समाचार-पत्रों के पृष्ठों पर नीचे दिए कुछ वाक्यों जैसी भाषा पढ़ते हैं तो किन्हीं साजिशों के अंदशे प्रबल हो उठते हैं।

'मॉर्निंग अवर्स की ट्रैफिक को देखते हुए, डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन ने जो ट्रैफिक रूल्स इम्प्लीमेंट करने के लिए,

जेनुइन एफर्ट किए हैं, वो रोड को प्रोन टु एक्सीडेंट बना रहे हैं। क्योंकि सारे व्हीकल्स लेफ्ट टर्न लेकर यूनिवर्सिटी की रोड को ब्लॉक कर देते हैं। इस प्रॉब्लम का इमीडिएट सॉल्यूशन मस्ट है।' इसे देखते हुए तो यही लगता है कि समाचार-पत्रों की हिंदी अब सिर्फ सर्वनाम और कारक-चिह्नों में सीमित होकर रह जानेवाली है। अपनी भाषा की अस्मिता के साथ चली इस मनमानी को हिंदी-विश्व के कर्णधार, रचनाकार, बुद्धिजीवी कैसे बर्दाश्त कर रहे हैं, यह विस्मित कर



देनेवाला सच है।

हिंदी विश्व की स्थिति थोड़ी और चिंताजनक इसीलिए भी हो गई है, क्योंकि अन्यान्य उपभाषाएँ और बोलियों ने भी क्रमशः स्वतंत्र भाषा का दर्जा पाने के लिए कमर कस ली है। निहित स्वार्थों के दबाव में अथवा अपनी भाषा से जुड़ाव की आड़ में वे हिंदी की अखंडता खंडित करने में अग्रणीय है। हिंदी के लिए इससे बड़े दुर्भाग्य और विडंबना की कल्पना कठिन है, जब भोजपुरी, राजस्थानी, कुमाऊँनी, हरियाणवी, अवधी, ब्रजभाषा, बुंदेली, बघेली, अंगिका, छत्तीसगढ़ी, सरगोजी, माघवी जैसी एक दो नहीं, अड़तीस बोलियाँ संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान पाने के लिए लगातार दबाव बना रही हैं।

सरकार, शासनतंत्र और नीतियों पर दोषारोपण करनेवाले क्या कभी अपने गिरेबान में झाँकने की कोशिश करेंगे कि स्वयं उनके अकारण, सोशल स्टेटस के रूप में अंग्रेजी बोलने, अंग्रेजी में निमंत्रण-पत्र छपवाने अथवा लेडीज संगीत जैसे भौंडे शब्द अपनाने के लिए किसने बाध्य किया है? सच तो यह है कि हम अपनी अदूरदर्शिता और छोटी क्षुद्रताओं की कीमत चुका रहे हैं। जिस समाज में अपनी भाषा के शब्दों से भरपूर एक मिठबोली दुनिया हुआ करती थी, वहाँ एक धूसर सन्नाटा पसरा है। बे-पढ़े-लिखे तो हिंदी बोल भी पाते हैं, समस्या पढ़े-लिखों की ही ज्यादा है। यथार्थतः शिक्षित, समृद्ध वर्ग के लिए हिंदी अब एक 'पराई' भाषा है।

कारण और भी बहुत से हैं। प्रारंभ में शिक्षा का माध्यम हिंदी अथवा मातृभाषाओं का न हो पाना हो, अथवा इंग्लिश माध्यम की वजह से अपनी भाषा शब्दों की पहचान का धुँधलाते जाना हो (कि अपने 'छप्पर', 'छानी', 'छत', मुँडरे सब ध्वस्त-पस्त होते चले जाएँ) अब आँगन में तुमकने जैसी कोई भावना नहीं जुड़ती, अब 'झरोखों' से कोई स्मृति नहीं

कौंधती... अपनी भाषा के शब्दों के रचाव और अर्थ के माधुर्य बहुत दूर हो चुके हैं हमसे।

हमारे अंदर अंतर्द्वंद्वों का घमासान मचा है कि निरंतर हाथ से बे-हाथ होती स्थितियों को यदि हम समय रहते नहीं सँभाल पाए तो कुछ दशकों अथवा सदी के अंतिम छोर तक पहुँचते-पहुँचते, जीवन की कुछ बहुत खूबसूरत चीजों के साथ, अपनी मुँहबोली भाषा, हमसे पूरी तरह छिन जाएगी और हिंदी का कोई नामलेवा नहीं रह जाएगा।

लेकिन विश्वास फिर भी नहीं टूटता, उल्टे दृढ़ होता है; थोड़े ही सही, पर इन चुनौतियों को झेलने के लिए, इस दिशा में उठाए जाते संकल्पनिष्ठ और समर्पित प्रयासों को देखकर। 'ट्रेंड' और रुझानों पर भी भरोसा करें तो कब, सिर्फ इंग्लिश और हिंग्लिश से उकताए लोग 'चेंज' और 'कुछ नए' के जुनून में वापस अपनी भाषा/भाषाओं पर लौट लें, कहा नहीं जा सकता। क्योंकि चीजों को आजकल 'वायरल' होते भी देर नहीं लगती।

इससे भी ज्यादा आशान्वित, थोड़े ही सही, लोगों की सोच में आ रहे परिवर्तनों से भी हुआ जा सकता है, जो कुछ ठोस कारणों से हिंदी के महत्त्व को समझने लगे हैं। इनमें हिंदी से ज्यादा हिंदीतर भाषी लोग हैं। यूँ भी अधिसंख्य प्रकाशित हो रही पुस्तकें, साहित्य से लेकर फिल्मों, विज्ञापनों, नुक्कड़ नाटकों, अनुवादों तक हिंदी को लेकर आ रहे दृष्टिकोणों में बदलाव हमारे आश्वस्त होने का कारण बनता है। फिर भी यह सच तो है ही कि हमारे स्वयं के अंदर अपनी भाषा को लेकर न कोई जुड़ाव रह गया है, न स्वत्वाभिमान। मंचों की भाषा में हम एक-दूसरे को ललकार कर कहते अवश्य सुने जाते हैं कि 'एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो' लेकिन उस जुनून और संकल्पनिष्ठा की प्रतीक्षा बहुत लंबी होती जा रही है।

□

बी-504, रूनवाला सेंटर,
गोवंडी स्टेशन रोड, देवनार ई., चेंबूर, मुंबई

विश्व के भारत-भाव में हिंदी का संदर्भ

—डॉ. मोहनलाल सर

भारतीय सांस्कृतिक सामर्थ्य का वर्णन अलामा इकबाल की प्रसिद्ध लोकप्रिय पंक्तियों में इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा।

1903 ई. के आसपास लिखी इस नज्म का शीर्षक है, 'तरान-ए-हिंद'; नज्म की पहली पंक्ति है—

सारे जहाँ से अच्छा, हिंदोस्तान हमारा।

अंग्रेजी शासनकाल में लिखी इस नज्म ने न केवल अंग्रेजों को चेताया, बल्कि भारतीय सुप्त मानस को भी जाग्रत करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया।

इधर भारत में अपने शासन को स्थिर करने के लिए अंग्रेजों ने समझ लिया था कि हिंदी, उर्दू को अच्छी तरह से सीखे बिना, यहाँ बने रहना संभव नहीं है। इसी उद्देश्य से कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। वहाँ के हिंदी, उर्दू के अध्यापक, जॉन गिल्क्राइस्ट ने 1803 ई. में इस निमित्त पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराना आवश्यक समझा। हिंदी और उर्दू की अलग-अलग पुस्तकें लिखने का कार्य भारतीय लेखकों को दिया गया। इसके अतिरिक्त जनपदीय स्तरों पर भी अंग्रेज आक्रांताओं के लिए आवश्यकतानुसार हिंदी अथवा

उर्दू सीखने-सिखाने की व्यवस्था की गई। इससे भारत पर उनकी पकड़ मजबूत होने लगी।

दूसरी तरफ यूरोपीय नवजागरण में पहले से ही भारत-भाव का वर्चस्व पुनर्स्थापित होने लगा था। सर विलियम जॉस बहुभाषाविद् थे। संस्कृत साहित्य उनकी विशेष रुचि का विषय था। 1789 ई. में उन्होंने कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतल' का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया था। जर्मन विद्वान् मैक्समूलर की पुस्तक—'इंडिया व्हाट इट कैन टीच अस' 1982 में प्रकाशित हुई। संस्कृत का विद्वान् होने के साथ-साथ वे भाषा विशेषज्ञ भी थे। उनका कहना है कि संस्कृत के ग्रंथों और उनमें वर्णित मंत्रों में ज्ञान की दुर्लभ निधि समाहित है।

11वीं शताब्दी ईस्वी में सोमदेव द्वारा लिखित 'कथासरितसागर' ने पश्चिमी विद्वानों को अभिभूत किया। कथाशिल्प और सहज अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह कृति अद्वितीय है। इसका आकार भी बृहत् है। यूनानी महाकाव्य ओडेसी और ईलियाद दोनों मिलकर भी कथासरितसागर के आधे के बराबर भी नहीं हैं। जर्मन विद्वान् ब्रोक्हउस ने 23 साल लगाकर, 1862 ई. में संपूर्ण कृति का जर्मन अनुवाद संसार के सामने प्रस्तुत किया। प्रेजीडेंसी कॉलेज, कलकत्ता के प्रोफेसर आर. एच. तवनेय ने कृति का अंग्रेजी अनुवाद किया। 1924 ई. में पेंजर ने इसका

दूसरा संस्करण दस अंकों में प्रकाशित किया।

भारत के अनेक मनीषियों ने भी भारत-भाव की व्याख्या भारत के साथ-साथ, विदेशों में भी की। इनमें रमण महर्षि, स्वामी विवेकानंद, अरविंद घोष, महेश योगी, भगवान रजनीश, आनंद मूर्ति, भक्ति वेदांत स्वामी प्रभुपाद के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत-बोध के इस महायज्ञ की भाषा हिंदी से इतर होते हुए भी, भारतवर्ष को अच्छी तरह से जानने-पहचानने के लिए, हिंदी भाषा सीखने-समझने के लिए प्रभाता स्वतः ही प्रेरित होता रहा। वर्तमान स्थिति यह है कि विश्व के लगभग हर कोने में हिंदी भाषा सीखने की कामना विकसित हुई है। अखिल भारतीय व्याप्ति के कारण, विदेशों में हिंदी अधिक लोकप्रिय हो रही है। विगत में कुछ ऐसी स्थितियाँ भी बनीं, जिनसे अनायास ही हिंदी सात समंदर पार कर गई। अंग्रेजों ने भारत के अनेक मेहनतकश लोगों को 19वीं शताब्दी के मध्य से ही फीजी, मॉरीशस, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद एवं टोबेगो आदि देशों में पहुँचाया। ये लोग अपने साथ जो कुछ ले जा सके थे, उसमें गोस्वामी तुलसीदास का श्री 'रामचरितमानस' प्रमुख था। अनेक कठिनाइयों के बावजूद, इन मेहनतकश लोगों ने इन देशों में कड़ी मेहनत से खेती-बाड़ी की और अपने आप को स्थापित किया। सायंकाल में नित्य-प्रति श्रीरामचरितमानस का सामूहिक वाचन करते रहे और अपनी भाषा को यथासंभव जीवित रखा। अवधी, भोजपुरी आदि बोली क्षेत्रों के निवासी होने पर भी इन लोगों ने हिंदी से ही अपनी पहचान बनाए रखी। घर से बेघर होकर अपरिचित परिस्थितियों और अपरिचित भाषा के बीच अपनी भाषा को सुरक्षित रखना साधारण बात नहीं है। यह हिंदी की जीवनदायिनी शक्ति ही है, जो इस प्रकार का उत्साह प्रदान करने में सक्षम है।

यह तो स्वाभाविक ही था कि इन देशों में बसे

इन भारतीयों की भाषा मानक हिंदी से भिन्न थी। सूरीनाम के भारतवंशी अपनी भाषा को 'सरनामी हिंदी' और फीजी के भारतवंशी अपनी भाषा को 'फीजी हिंदी' कहने लगे। लेकिन अपनी मूल पहचान को बनाए रखने के लिए ये लोग भारत में प्रचलित हिंदी के प्रति आकर्षित होते रहे। इस दिशा में भारत सरकार के सक्रिय होने के फलस्वरूप इन लोगों का उत्साह संवर्द्धन हुआ और ये लोग हिंदी के समीप आने लगे।

त्रिनिदाद एवं टोबेगो में हिंदी का कम प्रयोग होने के बावजूद, जब 1992 ई. में इस देश की राजधानी पोर्ट ऑफ स्पेन में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन आयोजित किया गया तो हिंदी भाषा के प्रति यहाँ के लोगों की रुचि में भी विकास होने लगा। अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन तीन वर्षों में होनेवाले 'विश्व हिंदी सम्मेलन' से भिन्न था।

अंग्रेजों द्वारा विदेशों में पहुँचाए गए भारतीयों के अतिरिक्त, अनेक भारतीय अपनी इच्छा से भी दूसरे देशों में स्थापित हो गए। मुख्य रूप से ऐसे लोगों ने विकसित देशों की तरफ ही रुख किया। हिंदी प्रदेशों से गए ऐसे लोगों का भावनात्मक संबंध हिंदी के साथ काफी कुछ बना रहा। अनुकूल माहौल की तलाश करते हुए ये लोग अब हिंदी भाषा के और समीप आ रहे हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि हिंदी सिनेमा की लोकप्रियता के कारण हिंदी का प्रचार-प्रसार दूर-दूर तक फैल गया है। प्रवासी भारतीयों के अतिरिक्त अन्य विदेशी लोग भी हिंदी सिनेमा में रुचि ले रहे हैं। कुछ हिंदी फिल्मों तो विदेशों में भारत से अधिक धन कमाती हैं। विदेशियों के लिए हिंदी फिल्मों की डबिंग वहाँ की भाषा में की जाती है। इसके बावजूद ये फिल्मों भारत के साथ-साथ हिंदी के प्रति भी रुचि उत्पन्न करती हैं।

वर्तमान में हिंदी फिल्मों के साथ-साथ टेलीविजन चैनलों के हिंदी कार्यक्रम इस क्षेत्र

में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। टेलीविजन चैनलों के हिंदी कार्यक्रम सशक्त रूप से हिंदी को अपने सामाजिक संदर्भ सहित दूर-दूर तक पहुँचाने में सक्षम हैं। इंटरनेट पर उपलब्ध होने के कारण इन कार्यक्रमों की रेंज पर्याप्त विस्तृत है। सास-बहू प्रसंगों के साथ-साथ ऐतिहासिक, धार्मिक और हास्य कार्यक्रम भी दूर-दूर तक देखे जाते हैं।

व्यापार के लिए भारत एक बहुत बड़ा देश है। यहाँ व्यापार करने की अभिलाषा विदेशियों को हिंदी सीखने के लिए प्रेरित करती है। व्यापारिक रुचि वाले इन देशों के युवा भारत में हिंदी सीखने के लिए आते हैं और उपयुक्त संस्थानों में एक से अधिक सत्रों के पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में विश्व के लगभग सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी अथवा इंडोलॉजी के विभाग सक्रिय हैं। कहीं-कहीं पर तो अंतरविश्वविद्यालयी प्रतियोगिताएँ भी आयोजित की जाती हैं। अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में 2008 ई. से प्रति वर्ष हिंदी में अंतरविश्वविद्यालयी वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित की जा रही है। 2012 ई. में इस प्रतियोगिता को दो स्तरों पर आयोजित किया गया था। पहला स्तर 30 मार्च को अपने-अपने विश्वविद्यालयों में हुआ था और फाइनल येल विश्वविद्यालय के परिसर में 6 अप्रैल को संपन्न हुआ। वाद-विवाद का विषय था, 'उच्च शिक्षा आवश्यक ही नहीं है।' भारत मूल के छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त, इस प्रतियोगिता में वहाँ के मूल निवासी भी शामिल हुए थे।

अनेक छात्र-छात्राएँ, भारत सरकार की छात्रवृत्ति प्राप्त कर, भारत में हिंदी प्रशिक्षण के लिए आते हैं। हिंदी का समुचित ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत ये लोग अपने देशों में हिंदी का सफल अध्यापन कर रहे हैं। अध्यापन के अतिरिक्त कुछ लोग अन्य क्षेत्रों में भी हिंदी का कार्य करते हैं। 1973 ई. में मंगोलिया के एक छात्र, श्री न्यमदवा ने

केंद्रीय हिंदी संस्थान में हिंदी की उच्च शिक्षा प्राप्त की और फिर मंगोलियायी राजदूत के रूप में कई वर्षों तक भारत में कार्यरत रहे। इस तरह के अन्य उदाहरण भी हैं, जहाँ विदेशियों ने हिंदी सीखकर उल्लेखनीय कार्य किए हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हिंदी ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। राष्ट्र संघ महासभा के 32वें अधिवेशन में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने विदेश मंत्री के रूप में 24 सितंबर, 1977 को हिंदी में अपना ओजपूर्ण भाषण प्रस्तुत किया था। भाषण के समापन की उक्ति थी 'जय जगत'। इसके बाद तालियों की अप्रतिम गूँज ने उनका अभिवादन किया था। इस उदाहरणीय भाषण के पश्चात् महासभा में हिंदी में बोलने की परिपाटी प्रारंभ हो गई। 2017 ई. के 72वें अधिवेशन में भी वर्तमान विदेश मंत्री, श्रीमती सुषमा स्वराज ने महासभा में अपना प्रभावपूर्ण भाषण हिंदी में ही प्रस्तुत किया।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 2014 ई. में जब 21 जून को 'विश्व योग दिवस' के रूप में मनाने का प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ में रखा तो 192 देशों ने इसका समर्थन किया। संयुक्त राष्ट्र संघ में ऐसा समर्थन अभूतपूर्व था। 21 जून, 2015 को विश्व के 192 देशों ने इस दिवस का प्रथम आयोजन किया। 250 से अधिक नगरों में पूरे उत्साह के साथ योग दिवस मनाया गया, तब से यह दिवस पूर्ण उत्साह के साथ दुनिया भर के नगरों में मनाया जाता है। भारत-प्रेरित यह महान् आयोजन भी विश्व में हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न करने का सशक्त माध्यम है। ऐसा अनुभव हो रहा है कि इतने व्यापक रूप से योग दिवस मनाने के कारण हिंदी की व्यापकता भी दुनिया भर में बढ़ गई है।

□

1265/4 यूई,

गुरुग्राम-122001 (हरियाणा)

विश्व परिप्रेक्ष्य में हिंदी और भारतीय संस्कृति

—डॉ. ममता शर्मा

विश्व के छह भाषा परिवारों में हिंदी भाषा का संबंध समृद्ध यूरोपीय भाषा परिवार से है। हिंदी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'सिंधु' से मानी जाती है, जो संभवतः द्रविड़ या किसी पूर्ववर्ती भाषा से संस्कृत में आया है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहते थे और उसके आस-पास की भूमि को 'सिंधु' कहा जाने लगा। यही 'सिंधु' शब्द इरानी में जाकर हिंदू और फिर हिंद हो गया, जो धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक बन गया। इरानी 'ईक' प्रत्यय लगाने से 'हिंदीक' बना, जिसका अर्थ है—'हिंद का'। यूनानी 'इंडीक' व अंग्रेजी 'इंडिया' उसी हिंदीक का विकसित रूप है। विश्व भाषा के रूप में हिंदी समग्र भूमंडल की तीसरी भाषा है। इसे हिंदी के लोग अपनी संस्कृति का अंग मानते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी विश्व भाषा है। मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं, संकल्पनाओं तथा महत्वाकांक्षाओं को सहज, सरल रूप में व्यक्त कर देने के कारण हिंदी भाषा प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर है। वैज्ञानिकता एवं शाश्वत मूल्यधारिता के अनुपम गुणों से युक्त यह भाषा भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म की पुनीत धरोहर है। यह महासागरवत अथाह शब्द भंडार लिये हुए हैं। इसमें अनेक भाषाओं की शब्द सीमाएँ आकर मिली हैं तथा आत्मसात हो गई हैं। इसी सागरवत समाहित्व के महान् गुण के कारण

इसका शब्द भंडार निरंतर बढ़ता चला जाता है।

विश्व परिप्रेक्ष्य में हिंदी के बढ़ते प्रभाव को देखें तो संपूर्ण भारत में तो इसका प्रयोग हो ही रहा है, इसके साथ ही मॉरीशस, फीजी, बहरीन, संयुक्त अरब अमीरात, कनाडा, अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, सूरीनाम, कुवैत, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका, चीन और ऑस्ट्रेलिया तथा अनेक यूरोपीय देशों में बसे लाखों लोगों द्वारा उपयोग किया जा रहा है। निःसंदेह हिंदी भाषा अपनी सरलता, सांस्कृतिक संपन्नता तथा अध्यात्म प्रधानता आदि गुणों के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगातार लोकप्रिय हो रही है। विश्व के 40 से अधिक देशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है।

संस्कार और आदर्शों से समृद्ध हिंदी भाषा की सौरभ विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षणार्थियों को सौरभान्वित कर रही है। वहाँ के उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में हिंदी भाषा पर डिप्लोमा व डिग्री पाठ्यक्रम संचालित हैं। भारतीय संस्कृति व अध्यात्म के शिक्षण हेतु प्रतिवर्ष लगभग 5000 शिक्षार्थी हिंदी सीख रहे हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो से संबद्ध साउथ एशियन लैंग्वेज यूनिवर्सिटी ऑफ वॉशिंगटन में एम.ए. एवं पत्रकारिता के पाठ्यक्रम हिंदी में चल रहे हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ टोक्यो, जापान, अमेरिका

आदि में सैकड़ों विद्यार्थी प्रतिवर्ष हिंदी शिक्षण हेतु प्रवेश ले रहे हैं। धाराप्रवाह हिंदी सिखाने के लिए भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य वाली हिंदी फिल्में दिखाई जाती हैं। मॉरीशस में सन् 1926 में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' की स्थापना 'तिलक विद्यालय' के रूप में हुई। इसके बाद विश्व हिंदी सम्मेलनों ने हिंदी को विश्व भाषा बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी विश्व भाषा है। 'मॉरीशस हिंदी प्रचारिणी सभा' के अध्यक्ष श्री जयनारायण राम के शब्दों में 'हिंदी उपनिषद्, रामायण और गीता की बेटी बनकर आई और धर्म एक संस्कृति का अंग बनकर अभी भी जीवित है।' हिंदी की माधुर्यता को रेखांकित करते हुए प्रमुख चेक शिक्षाविद् डॉ. ओदोलेन स्मेकेल का कहना है—'हिंदी ज्ञान मेरे लिए अमृतपान है, जितनी बार भी पीता हूँ, उतनी बार लगता है पुनः जीता हूँ।'

हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में हिंदी साहित्य के साहित्यकारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसमें प्रवासी हिंदी साहित्यकार जैसे, फिजी के कमला प्रसाद मिश्र, मॉरीशस के अभिमन्यु अनंत, राजेंद्र अरुण, प्रो. वासुदेव विष्णु दयाल, सूरीनाम के ब्रजेंद्र कुमार भगत, मुंशी रहमान खान आदि प्रमुख हैं। फीजी में हिंदी संवैधानिक संसदीय मान्यता प्राप्त

भाषा है। मॉरीशस में हिंदी को सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जनसंपर्क की भाषा के रूप में मान्यता है। सन् 1903 में मॉरीशस में 'हिंदुस्तानी' एवं 'मॉरीशस आर्य' पत्रिका का प्रकाशन हुआ। बाद में 'आभा', 'दर्पण', 'रणभेरी' आदि पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। फीजी में सन् 1923 में 'फीजी समाचार' प्रकाशित हुआ। इसके बाद 'भारत युग', 'वृद्धि', 'बुद्धिवाणी', 'जाग्रति', 'जयफीजी', 'सनातन संदेश' आदि का प्रकाशन हुआ, जिन्होंने हिंदी प्रचार-प्रसार को बढ़ाया

और इसे विश्व भाषा तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

टोक्यो विश्वविद्यालय के प्रो. पाथोओ दोई ने भी हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए सराहनीय परिश्रम किया है। फ्रांस के गार्सा द तासी के हिंदी साहित्य के इतिहास जॉर्ज ग्रियर्सन के दि वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ नॉर्दर्न इंडिया-तीसरा ग्रंथ, कर्नल टाड का पृथ्वीराज रासो कृत अनुवाद को छोड़ भी दें तो उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी का अमेरिका में, अपर्णा क्षीरसागर महापात्र

का फ्रांस में विश्वविद्यालय स्तर पर जुड़ना, अर्चना पेन्यूली का डेनमार्क में हिंदी अध्यापन के माध्यमिक स्तर पर जुड़ना तथा जयशंकर प्रसाद की कामायनी, प्रेमचंद के गोदान तथा आदर्श आचार संहिता के रूप में ख्यात लोकनायक तुलसी के रामचरितमानस का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद होना, हिंदी को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित



करने में मील के पत्थर सिद्ध हो रहे हैं।

विवेच्य विषय में उल्लेख करना समीचीन होगा कि भारतीय संस्कृति की जीवंतता के प्रतीक हिंदी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकारों की विश्रुत कृतियों के प्रति विदेशी विश्वविद्यालयों में अध्ययन हेतु रुचि निरंतर बढ़ रही है। मुंशी प्रेमचंद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, शिवानी, आचार्य चतुरसेन, वृंदावनलाल वर्मा, यशपाल, जैनेंद्र, अज्ञेय आदि की रचनाएँ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काफी लोकप्रिय हो रही हैं। कबीर, सूर, मीरा का साहित्य, तुलसी के रामचरितमानस जैसे आदर्श जीवन मूल्यों को विवेचित करनेवाले ग्रंथों का सम्मान वैश्विक स्तर पर अद्भुत रूप से बढ़ता जा रहा है। हिंदी को विश्व भाषा के रूप में मान्यता हेतु भारत सरकार ने 'महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय' की स्थापना की। फरवरी 2008 में मॉरीशस में 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना की जा चुकी है। इसमें विश्व हिंदी त्रैमासिक का प्रकाशन होता है। हिंदी को विश्व भाषा बनाने में विदेशों से प्रकाशित पत्रिकाओं में, भारतदर्शन (न्यूजीलैंड से प्रकाशित), सरस्वती (कनाडा से प्रकाशित), अन्यथा (अमेरिका से प्रकाशित) हिंदी परिचय एवं 'गर्भनाल' प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रकाशित ई-पत्रिकाएँ, जो कि अमेरिका से प्रकाशित होती हैं, अच्छे स्तर की हिंदी पत्रिकाएँ हैं।

वेद तथा उपनिषद् सहित तमाम वैदिक साहित्य किसी एक संप्रदाय की अपनी निधि नहीं है। वे हिंदू इसलिए कहलाते हैं कि उनका प्रादुर्भाव उस संस्कृति में हुआ, जिसकी परंपरा हिंदू संस्कृति में सुरक्षित है। वे भारतीय भी इसलिए कहलाते हैं कि उनका यह दृष्टिकोण—'वसुधा पर सब प्राणी एक ही कुटुंब के हैं।' यह विशेष प्रकार से भारतीय दृष्टिकोण है, अतः हमारे अलौकिक वेद, उपनिषद् तथा पुराण व

गीता न हिंदू हैं, न भारतीय। वस्तुतः वे तो मानवता की अमूल्य निधि है।

निःसंदेह राम भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट मानव रत्न हैं। तुलसी के राम में आचार्य शंकर, रामानुज, मद्गल्लभ, निंबार्क, रामानंद तथा चैतन्य आदि के आराध्यों की समस्त विभूतियाँ विद्यमान हैं, उनमें सूफी संतों का दिव्य प्रेम, कबीर के राम का निर्गुणत्व, नाथपंथियों का नाथत्व तथा गुरुनानक का गुरुत्व पूर्णतया शोभायमान है। वे मानवता के संरक्षक हैं, मर्यादाओं के संस्थापक हैं तथा विश्व हित में सतत निरत हैं। वे दशरथ सुत होकर भी निर्गुण, निराकार तथा परम सत्य हैं, जिनकी सत्यता से जड़ माया भी सत्य प्रतिभासित होती है। तुलसी के शब्दों में—

‘जासु सत्यता ते जड़ माया।

भास सत्य इव मोह सहाया।’

भारत का सांस्कृतिक वैभव सदैव उन्नत रहा है। भारत पाषाणकाल, नव पाषाणकाल, सिंधु घाटी सभ्यता, उपनिषद् सूत्र काल, बौद्ध युग से लेकर अशोक, हर्ष, सल्लतन और मुगलकाल और आधुनिक युग तक विविध रूपों में अपनी सांस्कृतिक विरासत और संचेतना को सहजता आया है तथा परिष्करण और परिमार्जन करता रहा है। भारत देश के आदर्श जीवन मूल्य प्रत्येक युग में यथावत रहे हैं तथा भारत ने सदैव विश्व को उर्ध्वगामी दिशा से अनुप्राणित किया है। यवन, शक, यहूदी, कुषाण, हूण, तुर्क, अफगान, मुगल और अंग्रेज आदि विदेशियों के आक्रमण और शासन भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके। इस महान् संस्कृति की यही विशेषता है।

□

उपनिदेशक (अनुवाद)

भाषा एवं पुस्तकालय विभाग,
राजस्थान सरकार, जयपुर (राज.)

सांस्कृतिक भाषा के रूप में हिंदी : सौ साल पुराने संकल्प की अभिनव भूमिका

—प्रो. प्रदीप कुमार शर्मा

हिंदी आज समग्र राष्ट्र की संपर्क भाषा है। यह राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, राजभाषा आदि विविध रूपों में सार्वदेशिकता का स्वरूप ग्रहण कर समस्त भारतीय भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने की दिशा में अग्रसर है। ऐसी स्थिति में उसे किसी प्रदेश अथवा वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म, संप्रदाय विशेष की भाषा मानना उसके राष्ट्रीय स्वरूप की अवहेलना करना ही है।

आज विश्व के लगभग 150 देशों में हिंदी भाषी तथा हिंदी प्रेमी हैं। मॉरीशस की संसद् ने 12 नवंबर, 2002 को एक अधिनियम द्वारा 'विश्व हिंदी सचिवालय' की स्थापना की थी, जिसका मुख्य उद्देश्य है—

1. हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रोन्नत करना।
2. हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा बनाने के लिए प्रयत्न करना।
3. हिंदी में अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन, संगोष्ठी, समूह-विचार-विमर्श, कवि-सम्मेलन जैसे सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना।
4. हिंदी के विद्वानों को सम्मानित/पुरस्कृत करना।
5. हिंदी में शोधकार्य के लिए प्रलेखन केंद्र स्थापित करना।

6. अंतरराष्ट्रीय हिंदी पुस्तकालय की स्थापना करना।

7. अंतरराष्ट्रीय हिंदी पुस्तक मेले का आयोजन करना।

सांस्कृतिक भाषा के दो अर्थ हो सकते हैं—1. संस्कार के गई भाषा अर्थात्, परिष्कृत भाषा, और 2. संस्कृति-विशेष के व्यापक तत्त्वों को समाहित करनेवाली भाषा। विगत सौ वर्षों में, मुख्यतः स्वातंत्र्योत्तर काल में, हिंदी भाषा एकाधिक दृष्टियों से लोकप्रिय हुई है। राष्ट्रभाषा के रूप में तो इसके विकास से सभी परिचित हैं, किंतु विशेष प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने के कारण आजकल 'राजभाषा हिंदी', कामकाजी हिंदी, तकनीकी हिंदी जैसे अनेक शब्द चल पड़े हैं, जो उसके निरंतर विकासमान स्वरूप के परिचायक हैं। हिंदी के सभी रूप उसके मानक रूप के आधार पर निर्मित हुए हैं, जिनसे भाषा की आंतरिक संरचना भी प्रभावित हुई है।

भारतीय संस्कृति के एकाधिक तत्त्वों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति हिंदी में प्राचीन काल से ही लक्षित रही है। इसी गुण के कारण मध्ययुगीन साधु-संतों ने उसे सार्वदेशिक रूप प्रदान किया था। उस समय ब्रजभाषा ही भारतीय संस्कृति की संवाहिका बनी

थी। आधुनिक काल में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा होने पर इसने भी सार्वजनिक होने का प्रयास किया और यह अखिल भारतीय राजकाज की भाषा बन गई। इस समय यह नागर संस्कृति के साथ-साथ 'लोक-संस्कृति' को भी उजागर करती है।

सांस्कृतिक भाषा के रूप में हम हिंदी के दो रूपों को देखते हैं—1. इतिहास की दृष्टि से, और 2. साहित्यिक रचनाओं की दृष्टि से।

इतिहास की दृष्टि से हिंदी के वर्तमान स्वरूप को भारतेंदु काल से मानना ही समीचीन होगा, क्योंकि उसके पूर्व हिंदी गद्य का विकास हो जाने पर भी लेखकों की सांस्कृतिक चेतना उद्बुद्ध नहीं हुई थी। जब भारतेंदु ने सन् 1873 में लिखा कि हिंदी नई चाल में ढली तो उसका तात्पर्य हिंदी की ऐसी सर्वांगीण उन्नति से था, जिसके उदाहरण 'हरिश्चंद्र मैगजीन' तथा भारतेंदु ग्रंथावली में मिलते हैं।

दूसरी ओर भारतेंदु मंडल के लेखकों ने इसी उद्देश्य से अनुप्राणित होकर साहित्य रचना करते हुए हिंदी भाषा में अपने विचार प्रकट किए थे। प्रताप नारायण मिश्र ने 'निज देश' तथा 'निजभाषा' के लिए तन-मन-धन न्योछावर करने की कामना की थी। 'प्रेमधन' ने उर्दू की व्युत्पत्ति देते हुए नागरी हिंदी की प्रशंसा की थी और कचहरी आदि कार्यों के लिए हिंदी को योग्य ठहराया था। ये लेखक चूँकि जन-साधारण को उनकी वास्तविक दशा से परिचित कराना चाहते थे, अतः इसके लिए सरल भाषा ही उपयुक्त हो सकती थी। इस स्थिति ने हिंदी को सांस्कृतिक भाषा बनने की दिशा में उन्मुख किया।

भाषा राष्ट्रीय चेतना का अनिवार्य अंग होती है। वह मनुष्य के विचारों को ही अभिव्यक्त नहीं करती, बल्कि देश के संगठित रूप का भी बोध कराती है। भारत जैसे बहुजातीय, बहुवर्गीय देश में जिसे रवींद्रनाथ ठाकुर ने 'महामानव समुद्र' कहा है, एकमात्र हिंदी ही एकता का प्रतीक हो सकती है—इसे तत्कालीन लेखक समझ गए थे।

देश को आजादी दिलाने के लिए पूरे देशवासियों को एकत्रित करके आंदोलन चलाने हेतु कांग्रेस महासभा की स्थापना हुई थी, जहाँ देश के विभिन्न प्रदेशों के महान् नेता सदस्य थे। इस महासभा का वार्षिक सम्मेलन अंग्रेजी माध्यम से होता था। धीरे-धीरे सदस्यों ने महसूस किया कि देश की स्वतंत्रता के लिए संग्राम करनेवाली संस्था के लिए विदेशी भाषा का प्रयोग करना उचित नहीं है। एक ऐसी भाषा का प्रयोग हो जो देशी हो, आम जनता भी जिसे समझती हो, भाग ले सके और अपनी अभिव्यक्तियों को प्रकट कर सके।

स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे आर्यसमाजी धार्मिक नेता और राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने विचार व्यक्त किया कि अखिल भारतीय स्तर पर व्यवहार माध्यम के रूप में हिंदी को अपनाना चाहिए। काशी स्थित 'नागरी प्रचारिणी सभा' एवं प्रयाग की संस्था 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' क्रमशः नागरी लिपि-प्रचार और हिंदी साहित्य के विकास के कार्य में लगे थे। इस समय महात्मा गांधी ने अपने दक्षिण अफ्रीका के प्रवास के अनुभव के आधार पर घोषित किया कि हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा यानी सामान्य भाषा बन सकती है। उन्होंने कहा कि भारत के अधिकांश लोग हिंदी समझते हैं और बोलते हैं। कम लोग ही हिंदी से अपरिचित हैं, विशेषकर दक्षिण के चार राज्यों के भाषा-भाषी लोग। यदि दक्षिण के लोग भी हिंदी सीख लेंगे तो हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा (सामान्य भाषा) बनने में कठिनाई नहीं होगी। इस उद्देश्य से उन्होंने दक्षिण में हिंदी प्रचार का कार्य प्रारंभ कराया। इस कार्य को पिछले 100 सालों से 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' सुचारू रूप से संचालित कर रही है।

दक्षिण में हिंदी प्रचार का उद्देश्य प्रथमतः दक्षिणवासियों को हिंदी भाषा सीखने, लिखने और बोलने का प्रशिक्षण देना, उसकी समुचित जानकारी प्राप्त करके विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के साथ संपर्क बढ़ाना, राष्ट्रीय चेतना को दृढ़ करना, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान करना आदि रहा। इसके

लिए सभा ने समय-समय पर कार्यक्रम तथा योजनाएँ बनाकर उन्हें कार्यान्वित किया और दक्षिण में हिंदी के विकास के लिए आवश्यक भूमिका निभाई। सभा ने अपने समक्ष एक सूत्र वाक्य रखा—

**‘एक राष्ट्रभाषा हिंदी हो
एक हृदय हो भारत जननी’**

इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि आचार-विचार, खान-पान, बोलचाल की दृष्टि से अनेकता होने पर भी भावनात्मक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक दृष्टि से भारत एक रहा है। इस एकता को राष्ट्र-भाषा ही सुदृढ़ बनाए रख सकती है।

राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास के लिए सभा का पहला कदम वही था, जिसकी गांधीजी ने इंदौर सम्मेलन के पश्चात् घोषणा की थी, ‘हमें राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार के लिए सुयोग्य, निष्ठावान, निस्वार्थ व परिश्रमी नवयुवक चाहिए, जिन्हें प्रशिक्षित करके प्रचार के कार्य में लगा देंगे।’ इसके लिए पहले दक्षिण के कुछ नवयुवक चुने गए और उन्हें हिंदी में शिक्षण और प्रशिक्षण लेने प्रयाग भेजा गया। इसी समय उत्तर भारत के कुछ देशभक्त नवयुवक दक्षिण आए और सभा द्वारा दक्षिण के विभिन्न केंद्रों में हिंदी का प्रचार करने के लिए भेजे गए। ये प्रचारक आम जनता में हिंदी प्रचार करने के साथ राष्ट्रीय भावना का प्रचार भी करने में लग गए। ये सभी प्रचारक एक प्रकार से राष्ट्रीयता के संदेशवाहक थे।

‘सभा’ के कार्यकलापों में हिंदी प्रचार व प्रचारक सम्मेलन, संगोष्ठियाँ, सेमिनार, कवि सम्मेलन, पदवीदान समारंभ आदि का संचालन मुख्य हैं। इन कार्यक्रम में प्रचारकों के अलावा स्थानीय हिंदी प्रेमी, नेतागण, जनता और प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यकार बड़े प्रेम से भाग लेते हैं। विद्वानों तथा नेताओं के भाषणों के माध्यम से यह समझाया जाता है कि देश की एकता के लिए और एकता को बनाए रखने के लिए विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच स्नेहपूर्ण संबंध एवं बंधुत्व स्थापित करने के लिए एक सामान्य भाषा

के रूप में हिंदी की कितनी आवश्यकता है। सम्मेलन में भाषण देनेवाले अतिथिगण जब हिंदी के विकास में सभा ने जो सेवा की है, उसकी प्रशंसा करते हैं तब ‘सभा’ के कार्यकर्ताओं और केंद्रों में प्रचार कार्य में लगे प्रचारकों को प्रेरणा मिलती है और वे दुगुने उत्साह से हिंदी सेवा में लग जाते हैं। वार्षिक पदवीदान समारोह में के लिए हजारों की संख्या में स्नातक-स्नातिकाएँ उपाधि पाने के लिए उपस्थित रहती हैं; वह दृश्य प्रमाणित करता है कि ‘सभा’ ने हिंदी के विकास के लिए कितना काम किया है।

‘सभा’ अभी तक तीन जयंतियाँ मना चुकी है, रजत जयंती, स्वर्ण जयंती और हीरक जयंती। अब शतमानोत्सव वर्ष शुरू हो चुका है और यह कार्यक्रम वर्ष भर चलेगा। गत 17 जून, 2018 को इसका शुभारंभ हो चुका है, जिसमें डाक विभाग द्वारा शतमानोत्सव के उपलक्ष्य में गांधीजी के प्रतीक एवं सभा के नाम से एक डाक टिकट भी निकाला है।

आज से 100 वर्ष पूर्व राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से स्थापित यह लघु संस्था बहु आयामी योजनाओं को कार्यान्वित कर हिंदी के विकास में योगदान देते हुए एक बृहत्, मंजुल, अखिल भारतीय भावना का प्रचार करनेवाली एक स्वयंसेवी संस्था के रूप में प्रतिष्ठित है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के विकास कार्य में लगी अन्य संस्थाएँ इस संस्था को तीर्थ स्थान समझती हैं और दक्षिण की यात्रा पर आते समय सभी लोग इस संस्था का संदर्शन किए बिना नहीं जाते। सांस्कृतिक भाषा ही किसी देश की संपर्क भाषा होती है। निश्चय ही हिंदी भाषा की यह समाहार शक्ति हमारे देश की भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने में सहायक होगी।

□

कुलसचिव
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
चेन्नई-600017

संस्कृति बचाने की चाह में पनप रही हिंदी

—श्री ओमप्रकाश तिवारी

विदेशों में रह रहे भारतीय मूल के लोग अपनी संस्कृति बचाए रखने की चाह में न सिर्फ स्वयं हिंदी सीख रहे हैं, बल्कि अपने बच्चों को भी हिंदी सीखने और बोलने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। यह स्थिति कमोबेश उन सभी देशों में दिखाई देती है, जहाँ भारतवंशी बहुतायत में रहते हैं।

शायद ऐसी ही कोई ललक रही होगी, जिसने सिंगापुर में रहनेवाले भारतवंशी समुदाय को हिंदी सिखाने के लिए सन् 1989 में 'हिंदी सोसायटी ऑफ सिंगापुर' की स्थापना की और वहाँ हिंदी पढ़ने-लिखने की व्यवस्था की गई। सिंगापुर में सेंटर फॉर लैंग्वेज स्टडीज में हिंदी-तमिल विभाग की विभागाध्यक्ष डॉ. संध्या सिंह बताती हैं कि पेशे से वकील रहे शिवाकांत तिवारी के सहयोग से सन् 1989 में सिंगापुर सरकार ने हिंदी के साथ-साथ पंजाबी, बांग्ला, उर्दू एवं गुजराती को भी वैकल्पिक भाषा के पाठ्यक्रम में शामिल किया। उससे पहले भारत की सिर्फ एक भाषा तमिल को ही सिंगापुर के भाषाई पाठ्यक्रम में जगह मिली हुई थी। सन् 1989 में इस पाठ्यक्रम की शुरुआत, जहाँ सिर्फ 100 विद्यार्थियों से हुई थी, वहीं सन् 2014 में अपने 25 वर्ष पूरे करने के अवसर पर इस पाठ्यक्रम में हिंदी पढ़नेवालों की संख्या 2800 पहुँच चुकी थी। सिंगापुर में हिंदीभाषियों को जोड़ने के लिए डॉ. संध्या सिंह

ने 'सिंगापुर संगम' नामक एक ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका भी शुरू की है। इस पत्रिका से जुड़ी शार्दूला नोगजा कहती हैं कि चूँकि हम इस पत्रिका के जरिए सिंगापुर में रह रहे हिंदीभाषी भारतीय समाज को जोड़ने का काम कर रहे हैं, इसलिए इसे 'सिंगापुर संगम' नाम दिया गया है।

लेकिन हिंदी सीखने के प्रति यह ललक हिंदी के प्रति सिर्फ भाषा मोह के कारण ही नहीं है। न सिर्फ इस मोहवश नई पीढ़ी हिंदी सीख सकती है। इसके पीछे एक बड़ा कारण है अपनी संस्कृति को बचाए रखने की ललक। इस ललक के कारण ही नए-नए प्रयास किए जा रहे हैं और नई तकनीक का इस्तेमाल भी किया जा रहा है। सिंगापुर में कई वर्षों से रह रही गौरी श्रीवास्तव वहाँ एक नाट्य समूह का संचालन करती हैं, जिसका नाम है—दस्तक। उनकी इस पहल के अंतर्गत 10 मिनट के 10 नाटक दिखाए जाते हैं। इन नाटकों में काम करनेवाले पात्रों को हिंदी बोलनी ही पड़ती है। हाँ, इनमें से कुछ नाटकों का निर्देशन जरूर अन्य भाषाओं के निर्देशकों से करवाया जाता है, लेकिन पात्र हिंदीभाषी ही होते हैं। सन् 2016 से शुरू हुई उनकी यह पहल अब सिंगापुर की सीमाएँ लाँघकर भारत में भी दस्तक दे चुकी है। पिछले दो वर्षों से मुंबई के सुप्रसिद्ध 'काला घोड़ा महोत्सव' में दस्तक 10-10 मिनट के अपने 10 नाटकों के सेट

का प्रदर्शन करता आ रहा है।

गूढ़-गंभीर साहित्य की अपेक्षा नाट्य माध्यम नई पीढ़ी को ज्यादा आकर्षित करते हैं। वे न सिर्फ उसे देखना पसंद करते हैं, बल्कि उसमें अभिनय करने के लिए स्वयं हिंदी सीखना भी पसंद करते हैं। अमेरिका से निकलनेवाली हिंदी पत्रिका 'विश्वा' के प्रधान संपादक रमेश जोशी भी किसी भाषा को

सीखाने के इस तरीके का समर्थन करते दिखते हैं। संस्कृत की एक सूक्ति— 'काव्येषु नाटकम् रम्यम्' का उल्लेख करते हुए वह कहते हैं कि नरोत्तमदास का 'सुदामा चरित' यूँ तो नई पीढ़ी शायद ही पढ़ना पसंद करे। लेकिन उसी काव्य का नाट्य रूपांतरण करके उसका प्रदर्शन किया जाए तो लोग उसे देखेंगे भी और समझने का भी प्रयास करेंगे। जोशी के अनुसार बच्चा गाकर और अभिनय करके ही सीखता

है। वही उसके लिए सबसे रोचक तरीका हो सकता है। उसमें ध्वनि, अभिनय सभी कुछ एक साथ सीखने को मिलता है, जबकि सिर्फ भाषा पढ़ाया जाना एक नीरस विषय मात्र बनकर रह जाता है। रमेश जोशी की यह बात तब सत्य प्रतीत होती है, जब हांगकांग में रहनेवाली कृतिका उपाध्याय अपने तीन साल के बेटे के लिए भारत से ऐसी पुस्तकें और वेब सीरीज में तैयार नाटक मैंगवाने की बात करती हैं, जिनसे भारतीय संस्कृति के बारे में कुछ सीखा जा सके। वेब सीरीज अभी नया माध्यम है, लेकिन इसके जरिए नई पीढ़ी तक भाषा और संस्कृति को पहुँचाना आसान

है। इसलिए इस माध्यम में ढेर सारी सामग्री तैयार किए जाने की आवश्यकता है। कृतिका उपाध्याय हांगकांग के जिस तुंगशुग क्षेत्र में रहती हैं, वहाँ भारतवंशियों की बहुतायत है। वहाँ रह रहा भारतीय समाज चाहे हिंदीभाषी हो, चाहे गुजराती, तमिल या पंजाबी, सांस्कृतिक उत्सवों के जरिए ही एक-दूसरे से जुड़ा है।

लेकिन हिंदी सीखने के प्रति यह ललक हिंदी के प्रति सिर्फ भाषा मोह के कारण ही नहीं है। न सिर्फ इस मोहवश नई पीढ़ी हिंदी सीख सकती है। इसके पीछे एक बड़ा कारण है अपनी संस्कृति को बचाए रखने की ललक। इस ललक के कारण ही नए-नए प्रयास किए जा रहे हैं और नई तकनीक का इस्तेमाल भी किया जा रहा है। गूढ़-गंभीर साहित्य की अपेक्षा नाट्य माध्यम नई पीढ़ी को ज्यादा आकर्षित करते हैं। वे न सिर्फ उसे देखना पसंद करते हैं, बल्कि उसमें अभिनय करने के लिए स्वयं हिंदी सीखना भी पसंद करते हैं।

सिंगापुर में ही रह रहीं ममता मंडल ने तो फेसबुक पर अपना नाम ही 'ममता हिंदी' रख लिया है। व्हाट्सएप्प पर 'हिंदी स्तंभ सभा' नामक समूह चलानेवाली ममता कहती हैं कि इंटरनेट के फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप्प जैसे माध्यमों के जरिए हिंदी में साहित्य रचनेवाले तो एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं। लेकिन जिसकी साहित्य में रुचि नहीं है, ऐसे हिंदीभाषियों को भी हिंदी बोलने-

समझने के लिए प्रेरित करने की जरूरत है। ऐसे लोगों के लिए ही ममता ने सिंगापुर में 'हिंदी प्रेरणा अवार्ड' की शुरुआत की है। तीन साल से सिंगापुर में चल रहा यह सम्मान समारोह वहाँ के हिंदीभाषियों के बीच कहानी-कविताएँ, वक्तृत्व स्पर्धा इत्यादि का आयोजन करके उनमें बेहतर प्रदर्शन करनेवालों को पुरस्कृत करता है।

विदेशों में रह रहे विभिन्न भारतीय भाषाभाषी जहाँ सांस्कृतिक उत्सवों में हिंदी के जरिए एक-दूसरे से जुड़ते दिखाई देते हैं, वहीं अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को भी गर्व के साथ जिंदा रखने का प्रयास



कर रहे हैं। सिंगापुर की शार्दूला नोगजा बताती हैं कि वहाँ मराठी, तमिल, बांग्ला आदि क्षेत्रीय भाषाओं के लोग अपनी-अपनी मातृभाषा में भी गर्व के साथ बात करते हैं, लेकिन हिंदीभाषी समाज इसमें पिछड़ता दिखाई देता है। शार्दूला की बात से सहमति जताते हुए गौरी श्रीवास्तव भी कहती हैं कि हिंदी की स्थिति आज मरांगी वाली हो गई है। यदि यह क्षेत्रीय भाषा होती तो शायद लोग ज्यादा खयाल रखते इसका। यही बात हांगकांग में रहनेवाली मूलतः तमिल भाषी चित्रा भी कहती हैं। उनके अनुसार हांगकांग में भी करीब-करीब सभी क्षेत्रीय भाषाओं के अपने-अपने संगठन हैं, सिर्फ हिंदी का अलग से कोई संगठन नहीं है। हाँ, हिंदू एसोसिएशन एवं हिंदू मंदिर जरूर हैं। शायद यही कारण है कि हांगकांग में अभी सिंगापुर की तर्ज पर 'हिंदी सोसायटी ऑफ हांगकांग' जैसा कोई प्रयोग नहीं किया जा सका है। जबकि अमेरिका में करीब 35 वर्ष पहले भारत से गए हिंदी-संस्कृत विद्वान् कुँअर चंद्रप्रकाश सिंह द्वारा स्थापित अंतरराष्ट्रीय हिंदी समिति की स्थापना की गई थी। सन् 1985 में पहली बार 'विश्वा' पत्रिका का हस्तलिखित प्रकाशन भी कुँअर चंद्रप्रकाश सिंह ने ही किया था। आज वहाँ हिंदी से जुड़े कई संगठन एवं कई पत्रिकाएँ फल-फूल रही हैं।

विदेशों में रह रहे हिंदीभाषियों को जोड़ने और उनके बीच हिंदी का प्रचार-प्रसार करने के लिए न सिर्फ हिंदीभाषियों को और पहल करने की जरूरत है, बल्कि सरकार को भी गंभीरतापूर्वक कुछ कदम

उठाने होंगे। शारजाह में रहकर सन् 2000 से इंटरनेट पर 'अभिव्यक्ति' एवं 'अनुभूति' नामक दो उत्कृष्ट हिंदी पत्रिकाओं का संपादन करती आ रहीं पूर्णिमा बर्मन दुबई की एक घटना का जिक्र करती हैं। वह बताती हैं कि दुबई के एक मॉल के बाहर स्पेन की एक महिला पर्चे बाँटकर स्पेनिश भाषा सिखाने का प्रचार कर रही थी। बर्मन पूछती हैं कि क्या कोई हिंदीभाषी महिला भी कभी इस प्रकार की हिम्मत जुटा पाएगी? बर्मन बताती हैं कि विदेशों में विभिन्न देशों के दूतावासों द्वारा चरणबद्ध तरीके से उस देश की भाषा सिखाने के पाठ्यक्रम बहुत मामूली शुल्क लेकर चलाए जाते हैं, जबकि भारत इस प्रयास में भी बहुत पीछे नजर आता है। हांगकांग में रहनेवाली चित्रा बताती हैं कि हांगकांग का भारतीय समाज लंबे समय से वहाँ सीबीएसई बोर्ड का एक स्कूल खोलने के लिए प्रयासरत है ताकि वहाँ स्कूली पाठ्यक्रम में भी हिंदी सहित भारतीय पाठ्यक्रम पढ़ाया जा सके। इसका लाभ विशेषकर ऐसे नौकरीपेशा लोगों को मिल सकता है, जो सिर्फ एक-दो वर्षों के लिए वहाँ नौकरी या व्यवसाय करने गए हैं, लेकिन इसमें भी भारत सरकार की सहायता की जरूरत है क्योंकि सीबीएसई बोर्ड के स्कूल खोलने के लिए ली जानेवाली जगह का इंतजाम सरकारी सहायता के बिना हो पाना मुश्किल होगा।

□

ब्यूरो प्रमुख, दैनिक जागरण
07, जिप्सी बिल्डिंग, मेन स्ट्रीट,
हीरानंदानी, पवई, मुंबई-400 076 (महाराष्ट्र)

चमक रहा उत्तुंग हिमालय, यह नगराज हमारा ही है।
जोड़ नहीं धरती पर जिसका, वह नगराज हमारा ही है।
नदी हमारी ही है गंगा, प्लावित करती मधुरस धारा,
बहती है क्या कहीं और भी, ऐसी पावन कल-कल धारा?

—सुब्रह्मण्यम स्वामी

लोक के स्तंभ पर टिका है, विश्व हिंदी का महाराज

— श्री राकेश पांडेय

आज विश्व ग्राम की बात की जा रही है, विश्वभाषा की बात की जा रही है। जहाँ एक ओर अंग्रेजी ने अपने को विश्वभाषा के रूप में स्थापित किया है, वहीं पर अब हिंदी को भी विश्वभाषा बनाने की ओर बल दिया जा रहा है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाने की बात की जा रही है। तमाम विश्व में बसे भारतीय मूल के लोगों के भीतर धीरे-धीरे यह बात उठने लगी है कि उनके देश की एक प्रतिनिधि भाषा अर्थात् राष्ट्र भाषा नहीं है। यूँ तो हिंदी को सरकार द्वारा राजभाषा का दर्जा प्राप्त है, किंतु वास्तविकता यही है कि वह न राज की भाषा है, न काज की भाषा है, वह केवल लोक की भाषा है। वह भारत के एक अधिसंख्य आम आदमी के बोलचाल की भाषा है। इस वैश्वीकरण के युग में आजीविका के लिए युवा पीढ़ी को विस्तृत संसार में विचरण करना उसकी बाध्यता है, अन्यथा वह व्यवस्थित ढंग से नौकरी नहीं कर सकता। इसलिए धीरे-धीरे हिंदी समूचे भारत की भाषा के रूप में तो अनिवार्य होती ही जा रही है, साथ-ही-साथ विदेशों में बसे भारतीयों या गिरमिटिया मजदूरों की आज की युवा पीढ़ी भी हिंदी की ओर आकर्षित होती दिखती है, क्योंकि भाषा के साथ उसकी जीवन संस्कृति समाज को दिशा देने का कार्य करती है।

एक लोकप्रिय लोकोक्ति है 'कोस-कोस पर

पानी बदले, आठ कोस पर बानी।' इस लिहाज से भारत जैसे विशाल देश में असंख्य बोलियाँ एवं भाषाएँ हैं। भारत में मुख्य रूप से एक ओर अवधी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, मगही, राजस्थानी, गढ़वाली, ब्रज, कुमाऊँनी, डोंगरी, मारवाड़ी सहित अनेक लोक भाषाएँ हैं, दूसरी ओर दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगू, कन्नड़ व बंगाल की बाँग्ला आदि भाषाएँ हैं। इन सभी बोलियों व भाषाओं के साथ उनकी संस्कृति, उनका समाज है। ऐसे में सवा सौ करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले इस देश भारत में एक प्रतिनिधि भाषा हिंदी का स्वरूप निर्धारित करना अर्थात् मानकीकरण करना कठिन है। फलस्वरूप हिंदी भाषा धीरे-धीरे अनेक बोलियों एवं भाषाओं के शब्दों को अंगीकार कर समृद्ध हो रही है, क्योंकि प्राचीन काल में मूल रूप से भारत की मुख्य भाषा तो संस्कृत थी, लेकिन काल एवं परिस्थितियों के कारण संस्कृत सामान्य व्यवहार से दूर हो गई और उसका दूसरा स्वरूप हिंदी के रूप में विकसित होकर आज भारत की पहचान बन रहा है। भारतीयों के घरों में हिंदी का प्रयोग भले ही कम हो, लोक भाषाओं, भारतीय भाषाओं का प्रयोग निरंतर होता है। पंजाब का एक बहुत बड़ा वर्ग विदेशों में बसता है। इसी प्रकार गुजराती मूल के लोगों का व्यवसाय भी विदेशों में बड़ी मात्रा में फैला हुआ है।



सभी अपने घरों में पंजाबी अथवा गुजराती भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इन लोगों में ऐसा कोई नहीं होगा, जो हिंदी न जानता हो। इसलिए जब भी कभी हिंदी प्रयोग का अवसर मिलता है तो ये लोग अपनी मातृभाषा से मिश्रित हिंदी का प्रयोग करते हैं। इनकी हिंदी में वे तमाम शब्द आ जाते हैं, जिन्हें प्रायः शुद्ध हिंदी नहीं कहा जा सकता, लेकिन इन शब्दों को हिंदी शब्दकोश में सम्मिलित करना होगा, ताकि हिंदी और समृद्ध हो सके और प्रयोग में सहज।

ये लोक भाषाएँ जैसे मॉरीशस में भोजपुरी, सूरीनाम में सरनामी, फीजी में फीजीबात और दक्षिण अफ्रीका में नैताली हिंदी बन जाती हैं। समय के साथ-साथ संस्कृति व भाषा का भी स्वरूप बदलता रहता है। विश्व में भारत से गए गिरमिटिया मजदूरों ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन के साथ-साथ उनके साथ गई भाषाओं का संरक्षण जिस प्रकार किया, वह अनुकरणीय है। सूरीनाम के विख्यात कवि श्री हरी साहू की एक कविता इस प्रकार है—

हम तोके का बोली

हम तोके का बोली

बोली बोली

भाषा बोली

अवधी कि भोजपुरी...

अंत में

अपन भाषा में एक बात बोली

तोहँसे हम्मे बहुत है प्यार

महतारी भाषा हमार, महतारी भाषा हमार

सरनामी हमार, सरनामी हमार।

इसी प्रकार गिरमिटिया मजदूर के रूप में सन् 1898 में सूरीनाम पहुँचे मुंशी रहमान खान वहाँ के प्रसिद्ध कवि हुए। काल एवं परिस्थितियों का प्रभाव भाषा व साहित्य पर भी पड़ता है, जैसे कि उन्होंने हजरत नबी मुहम्मद रसूलिल्लाह के जीवन चरित्र को

तुलसीदास की रामायण शैली में रचा है—

आदि अंत प्रभु का नहीं, नहीं कोई सिरजन हार।

मात पिता प्रभु के नहीं, नहीं कोई पालन हार।।

जिबरा ईल रसूल में, जौन भयउ सम्बाद।

उन दोनहुँ की वार्ता, करूँ यहाँ इरशाद।।

उपरोक्त दोहों में खड़ी हिंदी का प्रयोग अधिक है, जबकि हरी साहू की कविता में अवधी व भोजपुरी अधिक है। कारण हरी साहू की कविता मुंशी रहमान खान के काल के बाद की है। इसलिए भाषा अपने लोक के रूप में अधिक जीवित है। मॉरीशस में भी भोजपुरी व अवधी क्षेत्रों के लोग अधिक गए। ऐसे में वहाँ पर एक नए समाज के साथ-साथ भाषा ने भी स्वरूप बदला। वहाँ की भोजपुरी जिसे वे लोग हिंदी कहते हैं, उसमें क्रियोल के अनेक शब्द आ गए। मॉरीशस में लिखी गई एक कविता के अंश इस प्रकार है—

जंगल काट कियो मैदाना

खेत बनाए सहित सिवाना।

उपल बटोर सजाए सीमा

खाकर दाल भात अरू पीमा।

उपरोक्त पंक्तियों में 'सीमा' का अर्थ रास्ता है और 'पीमा' का मिर्च। ये सभी शब्द क्रियोल भाषा के हैं, जिनका प्रयोग भोजपुरी में किया गया है। मॉरीशस में वहाँ की हिंदी में क्रियोल भाषा के अनेक शब्द समाहित हो चुके हैं। भले ही हम उसे भोजपुरी कहें, अवधी कहें, या जो भी कहें लेकिन वे लोग तो इसे हिंदी ही कहते हैं।

हिंदी का दिलचस्प स्वरूप तो फीजी में देखने को मिलता है, जिसे फीजी के लोग फीजीबात कहते हैं। वह भाषा जिसे हम अवधी कहते हैं, अधिकतर शब्द और शैली अवधी ही है। उदाहरण स्वरूप प्रो. सुब्रमनी के 'डउका पुरान' का उल्लेख इस तर्क को प्रमाणित करता है कि विश्व में हिंदी यदि जीवित है

तो इन्हीं लोक भाषाओं के कारण। ‘डउका पुरान’
उपन्यास का अंश इस प्रकार है—

कामिनी तिरछा आँखिस देखा कै बोलिस,

‘चोट्टा!’

हमार दिल धक से होइ गय।

कुछ बोलत ना बना।

‘घूरा करत हौ?’

‘हम ना घूरित। खाली निहारित।’

कामिनी सोचे होइ केतना डीठ होइ गवा फीजीलाल।

‘धूरो फीजीलाल! हम कुछ ना बोलिब।’

‘काहे?’

‘अच्छा लगे जब तू घूरत हौ।’

यह है फीजी की फीजीबात यानी वहाँ की हिंदी। जहाँ-जहाँ पर लोक भाषाओं ने अपना महत्त्व खोया है, वहीं-वहीं पर हिंदी भी शून्य हो गई है। जैसे कि त्रिनिदाद और गयाना में। न वहाँ पर भोजपुरी बोलनेवाले मिलेंगे, और न ही हिंदी के लोग। एक रोचक प्रसंग यह है कि पाँचवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन त्रिनिदाद में आयोजित किया गया, जिसमें सारी काररवाई अंग्रेजी में हुई। वहाँ की हिंदी निधि संस्था के प्रमुख तक को हिंदी नहीं आती। सरकारी आँकड़ेबाजी भले कुछ ही बयों करे, लेकिन इन देशों में हिंदी नाम मात्र की भी नहीं बची है। यह केवल वहाँ के समाज से लुप्त हुई भारतीय लोक भाषाओं के कारण हुआ है। मुझे एक मंदिर में बहुत विचित्र लग रहा था कि पंडितजी रोमन लिपि में लिखी हुई रामायण बाँच रहे थे और भक्तजनों को उसका विवेचन अंग्रेजी में कर रहे थे।

हिंदी को लचीलापन देकर उसमें तमाम शब्दों को समाहित करना होगा। इससे भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, म्यांमार आदि देशों के लोग भी हिंदी को समझनेवाले हो जाएँगे। इससे वह एक आम बोलचाल की भाषा के रूप में अधिक समृद्ध होगी। जहाँ तक बात पश्चिमी देशों की है, वहाँ पर आजादी के बाद की पीढ़ी अधिक बसती

है, जो व्यवसाय अथवा नौकरी के लिए वहाँ पर गए हुए हैं। उन लोगों में अंग्रेजियत अधिक है और भारतीय संस्कृति व भाषा के प्रति विरक्तता भी। इन लोगों के परिवारों में एक परिवर्तन धीरे-धीरे सामने आने लगा है, क्योंकि इनकी अगली पीढ़ी ने अपने बड़ों से वे संस्कार प्राप्त नहीं किए, जो भारत में रहकर उन्हें प्राप्त होते। इसका खामियाजा इन परिवारों को आज भुगतना पड़ रहा है और अब ये लोग भी अपनी भाषा व लोक-संस्कृति की ओर लौट रहे हैं। विगत दिनों हिंदी सम्मेलन में भाग लेने बर्मिंघम स्थित माता दा मंदिर पहुँचने पर जिस प्रकार ब्रिटेन के परिवारों को आपस में बातचीत करते और संस्कारों को निभाते हुए देखा, उससे यह प्रतीत ही नहीं हुआ कि हम भारत में नहीं हैं। एक स्थानीय निवासी से बात करने पर उन्होंने बताया कि हम घर में केवल पंजाबी का ही प्रयोग करते हैं, जिसके कारण हमारे बच्चों को हिंदुस्तान जाने पर कोई कठिनाई नहीं होती और हिंदी भी नहीं भूलते क्योंकि बोलचाल में बहुत अंतर नहीं है। इसी प्रकार वहाँ के पंडितजी गढ़वाली मूल के थे। वे भी वहाँ के गढ़वाली परिवारों से अपने पहाड़ की भाषा में बतियाते दिखे। निष्कर्ष सामने आया कि जिन भारतीय परिवारों में उनकी लोक भाषाएँ जीवित हैं, वहीं पर हिंदी भी जीवित है अन्यथा अंग्रेजी ने अपना वर्चस्व कायम कर लिया है। हिंदी को समर्थन देती मनोरंजन प्रसाद की भोजपुरी कविता कुछ यूँ कहती है—

हिंदी ह भारत के भाषा,

ऊहे एक राष्ट्र के आसा

हम ओकरो भंडार बढ़ाइब,

ओही में बोलब ओ गाइब।

यह सत्य ही है कि लोक के स्तंभ पर टिका है विश्व हिंदी का महाराब।

□

संपादक : प्रवासी संसार

5/23, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031

हिंदी से जुड़े मेरे सपने

—सुश्री अतिला कोतलावल

मैं भी उन स्वप्नदर्शियों में से एक हूँ, जो अक्सर सपने देखा करते हैं और उनके साकार होने तक उन्हीं सपनों में विलीन रहते हैं। मैंने कई सपने देखे हैं और उनमें से कुछ साकार भी हुए। तब मैं दसवीं कक्षा में पढ़ रही थी। मेरी स्कूली परीक्षा भी एकदम निकट थी। पिताजी के कई बार मना करने पर भी चोरी-चुपके एक हिंदी चलचित्र देख रही थी, जो दूरदर्शन पर चल रही थी। दीवार की आड़ में पकड़ी जाने के कारण उस दिन मेरी पिटाई भी हुई।

इस प्रकार हिंदी के साथ-साथ भारत के प्रति भी बड़ा लगाव हो गया। मन में हिंदी भाषा सीखने की इच्छा जाग्रत हुई। मुझे लगा केवल मनोरंजन के लिए ही क्यों, यदि भाषा सीखूँ तो भारत, भारतीय संस्कृति को भी निकट से जान सकूँगी। बहुत प्रयत्नों के पश्चात् मुझे कोलंबो के एक प्रतिष्ठित स्कूल में प्रवेश मिला। मैं भाषाएँ सीखने लगी। जापानी, फ्रेंच, सिंहली...। पर वहाँ हिंदी सीखने की कोई सुविधा नहीं थी। स्कूल की प्रधानाध्यापिका से बहुत विनती की। लेकिन सारे प्रयत्न व्यर्थ! पर मैंने कोशिश जारी रखी। मेरे बार-बार के आग्रह पर अंत में गुस्से में आकर प्रधानाध्यापिका ने बाहर के किसी अध्यापक से पढ़कर स्कूल में हिंदी की परीक्षा देने की अनुमति दे दी।

सन् 1998 की बात है। हिंदी गुरु की तलाश शुरू

हुई। उस समय मैं अपने मामा के यहाँ रहकर स्कूल जाया करती थी। मामी भी गुस्से में थी कि परीक्षा के एकदम 5, 6 रह जाने पर नए विषय का चयन कैसे हुआ। मामी ने पास के एक विश्वविद्यालयीय आचार्या से मेरी भेंट कराई। श्रीमती विजेतुंगजी, जो जपुर विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षण देती थीं। वे अपने घर में भी हिंदी शिक्षण देती थीं, उनके घर में मेरी हिंदी का श्रीगणेश हुआ। बस दो-तीन कक्षाओं के बाद उन्होंने कहा 'मैं हिंदी की अध्यापिका नहीं हूँ। उसके लिए एक अच्छे अध्यापक हैं। तुम उनके पास जाओ।'

श्रीलंका हिंदी निकेतन के परम पूज्य शरण गुप्तजी एवं गुरुमाता पद्माजी से मेरी मुलाकात हुई। हिंदी निकेतन में मेरी हिंदी कक्षाएँ शुरू हुई। तीन महीने में पूरे दो साल का पाठ्यक्रम करने पर 'सी' पास मिला।

एक दिन गुरुजी के यहाँ पढ़ाई चल रही थी। दिन भर हिंदी में लगे रहने के कारण नींद सी आ रही थी। पता नहीं चला कि मैं कब वहाँ की किसी कुरसी पर वैसे सो गई और नींद में बड़बड़ाने लगी। संयोग से गुरुजी की नजर मुझ पर पड़ी। वे पास में आकर शायद सुनने लगे कि मैं क्या बड़बड़ा रही हूँ। मैं हिंदी में कुछ बोल रही थी। गुरुजी की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने गुरुमाता को भी बुला लिया

और मुझे भी उठाकर बोलने लगे—‘अतिला, अब सचमुच तुम हिंदी जानने लगी। तुम में हिंदी समा गई। मुझे बड़ी खुशी है।’ इस तरह कहते हुए गुरुजी खुशी से चिल्लाए। यह सुनकर मैं भी आसमान पर उड़ रही थी। मन में हिंदी को और सुदृढ़ बनाने की इच्छा जगी।

अपने गुरुजी और गुरुमाता के संग भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में जाती थी। जब वे भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के अंदर प्रवेश करते तो गुरुजी मुझे वहाँ के आँगन में रुकने की सलाह देकर अंदर जाते; मैं आस-पास देखती रहती। बड़ा-सा सुंदर भवन, कभी कोई अध्यापक अंदर जाते तो कोई बाहर निकलते, कभी विद्यार्थी। यह सब देखते-देखते मेरे अंदर यह भावना उत्पन्न हुई कि अरे, किसी दिन यदि मुझे भी इस संस्थान में पढ़ाने का अवसर मिल जाए तो... फिर दिन-रात में जागते-सोते वही सपना देखती रहती। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की अध्यापिका... मैं किस तरह करूँ, कैसे विद्यार्थियों को पढ़ाऊँ। ये सोचते हुए मैं आगे की पढ़ाई हेतु और अधिक परिश्रम करने लगती, क्योंकि मैं अभी तक छात्रा जो ठहरी।

सन् 1999 में +12 परीक्षा के उपरांत मैंने कुलियापिटिया के अपने पैतृक निवास में ही अपनी बहनों को हिंदी पढ़ाना आरंभ कर दिया। धीरे-धीरे गाँव के ही तीन-चार बच्चे एकत्र हो गए। उनको

पढ़ाते हुए मेरी आत्मा को थोड़ी-सी संतुष्टि मिलने लगी।

सन् 2000 की बात है। मुझे भारतीय दूतावास द्वारा केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। इस तरह पहली बार भारत माँ के दर्शन करने का भाग्य पाकर मेरे आनंद की सीमा न रही। केंद्रीय हिंदी संस्थान की

हिंदी संस्थान श्रीलंका अपने देश में हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य में अग्रगामी है। अनेक कठिनाइयों से जूझते हुए हिंदी प्रचार-प्रसार के कँटीले रास्ते पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। अभी भी हिंदी से जुड़े मेरे सपने पूरे नहीं हुए हैं। मेरा सबसे बड़ा सपना-हिंदी संस्थान के लिए अलग भवन का निर्माण—अब तक अधूरा है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यह है कि हमारा संस्थान श्रीलंका तथा भारत के हजारों वर्षों से चले आ रहे अटूट संबंध को सुदृढ़ बनाने की एक कड़ी हो।

प्रवेश परीक्षा में स्नातकोत्तर हिंदी डिप्लोमा (400) के लिए मेरा चुनाव हो गया। पाठ्यक्रम पर्याप्त कठिन था। अतः मेरा पूरा ध्यान पढ़ाई पर रहा। हर सप्ताहांत में और छुट्टी में जब बाकी सब विद्यार्थी भारत दर्शन के लिए निकलते तब भी मैं छात्रावास में अपनी पढ़ाई में व्यस्त होती। सारे प्रयत्नों के फलस्वरूप अंतिम परीक्षा में अपने 400 स्तर का प्रथम स्थान प्राप्त करने का सौभाग्य

मुझे प्राप्त हुआ और प्रसन्नचित्त मैं श्रीलंका वापस चली आई।

भारत से लौटने के तुरंत बाद मेरे परम पूज्य गुरुजी, श्रीलंका हिंदी निकेतन के अध्यक्ष श्री शरण गुप्तजी ने मुझे यह सूचना दी कि कुरुनेगला शहर की कुछ छात्राएँ बी.ए. परीक्षा के लिए अतिरिक्त कक्षाओं हेतु कोलंबो में आ रही हैं, मगर कुरुनेगला में कोई अच्छे हिंदी अध्यापक नहीं हैं, अतः वहाँ पर अच्छे हिंदी अध्यापक की आवश्यकता है। लगभग 100 कि.मी. तय करके कुरुनेगला से कोलंबो आना—

जाना उन स्कूली बच्चियों के लिए बड़ा कष्टप्रद कार्य था। गुरुजी ने मुझसे पूछा 'तुम कुरुनेगला शहर में उनके लिए कक्षाएँ आरंभ क्यों नहीं कर देती?' साथ में कहे गए गुरुजी के ये शब्द अभी भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। 'अतिला, अब हिंदी का दान करो। पर याद रखना यह आसान कार्य नहीं है। बहुत कठिनाइयों का, बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।' वहीं पर मेरे मन में एक संकल्प जागा था कि हिंदी भाषा के प्रति प्रेम रखनेवालों के लिए यदि कुछ कर सकूँ तभी मेरे हिंदी ज्ञान का कुछ मतलब होगा। इसी संकल्प और गुरुजी के आशीर्वाद के साथ ही हिंदी संस्थान श्रीलंका का बीजारोपण हो गया।

हिंदी अध्यापिका के रूप में काम करने के दौरान मैंने हिंदी में अपनी पढ़ाई जारी रखी। कुछ ही वर्षों में मुझे BA-हिंदी उपाधि केलणिय विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की विशारद और प्रवीण परीक्षाएँ मैंने उत्तीर्ण कीं और अंतिम पाँचों परीक्षाओं में अव्वल अंक प्राप्त करके श्रीलंका में सर्वप्रथम होने का सौभाग्य मुझे मिला। दूसरी बार भी भारतीय दूतावास द्वारा केंद्रीय हिंदी संस्थान के शोध पाठ्यक्रम (500) के लिए छात्रवृत्ति मिली। उसमे भी मैं अपने स्तर की सर्वप्रथम विद्यार्थी बन गई। यह बड़े हर्ष की बात है कि श्रीलंका में 500 परीक्षा उत्तीर्ण दोनों व्यक्तियों में से मैं भी एक हूँ। इसी प्रकार मेरी पढ़ाई अभी जारी है। हिंदी में एम.ए. और पी-एच.डी. पूरा करना मेरा अगला स्वप्न है।

मैंने हिंदी संस्थान, श्रीलंका की शुरुआत की। अनेक बाधाओं का सामना करते हुए, अनेक कष्टों से जूझते हुए, यहाँ तक का सफर पूरा हुआ। बहुत प्रयत्नों के बाद भारत-श्रीलंका प्रतिष्ठान द्वारा कुरसियों, किताबों की अलमारी और श्वेत पट्ट के लिए अनुदान मिला, वह हमारे छोटे-से संस्थान के

लिए अमूल्य निधि समान था। उनके लिए मैं भारत सरकार तथा भारतीय दूतावास की आभारी हूँ, जिनके कारण हिंदी संस्थान के विद्यार्थियों को अपनी पढ़ाई में सुविधा प्राप्त हुई।

कालांतर में मेरा पुस्तकों का संग्रह भी पर्याप्त मात्रा में बढ़ गया और एक निजी पुस्तकालय घर पर ही बन गया। मेरे अपने विद्यार्थियों को पढ़ने हेतु मैं पुस्तकें देने लगी। वे भी बार-बार पुस्तकें माँगने लगे। तब मेरे अंदर एक और सपना जाग उठा कि मैं श्रीलंका के उन सारे हिंदी प्रेमियों के लिए एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना क्यों न करूँ, जहाँ पर श्रीलंका के किसी भी कोने से आनेवाले पाठकों का स्वागत हो। अब दिन-रात पुस्तकालय के सपने में खोई रहती हूँ। अपने कुछ विद्यार्थियों के संग मैंने अपने पुस्तकों के संग्रह को पुस्तकालय का रूप देने का कार्य आरंभ कर दिया। मैं बड़ी भाग्यशाली हूँ कि सन् 2014 में श्रीलंका के सर्वप्रथम सार्वजनिक हिंदी पुस्तकालय का उद्घाटन हो गया। श्रीलंका के किसी भी हिंदी प्रेमी को इस पुस्तकालय का उपयोग करने में कोई भी पाबंदी नहीं है। यहाँ के अनेक विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अपने अनुसंधान कार्यों के लिए इस पुस्तकालय का लाभ उठाते हैं।

हिंदी सार्वजनिक पुस्तकालय में ही बैठकर मैंने एक हिंदी-सिंहली-अंग्रेजी शब्दकोश का भी निर्माण किया और एकाध छोटी-छोटी व्याकरण पुस्तकों का भी। पर अभी उनको प्रकाशन में लाने का सामर्थ्य न होने के कारण वह काम अधूरा रह गया है। जिस दिन उनका लोकार्पण हो जाएगा, उस दिन हिंदी-सिंहली लेखिका के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने का मेरा और एक सपना पूरा हो जाएगा।

हिंदी की बदौलत मुझे बहुत कुछ मिला। भारतीय विद्वानों से संपर्क बढ़ाने का और उनसे अपने विचार

व्यक्त करने का मौका मिला। श्रीलंका में आए 600 से अधिक पर्यटकों के मार्गदर्शक के रूप में काम भी किया। केवल इतना ही नहीं, हिंदी में बहुत सारे कार्य करने का सुअवसर मिला। समय-समय पर दूरदर्शन पर चलनेवाले हिंदी चलचित्रों का सिंहली में अनुवाद करना और हिंदी धारावाहिकों के सिंहली उपशीर्षक लिखना, मासिक सिंहली पत्रिका में बॉलीवुड गपशप आदि का लेख लिखना, दूरदर्शन के कुछ कार्यक्रमों की अंतर्वस्तु तैयार करना, उद्घोषक के रूप में काम करना, मंचीय हिंदी संगीत कार्यक्रमों में उद्घोषक की भूमिका निभाना, और हिंदी संस्थान के हिंदी कार्यक्रमों में सूत्रधार बनना आदि कार्य संपन्न करने का सौभाग्य मिला।

इनके अलावा हिंदी ने कई पहुँचे हुए महापुरुषों से मेरी भेंट भी कराई। इनमें से भारत के प्रसिद्ध संगीतकार रविशंकर शर्मा एवं मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराज चौहानजी के श्रीलंका आगमन के दौरान उनके समक्ष दुभाषिया बनकर काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

हमारे संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष कुछ विद्यार्थी केंद्रीय हिंदी संस्थान की छात्रवृत्ति के लिए चुने जाते हैं। अब तक मेरे 50 से अधिक विद्यार्थी मेरी ही तरह भारत से शिक्षा समाप्त करके श्रीलंका लौटे हैं, उनमें से कुछ लोग श्रीलंका के विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक के रूप में शिक्षण कार्य में लगे हुए हैं और कुछ श्रीलंका की

सरकारी पाठशालाओं में हिंदी के शिक्षकों के पद पर विराजमान हैं। कुछ लोग हवाई अड्डे में और कुछ गाइड के रूप में हिंदी से जुड़े कुछ काम कर रहे हैं।

हिंदी संस्थान श्रीलंका अपने देश में हिंदी प्रचार-प्रसार कार्य में अग्रगामी है। अनेक कठिनाइयों से जूझते हुए हिंदी प्रचार-प्रसार के कंटीले रास्ते पर

आगे बढ़ते जा रहे हैं। अभी भी हिंदी से जुड़े मेरे सपने पूरे नहीं हुए हैं। मेरा सबसे बड़ा सपना-हिंदी संस्थान के लिए अलग भवन का निर्माण—अब तक अधूरा है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यह है कि हमारा संस्थान श्रीलंका तथा भारत के हजारों वर्षों से चले आ रहे अटूट संबंध को सुदृढ़ बनाने की एक कड़ी हो। यहाँ पर हिंदी के साथ-साथ भारतीय संस्कृति से जुड़ी बाकी विधाएँ भी सिखाई जाएँ। यह छोटा-सा संस्थान एक वटवृक्ष की तरह और विकसित हो, जिसमें भारत से

शिक्षा पाए अच्छे विद्यार्थियों को शिक्षकों के रूप में जुड़ने का अवसर मिले! श्रीलंका में ही लघु भारत का वातावरण हिंदी संस्थान श्रीलंका परिसर में उपलब्ध हो। काश, मेरा यह सपना भी जल्दी से साकार हो!

हिंदी बने विश्व भाषा!

जय भारत, जय श्रीलंका!

□

संचालिका

हिंदी संस्थान, कोलंबो (श्रीलंका)

विश्व हिंदी और भारतीय संस्कृति

—सुश्री नधीरा शिवन्ति

हिंदी भाषा को हिंदुस्तानी भाषा भी कहा जाता है और यह भारत की एक प्रमुख भाषा है। भारत में 25 प्रतिशत से अधिक आबादी हिंदी भाषा बोल रही है, यह भारत-यूरोपीय भाषाओं के परिवारों में से एक है। हिंदी भाषा देवनागरी लिपि में लिखी गई है। हिंदी भारत की आधिकारिक भाषा है और नीचे सूचीबद्ध कुछ देशों में मुख्य रूप से बोली जाती है। भारत के अलावा, हिंदी के रूप में हिंदी वाले अन्य देश हैं—नेपाल, त्रिनिदाद, टोबेगो, गयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, युगांडा, न्यूजीलैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, सिंगापुर आदि।

हिंदी दुनिया में व्यापक रूप से बोली जानेवाली भाषाओं में से एक है। भारत में लगभग 30 करोड़ लोग हिंदी भाषा बोल रहे हैं, जो अधिकतर उत्तर भारत से हैं। दुनिया की कुल हिंदी भाषी आबादी 490 मिलियन है। हिंदी पहली भाषा के रूप में—370 मिलियन बोली जाती है। हिंदी दूसरी भाषा के रूप में—120 मिलियन बोली जाती है। हिंदी वक्ताओं में कुल विश्व जनसंख्या का 4.46 प्रतिशत शामिल है।

सन् 1998 के पूर्व मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिंदी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1997 में 'सैंसस ऑफ इंडिया' का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ प्रकाशित

होने तथा संसार की भाषाओं की रिपोर्ट तैयार करने के लिए यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में भेजी गई यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर उन्हें भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रो. महावीर सरन जैन द्वारा भेजी गई विस्तृत रिपोर्ट के बाद अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिंदी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलनेवालों की संख्या हिंदी भाषा से अधिक है, किंतु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा अधिक है, किंतु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।

भारत में बोली जानेवाली भाषाओं की बड़ी संख्या ने यहाँ की संस्कृति और पारंपरिक विविधता को बढ़ाया है। कुछ भाषाएँ ऐसी हैं, जिन्हें 10,000 से ज्यादा लोगों के समूह द्वारा बोली जाती है, जबकि कई ऐसी भाषाएँ भी हैं, जिन्हें 10,000 से कम लोग ही बोलते हैं। भारत में कुल मिलाकर 415 भाषाएँ उपयोग में हैं।

बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में हिंदी का अंतरराष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिंदी की माँग जिस तेजी से बढ़ी है, वैसी किसी और भाषा में नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा

सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक, हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफ-एम' सहित अनेक देश हिंदी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिंदी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दिसंबर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की जो सूची जारी की है, उसमें हिंदी भी एक है। इसी प्रकार कोर लैंग्वेज नामक साइट ने 'दस सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषाओं' में हिंदी को स्थान दिया था। के-इंटरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिए सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त 9 भाषाओं में हिंदी को स्थान दिया है।

हिंदी को एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी, 2008 को विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना की गई थी। संयुक्त राष्ट्र ने रेडियो अपना प्रसारण हिंदी में भी करना आरंभ किया है। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाए जाने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील

है।

विश्व हिंदी के साथ-साथ श्रीलंका में हिंदी के बारे में भी बात करना चाहती हूँ, क्योंकि अब हमारा देश भी हिंदी प्रचार-प्रसार करने हेतु बहुत मशहूर हुआ है और बहुत कदम आगे बढ़े हैं।

आज से कई साल पहले हिंदी भाषा श्रीलंका में एक विदेशी भाषा के रूप में पनपने लगी। तब से हमारे विद्यार्थियों में काफी रुचि पैदा होने लगी। पहले तो हिंदी भाषा के मुकाबले में फ्रेंच और जापानी भाषाएँ भी साथ-साथ प्रयुक्त होने के कारण हिंदी की स्थिति काफी गिरी, क्योंकि लोग सोचने और समझने लगे कि हमारी संतानों का भविष्य हमें बनाना है। उन्हें लगता था कि उनका भविष्य कामयाब करने के लिए चीनी, जापानी, फ्रेंच आदि भाषाएँ सिखाने से वे जगत् में अच्छा स्थान पा सकेंगे और आगे बढ़ सकेंगे।

लेकिन यह पुराना खयाल धीरे-धीरे गायब हो रहा था। उसके बाद भारतीय सिनेमा, गीतों की सुरीली धुन सुनने, भारत के बारे में थोड़ा-थोड़ा सिनेमा से जानने के कारण विद्यार्थियों के मन में हिंदी सीखने की इच्छा आने लगी।

अब विद्यालयों, विश्वविद्यालयों और अनेक संस्थाओं में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार बहुत जोरों से चल रहा है। कोलंबो में स्थित भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कैंडी का कला केंद्र की ओर से केंद्रीय हिंदी

सन् 1997 में 'सैंसस ऑफ इंडिया' का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रंथ प्रकाशित होने तथा संसार की भाषाओं की रिपोर्ट तैयार करने के लिए यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में भेजी गई यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर उन्हें भारत सरकार के केंद्रीय हिंदी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रो. महावीर सरन जैन द्वारा भेजी गई विस्तृत रिपोर्ट के बाद अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिंदी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलनेवालों की संख्या हिंदी भाषा से अधिक है, किंतु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिंदी की अपेक्षा अधिक है, किंतु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।



संस्थान के पाठ्यक्रम और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के सभी पाठ्यक्रम चलाते हैं। विद्यार्थी अपने अध्ययन पथ पर आगे बढ़ने के लिए इन परीक्षाओं में बैठते हैं।

इसके अलावा जयवर्धनपुरा, केलनिया, सबरगामूवा, सौंदर्य और कोलंबो विश्वविद्यालयों में भी हिंदी भाषा के अध्ययन और अध्यापन लगातार चल रहे हैं। हिंदी भाषा अब प्रखरता से श्रीलंका में प्रचलित हो रही है। ज्यादातर विद्यार्थियों के अलावा आम जनता अपने व्यापार के लिए भारत में घूमने जाती है। सिर्फ वह भी कारण नहीं, अपितु अपनी बीमारियों के लिए इलाज कराने, संगीत और कथक नृत्य सीखने आदि। अगर के लिए भी भारत जाते हैं। श्रीलंका के विश्वविद्यालय के किसी विद्यार्थी का चयन नहीं हो पाया, वह जरूर अपने पैसे खर्च करके भारत जाकर अपना भविष्य बना लेता है।

इन तमाम बातों के कारण भी हिंदी सीखने की जरूरत पैदा हुई है। देशी लोग भारत में पर्यटक बनकर इसलिए जाते हैं ताकि वे बुद्ध का जन्म-स्थल, बुद्धत्व और बुद्ध परिनिर्वाण अपनी आँखों से देख सकें। इसलिए सभी मार्गदर्शक यह सोचते हैं कि वहाँ जाने से पहले हिंदी जानना जरूरी है। नहीं तो घूमना आसान नहीं होगा। इन सभी कारणों के अलावा एक कारण बताना भूल गई। वह है कि श्रीलंका की सरकार ने पहले से ही हिंदी 11वीं श्रेणी की परीक्षा के लिए और विश्वविद्यालय प्रवेश की परीक्षा के लिए विषय के रूप में रखी हुई है।

यह कहना जरूरी है कि अब नौकरी हेतु आवेदन-पत्र प्रस्तुत करते ही हिंदी भाषा को अतिरिक्त योग्यता समझकर अपनी कंपनियों में नौकरी देनेवाले अच्छे उदारवादी भी हैं। हिंदी पढ़ने में अब रुकावट नहीं आती क्योंकि पाठ्य सामग्री यहाँ उपलब्ध है। परंतु उसी क्षेत्र में अगर कोई नौकरी करने जा रहा है या श्रीलंका के बाहर नौकरी करने की दिलचस्पी

रखता है, वह असंभव है।

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र कोलंबो द्वारा लगभग 14 वर्षों से हिंदी पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। हिंदी विषय में अध्ययन हेतु भारत के द्वारा विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जा रही है। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा हिंदी की उन्नति व प्रचार हेतु तरह-तरह की प्रतियोगिताएँ 'विश्व हिंदी दिवस' और 'हिंदी दिवस' पर आयोजित की जाती हैं।

आज हिंदी श्रीलंका के अनेक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में पढ़ाई जा रही है। श्रीलंकावासी हिंदी सीखने में बहुत आगे हैं। श्रीलंका में हिंदी प्रचार के लिए हम और भी नए कदम उठाएँगे।

भारत की संस्कृति बहुआयामी है, जिसमें भारत का महान् इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिंधु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई, बौद्ध धर्म एवं स्वर्ण युग की शुरुआत और उसके अस्त-गमन के साथ फली-फूली अपनी खुद की प्राचीन विरासत शामिल हैं। इसके साथ ही पड़ोसी देशों के रिवाजों, परंपराओं और विचारों का भी इसमें समावेश है।

सर्वांगीणता, विशालता, उदारता, प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति अग्रणी स्थान रखती है।

जहाँ विश्व भाषा हिंदी है, वहाँ भारतीय संस्कृति भी पढ़ने को अवश्य मिलती है क्योंकि विद्यार्थियों को दोनों को एक-साथ पढ़ने का मौका मिलता है। इसलिए लोग ज्यादातर भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी से जुड़ने के लिए भारतीय संस्कृति भी अपनाते हैं। मेरी प्रार्थना यही है कि एक दिन हिंदी भाषा पूरे विश्व में अव्वल स्थान पर स्थापित हो।

□

हिंदी अध्यापिका

स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो
(भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो), श्रीलंका

राष्ट्रहित और हिंदी भाषा

—डॉ. नथमल टीबड़ेवाला

पूर्वोत्तर भारत को सांस्कृतिक संगमभूमि माना जाता है। सांस्कृतिक और भाषाई वैविध्य इस धरती के निवासियों की अमूल्य धरोहर है। यहाँ का लोक सांस्कृतिक स्वरूप अद्भुत है। लगभग 150 जनजातीय बोलियों और भाषाओं का इस पूरे अंचल में प्रयोग होता है। संवैधानिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत में पाँच संवैधानिक भाषाओं का प्रयोग होता है— असम में असमिया, नेपाली तथा जनजातीय भाषा बोडो का। असम के बराक घाटी क्षेत्र में और त्रिपुरा में बाँग्ला का। मणिपुर में मणिपुरी अर्थात् मैतेका का। साथ ही, संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग होता है। पूर्वोत्तर भारत ने हिंदी भाषा को पूरी आत्मीयता तथा सम्मान के साथ संपर्क भाषा के रूप में अपनाया है। यहाँ का सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन श्रीमंत शंकरदेव, श्रीमंत माधव देव, भारत रत्न गोपीनाथ बरदोलोई, साहित्य शिल्पी रूपकुँवर ज्योति प्रसाद अगरवाला, कलागुरु विष्णु प्रसाद राभा, सुधाकंठ डॉ. भूपेन हजारिका, पद्मभूषण रानी गाइड्लु, लक्ष्मीनाथ बेजबुरुआ, डॉ. वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, प्रो. मामनी रायसम इंदिरा गोस्वामी आदि से कई रूपों में प्रेरणा और शक्ति प्राप्त करता रहा है। यहाँ प्रत्येक समुदाय के पास अपनी भाषा-बोली है, अपने लोकनृत्य हैं, वाद्य यंत्र हैं, अपना लोक-संगीत है और अपने-अपने लोकोत्सव हैं।

परंतु लगता है कि आधुनिक जीवन-शैली यहाँ के जीवन में विद्यमान रस को शुष्कता से भरने लगी है। साथ ही, दुःख होता है जब हम देखते हैं कि भारत के लोग अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अपेक्षित आदर की भावना नहीं रखते हैं। अनेक शिक्षित लोग अपनी भाषा की उपेक्षा कर गुलाम भारत पर थोपी गई ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रचारित अंग्रेजी के उपयोग को अधिक महत्त्व देते हैं, जोकि राष्ट्रहित में वांछनीय नहीं है। अंग्रेजियत से ग्रस्त शिक्षा व्यवस्था में वांछित सुधार के लिए देशव्यापी संघर्ष की आवश्यकता है। अपने देश में राजभाषा हिंदी की हो रही घोर उपेक्षा को दूर करने के लिए संघर्ष ही एकमात्र रास्ता रह गया है। क्या अंग्रेजी सामंतवाद की भाषा नहीं है? क्या अंग्रेजी के सामने असमिया एवं अन्य भारतीय भाषाएँ कमजोर नहीं पड़ रही हैं? क्या हम अपने हस्ताक्षर हिंदी में नहीं कर सकते? अगर देश के 125 करोड़ लोग कम-से-कम अपने हस्ताक्षर भी हिंदी में करने की आदत डाल लें तो सारे विश्व में हम हिंदी की प्रतिष्ठा कायम कर सकते हैं। हिंदी ही हमारे देश में सर्वाधिक बोली एवं समझी जानेवाली भाषा है, परंतु हिंदी की याद हमें हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़े के समय ही आती है। हिंदी की समन्वयकारी प्रकृति और सहज संप्रेषित होने की विशिष्टता को महसूस कर हम कह सकते हैं कि हिंदी का हृदय विशाल



हैं। अपनी विशालता के अनुरूप हिंदी, हिंदीतर भाषी प्रदेशों में जाकर उन भाषाओं को अपना स्वरूप दे, साथ ही उन्हें अपने में समाहित कर वृहत् स्तर पर एक नया परिचय दे, यही उसकी विशेषता होनी चाहिए। राष्ट्रचेतना के विकास में हिंदी की भूमिका सर्वोपरि होने के साथ-साथ भारत राष्ट्र की मुख्यधारा में आंतरिक जुड़ाव के लिए हिंदी का कोई दूसरा विकल्प नहीं है। इस सत्य को आज सारा देश जान चुका है। हिंदी के प्रसार का इतिहास संघर्ष और विरोधों का इतिहास है, लेकिन हिंदी ने अपनी अंतर्निहित शक्ति से, समन्वय और आत्मसात् करने की विशिष्टता से सारी बाधाओं पर विजय पाई है। हिंदी की इस क्षमता को पहचान कर अहिंदी भाषी विद्वानों और नेताओं ने भी इसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किए जाने के पक्ष में अपना समर्थन सदैव आगे बढ़कर दिया है।

भाषा केवल अभिव्यक्ति ही नहीं, वह एक राष्ट्र, एक सभ्यता, एक संस्कृति है और राष्ट्रीय तथा जातीय पहचान का प्रतीक है। भारत का विविध भाषा-भाषी सौंदर्य अनुपम है। हिंदी राष्ट्र का स्वाभिमान है, क्योंकि वह हमारे देश की राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, राजभाषा के रूप में जन-जन की भाषा है और दुनिया में सर्वाधिक बोली जानेवाली, समझी जानेवाली भाषा है। डॉ. कौटियाल के शोध-अध्ययन के अनुसार, विश्व में हिंदी जाननेवालों की संख्या 730 मिलियन है, जबकि चीनी भाषा बोलने-समझनेवालों की संख्या 726 मिलियन है। अंग्रेज बोलने-समझनेवालों की संख्या पूरे विश्व में केवल 397 मिलियन है।

इसके अलावा यह खुशी एवं गौरव की बात है कि हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदीजी ने विदेशों में जाकर हिंदी को पूरा सम्मान दिया।

देश के विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच संपर्क सूत्र कायम रखने की क्षमता को हिंदी ने आजादी के

पूर्व से लेकर अब तक प्रमाणित किया है। हिंदी की इस क्षमता को पहचानकर अहिंदी भाषी विद्वानों और नेताओं ने भी इसे राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किए जाने के पक्ष में अपना समर्थन सदैव आगे बढ़कर दिया। टैगोर, सुभाषचंद्र बोस, दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, विनोबा भावे, आचार्य कालेलकर, बापचंद मंहत, गोपीनाथ बोरदोलोई—सभी गैर-हिंदीभाषी ही थे। महात्मा गांधी ने कहा था कि यदि भारत को राष्ट्र बनना है तो राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है।

15 अगस्त, 1947 को हमें आजादी मिली। देश एक स्वतंत्र राष्ट्र बना। स्वतंत्र संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय प्रतीक भारतीय राष्ट्र के बने, लेकिन राजनीतिक विद्रूपताओं के कारण हिंदी स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई। आइए, हम हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए जन-जागरण करें और आंदोलनबद्ध होकर संकल्प लेकर कार्य करें। जिस हिंदी भाषा में पूरे देश में स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया, उस हिंदी भाषा को देश की सम्मानित भाषा-राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए थी। हिंदी राष्ट्रभाषा बने, हिंदी यू.एन.ओ. की भाषा अनुसूची में शामिल हो, भारत के सभी संस्थानों में हिंदी का सुचारु रूप से पठन-पाठन हो, सारी परीक्षाएँ केंद्रीय और प्रांतीय हिंदी और प्रांतीय भाषाओं में हों, ऐसा संकल्प लेकर हमें जन-जन में पूरे देश में जन-चेतना जाग्रत करनी होगी। विविधता में एकतावाले भारत राष्ट्र को एक सूत्र में जोड़ने में अंग्रेजी नहीं, हिंदी ही समर्थ है। राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी की राष्ट्रीय भूमिका को समझते हुए इसे संपर्क भाषा के रूप में विकसित करना और इसका बेहिचक प्रयोग करना आवश्यक है।

□

संरक्षक

हिंदी साहित्य सम्मेलन
तेजपुर-784001 (असम)

खंड : तृतीय
हिंदी : विकास की दिशाएँ

हिंदी विश्व : विकास के विशिष्ट आयाम

—श्री केशरीनाथ त्रिपाठी

भारतवर्ष तथा इसके बाहर भी हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार, विकास, उपयोगिता आदि के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और लिखा जा रहा है। फिर भी इन विषयों पर चर्चा होती ही रहती है। हम प्रतिवर्ष 14 सितंबर को केवल भारत में ही नहीं, अपितु अन्य अनेक देशों में हिंदी दिवस मनाते हैं, हिंदी के प्रचार तथा अधिकाधिक प्रयोग का संकल्प लेते हैं। इस कार्यक्रम में शासकीय कार्यालयों तथा अर्धसरकारी कार्यालयों के साथ निजी संस्थाएँ भी उत्साहपूर्वक भाग लेती हैं और समाज में हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता पैदा करने का महती कार्य भी करती हैं। यह मात्र एक औपचारिकता नहीं है। इसके सुखद परिणाम भी सामने आए हैं। अनेक कार्यालयों में हिंदी की गद्य और पद्य विधा के श्रेष्ठ रचनाकार सामने आए हैं, जिन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया है। केंद्र और कई प्रदेशों की सरकारों के द्वारा हिंदी लेखन को प्रोत्साहित करने हेतु विभिन्न विधाओं और विषयों में जैसे हिंदी भाषा में विधि विज्ञान, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, पर्यावरण, नाभिकीय विज्ञान आदि में लेखन के अतिरिक्त दूसरी भाषा के साहित्य के अनुवाद को पुरस्कृत एवं लेखकों को सम्मानित करने का कार्य किया जाता है। इतना सबकुछ होने के बाद भी कुछ लोग कहते हैं कि हिंदी की दशा में सुधार नहीं हो रहा है।

हिंदी आज धीरे-धीरे विश्व भाषा हो रही है। विश्व के लगभग दो दर्जन से अधिक देशों में हिंदी पढ़ी, लिखी, बोली और समझी जाती है। यह विश्व की दूसरी या तीसरी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है। अकेले भारत में ही हिंदी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है। एक अनुमान के अनुसार देश में लगभग 80 करोड़ लोग हिंदी पढ़ते, बोलते व समझते हैं। हिंदी सबसे सरल भाषा है। यद्यपि भारत के विभिन्न प्रदेशों, अंचलों और क्षेत्रों में अलग-अलग भाषाएँ बोली जाती हैं, परंतु उन भाषाओं से हिंदी का कोई विरोध नहीं है।

एक दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी भारत की पहचान व आत्मसम्मान की भाषा है। हमें हिंदी के इस स्वरूप को और जीवंत बनाने और हिंदी विश्व के विस्तार की आवश्यकता है।

हिंदी अभी भी विकासशील भाषा है, इसके विकास की अनगिनत दिशाएँ हैं। हमने अनेक दिशाओं में हिंदी विश्व के विकास की दिशा में कार्य प्रारंभ भी किया है, परंतु अभी भी बहुत कुछ करना शेष है। विज्ञान की सभी विधाओं और संबंधित क्षेत्रों में हिंदी भाषा में लेखन पर्याप्त नहीं है। स्तरीय शोध ग्रंथ भी कम हैं। अभी भी अंग्रेजी भाषा के कई शब्दों के पर्याय नहीं हैं। स्वाभाविक है कि इससे इस क्षेत्र में हिंदी का विकास अवरुद्ध होता है। यह कठिनाई नए-

नए शब्दों के निर्माण से, जो सरल व बोधगम्य हों तथा प्रचुर मात्रा में लेखन तथा हिंदी में पठन-पाठन से दूर हो सकती हैं। हिंदी विश्व के विकास के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है। यही स्थिति दूसरे अन्य क्षेत्रों जैसे—नाभिकीय विज्ञान, पर्यावरण, वनस्पति शास्त्र, भूगर्भ विज्ञान, गणित आदि में है।

किसी भी भाषा के विस्तार के लिए कुछ चीजें अत्यंत आवश्यक हैं। सर्वप्रथम भाषा का प्रशासनिक क्षेत्र में प्रयोग एवं उपयोगिता। यदि प्रशासनिक क्षेत्र में शासकीय कार्यों के लिए भाषा का समुचित प्रयोग होता है तो निश्चित रूप से इससे भाषा को प्रोत्साहन प्राप्त होगा और भाषा का विस्तार भी होगा। अंग्रेजी भाषा का विकास इसलिए हुआ कि वह अंग्रेजी शासकों की भाषा थी और सारे प्रशासनिक कार्य अंग्रेजी भाषा में ही होते थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिन देशों में शासन की भाषा अंग्रेजी नहीं थी या उसे शासकीय संरक्षण नहीं मिला था या जहाँ शासकीय कार्यों के लिए अपने देश की स्वयं की भाषा का प्रयोग होता था, वहाँ अंग्रेजी भाषा का विस्तार भी नहीं हो पाया, वरन् इसके विपरीत उस देश की अपनी भाषा का विकास हुआ और प्रत्येक कार्य में उसी भाषा का प्रयोग होने लगा। इस भाषाई प्रयोग से देश का स्वाभिमान भी जागा और विकास में कभी भी भाषा बाधा के रूप में खड़ी नहीं हुई। हमें हिंदी भाषा के विस्तार के लिए सैद्धांतिक दृष्टिकोण के स्थान पर व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। यदि देश के अंदर ही हमारे सारे कार्य हिंदी भाषा में होने लगे तो निश्चित रूप से हिंदी का विस्तार होगा, क्षेत्र विस्तार होगा और भाषा का विकास भी होगा। हिंदी में शब्द-सृजन की असीम क्षमता है, व्याकरण शुद्ध है, दूसरी भाषाओं से शब्द ग्रहण करने की सामर्थ्य भी है और साथ-ही-साथ अनेक विषय जो अभी हिंदी भाषा से अछूते हैं, उनमें भी हिंदी के प्रयोग की संभावनाएँ बहुत हैं। इसलिए

सर्वप्रथम तो मैं यह समझता हूँ कि शासकीय कार्य, चाहे वह केंद्रीय हों या प्रादेशिक, यथासंभव हिंदी में ही किए जाएँ।

हमें हिंदी को सेवा योजन तथा रोजगार की भाषा बनाना होगा। अभी प्रारंभिक कठिनाइयाँ होंगी, लेकिन उन कठिनाइयों का हल भी है। जहाँ अंग्रेजी भाषा में या किसी प्रदेश की भाषा में पत्राचार हो, वहाँ उन पत्रों का हिंदी में अनुवाद भी साथ-साथ जाए। जब दोनों भाषाओं में पत्र जाएँगे तो हिंदी का प्रचार होगा, साथ ही देश की दूसरी भाषाओं के प्रति भी लोगों का आकर्षण बढ़ेगा, उनको सीखने की इच्छा जाग्रत होगी तो भाषाई विरोध भी एकदम धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। इससे भाषा के प्रयोग को व्यापकता मिलेगी, यह एक व्यावहारिक दृष्टिकोण है। हिंदी भाषा के प्रशासनिक क्षेत्र में प्रयोग के संदर्भ में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत के संविधान के अनुच्छेद-351 में हिंदी को प्रोत्साहित व विकसित करने के लिए स्पष्ट निर्देश दिया गया है। अतः यदि शासन के सभी कार्य हिंदी भाषा में होने लगे तो हिंदी भाषा के विस्तार की यह बहुत महत्वपूर्ण दिशा होगी।

किसी भी भाषा के विस्तार के लिए केवल शासन स्तर पर भाषा के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती। आवश्यकता है भाषा के पठन-पाठन की समुचित सुविधा की। वैसे तो सारे देश में हिंदी पढ़ाई जाती है, लेकिन विगत कुछ वर्षों से अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पर काफी बल दिया जा रहा है। इसका एक परिणाम तो यह होगा कि हम अपना भाषाई स्वाभिमान धीरे-धीरे खो देंगे और हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार न करके एक गौड़ भाषा के रूप में स्वीकार कर लेंगे। यह स्थिति अच्छी नहीं है। इसके कारण हिंदी भाषा का पठन-पाठन, शिक्षण, विस्तार आदि निश्चित रूप से प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होगा और अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व बढ़ता जायगा। यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस स्थिति को यथासंभव शीघ्र ही समाप्त करें।

अंग्रेजी पढ़ना है तो लोग जरूर पढ़ें, लेकिन हिंदी को उचित महत्त्व व स्थान देने की आवश्यकता है।

हिंदी विश्व के विकास के लिए बहु-आयामी और बहु-स्तरीय प्रयास की आवश्यकता है। सर्वप्रथम उन सभी क्षेत्रों की तलाश और उन पर कार्य करना, जहाँ हिंदी के विकास की संभावना है। प्रशासनिक क्षेत्र में हिंदी भाषा के संपूर्ण प्रयोग से हम हिंदी विश्व का विस्तार कर सकते हैं, परंतु इतना पर्याप्त नहीं है। हमें साथ में अनुवाद की विधा को भी महत्त्व देना होगा, जो सभी भाषाओं के शब्दों का हिंदी में तथा हिंदी के शब्दों का अन्य सभी भाषाओं में अनुवाद कर सकें। इससे भाषाई भेदभाव की संभावना भी समाप्त होगी और भाषा शब्दकोश के विकास में भी सहायता होगी।

हिंदी को यदि हम अंतरराष्ट्रीय स्वरूप दे सकें तो भाषा का विस्तार होगा तथा इस भाषा के महत्त्व को भी लोग समझेंगे। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में व्यापार का बहुत महत्त्व है। हमें प्रयास करना होगा कि हम हिंदी को कैसे विश्व व्यापार की भाषा बना सकें? यदि हम थोड़ा-सा पीछे जाकर देखें तो एक समय था कि हिंदी में हम अंग्रेजी दवाओं के नाम नहीं लिख सकते थे। लेकिन धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ और आज अंग्रेजी दवाओं के नाम हिंदी में भी लिखे जाते हैं। अंग्रेजी दवाओं के जो डिब्बे होते हैं, उन पर अब हिंदी में भी अंग्रेजी दवाओं का नाम लिखा जाने लगा है। यह व्यापार से संबंधित भाषा का विकास था। इसलिए यदि हम अंतरराष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग पर बल दें और वहाँ भी यदि हम क्रय-विक्रय की प्रणाली में हिंदी का प्रवेश कर सकें तो निश्चित रूप से जो गैर हिंदी भाषी देश हैं, वहाँ भी हिंदी भाषा की आवश्यकता महसूस होगी और उसके प्रति रुझान बढ़ेगा, उसका विकास व विस्तार होगा।

आज हम देखते हैं कि अनेक देश ऐसे हैं, जो

अपने देश की भाषाओं में पत्राचार करते हैं। कभी-कभी उन पत्रों के साथ अंग्रेजी अनुवाद आता है और कभी नहीं भी आता। मेरा सुझाव है कि भारत सरकार जो भी पत्राचार दूसरे देश से करे, उनमें प्रमुखता से हिंदी भाषा का प्रयोग किया जाए। साथ में उस देश की भाषा में अनुवाद भी रखा जाए। मुख्य पत्र हिंदी में हो और यदि उसका उस देश की भाषा में अनुवाद पत्र भेजा जाता है तो उस देश के अंदर भी हिंदी के प्रति उत्सुकता पैदा होगी और हिंदी का विकास होगा।

मेरा एक छोटा सा, बहुत सरल सुझाव है। भारतवंशी बहुत बड़ी संख्या में विश्व के लगभग सभी देशों में हैं। हिंदी भाषा के विस्तार और विकास के लिए, उसे एक नई दिशा देने के लिए सभी भारतवंशी अपने निवास पर तथा व्यावसायिक संस्थानों आदि में हिंदी भाषा में भी नाम पट्टिका लगाना शुरू कर दें। यह स्वाभाविक है कि तब लोगों में उत्सुकता भी होगी कि यह नाम पट्टिका किस भाषा में है। अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के नाम भी दूसरी भाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में लिखें तो और अच्छा होगा। किसी भी भाषा का विस्तार उसके अधिकाधिक प्रयोग के ऊपर निर्भर करता है। हम जब भी भाषा को सीमित क्षेत्र में रखने की चेष्टा करेंगे, उसका विकास अवरुद्ध हो जाएगा। उसकी दिशा सीमित हो जाएगी। इसलिए यदि हमें हिंदी के विकास की दिशा तय करनी है, उसका विस्तार करना है तो व्यावहारिक दृष्टिकोण से हमें हिंदी भाषा का प्रत्येक संभव क्षेत्र में अधिकाधिक प्रयोग करने की आवश्यकता है। इसमें समय तो लगेगा, परंतु यह हिंदी भाषा के क्षेत्र के विस्तार में बहुत सहायक कदम होगा।

□

महामहिम श्री राज्यपाल

पश्चिम बंगाल

राजभवन, कोलकाता-700062

हिंदी और मातृभाषा में उच्च शिक्षा

—प्रो. धीरेंद्र पाल सिंह

प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर भाषा को लेकर विद्वानों द्वारा चिंतन-मनन होता रहा है। खासकर भारत जैसे देश में, जहाँ अनेक भाषाएँ, उप भाषाएँ और बोलियाँ हैं। वहाँ इसका सतत चिंतन आवश्यक भी है। प्रश्न है— भारत में शिक्षा का माध्यम किस भाषा में हो? यह प्रश्न आज भी चर्चाओं के केंद्र में इसलिए रहता है क्योंकि बहुभाषी और बहुआयामी अपने देश में इस विषय पर चर्चा तो हुई। इसको लेकर ठोस रणनीति भी बनी पर इसे पूर्णतः लागू करना अभी शेष है। अंग्रेजों के भारत में आने तक आम लोग दैनिक कार्यों में स्थानीय भाषाओं का व्यवहार करते थे। उच्च शिक्षा और शास्त्रीय चर्चाओं के लिए संस्कृत का उपयोग किया जाता था।

अंग्रेज यह भली-भाँति जानते थे कि भारत पर यदि लंबे समय तक राज करना है तो अंग्रेजी भाषा की जड़ें जमानी होंगी। सत्ता प्राप्ति के बाद अंग्रेज पहले तो हिंदी-उर्दू मिली-जुली भाषा को सरकारी कामकाज में ले आए और बाद में अंग्रेजी भाषा को प्रमुखता देना शुरू दिया। अंग्रेज ऐसे लोगों को चुन-चुनकर नौकरी देते जो भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी भाषा के भी अच्छे जानकार हों। देश में अंग्रेजी आधारित शिक्षा की शुरुआत अंग्रेजों द्वारा जान-बूझकर की गई साजिश थी। हिंदी, उर्दू और

फारसी से अंग्रेजों को कोई लेना-देना नहीं था। भाषा को लेकर अंग्रेजों की सोची-समझी रणनीति सफल रही और देखते-ही-देखते भारत में प्राथमिक शिक्षा तो कम लेकिन उच्च शिक्षा पूर्णतया अंग्रेजी के चपेट में आ गई। आज हमारी उच्च शिक्षा के माध्यम का जो स्वरूप है, वह अंग्रेजों की दुरभि संधि का परिणाम है।

वर्तमान शिक्षा अधिकार अधिनियम के मुताबिक प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया गया है, जबकि उच्च शिक्षा स्तर पर ऐसा नहीं है। यह कोई सामान्य समस्या नहीं है बल्कि गंभीर समस्या है कि उच्च शिक्षा स्तर पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो या मातृभाषा या फिर हिंदी भाषी क्षेत्रों में विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों में कहने के नाम पर तो हिंदी में शिक्षा प्रदान की जाती है, लेकिन असलियत यह है कि कुछ विषयों को छोड़कर सभी विषयों में अंग्रेजी में ही शिक्षा प्रदान की जाती है। केंद्र शासित क्षेत्रों व केंद्रीय विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम प्रायः अंग्रेजी ही है।

हमारे देश में वर्तमान में लगभग 900 विश्वविद्यालय और 40,000 से अधिक महाविद्यालय हैं, जो कि विभिन्न विषयों में उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम संचालित करते हैं। ये पाठ्यक्रम स्नातक

स्तर के तथा स्नातकोत्तर स्तर के होते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी पी-एच.डी. भी करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्नातक स्तर पर सामान्यतया यह अपेक्षित है कि अध्यापन की भाषा हिंदी अथवा भारतीय भाषा हो, जिससे कि विद्यार्थी उस विषय को अच्छे से समझ सकें। स्नातकोत्तर स्तर पर तो प्रायः अध्ययन-अध्यापन का माध्यम अंग्रेजी ही होता है। पी-एच.डी. के स्तर पर तो अंग्रेजी का बोलबाला है ही।

भारत में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है; इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों में हिंदी विश्वविद्यालय हैं, जिनमें विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम हिंदी में संचालित होने लगे हैं। वस्तुतः यदि हमें उच्च शिक्षा में ग्रामीण विद्यार्थियों के नामांकन को बढ़ाना है तो हमें हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था सुनिश्चित करनी होगी। विभिन्न विषयों के

पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्चा, पुस्तकें एवं अन्य पठनीय सामग्री हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में पठन-पाठन हेतु वांछित सामग्री विकसित करनी होगी। इसके साथ ही शिक्षकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की आवश्यकता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो अपने मानस में हिंदी की महत्ता को प्रतिपादित करने की है। इन सभी मुद्दों को लेकर जो मानसिक द्वंद्व आज हमारे सम्मुख है, उसको दूर करने की

आवश्यकता है। इसके बाद ही हम हिंदी को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठापित कर पाएँगे।

मूल प्रश्न यह है कि जिसकी मातृभाषा हिंदी या अन्य भारतीय भाषा हो और जिसने माध्यमिक स्तर तक अपनी मातृभाषा में अध्ययन किया हो, उसे उच्च शिक्षा का पाठ अंग्रेजी में पढ़ाना कहाँ तक औचित्यपूर्ण है? यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो ऐसे छात्र-छात्रा को एक नई भाषा को सीखने की जद्दोजहद करनी पड़ती है और दूसरी ओर पाठ्यक्रम की जटिलताओं का सामना करना पड़ता

है। अंग्रेजी और हिंदी के मुद्दे पर उलझी नीतियाँ हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था के सामने एक बड़ी समस्या हैं। इस समस्या ने उच्च शिक्षा के स्तर को कमजोर बनाया है और इस कारण भी भारत में उच्च शिक्षा से विमुख और वंचित रह जाते हैं युवा।

संख्या की दृष्टि से भारत की उच्च शिक्षा की स्थिति अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर होते हुए भी दुनिया

के शीर्ष विश्वविद्यालयों में भारत के विश्वविद्यालयों का न होना चिंतनीय है। भारत में उच्च शिक्षा के लिए नामांकन कराने वाले छात्रों का अनुपात 25.2 प्रतिशत ही है। इस प्रतिशत को बढ़ाने की जरूरत है और इसके पीछे छिपे कारणों को जितना जल्द-से-जल्द खोजकर निकाल लें, उतना ही अच्छा है। इसके लिए सकारात्मक कार्ययोजना बनाकर समस्या को शीघ्र दूर कर लिया जाना चाहिए।

हालाँकि उच्च शिक्षा में समान भागीदारी के लिए देश में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है और उच्च शिक्षा का संरचनात्मक ढाँचा, अवस्थापना, सुविधाएँ एवं विनियोग में भी बढ़ोत्तरी हुई है, लेकिन अब भी इधर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है।

विभिन्न आयोगों, परिषदों और समितियों ने सुझाव दिए हैं कि उच्च शिक्षा में मातृभाषा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साथ ही अंग्रेजी को धीरे-धीरे शिक्षा के माध्यम के रूप में कम महत्व देना होगा। अनेक विद्वान् यह भी मानते हैं कि देश में स्वतंत्रता आंदोलन के समय अंग्रेजी भाषा के कारण लोगों में देश-प्रेम की भावना जाग्रत हुई। अंग्रेजी हटाओ आंदोलन से लोग जुड़े और हिंदी और अन्य भारतीय

भाषाओं को ज्यादा महत्व देने लगे अर्थात् इससे राष्ट्रप्रेम की भावना का संचार हुआ। इसके इतर अनेक चिंतकों का यह भी मानना है कि वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ आधुनिक अध्ययन के लिए अंग्रेजी भाषा का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। इन लोगों का मानना है कि नीति-निर्माताओं को इस तथ्य पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए था कि प्राथमिक शिक्षा केवल क्षेत्रीय और मातृभाषा की विषय-वस्तु न बने क्योंकि आगे चलकर यही बच्चे जब उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे तो उनमें वैज्ञानिकता, तथ्यपरकता और वस्तुनिष्ठता लाना संभव नहीं होगा।

स्कूलों में मातृभाषा को हतोत्साहित करने की

प्रवृत्ति भी मिलती है। अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में यदि कोई छात्र हिंदी या अपनी मातृभाषा में बात करता है तो उस पर 'जुर्माना' लगाना अब आम बात हो चली है। कुछ अभिभावक तो अपने अल्प अंग्रेजी ज्ञान को अपने बच्चों को घर में परोसते हैं अर्थात् टूटी-फूटी भाषा में ही उनसे बातें करते हैं, ताकि स्कूल के अंग्रेजी माध्यम के वातावरण की तारतम्यता घर में

स्कूलों में मातृभाषा को हतोत्साहित करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में यदि कोई छात्र हिंदी या अपनी मातृभाषा में बात करता है तो उस पर 'जुर्माना' लगाना अब आम बात हो चली है। कुछ अभिभावक तो अपने अल्प अंग्रेजी ज्ञान को अपने बच्चों को घर में परोसते हैं अर्थात् टूटी-फूटी भाषा में ही उनसे बातें करते हैं, ताकि स्कूल के अंग्रेजी माध्यम के वातावरण की तारतम्यता घर में भी बनी रहे। यह चिंतनीय है ऐसा करके हम अपने परिवेश, संस्कृति और जड़ों को काट रहे हैं।

भी बनी रहे। यह चिंतनीय है ऐसा करके हम अपने परिवेश, संस्कृति और जड़ों को काट रहे हैं। मातृभाषा में संवाद, चिंतन और विचार-विमर्श को रोजमर्रा की जिंदगी से भी बाहर करना और भी ज्यादा भयावह है, क्योंकि भाषा केवल सूचना और ज्ञान के आदान-प्रदान का माध्यम नहीं होती, बल्कि यह मानव परंपराओं एवं वैचारिक आदान-प्रदान का भी माध्यम है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि अधिकांश बच्चे स्कूल इसलिए नहीं जाते कि उनकी शिक्षा का माध्यम वह भाषा नहीं है जो उनके घर में बोली जाती है, अर्थात् शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ के बाल अधिकारों के घोषणा पत्र में भी यह जिक्र किया गया है कि बच्चों को उसी भाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए, जिस भाषा में माता-पिता, दादा-दादी और परिवार के अन्य सदस्य संवाद करते हैं।

यह सच है कि हम अपनी मातृभाषा में ही अपने मनोभावों, संवेदनाओं और विचारों को बेहतर ढंग से प्रस्तुत कर पाते हैं। यदि हम अन्य देशों की

भाषा के प्रश्न पर चिंतन करें तो पाते हैं कि वे अपनी मातृभाषा को हमसे अधिक महत्त्व देते हैं। चीन में चीनी, जापान में जापानी, स्वीडन में स्वीडिश, फिनलैंड में फिनिश, फ्रांस में फ्रेंच, इटली में इतालवी, ग्रीस में ग्रीक, जर्मनी में जर्मन और ब्रिटेन में अंग्रेजी भाषा ही शिक्षा का माध्यम है। ये सभी देश तेजी से अपनी मातृभाषा में शिक्षा देकर अपने देश को विकास की ओर उन्मुख कर रहे हैं। हमें इस भ्रम में कदापि नहीं रहना चाहिए कि अंग्रेजी भाषा से हम विकास को बढ़ावा दे सकते हैं?

भारतीय शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिए, जो प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक सारे आयाम स्थानीय या मातृभाषा में हो। एक ऐसी तंत्र-व्यवस्था होनी चाहिए, जो अंतरराष्ट्रीय ज्ञान एवं विज्ञान को मातृभाषा में उच्च शिक्षा के लिए सामग्री अनूदित कर सके, जिससे अंतरराष्ट्रीय मानक के समस्त विषय

एवं तथ्य मातृभाषा में सर्वसुलभ हो सकें। हमें पूर्वग्रहों से दूर रहकर इस दिशा में ठोस कार्ययोजना बनाने की जरूरत है। भारत के उच्च शिक्षा तंत्र में मजबूती

लाने के लिए भाषा को लेकर एक बेहतर कार्ययोजना पर राष्ट्रीय चिंतन आवश्यक है। अतः भारत में मातृभाषा में उच्च शिक्षा की गति को बढ़ाने का संकल्प लिया जाना चाहिए। साथ ही इस संकल्प को शीघ्र क्रियान्वित करने की दिशा में ठोस पहल विद्वानों, शिक्षाविदों, स्वैच्छिक हिंदी-मातृभाषाओं से जुड़े संगठनों एवं सरकार द्वारा समन्वित रूप से किया जाना सर्वाधिक महत्त्व का राष्ट्रीय एजेंडा होना चाहिए।

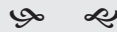
□

अध्यक्ष

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002

भारत की एकता के लिए आवश्यक है कि देश की सभी भाषाएँ नागरी लिपि अपनाएँ।

—विनोबा भावे



भारत जैसे देश में हिंदी जैसी शक्तिशाली भाषा में कैसे काम नहीं किया जा सकता, यह बात हमारी समझ से परे है।

—श्रीमन्नारायण

स्वाधीनता पूर्व का बंगाल : हिंदी की तीर्थस्थली

—डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र

बंगाल में हिंदी की यात्रा मुख्यतः सरणियों में चलती रही है। धर्म प्रचार-अभियान और समाज सुधार आंदोलन, अध्यापन-आयोजन तथा पत्रकारिता-हिंदी विकास की इन आधुनिक सरणियों का उत्स बंगाल की धरती रही है।

‘बंगदूत’ के हिंदी संस्करण का प्रकाशन 1829 में शुरू हुआ राजा राममोहन राय के हिंदी समर्थन का बांग्लाभाषियों पर गहरा असर पड़ा। ब्रह्मानंद केशवचंद्र ने अपने पत्र ‘सुलभ समाचार’ के माध्यम से हिंदी की महत्ता को रेखांकित करते लिखा था, ‘यदि भारतवर्ष के एक हुए बिना भारत में एकता नहीं हो सकती, तो उसका उपाय क्या है? उपाय है सारे भारत में एक ही भाषा का व्यवहार। अभी जितनी भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं, उनमें हिंदी भाषा लगभग सभी जगह प्रचलित है। इसी भाषा को अगर भारतवर्ष की एकमात्र भाषा बनाई जाए तो यह काम सहज ही और शीघ्र ही संपन्न हो सकता है।’ केशवचंद्र सेन की प्रेरणा का स्वामी दयानंद के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा था। स्वामीजी की जाग्रत प्रज्ञा ने स्वीकार कर लिया था कि तामसग्रस्त भारत की अस्मिता के उद्धार का सशक्त भाषा-माध्यम हिंदी ही हो सकती है।

बांग्ला के महान् गद्यशिल्पी बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ने अपनी पत्रिका ‘बंगदर्शन’ में हिंदी के पक्ष में ‘भारते एकता’ शीर्षक से टिप्पणी लिखी थी। उक्त टिप्पणी का उपसंहार करते बंकिमचंद्र ने लिखा था,

‘हिंदी भाषा के सहारे जो लोग विभिन्न प्रदेशों में एकता कायम कर सकेंगे, वही वास्तव में भारतबंधु के नाम से पुकारे जाएँगे।’ इसी मुद्रा में बांग्लाभाषी मनीषी रमेशचंद्र दत्त ने बड़ौदा में अपने भाषण में हिंदी की राष्ट्रीय महत्ता रेखांकित की थी। वेदांत दर्शन के विश्वविख्यात प्रवक्ता स्वामी विवेकानंद अपने गुरुभाइयों और शिष्यों से वेदांत-ज्योति के सम्यक् प्रसार के लिए हिंदी में पत्रिका प्रकाशित करने का बार-बार आग्रह करते रहे। स्वामीजी की जातीय चिंता-प्रेरित आकांक्षा तब फलवती हुई सन् 1922 में, जब उनके बेलूर मठ ने अध्यात्म-विद्या-प्रधान पत्रिका ‘समन्वय’ का प्रकाशन किया।

संस्कृत भाषा और पुरा विद्या के महामनीषी पं. ईश्वरचंद्र विद्यासागर हिंदी को बहुमान देने में पीछे नहीं थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र से उनकी अंतरंग मैत्री के मूल में हिंदी भाषा थी, जो भारतेन्दु के चिंतन और रचना की भाषा थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी में बंगीय धरती पर क्रियाशील समाज-सुधार और संस्कृति उन्नयन-आंदोलन के प्रमुख नायकों की हिंदी के विकास में कृती भूमिका रही है। उन्होंने हिंदी की जातीय महत्ता की ओर सक्रिय संकेत कर उसके अनुकूल आबोहवा तैयार की। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि बांग्लाभाषी महापुरुष अंग्रेजी और संस्कृत के पंडित थे, बांग्ला के शीर्षस्थ लेखक थे, जिन्होंने राष्ट्र-हित की सहज चिंता से हिंदी का समर्थन किया था। हिंदी की यात्रा को अपने तरीके से गति दी थी। बंगाल की धरती पर गतिशील हिंदी

की विकास यात्रा की यह महत्वपूर्ण सरणी थी।

बंगाल में क्रियाशील हिंदी-विकास-यात्रा का सर्वाधिक समर्थ माध्यम पत्रकारिता थी। हिंदी का पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' कलकत्ता से 30 मई, 1826 को प्रकाशित हुआ था। कलकत्ता उस समय अंग्रेजी राज की राजधानी था। स्वाभाविक रूप में कलकत्ता की विशिष्ट-महत्ता पूरे देश में ऊँची हो गई थी। पूरे देश की दृष्टि कलकत्ता पर लगी रही थी। जीविका-संधान के उद्देश्य से पश्चिमोत्तर प्रदेश से लोग कलकत्ता की ओर खिंचे आ रहे थे। कानपुर निवासी पं. युगलकिशोर सुकुल जीविका की खोज में ही कलकत्ता आए थे। अपने हिंदी समाज को आधुनिकता की रोशनी से जोड़ने की सहज महत्वाकांक्षा उनके मन में उठ रही थी। उसी बलवती प्रेरणा का परिणाम था हिंदी के प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन। 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन 'हिंदुस्तानियों के हित के हेतु' अर्थात् उन्हें परावलंबन से उबारकर ज्ञान के आधुनिक आलोक से जोड़ने से प्रेरित था। हिंदी के पहले पत्र की मूल प्रतिज्ञा 'हिंदुस्तानियों के हित' ही थी। इसे हिंदी पत्रकारिता की आदि प्रतिज्ञा माननी चाहिए। शांति निकेतन के 'हिंदी भवन' के आदि आचार्य पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी साहित्य और विद्या साधना का एकांत लक्ष्य मनुष्य का सर्वांगीण मंगल ही मानते थे।

सन् 1857 यानी स्वतंत्रता-संग्राम के पूर्व कलकत्ता से हिंदी के अनेक पत्र प्रकाशित हुए, जिनमें प्रमुख हैं—'बंगदूत', 'प्रजामित्र', 'साम्यदंत मार्तंड' और हिंदी का प्रथम दैनिक 'समाचार सुधावर्षण'; और जो प्रमाण है इस तथ्य का कि हिंदी पत्रकारिता का जन्म ही नहीं, बल्कि नींव-निर्माण का ऐतिहासिक कार्य भी कलकत्ता ने ही संपन्न किया। हिंदी का प्रथम दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' जून 1854 में श्यामसुंदर सेन नामक बंगाली सज्जन के उद्योग से उन्हीं के संपादकत्व में निकला था। नितांत प्रतिकूल परिस्थिति के बीच इन पत्रों का प्रकाशन हुआ था। अपनी राष्ट्रीय निष्ठा और ऊँचे आदर्श की प्रेरणा के बल पर वे विकट प्रतिकूलताओं में रहते एक अहिंदाभाषी अंचल में हिंदी का इतना महत् कार्य कर

सके। कलकत्ता के लिए यह गौरव की बात है कि हिंदी जिस प्रांत की प्रधान भाषा है, उस प्रांत में भी जब हिंदी के समाचार-पत्र प्रकाशित नहीं हुए थे, तब उसने एक नहीं अनेक समाचार पत्र निकाले। अपनी प्रशस्त और पुष्ट भित्ति को कलकत्ते की हिंदी पत्रकारिता ने राजनीति, साहित्य और संस्कृति की यात्रा के लिए उपयुक्त माध्यम बनाया। उत्तर उन्नीसवीं शती में कलकत्ते से प्रकाशित भारत-मित्र (1878), सारसुधानिधि (1879), उचितवक्ता (1880), हिंदी बंगवासी (1890) ऐसे हिंदी पत्र थे, जिनके चलते संपूर्ण जगत् में कलकत्ता की विशिष्टता-महत्ता स्थापित हो गई। इन पत्रों के प्रकाशन के साथ ही बंगाल को हिंदी का प्रमुख केंद्र माना जाने लगा और इस केंद्र के प्रति हिंदी के विद्यार्थियों, पत्रकारों और साहित्य-शिल्पियों की दिलचस्पी बढ़ने लगी। पं. छोटेलाल मिश्र और पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के उद्योग से 17 मई, 1878 को कलकत्ते से हिंदी के तेजस्वी पत्र 'भारत-मित्र' का प्रकाशन हुआ था। पं. सदानंद मिश्र के संपादन में 13 जनवरी, 1879 को 'सारसुधानिधि' प्रकाशित हुआ था, जिसके सक्रिय सहयोगी थे उस काल के शीर्षस्थ हिंदी विद्वान् पं. गोविंद नारायण मिश्र, पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र और शंभुनाथ मिश्र। हिंदी पत्रकारिता के महान् उन्नायक पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र का अपना पत्र 'उचितवक्ता' जो कलकत्ता से 7 अगस्त, 1880 को प्रकाशित हुआ था।

'भारत-मित्र' के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण तथ्य स्मरणीय है कि पुरानी पीढ़ी की उदग्र जाति के सभी शीर्षस्थ पत्रकारों की प्रज्ञा का संस्पर्श उसे मिला था। पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं. रुद्रदत्त शर्मा, पं. बाबूराव विष्णु पराड़कर, बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं. अंबिका प्रसाद वाजपेयी और पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे हिंदी के शीर्षस्थ कृति पत्रकार थे, जिनके संपादन में दीर्घकाल तक 'भारत-मित्र' निकलता रहा। पत्रकारिता को इन पत्रकारों ने देशोद्धार और देशोत्थान के साधना-माध्यम के रूप में अपना धर्म बनाया था। 'हिंदी बंगवासी' के उद्योक्ता बंगाली सज्जन योगेंद्रनाथ बसु थे। उसके संपादक थे हिंदी के सेवाव्रती पं. अमृतलाल चक्रवर्ती। यह पत्र हिंदी के



संदर्भ में इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि हिंदी के अधिकांश विशिष्ट पत्रकारों ने यहीं से पत्रकारिता की यात्रा शुरू की। पं. बाबूराव विष्णु पराडकर, बाबू बालमुकुंद गुप्त, पं. अंबिका प्रसाद वाजपेयी और पं. लक्ष्मण नारायण गर्दे का 'हिंदी बंगवासी' से घनिष्ठ-सक्रिय संबंध था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और कलकत्ते के हिंदी पत्रकार बाबू बालमुकुंद गुप्त में 'भारत-मित्र' और 'सरस्वती' के माध्यम से जब ऐतिहासिक महत्व का व्याकरण-संघर्ष शुरू हुआ था तो पं. गोविंद नारायण मिश्र अपने वैदुष्य से 'हिंदी बंगवासी' के माध्यम से द्विवेदीजी का पक्ष-समर्थन कर रहे थे।

1907 में प्रकाशित 'देवनागर' में शारदाचरण मित्र का 'बंग साहित्य परिषद्' का अध्यक्षीय भाषण प्रकाशित हुआ था, जिसमें उन्होंने हिंदी की महत्ता की ओर इशारा करते हुए कहा था, 'वर्तमान हिंदी अनेक परिमाणे आमादेर राष्ट्रभाषा अभाव पूरण करित पारे, हिंदी तो सहजे शिक्खा करा जाय, सुतरां सहजेइ आर्यावर्तेर राष्ट्रभाषा हइते पारे।' 'एक लिपि विस्तार परिषद्' और 'देवनागर' के माध्यम से हिंदी के रूप यानी उसकी लिपि का, बंगीय महामना शारदाचरण मित्र ने जैसा पक्ष समर्थन किया और उसकी राष्ट्रव्यापी महत्ता की तर्कपुष्ट वक्तव्यों द्वारा विज्ञप्ति दी, वैसा रचनात्मक आयोजन अन्यत्र नहीं दिखाई पड़ा।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही बंगाल न केवल

हिंदी भाषा के विकास का बल्कि हिंदी साहित्य का प्रमुख केंद्र बनने लगा। असल में, जैसा कि गर्देजी ने स्वीकार किया था, अधिकांश हिंदी पत्रकार इस क्षेत्र में केवल इसलिए आए कि वे देश की सेवा करना चाहते थे। हिंदी सेवा, चाहे जिस विधा में रूपायित हो, देश-सेवा का पर्याय बन गई थी। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक बंगाल

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही बंगाल न केवल हिंदी भाषा के विकास का बल्कि हिंदी साहित्य का प्रमुख केंद्र बनने लगा। असल में, जैसा कि गर्देजी ने स्वीकार किया था, अधिकांश हिंदी पत्रकार इस क्षेत्र में केवल इसलिए आए कि वे देश की सेवा करना चाहते थे। हिंदी सेवा, चाहे जिस विधा में रूपायित हो, देश-सेवा का पर्याय बन गई थी। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक बंगाल से हिंदी की अनेक विशिष्ट साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। 'विशाल भारत' और 'मतवाला' को हिंदी जगत में वही लोकप्रियता मिली, जो एक समय 'भारत-मित्र' को मिली थी। अंतरराष्ट्रीय ख्याति के भारतीय पत्रकार पं. रामानंद चट्टोपाध्याय के उद्योग से 'विशाल भारत' का प्रकाशन हुआ था। आर्थिक क्षति उठाते हुए चट्टोपाध्याय महाशय ने 'विशाल भारत' की यात्रा को दीर्घ काल तक अकुंठ रखा।

से हिंदी की अनेक विशिष्ट साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। 'विशाल भारत' और 'मतवाला' को हिंदी जगत में वही लोकप्रियता मिली, जो एक समय 'भारत-मित्र' को मिली थी। अंतरराष्ट्रीय ख्याति के भारतीय पत्रकार पं. रामानंद चट्टोपाध्याय के उद्योग से 'विशाल भारत' का प्रकाशन हुआ था। आर्थिक क्षति उठाते हुए चट्टोपाध्याय महाशय ने 'विशाल भारत' की यात्रा को दीर्घ काल तक अकुंठ रखा। 'विशाल भारत' के संपादकों—बनारसीदास चतुर्वेदी और अज्ञेय को रामानंद बाबू ने इतनी स्वाधीनता दे रखी थी कि उन्हीं की पत्रिका में उनकी आलोचना वे निर्भीक मुद्रा में करते थे।

'मतवाला' का प्रकाशन (23 अगस्त, 1832) शुद्ध साहित्यिक आयोजन था। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता में एक अप्रतिम प्रयोग। आचार्य शिवपूजन सहाय, निराला, नवजादिक लाल श्रीवास्तव और उग्र जैसे प्रथम श्रेणी के कवि और गद्य-शिल्पी के संपादन में निकलनेवाले 'मतवाला' के मुख्य उद्योक्ता महादेव

प्रसाद सेठ थे। बंगाल की हिंदी-साधना की विशिष्ट उपलब्धि हैं निराला। 'मतवाला' से आचार्य शिवपूजन सहाय के गुरु 'हिंदूपंच'—संपादक पं. ईश्वरीप्रसाद शर्मा का घनिष्ठ-सक्रिय संबंध था। श्यामसुंदर खत्री और गुलाब रत्न वाजपेयी उस समय के उदीयमान कवि थे, जिनका 'मतवाला' से आत्मीय संबंध था। पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और पं. गांगेय नरोत्तम शास्त्री से 'मतवाला' का संपादक मंडल अंतरंग रूप में जुड़ा था। विशिष्ट हिंदी साहित्यकारों का प्रवास-क्षेत्र बन जाने और स्तरीय साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन-केंद्र बनते ही कलकत्ता हिंदी साहित्य का प्रमुख तीर्थ बन गया, जिसके प्रति हिंदी की प्रतिभा सहज की सतृष्ण हो उठी थी। हिंदी 'बंगवासी' की तरह बाबू मूलचंद्र अग्रवाल का 'विश्वमित्र' हिंदी क्षेत्र से कलकत्ता आ रहे प्रतिभाशाली युवकों को पत्रकारिता का व्यावहारिक प्रशिक्षण, रोजी की समस्या का कामचलाऊ समाधान और उनकी प्रतिभा द्युति के प्रकाशन की अनुकूलता दे रहा था। बनारसीदास चतुर्वेदी, शिवपूजन सहाय, निराला, उग्र, विश्वभरनाथ जिज्जा, सुदर्शन, हेमचंद्र जोशी, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय और महामहोपाध्याय पं. सकलनारायण शर्मा तथा आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल जैसे हिंदी के शीर्षस्थ कृती पुरुष उस काल में कलकत्ता में विभिन्न विद्या-सरणियों से सृजनशील यात्रा करते हिंदी साहित्य की समृद्ध बंगीय भूमिका की अनायास घोषणा कर रहे थे।

सन् 1919 ई. में महामना आशुतोष मुखोपाध्याय ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी-अध्यापन की व्यवस्था की। सक्रिय रुचि लेकर उन्होंने हिंदी का पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराईं। कालांतर में आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए। पैसे के आकर्षण से नहीं, हिंदी निष्ठा की बलवती प्रेरणा से सुकुलजी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की सेवा से अपने को युक्त किया था। बांग्ला साहित्य के प्रख्यात पंडित डॉ. शशिभूषण दासगुप्त सुकुलजी के कृती शिष्य थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय और अपनी संस्था

'बंगीय हिंदी परिषद' के माध्यम से सुकुलजी ने हिंदी की विकास-यात्रा को गतिरता और समृद्धि दी। परवर्ती काल में प्रो. कल्याणमल लोढ़ा के उद्योग से कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्वतंत्र अस्तित्व-रचना हुई। लोढ़ाजी के निर्देशन में राष्ट्रीय स्तर के शोध-कार्य हुए। अध्यापन और लेखन में समान रूप से सक्रिय पं. विष्णुकांत शास्त्री ने प्रो लोढ़ा के बाद हिंदी विभाग को आचार्य की गरिमा से गौरव-समृद्ध किया। उसकी सारस्वत परंपरा को अपनी साधना से उन्नत किया।

आचार्य गोविंदनारायण मिश्र और महामहोपाध्याय पं. सकलनारायण शर्मा के अनुशीलन-कार्य और विद्या-व्यापार को शांतिनिकेतन के आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उत्कर्ष पर पहुँचाया। द्विवेदीजी की साधना ने आचार्य विधुशेखर भट्टाचार्य और आचार्य क्षितिमोहन सेन जैसे विशिष्ट बंगीय मनीषियों को हिंदी की जाग्रत मनीषा का साक्ष्य दिया था। द्विवेदीजी के समृद्ध व्यक्तित्व के चलते शांतिनिकेतन हिंदी का तीर्थ बन गया था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन और अज्ञेय जैसे लोग प्रायः द्विवेदीजी के अतिथि के रूप में शांतिनिकेतन प्रवास के लिए आते रहते थे। सन् 1941 में द्विवेदीजी के उद्योग से साहित्य-संस्कृति की पत्रिका 'विश्वभारती' का प्रकाशन हुआ था, जिसे गांधीजी ने साहसपूर्ण उपक्रम कहा था।

आजादी के पूर्व बंगाल की हिंदी साधना समृद्धि के शिखर पर थी। निराला का प्रमुख पूर्ववर्ती काव्य बंग-प्रवास-काल में रचित और 'मतवाला' में प्रकाशित हुआ था। सुदर्शन, उग्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी और भगवतीचरण वर्मा हिंदी के शीर्षस्थ कथाशिल्पी थे, जो कलकत्ता-प्रवास-काल में पूरी शक्तिमत्ता से रचनाशील थे। अज्ञेय के प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' का काफी अंश कलकत्ता में ही लिखा गया था। नाट्य संस्थाओं, नाट्य रचनाकारों और नाट्य-शिल्पियों से बंगाल का हिंदी जगत् समृद्ध था।

□

वरिष्ठ साहित्यकार

7 बी, हरिमोहन राय लेन,

कोलकाता-700015 (पश्चिम बंगाल)

हिंदी की धरती, हमारा आसमान

— श्री शशि शेखर

तीस साल पहले मैं पहली बार विदेश गया था। यूरोप की सर्द सरजमीं पर विचरते हुए तीन चीजों के लिए मन भटका-भटका रहता—अपना पानी, अपनी बानी और भोजन-हिंदुस्तानी। जब लौटा तो दिल्ली हवाई अड्डे पर उतरते ही चारों ओर आसभरी नजर घुमाई। उन दिनों जगह-जगह पेयजल के लिए सार्वजनिक नल लगे होते थे। लगभग दौड़ता हुआ उनमें से एक तक पहुँचा और गट-गट कर ढेर-सा पानी हलक के नीचे उतार लिया। तृप्ति के साथ जो पहला विचार कौँधा, वह था—अपने पानी और अपनी बानी की बात ही कुछ और है।

विदेश यात्राओं का यह सिलसिला चलता रहा और इस दौरान बड़े परिवर्तन देखने को मिले। अब अपने देश में कोई यह नहीं कहता कि यह हमारे कुएँ या तालाब का पानी है। देस-परदेस हर जगह बोतलबंद पानी परोसा जाता है। लिहाजा पानी का स्वाद हर जगह एक-सा लगता है। इसी तरह हिंदुस्तानी भोजन अब संसार के हर 'सभ्य' देश में उपलब्ध है। रही बात बानी, यानी अपनी हिंदी की तो उसका झंडा दिन-ब-दिन बुलंद हो रहा है। कैसे?

कुछ किस्से बताता हूँ।

वाशिंगटन स्टेशन पर उतरते ही जब टैक्सीवालों पर नजर डाली तो ऐसा लगा बस धरती की आब-ओ-हवा का फर्क है, तमाम अपने जैसे चेहरे दिख रहे

हैं। एक अधेड़ टैक्सीवाला हमारे साथ हो लिया। क्या बातूनी शख्स था! सारे रास्ते दिल्ली और भारत की बात करता रहा। अमेरिकी नागरिक बन जाने के बावजूद उसकी हिंदुस्तानियत कायम थी। यही नहीं 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' के दफ्तर से लेकर इस महादेश की सड़कों तक आप हिंदी भाषियों को चहलकदमी करते देख सकते हैं। इससे पहले न्यूयॉर्क के मशहूर मैनहट्टन के चार दिन और तीन रात बार-बार 'हिंदुस्तानी' सुनते-बोलते बीते थे। 'हिंदुस्तानी' शब्द इसलिए कर रहा हूँ कि बड़ी संख्या में मौजूद पाकिस्तानी अथवा अफगानी सिख भी मिल जाते हैं, जो हिंदी-उर्दू की मिश्री जैसी मिश्रित जुबान बोलते हैं।

यही हाल यूरोप के लोकप्रिय देशों का है। पेरिस में एक बारमैन मिले। नाम—जान मोहम्मद। जान की मदिरा और भाषा में कौन ज्यादा मदिर था, कह नहीं सकता। उन्होंने कहा कि जनाब कल आपको हिंदुस्तानी चाय पिलाएँगे। अगला दिन खाली था। वे अपने वाहन से लगभग पाँच किलोमीटर दूर एक दुकान पर ले गए। फगवाड़ा के एक सज्जन उसे चलाते थे। इलायची, दालचीनी और अदरक की चाय ने ऐसी लज्जत उस वक्त बख्शी कि दिल खिल उठा। चाय की चुस्कियों के दौरान दो-एक पेरिसवासी वहाँ आए, वे भी 'गरम चाय' के मुरीद थे। उसी वक्त मालूम पड़ा कि बँटवारे के वक्त जान के पिता पाकिस्तान चले गए थे। वहाँ

मन नहीं लगा तो पेरिस आ बसे। जान का कहा याद आता है—‘बराए मेहरबानी हमें हिंदुस्तानी मानिए।’

इंग्लैंड में तो एक मलिक साहब से मुलाकात हुई। 1960 के दशक में वे लंदन के एक उपनगर में आ बसे थे। यहीं उनकी संतानें हुईं। चार लड़कों में से दो की पत्नियाँ तो ‘गोरी मैम’ हैं। समूचा परिवार साथ रहता है। समय काटने की गर्ज से अपने निजी प्रयोग के लिए रखी लिमोजिन कभी-कभी बतौर टैक्सी चलाते थे। हिंदुस्तानियों, खासकर हिंदी अथवा पंजाबी भाषियों के लिए वे खास ‘डिस्काउंट ऑफर’ करते थे। उनकी अंग्रेजी, पंजाबी मिश्रित हिंदी अखरती नहीं, सुकून देती थी।

इसी इंग्लैंड से भारत गए थॉमस बॉबिंगटन मैकाले, जिन्हें लॉर्ड मैकाले के नाम से जाना जाता है, ने कभी अपनी संसद् में कहा था कि हिंदुस्तानी जाहिल रह जाएँगे, अगर हमने उन्हें अंग्रेजी नहीं पढ़ाई। अंग्रेजी पढ़ने से हमारा कितना लाभ हुआ, यह बहस का विषय है पर हिंदी भाषियों ने उसे जरिया बनाकर उनके बीच में जगह अवश्य बना ली।

आज संसार के तमाम देशों में हिंदी के पाठ्यक्रम चलते हैं।

भारतीय मूल के लोग वहीं बसकर हिंदुस्तानी भाषा, संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते हैं। मैं उन्हें भारत का असली राजदूत मानता हूँ।

सिर्फ विदेश की ही क्यों बात करें? खुद अपने देश में चार दशक पहले तक हिंदी के खिलाफ आंदोलन होते थे। आज जब उन प्रदेशों में जाता हूँ, तो अजनबीयत नहीं लगती। वहाँ बड़ी मात्रा में हिंदी भाषी रहते हैं और वहाँ के लोग भी दिल्ली-मुंबई जैसे शहरों में आकर गुजर-बसर करते हैं। एक समय था, जब भाषाएँ दीवार खड़ी करती थीं पर ‘ग्लोबलाइजेशन’ के इस वक्त ने कुछ पुराने संकोचों को दूर कर दिया है। आधुनिक तकनीक ने तो अनुवाद की सुविधा तक उपलब्ध करा दी है। इससे इनसान को दूर बसे इनसानों

के करीब आने का अवसर मिलेगा। हम हिंदीभाषी अपनी विशाल जनसंख्या और लहलहाती नौजवानी की बदौलत इस मामले में अधिक भाग्यशाली साबित हो सकते हैं। इन उदाहरणों के जरिए मैंने बताने की कोशिश की कि हिंदी भाषी होना संकोच नहीं, बल्कि गर्व का विषय है। हमारा कारवाँ लगातार आगे बढ़ रहा है।

यही वह मुकाम है, जहाँ हमें और जिम्मेदार हो जाना चाहिए। यह ठीक है कि हर भाषा का अपना व्याकरण और अपने संस्कार होते हैं। इनकी हर हाल में रक्षा की जानी चाहिए। पर कुछ लोग इनका इस्तेमाल बतौर ढाल करते हैं। शुद्धतावादियों से मुझे गुरेज नहीं पर मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहूँगा कि अगर हमें अपनी हिंदी का विस्तार करना है तो उसके लिए द्वार खोलने होंगे। बंद दरवाजे अगर दूसरों को हमारे पास आने से रोकते हैं तो हमें भी अन्यो के समीप नहीं जाने देते।

यहाँ ‘कैब्रिज’ शब्द कोश का जिक्र करना चाहूँगा। उसके प्रकाशक हर बार अपने संस्करण के साथ घोषणा करते हैं कि हमने अमुक-अमुक भाषाओं से ये शब्द इस बार स्वीकार किए हैं। हिंदी के तमाम शब्द अब अंग्रेजी में ग्राह्य हैं। ‘गुरु’ इनमें से एक है।

याद रखें, भाषाओं के साम्राज्य नहीं, संस्कार होते हैं। इसीलिए उन्हें इस्तेमाल करनेवालों को साम्राज्यवादियों सरीखा व्यवहार शोभा नहीं देता। भाषाओं के पाँव पुरातन परंपराओं में भले ही गहरे तक धँसे हों, पर उन्हें विस्तार के लिए पंख चाहिए। हमारी हिंदी ने यह पंख अपनी शक्ति, सामर्थ्य और सुगम्यता के जरिए हासिल किए हैं। हमें इस प्रक्रिया को और गति देनी चाहिए।

□

बिंदु-बिंदु हिंदी

—प्रो. अशोक चक्रधर

दिल्ली के 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र' और 'हिंदुस्तानी भाषा अकादमी' के संयुक्त तत्वावधान में 'राष्ट्र निर्माण में हिंदी की भूमिका' विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी हुई। मैं अपने सत्र के समय पर पहुँचा था, लेकिन तब तक पिछला सत्र समाप्त नहीं हुआ था। वक्ताओं के रूप में वहाँ मैंने डॉ. गिरीश्वर मिश्र, डॉ. राम मोहन पाठक, डॉ. अवनीश कुमार, श्री अतुल कोठारी, डॉ. धनेश द्विवेदी, डॉ. वेदप्रताप वैदिक, डॉ. प्रमोद कुमार तिवारी, डॉ. नंद किशोर पांडेय, श्री राहुल देव, डॉ. रवि शर्मा, डॉ. सच्चिदानंद जोशी, श्री सुधाकर पाठक, डॉ. रमेश तिवारी को उपस्थित पाया। डॉ. नरेंद्र कोहली, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, श्रीमती चित्रा मुद्गल, डॉ. अच्युतानंद मिश्र, प्रो. सुधीश पचौरी, सुश्री निधि कुलपति और डॉ. उमेश चतुर्वेदी भोजन से पूर्व के सत्रों में अपने वक्तव्य देकर जा चुके थे। जो जा चुके थे उनके विचारों को परवर्ती वक्ता उद्धृत कर रहे थे। 'हिंदी प्रौद्योगिकी' का सत्र अंतिम था, फिर भी सभागार भरा हुआ था। वहाँ महिलाओं की संख्या अधिक थी।

सभागार में प्रवेश के बाद मंच से जो पहला वाक्य मैंने सुना, वह था—'रोना ठीक नहीं है।' ठीक बात थी। हिंदी को लेकर रोना ठीक नहीं है। मुझे

बड़ा अच्छा लगा यह वाक्य, लेकिन ये कमबख्त रोना है कि खत्म ही नहीं होता। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक आह्वान किया था, 'रोवहू सब मिलिकै आवहु भाई। हा हा! भारत दुर्दशा देखि न जाई।' रुदनशीलता हमारे स्वभाव का अंग बन गई है। जो नहीं है, उसकी परेशानी ज्यादा है, और जो है, उसकी जानकारी अल्प से भी किंचित् न्यून है। ये बताकर मैं भी तो रो ही रहा हूँ। मैं रोना नहीं चाहता, पर यह सोचता हूँ कि क्या होना चाहिए!

विभिन्न विद्वानों के वक्तव्यों में आए हुए कुछ निराशावादी प्रश्नवाचक रुदन-बिंदु मैंने नोट किए। कुछ आशावादी प्रसन्न-वदन बिंदु भी थे। दोनों प्रकार के बिंदुओं के जो नोट्स मैंने सभागार में बनाए, आप इन पर विचार कर सकें, इसलिए प्रस्तुत हैं—

निराशावादी रुदन-बिंदु

- हम लोग अपने हस्ताक्षर हिंदी में क्यों नहीं करते?
- हम अपनी भाषा के मूल चरित्र को सुरक्षित क्यों नहीं रखते?
- हिंदी कठिन है, ऐसा बहुत लोग कहते हैं। अंग्रेजी कठिन है, ऐसा किसी को कहते सुना क्या?

- भारतीय भाषाओं का उपयोग देश तोड़ने के लिए क्यों किया जा रहा है।
- हवाई जहाज में किसी के पास हिंदी का समाचार-पत्र हो तो अगल-बगल के लोग पढ़ना तो चाहते हैं पर माँगता कोई नहीं है, शर्म क्यों आती है ?
- पहले अपने घर में तो अंग्रेजी के गढ़ को क्यों नहीं तोड़ते हैं ?
- भाषा का धर्म से संबंध होता है, क्यों नहीं मान लेते ?
- आज अगर देश में सोलह सौ भाषाएँ हैं तो वैदिक काल में सोलह हजार भाषाएँ रही होंगी। इस पार की अलग, उस पार की अलग। किसी ने की है खोज ?
- हिंदी ने संपर्क भाषा और मनोरंजन की भाषा के रूप में खूब प्रगति की, किंतु ज्ञान और रोटी की भाषा हिंदी बन पाई क्या ?
- सम्मान की भाषा हिंदी बन पाई क्या ?
- हिंदी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा क्यों नहीं बन पाई ?
- हिंदी के विद्वान् हिंदी को केवल साहित्य की भाषा मानकर इसके साथ अन्याय क्यों कर रहे हैं ?
- हिंदी दुनिया में दूसरे नंबर की भाषा है। सम्मान की दृष्टि से किस नंबर पर है ?
- प्रौद्योगिकी किस वर्ग के लिए है ?
- उन्नत भाषाओं में हजारों कीबोर्ड हैं, हिंदी में केवल दो।
- हिंदी रोमन में क्यों लिखी जा रही है ?
- मेरे बाद हिंदी में हिंदी लिखनेवाली पीढ़ी शायद समाप्त हो जाएगी।
- हिंदी को सभी सॉफ्टवेयर सपोर्ट क्यों नहीं करते ?
- अभी तक ऐसा कोई कंप्यूटर क्यों नहीं

- बना, जो केवल हिंदी में काम करता हो।
- प्रौद्योगिकी का भी एक वर्गीय चरित्र होता है। यह पूँजी से संचालित होती है।
- हिंदी का मतलब केवल साहित्य समझ लिया, हिंदी का मतलब ज्ञान क्यों नहीं है ?
- हर साल नया मोबाइल आ जाता है, पुराना बेकार हो जाता है। वाह री प्रौद्योगिकी !
- प्रौद्योगिकी पुरुषों के लिए सुलभ है, स्त्रियों के लिए जटिल है।
- प्रौद्योगिकी हमारा साधन है, साध्य समझने की भूल क्यों हो रही है ?
- प्रौद्योगिकी हमें संस्कृति से दूर ले जा रही है। मोबाइल ने हमारे रिश्तों को तोड़ा है।
- प्रौद्योगिकी अभी तो लुभा रही है, लेकिन पचास साल बाद क्या परिणाम होंगे, सोचा है ?
- मानें या न मानें, अंग्रेजी अभी भी हमारी राजभाषा है।
- अब तक भारत में पैंतालीस लोगों को भारत-रत्न मिला, किसी भी भाषाविद् या साहित्यकार को क्यों नहीं मिला ?
- आजादी के बाद हमारी शिक्षा नीति ने तय कर लिया कि हम केवल अंग्रेजी में ही शिक्षा दे सकते हैं। ऐसा क्यों हुआ ?
- हिंदी और अंग्रेजी के सवाल को जान-बूझकर उलझाया क्यों जाता है ?
- अंग्रेजी भाषा और साहित्य के रूप में बहुत अच्छी है, लेकिन उसे अपने सारे ज्ञान का माध्यम क्यों बनाया जाए ?
- हिंदी को ज्ञान से दूर रखने की उलटबाँसी को किसने बनाया है ?
- बहुभाषिकता के मामले में सबसे कमजोर हिंदीभाषी ही क्यों हैं ?
- एक दवा सर्पगंधा से बनी, सर्पेटाइन नाम

से बिकती है, हमारी उपलब्धियाँ रेखांकित क्यों नहीं होतीं ?

—क्यों संस्कृत और पाली की जगह अरबी और फारसी आ गई ?

—कोई भी भाषा बोलनेवालों की संख्या के बल पर चली है क्या ?

—अनुवाद हमारे देश में सबसे उपेक्षित चीज क्यों है ?

● हिंदी की बात करें तो भारतीय भाषाओं के साथ जोड़कर करें।

● भारतीय भाषाएँ आगे बढ़ेंगी तो हिंदी आगे बढ़ेगी।

● हिंदी देश की सामूहिक आवाज है।

● हिंदी केवल भाषा का नाम नहीं है, यह इस देश की प्राणवायु है।

● विविध संस्कृतियों को जोड़नेवाले पुल का नाम है हिंदी।

● तमाम लोक भाषाएँ हिंदी की जड़ें हैं। जड़ें जितनी मजबूत होंगी, हिंदी भी उतनी ही मजबूत होगी।

● शब्द का टोटा पड़ेगा तो लोक भाषाएँ ही हिंदी को जिंदा रखेंगी।

● शिक्षा में क्रांति अपनी भाषा के प्रयोग से आएगी।

—प्रौद्योगिकी का विकास हमारे यहाँ क्यों नहीं हुआ, उन्नत देशों में क्यों हुआ ?

—पिछले 70 वर्षों में हमने अपनी पढ़ाई अपनी भाषा में क्यों नहीं की ?

—प्रौद्योगिकी भले ही हमारे पास पड़ी रहे अगर उसका उपयोग हमारी भाषा में ज्ञान के लिए नहीं है, तो फिर वह किस मतलब की ?

—भाषा खोखली होती जा रही है। प्रौद्योगिकी

के कारण उससे अर्थ और भाव खत्म होते जा रहे हैं।

—हिंदी को लेकर हीनताबोध बरकरार क्यों है ?

—प्रबुद्ध लोगों के बीच हिंदी बोलने की हिम्मत क्यों नहीं है ?

—डिफिकल्टियाँ, प्रौब्लमैटिक जैसे विजातीय प्रभाव हिंदी में क्यों बढ़ रहे हैं ?

—ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिम की नकल के अलावा क्या किया है ?

—मुगल काल में हमारे अनुसंधान केंद्र और विश्वविद्यालय बंद हो गए, सोचा है क्यों हुए ?

—क्या चार सौ साल पहले आज के उन्नत देश ज्ञान-विज्ञान में भारत से आगे थे ?

—भारत में सर्वशिक्षा का अभाव है, आज जो अशिक्षा है, उसका कारण अंग्रेजी है।

—अपनी भाषाओं में हमारा मूल चिंतन नष्ट क्यों हो गया ?

—हमारी सरकारें हिंदी के लिए कुछ क्यों नहीं करतीं ?

—संसद में कानून अभी तक हिंदी में क्यों नहीं बनते ?

—न्यायालय में अभी तक अपनी भाषाओं में न्याय क्यों नहीं मिलता ?

आशावादी प्रसन्न-वदन बिंदु

—कंप्यूटर की अपनी कोई भाषा नहीं होती, वह भाषाओं की सेवा करता है।

—हिंदी में जैसा बोलते हैं, वैसा लिखते हैं।

—हिंदीतर राज्यों में हिंदी जानने से अब व्यक्ति का महत्त्व बढ़ जाता है।

—हम देश को जोड़ने के लिए भारतीय भाषाओं का उपयोग कर रहे हैं।

—हिंदी की बात करें तो भारतीय भाषाओं के

- साथ जोड़कर करें।
- भारतीय भाषाएँ आगे बढ़ेंगी तो हिंदी आगे बढ़ेगी।
 - स्वाभिमान जग गया तो दुनिया हिंदी का इंतजार करेगी।
 - भाषा का क्षेत्र से संबंध होता है। अगर मुहम्मद साहब का जन्म अवध में हुआ होता तो कुरान शरीफ की भाषा अवधी होती और अगर महाकवि तुलसीदास अरब में पैदा हुए होते तो रामचरितमानस की भाषा अरबी होती।
 - हिंदी देश की सामूहिक आवाज है।
 - हिंदी केवल भाषा का नाम नहीं है, यह इस देश की प्राणवायु है।
 - विविध संस्कृतियों को जोड़नेवाले पुल का नाम है हिंदी।
 - तमाम लोक भाषाएँ हिंदी की जड़ें हैं। जड़ें जितनी मजबूत होंगी, हिंदी भी उतनी ही मजबूत होगी।
 - शब्द का टोटा पड़ेगा तो लोक भाषाएँ ही हिंदी को जिंदा रखेंगी।
 - द्विभाषी होना समय की जरूरत है।
 - शिक्षा में क्रांति अपनी भाषा के प्रयोग से आएगी।
 - पहले भी लोग बहुभाषी होते थे। शंकराचार्य मलयालम भाषी थे।
 - भाषा विजातीय तत्वों से नहीं, सजातीय तत्वों से समृद्ध होती है।
 - आज कितने वर्षों बाद हिंदी के बारे में इतने अच्छे विचार सामने आ रहे हैं।
 - भाषा का बड़ा काम ज्ञान और विज्ञान की पहुँच बढ़ाना है।
 - हजार साल पहले रोम की सुंदरियाँ भारतीय कपड़ों के लिए भारतीय व्यापारियों की

प्रतीक्षा करती थीं।

- दुनिया की कोई महाशक्ति ऐसी नहीं देखी, जो किसी विदेशी भाषा के बल पर महाशक्ति बनी हो।
- अटलजी! आपको प्रधानमंत्री किसने बनाया था? हिंदी ने!
- मैंने जीवन में एक बार भी अंग्रेजी में दस्तखत नहीं किए।

नकारात्मक या सकारात्मक, नकारात्मकता में सकारात्मक या सकारात्मकता में नकारात्मक, ये सारे बिंदु उसी एक ही संगोष्ठी के ही हैं। ऐसा बताने का आशय यह है कि बिंदु और भी बहुत सारे हैं और आपके पास भी अनेक हो सकते हैं। संगोष्ठियों में प्रायः होता है कि वक्ताओं के विचार आपके मन में नए प्रश्नों को जन्म देते हैं और यह भी होता है कि अनेक सोए पड़े प्रश्नों को उत्तर मिल जाते हैं। वहाँ ये नोट्स मैंने इस कारण लिये थे कि इनके आधार पर अपनी बात कह सकूँ। विरोध या समर्थन से अलग हटकर मैंने सभागार में अपनी बात रखी भी थी। अत्यंत संक्षेप में अपना पक्ष रखूँ तो कह सकता हूँ कि भाषा-प्रौद्योगिकी का क्षेत्र ऐसा है, जहाँ हर प्रश्न का उत्तर लगभग संभव है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का भविष्य उज्ज्वल करने में भाषा-प्रौद्योगिकी अपनी सकारात्मक सकर्मकता दिखा रही है। फिर भी, अपनी बात को एक दूसरे लेख के रूप में पुनर्व्यवस्थित करना चाहता हूँ। तब तक आप संगोष्ठी के प्रश्नों, मंतव्यों और निदानों पर पुनर्विचार और चिंतन करिए। फिलहाल मुझे बलबीर सिंह रंगजी का एक शेर याद आ रहा है—

बहुत से प्रश्न ऐसे हैं, जो सुलझाए नहीं जाते,
 मगर उत्तर भी ऐसे हैं, जो बतलाए नहीं जाते।

□

हिंदी और उसकी चुनौतियाँ

— श्री जगदीश उपासने

हिंदी का परिवार आज दुनिया में दूसरे स्थान पर है। चीन की मंदारिन भाषा के बाद हिंदी ही है, जिसे सबसे अधिक लोग बोलते हैं। भारत में हिंदी बोलने और समझनेवालों की संख्या लगभग 70 करोड़ है। आज भारत विश्व पटल पर जिस तरह एक शक्ति के रूप में स्थापित हो रहा है, उससे उसकी भाषा हिंदी का प्रभाव और आकर्षण भी बढ़ रहा है। वहीं सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने हिंदी के प्रयोग को तीव्र गति प्रदान की है। आज हिंदी न केवल भारत में अपितु विश्व में संपर्क, संवाद, विज्ञापन और मनोरंजन की प्रमुख भाषा बन गई है। विदेशों में बसे भारतीयों को जोड़ने का काम हिंदी ही करती है। यह सब होने के बाद भी, जब हिंदी की स्थिति और उसकी चुनौतियों के संबंध में विचार करते हैं तो हिंदी का यथार्थ हमारे सामने आता है। अपार संभावनाओं के बाद भी अपनी ही भूमि पर हिंदी उपेक्षा की शिकार है। एक अनुमान है कि भारत में सिर्फ अंग्रेजी का प्रयोग करनेवालों की संख्या दो प्रतिशत से अधिक नहीं है। वहीं अंग्रेजी को समझनेवालों की बात करें, तो यह संख्या अधिकतम 15 प्रतिशत मानी जाती है। इसके बावजूद अंग्रेजी हिंदी सहित अन्य सभी भारतीय भाषाओं पर हावी है। नए भारत में हिंदी के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ हैं, किंतु ये चुनौतियाँ अबूझ नहीं हैं।

चुनौतियों का पहाड़ अवश्य है, किंतु यह अलंघ्य नहीं है। यह संभव है कि हम योजनापूर्वक कुछ कदम उठाएँ तो हिंदी को शीर्ष स्थान दिला सकते हैं। हिंदी के स्वरूप और उसकी अस्मिता को बचा सकते हैं।

हिंदी के संदर्भ में आज सबसे पहली और बड़ी चुनौती 'भाषा की शुद्धता' है। यह उचित ही है कि जिस भाषा में प्रवाह होता है, वह सदानीरा की तरह कल-कल बहती रहती है। दूसरी भाषा के शब्दों को स्थान देना, एक मजबूत पाचनशक्ति वाली भाषा की पहचान है। हिंदी में यह सामर्थ्य है। इसलिए दूसरी भाषाओं के अनेक शब्दों हिंदी के आँचल में इतना अधिक स्नेह पाया कि आज सामान्य व्यक्ति को यह पहचान करना कठिन हो जाता है कि वह जितनी हिंदी बोलता है, उसमें बाहरी भाषाओं के कितने शब्द हैं? परंतु पिछले कुछ समय में जिस प्रकार हमने लापरवाहीपूर्वक अंग्रेजी के शब्दों को जबरन हिंदी में ढूँसा है, तब से भाषा की शुद्धता का प्रश्न बड़ा हो गया है। भाषा विद्वानों ने अत्यधिक अंग्रेजी शब्दों से भरी हुई हिंदी को 'हिंग्लिश' नाम दिया है अर्थात् यह हिंदी नहीं बची, बल्कि एक नई भाषा बन गई है। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल के एक शोध के मुताबिक हिंदी में अंग्रेजी शब्दों के

प्रयोग की गति तीव्रता से बढ़ रही है। कई ऐसे शब्दों का अनावश्यक प्रयोग हो रहा है, जिनके लिए हिंदी में अधिक प्रभावी शब्द उपलब्ध हैं। यथा—समाचार-पत्रों में 'इंडिपेंडेंस डे' क्यों लिखा जाता है, जबकि हिंदी में 'स्वतंत्रता दिवस' जैसा शब्द उपलब्ध है। भाषा किसी भी समाज और संस्कृति की पहचान होती है। अपितु भाषा अपने समाज और संस्कृति की प्राणवायु होती है। भाषा की स्वयं की रक्षा के लिए ही नहीं, अपितु उससे संबंधित समाज और संस्कृति की सुरक्षा के लिए भाषा की शुद्धता के प्रयास करने चाहिए। हिंदी के परिवार में सभी भारतीय भाषाएँ आती हैं। लोक भाषाओं का भी एक समृद्ध संसार भारत में है। हमें हिंदी के शब्द भंडार में आवश्यकतानुसार भारतीय भाषाओं के शब्द सम्मिलित करना चाहिए।

एक ओर तकनीक ने हिंदी के प्रयोग को गति दी है तो वहीं उसने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी हैं। यूनिकोड फॉण्ट में हिंदी के कई शब्द उसके स्वाभाविक और सही रूप में लिखना अभी संभव नहीं है। हालाँकि इस संबंध में लगातार काम हो रहा है। यूनिकोड फॉण्ट के उपयोग से हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाएँ आसानी से अंतरजाल (इंटरनेट) में अधिकाधिक उपयोग में लाई जा रही हैं। कंप्यूटर एवं नवीनतम स्मार्ट मोबाइल फोन में भी हिंदी का उपयोग बढ़ रहा है और युवा वर्ग हिंदी को एक नए रूप में उपयोग कर रहा है। ब्लॉग, फेसबुक, ट्विटर पर आज हिंदी में लिखना सक्षम हुआ है। अपने आर्थिक लाभ को ध्यान में रखकर भारतीय उपभोक्ताओं में अपनी पैठ बनाने के लिए गूगल और फेसबुक सहित अन्य सेवा प्रदाताओं ने ऐसे सॉफ्टवेयर और प्रोग्राम बनाए हैं, जिनसे हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहन मिला है। बाजार को हिंदी की ताकत पता है। इसलिए हिंदी को ध्यान में रखकर वह लगातार नवाचार एवं नवोन्मेष की दिशा

में सक्रिय है। आज संचार की दुनिया का सबसे प्रभावी उपकरण मोबाइल फोन है। हथेली में समा जानेवाले मोबाइल फोन में हिंदी लिखना-पढ़ना ही संभव नहीं हुआ है, बल्कि वह हिंदी में दिए गए मौखिक निर्देशों से भी संचालित होने में सक्षम है। यह प्रयोग देख कर आशान्वित हुआ जा सकता है कि प्रौद्योगिकी के कारण जो चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन्हें दूर करने में प्रौद्योगिकी स्वयं सक्षम है। किंतु उसके लिए आवश्यक है कि जिस प्रकार बाजार सजग है, हिंदी प्रेमी भी उसी तरह जागरूक और सक्रिय हो जाएँ।

मीडिया और विज्ञापन ने हिंदी को विस्तार दिया है, किंतु उसके स्वरूप को हानि भी पहुँचाई है। आज हिंदी के स्वरूप और उसमें अंग्रेजी शब्दों की अनावश्यक उपस्थिति को लेकर जो चिंता है, उसका बड़ा कारण समाचार माध्यम, विज्ञापन और मनोरंजन जगत् ही है। संचार और विज्ञापन के क्षेत्र में सक्रिय लोग अंग्रेजी के मोह से ग्रस्त अवश्य हैं, किंतु वह भली प्रकार जानते हैं कि 85 प्रतिशत से अधिक भारत के दिल तक उतरने में अंग्रेजी समर्थ नहीं। इसलिए भारत में मीडिया के सबसे बड़े संस्थान हिंदी के हैं। हिंदी के समाचार-पत्रों और समाचार वाहिनियों (न्यूज एजेंसीज्) का प्रसार अधिक है। अंग्रेजी से अधिक विज्ञापन हिंदी और भारतीय भाषाओं में ही बन रहे हैं। दुनियाभर में बन रही फिल्मों में बड़ा हिस्सा हिंदी फिल्मों का है, जो भारत के बाहर भी देखी जा रही हैं। संचार के माध्यमों ने हिंदी को विस्तार अवश्य दिया है, परंतु यह भी देखना चाहिए कि किस प्रकार की हिंदी को? आज संचार माध्यम से होकर जो हिंदी लोगों तक पहुँच रही है, क्या वास्तव में वह हिंदी ही है? हिंदी को 'हिंग्लिश' बनाने का समूचा दोष अब तक हम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर मढ़ते आए हैं। परंतु अब समाचार पत्र-पत्रिकाएँ भी भाषा में घालमेल



करने में पीछे नहीं हैं। वेब आधारित मीडिया भाषा को भ्रष्ट करने में सबसे आगे है। कई समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों के शीर्षक पढ़कर यह समझना मुश्किल हो जाता है कि यह हिंदी में है या अंग्रेजी में। हिंदी में अंग्रेजी के शब्द ठूँसे गए हैं या फिर देवनागरी में लिखी अंग्रेजी में हिंदी के शब्द शामिल किए गए हैं ?

पत्रकारिता के प्रारंभिक समय में अधिकतर संपादक साहित्यिक पृष्ठभूमि के थे और उनकी रुचि सामाजिक-सांस्कृतिक हस्तक्षेप में थी। भाषा की दृष्टि से वह सचेत रहते थे और उनका प्रयास रहता था कि व्याकरण और शब्द चयन की दृष्टि से अनुशासन बरता जाए। वह ऐसा सोचते थे कि समाचार, पत्र-पत्रिका पाठकों की रुचि को परिष्कृत करते हैं। समाज का निर्माण उनका

लक्ष्य था। उनके सामने बाजार के प्रश्न बहुत महत्व के नहीं थे, जबकि आज संपादक के दृष्टिकोण से ये सब प्राथमिकताएँ गायब हैं। उसकी प्राथमिकता बाजार के प्रश्न हो गए हैं। समाचार माध्यमों में आज भाषा और व्याकरण की दृष्टि से सतर्कता कम हो गई है, जिसके कारण वर्तनी और वाक्य विन्यास में त्रुटियाँ हो रही हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि भाषा समाज के गौरव का विषय है। प्रत्येक स्वाभिमानी समाज अपनी भाषा के सम्मान और शुद्धता को बचाए रखता है। हिंदी भाषी जनों और

पूरे भारत की अस्मिता एवं विकास के लिए हिंदी मीडिया की जिम्मेदारी को नकारा नहीं जा सकता। मीडिया की हिंदी के संबंध में कोई आचार संहिता या मानक शब्दकोश बनाने की आवश्यकता है। इसके साथ ही एक मानक वर्तनी (स्टाइल बुक) की आवश्यकता भी है। वर्तमान में अभी स्टाइल

बुक का अभाव दिखाई देता है। एक तो शब्दों को अलग-अलग ढंग से लिखा जा रहा है, यथा कहीं शकर लिखा जा रहा है तो कहीं शक्कर। 'इ' और 'ई' का भेद ही समाप्त कर दिया गया है। 'ऋ' का चलन भी लगभग समाप्त कर दिया गया है—अब 'ऋषि' नहीं 'रिषी' लिखा जा रहा है। इसी प्रकार कार्यालयों और संवैधानिक व्यवस्थाओं के लिए अलग-अलग शब्द प्रचलित हैं, यथा—निदेशालय और सचिवालय। वर्तनी और

शब्द की एकरूपता नहीं होने के कारण भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है और सामान्य व्यक्ति अंग्रेजी शब्दों का उपयोग प्रारंभ कर देता है।

हिंदी को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहली आवश्यकता है कि शिक्षा में भाषा को लेकर कोई राष्ट्रीय नीति बने। आज स्थिति यह है कि समाज से लेकर प्रशासनिक व्यवस्था तक सब शिक्षा में बढ़ते 'अंग्रेजी माध्यम' के दुष्प्रभाव के प्रति उदासीन हैं। प्राथमिक स्तर पर हिंदी माध्यम में पढ़ाई बहुत ही कम स्थानों पर बची हुई है। जबकि भाषाविद्

और शिक्षाविद्, दोनों ही मानते हैं कि बच्चे अपनी मातृभाषा में अधिक अच्छे से समझ-सीख पाते हैं। महामना मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अंबेडकर, रवींद्रनाथ ठाकुर, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे महापुरुषों ने भी मातृभाषा में शिक्षा पर जोर दिया है। भारत में समय-समय पर गठित शिक्षा आयोगों—राधाकृष्णन आयोग और कोठारी आयोग—सहित अन्य आयोगों ने भी मातृभाषा में ही शिक्षा की अनुशंसा की है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा ने भी प्रस्ताव पास कर मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया है। संघ ने अपने प्रस्ताव में कहा है कि प्रारंभिक शिक्षण किसी विदेशी भाषा में करने पर जहाँ व्यक्ति अपने परिवेश, परंपरा, संस्कृति और जीवन मूल्यों से कटता है, वहीं पूर्वजों से प्राप्त होनेवाले ज्ञान, शास्त्र, साहित्य आदि से अनभिज्ञ रहकर अपनी पहचान खो देता है। संघ दुनिया का सबसे बड़ा सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन है। समाज से उसका सीधा जुड़ाव है। निश्चित ही समाज के साथ अपने सतत संपर्क से उसे भी यह अनुभव आया होगा कि अंग्रेजी माध्यम से पढ़ रही आज की पीढ़ी कहीं-न-कहीं अपनी जड़ों से कट रही है। प्राथमिक स्तर के बच्चों के अध्यापन की भाषा वही होनी चाहिए, जो उसके घर पर बोली जाती है। किंतु हो इसके उलट रहा है। हम देखते हैं कि पिछले वर्षों में निरंतर हिंदी माध्यम के विद्यालय बंद हुए हैं और अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय बढ़े हैं। इसका एक ही कारण है कि हिंदी माध्यम द्वारा प्राथमिक और उच्च स्तरीय शिक्षा के आयोजन का प्रयोग अब तक के इतिहास में कभी भी पूरे मन से नहीं किया गया।

हिंदी भाषा को एक अलग विषय के रूप में पढ़ाने भर से उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। आवश्यकता है कि हिंदी को अनिवार्य किया जाए, विशेषकर हिंदी भाषी क्षेत्रों में यह कदम आसानी

के साथ उठाया जा सकता है। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश सहित अन्य हिंदी भाषी राज्यों को अपने यहाँ 'त्रिभाषा सूत्र' को सख्ती से लागू करना चाहिए। दौलत सिंह कोठारी के नेतृत्व में बने प्रथम शिक्षा आयोग द्वारा सुझाए गए इस सूत्र के अनुसार देश के स्कूलों में तीन भाषाओं को पढ़ाया जाना था। इन तीन भाषाओं में मातृभाषा, अंग्रेजी और दूसरे राज्य की कोई एक भाषा पढ़ाने का सुझाव दिया गया था। इसके साथ ही केंद्र और राज्य सरकारों को दसवीं के बजाय 12वीं कक्षा तक हिंदी भाषा और साहित्य को अनिवार्य भाषा बनाना चाहिए। मौजूदा नीति में कई विसंगतियाँ हैं, जिसके चलते अनेक बच्चे अपनी मातृभाषा पढ़ने के बजाय विदेशी भाषा पढ़ने को महत्त्व देते हैं। ऐसी प्रवृत्ति को दूर करना होगा, नहीं तो बच्चे अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच तो सीख लेंगे पर हिंदी से दूर हो जाएँगे। उच्च शिक्षा में भी प्रत्येक पाठ्यक्रम के साथ हिंदी एक विषय के रूप में अनिवार्य रूप से पढ़ाने की नीति बनानी होगी। उच्च शिक्षा में हिंदी भाषा में मौलिक पाठ्यपुस्तकों का भारी अभाव है। महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालयीन विद्यार्थियों की मजबूरी बन गई है अंग्रेजी का पिछलग्गू बनना। विज्ञान और तकनीकी शिक्षा में हिंदी में जो पुस्तकें उपलब्ध हैं, वे अधिकांश अंग्रेजी से अनूदित हैं। अनुवाद की भाषा होकर हिंदी की साख कम हुई है। उच्च शिक्षा में हिंदी दोयम दर्जे की भाषा होकर रह गई है। विद्यार्थी के मन में यह बात गहरे बैठ जाती है कि समूचा ज्ञान अंग्रेजी भाषा में है। इस शिक्षा व्यवस्था में हिंदी माध्यम का विद्यार्थी अपने सोचने, समझने, रचने और उसे अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया में भी पिछड़ जाते हैं। आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक एक ऐसी व्यवस्था बनाई जाए कि हिंदी की शक्ति और उसका सम्मान



तो बढ़े ही, साथ में विद्यार्थी को कहीं कोई कठिनाई न आए। अनुसंधान में भी हिंदी भाषा को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। अनुसंधान का क्षेत्र ऐसा है, जहाँ अंग्रेजी का एकछत्र राज है। हिंदी में जो शोध कार्य हो रहे हैं, उनकी गुणवत्ता स्तरीय नहीं है या हम यह भी कह सकते हैं कि उनका मूल्यांकन अंग्रेजी में लिखे गए शोध प्रबंध की तुलना में कमतर किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी के प्रति आए दुराग्रह और भ्रम को हटाने की भी आवश्यकता है। जन-सामान्य के अंतर्मुख में यह बात गहरे बैठ गई है कि अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाई करने पर ही अच्छी एवं उच्च वेतनमान की नौकरी प्राप्त होती है।

हिंदी के प्रभाव को देखकर दुनिया के विभिन्न विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन कराया जा रहा है। पिछले कुछ समय में हिंदी सीखनेवाले विदेशियों की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है। एक जानकारी के अनुसार आज दुनिया के 40 से अधिक देश और उनकी 600 से अधिक संस्थाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। दुनिया के कई महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में हिंदी की पीठ बनाई गई हैं। भारत से बाहर जिन देशों में हिंदी का बोलने, लिखने-पढ़ने, अध्ययन और अध्यापन की दृष्टि से प्रयोग होता है, उन्हें चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. जहाँ भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं, जैसे—पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, म्याँमार, श्रीलंका, मालदीव, मॉरीशस, सूरीनाम, फीजी, गयाना, त्रिनिदाद और टोबेगो आदि।
2. भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिण-पूर्वी एशियाई देश, जैसे—इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन, मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि।
3. जहाँ हिंदी को विश्व की आधुनिक भाषा

के रूप में पढ़ाया जाता है, जैसे—अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जर्मनी, पोलैंड, कोरिया, रूस, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप के देश।

4. अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे—संयुक्त अरब अमीरात (दुबई), अफगानिस्तान, कतर, मिस्र, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि।

यह जानकारी सुखद है, किंतु हिंदी सिखाने के लिए सरल भाषा में पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। यदि सरल भाषा में हिंदी सिखाने की पुस्तकों की रचना कर ली जाए, तब दुनिया में हिंदी सीखनेवाले लोगों की संख्या और अधिक बढ़ सकती है। जैसे जापानी और चीनी भाषा की लिपि चित्रमय लिपि है। उसके शब्दचित्रों की संख्या लगभग दो हजार है। जापानी व्यक्ति को हिंदी और हिंदी व्यक्ति को जापानी या चीनी भाषा सीखने के लिए शब्दचित्रों को स्मरण रखना कठिन कार्य है। आज जापान और चीन के लोग अपनी भाषा के लिए लिपि की खोज कर रहे हैं। हिंदी के विद्वान् क्यों नहीं इस दिशा में आगे बढ़ते?

अनुवाद के प्रचलित तरीकों ने भी हिंदी के प्रति लोगों में अरुचि पैदा की है। दूसरी भाषाओं से जो भी अनुवाद हिंदी में हो रहा है, वह मशीनी अधिक प्रतीत होता है। अनुवाद में भाषा और भाव का प्रवाह दिखता ही नहीं है। सरकारी स्तर पर होनेवाले अनुवाद की स्थिति ऐसी है कि उसने 'अनूदित हिंदी सामग्री' को अबूझ बना दिया है।

हिंदी लंबे समय से संपूर्ण देश में जन-जन के पारस्परिक संपर्क की भाषा रही है। दक्षिण भारत के आचार्यों-वल्लभाचार्य, रामानुज, रामानंद आदि ने भी इसी भाषा के माध्यम से अपने मतों का प्रचार किया था। अहिंदी भाषी राज्यों के भक्त-संत कवियों (जैसे—असम के शंकरदेव, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर व

नामदेव, गुजरात के नरसी मेहता, बंगाल के चैतन्य आदि) ने इसी भाषा को अपने धर्म और साहित्य का माध्यम बनाया था। यही कारण था कि जनता और सरकार के बीच संवाद में फारसी या अंग्रेजी के माध्यम से दिक्कतें पेश आईं तो कंपनी सरकार ने फोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदुस्तानी विभाग खोलकर अधिकारियों को हिंदी सिखाने की व्यवस्था की थी। यहाँ से हिंदी पढ़े हुए अधिकारियों ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उसका प्रत्यक्ष लाभ देकर मुक्त कंठ से हिंदी को सराहा। सी.टी. मेटकाफ ने 1806 में अपने शिक्षा गुरु जॉन गिलक्राइस्ट को लिखा—‘भारत के जिस भाग में भी मुझे काम करना पड़ा है, कलकत्ता से लेकर लाहौर तक, कुमाऊँ के पहाड़ों से लेकर नर्मदा नदी तक मैंने उस भाषा का आम व्यवहार देखा है, जिसकी शिक्षा आपने मुझे दी है। मैं कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक या जावा से सिंधु तक इस विश्वास से यात्रा करने की हिम्मत कर सकता हूँ कि मुझे हर जगह ऐसे लोग मिल जाएँगे, जो हिंदुस्तानी बोल लेते होंगे।’ वहीं टॉमस रोबक ने 1807 ई. में लिखा था कि जैसे इंग्लैंड जानेवाले को लैटिन सेक्सन या फ्रेंच के बदले अंग्रेजी सीखनी चाहिए, वैसे ही भारत आनेवाले को अरबी-फारसी के बदले हिंदुस्तानी सीखनी चाहिए। जबकि विलियम केरी ने 1816 ई. में लिखा था—‘हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं बल्कि देश में सर्वत्र बोली जानेवाली भाषा है।’ किंतु भाषा के नाम पर भारत में जो राजनीति की गई, उसने हिंदी के प्रति कुछ राज्यों में दुराग्रह पैदा कर दिया। आवश्यकता है कि हम सब मिलकर भारतीय भाषाओं के बीच स्वाभाविक प्रेम को फिर से जगाएँ। भारत को एकसूत्र में जोड़ने का कार्य हिंदी ही करती है। हिंदी और भारतीय भाषाओं को शीर्ष स्थान देने की शुरुआत हमें घर से करनी चाहिए। हम जब भी घर में या एक ही भाषा-भाषी समुदाय के बीच हों, तब अपनी मातृभाषा में संवाद करें। जब

हम विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के बीच हों, तब हमें अंग्रेजी नहीं बल्कि हिंदी का उपयोग करना चाहिए। जबकि देखने में आ रहा है कि हम दूसरी भाषा के व्यक्ति से अंग्रेजी में संवाद करते हैं। यह प्रवृत्ति हमें छोड़ने चाहिए। इसी प्रकार भारत के बाहर जहाँ भी भारतीय नागरिक रह रहे हैं, उन्हें आपसी संवाद के लिए हिंदी को सेतु बनाना चाहिए। विदेश में बसे भारतीय नागरिकों को जोड़ने और संपर्कित रखने में हिंदी से अच्छी भूमिका कोई और भाषा नहीं निभा सकती। इसलिए आप्रवासी भारतीय नागरिकों को आपसी संवाद, सम्मेलन और आयोजनों में अपनी मातृभाषा और हिंदी को प्राथमिकता देना चाहिए।

हिंदी की चुनौतियाँ आज अलंघ्य पहाड़ की तरह इसलिए दिखाई दे रही हैं, जबकि यह कृत्रिम पहाड़ है, जिसे बहुत सामान्य से प्रयासों से ढहाया जा सकता है। हिंदी को प्रतिष्ठा देने और उसे सशक्त करने के लिए अब तक सरकारी स्तर पर जितने भी प्रयास किए गए, वह पूरे मन से नहीं थे। सभी प्रयासों में खानापूर्ति थी। भविष्य में सरकार को सुनियोजित नीति बनानी चाहिए और उसे पूरे मन से लागू करना चाहिए। हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए अब तक जितने भी ठोस और सकारात्मक प्रयास हुए हैं, उनके पीछे हिंदी सेवी संस्थाएँ और व्यक्तिगत प्रयास अधिक हैं। सामाजिक संगठनों ने हिंदी को ताकत दी है। हिंदी के संदर्भ में कोई भी नीति बनाते समय सरकार को सामाजिक संगठनों को सम्मिलित करने या उनका सहयोग लेने पर भी विचार करना चाहिए। सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन हिंदी को विश्वभाषा बनाने में सरकार की बहुत मदद कर सकते हैं।

□

कुलपति

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार
 विश्वविद्यालय
 भोपाल (म.प्र.)

दूसरी भाषाओं को समाहित कर हिंदी बनती जा रही है सभी की अनिवार्यता

— श्री हेमंत शर्मा

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है। अभिव्यक्ति तब पूरी होती है, जब बोलनेवाला जो कहे वही सुननेवाला समझे। भाषा वक्ता और श्रोता के बीच का सेतु है। इस सेतु में अगर कोई खोट आ गया तो अभिव्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त होगी। यानी भाषा की पहली और अनिवार्य शर्त है उसकी संप्रेषणीयता। आपको अगर अपनी अभिव्यक्ति को विस्तार देना है तो भाषा को सर्वग्राही बनाना पड़ेगा। दूसरी भाषा और बोलियों से शब्द उदारतापूर्वक लेने पड़ेंगे। यही वजह है कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक हिंदी अभिव्यक्ति का जरिया बनने लगी है। जिसे आमजन तक पहुँचना है, उसे हिंदी के पास आना ही होगा। चाहे वो टेलीविजन चैनल हों, अंग्रेजीदाँ राजनेता हो, उत्पाद बेचने की प्रतिस्पर्धा हो या सोशल मीडिया।

गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि सुर नर मुनि की यह सब रीति, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति। भाषा भी इससे अछूती नहीं है। अगर वह आपकी स्वार्थ सिद्धि का जरिया है, आपके विकास और पहचान का जरिया है तो सब उसे आसानी से अपनाएँगे। अगर वाकई उस भाषा से आपका हित सधेगा तो आप उसकी ग्रहणशीलता और विस्तार को लेकर अधिक संवेदनशील होंगे। उसे अपनाने में जरा

भी नहीं हिचकेंगे। ज्यादा वक्त नहीं बीता। शीतल पेय बनानेवाली एक कंपनी ने अपने प्रचार के सूत्रवाक्य में ‘रिश्तों’ को जगह दी। मिनरल वाटर बनानेवाली एक अग्रणी कंपनी ने अपने ब्रांड का नाम हिंदी में लिखना शुरू किया। देश में अंग्रेजी के एक बड़े समाचार चैनल पर एक घंटे हिंदी में खबरें दिखाई जाती हैं। ऐसे तमाम उदाहरण हैं, जो इस बात का प्रतीक हैं कि हिंदी की अनिवार्यता अब तेजी से बढ़ी है। हिंदी भाषा का बाजार पर दबाव बढ़ा है।

देखा जाए तो प्रतीकों से ही भाषा का काम चलता है पर बदलते वक्त और संवाद की तात्कालिकता का स्वर भाषा को जन्म देते हैं। आज की तारीख में बेहद ताकतवर सोशल मीडिया और दूसरे संचार माध्यमों को अपनी जैसी भाषा चाहिए जिसमें कम-से-कम में ज्यादा संप्रेषण हो जाए। साथ ही भाषा बोलनेवालों को उस भाषा पर गर्व और स्वार्थ की सिद्धि भी होनी चाहिए। ये सभी काम हिंदी बखूबी कर रही है। क्षेत्रीय भाषाओं के स्तर पर काम हो रहा है। गूगल, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम जैसे माध्यम हिंदी की पहचान, उसकी गति और स्वीकार्यता को बढ़ा रहे हैं। झंझट शब्दों को लेकर होता है। किस भाषा से कितने शब्द लिये जाएँ। यह सवाल व्यर्थ है। यह हमारी अभिव्यक्ति

क्रम में बाधक बननेवाला है। हमें देखना चाहिए कि हम किन शब्दों के जरिए अपनी पूरी बात को दूसरों को समझा सकते हैं। क्योंकि शब्दों की एक सीमा है, सामर्थ्य है। अगर हम हिंदी को इस तरह विस्तार दें तो उसे आज की पीढ़ी में जनभाषा बनने से कोई रोक नहीं सकता है। भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है—‘जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख। और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।’

आज हिंदी देश के एक बड़े हिस्से के संवाद की भाषा है। भौगोलिक विविधताओं के बावजूद हिंदी का संसार बेहद व्यापक है। समुद्री तटों तक मिल जाएँगे। यह स्थिति तब है, जबकि इस देश पर सैकड़ों सालों तक विदेशी आक्रांताओं ने राज किया। इतिहास में अरबी-फारसी, तुर्की, पश्तो से लेकर उर्दू और अंग्रेजी तक भाषाई संस्कारों की एक नहीं अनेक लहरें उठीं। पर हिंदी ने न तो किसी भाषा का विरोध किया, न किसी से टकराई, न ही बगावत की। सभी को अपने भीतर समाहित करती गई। दरअसल हिंदी की ताकत ही वही है, जो हिंदुस्तान की है। हिंदी महज भाषा नहीं, बल्कि इस मुल्क की सनातन परंपरा की शाश्वत अभिव्यक्ति है। ‘संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्’, हिंदी इसी मूलमंत्र का जाप करते हुए इतिहास की जमीन पर आगे बढ़ती गई और अपनी जगह बनाती गई। हिंदी के सागर को कभी किसी भी नदी से परहेज नहीं रहा। यही वजह है कि हिंदी में अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की, पश्तो जैसी भाषाओं के शब्द न केवल पाए जाते हैं, बल्कि बेहद ही प्रचलित हैं। यहाँ तक कि हिंदी शब्द का स्रोत भी फारसी है। ये शब्द खुद ही फारसी से आयातित है।

मैं समझता हूँ कि हिंदी भाषा को व्यापक और जनता तक पहुँचाने का काम अखबारों ने ज्यादा किया। आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चंद्र से लेकर आज तक नए शब्दों के साथ हिंदी को विस्तार अखबारों ने ही दिया। पंडित बाबूराव विष्णु पराङ्कर

ने हिंदी के अनेक शब्द अखबार के जरिए ही दिए। पराङ्करजी के बाद हिंदी शब्द संपदा को बढ़ानेवाले संपादक थे प्रभाष जोशी। उन्होंने बोलियों से शब्द उठाकर नई भाषा गढ़ी। भाषा की जड़ता खत्म कर उसे लोक से जोड़ा। भाषा शब्दकोश से बाहर आई। हिंदी समाज को स्वाभिमान दिया। तब तक हिंदी ‘सावधान पुलिया संकीर्ण है’ जैसे मुश्किल शब्दों से भरी थी। संकीर्ण पुलिया नहीं विचार होते हैं। पुलिया तो तंग होती है। उस वक्त प्रभाषजी की इस भाषाई क्रांति पर उँगली उठी। पर बाद में ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए हर अखबार ने इस भाषा पर मोहर लगाई। भाषा की सरलता और सहजता उसे लोक तक ले गई, जिससे पाठक वर्ग बढ़ा।

हिंदी के इसी व्यापक चरित्र ने इस देश की आजादी की लड़ाई को एक सूत्र में पिरोने का काम किया। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी भाषा में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय चेतना से अटी रहीं। ये हिंदी की ही ताकत रही कि उसने अलग-अलग रंग की भौगोलिक और सांस्कृतिक विविधताओं में बँटे हुए इस मुल्क को एक राष्ट्रीय मकसद में बाँध दिया। भाषा शुरू से ही आर्यावर्त की सांस्कृतिक एकता का प्राण रही। भारतीय आर्यभाषा अलग-अलग कालों में समृद्ध होती गई। प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का काल 1500 ई.पू. से 500 ई. है। इसमें वैदिक संस्कृत व लौकिक संस्कृत भी शामिल हैं। संस्कृत अपने समय की कालजयी भाषा रही। विश्व की तमाम भाषाएँ संस्कृत से प्रेरित और प्रभावित होती रहीं। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का काल 500 ई.पू. से 1000 ई. के बीच है। इसमें पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का भी हिस्सा है। भगवान् बुद्ध के सारे उपदेश पालि में ही हैं, जबकि भगवान् महावीर के सारे उपदेश प्राकृत में हैं। इन दोनों ही भाषाओं ने उस वक्त के हिंदुस्तान को विचारों के आदान-प्रदान के ऐतिहासिक संगम में समाविष्ट किया। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा



1000 ई. से अब तक प्रचलित रही है। इस काल तक हिंदी ने अपनी जगह बना ली। हिंदी और दूसरी आर्यभाषाओं के बीच सबसे महत्वपूर्ण फर्क यही था कि इसने कभी भी शुद्धतावादी रवैया नहीं रखा। दूसरों को अपने भीतर घुलने दिया और खुद भी नई शक्तों में सामने आती रही।

हिंदी पर फारसी भाषा का गहरा प्रभाव पड़ा। ये वो दौर था, जब हिंदुस्तान पर विदेशी आक्रमणों का ताँता लगा हुआ था।

विश्व के अलग-अलग हिस्सों से शासक आए। सभ्यताएँ आईं। रहन-सहन और बोलचाल के तरीके आए। मगर हिंदी की किसी से अदावत न हुई। वो बड़े सहज रूप में उन सभी के साथ तालमेल करती गई। उन्हें अपनाती गई। ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में स की ध्वनि नहीं होती है। स को ह की तरह पढ़ा जाता है। यही कारण है कि सिंधु नदी के पार के हिंदुस्तान को पूरे फारसी साहित्य में हिंद के नाम

से संबोधित किया गया है। यहाँ की भाषा व विचार को हिंदीक कहा गया है। यही हिंदीक शब्द आगे चलकर हिंदी भाषा के नाम का आधार बना। यानी हिंदी ने अपने नाम के चुनाव में भी कोई रुढ़िवादी या शुद्धतावादी रवैया अख्तियार नहीं किया। हिंदुस्तान में एक ही जुबान, एक ही जाति व एक ही देश से लोग नहीं आए। अलग जगहों से, संस्कृतियों से, जुबानों से लश्कर पर लश्कर यहाँ आते गए और बसते गए, मगर हिंदी का वजूद खतरे में नहीं पड़ा। आठवीं शताब्दी में

अरबों ने सिंध व मुल्तान पर कब्जा कर लिया। इसके बाद तुर्की के तुर्क आए, अफगानिस्तान के पठान आए। गजनी के गौरी से लेकर गुलाम वंश, खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश, लोदी वंश सबने शासन किया। फारसी के साथ ही तुर्की, पश्तो, उर्दू, उज्बेक जैसी भाषाएँ और उनका 'कल्चर' भी यहाँ छाया रहा। बाबर मंगोल जाति का था। उसकी सेना में मध्य एशिया के उज्बेक व ताजिक जातियों के लोग थे। वो अपने

आज की तारीख में बेहद ताकतवर सोशल मीडिया और दूसरे संचार माध्यमों को अपनी जैसी भाषा चाहिए जिसमें कम-से-कम में ज्यादा संप्रेषण हो जाए। साथ ही भाषा बोलनेवालों को उस भाषा पर गर्व और स्वार्थ की सिद्धि भी होनी चाहिए। ये सभी काम हिंदी बखूबी कर रही है। क्षेत्रीय भाषाओं के स्तर पर काम हो रहा है। गूगल, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम जैसे माध्यम हिंदी की पहचान, उसकी गति और स्वीकार्यता को बढ़ा रहे हैं। झंझट शब्दों को लेकर होता है। किस भाषा से कितने शब्द लिये जाएँ। यह सवाल व्यर्थ है। यह हमारी अभिव्यक्ति क्रम में बाधक बननेवाला है।

साथ ये सारा साजो सामान लेते हुए आया। शेरशाह से पराजित होने के कारण हुमायूँ 15 सालों तक ईरान में रहा। जब उसने दोबारा अपना राज्य हासिल किया तो उसके साथ ईरानी बड़ी संख्या में हिंदुस्तान आए। हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब इन सभी के दरबारों की भाषा फारसी थी। हिंदी ने इस मिजाज के साथ बड़ी आसानी से एका कर लिया।

मुसलमानों की अदालत और दफ्तरों के काम पहले ज्यादातर हिंदी में होते थे, लेकिन अकबर के समय में राजा टोडरमल ने दफ्तर के कामकाज को हिंदी से फारसी में कर लिया। इसके चलते कचहरी एवं दफ्तरों का काम फारसी में होने लगा। इससे भी अरबी-फारसी आदि के प्रचुर शब्दों का प्रचार जन-साधारण और हिंदी में हुआ। कानून एवं अदालत संबंधी सैकड़ों पारिभाषिक शब्द व्यवहार में आने लगे। काजी, नाजिम, कानूनगो, समन, नाबालिग, बालिग, दस्तावेज आदि ऐसे ही शब्द हैं। हिंदी इन सबको भी अपने

भीतर समाहित करती गई। इस कालखंड में खाने-पीने, पहनने, दफ्तर के कामकाज, रहन-सहन, साज-श्रृंगार, संगीत, वाद्य उपकरण, खेल आदि तरह-तरह के क्षेत्रों में नए-नए शब्द हिंदी जुबान में दाखिल हुए। जब लोगों का पहनावा बदला तो धोती एवं उत्तरीय के स्थान पर हिंदी के भीतर अरबी भाषा की कमीज और फारसी का पाजामा खासा प्रचलित हो गया। इसी तरह चादर, दस्ताना, मोजा जैसे फारसी शब्द भी जुबान पर चढ़ गए। हिंदी में विदेशी भाषाओं के शब्द आकर हिंदी को उसी तरह समृद्ध करते गए जैसे व्यंजनों में घुसे मसाले और मसालों से लजीज हुआ व्यंजन। तुर्की से कालीन और गलीचा हिंदी का हिस्सा बने। अरबी से कुरसी तो फारसी से मेज और तख्त। मदिरा के शौकीनों ने भी अपने हिस्से के शब्द चुन लिये। फारसी से जाम लिया तो अरबी से सुराही व साकी। वास्तु और शिल्प के क्षेत्र में भी हिंदी ने यही प्रवृत्ति बनाए रखी। कंगूरा फारसी से लिया तो गुंबद, बुर्जी और मीनार अरबी से। कलाओं के क्षेत्र में कव्वाली फारसी से आई तो गजल अरबी से। खाने-पीने की चीजों में भी हिंदी ने विदेशी नामों का आगे बढ़कर स्वागत किया। अंजीर, किशमिश, पिस्ता, बादाम, मुनक्का जैसे शब्द काबुल, कंधार, बुखारा और समरकंद से आकर हिंदी में घुल गए। ये वो दौर था, जब इन जगहों से फल एवं मेवों का आयात बढ़ा। एक से बढ़कर एक नए नाम हिंदी की छतरी तले सिर छिपाते चले गए। आलू, बुखारा, खरबूजा, खूबानी, तरबूज जुबान पर बैठ गए। गुलाब जामुन, गजक, बर्फी, बालूशाही, हलवा जैसी मिठाइयाँ यहाँ की दावतों में परोसी जाने लगीं। खाने के साथ अचार व पान के साथ गुलकंद इस्तेमाल होने लगा। हिंदी में इन शब्दों का कोई विकल्प नहीं था। विकल्प ढूँढ़ने की कोशिश भी नहीं हुई। इन्हें ज्यों-का-त्यों रख लिया गया। गरमियों में शरबत, मुरब्बा और कुल्फी का चलन हो गया। पुलाव, कबाब, कीमा जैसी शाकाहारी और मांसाहारी व्यंजनों की नई खेप

भी हिंदी में आ गई। हिंदी सबको अपने भीतर समाती चली गई। खस का इत्र, साबुन, खिजाब, सुरमा ये सभी बनाव-श्रृंगार के सामान भी अपने मूल नामों के साथ हिंदी की तहजीब का हिस्सा हो गए। हिंदी जिन पर लिखी जाती थी, वे कागज और कागजात भी अरब से आ गए। कला-कौशल के क्षेत्र में भी मीनाकारी, नक्काशी, रफूगिरी, रसीदाकारी जैसे शब्द छा गए। हिंदी ने सिर्फ शब्दों के मामले में ही खुलापन नहीं दिखाया, बल्कि व्याकरण के क्षेत्र में भी उदार रही। कोई शुद्धता की दीवार नहीं खड़ी की। तुर्की, अरबी व फारसी के उपसर्ग एवं प्रत्ययों का भी हिंदी की तमाम उपभाषाओं एवं बोलियों में जमकर प्रयोग हुआ और हो रहा है। बदचलन, बावजूद, बाकायदा, बेईमान, बेशक आदि शब्दों में बद, बा, बे उपसर्ग हैं। इसी तरह पानदान, पीकदान, जादूगर, बाजीगर, सौदागर, जेलखाना, इलाहाबाद, हैदराबाद, अहमदाबाद, जैसे शब्दों में दान, गर, खाना और आबाद प्रत्यय हैं। ये सभी बाहर की भाषाओं से हिंदी में आए और उसका विस्तार होता गया।

आज इंटरनेट का दौर है। दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही है। बदलाव के इस दौर में भी हिंदी ने अपनी व्यापक सोच वाली संस्कृति को बनाए रखा। 'इंटरनेट' क्रांति के युग में भी हिंदी ने अपनी संस्कृति कायम रखी। हिंदी की इसी सहजता को देखते हुए कंपनियों द्वारा हिंदी भाषा में ही ऑपरेटिंग सिस्टम बनाए गए। गूगल ने हिंदी के यूनिकोड फॉण्ट उपलब्ध कराए। साथ ही 'ट्रांसलिट्रेशन टूल' भी बनाया जिसमें इंग्लिश में टाइप की गई सामग्री हिंदी में बदल जाती है। एक वो दौर भी था, जब नेट पर किसी हिंदी अखबार या पत्रिका को पढ़ने के लिए सही लिपि के फॉण्ट का कंप्यूटर में डाउनलोड होना आवश्यक होता था, लेकिन हिंदी की लोकप्रियता ने ये तमाम सीमाएँ तोड़ दीं। अब बिना किसी विशेष फॉण्ट डाउनलोड किए ही हिंदी को पढ़ा जा सकता है। इस लोकप्रियता का आधार भी हिंदी



की व्यापक ग्रहणशीलता ही है। मोबाइल ऑपरेटिंग सिस्टमों में हिंदी का प्रवेश 2005 के बाद शुरू हुआ। 'नोकिया', 'माइक्रोसॉफ्ट', 'एप्पल', 'गूगल', 'ब्लैकबेरी' सब-के-सब हिंदी के फॉण्ट के साथ कदमताल करते दिखे। ये उनकी व्यावसायिक मजबूरी भी रही, क्योंकि हिंदी का बाजार किसी भी तरह की भौगोलिक सीमाओं के दायरे में नहीं बँधा। किसी खास तरह की संस्कृति और रहन-सहन के दायरों में नहीं बँधा। वर्तमान में लगभग सभी समाचार पत्र इंटरनेट पर हिंदी भाषा में उपलब्ध हैं। इसका उपयोग न केवल देश में रह रहे करोड़ों लोग उठा रहे हैं, बल्कि विदेशों में बसे भारतीय भी हिंदी समाचार व साहित्य की बारिश से आह्लादित हो रहे हैं। हिंदी की स्वीकार्यता की मिसाल ये भी है कि हिंदी दूसरी भारतीय भाषाओं की तुलना में इंटरनेट पर बेहद तेजी से आगे बढ़ी। नई पीढ़ी इंटरनेट पर हिंदी के उपयोग को लेकर खासी आक्रामक है। वो ब्लॉग और सोशल मीडिया में इसका धड़ल्ले से उपयोग कर रही हैं। हिंदी के बढ़ते वर्चस्व को देखते हुए विश्व की जानी-मानी 'माइक्रो ब्लॉगिंग साइट' ट्विटर ने भी अपनी सेवा हिंदी में शुरू कर दी। यह हिंदी की विश्वव्यापी सोच व प्रासंगिकता का एक जाग्रत व जीवंत उदाहरण है।

हिंदी अपनी इसी व्यापकता के चलते अरसे से विश्व पटल पर छाई रही है। विश्व के कई प्रमुख देशों के रेडियो जैसे बीबीसी लंदन, वॉयस ऑफ अमेरिका, रेडियो सीलोन, जर्मन रेडियो व अन्य केंद्रों से हिंदी में समाचार व हिंदी फिल्मों के गाने और बातचीत के प्रसारण का चलन बढ़ा है। बंद अर्थव्यवस्था की जगह उदारीकरण ने ले ली। भूमंडलीकरण की हवाएँ विश्व आकाश पर छा गईं, मगर हिंदी की चमक पर कोई फर्क नहीं आया। हिंदी की लोकप्रियता का आलम ये है कि अंग्रेजी चैनल भी धीरे-धीरे अपनी दर्शक संख्या व विज्ञापन की खातिर हिंदी को अपना रहे हैं। 'नेशनल ज्योग्राफिक' और 'डिस्कवरी' जैसे चैनल भी ज्ञान-

विज्ञान से जुड़े अपने कार्यक्रम हिंदी में प्रसारित कर रहे हैं। हिंदी की आकाश छूती लोकप्रियता का एक प्रमाण यह भी है कि अंग्रेजी समाचार चैनलों के बुलेटिन तक अब हिंदी में प्रसारित किए जा रहे हैं। इस स्थिति की कभी किसी ने कल्पना तक न की थी। फिल्मों में भी हिंदी नए प्रतिमान कायम कर चुकी है। हिंदी फिल्मों के विदेशी राइट्स बेहद महँगी कीमतों में बिक रहे हैं। हिंदी फिल्मों की विदेशों में होनेवाली कमाई भी लोकप्रियता के तमाम रिकॉर्ड्स ध्वस्त कर चुकी है।

हिंदी वास्तव में राजभाषा बन सकी है या नहीं, ये एक बहस का विषय है, मगर इस तथ्य में दो राय नहीं हैं कि हिंदी अब व्यावहारिक तौर पर इस देश की संपर्क भाषा या जन भाषा बन चुकी है। अब तो भारत के साथ संपर्क रखने के लिए हिंदी की अनिवार्यता विदेशी सरकारें भी महसूस कर रही हैं। इसीलिए अमेरिका, चीन, यूरोप तथा अन्य प्रमुख देशों में हिंदी के अध्ययन की व्यवस्था की जाने लगी है। विदेशों से बड़ी संख्या में छात्र-छात्राएँ केंद्रीय हिंदी संस्थान, विभिन्न विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थाओं में हिंदी पढ़ने के लिए आते हैं। दक्षिण के जिन राज्यों में 60 और 70 के दशकों में हिंदी के विरुद्ध आंदोलन चले थे, अब उन्हीं राज्यों के नेता ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक पहुँचने के लिए हिंदी में बोलने को आतुर दिखाई देते हैं। विश्वविद्यालयों में हिंदी विषय को लेकर बी.ए., एम.ए. करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ती ही जा रही है।

एक सच यह भी है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का बीड़ा हिंदी भाषी नेताओं ने नहीं, बल्कि महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, सी. राजगोपालाचारी और सुभाषचंद्र बोस सरीखे गैर-हिंदी भाषी नेताओं ने उठाया था। ये सभी हिंदी भाषी प्रदेशों से न होते हुए भी हिंदी की ताकत से वाकिफ थे। महात्मा गांधी देशभर में अपने भाषण हिंदी या हिंदुस्तानी में ही दिया करते थे। सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज की स्थापना

की तो अलग-अलग राज्यों के सैनिकों को जोड़ने का काम हिंदी के माध्यम से ही किया। गांधीजी ने आजादी से पहले ही अहिंदी भाषी राज्यों, विशेषकर दक्षिण भारत में हिंदी प्रचारिणी सभाएँ बनाईं। इन सभाओं के माध्यम से हजारों हिंदी सेवी तैयार हुए, जो देशभक्ति की भावना से हिंदी का प्रचार-प्रसार और प्रशिक्षण करते थे।

आज हिंदी की लोकप्रियता और स्वीकार्यता का आलम यह है कि अंग्रेजी की सभी प्रमुख समाचार पत्रिकाएँ अपने हिंदी संस्करण भी निकाल रही हैं, जो काफी लोकप्रिय हैं। इसके अलावा हलकी-फुलकी सामग्री देनेवाली पत्रिकाओं की भरमार है और इसमें कुछ पत्रिकाएँ तो लाखों की संख्या में छपती हैं। भले ही गंभीर विषयों पर हिंदी पत्रिकाएँ कम निकलती हैं, किंतु सामान्य ज्ञान, फिल्म, फैशन, स्वास्थ्य, साहित्य, पर्यटन, विज्ञान कथा-कहानियाँ जैसे विषयों पर बहुत अच्छी पत्रिकाएँ हिंदी में निकलती हैं और खूब पढ़ी जाती हैं। हिंदी फिल्मी गीतों की लोकप्रियता भारत की सीमाओं को पार कर रूस, चीन और यूरोप तक जा पहुँची है। निजी एफएम चैनल भी अपने कार्यक्रमों, वाद-संवाद और हास्य-प्रहसन के जरिए हिंदी का प्रसार कर रहे हैं। ये बात भी दीगर है कि जब मुंबई में एफएम स्टेशनों के लाइसेंस दिए गए तो पहले आधे स्टेशन अंग्रेजी प्रसारण के लिए निर्धारित थे, किंतु कुछ ही महीनों में वे भी हिंदी में प्रसारण करने लगे। हिंदी की लोकप्रियता ने उन्हें इसके लिए मजबूर कर दिया।

हिंदी को घर-घर पहुँचाने में टेलीविजन पर प्रसारित धारावाहिकों ने भी अहम भूमिका निभाई। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक तथा धार्मिक विषयों को लेकर बनाए गए हिंदी धारावाहिक घर-घर में देखे जाने लगे। प्रतिभा खोज प्रतियोगिताओं में अनेक अहिंदीभाषी राज्यों के प्रतियोगियों का हिंदी में गाने गाकर अव्वल आना हिंदी की इसी कालजयी

सोच का सबूत रहा। टेलीविजन चैनलों पर प्रसारित किए जा रहे तरह-तरह के लाइव-शो व रिएल्टी शो में हिस्सा लेनेवाले लोगों को देखकर ये बिलकुल भी नहीं लगता है कि हिंदी कुछ खास प्रदेशों की भाषा है। हिंदी फिल्मों की तरह टेलीविजन के हिंदी कार्यक्रमों ने भी भौगोलिक, भाषाई तथा सांस्कृतिक सीमाओं की जड़ता को तोड़ दिया। यही हिंदी की ताकत है।

हिंदी समाचार भी सबसे अधिक दर्शकों द्वारा देखे-सुने जाते हैं। अंग्रेजी चैनल हिंदी चैनलों की टीआरपी के आगे राई के बराबर हैं। अंग्रेजी के चैनल समाचार चैनलों की कुल दर्शक संख्या का केवल दो फीसदी हैं। यहाँ भी हिंदी ही छाई हुई है। हिंदी ने सबको साथ लेकर चलने और घुल-मिल जाने की ताकत के चलते अपनी कीर्ति पताका लहरा रखी है। हिंदी की यही ताकत उसे अजेय बनाती है। तमाम दीवारों के उस पार ले जाती है। हिंदी हमारी राष्ट्रीय चेतना का प्राण है। हमारी राष्ट्रीय सोच की सबसे सटीक अभिव्यक्ति है। वैसे भी व्यावहारिक पक्ष यही कि राजकाज सँभाल रही सत्ता का चरित्र और संवेदना अगर हिंदीवादी हो तो हिंदी हर उस आदमी की प्राथमिकता और मजबूरी दोनों हो जाएगी, जिसे सत्ता के पास जाना है या फिर सत्ता की परिधि में उसका भी कोई काम या मुकाम है। आज की राजनीति का चरित्र ठीक वैसा ही है जिसमें हिंदी भाषा वह कक्षा है, जिसमें की गई परिक्रमा ही हर तरह के परिणाम दिलाती है। अमेरिका के चुनाव को याद कीजिए। डोनाल्ड ट्रंप प्रत्याशी थे। अमेरिका के हिंदुस्तानी वोटों के लिए मोदी, हिंदी और दीवाली की महिमा का बखान करने पर वे भी मजबूर हुए थे। भाषा का भविष्य इस्तेमाल करनेवालों के चरित्र और पुरुषार्थ से भी जुड़ा होता है। भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी दुनिया में हिंदी की प्रसिद्धि का तात्कालिक कारण हैं।

□

हिंदी में चिकित्सा लेखन और चुनौतियाँ

—डॉ. यतीश अग्रवाल

जनजीवन का प्रत्येक अंग, प्रत्येक क्षेत्र भाषा से अछूता नहीं है। फिर चाहे यह कला-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य और चिंतन की बात हो या फिर आयुर्विज्ञान रूपी ज्ञानदीप का घर-घर गाँव-गाँव दीपशिखा में परिवर्तित होने का यक्ष प्रश्न!

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत् की सबके मंगल की प्रार्थना सन् 1978 की विश्व समुदाय की आत्मा आटा में की गई? हैलथ फॉर ऑल की घोषणा से कहीं अधिक सुंदर और गहरी है।

यद्यपि चरक-संहिता और सुश्रुत-संहिता का ठीक-ठीक समय काल वर्तमान समय में सुनिश्चित कर पाना दुर्लभ है, किंतु विद्वानों का मत है कि आत्रेय पुनर्वसु, जिनके उपदेशों का संग्रहण कर चरक-संहिता की रचना हुई और जो काय चिकित्सा; इंटरनल मेडिसिन का विधिवत् अध्यापन करानेवाले पहले आचार्य समझे जाते हैं, और शल्य के जनक सुश्रुत का काल 7वीं सदी ईसा पूर्व था। 'कश्यप-संहिता' और वाग्भट रचित 'अष्टांग संग्रह' इसी वैदिक परंपरा का निर्वाह करते परवर्ती ग्रंथ हैं। आयुर्वेद की यह आदि-परंपरा आगे भी अनेक अध्ययनशील ग्रंथों में जीवित रही।

आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धतियों में से है। कुछ इतिहासकारों का तो यहाँ तक मत है कि हीपोक्रेटिज और ग्रीक मेडिसिन का

उद्भव-इंडोत आयुर्वेद ही था। बहरहाल, यह बहस छोड़ भी दी जाए, तब भी इस सत्य से विमुख नहीं हुआ जा सकता कि देश में प्रथम रूप से संस्कृत में, द्वितीय में पाली में और उसके उपरान्त हिंदी में चिकित्सा लेखन की प्रबुद्ध परंपरा रही है, पर यह परंपरा मुख्य रूप से आयुर्वेद तक ही सीमित रही है।

आज विश्व में हिंदी 697 मिलियन लोगों की मातृभाषा है। यह भारत के साथ-साथ दुनिया के अनेक देशों, जैसे—नेपाल, मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद व टोबेगो और दक्षिण अफ्रिका में बोली, पढ़ी और लिखी जाती है। अनेक विकसित देशों, जैसे—जपान, अमेरिका, इंग्लैंड में भी हिंदी का अध्ययन और अध्यापन होता है, साहित्य रचा जाता है और विधिवत चर्चाएँ होती हैं, किंतु आधुनिक चिकित्सा शास्त्र और विशेषकर आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में उसके पदचिह्न अभी धुँधले हैं। देश को विदेशी दासता से मुक्त हुए 70 वर्ष से अधिक हो गए, किंतु छिट-पुट प्रयासों को छोड़ मातृभाषा हिंदी में प्रामाणिक आयुर्विज्ञान साहित्य के सूर्य को अभी उदय होना है।

इस कठिन स्थिति की जड़ें हमारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में छुपी हैं। आज भी भारत में आयुर्विज्ञान की चिकित्सा शिक्षा हिंदी में उपलब्ध नहीं है। आज देश में मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया से मान्यता प्राप्त कुल 412 मेडिकल कालेज प्रति वर्ष 52,965

छात्रों को एम.बी.बी.एस. की पढ़ाई में प्रवेश देते हैं। 78 विषयों में पोस्ट-ग्रेजुएट मेडिकल शिक्षा और 51 विषयों की अतिविशिष्ट शाखाओं में पोस्ट-डॉक्टरल मेडिकल शिक्षा दी जा रही है। कुल 412 मेडिकल कॉलेजों में से 100 से अधिक हिंदी के गढ़ कहे जानेवाले राज्यों में हैं, लेकिन इनमें से एक मेडिकल कॉलेज में भी आयुर्विज्ञान का अध्ययन और अध्यापन हिंदी में नहीं होता। देश के लिए प्राचीन वैदिक कालीन परंपरा में लौट पाना और हिंदी को गले लगा पाना दुस्साध्य हो रहा है।

इसका चिकित्सा साहित्य सृजन पर प्रभाव अभिलक्षित होना अवश्यभावी है। वस्तुगत स्थिति यह है कि आज आयुर्विज्ञान शिक्षण हेतु देश में एक भी प्रामाणिक क्लासिक पाठ्य-पुस्तक हिंदी में उपलब्ध नहीं है। सच है कि कुछ छिट-पुट प्रयास हुए हैं, कुछ हिंदी ग्रंथ अकादमियों—जिनमें बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्यप्रदेश और राजस्थान की अकादमियाँ प्रमुख हैं, ने कुछ मौलिक और अनूदित पुस्तकों का प्रकाशन किया है, पर यह कुछ मुट्ठीभर लेखकों के एकल प्रयास को प्रोत्साहन है, इससे अधिक कुछ नहीं। अधिकांश पुस्तकों का स्तर अति साधारण है और प्रायः वे अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तकों की गलत-सलत नकल हैं। अब तक न ग्रे का शरीर रचना विज्ञान, ऐनेटॉमी, न गायटन, सैमसन राइट का शरीर क्रिया विज्ञान (फिजियोलॉजी), न गुडमैन-गिलमैन का औषधविज्ञान, फार्माकोलॉजी, न हैरिसन की काय-चिकित्सा, इंटरनल मेडिसिन या फिर किसी दूसरे क्लिनिकल विषय की किसी दूसरी महत्वपूर्ण पाठ्य-पुस्तक का हिंदी में अनुवाद हुआ है, न ही उनके समकक्ष कोई नई मौलिक कृति हिंदी में लिखी गई है।

यह सच है कि वैज्ञानिक तथा तकनीकी शाब्दावली आयोग ने सन् 1974 में आयुर्विज्ञान पारिभाषिक शब्द-संग्रह का प्रकाशन कर हिंदी जगत

को कुछ पारिभाषिक शब्दों के हिंदी में पर्याय सुलभ कराने में पहल की थी, जिसके लिए आयोग बधाई का पात्र है, किंतु इस कोष के निर्माण के पीछे मूल ध्येय क्या रहा, समय बीतने पर उसका कैसे-क्या प्रयोग हुआ, उसे व्यावहारिक बनाने के लिए क्या जतन हुए, निरंतर हो रहे ज्ञान के विस्फोट के साथ उसमें कब कितने नए पारिभाषिक शब्द जोड़े गए, क्या इस पुण्य यज्ञ में उन विद्वानों को जोड़ने का प्रयत्न किया गया, जिन्हें आयुर्विज्ञान के साथ-साथ भाषा पर गहरी पकड़ है, जैसे अनेक पहलू हैं जिन पर गंभीर स्पष्टवक्त चर्चाएँ करना आवश्यक है। चरक संहिता के विमानस्थान में कहा गया है—

तद् विद्य संभाषा हि ज्ञानभियोगसंहर्षकरी भवति,

वशारद्यमपि

चाभिनिर्वर्तयति, वचनशक्तमपि चाध्ते,

यशश्चाभिदीपयति

पूर्वश्रुत्रो च संवेहतः पुनः

श्रवणाच्छ्रुतसंशयमकर्षति, श्रुते

चासन्देहवतो भूयो (ध्वसायमभिनिर्वर्तयति)

उसी शास्त्र की शाखावाले व्यक्ति के साथ चर्चा करने से प्रसन्नता और शास्त्र में विशारदत्व बढ़ता है। इससे तथ्य अधिक स्पष्ट समझ में आते हैं, इससे कीर्ति भी बढ़ती है। पहली सुनी हुई बात को फिर सुनने पर जो संशय या शंका होती है, वह दूर हो जाती है और सुने गए ज्ञान में शंका न करनेवाले के विचारों को भी समर्थन और पुष्टि प्राप्त होती है।

यदि हमें हिंदी में आयुर्विज्ञान शिक्षण हेतु प्रामाणिक पाठ्य-पुस्तकें विकसित करनी हैं तो इस बड़े यज्ञ को पूरा करने के लिए हमें बहुत बड़े स्तर पर व्यवस्थित प्रयास करना होगा। प्रत्येक क्लासिक पाठ्यपुस्तक को हिंदी में लाने के लिए उस विषय के कई आयुर्विज्ञान आचार्यों को साथ जोड़ना होगा। पहल ऐसे आचार्यों को ढूँढ़ने से शुरू करनी होगी, जो मन और संकल्प से यह कार्य करने के इच्छुक

हों, उन्हें सामान्य काम-काज से मुक्त करना होगा, उचित सुविधाएँ उपलब्ध करानी होंगी, बढ़ावा देने के लिए मान-सम्मान प्रतिष्ठा देनी होगी, तब कहीं यह यज्ञ मूर्त रूप ले सकता है। इस ध्येय की पूर्ति के लिए राष्ट्र को एक उदार कोष स्थापित करना होगा, जिसकी लगाम आचार्यों के हाथ सौंपनी होगी। यह सोच कि यह पुण्य कार्य है, जिसे हिंदी के प्रति अनुराग रखनेवाले आयुर्विज्ञान आचार्य समर्पण-भाव से और बिना किसी आर्थिक प्रतिपूर्ति के पूरा कर देंगे, अव्यवहार्य है। यह विचार कि कुछ प्रकाशक इसे कर्तव्य-बोध मान संकल्प-भाव से पूरा कर लेंगे, भी विवेकशून्य है। सेवानिवृत्त आचार्य यह कार्य कर सकेंगे, यह सोच भी स्वस्थ नहीं दिखती। विकसित की गई पाठ्य सामग्री अद्यतन हो यह अनिवार्य है, यह कार्य देश के उन बड़े हिंदी संस्थानों के हाथ सौंपना भी संभवतया ठीक नहीं होगा, जहाँ अधिकारी सभी लेखकों को एक ही तराजू में तौलना पसंद करते हैं।

विश्व में जापानी, रूसी, हंगेरियन, रोमानियन, इटैलियन, जर्मन, फ्रेंच, पुर्तगाली और अरबी जुबान समझने और बोलनेवाले लोगों की संख्या हिंदीभाषी लोगों की तुलना में कहीं कम है, किंतु इन भाषाओं में आयुर्विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें सुलभता से उपलब्ध हैं। इतना ही नहीं, सभी पाठ्यपुस्तकों के नवीन संस्करण भी नए अंग्रेजी संस्करणों के साथ-साथ प्रकाशित हो जाते हैं। उसके लिए उन देशों में आचार्यों के बड़े दल निरंतर इस कार्य में जुटे रहते हैं। तब आखिर ऐसे क्या कारण हैं कि दुनिया की सबसे अधिक बोली, समझी, लिखे जानीवाली चौथे नंबर की भाषा यह मिशन पूरा क्यों नहीं कर सकती।

क्या आयुर्विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकें हिंदी में लाई जानी आवश्यक हैं?

कोई यह प्रश्न पूछ सकता है कि जब परिस्थितियाँ इतनी विषम हैं तो आयुर्विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकें हिंदी

में लाने की ही क्या आवश्यकता है?

उसका उत्तर सीधे-सरल है। हिंदी प्रदेशों में बड़ी संख्या में छात्र आयुर्विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करके चिकित्सक बनने का स्वप्न देखते हैं, उनमें से अनेक अद्वितीय रूप से मेधावी और मेहनती होते हैं, लेकिन आयुर्विज्ञान के अंग्रेजी पाठ्यक्रम से जूझते, कुशती करते उनकी जिंदगी बीत जाती है। न ठीक से ज्ञान हाथ आता है, न विषय की समझ विकसित हो पाती है। इन परिस्थितियों में कोई मौलिक चिंतन करके नई खोज, नया शोध कर सकेगा, यह सोचना भी सरासर बेईमानी है।

रोगी, उसके परिजनों और समाज के साथ डॉक्टर का संबंध सद्भाव, सहानुभूति, विश्वास और आस्था का है। इन्हीं आधारों पर डाक्टर और रोगी के बीच निष्ठा का सच्चा सेतु खड़ा होता है और रोगी अपनी देह, अपने प्राण डॉक्टर के हाथ में सौंप पाता है। अंग्रेजी पाठ्यक्रम से पढ़कर निकले डॉक्टर न तो रोगियों की गँवई भाषा समझ सकते हैं, न उनका दुःख-दर्द, और न ही उनके साथ प्रेम और विश्वास भरा संवाद स्थापित करने में सक्षम हो पाते हैं।

परिवर्तन लाना अनिवार्य है। न केवल आयुर्विज्ञान विषयक पाठ्यपुस्तकों को हिंदी में लाना आवश्यक है, बल्कि आयुर्विज्ञान की प्रमुख शोध-पत्रिकाएँ भी हिंदी में लाई जानी अनिवार्य हैं। यह यज्ञ पूरा कर पाना और अधिक दुस्साध्य है।

जनसुलभ चिकित्सा साहित्य के क्षेत्र में समय-समय पर अनेक प्रयास हुए हैं। कुछ लेखक-साहित्यकारों और पत्रकारों द्वारा, कुछ योग और ध्यान के अनुयायियों द्वारा, कुछ आयुर्वेद के प्रेक्टीशनर्स द्वारा, और कुछ उन इक्के-दुक्के सरस्वती, मर्यादा, विज्ञान जैसी पत्रिकाओं में आयुर्वेद और आयुर्विज्ञान पर लेख छपते रहे, तो द्वितीय अर्ध में साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, कादंबिनी, दिनमान, नवनीत, गृहशोभा, सरिता,

विज्ञान प्रगति, योजना, आविष्कार, इंडिया टूडे सहित अनेक लोकप्रिय पारिवारिक, साहित्यिक, चिंतनपरक और वैज्ञानिक पत्रिकाएँ यह दायित्व पूरा करती रहीं। 1980 के दशक में हिंदुस्तान टाइम्स हाउस से निकलनेवाले कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने विशिष्ट चिकित्सा विशेषांक प्रकाशित करने की भी पहल की, जिसका हिंदी जगत के पाठकों ने हृदय से स्वागत किया। रविवारीय हिंदुस्तान के आठों पृष्ठों पर आयुर्विज्ञान संबंधी किसी एक विषय पर अद्यतन प्रामाणिक वैज्ञानिक जानकारी प्रकाशित होना विश्व-पत्रकारिता में किसी एक क्रांति से कम न था। उसमें पाठक को पूरी एक पुस्तक के बराबर सामग्री मात्रा दो रूप में मिल जाती थी। यह प्रयोग 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' द्वारा भी सफलतापूर्वक दोहराया गया। पत्रिका के कुल 64 में से 50-50 पृष्ठ महिला स्वास्थ्य, मनोरोग, डायबिटीज, हृदयरोग, नेत्र स्वास्थ्य जैसे जनोपयोगी विषयों पर केंद्रित कर हिंदी पत्रकारिता में नई शुरुआत हुई, जिसे पाठकों का पूरा-पूरा समर्थन मिला।

आरंभ में यह चिकित्सा विशेषांक और विशेष चिकित्सा पृष्ठ लोकप्रियता के आधार पर प्रकाशित होते रहे। उनका मूल ध्येय आयुर्विज्ञान संबंधी प्रामाणिक ज्ञान को जनसुलभ कराना था, पर फिर समय की तेज धारा ने धीरे-धीरे सबकुछ बदल कर रख दिया। पत्र-पत्रिकाओं के लिए व्यावसायिक सफलता अधिक महत्वपूर्ण हो गई। आयुर्विज्ञान संबंधी लेख तो प्रकाशित होते रहे, पर उनकी मूलभूत दृष्टि बदलती चली गई। विज्ञापित लेखों ने प्रामाणिक जनसुलभ वैज्ञानिक साहित्य का स्थान ले लिया। बाजारीकरण के इस युग में अखबार और बड़ी पत्रिकाएँ उन स्रोतों से उन विषयों पर लेख प्रकाशित करने लगीं, जिनमें विज्ञापनकर्ताओं की मंशा पूरी होती थी। कमोबेश अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में यह स्थिति आज भी बनी हुई है। परिणामस्वरूप, प्रामाणिक चिकित्सा लेखन

लुप्तप्रायः होता जा रहा है। आज उन पत्रकारों की पूरी एक जमात खड़ी हो गई है, जो हैल्थ रिपोर्ट्स की श्रेणी में आते हैं, किंतु उनके अंतःकरण में वैज्ञानिक सोच का दीप जलता हो, यह अनिवार्य नहीं है।

हैल्थ रिपोर्ट्स में आयुर्विज्ञान की मूल समझ विकसित करने के लिए पत्रकारिता कार्यक्रमों में आयुर्विज्ञान पाठ्यक्रम की कुछ कक्षाएँ जोड़ने के साथ-साथ चिकित्सकों को आचार्य के रूप में जोड़ना उचित होगा।

बीते 100 वर्षों में अनेक छोटे-बड़े प्रकाशकों ने हिंदी में आयुर्विज्ञान संबंधी जनसुलभ पुस्तकों का भी प्रकाशन किया है। इन प्रकाशकों में राजकमल, प्रभात, सारांश, हिंद पॉकेट बुक्स, दिल्ली प्रेस प्रमुख हैं। इन प्रकाशन गृहों से दर्जनों की संख्या में पुस्तकें आई हैं, जिनका कुल स्तर मिला-जुला है। कुछ पुस्तकें चिकित्सकों द्वारा लिखी गई हैं और उनमें सामाजिक सरोकार जीवित हैं, कुछ दूसरी पुस्तकों की नकल मात्र हैं और कुछ सरासर अवैज्ञानिक हैं, जो समाज में भ्रांतियों, मिथकों और अंधविश्वासों को बढ़ावा देकर समाज को क्षति पहुँचा रही हैं।

आज गूगल, विकीपीडिया और दूसरी इ-स्पेस एजेंसियों ने भी हिंदी में चिकित्सा संबंधी जानकारीयों उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया है। किंतु इन जानकारीयों में न तो चिकित्सक का विवेक है, न रोगी की नब्ज पर हाथ! ज्ञान है, पर प्रायः अधकचरा, जिसे तकनीकी दृष्टि से सुधरने और पाठक के लिए ज्ञान चक्षु के अवतरण में प्रस्तुत करना अनिवार्य है। सच्चा चिकित्सा साहित्य तो वही है, जिसमें विचारों और तथ्यों की सत्यता हो, वैज्ञानिक साधना हो, कर्तव्य-बोध हो, ज्ञान हो, विवेक हो, प्राण हों और साथ ही उसमें जीवन का संगीत निहित हो।

□

...और कचहरियों की भाषा बनी हिंदी

—श्री ज्ञानवर्धन मिश्र

वह भी क्या समय रहा होगा, जब कोर्ट-कचहरियों में हिंदी में बहस करना गुनाह माना जाता था, उन वकीलों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। बोल-बाला था तो अंग्रेजी का। जज को 'श्रीमान' कहनेवाले कम और 'मी लॉर्ड' कहनेवाले अधिक। धोती-कुरता जैसे भारतीय परिधान धारण कर कोर्ट में उपस्थित होनेवालों की संख्या कम और हाय-हलो कहनेवाले पैट, शर्ट, टाई और हैटधारियों की संख्या अधिक। ऐसी बात नहीं कि तब हिंदी के प्रचार की गति मंद थी। दरअसल, उस वक्त प्रचारक ही कम थे।

नवजागरण और हिंदी को यत्र-तत्र सर्वत्र मजबूती के साथ स्थापित करने का बीड़ा यदि किसी ने उठाया तो वह था बिहार का प्रथम हिंदी पत्र 'बिहार बंधु'। प्रखर राष्ट्रीय स्वरवाले 'बिहार बंधु' का प्रकाशन 1872-73 के बीच कोलकाता से हुआ था। उस वक्त झारखंड सहित बिहार का वर्तमान भाग बंगाल में ही शामिल था। तब कोलकाता न केवल बिहार बल्कि देश की राजधानी थी। जाहिर है, सभी प्रकार की गतिविधियों की केंद्र वह रही होगी। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के 15 अक्टूबर, 1989 को दिल्ली में हुए 44वें अधिवेशन में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान डॉ. विजेंद्र स्नातक ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भी कहा है

कि सन् 1933 में दूसरी बार हुए सम्मेलन की वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्षता करने वाले बड़ौदा नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ मराठी और गुजराती से जुड़े होने के बावजूद हिंदी के प्रबल समर्थक थे। तब के बड़ौदा राज्य में हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में सम्मानपूर्ण स्थान देकर उन्होंने अपने हिंदी प्रेम का परिचय दिया था। 'बिहार बंधु' के प्राचीन अंकों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसके प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य देशवासियों में नागरिक चेतना पैदा करने के साथ-साथ कचहरियों में हिंदी भाषा को प्रतिष्ठित करना था।

कचहरियों में देवनागरी लिपि में हिंदी के प्रयोग के लिए 'बिहार बंधु' को सदैव याद किया जाएगा। 1 जनवरी, 1881 तक बिहार की कचहरियों की भाषा उर्दू थी। जाहिर है कि सरकारी संरक्षण के अभाव में हिंदी की प्रचार की गति मंद रही। '19वीं शताब्दी में पटना' में इतिहासविद् डॉ. सुरेंद्र गोपाल ने लिखा है—'उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी के प्रचार की गति तेज हो गई थी। इस प्रगति में दो घटनाओं ने महत्वपूर्ण योगदान किया। एक था 1874 में 'बिहार बंधु' का पटना से प्रकाशन और दूसरा था, सन् 1875 में इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल के रूप में भूदेव मुखर्जी का शुभागमन। 'बंधु' ने बिहार की कचहरियों में देवनागरी लिपि में हिंदी को

प्रतिष्ठित करने के लिए जोरदार आंदोलन किया। 'बंधु' अपने इस प्रयास में सफल हुआ और सन् 1881 में हिंदी बिहार की कचहरियों की भाषा घोषित कर दी गई। देश के अन्य किसी प्रांत में हिंदी को तब तक यह स्थान नहीं मिला था। इसी प्रकार 'हिंदी साहित्य और बिहार' के खंड दो की भूमिका में आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है—बिहार के पुनर्जागरण में 'बिहार बंधु' तथा भूदेव मुखर्जी के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। श्री

मुखर्जी यद्यपि बंगाली थे, परंतु उन्होंने हिंदी भाषा के महत्त्व को समझा था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से इंट्रेंस में अध्ययन के विषयों में हिंदी को उन्हीं के कठिन परिश्रम से शामिल किया गया। उस समय बिहार की शिक्षण संस्थाओं का नियंत्रण कलकत्ता विश्वविद्यालय ही करता था। साथ ही, भूदेव मुखर्जी ने हिंदी में पाठ्य पुस्तकें तैयार कराईं और उनका प्रकाशन भी कराया। गजेटियर ऑफ बिहार के श्री एन. कुमार के संपादकत्व में

प्रकाशित पुस्तक 'जर्नलिज्म इन बिहार' में पेज चार पर लिखा है—श्री मदनमोहन भट्ट ने बिहारवासियों में नागरिक चेतना पैदा करने तथा बिहार की कचहरियों में देवनागरी लिपि में हिंदी को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से सन् 1872 में बिहारियों के मुख पत्र के रूप में 'बिहार बंधु' का प्रकाशन किया।

बिहारवासियों के हितों की रक्षा करने के साथ ही इसका मूल स्तर राष्ट्रीय रहा और देश का शायद ही कोई भाग हो, जहाँ 'बिहार बंधु' नहीं जाता हो। पत्र की निर्भीकता का द्योतक उसके शीर्ष पर छपनेवाला संस्कृत का वाक्य था—'सत्येव नास्ति भयं क्वाचित्' और अपने इसी सिद्धांत के मुताबिक 'बंधु' विदेशी शासकों तथा अन्यायियों से बराबर लड़ता रहा, जूझता रहा।

“एक था 1874 में 'बिहार बंधु' का पटना से प्रकाशन और दूसरा था, सन् 1875 में इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल के रूप में भूदेव मुखर्जी का शुभागमन। 'बंधु' ने बिहार की कचहरियों में देवनागरी लिपि में हिंदी को प्रतिष्ठित करने के लिए जोरदार आंदोलन किया। 'बंधु' अपने इस प्रयास में सफल हुआ और सन् 1881 में हिंदी बिहार की कचहरियों की भाषा घोषित कर दी गई। देश के अन्य किसी प्रांत में हिंदी को तब तक यह स्थान नहीं मिला था। इसी प्रकार 'हिंदी साहित्य और बिहार' के खंड दो की भूमिका में आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है—बिहार के पुनर्जागरण में 'बिहार बंधु' तथा भूदेव मुखर्जी के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

जिस वक्त 'बिहार बंधु' की पैदाइश हुई, उस वक्त गोया हिंदी नेव दी गई। इस हिंदी के लिए बड़ी कोशिशें हुईं और बहुत कुछ करने के बाद आज दीवानी, पुलिस और कचहरियों में हिंदी की सूरत देखने को आती है। दस बरस पहले एक सम्मन को पढ़ने के लिए देहात में लोगों को हैरान होना पड़ता था। 'यह वह हिंदी है, जिसके चाहनेवाले और कदरदान विलायत तक हैं। हिंदी यहाँ की दीवानी, माल और पुलिस की कचहरियों में पूरी तरह से जारी हो गई और विलायत के सिविल सर्विस के इम्तिहान में रखी

गई है। तब अगर आप दूसरे ऐसी कोशिश करें कि हिंदी को उड़ा-पड़ा दें तो किसी के लिए कुछ नहीं होने वाला है।' बिहार बंधु : 27वीं दिसंबर, 1883, जिल्द 11 नंबर 49।

□

पटना सिटी
पटना, (बिहार)

हिंदी विश्व : विकास की दिशाएँ

—डॉ. मृदुल कीर्ति

विश्व हिंदी सम्मेलन राष्ट्र की भाषाई अस्मिता का अभियान है, प्रबल प्रयास और सुखद संभावनाओं का अभियान है।

संस्कृत से निःसृत हिंदी भाषा स्वयं में ही एक भाषाई संस्कृति है। हिंदी के व्युत्पत्ति के संदर्भ में यदि और गहराई से अन्वेषी वृत्ति से देखें तो संस्कृत से भी पूर्व अपभ्रंश भाषाओं और उससे भी पूर्व प्राकृत भाषाओं में भी हिंदी की उत्पत्ति के सूत्र मिलते हैं, किंतु यह निश्चित है कि किसी भी काल खंड की सभ्यता और संस्कृति के अस्तित्व को भाषा ही मुखरित करती है। वस्तुतः किसी राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता के अस्तित्व के बीज भाषा के गर्भ में होते हैं, जिसे भाषा ही मुखरित करती, भाषा ही जीवंत रखती है और भाषा को भाषित न करने पर क्रमशः क्षीण भी होती है। अतः हमें अपनी संस्कृति और भाषा की गूढ़ गर्भिता और मर्म गर्भिता पर गौरवान्वित होते हुए, हिंदी की वर्तमान भाषाई संस्कृति को जीवन में व्यवहार में लाकर कार्यान्वित करते हुए, हिंदी के विकास की सर्वतोन्मुखी दिशाओं को प्रशस्त करना है, यही सम्मेलन का लक्ष्य समझ में आता है।

हिंदी का विराट् अद्भुत स्वरूप।

एक संक्षिप्त परिचय

हिंदी 'अ' से 'ह' तक एक समग्र दर्शन का पर्याय है। हिंदी में अध्यात्म, दिव्यता, दर्शन, योग, ज्ञान और

विज्ञान सब समाहित हैं।

'अक्षरानामकारोस्मि' भगवद्गीता—10/33 यह भाषा की दिव्यता है।

अकार नाद तत्त्व का संवाहक है और अकार के बिना शब्द सृष्टि आगे नहीं चलती। 'ऋग्वेद' के अनुसार—स्वर्यत शब्दयन्त अति स्वराः—स्वर वह मूल ध्वनि हैं, जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता अर्थात् 'अ' को कभी विभाजित नहीं किया जा सकता। व्यंजन बिना स्वर की सहायता के नहीं बोले जा सकते। व्यंजन में अकार मिलता है तभी आकार मिलता है। अक्षर में प्राण-प्रतिष्ठा नाद से होती है और नाद ब्रह्म है, इसीलिए अक्षर-अक्षर हैं अर्थात् जिनका कभी क्षर नहीं होता। यह हिंदी का दिव्य आध्यात्मिक स्वरूप है। स्वर और व्यंजन के मिलने से ही शब्द सृष्टि का निर्माण होता है।

वर्ण—व्-र-ण

व्-पूर्ण, र-प्रवाह, ण-ध्वनि अर्थात् वर्ण वह तत्त्व है, जिसमें पूर्णता है, ध्वनि है और ध्वनि का प्रवाह है—वे वर्ण कहलाते हैं।

हिंदी के यौगिक पक्ष की पुष्टि स्वयं बोलकर करिए। 'अ' से 'ह' तक के उच्चारण में नाभि से लेकर होठों तक उच्चारण की ध्वनि तरंगों से सभी बिंदुओं पर कंपन होता है। यह आंतरिक योग है, जो शब्दों के उच्चारण से प्रश्वास और निःश्वास के साथ-साथ स्वतः ही प्राण-अपान में संपन्न होता है। इनका स्पर्श स्वयं में

अनुभव होता है।

इसकी तुलना में इंग्लिश के पूरे 26 वर्ण बोलिए—सब जीभ और होंठ में ही संपन्न हो जाते हैं, कंठ तक भी नहीं जाते।

हिंदी का ज्ञान पक्ष—जैसे बीज में वृक्ष समाहित है, वैसे ही हिंदी के प्रत्येक शब्द में उसके भाव के गहरे अर्थ समाहित हैं। भाषा-विज्ञान का यह बहुत बृहद् विषय है, अतः विस्तार में न जाकर केवल दो शब्दों से इस तथ्य की पुष्टि यहाँ पर है।

प्रकृति—कृति अर्थात् रचना, प्र—प्रथम—कृति से प्रथम अर्थात् ईश्वर

जगत—ज—जन्म, ग—गमन अर्थात् जन्मते गम्यते इति जगस्तः वह जगह जहाँ जन्म होता है और जहाँ से गमन भी होता है जगत है।

सम्मेलन का मंच इसलिए नहीं है कि हम केवल हिंदी की गरिमा गाकर, संविधान के अनुच्छेद बताकर राजभाषा के समर्थन को दोहराते भर रहें। अब समय पूछ रहा है कि आपने स्वयं में हिंदी को कितना आत्मसात किया है, कितना प्रयास, उद्यम और समर्थन किया है? क्या कारण है कि हिंदी के विकास के सम्मेलनों का आयोजन करना पड़ता है? हिंदी का उद्गम देव भाषा से है, जो गंगा के उद्गम गंगोत्री जैसा ही शुद्ध, पावन और दिव्य है। आगे चलकर जैसे गंगा को हमने दूषित किया, वही दशा हिंदी की किन्हीं कारणों से हमने की है तो इसके शुद्धीकरण का दायित्व भी हम पर है। प्रश्न अनेक हैं—उत्तर आपकी आत्मा देगी—आप हिंदी बोलने में गौरवान्वित होते हैं या संकोच करते हैं? हिंदी के बस इसी बिंदु से हिंदी के प्रति आपकी प्रियता और निजता का परिचय मिल जाएगा। हिंदी के प्रति आपकी उदासीनता से नहीं, आपकी प्रियता और निजता ही हिंदी के विकास की बहुमुखी दिशाएँ प्रशस्त कर सकती है।

हिंदी का विकास शब्दावली नहीं, आचरण में लाने का राष्ट्रीय आह्वान है।

यह व्यक्तिगत स्तर पर आत्म-मंथन का बिंदु है।

अतः यहाँ हिंदी के सैद्धांतिक पक्ष का विस्तार, गणितीय आँकड़ों का अंकन, राजकीय और सामाजिक प्रयासों से इतर सीधे सामाजिक इकाई अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता या असहयोग का मूल्यांकन की बात करना है। यह भी बताना है कि ये सम्मेलन करने ही इसीलिए पड़ते हैं कि अभी तक हमने यह अनुभव ही नहीं किया कि इस भाषाई अस्मिता के अस्तित्व का एक अंश का उत्तरदायित्व हम पर भी है। एकांश से सर्वांश का गणित हम सब जानते हैं। हम ही हिंदी के विकास के व्यवधान के कारण और हम ही उत्थान और समाधान हैं। कदाचित् बूँद-बूँद से सागर का गणित भी हम अन्य प्रलोभनों में भूल गए। भाषा, संस्कृति और सभ्यता, तीनों का सम्यक् संवहन ही शिक्षित और स्वस्थ राष्ट्र का आधार है। एक इकाई के रूप में हिंदी के प्रति सत्यनिष्ठ होकर आत्म मंथन करें और आत्म प्रायश्चित्त होकर स्वयं से पूछें कि आप स्वयं बोलने, पढ़ने, लिखने, दैनिक पारिवारिक वार्तालाप, सामाजिक व्यवहार में हिंदी बोलते हैं? पुस्तकें क्रय करते हुए हिंदी साहित्य को वरीयता देते हैं तथा आगामी पीढ़ी को हिंदी सिखाने को कितने प्रयासरत होते हैं, कितनी वरीयता देते हैं? जन्म लेते ही जिस भाषा को सुना, माँ से दूध, पानी माँगा था या मिल्क और वॉटर। उस भाषा का स्वयं संवहन कर संवर्धन करना आपका नैतिक कर्तव्य है। आप हिंदी भाषा के ऋणी हैं, जिसे आगामी पीढ़ी को देकर पूरा करिए।

क्या जातक कथाओं और नैतिक संदेशों की कहानियाँ सुनाकर बच्चों को हिंदी भाषा से परिचित कराते हैं? ऐसी छोटी-छोटी नगण्य-सी दिखनेवाली, किंतु अतिशय की हैं। बीज छोटा ही होता है उसी में वृक्ष समाहित है, अतः इन महत्त्व के तथ्यों पर ध्यान देकर आगामी पीढ़ी को सहजता से ही हिंदी के प्रति रुचि बढ़ा सकते हैं।

इन सभी बिंदुओं पर ध्यान देकर हिंदी भाषा के प्रति गंभीर और सजग होकर इसके विकास की दिशाओं को विस्तार देने में तत्पर हों।



विकास की दिशाएँ इस संदर्भ में आगामी पीढ़ी को हिंदी सिखाने के लिए हिंदी की वर्णमाला से ही आरंभ करते हैं।

बच्चों के लिए—

बच्चों के लिए हिंदी की वर्णमाला का सही क्रम, शुद्ध और निर्दोष उच्चारण का ज्ञान हिंदी भाषा का प्राथमिक आधार है। अभी ध्यान न देने पर यही वर्तनी दोष का कारण बनता है। हिंदी का ध्वन्यात्मक पक्ष का गहन दर्शन है, अतः वर्णमाला यदि लयात्मक विधि से सिखाई जाए तो सरस होने पर सीखने का अधिक आकर्षण होता है।

हिंदी की वर्णमाला का एक बड़ा पोस्टर ऐसी जगह लगा दें, जहाँ से बच्चों को जाने-अनजाने दिखाई देता रहे। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है—हम अपनी पाँचों ज्ञानेंद्रियों और मन के सहारे हर पर पल जो देखते, सुनते, कहते, सूँघते और स्पर्श करते हैं, उसके संस्कार बनते हैं। इस तरह सहज ही अक्षरों की आकृति को बच्चे मन में सँजो लेते हैं। चुंबक के अक्षर बनाए जाएँ, जिनसे सहजता से अक्षर चिपका कर वर्णमाला सीखी जा सके।

खिलौना उत्पादन केंद्र में बच्चों के खिलौने ऐसे बनें, जिसमें हिंदी के अक्षरों और चित्रों का अंकन हो, जैसे—क आगे कबूतर का चित्र हो।

यदि आप प्रवासी हैं, तब आपको अधिक ही सजग रहना है। घर के अंदर केवल हिंदी ही बोलें। बोलने से बिना प्रयास के ही किसी भी भाषा का ज्ञान हो जाता है।

बोली के संदर्भ में हिंदी विश्व की दूसरी सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है, जिसका विस्तार बोली से ही हुआ है और विश्व के 40 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते हैं, चाहे लिपिबद्ध करना न आता हो। बच्चा भी तो बोलकर ही सीखता है, लिखकर नहीं। भाषा का अपभ्रंश रूप भाख (बोलना) ही है।

◆ ◆ ◆

सम्मेलन का मंच इसलिए नहीं है कि हम केवल हिंदी की गरिमा गाकर, संविधान के अनुच्छेद बताकर राजभाषा के समर्थन को दोहराते भर रहें। अब समय पूछ रहा है कि आपने स्वयं में हिंदी को कितना आत्मसात किया है, कितना प्रयास, उद्यम और समर्थन किया है? क्या कारण है कि हिंदी के विकास के सम्मेलनों का आयोजन करना पड़ता है? हिंदी का उद्गम देव भाषा से है, जो गंगा के उद्गम गंगोत्री जैसा ही शुद्ध, पावन और दिव्य है। हिंदी के प्रति आपकी उदासीनता से नहीं, आपकी प्रियता और निजता ही हिंदी के विकास की बहुमुखी दिशाएँ प्रशस्त कर सकती है।

हिंदी में गाई हुई प्रार्थना, गीत-संगीत पर्व, यज्ञ, पूजा, नृत्य, सांस्कृतिक कार्यक्रम, अभिवादन आदि से भाषा के साथ संस्कार और भारतीय संस्कृति से अनजाने ही बच्चे परिचित हो जाते हैं। अतः भाषा से संस्कृति को जोड़िए।

विद्यार्थियों के संदर्भ में—विद्यार्थियों को हिंदी में अच्छे अंकों के लिए प्रोत्साहन और वरीयता देने से वे हिंदी के पेपर को महत्व देंगे। कल हिंदी का पेपर है, उँह क्या पढ़ना? हिंदी के प्रश्न-पत्र के लिए यह सामान्य

मनोवृत्ति है। हिंदी की परीक्षा की उपेक्षा एक दोषपूर्ण दृष्टि है, जिसका एक मात्र कारण है कि हिंदी के आधार पर नौकरियों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। इस मनोवृत्ति ने हमारी भाषाई संस्कृति को बहुत क्षति पहुँचाई है। आर्थिक लाभ का आकर्षण जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। अतः नौकरियों के चयन में भी हिंदी ज्ञान की वरीयता को दृढ़ता से उजागर होना चाहिए।

जनसामान्य के उपभोग की वस्तुओं में हिंदी की ही प्रधानता हो, जैसे किसानों से लिए खाद, बीज,

उर्वरक, कीट-नाशक, दवाइयों के नाम हिंदी में ही होने चाहिए भले ही साथ में इंग्लिश हो। भारत के बहुत बड़े हिंदी समाज पर आज विश्व बाजार की दृष्टि है, अतः आर्थिक लाभ के लिए भी हिंदी के प्रति रुचि का विस्तार हो रहा है। संचार साधनों से सारा ही विश्व सिमटकर कंप्यूटर पर आ गया है, जिसके माध्यम से भी हिंदी भाषा में व्यापार होते हैं। इस क्षेत्र में आधुनिक तकनीक का अपूर्व योगदान है।

राष्ट्रीय विमर्श की भाषा बने।

हिंदी का विकास शब्दावली नहीं, आचरण में लाने का राष्ट्रीय आह्वान है जो व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनयिक और सरकारी तंत्र के सहयोग से ही संभव है। सभी विकसित देशों में चीन, जापान, रूस आदि उनकी अपनी भाषा का वर्चस्व है। संभवतः भारत ही एक ऐसा देश है, जिसके पास पाणिनी जैसा व्याकरणाचार्य, संस्कृत जैसी वैज्ञानिक देवभाषा, हिंदी जैसी समृद्ध भाषा है, किंतु पराई भाषा में अपने मूल भावों को भावित करते हैं। यह भाषाई कुंठा राष्ट्र के विकास का मनोवैज्ञानिक अवरोध है। गुजराती भाषी श्री मोदीजी अपनी राष्ट्र भाषा हिंदी में संबोधित कर भारत राष्ट्र के प्रधानमंत्री बने। भाषा के साथ योग संस्कृति का शंखनाद विश्व में किया। यह हिंदी के विकास का प्रबल, प्रामाणिक प्रेरणा स्रोत है।

भारत में आयोजित कोई भी अंतरराष्ट्रीय समारोह का आयोजन हो, उसके प्रचार में पहले अपनी हिंदी में लिखो। उसके नीचे अन्य भाषा को स्थान मिले। हिंदी भाषा में सृजन की अनंत संभावनाएँ हैं। छोटे-छोटे सूक्त, जिसमें विकास के बीज सन्निहित हैं।

आधुनिक तकनीकी युग ने उस क्षति को बड़ी सुंदरता से और अधिक सृजनात्मक बनाकर विश्व पटल पर हिंदी को प्रसारित कर दिया है। सूचना-प्रौद्योगिकी की युवा क्रांति ने विश्व को बता दिया है कि हिंदी की भाषाई शक्ति और संपदा का भी अपना वर्चस्व है। आज तकनीकी प्रगति में संचार, संवाद, रेडियो, प्रकाशन में पत्र-पत्रिकाएँ, हिंदी ब्लॉग आदि अंतरराष्ट्रीय अंतर्संबंधों

में एक नई क्रांति की है। सबसे प्रबल और सार्थक योगदान हिंदी में टाइप करने का है, जिसने हिंदी को अद्भुत प्रगति दी है, एक तरह से क्रांति ला दी है। योग, ध्यान, अध्यात्म और आयुर्वेदिक औषधीय ज्ञान पाने को आज पूरा विश्व भारत की ओर ही उन्मुख है और यह भी सत्य है कि किसी भी देश की संस्कृति को उसकी अपनी भाषा के बिना नहीं जाना जा सकता। भारतीय संस्कृति के सम्यक् ज्ञान के लिए संस्कृत और हिंदी का ज्ञान आवश्यक है। संस्कृत तो कंप्यूटर के लिए सर्वाधिक सटीक भाषा सिद्ध हो ही चुकी है। संस्कृत और हिंदी की वैज्ञानिकता और प्रमाणिकता आज सर्वसिद्ध है। हिंदी अक्षय वट है, इसके विस्तार की प्रबल और असीम संभावनाएँ हैं।

युग पुरुष स्वामी दयानंद की मातृ भाषा गुजराती थी और वे स्वयं संस्कृत के उद्भट विद्वान्, वक्ता, व्याख्याकार और वेदों के भाष्यकार थे। उन्होंने 10 अप्रैल, 1875 में आर्य समाज की स्थापना मुंबई में की और प्रथम धार्मिक ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा, जो हिंदी में है। उससे पहले वैदिक ग्रंथ संस्कृत में, पारसी ग्रंथ पारसी में, बौद्ध ग्रंथ पाली में, जैन धर्म प्राकृत और मागधी में, ईसाई हीब्रू और सिख ग्रंथ गुरुमुखी भाषा में लिखित है। पहला हिंदू धर्म ग्रंथ हिंदी में 'सत्यार्थ प्रकाश' है। उसी सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति, जिसे एक गिरमिटिया ने मॉरीशस से भारत जाते हुए किसी को दी थी, मॉरीशस में उसी एक 'सत्यार्थ प्रकाश' की प्रति ने आर्य समाज की स्थापना के बीज बोए। यह हिंदी साहित्य की शक्ति का अद्भुत और सत्य दृष्टांत है, उदाहरण है।

हिंदी का विकास मात्र शब्दावली नहीं, आचरण में लाने का राष्ट्रीय आह्वान है।

भारत में आयोजित कोई भी अंतरराष्ट्रीय समारोह का आयोजन हो, उसके प्रचार में पहले अपनी हिंदी में लिखो। उसके नीचे अन्य भाषा को स्थान मिले। हिंदी भाषा में सृजन की अनंत संभावनाएँ हैं।

□

आँगन में फैले उजास

— श्रीमती चित्रा देसाई

हिंदी राजभाषा, संपर्क भाषा, जन भाषा के स्तर को पार कर विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। भाषा विकास के क्षेत्र से जुड़े वैज्ञानिकों की तो यह भविष्यवाणी है कि आनेवाले समय में विश्वस्तर पर अंतरराष्ट्रीय महत्त्व की जो चंद भाषाएँ होंगी, उनमें हिंदी प्रमुख होगी। संयुक्त राष्ट्रभाषा में हिंदी आधिकारिक भाषा हो जाए, इसके लिए प्रयास जारी है। लेकिन इन सबके बावजूद हिंदी परिवेश के ही लोगों ने हिंदी को वह स्थान नहीं दिया, जिसकी वह अधिकारी है। क्या हमारे घरों में हिंदी गूँज रही हैं? हम बड़े-बड़े मंचों से हिंदी के 'अंतरराष्ट्रीय संदर्भ' की बात करते हैं, पर अपने ही घर में गंभीरता से नहीं लेते। एक अजीब धारणा बन गई है कि अंग्रेजी बोलनेवाला ज्यादा ज्ञानी और बुद्धिमान है। हिंदी भाषी एक हीन भावना से ग्रसित है। हालाँकि अंग्रेजी पढ़ने-लिखने और समझनेवालों का प्रतिशत, चार प्रतिशत से भी कम माना जाता है और इन चार प्रतिशत लोगों की मातृभाषा भी अंग्रेजी नहीं है। अंग्रेजी उनकी औपचारिक भाषा है।

अब सवाल उठता है कि किन माध्यमों से हम हिंदी को ज्यादा बढ़ावा दे सकते हैं? संचार के माध्यम के रूप में पत्र-पत्रिकाओं का हमेशा एक सार्थक योगदान रहा है। आज के दौर में कंप्यूटर और इंटरनेट के प्रति बहुत रुझान बढ़ा है। सांस्कृतिक रूप से विशाल देश के लिए अपनी सांस्कृतिक विरासत को सँजोए रखना कोई

आसान काम नहीं है। भारत विश्व का एक ऐसा देश है, जहाँ भाषा की विविधता के बावजूद सदियों से एक सामासिक संस्कृति विकसित होती रही है। इसे विकसित करने में सबसे बड़ा योगदान है, संपर्क भाषा का। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी में भारत की सभी भाषाओं को जोड़ते हुए, उनके शब्दों को आत्मसात करते हुए, पूरे देश को एकता के सूत्र में बाँधने का काम किया है, लेकिन इन दिनों हम देखते हैं कि हिंदी का प्रयोग हमारे ही घरों में कम होने लगा है। अंग्रेजी के प्रति एक विशेष आकर्षण रहता है। अंग्रेजों से लड़ना और उन्हें वापस भेज देना शायद ज्यादा आसान था, लेकिन यहाँ रह रहे अंग्रेजी मानसिकता वालों को भारतीय होने का गौरव सिखाना बड़ा जटिल काम है। भाषा सिखाने और बढ़ाने के तकनीकी माध्यम तो हैं ही, पर अपनी भाषा हिंदी के प्रति रुझान पैदा करने का सबसे बड़ा माध्यम माँ होती है। हम कई बार किसी के घर जाते हैं तो छोटे बच्चे को तुरंत हाजिर कर उसे नर्सरी पोयम सुनाने को कहा जाता है। 3-4 साल का बच्चा तुरंत सुनाने लगता है, 'ट्विंकल ट्विंकल लिटल स्टार, हाउ आय वंडर व्हाट यू आर?' पूरे हाव-भाव से ये नर्सरी पोयम सुनाया जाता है। मुझे हमेशा एक प्रतीक्षा रहती है कि कब ये बच्चा गाएगा—

मछली जल की रानी, जीवन उसका पानी है,
हाथ लगाओ डर जाएगी,
बाहर निकालो मर जाएगी।'

कब हमारे घर की माँ इस अंग्रेजी मानसिकता से उभर पाएगी? क्योंकि सबसे पहले भाषा का ज्ञान घर में ही होता है। यह हीन भावना अचानक नहीं हुई है, क्योंकि इसकी नींव लॉर्ड मैकाले ने सन् 1835 में ही रख दी थी। 2 फरवरी, 1835 में मैकाले ने ब्रिटिश संसद् को संबोधित किया था। लॉर्ड मैकाले भाषा की प्रति एवं व्यक्तित्व निर्माण में उसकी भूमिका भली-भाँति समझते थे। उन्होंने ब्रिटिश संसद् के सामने अपने संबोधन में कहा, “मैंने भारत के ओर-छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति और प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश पर विजय पाई जा सकती है, जब तक कि हम इसकी सांस्कृतिक और नैतिक मेरुदंड को तोड़ न दें। इसीलिए मैं ये प्रस्तावित करता हूँ कि भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें।” मैकाले की शिक्षा नीति हमारे विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में ही नहीं, पर हमारे घरों में भी पहुँच गई है। लॉर्ड मैकाले ने ही एक और पत्र में लिखा था, “मैं नहीं कह सकता कि भारत राजनीतिक रूप से हमारे अधीन रह पाएगा, लेकिन इतना मैं अवश्य करके जा रहा हूँ कि यह देश राजनीतिक स्वतंत्रता पा लेने के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकेगा...” मैकाले की भविष्यवाणी हमने कैसे सच होने दी! हम कब तक मैकाले की सोच को सही साबित करते रहेंगे?

हमारे भीतर एक पीड़ा कुलबुलाती रहती है कि अभी तक संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी आधिकारिक भाषा नहीं बनी है, पर महत्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि हमारे परिवारों में हिंदी की उपेक्षा क्यों हो रही है? हमें गर्व होना चाहिए कि विश्व की सभी भाषाओं में हिंदी का विशेष स्थान है। यह सबसे ज्यादा बोली और समझी जानेवाली भाषा है। कितने ही देशों में हिंदी गूँजती है। दरअसल, कोई भी भाषा सिर्फ संवाद के लिए नहीं होती, परंतु संस्कृति वाहक भी होती है। “देखो मौसी

क्या लाई है?” “बुआजी को पानी दो।” “गरमियों की छुट्टियों में हम नानी के घर जाएँगे।” “मामाजी हमारे लिए नया खिलौना लाए हैं।” इत्यादि। ये वाक्य बनाने की प्रक्रिया हमारे पाठ्यक्रम का अभ्यास मात्र नहीं थी, पर हमारे घरों में भी ऐसे ही संबोधनों के जरिए संबंधों का अभ्यास कराया जाता था। अब हमने सब संबोधनों को ‘अंकल-आंटी’ में समेट दिया है! बुआ, मामी, मौसी, चाची, ताई वगैरह के संबोधन हमारे आँगन में संबंधों की महक बिखेर देते हैं। रोजमर्रा की भाषा में हमारे उत्सव कहाँ हैं? इस भाषा में हम सपने देखते हैं। हमारी आकांक्षाएँ, संस्कृति, कहानियाँ, तीज-त्योहार, रिश्ते-नाते सभी तो हिंदी में चहकते हैं। सावन की तीज का क्या अनुवाद हो सकता है? फागुन अंग्रेजी में कैसे खेल सकते हैं? भाषा सिर्फ बोलचाल के लिए ही नहीं प्रयोग होती, पर उसमें हमारा अस्तित्व बसता है। हम सदा अपनी ही भाषा में सपने देखते हैं।

मैकाले के विचारों पर खड़ी इमारत को कैसे तोड़ें? उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एन.एन. वेंकटचलैया की खंडपीठ ने निर्णय दिया था कि “प्रारंभिक स्तर पर बच्चों की शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए, क्योंकि मातृभाषा में दी गई शिक्षा ही संस्कृति एवं परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है।” उन्होंने सही कहा था, परंतु ऐसे निर्णयों के बावजूद महानगरों में ही नहीं, पर हर शहर, हर कस्बे और गाँव में अंग्रेजी स्कूल खुल रहे हैं, क्योंकि माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेजी में ही शिक्षा देना चाहते हैं। बहुत लोगों ने यह मान लिया है कि ज्ञान, नौकरी और नए संसार की भाषा अंग्रेजी है। हम अपने आस-पास ही देखें तो अंग्रेजी का जितना बोलबाला और अंग्रेजी की उपेक्षा आज हो रही है, उतनी अंग्रेजों के समय में भी नहीं हुई थी। सार्वजनिक और सामाजिक रूप में ही नहीं, परंतु निजी जीवन में भी। पर इसका कारण क्या है? प्रतिष्ठा के लिए? या हमारे मध्यमवर्ग की धारणा के कारण कि सिर्फ अंग्रेजी ही हमें विकसित बनाएगी।



बार-बार भूमंडलीकरण का हवाला दिया जाता है, पर ये भूल जाते हैं कि भूमंडलीकरण का हमारी भाषा, ज्ञान और संस्कृति से कोई संबंध नहीं। यह तो और देशों में भी हुआ है, लेकिन यह विकास उन्होंने अपनी भाषा में किया। चीन, जापान, जर्मनी और फ्रांस इत्यादि कितने ही देश अपनी भाषा के माध्यम से ही आगे आए हैं। भाषा कभी भी विकास में बाधा नहीं बनती।

जैसे-जैसे वैश्वीकरण बढ़ेगा, हिंदी भी बढ़ेगी। यदि किसी जर्मन, फ्रांसिसी, चीनी को अपना सामान भारत में बेचना है तो वह अपनी भाषा में सामान नहीं बेचेगा। उसे करोड़ों लोगों तक अगर पहुँचना है तो वह हिंदी का ही सहारा लेगा।

बिल गेट्स को क्या जरूरत थी कि उसने अपने सॉफ्टवेयर भारतीय भाषाओं में भी बनाए? रूपोर्ट मर्डोक ने अपने चैनल हिंदी में क्यों चलाए? मोबाइल फोन वाली विदेशी कंपनियाँ अपने-अपने फोन में भारतीय भाषाओं की सुविधा क्यों दे रही हैं? अमेरिका, चीन और कितने ही अन्य देशों की सरकारें हिंदी सीखने-सिखाने में करोड़ों खर्च कर रहे हैं। जितना बाजारवाद बढ़ेगा, हिंदी उतनी ही आगे बढ़ेगी। जितना बड़ा बाजार हिंदी के पास है, उतना शायद किसी के भी पास नहीं।

सबसे बड़ी जिम्मेदारी माँ पर आती है। माँ की भाषा ही बच्चे की भाषा मानी जाती है और इसीलिए मातृभाषा कहते हैं, पर जब माँ ही हीन भावना से ग्रसित होगी, तो बच्चा कैसे अच्छा रह सकता है? बहुत सी महिलाएँ बड़ी-बड़ी कंपनियों में काम करती हैं। वहाँ उन्हें सिर्फ अंग्रेजी में बोलना पड़ता है और उसी मानसिकता को वे घर में ले आती हैं। बच्चों से भी सिर्फ

अंग्रेजी में ही बातचीत करती हैं। सब पाठशालाएँ भी इसी बात पर जोर देती हैं कि बच्चा हिंदी नहीं, अंग्रेजी बोले। जिन बच्चों की माँ अंग्रेजी नहीं बोल पाती, वह अपने बच्चों का आदरभाव खो रही हैं। ये समझने की जरूरत है कि हिंदी किसी भाषा से कमतर नहीं। हमें यह समझना चाहिए कि विश्व के अनेक देशों में हिंदी फैल रही है। वह अपनी पहचान बना रही है। हमारी संवेदना हमारे भावों में ही निखरती है। अगर किसी समाज को उसकी भाषा से काट दिया जाए तो वह हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। किसी भी समाज को अपनी ही भाषा में जीना होगा, वरना उसकी अस्मिता कुंठित हो जाएगी।

ये समझने की जरूरत है कि हिंदी किसी भाषा से कमतर नहीं। हमें यह समझना चाहिए कि विश्व के अनेक देशों में हिंदी फैल रही है। वह अपनी पहचान बना रही है। हमारी संवेदना हमारे भावों में ही निखरती है। अगर किसी समाज को उसकी भाषा से काट दिया जाए तो वह हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। किसी भी समाज को अपनी ही भाषा में जीना होगा, वरना उसकी अस्मिता कुंठित हो जाएगी।

हम जन माध्यम और हिंदी की बात करें तो तकनीकी माध्यम तो हैं ही, पर सबसे बड़े भाषा सिखाने के माध्यम घर और प्राथमिक पाठशाला ही हैं। दूसरी भाषाएँ ज्ञान की खिड़की या रौशनदान हो सकते हैं, पर घर का दरवाजा तो हिंदी ही है। 'विश्व गाँव' में प्रवेश के लिए अंग्रेजी सीखें, लेकिन प्राथमिक शिक्षा के माध्यम के रूप में नहीं। तुलसी के मानस की चौपाइयाँ, लोकगीत, लोककथाएँ हमारे सांस्कृतिक

दस्तावेज हैं। मूल बात यही है कि घर में हिंदी रहेगी तो बाहर फैलेगी। हम अपनी हिंदी भाषा और संस्कृति के प्रति सचेत रहें तो शायद हमारा भारतीय मन हावी हो जाए—बादल छटें और धूप-सी उजरी अपनी भाषा हिंदी का उजास फैले...।

□

3ए-302, ऑकलैंड पार्क,
यमुना नगर, लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स,
अँधेरी (वेस्ट), मुंबई-400053, (महा.)

हिंदी : भाषा और संस्कृति

—डॉ. कपिल तिवारी

भाषा और भाषा की व्याप्ति के क्षेत्र का सांस्कृतिक आधार एक सुदीर्घ परंपरा में निर्मित होता है। भाषा स्वयं एक संस्कृति की रचना करती है और एक सांस्कृतिक परंपरा की ज्ञानात्मक तथा सर्जनात्मक शक्ति उसके पीछे सक्रिय रहती है।

भाषा का यह आधार केवल भाषा के संप्रेषण क्षेत्र और उसकी रचना की समकालीनता से नहीं बनता। इससे भी नहीं कि उस भाषा को कितने करोड़ लोग बोलते-समझते हैं। यद्यपि भाषिक व्याप्ति, एक भाषा की अपनी शक्ति और उस भाषिक संप्रेषण के व्यवहार का विस्तार उसे भाषिक विश्व में महत्वपूर्ण बनाता है।

इस दृष्टि से हिंदी जो खड़ी बोली हिंदी के रूप में पिछले डेढ़ सदी में विकसित और व्यापक हुई है। भाषा के इतिहासों में इतनी कम अवधि में संप्रेषण से काव्य भाषा तक हिंदी खड़ी बोली की यात्रा आश्चर्यजनक ही कही जाएगी।

भारत जैसे बहुभाषी देश में आजादी के आंदोलन में हिंदी की भूमिका अविस्मरणीय है। वह स्वतंत्रता आंदोलन की चेतना शक्ति लेकर आगे बढ़नेवाली भाषा के रूप में विकसित हुई है, इसलिए उसने अंतर्भारती संप्रेषण और संवाद को संभव करनेवाली भाषा के रूप में ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया है। बीसवीं सदी को गद्य की सदी कहा गया। गद्य के सभी रूपों

में इस सदी ने स्वयं को काव्य और काव्य संवेदना से धीरे-धीरे कथा और पत्रकारिता की ओर मोड़ा। भाषा के रूप में हिंदी के विकास में आजादी के आंदोलन की चेतना और हिंदी गद्य के विकास में पत्रकारिता का अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

गद्य की सदी के रूप में बीसवीं सदी की पहचान के लक्षण स्वयं यूरोप में अंग्रेजी, फ्रांसीसी और विशेष रूप से रूसी कथा गद्य के आश्चर्यजनक उन्मेष में प्रकट हुए थे। साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण भाषिक परंपराओं में 'काव्य' से 'कथा' की ओर यह उन्मेष एक अद्भुत घटना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि समृद्ध भाषिक परंपराओं में कविता रचना नहीं हो रही थी। इसका तात्पर्य कुल इतना ही है कि 'काव्य संस्कृति' की केंद्रीयता दुनिया भर में टूट रही थी और वह स्वयं को 'कथा' में स्थानांतरित कर रही थी। पत्रकारिता ने गद्य के इस उन्मेष में अकल्पनीय विस्तार कर दिया और संप्रेषण की भाषिक संबोधि को सामान्य आदमी की अभिव्यक्ति से जोड़ दिया। भाषा के रूप में हिंदी की व्याप्ति और उसकी शक्ति को समझने में ये परिवर्तन महत्वपूर्ण हैं, इनकी अनदेखी करके हम हिंदी के आश्चर्यचकित कर देनेवाले भाषिक विकास को नहीं समझ सकते।

एक जीवन परंपरा का ज्ञानात्मक और सांस्कृतिक आधार किसी भाषा के अर्थबोध की समृद्धि



की वास्तविक भूमि होती है। हिंदी क्षेत्र जिन जनपदों को मिलाकर मिला है, उनकी अपनी भाषाई और सांस्कृतिक परंपराएँ तथा आध्यात्मिक और दार्शनिक परंपराएँ बहुत प्राचीन और समृद्ध रही हैं। अवधी, भोजपुरी, मैथिली, ब्रजभाषा, बुंदेली, राजस्थानी, हरियाणवी, कुमाऊँनी, गढ़वाली, बघेली, मालवी, निमाड़ी और छत्तीसगढ़ी भाषाएँ और उनकी लोक परंपराओं की विरासत इन्हें अकेले काव्य रचना और साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र, शिल्प, स्थापत्य और लोक की सामुदायिक जीवन परंपरा से पूर्ण करती है।

खड़ी बोली हिंदी के उद्भव के ठीक पहले तक ब्रजभाषा काव्य रचना का माध्यम थी। सभी जानते हैं कि तुलसीदास की 'रामचरितमानस' अवधी रचना है और मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' भी अवधी में ही लिखा गया। मानस के बाद सबसे लोकप्रिय आख्यान रचना 'आल्हखंड' की है, जो मानस की रचना से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व संभव हुआ। लोक कवि 'जगनिक' की इस अमर रचना को हिंदी क्षेत्र के अनेक जनपदों की भाषाओं में समादर मिला। विद्यापति, मीरा, कबीर और अष्टछाप के कवियों की महान् प्रार्थना कविता अतुलनीय रचना अवदान है।

यहाँ हमें समझना चाहिए कि ये अकेली भाषाएँ नहीं हैं, बल्कि समृद्ध और सुदीर्घ सांस्कृतिक परंपराएँ हैं। अवधी अकेली भाषा नहीं, एक पूरी लोक सांस्कृतिक जीवन परंपरा है, ठीक इसी प्रकार भोजपुरी, ब्रज और बुंदेली भाषा उसकी जनपदीय संस्कृतियों के बारे में समझना चाहिए।

हिंदी के साथ विराट् भाषिक और लोक सांस्कृतिक परंपराओं की शक्ति है। उसका 'ज्ञानात्मक और सांस्कृतिक' आधार विशाल है। हिंदी की व्याप्ति और प्रभाव में हिंदी क्षेत्र की भाषिक और सांस्कृतिक परंपराओं की निर्णायक भूमिका है।

यह चिंता की बात है कि खड़ी बोली हिंदी

की रचना और विमर्श, दोनों ही क्षेत्रों में अपने लोक आधार से हिंदी का संबंध कमतर होता चला गया है और उस पर यूरोपीय भाषियों के विमर्शों और रचना मुहावरे अधिक हावी होते गए हैं। अब हम प्रेमचंद, रेणु, नागार्जुन, परसाई, त्रिलोचन, केदार जैसे कवियों, कथाकारों को उनकी लोक संस्कृति और कथन के लिए स्मरण भर करते हैं। स्वयं लोक चेतना और देशज सोच से हम बहुत दूर हैं। हिंदी का सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक आधार हमारी समकालीन रचना में लक्षित नहीं होता, इसीलिए उसकी रचना संबोधि भाषिक दृष्टि से सीमित और इकहरी लगती है। रही-सही कसर संचार माध्यमों और बाजार में प्रचलित आधी हिंदी, आधी अंग्रेजी से पूरी कर दी है। संप्रेषण और संवाद से लेकर काव्य भाषा तक हिंदी की यह यात्रा अद्भुत है, लेकिन उसे समग्र सांस्कृतिक अर्थबोध की भाषा अभी बनना है। यदि वह अपने लोक सांस्कृतिक आधार से सटती है तो उसकी रचना में एक सपाटपन और तात्कालिकता होगी, अंततः वह स्मृतिभ्रंश का शिकार होकर अपना सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक बोध खो देगी।

खड़ी बोली हिंदी को स्वयं एक 'संस्कृति' बनने में अभी अनेक सदियाँ लगेगी। उसे अपने नृत्य-संगीत, चित्र-शिल्प और सांस्कृतिक जीवन परंपरा के साथ ही अपना दार्शनिक आधार भी रचना होगा, जो किसी भी भाषा का ज्ञानात्मक आधार होता है। भाषिक अर्थबोध का विस्तार करने में यहाँ 'संप्रेषण' की तरह छल्लाँग नहीं लगाई जा सकती। ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति और दर्शन के सभी क्षेत्रों में एक-एक कदम रखते, उसे यह कठिन यात्रा पूरी करनी होगी।

□

एम-5, निराला नगर,
दुष्यंत कुमार मार्ग,
नजदीक-सहयाद्री कॉम्पलेक्स,
भोपाल-462 003 (म.प्र.)

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी क्यों ?

—डॉ. सुशीला गुप्ता

आठवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयॉर्क में 13 जुलाई से 15 जुलाई, 2007 तक आयोजित हुआ था। मुझे इस सम्मेलन में सम्मिलित होने का अवसर मिला था। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सभागार में बैठे-बैठे सभी प्रतिनिधि स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहे थे। उन सभी के हृदय में विशेष उल्लास इस बात का था कि वह दिन दूर नहीं, जब हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में सातवीं आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति मिल जाएगी। राष्ट्रसंघ के सभागार में कार्यक्रम का आयोजन मानो अप्रत्यक्ष रूप से यह घोषित कर रहा था कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी-प्रेमियों की अभीप्सित इच्छा शीघ्र ही पूरी होनेवाली है।

18-20 अगस्त, 2018 को मॉरीशस की इंद्रधनुषी भूमि पर ग्यारहवें विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। पहला विश्व हिंदी सम्मेलन 10-12 जनवरी, 1975 को नागपुर में आयोजित हुआ था। विश्व एकता और सामाजिक भाईचारे के संदेश के साथ सम्मेलन के विभिन्न वक्ताओं का स्वर गूँजता रहा। इस सम्मेलन में सर्वप्रथम हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति दिलाने की बात उठाई गई थी। प्रस्ताव आया था, मॉरीशस के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य श्री दयानंद बसंत की ओर से। इस सम्मेलन में डॉ. कर्ण सिंह ने भी जोरदार शब्दों में सुझाया था कि करोड़ों लोगों की हिंदी भाषा को विश्व भाषा के रूप में

स्वीकृति मिलनी ही चाहिए। समापन-सत्र में सर्वसम्मत पारित मंतव्य में सबसे महत्वपूर्ण था—संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थान दिया जाए।

सन् 1978 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की जनरल असेंबली में तत्कालीन विदेश मंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने हिंदी में अपने विचार प्रस्तुत किए थे। इसका सर्वत्र स्वागत हुआ था। कुछ संकीर्ण विचारवाले आलोचकों ने उन्हें 'हिंदी का दुराग्रही' कहा और आरोप लगाया कि वाजपेयीजी के हिंदी भाषण पर देश की गाढ़ी कमाई का करोड़ों रुपया खर्च हुआ। ठीक दस वर्ष बाद विदेश मंत्री श्री नरसिंह राव ने संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली में हिंदी में अपनी बात रखी। वाजपेयीजी ने स्वीकार किया कि दस वर्षों बाद जनरल असेंबली में ऐसी धाराप्रवाह हिंदी सुन अनेक सदस्यों ने बधाई दी। उन्होंने लिखा है, "विदेश मंत्री श्री नरसिंह राव ने संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेंबली में हिंदी में अपने विचार व्यक्त करके भारत देश की अदम्य आकांक्षा को वाणी प्रदान की।" "जहाँ तक हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में एक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने का प्रश्न है, यह कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना कि ऊपर से दिखाई देता है।"

प्रश्न उठता है, संयुक्त राष्ट्रसंघ में ऐसी क्या खासियत है कि हिंदी को उसमें आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति दिलाने की लालसा भारतीयों को ही



नहीं, विदेशों में बसे भारतवंशियों के दिलों में भी है। डॉ. संजीव कुमार के शब्दों में “मानवता की रक्षा, सुख, शांति, सहअस्तित्व, आपसी सहयोग और कल्याण के लिए संपूर्ण विश्व में यदि कोई प्रयासरत है तो वह निश्चित तौर पर संयुक्त राष्ट्रसंघ है।” यह एक ऐसे स्तंभ की तरह है, जिसने अनेक बार संसार को युद्ध विभीषिका से मुक्त रखा अर्थात् भारतीय मतानुसार ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ तथा ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ के दर्शन को संसार में स्थापित करने का कार्य किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ विश्व के विकसित और विकासशील देशों के मध्य सदैव आपसी सहयोग, सहानुभूति, सद्भावना, सहिष्णुता एवं संवेदना के धरातल पर शांति की गंगा प्रवाहित करने में लगा है।”

जहाँ तक संयुक्त राष्ट्रसंघ के गठन का प्रश्न है, राम चौधरी के अनुसार जब द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनी पराजित हुआ तो 25 अप्रैल, 1945 को अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को में अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस, चीन और स्पेन के प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई, जिसमें संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रारूप पर सहमति बनी। 26 जून, 1945 को विश्व के 51 देशों ने उसे स्वीकार किया और 26 अक्टूबर, 1945 को राष्ट्रसंघ का प्राधिकार (चार्टर) लागू किया गया। ये पाँचों देश राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य बने और उन्हें विशेषाधिकार (वीटो) प्राप्त हुआ। इस प्रकार अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, चीनी तथा स्पेनिश को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया और यह साबित हो गया कि ये पाँचों भाषाएँ विश्व-भर में अत्यंत सशक्त भाषाएँ हैं और इनका प्रभुत्व सर्वमान्य है। आगे चलकर सन् 1971 में अरबी भाषा को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक छठवीं भाषा के रूप में मान्यता मिली।

राष्ट्रसंघ के प्राधिकार के अनुसार, किसी भी भाषा को राष्ट्रसंघ की भाषा का दर्जा तभी मिल सकता है, जब राष्ट्रसंघ की जनरल असेंबली के दो-तिहाई सदस्यों का अनुमोदन प्राप्त हो।

भोपाल (भारत) में आयोजित दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन में—प्रथम सम्मेलन में पारित वही मंतव्य दोहराया जाता रहा। भारत सरकार से यह निवेदन किया गया कि वह हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा स्वीकृत कराने की पहल करे।

हमें वास्तविकता का सामना करना चाहिए। हमें यह ज्ञात होना चाहिए संप्रति संयुक्त राष्ट्रसंघ की जनरल असेंबली के 197 सदस्य हैं। जब तक हिंदी को दो तिहाई देशों का अनुमोदन नहीं मिल जाता, तब तक हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता नहीं मिल सकती।

अटल बिहारी वाजपेयी के शासन काल में तत्कालीन विदेश मंत्री ने सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में घोषित किया था कि वे राष्ट्रसंघ की जनरल असेंबली की सितंबर 2003 की बैठक में हिंदी को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाए जाने का प्रस्ताव रखेंगे, लेकिन यह प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सका।

दिल्ली (भारत) में आयोजित तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन समारोह में श्रीमती महादेवी वर्मा के उद्गार हमारी आँखें खोलने वाले हैं। उन्होंने कहा था, “आपको एक व्रत लेना ही होगा कि हमें अपने राष्ट्र को वाणी देनी है, यानी अपने को ही देनी है। कोई विचार, कोई जनतंत्र बिना भाषा के नहीं आता। तो, मुझे जब बहुत अभिनंदन, वंदन किया तो मैंने कहा कि भाई, देवता को आपने बाहर कर दिया है और पुजारी को आप अभिनंदन दे रहे हैं। तो, हम जो हिंदी के नाम से बैठे हैं, अगर हिंदी को लाते नहीं हैं और हिंदी ऐसे ही रखते हैं तो हिंदी के नाम से हम एकत्र होकर क्या करेंगे और जो विदेश के बंधु आए हैं, वे बेचारे मन-ही-मन क्या सोचेंगे!” हम अकसर ऐसी बात करते हैं, राष्ट्रसंघ की बात करते हैं, उधर की बात करते हैं। बिना अंतरराष्ट्रीय हम जी नहीं सकते और राष्ट्रीय होने की हमें चिंता नहीं है तो यह तो ऐसे ही हुआ कि पेड़ को आप काट दीजिए और फिर संगमरमर के चबूतरे रोप

दीजिए। अंतरराष्ट्रीय वही हो सकता है, जिसकी राष्ट्र में जड़ें हों। जिसके राष्ट्र में जड़ ही नहीं है, वह क्या अंतरराष्ट्रीय होगा ?”

हिंदी के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ में आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकृति दिए जाने के लिए भारत के पास ठोस कारण हैं। सबसे बड़ा कारण है, विश्व-स्तर पर हिंदी बोलनेवालों संख्या। सन् 2017 के नृजाति वर्णन के 20वें संस्करण के अनुसार हिंदी (हिंदी और उर्दू मिलाकर) बोलनेवालों की संख्या लगभग 3291 लाख है और विश्व-स्तर पर इसका चौथा स्थान ठहरता है। सबसे ज्यादा अपनी भाषा बोलनेवाले चीनी हैं, जिनकी संख्या लगभग 3782 लाख के आस-पास है। इस संबंध में कुछ विशेषज्ञ भ्रामक तसवीर पेश करते हैं और हिंदी का स्थान तीसरे क्रमांक पर रखते हैं और कुछ विद्वान् तो अपने शोध के बल पर हिंदी को विश्व की सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा के रूप में पेश करते हैं। लेकिन नृजाति-वर्णन के मुताबिक हिंदी बोलनेवालों की जो भी अनुमानित संख्या है, वह उसे संयुक्त राष्ट्र भाषा की आधिकारिक भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

हिंदी भाषा की वैज्ञानिकता इसकी सबसे बड़ी विशेषण है। हिंदी जिस रूप में बोली जाती है, उसी रूप में लिखी जाती है। इसने अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को ‘बहता नीर’ बनकर आसानी से पचा लिया है, इसलिए हिंदी का शब्द-भंडार बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। अंग्रेजी के शब्द कोश में प्रति वर्ष हिंदी के कुछ शब्द सम्मिलित कर लिए जाते हैं, इस प्रकार अंग्रेजी भाषा का आकर्षण भी हिंदी के प्रति कम नहीं है।

वर्तमान भूमंडलीकरण और औद्योगीकरण के युग में समूचे विश्व के लिए भारत एक बहुत बड़ा बाजार साबित हो रहा है। दूर-सुदूर के उद्योगपति और व्यापारी भारत के साथ अपना संबंध मजबूत करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इस कारण विदेशियों के बीच भारतीय संस्कृति को समझने और हिंदी सीखने के लिए प्रयत्न तेजी से बढ़ रहा है। ‘हिंदुस्तानी प्रचार सभा’, मुंबई में विदेशियों को हिंदी सिखाई जाती है, मुंबई के अनेक दूतावासों में कार्यरत कर्मचारी हिंदी सीखने आते हैं। वे देश-विदेश में हिंदी का परचम लहरा रहे हैं और भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। इटली, फ्रांस, इंग्लैंड, अमेरिका, श्रीलंका, स्पेन, जर्मनी, रूस, ऑस्ट्रेलिया आदि देशों से मुंबई आए हुए कर्मचारी हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। ‘हिंदुस्तानी प्रचार सभा’ में अक्सर बॉन यूनिवर्सिटी (जर्मनी) के विद्यार्थी हिंदी का छह सप्ताह का लघु पाठ्यक्रम सीखने के लिए आते हैं। वे

काम-चलाऊ हिंदी तो सीख ही लेते हैं, साथ ही भारत के तीज-त्योहारों और भारतीय संस्कृति के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते हैं।

विश्व-विदित तथ्य है कि भारतीय संस्कृति विश्व इतिहास में प्राचीनतम संस्कृति है। दुनिया की अनेक संस्कृतियाँ धीरे-धीरे समाप्तप्रायः हो चुकी हैं, किंतु भारतीय संस्कृति कई हजार साल की संघर्षपूर्ण यात्रा के बाद आज भी जीवित है। श्री हरिदत्त विद्यालंकार का कथन है कि “सर्वांगीणता, विशालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियाँ उसकी समता नहीं कर सकतीं।” इसी भारतीय संस्कृति को देखने-



समझने और जानने-परखने के लिए विश्व-भर के यात्री भारत-भ्रमण के लिए आते रहते हैं।

जयशंकर प्रसाद ने यों ही नहीं कह दिया था—

‘अरुण यह मधुमय देश हमारा।’

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।’

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इतने विशाल भारत देश की ऐसी समृद्ध भाषा को वह गौरव क्यों नहीं मिल रहा है, जिसकी वह हकदार है। क्यों वह संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा पाने से वंचित है?

कहीं ऐसा तो नहीं कि संयुक्त राष्ट्र में ही हिंदी भाषा को स्वीकृति मिलने पर हम भारतीयों की चेतना जाग्रत होगी और हम दिलो-जान से हिंदी को अपनी और अपने देश की अस्मिता से जोड़ना सीखेंगे। मॉरीशस की भूमि में ही स्वर्गीय बालकवि बैरागी ने कहा था—“आइए, इस अवसर पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को याद करें। उन्होंने देश की आजादी प्राप्त करने के लिए देश में एकता की भावना स्थापित की थी और सर्वव्यापी आंदोलन छेड़ दिया था। उनके नेतृत्व में हमें राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिल गई, लेकिन भाषाई स्वतंत्रता प्राप्त करने का कार्य शेष रह गया।”

आज देश को फिर से एक अदद गाँधी की आवश्यकता है, जो सब देशवासियों को चेता सके कि हम अपनी संस्कृति से छिटककर दूर नहीं जा सकते और हमें अपनी भाषाई अस्मिता की हिफाजत के लिए देश की मिट्टी से जुड़ना पड़ेगा। महात्मा गाँधी ने अपनी भाषा-नीति को रेखांकित करते हुए कहा था, “सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह हिंदी होनी चाहिए।” तात्पर्य यह कि जब तक राष्ट्रीय स्तर पर हम हिंदी को नहीं अपनाएँगे, तब तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को अपनाए जाने की बात हम कैसे कह सकेंगे?

आज भारत में हिंदी में शिक्षा ग्रहण करनेवाले को अच्छी नौकरी नहीं मिलती। चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी भी कर्ज लेकर और कोचिंग क्लास की भारी-भरकम

फीस देकर अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से पढ़ा रहे हैं, क्योंकि हिंदी माध्यम में उन्हें कोई भविष्य नहीं दिखाई देता।

आज हिंदी को ज्ञान की भाषा बनाने की आवश्यकता है। भारत के 10 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते हैं, केवल वे ही उच्च शिक्षा का पूरा लाभ ले पाते हैं।

श्री राम चौधरी की बात से हमें सहमत होना पड़ेगा कि “जब तक हम हिंदी को रोजी-रोटी की कारगर भाषा नहीं बनाते, तब तक वह उपेक्षित रहेगी। हमें हिंदी को ज्ञान-वाहिनी के रूप में प्रस्तुत तथा विकसित करना होगा।” सूचना प्रौद्योगिकी के अंतर्गत कंप्यूटरों द्वारा सूचना प्रसारण की योजनाओं के कार्यान्वयन की बात हो रही है। जितनी जल्दी हम हिंदी को समस्त ज्ञानवाहिनी भाषा बना सकें, उतनी जल्दी वह राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बन पाएगी।”

...अंत में महादेवी वर्मा के मार्गदर्शन पर अमल करने का प्रयत्न करके हम अपना अभीष्ट पा सकेंगे। हम पहले राष्ट्रीय स्तर पर स्वयं को साबित करें, देश की मिट्टी से जुड़ें, देश की सांस्कृतिक विरासत को अपनाएँ, अपनी भाषा के अभिमानी बनें, तभी हम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वयं को सिद्ध कर सकेंगे, तभी हम सवा सौ से अधिक देशों तक अपनी बात पहुँचा सकेंगे और उनका अनुमोदन प्राप्त कर सकेंगे।

अटलबिहारी वाजपेयी का अगर यह विश्वास है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में आधिकारिक मान्यता प्राप्त करने का कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना कि ऊपर से दिखाई देता है तो यह कहना तर्कसंगत होगा कि पवित्र साधन का मार्ग अपनाकर हम ‘चरैवेति’ का सिद्धांत अपनाएँ तो राष्ट्रसंघ में हिंदी को स्वीकृति दिलाने की कठिन डगर को अवश्य आसान बना सकेंगे।

□

सचिव, हिंदुस्तानी प्रचार सभा
मरीन लाइंस, मुंबई-400 002

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी : कुछ अहम सवाल

—डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव

भाषा के मामले में यदि भारत को विश्वशक्ति बनना है तो सर्वप्रथम हमें थोड़ा सतर्क होना होगा और अपनी खबर देनी होगी और दूसरों की खबर भी लेनी होगी। क्या हमारे पास कोई खबर तंत्र है? दुनिया के किसी भी देश में अगर हमारा संवाददाता है भी तो वह अपना सारा काम-काज अंग्रेजी में करता है। वह स्थानीय भाषा नहीं जानता। उसे असली बात, अंदरूनी बात पता नहीं चलती। अंग्रेजी के जरिए उसे जो कुछ बात चलता है, वही जूठन वह पाठकों को परोस देता है, वह भी अंग्रेजी में ही, जबकि वैज्ञानिक तरीका यह है कि खबर का संकलन स्थानीय भाषा में होना चाहिए और उसका संप्रेषण स्वभाषा में होना चाहिए। जिस देश में गंगा ही उल्टी बह रही हो, तो उसकी भाषा को विश्व अपनी भाषा कैसे मानेगा? हिंदी का लोहा सारी दुनिया तब मानेगी जब दुनिया की बड़ी-से-बड़ी खबर सबसे पहले हिंदी में प्रसारित होगी।

वास्तविकता है कि हिंदी कभी डंडे के जोर से नहीं फैली। वह जहाँ भी गई, प्रेम और परिश्रम का प्रतीक बनी। हिंदी की भूमिका न भारत में कभी शोषक की रही और न ही विश्व में वह कभी वैसी होगी, लेकिन अब यदि हिंदी को विश्वभाषा बनना है तो भारत को महाशक्ति बनना ही होगा। भारत के महाशक्ति बने बिना हिंदी विश्वभाषा कैसे बनेगी?

अभी तो हाल यह है कि भारत के छोटे-मोटे पड़ोसी राष्ट्र ही भारत भाषा को मान्यता नहीं देते तो महाराष्ट्र मान्यता क्यों देंगे? दक्षेस राष्ट्रों के सम्मेलन में भारत हिंदी का औपचारिक प्रयोग तक नहीं करता, इससे बढ़कर शोचनीय स्थिति क्या होगी? भूतपूर्व प्रधानमंत्री माननीय चंद्रशेखरजी ने प्रधानमंत्री के तौर पर हिंदी में भाषण दिया था। मालदीव सम्मेलन में उसका संपूर्ण दक्षिण एशिया की जनता में जबरदस्त स्वागत हुआ था, लेकिन इसके बाद फिर वही ढाक के तीन पात। यहाँ पर एक बात और हिंदी भाषा के अनिवार्य हो जाती है कि विश्वभाषा बनने के लिए हिंदी को विश्व बाजार, विश्व संचार, विश्व विचार, विश्व विज्ञान की भाषा भी बनना होगा। पिछले कुछेक वर्षों में ऐसा क्या हुआ कि विश्व के बाजार में जो भी वस्तुएँ बिकने आती हैं, उनके डिब्बों में सारे विवरण अरबी भाषा में भी होते हैं? हिंदी में क्यों नहीं होते हैं? अरब बाजार तो फैला ही है, वे लोग अपना काम भी अरबी में ही करते हैं, जबकि बाजार तो हमारा भी फैला ही है, भारत के बाजार में अंग्रेजी से ही सभी कार्य संपन्न होता हैं। हमारी तो चीजें सारी दुनिया में जाती हैं उन पर भी विवरण अंग्रेजी में होता है, जोकि ठीक है लेकिन हम कितने कमजोर हैं कि हमसे अपनी भाषा में भी कुछ नहीं होता। हमसे बढ़कर मूर्ख व्यापारी कौन होगा? यही हाल विश्व संचार का है। भारतीय

टी.वी. चैनल लगभग पूरी दुनिया में देखे जाते हैं, लेकिन क्या हमारी आकाशवाणी इतनी ताकतवर है कि वह बी.बी.सी. और वाइस ऑफ अमेरिका के टक्कर में खड़ी हो सके? क्या विश्व घटनाओं पर हम विश्व स्तरीय समाचार अपनी भाषा में दे पाते हैं? क्या हमारी दी हुई खबरें सुनने और देखने के लिए दुनिया कभी लालायित होती है? अगर नहीं तो हमारी भाषा विश्वभाषा कैसे बनेगी? भारत में आज तक कोई संपूर्ण समाचार समिति तक नहीं है। अंग्रेजी में चल रही दो समाचार समितियाँ किसी तरह अपना काम चलाती हैं और उनकी खबरों का अनुवाद करना ही तथा कथित हिंदी समाचार समितियों का स्थायी कार्यक्रम बन गया है। जब तक भारत में हिंदी की मौलिक, संपूर्ण और सबल समाचार समिति नहीं बनेगी, भारत के अखबारों, रेडियो और टी.वी. में सुधार नहीं होगा और जब तक वे विश्व स्तर के नहीं बनेंगे तो हिंदी कैसे विश्वभाषा बन पाएगी?

साहित्य के क्षेत्र में हिंदी की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, लेकिन विश्व स्तरीय चमत्कार होना अभी बाकी है। कविता, कहानी, उपन्यास में हिंदी सिकुड़कर रह गई है। ज्ञान-विज्ञान की मौलिक पुस्तकें कम दिखाई देती हैं। हिंदी में साहित्य का सबजबाग तो है, लेकिन शुद्ध विचार और शुद्ध बौद्धिकता का रेगिस्तान उससे कहीं अधिक लंबा-चौड़ा फैला हुआ है। यह कितनी विडंबनापूर्ण मान्यता है कि जो हिंदी जानते हैं, वे बौद्धिक नहीं हैं और जो बौद्धिक हैं वे हिंदी नहीं जानते। जहाँ भाषा और बौद्धिकता में विच्छेद हो, विपर्यय हो परांगमुखता हो, असंवाद हो, वहाँ कोई भी भाषा विश्वभाषा कैसे बन सकती है? जब तक श्रेष्ठतम् विचार, श्रेष्ठतम् कर्म, श्रेष्ठतम् दर्शन, श्रेष्ठतम् वैज्ञानिक खोज, श्रेष्ठतम् तकनीक हिंदी में प्रकट नहीं होगी, हिंदी विश्वभाषा कैसे बनेगी? बेशक साहित्य दिल के मसले हल करता है। वह बहुत जरूरी है, लेकिन जब दिमाग

और पेट के मसले हल करने की ताकत किसी भाषा में नहीं होगी तो उसे विश्वभाषा क्या, देशभाषा बनने में दिक्कत होगी। इसमें कोई दो राय नहीं कि हिंदी को विश्वभाषा बनने के लिए विश्वस्तरीय साहित्य का सृजन करना होगा। इसके साथ ही दुनिया की अन्य महत्वपूर्ण भाषाओं में यदि हमारी सभी प्रकार की रचनाओं का अनुवाद हो तो भारत और हिंदी का रुतबा बढ़ेगा। अन्य भाषाएँ हिंदी की महत्ता को अधिक आसानी से अंगीकार करेंगी, क्योंकि वे उनकी गुलाम कभी नहीं रहें, जैसा कि अंग्रेजी की वे आज भी हैं। भारत जिस दिन स्वभाषा में काम शुरू करेगा, विश्व में उसका स्वत्व भी पहचाना जाएगा और वह पहचान उसे महाशक्ति बनवाने में भी सहायक होगी। भारत का महाशक्ति बनना और हिंदी का विश्वभाषा बनना एक-दूसरे के पर्याय हैं।

अब यहाँ पर यक्ष प्रश्न यह उठता है कि आखिर हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा कैसे बनाया जाए? संयुक्त राष्ट्र संघ नाम से ही यह स्पष्ट है कि यह सभी राष्ट्रों की विश्व स्तरीय संस्था है। इसका भवन अमेरिका के न्यूयॉर्क में है। विश्व में शांति, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए यह संस्था बहुत कुछ करती रही है और वर्तमान में कर रही है। इस समय संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी काररवाई हेतु छह भाषाओं को स्वीकृति दे रखी है। ये भाषाएँ क्रमशः अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, स्पेनी, चीनी तथा अरबी हैं। हिंदी को अभी तक मान्यता नहीं मिली है। विश्व में संख्या की दृष्टि से हिंदी भाषा-भाषियों का स्थान पहला माना जा रहा है। केंब्रिज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ लैंग्वेजिज में विश्व की बीस प्रमुख भाषाओं में पाँच भारतीय भाषाओं का उल्लेख मिलता है। विश्व की तीन हजार भाषाओं के तरह परिवारों में से सबसे बड़े परिवार भारोपीय परिवार के सतम वर्ग की भारतीय आर्य भाषाओं में आधुनिक कालीन एक महत्वपूर्ण भाषा हिंदी है। आज जहाँ इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों,

मुद्रित माध्यमों, विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कारण हिंदी भाषा को व्यापक प्रचार-प्रसार प्राप्त हुआ है, देश में हिंदी बोलने और चाहनेवालों की संख्या में भी निरंतर वृद्धि हो रही है कि हिंदी को शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक सातवीं भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाए, जो वर्तमान में छह राष्ट्रों को प्राप्त है। हिंदी को संयुक्त संघ की भाषा बनाने की माँग प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन से ही प्राप्त हो गई थी। इसकी चर्चा अनेक बार केंद्रीय समिति की बैठकों तथा भारतीय संसद में हुई है।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा की प्रक्रिया नियमावली के नियम 51 में संशोधन करने के लिए प्रस्ताव अपेक्षित है। इस मामले में न्यूयॉर्क स्थित भारत के स्थाई मिशन ने अनौपचारिक रूप से यह पता लगाने की कोशिश की कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ की एक आधिकारिक भाषा के रूप में क्या संभावनाएँ हो सकती हैं, लेकिन इस संदर्भ में कोई उत्साहवर्धक परिणाम सामने नहीं आए और ऐसी स्थिति में यह मुनासिब नहीं समझा गया कि फिलहाल इस तरह का प्रस्ताव औपचारिक रूप से पेश किया जाए। तथापि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी के प्रवेश के सूत्रपात के रूप में विगत कुछ वर्षों से भारत के स्थायी मिशन न्यूयॉर्क में यह व्यवस्था रही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा के अधिवेशनों के दिनों में विदेश मंत्री अथवा महासभा में शामिल भारतीय प्रतिनिधि मंडल का कोई सदस्य हिंदी में बोलना चाहे तो उसे अनुवाद की सुविधा मिल सकती है इस सीमित सुविधा का लाभ बहुत कम उठाया गया है। भारतीय प्रतिनिधि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में बोलने की बात आम तौर से सोचते नहीं या वैसे करने का साहस नहीं जुटा पाते।

संयुक्त राष्ट्र में मान्य भाषाओं को हम विश्वभाषा कहें, लेकिन जर्मन, लैटिन और जापानी आदि भाषाएँ जो कभी विश्वभाषा थी अथवा जिनमें विश्वभाषा

बनने की पूरी संभावना थी, ये भाषाएँ संयुक्त राष्ट्र में मान्य नहीं हुई क्योंकि ये भाषाएँ पराजित राष्ट्रों की भाषाएँ थीं। जर्मनी, इटली और जापान ध्रुव देश थे। ये देश द्वितीय महायुद्ध में पराजित हुए। आरंभ में संयुक्त राष्ट्र में जो पाँच भाषाएँ मान्य हुई थीं, वे अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और चीन—इन विजयी राष्ट्रों की राजभाषाएँ थीं। स्पेनिश भाषा बोलनेवाले द्वितीय महायुद्ध में अधिकतर अमेरिका के साथ थे। इसके अतिरिक्त वह लातीनी अमेरिकी भाषा थी, सो मान्य हो गई। 20-22 अरब देश हैं। उनकी संख्या काफी थी। जब इनके पास पैसा आया तो वहाँ की भाषाएँ मान्य हो गई अर्थात् जिन राष्ट्रों के पास ताकत थी और पैसा था, उनकी भाषा इस विश्व संस्था की भाषा बन गई। सन् 1945 ई. में जब संयुक्त राष्ट्र बना तब भारत गुलाम था। हिंदी पराजित से भी अधिक पराजित-गुलाम राष्ट्र की भाषा थी। अतः उस समय संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता कैसे मिलती? लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हिंदी विश्वभाषा नहीं बन सकती अथवा हिंदी में विश्वभाषा बनने की संभावनाएँ नहीं हैं। हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में मान्यता के पीछे अलग-अलग तरह से लोगों की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिल रही हैं। हिंदी से अंग्रेजी, चीनी, रूसी, स्पेनी, फ्रांसीसी, अरबी में तथा इन भाषाओं से हिंदी में द्विभाषियों का अनुवाद नितांत आवश्यक है। यदि इनकी व्यवस्था सरकार कर भी लेती है तो क्या अनुवाद रातों-रात उन्हें उपलब्ध हो सकते हैं। कुल मिलाकर यदि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में दरजा मिलता है तो भारत सरकार को केवल डेढ़ करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष खर्च करने होंगे, और संयुक्त राष्ट्र के आधे से अधिक सदस्यों की सहमति लेनी होगी ओर उसकी काम-काज नियमावली की धारा 51 में संशोधन करवाकर हिंदी का नाम जुड़वाना होगा। इस मुद्दे पर देश के प्रायः सभी राजनीतिक दल भी सहमत हैं।



संयुक्त राष्ट्र संघ का एक संगठन यूनेस्को है। उसमें हिंदी को सीमित प्रवेश मिल गया है। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में यूनेस्को के प्रतिनिधि श्री अशर डालियान ने भी भाग लिया था। इस अवसर पर उन्होंने बताया था कि जब से यूनेस्को की विश्व संगठन की एक विशेष संस्था के रूप में स्थापना हुई, तब से यह कई कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी के विकास के लिए प्रयत्नशील रहा है। सन् 1947 में यूनेस्को की स्थापना के ठीक बाद महासभा के दूसरे सत्र में, जो मैक्सिको नगर में हुआ था, भारत के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत हिंदी को विश्व हिंदी संगठन की एक शासकीय भाषा के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से मान लिया गया था। तब से हिंदी यूनेस्को की अन्य सात भाषाओं के रूप में प्रयोग की जा रही है।

सन् 1977 ई. का अक्टूबर 4 का वह दिन हिंदी के इतिहास में अमर हो गया जब भारत के तत्कालीन विदेशमंत्री रहे श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना भाषण हिंदी में दिया। यह पहला अवसर था जब राष्ट्र संघ में हिंदी का जयघोष गूँजा। इस गौरवपूर्ण कार्य के लिए 28 अक्टूबर, 1977 को दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित समारोह में वाजपेयीजी का अभिनंदन किया गया। समारोह की अध्यक्षता तत्कालीन रक्षामंत्री श्री जगजीवन राम ने की थी। उक्त अवसर पर अभिनंदन का उत्तर देते हुए श्री वाजपेयी ने कहा, “इससे पहले भी राष्ट्र संघ में हिंदी में हिंदी बोली जा सकती थी, पर हम अंग्रेजी के व्यामोह को अभी तक नहीं छोड़ पाए। भाषा का प्रश्न संस्कृत से जुड़ा है। वियतनाम एक छोटा-सा देश है पर उसका विदेश मंत्री जब पहले राष्ट्र संघ में अपनी भाषा में बोला तो सबने सुना। इस बार भारत की छवि

उदित हुई। मैं भारत का प्रतिनिधि होकर राष्ट्र संघ में गया। यदि मैं विदेशी भाषा में बोलता तो मेरा मुँह काला हो जाता। हिंदी में बोलने के लिए मुझे अहिंदी भाषियों से बधाई के पत्र मिले हैं। जो हिंदी नहीं जानते उन्होंने बधाई पत्र भेजे हैं। अंग्रेजी विश्वभाषा नहीं है। हिंदी में मानवता की धरोहर है। हाँ, अन्य भाषाएँ भी सीखनी चाहिए।”

संयुक्त राष्ट्र संघ के मूल सदस्य 51 देश थे जिनमें भारत भी एक था। स्वीकृत होने के लिए जितने भी आधार हो सकते हैं, हिंदी उन पर खरी उतरती है। बोलनेवालों की संख्या, भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता। भाषा की गुणवत्ता। जिन राष्ट्रों में बोली-समझी जाती है, उसकी गौरव महिमा सब हिंदी में निहित है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को मान्यता मिला जाती है तो उससे विश्व को क्या-क्या फायदे संभव हो सकते हैं? संयुक्त राष्ट्र में हिंदी के प्रतिष्ठित होने पर हिंदी को एक लाभ यह भी होगा कि भारत की अन्य भाषाओं का हिंदी के प्रति सम्मान बढ़ेगा। अहिंदी भाषियों में भी हिंदी का रुतबा बढ़ेगा।

तुर्की, इंडोनेशियाई, मंगोल, उज्बेक, स्वाहिली, गोरानी आदि अनेक भाषाएँ हैं, जो विदेशी लिपियों में लिखी जाती हैं, जो मजबूरी है। हिंदी इस मजबूरी को विश्व स्तर पर दूर करेगी। वह रोमन, रूसी और चीनी आदि लिपियों का शानदार विकल्प बनेगी, जिसकी लिपि सरल और वैज्ञानिक है। जो बोलो सो लिखो और जो लिखो सो बोलो। संयुक्त राष्ट्र में बैठी हिंदी विश्व के भाषाई मानचित्र को बदल देगी।

□

वरिष्ठ साहित्यकार
पटना, (बिहार)

हिंदी से किसी भी भारतीय भाषा को भय नहीं है। यह सबकी सहोदर है।

—महादेवी वर्मा

हिंदी—‘राष्ट्रभाषा’ न बन पाना

—डॉ. संतोष कुमार जैन

जब मनुष्य इस पृथ्वी पर जन्म लेता है, चलने-बोलने की स्थिति में आता है, तो उसके माता-पिता अपनी मातृभाषा, जो हिंदी है, में उसे बोलना सिखाते हैं। इस तरह भाषा सिखाने का यह सिलसिला लगातार परिवार, समाज के माध्यम से सतत चलता रहता है।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अलग-अलग भाषाएँ होती हैं, लेकिन राष्ट्र का राजकार्य एवं जन-संपर्क, संवादों का आदान-प्रदान, आपसी तालमेल, बातचीत एवं समस्त अन्य संवाद जिस भाषा में होते हैं या कह लें कि संपर्क जन-संपर्क की जो भाषा होती है, उससे ही व्यक्ति को भाषा की पहचान मिलती है और वही ‘राष्ट्र भाषा’ कहलाती है।

भारत में अनेक राज्य हैं। उन राज्यों की अपनी भाषाएँ हैं। इस प्रकार भारत स्वयं में एक बहुभाषी राष्ट्र है, लेकिन उसकी अपनी एक ‘राष्ट्र भाषा’ है जो हिंदी भाषा के रूप में जानी जाती है।

26 जनवरी, 1950 को भारत का अपना संविधान बना। हिंदी को संविधान में ‘राजभाषा’ का दर्जा दिया गया और यह माना गया कि धीरे-धीरे हिंदी अंग्रेजी भाषा का स्थान ले लेगी और अंग्रेजी भाषा पर हिंदी भाषा का प्रभुत्व स्थापित हो जाएगा।

तकरीबन 250 वर्षों की ब्रिटिश हुकूमत की देश में शासन-व्यवस्था ने अंग्रेजी भाषा को पूरे देश

में उसके प्रभुत्व को समाप्त करने हेतु वर्ष 1950 में भारत के अपने संविधान बनते ही हिंदी भाषा को ‘राजभाषा’ बनाने के लिए स्वतंत्र भारत में पारित किया गया।

शिक्षित वर्ग का चिंतन आज भी विदेशी है। हम वार्तालाप करते समय अंग्रेजी का प्रयोग करने में गौरव महसूस करते हैं, भले ही वह अशुद्ध अंग्रेजी हो। हमें इस मानसिकता का परित्याग करना चाहिए और हिंदी का प्रयोग करने में गर्व महसूस करना चाहिए। हम सरकारी कार्यालय, बैंक, व्यापार अथवा जहाँ भी कार्य व्यवहार करते हैं, हमें हिंदी भाषा में ही उसे करने चाहिए, यह हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य भी है।

निमंत्रण-पत्र, नाम पट्ट आदि हिंदी में लिखे जाने चाहिए। अदालतों का कार्य हिंदी में होना चाहिए। बिजली, पानी, गृहकर तथा अन्य संदर्भित बोलचाल, लिखा-पढ़ी हिंदी में अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए और प्रारंभिक विद्यालयों से हिंदी अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जानी चाहिए एवं हिंदी भाषा ही जनसंपर्क की भाषा के रूप में स्थापित की जानी चाहिए।

जब विश्व के अनेक देश अपनी मातृभाषा में पढ़कर उन्नति कर सकते हैं, तब हमें राष्ट्र भाषा



अपनाने में झिझक क्यों हो? राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शासन एवं जनता द्वारा सभी पत्र-व्यवहार हिंदी में किए जाने चाहिए। स्कूल के छात्र-छात्राओं को हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने की प्रेरणा देनी चाहिए। जब हमारे विद्यार्थी हिंदी प्रेमी बन जाएंगे तब हिंदी का धारा प्रवाह प्रसार हो सकेगा।

स्वाधीनता के बाद भारत में 14 सितंबर, 1950 को काफी विचार-विमर्श के बाद हिंदी को पूरे देश में 'राजभाषा' के रूप में चुना गया। हालाँकि हिंदी को देश को 'राजभाषा' बनाने पर गैर हिंदी राज्य के लोगों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया।

भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है, यह सर्वविदित है लेकिन वर्तमान में कृषि का अंशदान 20 प्रतिशत ही रह गया है और इसका असर हिंदी के प्रयोग पर पड़ने लगा है। भारत में अंग्रेजी भाषा के अलावा दूसरी भाषा में पढ़ाई कई राज्यों को मुश्किल लगती है और भारत में कई ऐसे राज्य हैं, जहाँ हिंदी बोली जाती है। आज भी हर राज्य अपने राज्य की भाषा को ज्यादा महत्त्व देते हैं, जैसे—गुजरात में गुजराती, महाराष्ट्र में महाराष्ट्री, पंजाब में पंजाबी, नागालैंड में क्षेत्रीय एवं अंग्रेजी भाषा तथा सिक्किम आदि-आदि में भी अंग्रेजी भाषा का स्थानीय निवासी संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं।

भारत में आज की नई पीढ़ी थोड़ा अंग्रेजी और हिंदी, कुछ स्थानीय भाषा के साथ मिलाकर बोलती है जिससे हिंदी की पहचान कम होती जा रही है। यह आज की सच्चाई है और हमारे देश के नेताओं की क्या बात करें? वे तो अपने जनप्रतिनिधि होने की शपथ में भी अनिवार्य रूप से हिंदी का प्रयोग नहीं करते। वे या तो अंग्रेजी में या अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में शपथ तक लेते हैं और यह हिंदी का अपमान जैसा राष्ट्रवासियों को महसूस होना चाहिए।

जो लोग हिंदी भाषा में समुचित ज्ञान रखते हैं,

उन्हें हिंदी के प्रति अपनी जिम्मेदारी का बोध करवाने के लिए हिंदी का प्रयोग संपूर्ण रूप से करना चाहिए। संवैधानिक रूप से हिंदी भारत की 'प्रथम राजभाषा' है और भारत के सबसे अधिक बोली और समझी जानीवाली भाषा के रूप में स्वीकार की गई है।

देश में अनेक राज्य हैं और उन सभी राज्यों की भी अपनी अलग-अलग भाषाएँ हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है लेकिन उसकी अपनी एक 'राष्ट्र भाषा' भी है जो कि हिंदी ही है। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी भाषा 'राष्ट्र भाषा' घोषित की गई तथा 26 जनवरी, 1950 को भारत का अपना संविधान बना, जिसमें हिंदी को 'राजभाषा' का दर्जा दिया गया और यह माना गया कि धीरे-धीरे हिंदी अंग्रेजी भाषा का स्थान ग्रहण कर लेगी, लेकिन अभी तक बहुत सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

हिंदी और उसकी बोलियाँ उत्तर और मध्य भारत के प्रांतों में बोली जाती हैं। भारत और विदेश में 60 करोड़ से अधिक लोग हिंदी भाषा बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। उन राष्ट्रों में फिजी, मॉरीशस, गुआना, सूरीनाम आदि के अधिकतर और नेपाल में भी अधिकायत लोग हिंदी भाषा का प्रयोग करते हैं। हिंदी राष्ट्र भाषा, राजभाषा, संपर्क भाषा, जनभाषा के सोपानों को पार कर 'विश्व भाषा' बनने की ओर अग्रसर है। भाषा विकास से जुड़े वैज्ञानिकों की भविष्यवाणी हिंदी प्रेमियों के लिए संतोषजनक है कि आनेवाले समय में विश्व स्तर पर अंतरराष्ट्रीय महत्त्व की जो चंद भाषाएँ होंगी, उनमें हिंदी का भी प्रमुखता से उल्लेख होगा।

हिंदी भारत की संवैधानिक राजभाषा है, लेकिन उसका अभी तक पालन नहीं हो सका है। चीनी भाषा के बाद हिंदी विश्व की दूसरी सबसे ज्यादा बोली जानीवाली भाषा है। भारत के अतिरिक्त जहाँ

भी प्रवासी भारतीय रहते हैं, उनमें भी हिंदी को महत्व दिया जाता है, चाहे वह देश कोई भी हो।

हिंदी बोलचाल और लेखन की महत्वपूर्ण उपलब्धियों से जुड़ी हुई है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि विश्व की सबसे उन्नत भाषाओं में हिंदी को सर्वाधिक व्यवस्थित भाषा माना गया है, अर्थात् हम हिंदी में जो लिखते हैं वही बोलते भी हैं, जबकि अन्य भाषाओं में ऐसा नहीं है।

हिंदी भाषा बोलने में सबसे अधिक सरल और लचीली भाषा है और साथ ही हिंदी भाषा को बोलना और समझना बहुत ही सरल है। ज्ञातव्य है कि 'हिंदी भाषा' के मूल शब्दों में लगभग ढाई लाख से अधिक शब्द हैं। हमें किसी भी भाषा के कुछ सर्वाधिक प्रचलित शब्दों, जिनका आमतौर पर लोग बोलचाल में प्रयोग करते हैं, उसे अपने 'शब्दकोश' में शामिल करना चाहिए। इस क्षेत्र में कार्य हो भी रहे हैं, लेकिन उसकी गति कम है। हम अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों को यदि 'हिंदी भाषा' में उनकी उपयोगिता को महसूस करते हुए जोड़ लें तो उससे लोगों को बातचीत में, लेखन में सुविधा भी होगी और भाषा का संस्कार भी बड़ा होगा। हिंदी के साहित्य लेखन में भी हमें यही दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि अंग्रेजी आदि भाषा के बारे में जो असुविधा लोगों को बोलने में या लिखने में आ रही है, वह दूर हो सके।

हिंदी को लेकर बहुत कार्य हो रहे हैं और हिंदी का तेजी से प्रचार-प्रसार हो रहा है। 'हिंदी भाषा' की विश्व में इतनी अधिक लोकप्रियता है कि दुनिया के सबसे बड़े सर्च इंजन 'गूगल' ने भी वर्ष 2009 में 'हिंदी भाषा' को अपना लिया है और हिंदी की लोकप्रियता इतनी अधिक है कि दूसरी भाषाओं के मुकाबले हिंदी की वृद्धि दर सबसे अधिक है।

यह बात गूगल भी मानता है। हिंदी भाषा इंटरनेट की दुनिया में इतनी तेजी से बढ़ी है कि इंटरनेट पर लाखों वेबसाइट (संजाल) ब्लॉक्स (चिट्ठे) गपशप (चैट्स) इ-मेल (विपत्र) सर्च इंजन (वेब खोज) एस.एम.एस. (मोबाइल संदेश) आदि अनेक प्रकार के शब्द पर आधारित हिंदी मोबाइल ऐप इस समय कंप्यूटर में मौजूद हैं।

एक समय ऐसा सोचा और माना जाता था कि कंप्यूटर और इंटरनेट अंग्रेजी भाषाओं के लिए है, लेकिन हिंदी भाषा की इतनी अधिक माँग है कि हर जगह इंटरनेट आदि पर भी हिंदी भाषा के रूप में कुछ भी ढूँढ़ा जा सकता है और कोई भी जानकारी हिंदी में प्राप्त की जा सकती है। हिंदी भाषा का हिंदी सिनेमा पर खास प्रभाव है और पूरे विश्व में हिंदी सिनेमा की माँग है, पहचान है और भारत में तो हिंदी सिनेमा लोगों के दिलों की धड़कन है और स्वर तथा हिंदी गानों को मन को सुकून देने वाला माना गया है। हिंदी भाषा इतनी अधिक लोकप्रिय है कि कोई भी सोशल नेटवर्क साइट बिना हिंदी को अपनाए आगे प्रगति नहीं कर सकती। इसका उदाहरण फेसबुक है और गूगल स्वयं ऑन लाइन हिंदी टाइपिंग के लिए गूगल हिंदी 'टाइपिंग टूल सेवा' प्रदान करता है। हमारे देश भारत की मुख्य भाषा हिंदी है। बिना हिंदी के हम कोई भी अपनी दिनचर्या संपन्न नहीं कर सकते, लेकिन इसके बावजूद भी आज हमारे देश में, अंग्रेजी भाषा का आधिपत्य है और जो सम्मान हिंदी भाषा को मिल जाना चाहिए वह उसे अभी प्राप्त होना शेष है।

□

16, महावीर नगर, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद, (उ.प्र.)

हमारा समाज : हिंदी और उसकी व्याप्ति

—प्रो. टी.वी. कट्टीमनी

किसी भी समाज के विकास में भाषा की अहम भूमिका होती है। बिना भाषा के प्राणियों का जीवन बहुत ही कठिन है। यूँ कहें कि जीवन और भाषा, दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं। भाषा सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि वह सभ्यता-संस्कृति और इतिहास की भी वाहक है। मनुष्य और मनुष्येत्तर, सभी प्राणियों की अपनी भाषा-बोली है जिसके माध्यम से वे जीवनचर्या संपन्न करते हैं। औपनिवेशिक काल में जब भारतीय समाज अपनी दयनीय स्थिति को प्राप्त कर चुका था तब भारतेंदु का यह वाक्य भारतीय समाज के विकास की रूपरेखा को दिशा रहा था।

‘निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति के मूल।

बिनु निज भाषा के मिटे न हिये का सूल।’

अर्थात् बिना अपनी भाषा के न तो उन्नति हो सकती है और न ही हृदय की भावना ही उजागर हो सकती है। इस आलोक में देखें तो भारतीय समाज की उन्नति हिंदी में निहित है जिसकी ओर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के महापुरुष पहले ही संकेत कर चुके हैं।

भारत एक बहुभाषी देश है, लेकिन इस बहुभाषिकता के बीच में एक सूत्र है जो सभी को कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में जोड़ता है।

यह सूत्र यहाँ की हिंदी भाषा है।

उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम—किसी भी कोने में हिंदी को समझा जा सकता है, उसे बोलते हुए सुना जा सकता है। जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के रूप में हिंदी की व्यापकता को समझा जा सकता है। हिंदी भाषा का स्वरूप एक समुच्चय में बँधा हुआ है जिसमें विभिन्न प्रांतों की बोलियों का समावेश तो है ही, विभिन्न देशों की भाषा के शब्द भी सम्मिलित हैं।

भारतवर्ष के आधे प्रांतों में हिंदी प्रथम भाषा के रूप में बोली जाती है तो आधे प्रांत में वह द्वितीय भाषा के रूप में इस्तेमाल होती है और संपूर्ण भारत सहित विश्व में बाजार, धर्म, साहित्य, फिल्म आदि के माध्यम से संपर्क भाषा के रूप में जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रयुक्त होती है। कलकत्ताई हिंदी, बम्बइया हिंदी, हैदराबादी हिंदी, मद्रासी हिंदी, फिजी हिंदी, मॉरीशस हिंदी आदि रूपों में हिंदी के स्वरूप जनमानस में उसकी व्यापकता को ही दर्शाता है।

भाषाई अस्मिता के दौर में हिंदी भाषा भारतीय अस्मिता को रेखांकित करती है।

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी बाजार की बड़ी भाषा के तौर पर उभर गई है। वर्तमान में हिंदी

और इंग्लिश का मिश्रित रूप 'हिंग्लिस' इसी से निकलकर आया है। यह बाजारवाद की भाषा है जो हिंदी क्षेत्रों में एक नया बाजार तैयार कर रही है।

बाजारवाद के संदर्भ में हिंदी की सही शक्ति दिखने लगी है। सिर्फ भारत में ही नहीं, भारत के अन्य प्रदेशों में ही नहीं,

दुनिया की कई जगहों पर हिंदी व्यापार की भाषा बन गई है। हिंदी में जो शक्ति है उसे भारत ही नहीं, भारत से बाहर के लोगों ने भी समझा है। हिंदी में क्रय-विक्रय की वह शक्ति है जिसे भारत के बाहर के लोगों ने भी अब समझ लिया है। उसे समझना

चाहिए। बाजारवाद एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ चीजों को खरीदा जाता है, चीजों को बेचा जाता है। हिंदी के माध्यम से चीजें बड़े पैमाने पर खरीदी-बेची जा रही हैं। अंग्रेजी में यह विशेष ताकत अभी भी उभरकर नहीं आई है।

हिंदी में सम्प्रेषण की अद्भुत क्षमता है। यह भारत की अद्भुत धरोहर है। इसका कारण यह है कि हिंदी वास्तव में संस्कृत है, वास्तव में असमी है, वह बंगाली है, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ है क्योंकि

इन सभी भाषाओं का मूल संस्कृत है, हिंदी का मूल भी वही है। यदि कोई यह कहता है कि हिंदी हमारी मातृभाषा नहीं है, वह अलग है तो यह सोचना चाहिए कि हिंदी अलग नहीं है, हमारी मातृभाषा अलग नहीं है। हिंदी में जो शक्ति है, सामर्थ्य है उसे

पहचानने की जरूरत है, उसे समझने की आवश्यकता है। हिंदी में जो मौलिक शोध, चिंतन आदि की सामर्थ्यशक्ति है उसे पहचानकर आगे बढ़ने की जरूरत है। यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि हिंदी में वह शक्ति नहीं है जो अंग्रेजी में है। हिंदी की उस ताकत को महसूस कर देश को विकसित करने का प्रयास करना है।

तब तक भारत समृद्धि की ओर, विकास की ओर नहीं बढ़ सकता जब तक यहाँ की कार्यपद्धति यहाँ की भाषा-हिंदी में संपादित नहीं होती है। दुनिया में वही देश तरक्की की ओर बढ़ सका है जिसकी कार्यपद्धति उनकी अपनी भाषा है।

□

कुलपति, इ.गां.रा. ट्राइबल्स यूनिवर्सिटी,
अमरकंटक (म.प्र.)

यह है देश हमारा भारत, पूर्ण ज्ञान का शुभ्र निकेतन,
 यह है देश जहाँ पर बरसी, बुद्धदेव की करुणा चेतन,
 है महान्, अति भव्य पुरातन, गूँजेगा यह गान हमारा,
 है क्या हम-सा कोई जग में, यह है भारत देश हमारा।

इंटरनेट के पंखों पर संस्कृति की चौपाल

—डॉ. एम.एल. गुप्त

गाँवों के स्वांग, नौटंकी, रामलीला, मेले और त्योहारों व पर्वों आदि पर होनेवाले विभिन्न सांस्कृतिक आयोजन और गाँवों की चौपाल आदि ऐसे मंच रहे हैं जिनके माध्यम से संस्कृति अपने विभिन्न रंगों के साथ निरंतर आगे बढ़ती रही है। आधुनिक शहरी वातावरण में पुराने समय के अनेक मंच धीरे-धीरे धराशाई होते गए। आगे चलकर सिनेमा और रेडियो संस्कृति के प्रमुख वाहक बने। फिर धीरे-धीरे रेडियो को मीलों पीछे छोड़ते हुए टेलीविजन मनोरंजन के क्षेत्र में अपना आधिपत्य बनाते हुए संस्कृति का सशक्त वाहक बनता गया। क्षेत्रीय चैनलों के आगमन ने लोक-संस्कृति को जन-जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अतिरिक्त इनके साथ-साथ शहरों में साहित्य-सम्मेलन, संगोष्ठियाँ और व्यावसायिक कवि सम्मेलन व कार्यक्रम आदि भी इसमें जुड़ते गए। इसके साथ ही इनका विकृत रूप भी सामने आया, शहरों में कवि सम्मेलनों में साहित्य और उसके साथ वह भी जिसे 'साहित्य की हत्या' कहा गया या कहा जा रहा है। कवि सम्मेलनों में, विशेषकर हास्य कवि सम्मेलन के नाम पर तालियाँ बटोरने के लिए कविता के बजाय पैरोडी, मिमिक्री, फूहड़ जुमले, चोरी की कविताओं और चुटकुलों का खासा बाजार खड़ा होता गया। राज्यों के दिवस, क्षेत्रीय पर्व आदि पर आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम आज भी लोगों को लोक-संस्कृति का

आस्वादन करवाते हैं। सिनेमा व टेलीविजन में संस्कृति के साथ वह भी शामिल होता गया, जिसे अपसंस्कृति कहा जाता है।

इंटरनेट और इसके सोशल मीडिया पर फैली अनंत चौपालों के माध्यम से संस्कृति के प्रसार की वर्तमान स्थिति व संभावनाओं पर विचार करें तो निश्चय ही भारतीय भाषा-संस्कृति के प्रसार को वैश्विक स्तर पर तेजी से आगे बढ़ाया जा सकता है। संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्वों के प्रसार के संदर्भ में इंटरनेट की उपादेयता पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

भाषा-साहित्य की बात करें तो कुछ समय पूर्व तक यह पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के अतिरिक्त सम्मेलनों और संगोष्ठियों तक सीमित था। गिने-चुने स्थापित साहित्यकारों व विद्वानों की ही पहुँच इन मंचों तक थी। हर कोई इन मंचों तक पहुँच नहीं पाता था। पत्र-पत्रिकाओं में छपने का अवसर भी सबको नहीं मिल पाता था। इसलिए ऐसे अनेक लोग जो कविता, कहानी, संस्मरण आदि लिख सकते थे, वे अक्सर प्रकाश में नहीं आते थे लेकिन अब वे भी सोशल मीडिया पर खुलकर अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं और अपनी रचनाओं को अपलोड कर रहे हैं। सोशल मीडिया एक ऐसा महासागर है जहाँ चौबीसों घंटे साहित्य-प्रेमी साहित्य का रसास्वादन कर रहे हैं। श्रव्य-दृश्य सुविधाओं से लैस होने के चलते इ-कविता पाठ और इ-संगोष्ठी

के रूप में कवि सम्मेलनों और संगोष्ठियों के विकल्प के रूप में सामने आया है। सोशल मीडिया के कारण अब अपनी रचनाओं को पाठकों तक पहुँचाने के लिए आर्थिक सीमाएँ व प्रकाशकों पर निर्भरता समाप्त हो रही है। दूसरी ओर, अल्मारियों में रखी और अक्सर धूल खाती पुस्तकों से निकलकर साहित्य इलेक्ट्रॉनिक तरंगों के रथ पर सवार होकर देश-दुनिया के कोने-कोने में पहुँच रहा है। वे लोग जिन्हें कविता पाठ करने का शौक है, अपने वीडियो बनाकर सोशल मीडिया पर अपलोड कर देते हैं जिससे अब वे सोशल मीडिया के मंच पर जन-जन तक पहुँच रहे हैं। यही नहीं, सोशल मीडिया की पहुँच और लोकप्रियता के चलते स्थापित साहित्यकार भी अब सोशल मीडिया पर अपनी पहचान बनाने में लगे हैं। इनमें से सर्वाधिक सक्रियता दिखती है सोशल मीडिया समूहों पर जिसमें फेसबुक, व्हाट्सऐप और गूगल समूह प्रमुख हैं। सोशल मीडिया की अंतहीन चौपालों पर अब दुनिया के कोने-कोने के रचनाकार व साहित्य-प्रेमी घंटों साथ गुजारते हैं जिसके चलते विभिन्न भाषाओं के साहित्य के साथ-साथ हिंदी का साहित्य भी सार्वभौमिक होता जा रहा है।

भाषा-साहित्य के सम्मेलनों-संगोष्ठियों के आयोजनों पर होनेवाले खर्च और लगनेवाले समय के कारण ज्यादातर कार्यक्रम प्रतिभागियों की कमी से जूझते दिखते हैं। इन तमाम समस्याओं का समाधान अब इंटरनेट पर खोज लिया गया है। इंटरनेट की चौपाल पर इ-संगोष्ठियों का आयोजन किया जाने लगा है जिसमें देश-विदेश के हजारों लोग प्रतिभागी के रूप में भाग लेते हैं, अनेक लोग अपने विचार रखते हैं, वह भी अपनी सुविधा से और अपने समय पर। न आयोजकों का खर्च, न वक्ताओं का, और श्रोताओं का। एक ही विषय पर न ही, एक ही समय में दुनिया के विभिन्न हिस्सों में बैठे हुए विद्वान और सामान्य जन लोग इ-संगोष्ठियों में खुलकर विचार-विमर्श करते हैं, अपने पक्ष रखते हैं, तर्क-वितर्क भी करते हैं और

आलोचना भी। कुछ समय पूर्व तक विदेशों में हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की जानकारी पाना कठिन होता था, लेकिन अब वे अपने साहित्य को इंटरनेट से हम तक भी पहुँचाते हैं और उनकी जानकारी हम तक पहुँचती है।

यही स्थिति गायन और नृत्य के साथ भी है। हिंदी के तमाम पुराने फिल्मी गीत और उनके वीडियो आदि गूगल और दूसरे सर्च इंजिन पर क्लिक करते ही तमाम वेबसाइट सामने आ जाएँगी और आप अपने मनपसंद गीत-नृत्य को देख पाएँगे। आप फिल्मी गीतों की ऑनलाइन अंत्याक्षरी में शामिल हो सकते हैं। गाँवों में होनेवाले लोक गीत-संगीत और नृत्य के कार्यक्रम, जो शहरों में कम ही देखने को मिलते हैं लेकिन अब इंटरनेट के जमाने में उन्होंने इंटरनेट पर अपनी संस्कृति की चौपालों में जमा ली हैं। अब सोशल मीडिया यू-ट्यूब और इस प्रकार की वेबसाइट के माध्यम से भारत के शहरों में ही नहीं, विश्व भर में देखे-सुने जा रहे हैं। लोक गीत-संगीत का आनंद लेने के लिए भी ब्लॉग, वेबसाइट, फेसबुक पेज आदि सब उपलब्ध हैं। राज्यों के नाम के साथ सर्च करने पर इंटरनेट आपको अपेक्षित राज्य की संस्कृति के दर्शन करवा देगा। यू-ट्यूब पर भी आपको गाँव-देहात में आयोजित होनेवाले लोक-संस्कृति के अनेक कार्यक्रम मिल जाएँगे। व्हाट्सऐप और फेसबुक आदि के माध्यम से इनके समूहों पर ऐसे कार्यक्रमों की भरमार है। अनेक लोग अपने या अपने परिजनों के नृत्य व गायन के वीडियो इन पर डालते हैं और कई बार उन्हें इतनी लोकप्रियता मिलती है कि कोई मंच उन्हें कभी न दे पाता। अभी हाल ही में विदिशा के रहनेवाले प्रोफेसर संजी श्रीवास्तव का अपने पत्नी के साथ गजब डांस, इंटरनेट पर ऐसा वायरल हुआ कि वे रातों-रात स्टार बन गए और फिर देखते-देखते उनके कई नृत्य सोशल मीडिया से लोकप्रिय होने लगे। ऐसे अनेक वीडियो मिलेंगे जिनमें लोग अपनी गायन कला का परिचय देते दिखेंगे।

अब तो कुछ ऐसी भी प्रणालियाँ बाजार में आ गई हैं कि युगल गीत में एक गायक पहले से संगीत के साथ मौजूद होता है और उसके साथ सुर में सुर मिलाकर आप अपने गीत प्रस्तुत कर सकते हैं। मेरे बचपन की एक मित्र, जिसने अपने बचपन या युवावस्था में कभी गली-मोहल्ले के यह सामाजिक कार्यक्रम में गाना नहीं गाया, अब नानी बनने के बाद सॉफ्टवेयर प्रणाली के माध्यम से अपने गाने गा कर अपलोड करती है। अब तो लोग शादी-विवाह जैसे आयोजनों की रस्म और गीत-नृत्य भी इंटरनेट से लेने लगे हैं।

विदेशों में भारतवंशियों में हिंदी सिनेमा का गीत-संगीत खासा लोकप्रिय है। भारतवंशियों में तो हिंदी सिनेमा का गीत-संगीत भारतवासियों की तरह, या उससे भी कुछ ज्यादा लोकप्रिय है। मैं कई बार देखकर हैरान हो जाता हूँ जब भारतवंशी देशों के हमारे कई मित्र पुरानी फिल्मों के लोकप्रिय हिंदी गीत सोशल मीडिया के माध्यम से हमें भारत में भेजते हैं। पिछले कई दिनों से हिंदी फिल्मों के पुराने सदाबहार गीतों से लेकर आधुनिक संगीत के नवीनतम गीत समय-समय पर मुझे दक्षिण अफ्रीका की भारतवंशी बहन शर्मिला शीतल से प्राप्त होते रहे हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से वे यहाँ के परिधानों से लेकर गीत-संगीत आदि का अनुकरण करते हैं। मैंने भारत में कभी साड़ी महोत्सव के बारे में नहीं सुना लेकिन सोशल मीडिया के माध्यम से हमने देखा कि भारतवंशी और उनके साथ दक्षिण अफ्रीका के अनेक

लोग वहाँ साड़ी महोत्सव का आयोजन करते हैं और उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं।

विकिपीडिया और इस प्रकार के ज्ञानकोश भी भारतीय साहित्य संस्कृति आदि को आगे बढ़ाने का माध्यम बन रहे हैं, जहाँ एक क्लिक पर तमाम तरह की जानकारीयाँ प्राप्त हो जाती हैं। भारतीय लोक परंपरा से जुड़े विभिन्न प्रकार के आभूषणों की झलक देखनी हो, उनके बारे में समझना हो, प्राकृतिक रंगों से बने प्राचीन चित्रों और उनकी शैली को देखना-समझना हो तो इसके लिए किसी प्रदर्शनी में जाने की आवश्यकता नहीं है। गूगल या किसी अन्य सर्च इंजन पर जाकर तलाशेंगे तो एक नहीं, कई प्रदर्शनियों आपको दिख जाएँगी।

कई देशों में संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए सोशल मीडिया के मंच हैं। इजरायल ने अपना फेस बुक पेज हिंदी में बनाया है, जिसपर बहुत सारी सामग्री हिंदी में प्रस्तुत की जाती है। इंटरनेट और सोशल मीडिया की दुनिया में अभी भी अपार संभावनाएँ हैं। यदि इन्हें सही प्रकार इस्तेमाल में लाया जाए तो संस्कृति को आगे बढ़ाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

भारत जैसे देश में, जहाँ मुश्किल से चार-पाँच प्रतिशत लोग अच्छी तरह अंग्रेजी जानते हैं, ऐसे में पूरे देश को तमाम सुविधाओं-सेवाओं से लाभान्वित होने के लिए यह आवश्यक है कि ये तमाम सुविधाएँ देश की भाषा में हों और देश के लोग अपनी भाषा में इनका प्रयोग कर सकें।

अपनी विपुल जनसंख्या के चलते इंटरनेट पर चीन के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। फेसबुक जैसे लोकप्रिय सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर अमेरिका को पछाड़ कर भारत पहले स्थान पर है। अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर भी भारत की महत्वपूर्ण उपस्थिति है। मोबाइल के माध्यम से समाज के निचले वर्ग तक पहुँचने के चलते इंटरनेट पर हिंदी व भारतीय भाषाओं की स्थिति में काफी सुधार आया है और हिंदी के विकास की दर 94 प्रतिशत तक पहुँच गई है लेकिन इसके बावजूद जहाँ इंटरनेट पर अंग्रेजी का प्रतिशत 25.3, मंदारिन का 19.8 प्रतिशत है वहीं अभी भी हिंदी 1 प्रतिशत पर है। भारतीय अपनी भाषा को देवनागरी लिपि या अपनी भाषा की लिपि के बजाय रोमन लिपि में लिखते हैं और जब सर्च इंजन फॉन्ट्स को पहचानते हैं तो रोमन लिपि के चलते हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की सामग्री भी अंग्रेजी की होकर निकलती है। हिंदी की सामग्री को जब रोमन लिपि में लिखा जाता है तो वह हिंदी के बजाय आँकड़ों में अंग्रेजी में शामिल हो जाती है। कोई भी व्यक्ति जो कंप्यूटर आदि पर काम करना जानता है, वह मात्र 18 घंटे के अभ्यास से हिंदी में अच्छी गति के साथ कंप्यूटर आदि पर टंकण कर सकता है। इसके अलावा इस समय माइक्रोसॉफ्ट, गूगल आदि जैसी बड़ी कंपनियों ने ऐसे सॉफ्टवेयर उपलब्ध करवा दिए हैं, जिनमें रोमन लिपि के माध्यम से भी अंग्रेजी की गति से हिंदी में टाइप किया जा सकता है। अब गूगल वॉयस के आने के बाद तो बोलकर भी हिंदी में टाइप किया जा सकता है। अपनी संस्कृति से जुड़ने और इसे आगे बढ़ाने के लिए अपनी भाषा और लिपि का प्रयोग महत्वपूर्ण है। यदि हम एक बार देवनागरी से कटे तो इस लिपि में समाहित संस्कृति के विपुल भंडार से वंचित हो जाएँगे।

भाषा संस्कृति की वाहक होती है और भाषा वही चलती है जो पेट की भाषा होती है और हमें संपन्नता

की ओर ले जाती हो। इस प्रकार संस्कृति भी आगे चलकर हृदय से अधिक पेट पर निर्भर हो जाती है। भारतीय भाषाएँ रोजगार का माध्यम नहीं बन सकीं इसलिए गाँव-गाँव तक अंग्रेजी माध्यम पसर गया और उसके साथ-साथ पाश्चात्य संस्कृति भी फैली। जब गाँवों में भी लोक-संस्कृति नहीं होगी तो आप उसे ढूँढ़ेंगे कहाँ ? जब यह होगी ही नहीं तो प्रसार किसका करेंगे ? तब कोई अकादमी, संस्था या कोई माध्यम काम न आ सकेगा। इंटरनेट भी संस्कृति का प्रसार तो कर सकता है लेकिन उसे बचा नहीं सकता। इसके लिए तो उसका स्थान जन-जन के मन में होना चाहिए जो स्वभाषा से ही संभव है। इसलिए रोजी-रोटी से शुरू होकर, शिक्षा के माध्यम और उससे संस्कृति से जुड़ने-बिछुड़ने के क्रम को हमें समझना होगा और इसके लिए समुचित उपाय करने होंगे।

अब जबकि पूरी दुनिया डिजिटल आकार ले रही है, देश-दुनिया की तमाम सेवाएँ-सुविधाएँ धीरे-धीरे ऑनलाइन होकर अंतरजाल में समा रही हैं। बहुत कुछ ऑनलाइन हो चुका है, और बहुत कुछ ऑनलाइन होने जा रहा है। बिना इंटरनेट के दुनिया की गाड़ी का पहिया चल नहीं सकेगा। इसलिए इस यथार्थ को स्वीकार करना होगा कि आभासी दुनिया यानि वच् वल्ड वास्तविक दुनिया का यथार्थ है। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि विश्व स्तर पर भारतीय संस्कृति के प्रसार में इंटरनेट और उसके सोशल मीडिया की एक अत्यधिक अहम भूमिका है। हमें अपनी भाषाओं को उच्च शिक्षा रोजगार से जोड़कर सम्मानजनक स्थान देना होगा। जब हमारी भाषाएँ बढ़ेंगी तो संस्कृति को भी आगे लेकर जाएँगी, फिर विश्व की आधुनिकतम, तीव्रतम एवं प्रभावी माध्यम यानी इंटरनेट से जोड़ते हुए उसका देश-विदेश में प्रसार हो सकेगा।

□

निदेशक, वैश्विक हिंदी सम्मेलन,
मुंबई

तकनीकी स्वरूपों में विश्वविस्तारित हिंदी

—डॉ. शुभ्रता मिश्रा

विश्व भाषायी स्तर पर वैचारिक और अवधारणात्मक बदलावों ने समय-समय पर हिंदी के वैश्विक विकास को नवीन दिशाएँ प्रदान की हैं। आज से सदियों पूर्व हिंदी को वैश्विक परिदृश्य प्रदान करने में गिरमिटियाओं ने तत्कालीन सजीव एपों की-सी भूमिका निभाई थी। तब से अब तक हिंदी विश्वभाषा के ठोस निकषों एवं प्रतिमानों पर अनंत परीक्षणों के दौर से गुजरते हुए वर्तमान मोबाइल एपों में प्रवेश पा चुकी है। हिंदी के वैश्विक विस्तार में प्रवासी भारतीयों के विशेष प्रदेय के अलावा सरकारी व गैर-सरकारी स्तरों पर निरंतर किए गए यांत्रिकीय और प्रौद्योगिकीय अनुप्रयोगों ने हिंदी को विश्व में विकास के वृहत दिशामार्ग प्रदान किए हैं। आज ध्रुवीकरण तथा पुनर्संघटन की प्रक्रिया से गुजर रही विश्व व्यवस्था में भारत की निरंतर विकासमान अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा के साथ साथ हिंदी की प्रखरता भी वैश्विक स्तर पर किसी-न-किसी रूप में प्रभासमान हो रही है।

हिंदी के इस ज्ञानालोक का अनाहत-अविरल प्रवाह लगभग आठवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान तक निरंतर चलायमान है। वैदिक संस्कृत से उद्भवित और क्रमशः पाली, मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची, ब्राह्मच तथा अर्धमागधी प्राकृतभाषा स्वरूपों से अपभ्रंशित होती हुई आधुनिक आर्य भाषाओं में

से एक के रूप में हिंदी के प्रादुर्भाव का इतिहास विकास से भरा पड़ा है। हिंदी विश्व की लगभग 3,000 भाषाओं में से एक है। आकृति या रूप के आधार पर हिंदी वियोगात्मक या विश्लिष्ट भाषा है। हिंदी भाषा की गत्यात्मकता और समयानुकूल बदलते रहने की स्वाभाविक वैज्ञानिक प्रकृति ने इसे विश्व की श्रेष्ठतम भाषा होने का सामर्थ्य प्रदान किया है। आज हिंदी लगभग पच्चीस लाख से अधिक की विपुल शब्द संपदा की स्वामिनी है। विश्व की अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक समाहित करनेवाली हिंदी ने अनुवाद के माध्यम से जहाँ एक ओर विश्व के महत्त्वपूर्ण साहित्य को अनुसृजित किया है, वहीं स्वयं का परिचय विश्व की दूसरी भाषाओं द्वारा करवाने में सफल रही है। हिंदी के इस वैश्विक विस्तार में जनमानस से लेकर वर्तमान मोबाइल एपों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इन सभी सजीव-निर्जीव शिल्पकारों ने हिंदी को उसकी युगीन विश्व विकास यात्रा के दौरान विभिन्न यथोचित रूपों में गढ़ा है। तकनीकी युग में प्रवेश करने के साथ ही हिंदी का प्रयोजनमूलक स्वरूप सामने आया था। हिंदी के इस स्वरूप ने उसकी वैशिष्ट्य परिधियों के वृत्तक्षेत्र को और अधिक विस्तार दे दिया। इसके बाद हिंदी भाषा का प्रयोग अपने देशीय क्षेत्र से बाहर राजनीतिक, सांस्कृतिक

या वाणिज्यिक कारणों से विश्व सीमाओं में प्रसार पाने लगा है। भाषा विज्ञान के सिद्धांत के अनुसार दें, किसी भी भाषा का भौगोलिक वितरण, अंतरराष्ट्रीय संगठनों और राजनयिक संबंधों के रूप में उस भाषा विशेष की विश्व के अनेक देशों में आधिकारिक स्थिति तथा क्षेत्र व विषयवार प्रायोगिकता, व्यापक रूप से एक विदेशी भाषा के रूप में पाठ्यक्रम के माध्यम से सिखाया जाना, उसकी भाषाई प्रतिष्ठा, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, संगठनों व शैक्षणिक समुदायों में उपयोग के साथ संबंध और विश्व साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग होना जैसे मानदंड किसी भाषा को वैश्विक बनाते हैं। हिंदी को उपर्युक्त विश्वभाषाई मानदंडों के संदर्भ में विश्लेषित किया जाए तो वह विश्वभाषा के उन सभी अंतरराष्ट्रीय पहलुओं पर खरी उतरती है, जो उसे विश्वभाषा बनाते हैं। आज विश्व के 206 देशों में विस्तारित हिंदी को एक अरब तीस करोड़ प्रयोक्ताओं ने वैश्विक स्वरूप प्रदान कर दिया है। वर्तमान मोबाइल युग में भी हिंदी उच्चतर प्रौद्योगिकी, राजनयिक संबंध, वाणिज्य-व्यापार, सामुद्रिक यातायात एवं आधुनिक मानव-जीवन के अन्य अनेक प्रभागों में एक प्रयोजनपरक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होती जा रही है। हांलाकि हिंदी वह भाषा रही है, जिसे सदैव अपने अस्तित्व और वर्चस्व के लिए अपने ही देश में संघर्ष करना पड़ा है, बावजूद इसके कि वह एक सशक्त वैज्ञानिक भाषा है। अपने ही देश से लेकर विश्व स्तर तक हिंदी स्वयं के विश्वभाषाई स्वरूप और वर्चस्व को साबित करती आई है। फिर भी एक भाषा के रूप में उसका विश्लेषण कभी समाप्त ही नहीं होता है। विश्व में प्रचलित अनेक भाषाओं की तरह ही हिंदी के भी अपने आंतरिक गुण-अवगुण हैं, जिनके आधार पर हिंदी विश्व के कुछ कोनों की सीमितता से लेकर समस्त विश्व के लगभग हर कोने तक एक व्यापक विस्तार स्वरूप में उपयोग की जाती है। हिंदी की

यही वृहत् उपादेयता उसे वैश्विक स्वरूप प्रदान कर विश्वभाषा बनाती है।

देवनागरी में लिखी जानेवाली सभी भाषाओं की तरह हिंदी भी उच्चारण पर आधारित एक वैज्ञानिक भाषा है। इसकी शाब्दी और आर्थी, दोनों तरह की संरचना प्रयुक्तियाँ इसे सरल व जटिल स्वरूप प्रदान करती हैं। संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर अनेक शब्दों को निर्मित कर लेने की हिंदी की अभूतपूर्व क्षमता और सतत् भाषाई परिमार्जन व मानकीकरण प्रक्रिया ने इसकी संरचनाशीलता को वैश्विक स्तर पर एक नई दिशा दी है।

मोबाइलमयी हिंदी के प्रादुर्भाव के बहुत वर्षों पहले इसके मानकीकरण और सरलीकरण के उद्देश्य से हिंदी के ढाई लाख मूल शब्दों के अलावा दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिकविज्ञान, जीवविज्ञान, आयुर्विज्ञान, अभियांत्रिकी, समाजविज्ञान, विधि जैसे अनगिनत विषयों की अपनी-अपनी पारिभाषिक शब्दावलियों से बने लाखों शब्द भी तैयार किए जा चुके हैं। हिंदी के विकसित स्वरूपों, विशेषरूप से कंप्यूटीकृत और मोबाइलमय हिंदी ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उसके उपयोगकर्ताओं की एक बिरादरी तैयार कर दी है। विश्व स्तर पर भाषा के शैक्षणिक स्वरूप से संबद्ध एक विदेशी भाषा के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल होने के साथ-साथ विश्व के विश्वविद्यालयों, संगठनों व अन्य शैक्षणिक समुदायों में हिंदी का उपयोग निरंतर बढ़ रहा है। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैंकड़ों छोटे-बड़े हिंदी शोध केंद्रों में हिंदी अध्ययन-अध्यापन के कार्य सुचारु ढंग से चल रहे हैं। कुल 40 से अधिक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी को पाठ्यक्रम के तहत भाषा के अलावा हिंदी में भारतीय संस्कृति, इतिहास, समाज आदि के विषय में भी पढ़ाया जा रहा है।

भारत में राजभाषा हिंदी के तकनीकीकरण में पुणे स्थित प्रगत संगणन विकास केंद्र अथवा सी-

डैक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सी-डैक की पहल से अंग्रेजी, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की लिपियों के साथ-साथ पर्सी-अरबी, यूरोपीय, रूसी, सिंहली, तिब्बती, भूटानी तथा थाई भाषाओं को कंप्यूटर में स्थापित करने के उद्देश्य से डॉस परिवेश में कार्य करने के लिए डॉस आई.बी.एम. पी.सी. अनुरूपी जिस्ट एड-ऑन हार्डवेयर कार्ड विकसित किए गए थे। जिस्ट प्रौद्योगिकी में सम्मिलित की गई भारतीय भाषाओं में प्रमुख रूप से असमी, बांग्ला, हिंदी, मराठी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, तमिल व तेलुगू शामिल हैं। जिस्ट प्रौद्योगिकी शब्द संसाधन के लिए स्क्रिप्ट पेज पर तथा डाटा संसाधन के लिए डाटा पेज पर कार्य करती है। इसमें अंग्रेजी के विद्यमान पैकेजों (वर्ड स्टार, डी-बेस आदि) का उपयोग विभिन्न भारतीय भाषाओं के लिए भी किया जा सकता है। इस प्रौद्योगिकी के लिए इंस्क्रिप्ट की-बोर्ड निर्धारित किया गया है, जिसकी मुख्य विशेषता यह है कि अलग-अलग भाषाओं के लिए अलग-अलग की-बोर्डों को लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है, वरन् एक ही की-बोर्ड से विभिन्न भाषाओं को लिखा जा सकता है।

सी-डैक ने हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के लिए अनेक नवीन सॉफ्टवेयरों का निर्माण किया है। इसकी सहायता से ही राजभाषा विभाग ने अपना www.rajbhasha.gov.in तैयार किया है। सी-डैक के साथ मिलकर राजभाषा विभाग ने कंप्यूटर की सहायता से प्रबोध, प्रवीण तथा प्राज्ञ स्तर की हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को स्वयं सीखने के लिए कंप्यूटर प्रोग्राम (लीला हिंदी प्रबोध, लीला हिंदी प्रवीण, लीला हिंदी प्राज्ञ) तैयार किए हैं। अब तक लगभग कुल 525 हिंदी फोंट, फोंट कोड कनवर्टर, अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश, हिंदी स्पेल चेकर को निःशुल्क प्रयोग के लिए वेब साइट पर उपलब्ध कराया गया है। इनको <http://ildc.in>

से डाउनलोड किया जा सकता है। सी-डैक ने हिंदी वर्तनी-जाँचक, फॉण्ट-फॉण्ट परिवर्तक, ध्वन्यात्मक लिप्यंतरण, श्रुतलेखन-राजभाषा और वाचांतर-राजभाषा नामक हिंदी श्रुतलेखन सॉफ्टवेयर, मंत्र-राजभाषा नामक एक मशीनी अनुवाद तंत्र, लीला-राजभाषा नामक मल्टीमीडिया प्रशिक्षण सॉफ्टवेयर और एक ऑनलाइन ज्ञानकोश के लिए इ-महाशब्दकोश आदि जैसे और भी अनेक सॉफ्टवेयर तैयार हैं।

हिंदी भाषा व देवनागरी लिपि सीखने के लिए भी अब वेब-लीला, लीला, हिंदी गुरु और द हिंदी कॉर्नर सॉफ्टवेयरों की सहायता ली जा सकती है। अन्य लोकप्रिय हिंदी सॉफ्टवेयरों में आई-ब्राऊजर++ (हिंदी एक्सप्लोरर), हिंदी सी-मंकी, हिंदी सरल मशीन मंच, हिंदी फिब्बि, स्पर्श, हिंदीजिप, भारत ऑपरेटिंग सिस्टेम्स सॉल्यूशन या बॉस, भारतीय ओपेन ऑफिस, जी-मेल, मूडल, लाइवजर्नल, वर्ल्डप्रेस, ऑरेकल 9.एक्स, विंडोज एक्सपी, एम.एस. ऑफिस 2003 लिप, ओपन ऑफिस, मोजिला फायरफॉक्स, ओपेरा वेब-ब्राउजर तथा इंडिक जुमला प्रमुख हैं। विश्व का पहला हिंदी सर्च इंजन 'वेबदुनिया खोज' माना जाता है। इसके अलावा रफ्तार, हिंदी खोज, हिंदी क्विलपेड, गूगल, याहू, एम.एस.एन., अपना गाइड, गेट2होमडॉटकाम-हिंदी और सिफीखोज भी अन्य प्रचलित हिंदी सर्च इंजन हैं। अमेरिकन माइक्रोसॉफ्ट कंपनी ने भारत सरकार के नेशनल सेंटर फॉर सॉफ्टवेयर टेक्नोलॉजी (एन.सी.एस.टी.) के साथ एक संयुक्त योजना के तहत विश्व प्रसिद्ध विंडोज प्रणाली पर भारतीय भाषाओं को विकसित करने का कार्य शुरू कर दिया है।

वास्तव में, यदि विकास की दृष्टि से देखा जाए तो विश्व स्तर पर सन् 1995 के आस-पास इंटरनेट पर हिंदी के शुभारंभ से लीप ऑफिस, श्रीलिपि तथा अक्षर फॉर विंडोज आदि वर्डप्रोसेसरों

की शुरुआत हुई, जिसके फलस्वरूप कंप्यूटरों पर हिंदी में काम करना आसान होने लगा। वर्ष 2000 में हिंदी समाचार-पत्रों में इंटरनेटी हिंदी के आगमन के साथ विंडोज 2000 और माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस के दक्षिण एशियाई संस्करण में हिंदी को समर्थन मिला। इसके बाद सन् 2002 में लिनक्स ऑपरेटिंग सिस्टम और अन्य प्रोग्रामों में हिंदीकरण शुरू हुआ। वर्ष 2003 में हिंदी विकिपीडिया आया और वर्ष 2005 में माइक्रोसॉफ्ट एक्स.पी. ऑपरेटिंग सिस्टम का एक विशिष्ट हिंदी का स्टार्टर संस्करण जारी हुआ। वर्ष 2006 में माइक्रोसॉफ्ट और याहू हिंदी में आरंभ हुए। इसी तरह मार्च 2007 में गूगल समाचार सेवा हिंदी में शुरू की गई। वर्ष 2011 में भारतीय वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने हिंदी शब्दावलियाँ ऑनलाइन शुरू कीं। 14 सितंबर, 2011 को हिंदी दिवस के दिन ट्विटर सेवा की हिंदी में शुरुआत हुई। कंप्यूटरी हिंदी के नवीनतम साधनों में माइक्रोसॉफ्ट विंडोज, लिनक्स, मैक ओ.एस., आइ.ओ.एस. तथा एंड्रॉइड हैं।

हिंदी आज पुस्तकीय पृष्ठों से निकलकर इंटरनेट की दुनिया में अपना सशक्त स्थान बना चुकी है। इंटरनेट पर हिंदी की वेबसाइटें बढ़ती जा रही हैं उसी के अनुपात में हिंदी पाठकों की संख्या में भी तीव्रता से वृद्धि दिखने लगी है। सन् 2000 में हिंदी का पहला वेबपोर्टल अस्तित्व में आया था और तभी से इंटरनेट पर हिंदी ने अपने आधुनिक स्वरूप के दर्शन विश्व को करवाने शुरू कर दिए थे। इंटरनेट पर हिंदी की यात्रा रोमन लिपि से प्रारंभ हुई थी, लेकिन फोंट जैसी समस्याओं से जूझते हुए धीरे-धीरे हिंदी अब यूनिकोड फोंटों द्वारा अपनी विशुद्ध देवनागरी लिपि के स्वरूप में कंप्यूटर पर अपना वर्चस्व स्थापित करती जा रही है। यूनिकोड, मंगल जैसे यूनिकोड फोंटों ने देवनागरी लिपि को कंप्यूटर पर नया जीवन प्रदान किया है। इंटरनेट पर हिंदी की लोकप्रियता

बढ़ाने में ब्लॉगिंग का अहम योगदान रहा है।

भारत में केंद्र और राज्य सरकारों की लगभग 9 हजार वेबसाइट हिंदी में उपलब्ध हैं। आज इंटरनेट पर हिंदी साहित्य से संबंधित 70 इ-पत्रिकाएँ देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं। महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की वेबसाइट डब्ल्यू. डब्ल्यू.डब्ल्यू. डॉट हिंदीसमय डॉट कॉम पर अकेले लगभग 1,000 हिंदी रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है। इस समय 15 से अधिक ऐसे हिंदी के सर्च इंजन उपलब्ध हैं, जो किसी भी वेबसाइट का चंद मिनटों में हिंदी अनुवाद करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। गूगल पर हिंदी में लिखे एक लाख विकिपीडिया के लेख हैं। कुछ समय पूर्व गूगल के दिए गए आंकड़ों के अनुसार 20 प्रतिशत भारतीय उपभोक्ताओं को हिंदी में इंटरनेट सर्फिंग पसंद है। वहीं प्रति पाँच वर्षों में इंटरनेट पर हिंदी की सामग्री में 94 प्रतिशत बढ़ोतरी हो रही है। हिंदी ने इंटरनेट पर अपनी उपस्थिति सिद्ध की है, यही कारण है कि गूगल जैसे सर्च इंजन हिंदी को प्राथमिक भारतीय भाषा के रूप में मान्यता देते हैं।

अब कंप्यूटर से निकलकर हिंदी मोबाइल में न केवल पहुँच चुकी है बल्कि भारी संख्या में लोग इसका उपयोग भी कर रहे हैं। मोबाइल तक हिंदी की पहुँच ने देश में देवनागरी लिपि के समक्ष खड़ी चुनौती को काफी हद तक मिटा दिया है।

भारत सरकार ने भारतवाणी नामक एक वेब पोर्टल और मोबाइल ऐप बनाया है, जो हिंदी सहित अनुमानतः 1,500 भाषाओं को सिखाने की क्षमता रखता है। साथ ही, कई ऐसे अनेक मोबाइल ऐप भी उपलब्ध हैं जिनके उपयोग से घर पर बैठकर ही हिंदी सीखी जा सकती है।

□

वास्को-द-गामा, गोवा

विधि में हिंदी

— श्री विराग गुप्त

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और रवींद्रनाथ टैगोर जैसे मनीषी हिंदी और देशी भाषाओं के सबसे बड़े पक्षधर थे। गांधीजी इस बात को भली-भांति समझते थे कि अंग्रेजों की विदाई के बावजूद यदि अंग्रेजी बनी रही तो स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वदेशाभिमान का विकास नहीं हो पाएगा। संविधान सभा ने अनुच्छेद 343 के प्रावधानों के तहत हिंदी को राजभाषा के तौर पर स्वीकार किया, पर अंग्रेजियत के पैरोकारों ने छलपूर्वक अंग्रेजी भाषा को पिछले दरवाजे से राजभाषा के तौर पर पदासीन कर दिया। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार, अंग्रेजी का राजभाषा के तौर पर प्रयोग को सन् 1965 से समाप्त होना था, लेकिन आजादी के 71 वर्ष बाद भी सरकारी काम-काज और न्यायपालिका में अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहना संविधान के साथ धोखा ही कहा जाएगा। सरकार और अदालतों में मातृभाषा के प्रयोग से इस्त्राइल, कोरिया, जापान जैसे कई छोटे राष्ट्र आगे निकल गए, परंतु अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण भारत अनेक क्षेत्रों में फिसड्डी और पिछलग्गू ही बना रहा।

राष्ट्रभाषा हिंदी को राजभाषा का संवैधानिक अधिकार क्यों नहीं? सभी उत्पादों में हिंदी में विवरण लिखने की बाध्यता के लिए गुजरात उच्च न्यायालय में याचिका दायर करके माँग की गई थी। वर्ष 2010 में इस याचिका में निर्णय देते हुए उच्च न्यायालय

के न्यायाधीश ने कहा कि इसमें कोई दो-राय नहीं है कि भारत में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा के बावजूद हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं मान सकते क्योंकि संविधान में इसे सिर्फ राजभाषा का दर्जा मिला है। सोशल मीडिया के दौर में देश की जनता ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के तौर पर पहले ही अपना लिया। सवाल यह है कि न्यायालयों में राजभाषा हिंदी को कब न्याय मिलेगा? भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, 52 करोड़ लोग हिंदी को अपनी मातृभाषा मानते हैं। सन 2001 से 2011 के दौरान हिंदी बोलनेवालों की संख्या 10 करोड़ बढ़ी और उसी दर को यदि माना जाए तो इस समय भारत में 60 करोड़ से ज्यादा लोगों की मातृभाषा हिंदी है। भारत के अलावा मॉरीशस, त्रिनिदाद, सूरीनाम, फिजी, थाईलैंड, बर्मा, स्याम, इंडोनेशिया, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका समेत दुनिया के लगभग 38 देशों में हिंदी बोली और समझी जाती है। इस तरह से दुनिया में 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी है जबकि 20 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा, और 44 करोड़ लोगों की तीसरी, चौथी या पाँचवीं भाषा हिंदी है। चीनी न्यूज एजेंसी सिन्हुआ की एक रिपोर्ट के अनुसार, केवल 70 प्रतिशत चीनी ही मंदारिन बोलते हैं जबकि भारत में हिंदी बोलनेवालों की संख्या करीब 78 प्रतिशत है। यदि मंदारिन को सभी बोलियों के साथ चीनी भाषा

के तौर पर मान्यता दी जाती है तो फिर हिंदी को सभी बोलियों के साथ शामिल करके संयुक्त राष्ट्र संघ की दूसरी बड़ी भाषा का दर्जा देने की माँग निश्चित तौर पर उठाई जा सकती है, बशर्ते पहले हम भारत में हिंदी को राजभाषा का सम्मान देने की व्यावहारिक पहल करें।

भारत में कानून और न्याय की भाषा अंग्रेजी है और फिर हिंदी में उसका अनुवाद होता है। भारत के संविधान की मूल प्रेरणा अंग्रेजों द्वारा सन् 1935 में बनाए गए भारत सरकार अधिनियम से ली गई है। उसी तर्ज पर पिछले 71 सालों में संसद द्वारा बनाए गए अधिकांश कानून अंग्रेजी में हैं और फिर उनका हिंदी में अनुवाद हुआ है। अंग्रेजी जाननेवाले जजों और वकीलों को भी जटिल और गड़ड़-मड़ड़ शैली में बनाए गए कानून पल्ले नहीं पड़ते, तो फिर आम आदमी को अंग्रेजी कानून की समझ कैसे होगी? विदेशी भाषा में बच्चों को पढ़ाए जाने पर योग्य बच्चे भी अनुतीर्ण हो जाते हैं, वैसे ही विदेशी भाषा में न्यायिक व्यवस्था के परिचालन से 3 करोड़ मुकदमे अधर में लटककर आम जनता को दुःखी कर रहे हैं।

लगभग 18,000 अधीनस्थ न्यायालयों में से 7,165 की अधिकृत भाषा हिंदी है। अभियोजन एवं पुलिस द्वारा हिंदी या क्षेत्रीय भाषा में पक्ष प्रस्तुतीकरण किए जाने के बावजूद अनेक अधीनस्थ न्यायालयों में अभी भी अंग्रेजी में काररवाही होती है। हमारे देश में सर्वोच्च न्यायालय से लेकर जिला सत्र न्यायालय तक सभी में गवाही बेशक हिंदी में हो, जज की तीखी टिप्पणी भी भले हिंदी में हों, लेकिन काररवाही को अंग्रेजी में दर्ज करने की परंपरा बन गई है। गवाही के लिए हस्ताक्षर करनेवाले शपथपत्र पर साफ लिखा होता है कि 'इस दस्तावेज में अंग्रेजी में लिखी गई सभी बातें गवाह ने पढ़ व समझ ली हैं।' संसद में 2010 में संविधान संशोधन बिल पेश किया गया, जिसके अनुसार हिंदी में कानून की पढ़ाई करनेवाले

वकीलों को उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में वकालत करने का अवसर नहीं मिलने से संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है। विधि की पढ़ाई को हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में मान्यता देने का कानून संसद में पारित नहीं हो पाया और यह बिल राज्यसभा में लंबित है।

देश के 24 उच्च न्यायालयों में 4 राज्य—उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार के उच्च न्यायालयों में हिंदी भाषा के प्रयोग की अनुमति है। 26 जनवरी, 1950 को संविधान स्वीकृत होने के पश्चात अनुच्छेद 348(2) के तहत सर्वप्रथम राजस्थान की सरकार ने 14 फरवरी, 1950 को राजाज्ञा जारी करके राजस्थान उच्च न्यायालय में हिंदी भाषा में काररवाही का मार्ग प्रशस्त किया। उत्तर प्रदेश सरकार ने 1961 में फौजदारी मामलों में, 1966 में दीवानी मामलों में और 1969 में शपथ-पत्र सहित सभी काररवाहियों में हिंदी के प्रयोग हेतु आदेश जारी किया। सांसद रंजीत रंजन ने संसद में कहा कि बिहार में उच्च न्यायालय की भाषा हिंदी होने के बावजूद हिंदी में सुनवाई करने से मना किया गया। केंद्रीय गृह राज्य मंत्री किरण रिजीजू ने जवाब देते हुए कहा कि यह गंभीर बात है और सांसद द्वारा इस बारे में बिहार के राज्यपाल से शिकायत की जा सकती है।

आयोगों में हिंदी भाषा का प्रयोग राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय उपभोक्ता संरक्षण आयोग और विधि आयोग जैसे अनेक आयोग भारत सरकार के तहत कार्यरत कार्यालय होने के कारण राजभाषा अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप हिंदी भाषा में कार्य करने को बाध्य हैं। इन आयोगों में अधिकांशतः सर्वोच्च और उच्च न्यायालयों के सेवा-निवृत्त न्यायाधीश कार्यरत हैं, इस वजह से यहाँ अधिकांशतः अंग्रेजी का प्रयोग होता है। सेवा-निवृत्ति के पश्चात न्यायाधीश हिंदी भाषा में कार्य करनेवाले आयोगों में काम करना स्वीकार करते हैं तो उन्हें



अपने पूर्व पद पर भी न्यायाधीश के तौर पर हिंदी भाषा में कार्य करने में कोई कठिनाई क्यों होनी चाहिए ?

संविधान के अनुच्छेद 348 में यह प्रावधान है कि जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक सर्वोच्च न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी काररवाहियाँ अंग्रेजी भाषा में होंगी। धारा 7 (क) के अनुसार 'नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का प्रयोग, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहाँ कोई निर्णय, डिक्री या आदेश हिंदी भाषा में पारित किया या दिया जाता है, वहाँ उसके साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा।' उच्च न्यायालयों में हिंदी भाषा के प्रयोग के लिए राजभाषा अधिनियम की धारा 7 के तहत दिनांक 7-3-1970 को विशेष प्रावधान किए गए। राजभाषा पर संसदीय समिति ने दिनांक 28 नवंबर, 1958 को संस्तुति की थी कि सर्वोच्च न्यायालय में काररवाही की भाषा हिंदी होनी चाहिए। उक्त संस्तुति के बाद 60 साल का समय व्यतीत हो गया है किंतु इस दिशा में आगे कोई सार्थक प्रगति नहीं हुई है।

संसदीय राजभाषा समिति द्वारा 1998 में दी गई रिपोर्ट के पाँचवें खंड में दी गई संस्तुतियों को राष्ट्रपति ने स्वीकार कर लिया है। संस्तुति संख्या (12) के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के महा-निबंधक के कार्यालय को प्रशासनिक कार्यों में संघ सरकार की राजभाषा नीति का अनुपालन करना चाहिए। संस्तुति संख्या (13) के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय में अंग्रेजी के साथ प्रत्येक निर्णय दोनों भाषाओं में उपलब्ध होना चाहिए। विभिन्न उच्च न्यायालयों के विरुद्ध औसतन मात्र 2.5 प्रतिशत मामलों में ही सर्वोच्च न्यायालय में अपीलें प्रस्तुत होती हैं जिनके अंग्रेजी अनुवाद की

आवश्यकता पड़ती है जबकि देश के सभी अधीनस्थ न्यायालयों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दृष्टांत के तौर पर काम में लिए जाते हैं जिनमें से बहुसंख्य न्यायालयों की भाषा हिंदी है। अब संसद द्वारा सभी कानून हिंदी भाषा में बनाए जाने के साथ पुराने कानूनों का हिंदी में अनुवाद हो रहा है और 50,000 हिंदी शब्दों की सरल शब्दावली तैयार हो गई है। अतः अब कानूनी रूप से भी सर्वोच्च न्यायालय में हिंदी भाषा के प्रयोग में कोई बाधा शेष नहीं रह गई है।

राजभाषा कानून 1963 की धारा 4(1) के अनुसार, सन् 1976 में बनी संसद की समिति ने रिपोर्ट के सातवें खंड में न्यायालयों में राजभाषा के प्रयोग पर अनेक अनुशंसाएँ की थीं। इस रिपोर्ट के अनुसार, राजभाषा विभाग में 13 जुलाई, 2005 को प्रस्ताव पारित किया जिसमें अनुच्छेद 16.8 के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 348 में बदलाव की सिफारिश की गई थी। इसके सिफारिश के अनुसार, मामले को विधि आयोग के पास भेजा गया। विधि आयोग के तत्कालीन सभापति ए.आर. लक्ष्मनन ने अपनी रिपोर्ट में सर्वोच्च न्यायालय में हिंदी के काम-काज पर सवालिया निशान लगाते हुए अनुशंसाओं को अव्यावहारिक करार दिया। हिंदी को सर्वोच्च न्यायालय की भाषा नहीं बनाने के लिए विधि आयोग के सभापति ने निम्न तर्क दिए—

- सर्वोच्च न्यायालय में देश के सभी भागों से न्यायाधीश आते हैं जिनमें कई अहिंदी भाषी होते हैं। इसलिए हिंदी की अनिवार्यता उचित नहीं है।
- हिंदी की अनिवार्यता से विधि और राजनीतिक क्षेत्र में अस्थिरता और उबाल आ सकता है।
- हिंदी में काररवाही से न्यायाधीशों की निर्णयन क्षमता पर विपरीत असर पड़ सकता है।
- सर्वोच्च न्यायालय में अहिंदी भाषी क्षेत्र के वकीलों को हिंदी की अनिवार्यता से

तकलीफ हो सकती है।

● हिंदी को अनिवार्य बनाने की बजाय सर्वोच्च न्यायालय की काररवाही का हिंदी में अनुवाद किया जा सकता है।

दयाभाई मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने कहा कि मध्य प्रदेश में हिंदी अधिकृत भाषा है, इसके बावजूद अंग्रेजी के प्रयोग पर कोई संवैधानिक प्रतिबंध नहीं है। उत्तर प्रदेश में भी हिंदी राजभाषा होने के बावजूद अंग्रेजी में जब शासनादेश जारी हुआ तो उसे उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय के अनुसार, उत्तर प्रदेश राजभाषा अधिनियम, 1951 के अनुसार हिंदी राजभाषा है, इसके बावजूद अंग्रेजी के इस्तेमाल पर कोई सीधा प्रतिबंध नहीं है, इसलिए अंग्रेजी में शासनादेश को असंवैधानिक करार नहीं किया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन मामले में वर्ष 2014 के फैसले में यह कहा कि उत्तर प्रदेश में राजभाषा हिंदी है, इसके बावजूद उर्दू को दूसरी भाषा की मान्यता देने में कोई संवैधानिक प्रतिबंध नहीं है। अदालतों के इस तर्क को यदि सही माना जाए तो फिर सर्वोच्च न्यायालय में हिंदी के इस्तेमाल पर कोई संवैधानिक प्रतिबंध नहीं है तो फिर देश में बहुमत की भाषा को ऊँची अदालतों में मान्यता क्यों नहीं मिलती?

तमिलनाडु में हिंदी विरोधी आंदोलनकारियों को सरकार द्वारा पेंशन दिए जाने को सर्वोच्च न्यायालय ने असंवैधानिक करार देते हुए कहा कि यह संविधान के अनुच्छेद 351 की भावना के विपरीत है। न्यायालय के अनुसार, हिंदी देश को जोड़ती है और इसके विरोध में देश को तोड़नेवाले लोगों को सरकार द्वारा पेंशन देना गलत है। संविधान के अनुच्छेद 351 और राजभाषा अधिनियम, 1963 के तहत हिंदी में काम

करनेवाले सरकारी कर्मचारियों को अनेक प्रोत्साहन देने की योजना को तमिलनाडु के नेता मुरुसोली मारन ने चुनौती दी। उनके अनुसार इससे संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन होता है जिसके अनुसार लोगों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। अर्तानी जनरल लाल नारायण सिन्हा की रिपोर्ट के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार के कदमों को संविधान सम्मत बताते हुए अनुच्छेद 351 के तहत हिंदी के विस्तार हेतु सरकार के कदमों का समर्थन किया।

अन्य देशों ने विदेशी भाषा से मुक्ति पाई, पर भारत से अंग्रेजियत नहीं गई। एक फीसदी से कम लोगों द्वारा अंग्रेजी बोलने के बावजूद भारत में अंग्रेजी का वर्चस्व है परंतु कई यूरोपीय देशों की अदालतों में अंग्रेजी के प्रयोग पर प्रतिबंध है। इंग्लैंड की अदालतें तो किसी जमाने में जर्मन और फ्रांसीसी भाषा की गुलामी में डूबी हुई थीं कि उनमें अंग्रेजी बोलने पर कई पौंड का जुर्माना ठोक दिया जाता था, लेकिन 1362 में अंग्रेजी को ब्रिटेन की अदालतों की आधिकारिक भाषा बनाया गया। इसी तरह से फ्रांस ने 1539 में लेटिन को अपने न्यायालयों से विधिवत विदा किया। जर्मनी ने 18वीं सदी में लैटिन से पिंड छुड़ाया। इसी प्रकार रूसी अदालतों में रूसी भाषा और चीन में चीनी भाषा का प्रयोग होता है।

जिस बहस और फैसले को वादी और प्रतिवादी समझ ही न सकें, वह न्याय नहीं, अन्याय है। सिर्फ मुट्ठीभर लोगों की भाषा में न्यायिक व्यवस्था का होना लोकतंत्र की भावना के विरुद्ध है।

□

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय
 17, सेंट्रल लेन, बंगाली मार्केट,
 नई दिल्ली-110 001,

‘एक देश, एक लिपि’ का सपना

—प्रो. गोविंद सिंह

देवनागरी लिपि को लेकर जो उत्साह सन् 1947 या उससे पहले हुआ करता था, आज वह नहीं दिखाई पड़ता। जिस तरह से हिंदी भाषा को देश की राजभाषा बनाने के लिए लंबी जद्दो-जहद करनी पड़ी और यह जद्दो-जहद आज भी जारी है, ठीक उसी प्रकार देवनागरी को हिंदी की आधिकारिक लिपि बनाने में भी कम पसीना नहीं बहाना पड़ा। हिंदी की जगह हिंदुस्तानी को राजभाषा बनाने के पक्ष में कांग्रेस का एक बड़ा वर्ग जिस तरह लामबंद हुआ था, उसी प्रकार से देवनागरी के स्थान पर रोमन को आधिकारिक लिपि बनाने के लिए भी बहुत लोग सक्रिय थे। बावजूद इसके, राष्ट्रवाद का ज्वार इतना ताकतवर था कि उसके सामने कोई टिक नहीं पाया। सबसे बड़ी बात यह थी कि अहिंदीभाषी विद्वान भी देवनागरी के पक्ष में खड़े रहे और देवनागरी लिपि के साथ हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिल गया।

विडंबना यह कि आज हमारे बच्चे देवनागरी से दूर हो रहे हैं। संचार माध्यमों की वजह से वे हिंदी बोलने-समझने में तो दक्ष हैं, लेकिन दिन प्रतिदिन देवनागरी में हिंदी लिखना भूल रहे हैं। रोमन में हिंदी लिखना उन्हें ज्यादा आसान लगता है। वे ही क्यों, नई सूचना प्रौद्योगिकी की वजह से बड़ी तादाद में लोग रोमन में हिंदी लिख रहे हैं। कंप्यूटर, मोबाइल की प्राथमिक भाषा चूँकि अंग्रेजी है, इसलिए इन माध्यमों

में अंग्रेजी में संवाद करना ज्यादा सहज और सुगम होता है। क्या फेसबुक, क्या एस.एम.एस., क्या व्हाट्सएप और क्या इ-मेल, यदि आप हिंदी में संदेश भेजना चाहें तो आपको पहले अपने मोबाइल में सेटिंग बदलनी पड़ती है। यह अतिरिक्त श्रम हिंदी के लिए है। बहुत से उपकरणों में यह इतना आसान भी नहीं होता। सेटिंग बदलने में ही नाकों चने चबाने पड़ते हैं। इसलिए बड़ी संख्या में अंग्रेजी न जाननेवाले लोग भी जबरन अंग्रेजी की तरफ मुड़ जाते हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था भी देवनागरी को लेकर कतई गंभीर नजर नहीं आती।

हिंदी का शहरी मीडिया भी हिंदी को रोमन लिपि में लिखने की वकालत कर रहा है बल्कि हिंदी के अखबारों में अंग्रेजी के शीर्षक देखने को मिलते हैं। पहले ये देवनागरी में हुआ करते थे, अब रोमन में भी दिख रहे हैं हिंदी के भाल पर उगे बदरंग धब्बों की तरफ। हिंदी में अनूदित होकर छपने वाले अंग्रेजी के लेखक भी रोमन में हिंदी लिखने की वकालत करने लगे हैं ताकि रॉयल्टी का पैसा अनुवादक को न जाए। इसी तरह विदेशों में रह रहे भारतवंशियों के बच्चे भी रोमन में हिंदी-उर्दू को लिखने की वकालत कर रहे हैं। जब देश के भीतर ही रोमन की माँग हो रही है तो विदेशों में क्यों न हो!

आखिर ऐसा क्यों है? सिर्फ इसलिए कि लोग

देवनागरी को नहीं जानते, उसके महत्त्व को नहीं समझते। पिछले 70 वर्षों में वे देवनागरी से दूर चले गए हैं। वे नहीं जानते कि वह कितनी वैज्ञानिक है? देश को जोड़े रखने में उसकी क्या भूमिका है?

सबसे पहले बात देवनागरी की वैज्ञानिकता पर। देवनागरी एक ध्वन्यात्मक लिपि है अर्थात् जैसी भाषा हम बोलते हैं, वैसी ही लिख भी सकते हैं। आखिर लिपि का क्या मतलब होता है? यही न कि वह हमारी बोलचाल को चिह्नों के द्वारा रिकॉर्ड कर सके। इसलिए उच्चारण के लिखित संकेत के रूप में विश्व की कोई भी आधुनिक लिपि देवनागरी का मुकाबला नहीं कर सकती। ध्वनि के अनुरूप अक्षरों की आकृति की कसौटी पर भी यह खरी उतरती है। इसकी पुष्टि इस बात से हुई कि एक जर्मन विद्वान ने देवनागरी अक्षरों के मिट्टी के पोले प्रतिरूप तैयार किए। उसके बाद उनमें फूँक मारी तो अ, इ, उ, तथा ए को ठीक उनकी ध्वनि के अनुरूप पाया गया था। इसकी तुलना में रोमन लिपि कहीं भी नहीं टिकती। यह सही है कि यूरोप और अमेरिका के बड़े भू-भाग पर रोमन लिपि का कब्जा है, लेकिन सिर्फ इसी वजह से वह वैज्ञानिक नहीं हो जाती। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी तो यही है कि वह उच्चारण के अनुरूप लिखी नहीं जाती। उसके नियम कड़े नहीं हैं। इसलिए अनेक अवसरों पर भ्रम की स्थिति बन जाती है। उसकी वजह से भारत के अनेक शहरों के नाम गलत लिखे गए और उससे लिप्यंतरित होने से अन्य भारतीय भाषाओं में भी गलत ही लिखे गए। जबकि देवनागरी से यदि वे लिप्यंतरित होते तो सही लिखे जाते। क्योंकि हमारी भाषाएँ लिपि की वजह से दिखने में भिन्न जरूर दिखती हैं, लेकिन अंदर से उनमें बहुत-सी समानताएँ हैं।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रख्यात भाषा विज्ञानी मोनियर विलियम्स ने देवनागरी को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ लिपि बताया है। स्मरण रहे कि मोनियर ने 1860 में हिंदुस्तानी का पहला व्याकरण लिखा था

और संस्कृत-अंग्रेजी का पहला शब्दकोश भी तैयार किया था। वे दुनिया की अनेक भाषाओं और लिपियों के जानकार थे।

अपने देश में लिपियों का जो इतिहास मिलता है, उसमें खरोष्ठी, ब्राह्मी, कुटिल और गुप्त आदि लिपियाँ हैं। सिंधु घाटी सभ्यता से जिस लिपि का पता चलता है, भले ही आज तक उसे पढ़ा न जा सका हो, लेकिन इतना तो सच है कि वह भी भारतीय लिपियों से मिलती-जुलती है। यूनान-रोम या चीनी लिपि से तो कतई नहीं मिलती। निस्संदेह ब्राह्मी पूरे भारत में सर्वाधिक प्रचलित रही है। उसके भी दो रूप मिलते हैं : उत्तरी ब्राह्मी और दक्षिणी ब्राह्मी। उत्तरी ब्राह्मी से देवनागरी और शारदा (कश्मीरी) लिपियाँ निकलीं तो दक्षिणी ब्राह्मी से तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम की लिपियाँ निकलीं। चूंकि प्राचीन ग्रंथों का ज्यादातर लिप्यंतरण देवनागरी में हुआ और उत्तर की ज्यादातर भाषाओं ने उसे अपनाया, इसलिए उसको पूरे देश में स्वीकृति मिली। हालाँकि बाद में उसकी भी दो शाखाएँ मिलती हैं—एक रूप पूर्वी नागरी, जिससे बाँग्ला, असमिया और उड़िया लिपियाँ बनीं, तो दूसरा रूप पश्चिमी नागरी में से गुरुमुखी, डोगरी और गुजराती लिपियाँ विकसित हुईं। ये लिपियाँ देवनागरी से मिलती-जुलती हैं। कुछ अक्षरों में थोड़ा-सा परिवर्तन है या घुमाव है, जिससे वे थोड़ी-सी भिन्न लगती हैं वरना उन्हें बहुत आसानी से देवनागरी में लिखा जा सकता है।

आजादी से पहले और बाद में लिपि की समस्या पर गहन चर्चा हुई थी। तत्कालीन नेताओं और विद्वानों को लगता था कि लिपि राष्ट्रीय एकता का एक बहुत बड़ा कारक बन सकती है। एक राष्ट्र, एक लिपि का सपना देखा था उन्होंने। इसलिए प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रीय एकता परिषद् के तहत मुख्यमंत्रियों की बैठक बुलाई और यह फैसला किया कि राष्ट्रीय एकता के संवर्धन के लिए एक लिपि



अपनाई जाए। बैठक के अंत में यह इच्छा जाहिर की गई कि 'हम अनुभव करते हैं कि यदि भारत के लिए एक लिपि देवनागरी लिपि अपना ली जाए तो ज्यादा अच्छा होगा।' लेकिन जैसा कि हम सब जानते हैं, राष्ट्रीय एकता के किसी भी प्रयास को नेहरू सिरे तक नहीं पहुँचा पाए। इस सपने का भी यही हश्र हुआ। उनका कथन सिर्फ कथन ही रह गया कि, 'कभी-न-कभी हमें भारतीय भाषाओं के लिए एक समान लिपि को प्रोत्साहन देना ही होगा, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि समान लिपि भाषाओं की अपनी लिपियों का स्थान ले लेगी। किसी को भी यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हिंदी लिपि स्थानीय लिपियों की जगह ले लेगी। संभव है, हिंदी की लिपि में ही कुछ परिवर्तन करने पड़ें, लेकिन मेरा सुझाव है कि इसे सभी भाषाओं के लिए एक दूसरी लिपि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इससे एक प्रदेश के लोग दूसरे प्रदेश की भाषा को ज्यादा आसानी से सीख पाएँगे। वास्तविक कठिनाई भाषा की नहीं, बल्कि लिपि की है।'

नेहरू की इस दलील में दम है, इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। दरअसल इस गुल्थी को न समझ पाने के कारण ही हम आज अनेक समस्याओं से जूझ रहे हैं। इसके जरिए हिंदी और उर्दू की समस्या हल हो सकती है। यदि थोड़ा-सा भी प्रयास किया जाए तो अनेक भारतीय भाषाओं को देवनागरी में अभिव्यक्ति दी जा सकती है।

समस्या यह भी है कि अधिसंख्य देशवासी भाषा और लिपि में कोई अंतर ही नहीं समझते। हमने जबर्दस्ती अपनी भाषाओं के लिए लिपियाँ गढ़ ली हैं। जब नेपाली, मराठी, कोंकणी, कुमाउँनी, गढ़वाली, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी और संस्कृत-हिंदी को देवनागरी में लिखा जा सकता है तो क्यों

नहीं उर्दू, पंजाबी, गुजराती या बाँग्ला या उड़िया को देवनागरी में लिखा जा सकता? दुनिया में कहीं भी लिपियों के आधार पर भाषाएँ नहीं बनतीं। यदि ऐसा होता तो पूरे यूरोप-अमेरिका की एक ही भाषा होती, लेकिन दुर्भाग्य से हिंदी और उर्दू को दो अलग-अलग लिपियाँ दे दी गईं, इसलिए दो भाषाएँ हो गईं। अब हम उर्दू सीखने के नाम पर नशतालीक (अरबी-फारसी) लिपि सीखते हैं। शुरुआती दौर में हिंदी और उर्दू एक भाषा थीं भी, लेकिन लिपि की अभेद्य दीवार के चलते आज एक-दूसरे के विरुद्ध हो गई हैं। उन्हें धर्म का प्रतीक बना दिया गया है। यदि लिपि की दीवार हटा दी जाए तो आज हिंदी-उर्दू मिलकर दुनिया की सबसे बड़ी भाषा बन जाएँ।

यदि पूरे देश में नागरी सिखा दी जाए और सभी क्षेत्रीय भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाने लगे तो इससे हम भारतवासी एक-दूसरे के नजदीक आएँगे। एक उत्तर भारतीय को सुदूर दक्षिण भारत जाकर नामपट्टों को पढ़ने में जो मुश्किल आती है, वह नहीं आएगी, इसी तरह दक्षिणवासी को उत्तर भारत आने पर दिक्कत नहीं आएगी। जो काम एकदम पराई रोमन लिपि में गलत तरीके से हो रहा है, क्या वह अपनी लिपि से नहीं हो सकता?

सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का सपना गांधी, नेहरू या विनोबा भावे का हो सकता है, लेकिन आज इसे लागू कर पाना उतना आसान नहीं है। फिर भी आशा करनी चाहिए कि भविष्य में ऐसी परिस्थितियाँ आएँगी कि हम उसे अपनाने को स्वयं आगे आएँगे।

□

विभागाध्यक्ष, जन संचार एवं न्यू मीडिया तथा हिंदी
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय,
राया-सुचानी, जिला-सांबा, जम्मू-181 143

हिंदी का व्यावहारिक और वैज्ञानिक पक्ष

— श्री संत समीर

बड़े-बड़े लोगों के ऐसे बयान अक्सर पढ़ने-सुनने को मिल जाते हैं कि हिंदी को व्यावहारिक, लोकप्रिय और आधुनिक वैज्ञानिकता के अनुकूल बनाने के लिए इसके लहजे का हिंग्लिशीकरण और लिपि का रोमनीकरण कर दिया जाना चाहिए। सवाल है कि क्या वास्तव में ऐसा कर देने से हिंदी संसार का सरताज बन जाएगी या नतीजा कुछ ऐसा होगा कि यह न घर की रह जाएगी न घाट की? हिंदी के हिंग्लिशीकरण, रोमनीकरण और सरलीकरण का अभियान चलानेवालों को चाहिए कि हिंदी के सामर्थ्य को थोड़ी और ईमानदारी के साथ पहचानने का प्रयत्न करें। इस हिसाब से देखें तो किसी भाषा की व्यावहारिकता और सामर्थ्य का एक पैमाना यह हो सकता है कि विभिन्न विधाओं की रचना अभिव्यक्तियों के प्रति उसकी अनुकूलता कितनी है? इस पैमाने पर हिंदी कितनी खरी उतरती है, इसका जवाब इस सवाल में छिपा है कि क्या विश्व साहित्य की कोई ऐसी विधा है, जिसे अपना पाने में हिंदी असमर्थ है? बताने की जरूरत नहीं है कि इस मोर्चे पर हिंदी की शक्ति अद्भुत है। गद्य हो या पद्य, संसार की प्रायः सभी विधाओं में हिंदी में सफलतापूर्वक रचनाकर्म किया जा रहा है। फारसी की पुराने जमाने की ग़ज़ल से लेकर जापानी की आधुनिक काव्य विधा हाइकू तक हिंदी में अपना जलवा बिखेर रही हैं।

हिंदी का मुकाबला अक्सर अंग्रेजी से कराया जाता है, इसलिए बेहतर होगा कि एक तुलना अंग्रेजी से ही कर ली जाए। हिंदी की अनेक काव्य विधाओं में से सबसे प्रचलित दोहे या चौपाई की चार-छह पंक्तियाँ क्या अंग्रेजी में लिखकर कोई दिखा सकता है?

हिंदी के व्यावहारिक सामर्थ्य का एक प्रबल पक्ष यह है कि दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनाने और उन्हें अपनी प्रकृति में ढाल लेने की इसकी विशेषता अद्भुत है। अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी जैसी भाषाएँ हिंदी के संपर्क में ज्यादा रहीं तो इनके शब्दों को हिंदी ने आश्चर्यजनक सहजता के साथ अपनाया है। तमाम, खाली, कीमत, अमीर, उजबक, कैंची, कुली, चकमक, गलीचा, तोप, चाकू, तमगा, दरोगा, लाश, आजाद, आबाद, गरम, नरम, ताजा, सादा, खुशी जैसे सैंकड़ों शब्द हैं, जो दैनंदिन व्यवहार में चलते हैं, पर आम हिंदीभाषी को कतई नहीं मालूम कि ये अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द हैं। अगर बताया न जाए तो क्या कोई ध्यान दे पाएगा कि दाँतों तले उँगली दबाना, हाथ-पैर मारना, पानी-पानी होना, नमक हरामी करना, काम तमाम करना, जमीन-आसमान एक करना, हुक्का-पानी बंद करना, तितर-बितर करना जैसे फारसी के अनेक मुहावरे हिंदी ने ज्यों-के-त्यों अपना लिए हैं। इसी तरह मशीन, कटपीस, कमेटी, कुनैन, केतली, कोट, गिलास, गैस, चाक, चिमनी,

अपील, जज, जेल, जेलर, टिकट, डायरी, प्रेस, बम, बटन, मनीऑर्डर, मफलर, मलेरिया, राशन, लालटेन, रिवाल्वर, लोकल, सूटकेस, हारमोनियम, सिनेमा जैसे अन्यान्य शब्दों को देखें तो ज्यादातर लोगों के लिए जान पाना कठिन है कि ये मूल रूप में अंग्रेजी के शब्द हैं। अचार, अलमारी, ऑलपीन, गमला, गोभी, गोदाम, काजू, सागू, नीलाम, चाबी, तंबाकू, बोतल, संतरा, मिस्त्री, मेज जैसे शब्द हिंदी में ऐसे रचे-बसे हैं कि शायद ही कुछ लोग समझ पाएँ कि ये पुर्तगाली जैसी किसी अन्य भाषा के हैं। हिंदी की व्यावहारिकता और लचीलापन देखना हो तो बाजार-भाव, चोर-दरवाजा, मियाँ-मिट्टू, राजमहल, मोमबत्ती, जेबघड़ी, आँधी-तूफान, खून-पसीना, जाति-बिरादरी, पुलिस-चौकी, पार्सल-घर, डाकघर, जेबकतरा, रेलगाड़ी जैसे सैंकड़ों तरह के भाषाई फ्यूजन में देखिए। दो भाषाओं के मेल से अपने मतलब का शब्द बना लेने की ऐसी सहजता अन्य किसी भाषा में दिखाई देनी मुश्किल है।

हिंदी की व्यावहारिकता के पक्ष में एक बड़ी शक्ति हमारी बोलियाँ हैं। इस देश में बोलियों की संख्या काफी बड़ी है, जिनके चलते विविध भावों और विधाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए हिंदी के पास शब्दों कोई कमी नहीं रह जाती।

हिंदी भाषा की व्याकरणिक संरचना इसकी व्यावहारिकता और वैज्ञानिकता को एक साथ सिद्ध करती है। हिंदी की विशिष्टता है कि यह जिस क्रम में बोली जाती है, उसी क्रम में लिखी भी जाती है। कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम प्रयोग की दृष्टि से इसे व्यावहारिक और सहज बनाता है। हिंदी में शब्दों की व्युत्पत्ति का भी तार्किक आधार है, तो संधि और समास से शब्द निर्माण की सुचिंतित व्यवस्था शब्दार्थ को सुनिश्चितता और प्रासंगिकता प्रदान करती है। शब्द श्रृंखलाओं में प्रत्ययों और उपसर्गों का सौंदर्य आसानी से देखा जा सकता है। शब्दार्थ की अभिधा,

लक्षणा और व्यंजना शक्तियाँ शब्दार्थ और वाक्यार्थ की शक्ति बढ़ाने वाली हिंदी की अद्भुत विशेषताएँ हैं।

वैज्ञानिकता की दृष्टि से हिंदी भाषा की जो विशेषता इसे संसार की सभी भाषाओं में सबसे आगे खड़ा करती है, वह है इसकी लिपि। हिंदी ने अपनी लिपि संस्कृत से ली है इस नाते संस्कृत की कई दूसरी वैज्ञानिकताएँ भी उसे विरासत में मिल गई हैं। लिपि ऐसी विशेषता है, जिसे केंद्र में रखकर अभियान चलाया जाए तो संसार की अन्यान्य भाषाओं के लिए एक सर्वमान्य लिपि का सवाल हल हो सकता है।

दुनिया में लिपियों का विकास ध्वनियों को संकेतों में बदलने की जरूरत के चलते हुआ, लेकिन देवनागरी लिपि को जब हम देखते हैं तो एक बात पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि अन्य लिपियों का विकास जिस तरह से हुआ, देवनागरी का विकास उससे कुछ अलग तरह से हुआ है। जिस समय देवनागरी का जन्म हुआ, उस समय भारत की स्थिति दुनिया के अन्य देशों की तरह कबीलाई नहीं थी। भारतीय मानस विकास के चरम पर था। गूढ़ दार्शनिक-सामाजिक संवादों की एक पूरी परंपरा चल रही थी। श्रुति परंपरा में अध्ययन-अध्यापन जारी था। कहने का अर्थ यह है कि देवनागरी या पूर्व रूप ब्राह्मी का विकास अशिक्षित, जंगली लोगों ने नहीं, बल्कि समझदारी के शिखर पर बैठे मनीषियों ने किया। इस नाते भी देखा जाए तो देवनागरी महज एक लिपि भर नहीं है। यह हमारी सांस्कृतिक विकास प्रक्रिया का एक चेहरा भी है, जिस पर हम गर्व कर सकते हैं।

मानवीय व्यवहार के लिए सर्वाधिक उपयुक्त प्रकृति की ध्वनियों को पकड़नेवाली देवनागरी से बेहतर लिपि संसार में अभी तक और कोई नहीं है। देवनागरी में अ...है तो ...अ, इ...है तो ...इ, क... है तो ...क, ख है तो ...ख। इसी तरह सारे वर्णों को आप वही लिखते हैं जो आप बोलते हैं। देवनागरी के हर वर्ण की बनावट में भी एक जादू है। दिलचस्प है

कि हर वर्ण अपनी बनावट में अपने मूल अर्थ का भान कराता है। देवनागरी वर्णों की बनावट में हमारे मनीषियों की तार्किक सोच दिखाई देती है, जो अन्य किसी लिपि में नहीं पाई जाती।

देवनागरी की इस अजब-गजब ध्वन्यात्मकता का मूल कारण क्या है?

वास्तव में भारतीय मनीषा समूची प्रकृति को ही एक लयबद्ध रचना मानती है। हमारे पुरखे मानते थे कि प्रकृति में कुछ भी अललटप्प नहीं है। पूरी प्रकृति सुविचारित है, तारतम्य में है और इसका जर्ग-जर्ग नियमों में बँधा है। इसी सोच की वजह से आस्तिकता का जन्म हुआ कि यह सृष्टि नियंत्रण में है और इसका कोई नियंत्रण

है। योग, संगीत, आयुर्वेद जैसी अन्यान्य विद्याओं के प्राचीन रूपों में लयबद्धता को साफ तौर पर महसूस किया जा सकता है। लिपि-निर्माण में भी इसी लयबद्धता, सुव्यवस्था, प्रकृति सम्मतता को ध्यान में रखा गया।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता को ठीक से समझने के लिए संस्कृत में प्रयुक्त होने वाली मूल वर्णमाला के परिपेक्ष्य में विचार कर लिया जाए तो बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। हिंदी में स्वीकृत वर्णमाला में संस्कृत प्रयोगवाले कुछ वर्णों को त्याग दिया गया है तो जरूरत के कुछ नए वर्ण बना लिए गए हैं, पर मूल वर्णमाला में वास्तव में कुल 64 वर्ण हैं। 25 स्वर, 25 वर्ग (क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग) के तथा 13 स्फुट के जोड़कर 63 अक्षर हुए और इनमें एक अर्धचंद्र मिलाकर कुल 64 होते

हैं। इन वर्णों पर और सूक्ष्मता से विचार करें तो पता चलेगा कि मूलतः कुल 17 अक्षर हैं। केवल प्रयत्न से उच्चारित होने वर्णों, यानी स्वरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) की संख्या 5 तथा जिनके उच्चारण में स्थान और प्रयत्न दोनों सहायक होते हैं, यानी व्यंजनों (क, ग,

च, ज, ट, ड, त, द, प, ब) की संख्या 10 है। दो मध्यस्थ, यानी अनुस्वार तथा विसर्ग हैं। ये ही 17 अक्षर आपसी संयोग से 64 प्रकार के स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। हमारे मनीषियों ने और गहरे उतरकर पहचाना कि सारी ध्वनियों की जड़ में एक ही ध्वनि या वर्ण 'अ' है। मुँह सहज रूप से खुलता है तो सबसे पहले 'अ' ही निकलता है। इस 'अ' को

बोलते हुए जब जीभ को इधर-उधर हिलाते-डुलाते या स्पर्श कराते हुए उच्चारण किया जाता है तो भाँति-भाँति की ध्वनियाँ सुनाई देने लगती हैं। अब जरा इस दिलचस्प और एकदम प्राकृतिक या कहें परम वैज्ञानिक ध्वनि परिवर्तन की प्रक्रिया की एक बानगी देखें कि कैसे एक वर्ण से दूसरा वर्ण मिलता है तो सहज रूप से एक तीसरे वर्ण का जन्म हो जाता है। प्रयोग के तौर पर हम 'क' और 'ह' को मिलाकर बोलने की कोशिश करें तो आश्चर्यजनक रूप से 'ख' सुना देगा। इसी तरह बताने की जरूरत नहीं है कि ग+ह घ, च+ह छ, ज+ह झ, ट+ह ठ, ड+ह ढ, त+ह थ, द+ह ध, प+ह फ, ब+ह भ बन जाते हैं। यह देवनागरी के ध्वनि-विज्ञान की तरफ संकेत भर है। संसार की अन्य भाषाओं की लिपियों में वर्णों के विकास और शब्द निर्माण में कहीं कोई वैज्ञानिकतापूर्ण समझ नहीं

नजर आती, परंतु देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का इससे स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है कि को ध्वनि जैसी उच्चारित होती है, उसे उसी रूप में इस लिपि में लिखा जाता है।

देवनागरी के वर्ण कैसे अपनी बनावट में भी अपने अर्थ का भान कराते हैं, यह समझना रोचक है। शुरू के दो मूल स्वरों 'अ' और 'इ' की ही संक्षिप्त विवेचना कर लें तो बाकी के लिए बात साफ़ हो जाएगी। वर्णमाला के पहले अक्षर 'अ' के पुराने रूप की बनावट दिलचस्प है। उच्चारण के समय मुँह में बननेवाले आकार तथा अक्षरार्थ, दोनों का ध्यान रखा गया है। 'अ' का उच्चारण करते समय इसकी ध्वनि तालु से लेकर बाहर तक सीधे दंड (।) जैसे आकार में निकलती है। तो यह दंड या स्तंभ (।) ही 'अ' के पुराने रूप का मूल है। चूँकि किसी भी अक्षर का उच्चारण बिना अ-कार के संभव नहीं होता तो इसलिए वर्णमाला के हर अक्षर की बनावट में भी इस स्तंभ की उपस्थिति दिखाई देती है, यानी 'अ' सबमें समाया हुआ है। कोई मात्रा (स्वर) लगाई जाती है तो वह भी इसी स्तंभ यानी 'अ' पर लगाई जाती है। 'अ' (लिपि चिह्न के पुराने रूप पर ध्यान दें) की बनावट में एक विशेषता यह है कि यह स्वतंत्र रूप में लिखा जाता है तो (।) के बजाय शून्य जैसे आकार '0' में दंड (।) जोड़कर बनाया गया है। शून्य का गोल आकार इसलिए कि अ-कार की ध्वनि निकलते समय पूरा मुँह इसी आकार में चारों ओर से एक समान खुला रहता है (सर्व मुखस्थानमवर्णमित्येके—पाणिनि)। इसका सबसे अच्छा चित्र 0 ही हो सकता है। मजे की बात है कि 'अ' अक्षर पूर्ण, सर्वव्यापक, अखंड के साथ-साथ अभाव के अर्थवाला भी है, तो पूर्णता और अभाव, दोनों के लिए भी 0 सर्वथा उपयुक्त प्रतीक है। इस तरह स्पष्ट हुआ कि 'अ' के पुराने रूप की बनावट में कितनी वैज्ञानिकता है।

इसी प्रकार 'ई' के अक्षरार्थ पर ध्यान दें तो

इसका अर्थ 'गति' है। निःसंदेह कहा जा सकता है कि गति का स्वाभाविक प्रतीक बनाना हो तो उसे कुछ-कुछ सर्पिल बनाना पड़ेगा। 'ई' में गति का यही प्रतीक विद्यमान है। अन्य वर्णों की बनावट में भी ऐसी ही तार्किकता देखी जा सकती है।

इतनी वैज्ञानिकतापूर्ण ध्वन्यात्मक लिपि के होते हुए भी जो लोग हिंदी को रोमनमय बनाना चाहते हैं, वे वास्तव में अमूल्य हीरा फेंककर कंकड़, पथर सहेजनेवाला काम कर रहे हैं। यह बात जरूर है कि हमारी लिपि के मूल ध्वनि-चिह्न वर्तमान तक आते-आते काफी परिवर्तित हो गए हैं, परंतु, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि अक्षरात्मकता और ध्वन्यात्मकता की इसकी मूल विशेषता का इससे क्षरण नहीं हुआ है।

देवनागरी की वैज्ञानिकता का एक निरुत्तर कर देनेवाला उदाहरण यह भी है कि इसमें स्वर-व्यंजन, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक्य-अंतस्थ-ऊष्म आदि रूपों में ध्वनि-चिह्नों की क्रम-व्यवस्था को ध्वनि-वैज्ञानिक पद्धति से उच्चारण स्थान तथा प्रयत्नों को आधार बनाकर तय किया गया है। इसमें अन्य भाषाओं की तरह एक चिह्न से अनेक ध्वनियों को व्यक्त नहीं किया जाता, बल्कि प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्र चिह्न निर्धारित है। इससे लेखन में किसी भ्रम की गुंजाइश नहीं रह जाती। अंग्रेजी जैसी भाषा की रोमन लिपि में जिस तरह से विद्वान् से विद्वान् व्यक्ति को भी हर नए शब्द की वर्तनी (स्पेलिंग) रटनी ही पड़ती है, उस तरह से देवनागरी लिपि में करने की आवश्यकता नहीं होती। इसमें तो वर्णमाला और मात्रा-विधान को जान लेने के बाद केवल शुद्ध उच्चारण जान-सुनकर भी किसी भी शब्द को ठीक रूप में लिखा जा सकता है।

□

सी-319/एफ-2

शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2, साहिबाबाद
जिला गाजियाबाद-5 (उ.प्र.)

एक आँख हँसती है : दूसरी आँख रोती है

—डॉ. देवेंद्र दीपक

हिंदी को लेकर मेरी एक आँख हँसती है, तो दूसरी आँख रोती है। मैं दशकों से यह झेल रहा हूँ। मेरे, इस 'मैं' में मैं अकेला नहीं हूँ, पूरा देश इस 'मैं' में शामिल है।

मेरी एक आँख हँसती है जब वह देखती है कि विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में लोग चाव से हिंदी पढ़ रहे हैं। हिंदी के अध्ययन और अध्यापन की सुविधा के विस्तार को लेकर आग्रह निरंतर बढ़ रहा है, लेकिन मेरी दूसरी आँख रोती है जब वह देखती है कि गाँव-देहात और दूरस्थ अंचलों के स्कूल की टाट-पट्टी भी उससे छिन रही है। एक ओर प्रतिष्ठा, दूसरी ओर निर्वासन!

मेरी एक आँख उस दिन बहुत हँसी जब उसने भोपाल के एक दैनिक-पत्र में कर्नाटक शासन का एक बड़ा विज्ञापन हिंदी में छपा हुआ देखा। कुछ दिन बाद मेरी दूसरी आँख रो पड़ी, जब उसने यह समाचार पढ़ा कि कर्नाटक सरकार ने मैट्रो में हिंदी में सूचनाओं के प्रसारण को बंद करवा दिया। मेरी एक आँख उस दिन बहुत हँसी जब उसने भोपाल में दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन के भव्य आयोजन को देखा। सबकुछ भव्य! गहन विचार-विमर्श स्वागत सत्कार में कोई कमी नहीं। मध्यप्रदेश शासन का हिंदी प्रेम नगर की सड़कों और चौराहों पर भी खूब दीखा। अच्छा लगा। अभी तक के आयोजित सभी विश्व हिंदी

सम्मेलनों में सर्वाधिक व्यवस्थित। मॉरीशस, सूरीनाम, न्यूयॉर्क, लंदन, दिल्ली में आयोजित सम्मेलनों का मैं साक्षी रहा हूँ। मेरी दूसरी आँख रोती है जब भोपाल राजधानी के हिंदी दैनिकों में मध्यप्रदेश शासन के अनेक उपक्रमों, अधिकरणों और नगर पालिकाओं के विज्ञापन अंग्रेजी में देखती है। और तो और, भोपाल नगर निगम के अपने कई विज्ञापन भी अंग्रेजी में हैं और कोई नजर रखनेवाला नहीं है। मैंने फेसबुक पर, इस विषय को उठाया और लिखा कि आप अपने घर में आनेवाले समाचार-पत्रों पर निगाह रखें और कैफियत को सामने रखें। सच यह है कि हम प्रभारी हैं, स्वयं कुछ करना नहीं चाहते। कोई दूसरा हमें बस पका-पकाया सौंप दे।

नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद से मेरी एक आँख को बहुत शांति मिली। वह यह देखकर बहुत खुश है कि मोदी जिस देश में जाते हैं, वहाँ के भारतीयों से मिलते हैं और हिंदी में बोलते-बतियाते हैं। विभिन्न मंत्रालयों की हिंदी सलाहकार समितियाँ पहले की तुलना में अधिक चुस्त दिखती हैं, लेकिन मेरी दूसरी आँख से यह भी नहीं छुपा कि मोदी सरकार की अनेक योजनाओं के नाम अंग्रेजी में होते हैं। उसे यह भी दिख रहा है कि सत्ता के सिंहद्वार पर अभी भी अंग्रेजी का कब्जा है। हिंदी को यह डर बराबर लगा



रहता है कि हिंदी को प्राप्त अनुकूलता कहीं कृष्ण पक्ष की चाँदनी तो नहीं है।

मेरी एक आँख यह देखकर प्रसन्न है कि देश में हिंदी के समाचार-पत्रों की प्रसार संख्या में गुणात्मक उछाल आया है। सर्वाधिक पाठकों की संख्या हिंदी समाचार-पत्रों के पास है, लेकिन व्यावसायिक होड़ में हिंदी के समाचार-पत्र अपनी भाषा के स्वरूप को लेकर गंभीर नहीं हैं। देवनागरी में अँग्रेजी शब्दों की भरमार देखकर रोना आता है। संख्या में गुणात्मक वृद्धि एक ओर तो दूसरी ओर भाषा की गुणवत्ता में गुणात्मक ह्रास। संवाद लेखकों पर खिचड़ी भाषा लिखने के लिए दबाव बढ़ाया जाता है। तर्क यह कि आज का नवयुवक ऐसी ही भाषा पसंद करते हैं। हिंदी के विख्यात राष्ट्रीय दैनिक, लेकिन उसमें एक पृष्ठ अँग्रेजी का कमाल है। हिंदी के दैनिक में हिंदी की पुस्तकों की समीक्षा से अधिक अँग्रेजी की पुस्तकों की समीक्षा हिंदी के दैनिक समाचार-पत्रों में साहित्य, कला और संस्कृति के समाचारों के लिए जगह का अभाव। देखते-ही-देखते हिंदी दैनिकों के साप्ताहिक साहित्यिक परिशिष्ट लुप्त हो गए। कुछ अपवाद स्वरूप भले बचे हों। ऐसे में मेरी दूसरी आँख रोएगी नहीं तो क्या करेगी?

मेरी एक आँख यह देखकर गर्व से भर जाती है जब वह देखती है कि हिंदी दुर्गा रूप है। सभी देवताओं की शक्तियों का एक स्थान पर निग्रह! विभिन्न प्रादेशिक और आंचलिक बोलियाँ समवेत हुईं और पूछने पर सबने सहज भाव से स्फूर्ति के साथ हिंदी को वर्तमान स्वरूप दिया। ये बोलियाँ हैं तो हिंदी है, हिंदी है तो ये बोलियाँ हैं। लेकिन आज देश के कई क्षेत्रों से यह आवाज उठ रही है कि हमारी बोली को संविधान की 8वीं सूची में सम्मिलित करो। मैथिली को 8वीं सूची में स्थान मिला तो अब भोजपुरीवाले शोर मचा रहे हैं। बुंदेलीवाले भी एक संगठन बनाकर

प्रस्ताव पास कर रहे हैं। इन्हें कहीं भी राजनेताओं और हिंदी के तथाकथित साहित्यकारों का भी समर्थन मिल रहा है। मेरी दूसरी आँख इस विग्रह को देखकर रोएगी ही। उसके भाग्य में आज रोना ही रोना है।

आँखों के हँसने व रोने का एक प्रसंग। एन.सी.ई.आर.टी. की एक कार्यशाला में एर्नाकुलम जाना हुआ। वहाँ हिंदी प्रचार सभा में देखा कि हिंदी का टाइपराइटर सुबह से शाम तक चलता है। वहाँ एम.ए. हिंदी की सभा लगती है। उसमें चालीस विद्यार्थी-उनतालीस महिला और एक पुरुष। यह खुश होनेवाली बात थी। यह तब जब कि पास में ही कोचीन में भी एम.ए. हिंदी की कक्षाएँ लगती हैं। यह हँसने का प्रसंग था, लेकिन भोपाल के विषय में जानकारी लेता हूँ तो पता चलता है कि हमीदिया कॉलेज जैसे महाविद्यालय में भी एम.ए. हिंदी के छात्रों की संख्या आठ-दस रहती है।

श्रोताओं को यह सुनना अच्छा लगा। मैंने कहा कि मैं हिंदी का आदमी हूँ, लेकिन अपने बच्चे को अँग्रेजी माध्यम के कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ाता हूँ। मैं अँग्रेजी में हस्ताक्षर करता हूँ, मेरा नाम पर अँग्रेजी में है। विवाह आदि के निमंत्रण-पत्र हम अँग्रेजी में छपवाते हैं। बताइए, है कि नहीं यह पाखंड? हमारी सरकारें भी ऐसी ही हैं—अँग्रेजी के नए टाइपराइटर, कार्यालयों में भविष्य में न खरीदे जाएँ। इनके स्थान पर हिंदी के टाइपराइटर खरीदे जाएँ। मध्यप्रदेश की सरकार का यह आदेश हिंदी में नहीं, अँग्रेजी में निकलता है। इससे ज्यादा पाखंड क्या होगा? हम हिंदी भाषियों का हिंदी प्रेम एक दिखावा है। हम पाखंडी हैं। श्रोता खुश।

अब मैंने पैतरा बदला कि आप लोग भी पाखंडी हैं। जनता में हलचल हुई। एक हिंदी भाषी, हमारे ही नगर में हमें पाखंडी कहे? जिस स्वर में जिसमें मैंने कहा था हम हिंदी पाखंडी हैं, उसी स्वर में मैंने अपनी

बात बिना विचलित हुए कही कि आप भी पाखंडी हैं। हमारा हिंदी प्रेम एक पाखंड है, तो आप दक्षिणवालों का हिंदी विरोध भी एक पाखंड है। आप मंच से हिंदी का विरोध करते हैं, लेकिन भीतर-भीतर आप अपने बच्चों को हिंदी सीखने के लिए समय और साधन उपलब्ध कराते हैं। अगर ऐसा नहीं है तो सुबह से शाम तक हिंदी का टाइपराइटर क्यों चलता है। क्यों एर्नाकुलम में एम.ए. हिंदी में चालीस छात्र हैं ?

फिर मैंने कहा कि हिंदीवाले और अहिंदीवाले, दोनों पाखंडी हैं। एक का हिंदी प्रेम पाखंड, दूसरे का हिंदी विरोध पाखंड, लेकिन इस पाखंड के मूल में अर्थशास्त्र है। हिंदी की दुहाई देनेवाला हिंदीवाला अपने बच्चों को अँग्रेजी स्कूल में इस आशय से भेजता है कि अँग्रेजी के ज्ञान के कारण उसे सरकारी नौकरी मिलती है। उसे यह मालूम है कि बिना हिंदी पढ़े, कोई व्यक्ति भारत का राष्ट्रपति बन सकता है, लेकिन बिना अँग्रेजी जाने उसे चपरासी की नौकरी भी नहीं मिल सकती। आपकी भी वही कैफियत है। राजनीतिक कारणों से दक्षिणवाले हिंदी का कितना ही विरोध क्यों न करें, लेकिन उनकी भावी पीढ़ी हिंदी पढ़ रही है। कन्याकुमारी से मलयालम भाषी अभिभावक का अपने बच्चों को हिंदी सिखाने के पीछे का भाव यह कि अगर वह हिंदी सीख लेगा, तो कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में शिमला तक उसका रास्ता साफ। हिंदी सीखकर वह उत्तर भारत में कहीं भी रच-बस सकता है, कमा-खा सकता है। एक भाषा सीखो, पूरा भारत आपकी मुट्ठी में।

मैंने आगे यह भी कहा, आप कहते हैं कि हिंदीवाले दक्षिण की भाषा क्यों नहीं सीखते ? आपकी शिकायत सही है, उसे सीखना चाहिए। अहिंदीभाषी क्षेत्र में आप ऐसी कक्षाएँ लगाइए जहाँ हिंदी भाषी दक्षिण की भाषा सीख सकें। लेकिन एक बात यह भी है कि दक्षिण की चार भाषाएँ हैं। चारों की चार

लिपियाँ। अगर वह दक्षिण की कोई एक भाषा सीखता है तो उसकी गतिशीलता का क्षेत्र केवल एक प्रदेश। आपके लिए पूरा देश, हमारे लिए केवल एक प्रदेश। मेरी पूरी बात सुनने के बाद श्रोता कुछ शांत दिखे !

एक ऐसा समय आया जब फारसी भारत की राज-काज की भाषा बनी। लोग अपनी भाषा छोड़कर फारसी सीखने लगे। फारसी पढ़े-लिखे लोगों को राज-काज में उच्च पद मिलने लगे। ऐसे लोगों को समाज में मान-सम्मान बढ़ना स्वाभाविक था और फिर एक समय ऐसा आया कि फारसी राज-काज की भाषा के पद से च्युत हुई। फारसी पढ़े लोगों के सामने आजीविका समस्या खड़ी हो गई और उनमें से कुछ लोगों ने अस्तित्व की रक्षा के लिए तेल का व्यवसाय चुना होगा। तब से यह कहावत सामने आई। मात्र राज्याश्रय के सहारे आगे बढ़नेवाला व्यक्ति हो, भाषा हो, सबका यही हश्र होता है।

हमारी हिंदी राज्याश्रय के भरोसे नहीं रही। साधु-संतों, भक्तों, वीर योद्धाओं के सहारे हिंदी ने अपना मार्ग प्रशस्त किया। 2 मार्च, 1950 को रोहतक में आयोजित प्रांतीय हिंदी सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघ चालक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर गुरुजी ने जो कहा था, उसके कुछ अंश आज भी हमारे लिए पाथेय स्वरूप है—उन्होंने कहा, ‘हमें हिंदी को सच्चे अर्थ में संपन्न भाषा बनाना है। हिंदी के विषय में प्रखर स्वाभिमान की भावना जाग्रत करनी चाहिए’। अपने कर्तव्य से जगत की भाषाओं में उसे सम्मानित स्थान प्राप्त करा देंगे, ऐसा आत्म विश्वास जगाना पड़ेगा। अपने प्रयत्न से हिंदी को ऐसी उर्जितावस्था प्राप्त करा देंगे, जिससे अपने देश के ही नहीं तो सारे जगत के विद्वान हिंदी का अध्ययन गौरवास्पद मानेंगे।’

□

हिंदी-विस्तार के व्यावहारिक कदम

—प्रभात कुमार

हिंदी प्रगति-पथ पर अग्रसर है, पर राह सरल नहीं है। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का डंका बज रहा है, पर अभी इसे यथेष्ट यश मिलना शेष है। भाषा के रूप में इसका उत्कर्ष अभी बाकी है। आमजन द्वारा इसे प्रयोग और व्यवहार में लाने का जो वातावरण होना चाहिए, वह अभी नहीं है। इसलिए अब यह नितांत आवश्यक हो गया है कि हिंदी-विस्तार के लिए व्यावहारिक कदम उठाए जाएँ।

सबसे पहले हिंदी को एक भाषा के रूप में शिक्षा में विशेष स्थान मिलना चाहिए। केवल इसे पढ़कर, अंक लाकर परीक्षा पास करने का ध्येय न होकर, इसकी शुद्धता के प्रति आग्रह प्रारंभ से ही रखना होगा। अकसर देखा गया है कि माता-पिता यह कहते हुए गर्व का अनुभव करते हैं कि उनका बच्चा गणित, अंग्रेजी, विज्ञान आदि विषयों में बहुत तेज है, पर उसकी हिंदी बहुत कमजोर है। यह गौरव की नहीं, अपितु लज्जित होने की बात है। परिवार में आप हिंदी का व्यवहार अधिक-से-अधिक करें, ताकि बच्चे उन नए शब्दों को पकड़ें और अपनी शब्द-संपदा बालपन से ही विकसित करें, जो बड़े होते-होते और समृद्ध-संपन्न हो सके। इसलिए हिंदी की प्रगति का पथ घर-परिवार से प्रारंभ होता है। अपनी भाषा को दीन-हीन न समझें और अंग्रेजी भाषा के प्रति अत्यधिक आग्रह न रखें। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है, अस्तु जितनी अधिक

भाषाएँ एक बालक सीखेगा, उसका मस्तिष्क उतना ही उर्वर होगा, पर आवश्यक है कि पहले अपनी मातृभाषा में प्रवीण होइए।

घर के बाद भाषा के प्रति संस्कार-समर्पण का भाव जगाने का काम स्कूल-विद्यालयों का है। अनेक अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में तो हिंदी बोलने पर दंड का विधान है, जबकि अनेक विद्यालयों में हिंदी में ही प्राथमिक कक्षाओं की पढ़ाई होती है और अंग्रेजी केवल एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। कालांतर में ऐसे छात्र अन्यो की तुलना में हिंदी में तो दक्ष होते हैं, अंग्रेजी ज्ञान में भी किसी से पीछे नहीं रहते। इसके लिए शिक्षकों को जाग्रत होना होगा, उन्हें भी हिंदी के प्रति गंभीर होना होगा। मैंने दूसरी कक्षा के छात्र की हिंदी की कॉपी देखी तो उसमें उसके लिखे वाक्य में अनेक अशुद्धियाँ थीं, परंतु शिक्षिका ने सब पर (✓) सही का निशान लगाया हुआ था। यह प्रवृत्ति ठीक नहीं है, क्योंकि छात्र अपने उस गलत लिखे का दोष नहीं जान पाएँगे और वही उनका अभ्यास बन जाएगा। बड़ी आयु के लोग भी सामान्य शब्दों को लिखने में गलती करते हैं, क्योंकि उन्हें ठीक शब्द बताया ही नहीं गया।

अतः शिक्षकों का शुद्ध शब्द लिखने के प्रति विशेष आग्रह होना चाहिए। वे छात्रों को शब्दों की सही स्पेलिंग बताएँ, कहीं भ्रम होने पर शुद्ध शब्द की स्पेलिंग देखने के लिए शब्दकोश देखने का अभ्यास डलवाएँ।

ऐसा करना भाषा के ठीक प्रयोग को बढ़ावा देगा और शब्द-संपदा को भी विकसित करेगा।

गलत नामपट्ट ठीक हों, इसके लिए स्वयंसेवी संगठनों को बड़ी भूमिका निभानी होगी। अधिकांश दुकानदारों का अभ्यास अंग्रेजी के नामपट्ट लगाने का है, किंतु आग्रह करने पर कुछ दुकानदार हिंदी के नामपट्ट लिखवाते हैं, पर उनमें भाषा की शुद्धता का ध्यान नहीं रखा जाता। अनेक दुकानों पर 'दवाईयाँ' लिखा है, जबकि शुद्ध 'दवाईयाँ' है। बसों-ट्रकों के पीछे 'मां का आर्शिवाद' या 'मां का आशीर्वाद' लिखा है, जबकि शुद्ध 'माँ का आशीर्वाद' है। ये सामान्य त्रुटियाँ इसलिए हो रही हैं, क्योंकि गलत लिखनेवालों को कभी बताया नहीं गया कि ये अशुद्ध हैं। वे जहाँ गलती देखें, उसे ठीक करवाने का बलवती आग्रह करें।

ऐसा इसलिए होता है कि हम हिंदी भाषा को अधिक गंभीरता से नहीं लेते, जबकि भाषा अशुद्ध लिखना भी एक तरह का अपराध ही है। अतः यह मानसिक संभ्रम दूर करना होगा कि 'सब चलता है'। बाजारों में जब नामपट्ट हिंदी में, शुद्ध हिंदी में, लिखे होंगे तो उससे भी एक वातावरण बनेगा।

हिंदी के उपयोग में एक बड़ी बाधा इसका मानकीकरण न होना है। एक ही शब्द को लोग कई-कई प्रकार से लिखते हैं; अतः बड़े भ्रम की स्थिति हो जाती है, जो उत्सुक हिंदी प्रेमियों को भी हिंदी लिखने से हतोत्साहित करती है। भारत सरकार ने उच्च कोटि के विद्वानों और भाषाविदों के गहन चिंतन-मनन के उपरांत एक मानक हिंदी वर्तनी का निर्धारण किया था। यह अपेक्षित था कि पूरे भारत में हिंदी का काम करनेवाले शिक्षक, लेखक, राजभाषा अधिकारी, प्रकाशक और अन्य सभी इस मानक स्वरूप को अंगीकार करें और तदनुसार शब्दों का रूप लिखें। परंतु इतना लंबा समय बीत जाने के बाद भी हिंदीभाषी लोग, निजी संस्थान, पत्र-पत्रिकाएँ तथा शासकीय-अर्धशासकीय संस्थाएँ मनमाने ढंग से हिंदी लिख रहे हैं, यथा—

| | | |
|---------|-------|--------|
| सम्बन्ध | संबंध | सम्बंध |
| नयी | नई | |
| आततायी | आतताई | |
| स्थायी | स्थाय | |

यह एक झलक मात्र है कि हम हिंदीभाषी अपनी भाषा के साथ कैसे खिलवाड़ कर रहे हैं। अतः अब मानकीकरण को लेकर स्पष्ट निर्देशिका जारी करना आवश्यक है, ताकि भविष्य में हिंदी की सभी सामग्री—पुस्तकें, पाठ्य-पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ और कोई भी मुद्रित सामग्री इसी मानक हिंदी में प्रकाशित-मुद्रित हो।

इसी क्रम में यह भी विचारणीय है कि हिंदी के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किस सीमा तक हो। अकसर बोलते हुए, लिखते हुए हिंदी के वाक्यों में अंग्रेजी शब्दों की इतनी भरमार हो जाती है कि वह वाक्य अंग्रेजी का ही हो जाता है। यह स्थिति बड़ी भयंकर है। शब्दों को ग्रहण करने में हिंदी सदैव उदार रही है और उसने हृदय खोलकर सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ उर्दू-अरबी-फारसी-अंग्रेजी शब्दों को स्वीकार कर अपने को समृद्ध किया है। हिंदी का किसी भी भाषा से न कोई प्रतिस्पर्धा है, न विरोध। पर अपने वाचन-लेखन में विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग कम हो, यह आदर्श होता है। यह विषय हमारी परंपरा, संस्कार और गौरव से जुड़ा है, इसलिए सामाजिक स्तर पर लोगों में चेतना जाग्रत करनी होगी।

तकनीकी स्तर पर हिंदी में अभी बहुत काम होना बाकी है। ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की पुस्तकें हिंदी में कम ही उपलब्ध हैं। इस कारण इन विषयों का अध्ययन करने के लिए न चाहते हुए भी अंग्रेजी पुस्तकों का मुँह देखना पड़ता है। हिंदी में पढ़ाई करने के लिए उद्यत उत्साही छात्रों को भी पुस्तकें न मिलने के कारण निराश होना पड़ता है। इस अभाव की पूर्ति करना सबसे पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। इन विषयों पर सरल-सुबोध भाषा में प्रामाणिक-पठनीय पुस्तकें तैयार करने के लिए एक दीर्घकालीन योजना बनाना आवश्यक है,

ताकि एक निश्चित समयावधि में पुस्तकें तैयार हो जाएँ और पूरा पाठ्यक्रम हिंदी में बन जाए। जब इजराइल अपनी सारी पाठ्य-पुस्तकें व अन्य साहित्य अत्यंत कम समय में हिब्रू में तैयार करवा सकता है तो हम हिंदी में क्यों ऐसा नहीं कर सकते? इसके लिए अदम्य इच्छाशक्ति और महती जिजीविषा हमें बल देगी। भाषाविदों-वैयाकरणों और समाजधर्मियों को विविध विषयों की मानक पारिभाषिक शब्दावली विकसित करनी होगी, ताकि शब्दाभाव के कारण हिंदी का प्रगति-रथ रुके नहीं।

इसी प्रकार टाइप फॉण्ट के मामले में भी हिंदी में अभी सुगमता नहीं है। एक फॉण्ट में टाइप किया मैटर किसी अन्य फॉण्ट में रूपांतरित करने पर अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं, जो हिंदी के काम को बढ़ाने में बाधा उत्पन्न करती हैं। कृतिदेव फॉण्ट से योगेश फॉण्ट में या चाणक्य में परिवर्तित

करने पर विचित्र अक्षर बन जाते हैं, जबकि अंग्रेजी में ऐसा नहीं होता। Times को Helvetica में या Zapf Chancery में परिवर्तित करने पर मैटर में किसी प्रकार के विचित्र अक्षर नहीं बनते। इसके लिए हिंदी में बहुत काम करने की आवश्यकता है, ताकि इन छोटी-छोटी समस्याओं का समाधान शीघ्रातिशीघ्र हो सके। इसके लिए तकनीकी रूप से दक्ष और सक्षम विद्वानों के समूह को गहन अनुसंधान कर अपेक्षित परिणाम देने होंगे। इसके लिए फॉण्ट बनानेवाली कंपनियों की बड़ी भूमिका होगी। ये कंपनियाँ स्पर्धा छोड़कर आपस में समन्वय करके हिंदी फॉण्ट के विषय में काम करें। इस काम

में सरकारी हस्तक्षेप की भी आवश्यकता हो तो वह भी करना होगा, ताकि एक बड़े उद्देश्य तथा लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। जब पूरे विश्व में कंप्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी का काम उस देश की भाषा में हो रहा है तो हम भारतीय अपनी भाषा 'हिंदी' को लेकर इतना उदासीन क्यों हैं?

हमें इस नैराश्य भाव से बाहर निकलकर विज्ञान की नवीनतम उन्नत तकनीकों का सहारा लेकर हिंदी को सर्वसुलभ और व्यावहारिक बनाना ही होगा।

अब समय आ गया है कि केवल वाद-संवाद, विवाद छोड़कर ठोस रणनीति बनाकर हिंदी के उन्नयन का व्यावहारिक पथ प्रशस्त करें। हमें कतई हताश-निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमारी समृद्ध हिंदी विश्वभाषा बनने

में पूरी तरह समर्थ-सक्षम है। बस, अभी हम इसका गौरवबोध नहीं कर पा रहे; शुद्धता का आग्रह नहीं रख पा रहे; इसकी सामर्थ्य और शक्ति का भान नहीं कर पा रहे। जब लगभग पैंसठ करोड़ भारतीय प्राणपण से हिंदी के उपयोग के लिए कटिबद्ध होंगे तो कोई कारण नहीं कि विश्वपटल पर हिंदी की गूँज सुनाई देगी। इसी गूँज से समृद्ध भारतीय संस्कृति, परंपराएँ, दर्शन व ऐतिहासिकता भी प्रतिध्वनित होगी।



हिंदी : तन और मन की भाषा

—डॉ. परमात्मा कुमार मिश्र

हिंदी विश्व की दूसरी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है। बी.बी.सी. की खबर के अनुसार, विश्व में 54.5 करोड़ हिंदी बोलनेवाले लोग हैं। भारत के अलावा दुनिया के कई देशों, जैसे—अमेरिका, मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गुयाना, मलेशिया, त्रिनिडाड एवं टोबैगो, नेपाल आदि में बोली और समझी जानेवाली भाषा है। कारण है, हिंदी भाषा का सरल और लचीलापन होना, जिसे सीखने में विशेष कठिनाई नहीं होती। इसके लेखन और उच्चारण में स्पष्टता है क्योंकि हिंदी भाषा में जो लिखा जाता है, उसी रूप में पढ़ा जाता है। इसके नियम प्रायः अपवाद रहित हैं इसलिए आसान है। हिंदी का शब्दकोष भी बहुत बृहद् है। इसके शब्दकोषों को शब्दों की संख्या लगभग 2.5 लाख से भी अधिक है। एक ही वस्तु, कार्य, भाव, शैली आदि को व्यक्त करने के लिए सैकड़ों शब्द हिंदी में उपस्थित हैं। हिंदी की वर्णमाला भी सर्वाधिक व्यवस्थित है। इसमें सभी वर्गों को उनकी उच्चारण स्थानादि की विशेषताओं के आधार पर रखा गया है।

हिंदी भाषा की उक्त विशेषताओं के कारण यह सर्वग्राह्य और सम्प्रेषण की दृष्टि से सुलभ है। यह एक ऐसी भाषा है जो तन और मन के बहुत करीब है। मन में उमड़े भावों व विचारों को आसानी से मौखिक व लिखित रूप में इसके द्वारा संचारित करना आसान है। तन और मन का संबंध स्वस्थ शरीर से है। यह हम

बचपन से सुनते आए हैं कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का वास होता है। संसार में स्वास्थ्य से बढ़कर कुछ नहीं होता और शरीर अगर स्वस्थ हो तो दिल को सुकून मिलता है। इसलिए स्वास्थ्य को सबसे बड़ा धन माना गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने दैहिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ होने को ही स्वास्थ्य या आरोग्य की संज्ञा दी। यदि हम अपने जीवन में आनेवाली सभी सामाजिक, शारीरिक और भावनात्मक चुनौतियों का प्रबंध करने में सफलतापूर्वक सक्षम हैं तो अपने आपको पूर्ण स्वस्थ कह सकते हैं। समग्र स्वास्थ्य दरअसल शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, बौद्धिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य और सामाजिक स्वास्थ्य का समुच्चय है।

समग्र स्वास्थ्य के जितने भी फलक हैं, उसमें संचार केंद्रीभूत है। संसार के अभाव में स्वस्थ शरीर अर्थात् 'तन' और स्वस्थ मस्तिष्क अर्थात् 'मन' की कल्पना संभव नहीं है। संचारक जन प्राप्तकर्ता को सूचना भेजता है तो 'माध्यम' का प्रयोग करता है। संचार तभी होगा जब सभी पक्ष एक समान भाषा का बोध करे। संचार मौखिक रूप में बोली, गान और कभी-कभी आवाज या स्वर और गैर-मौखिक रूप में शारीरिक हाव-भाव, संकेत बोली, समभाषा, स्पर्श, नेत्र संपर्क के साथ ही लेखन द्वारा किया जाता है। संचार के अंतः व्यक्तिगत और अंतर व्यक्तिगत प्रारूप



में भाषा की भूमिका भले ही अलग-अलग रूपों में सूक्ष्म मात्रा में अवस्थित हो, लेकिन समूह संचार और जनसंचार में भाषा मुख्य माध्यम है। भाषा के अभाव में संचार असंभव है। भाषा पहला ऐसा विकसित माध्यम है जिसने जनसंचार को अस्तित्व व व्यवस्था प्रदान की। यून कहें कि मानव जीवन में संप्रेषण का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वह भाषा जो संप्रेषण के लिए सर्वथा अनुकूल हो उसमें हिंदी भाषा का स्थान सबसे पहले आता है।

प्रश्न उठता है कि हिंदी भाषा में ऐसी कौन सी विशेषता है जो अन्य भाषा में नहीं है? यदि अँग्रेजी भाषा को सामने रखकर तुलना करते हैं तो पाते हैं कि अँग्रेजी में कर्ता-क्रिया-ऑब्जेक्ट-क्रिया का क्रम देखने को मिलता है। एक सवाल के जवाब में हम पाते हैं कि हिंदी में संयुक्त अक्षर पाए जाते हैं, जैसे क और र को जोड़कर क्र बनता है। अँग्रेजी में संयुक्त अक्षर (compound letters) का प्रयोग नहीं होता अर्थात् ख और R को मिलाया नहीं जाता। हिंदी में ध्वन्यात्मक वर्णमाला (लिपि) (Phonetic Alphabet) और निर्जीव वस्तुओं के लिए लिंग (gender for inanimate objects) होते हैं।

हिंदी प्रेमी अंजन शर्मा ने लिखा है कि हिंदी दुनिया की सबसे व्यावहारिक भाषा है। अंग तक का नामकरण उनकी (अंग) उपयोगिता पर निर्भर है।

छू लो तो 'चरण'
अड़ा दो तो 'टाँग'
कुल्हाड़ी मारनी हो तो 'पैर'
बढ़ा दो तो 'कदम'
चिन्ह छोड़े तो 'पद'
फूलने लगें तो 'पाँव'
प्रभु के हों तो 'पाद'
बाप की हो तो 'लात'
घुघरू बाँध दो तो 'पग'
खा लो तो 'टँगड़ी'

जबकि अँग्रेजी में केवल एक ही शब्द है 'थु'।

हिंदी की पढ़ाई करनेवाली शुभांगी गर्ग ने लिखा है कि जहाँ अँग्रेजी में हम किसी से बात करते समय सभी के लिए बदल् (यू) का प्रयोग करते हैं, वहीं हिंदी में बड़े और छोटे को संबोधित करने के लिए अलग-अलग शब्द हैं।

हिंदी में बड़ी उम्र के लोगों को 'आप' कहकर संबोधित किया जाता है तो अपने से छोटों के लिए 'तुम' शब्द का प्रयोग करते हैं। सुनिए, कहिए, करिए, लीजिए जैसे शब्दों की मिठास अनुभव की है। ये शब्द अँग्रेजी के लिसन (listen), से (say), डू (do) तथा टेक (take) से कहीं ज्यादा सौंदर्यबोध कराते हैं।

हिंदी सेवी देव कुमार ऐरॉन लिखते हैं कि हिंदी में प्रत्येक रिश्ते के लिए अलग-अलग शब्द हैं। चाचा, ताऊ, फूफा, मामा और मौसा के लिए अँग्रेजी में 'अंकल' ही प्रयुक्त होता है। हिंदी में दादा और नाना कहने से पता लग जाता है कि किसकी बात हो रही है? इंग्लिश में दोनों के लिए (grand father) ही लिखा जाता है।

हिंदी भाषा विविधता लिए हुए है। इसमें कई विदेशी और देशी भाषाएँ समाई हुई हैं जिसमें फारसी, अरबी, अँग्रेजी शामिल हैं, परंतु फिर भी यह अपने मूल संस्कृत से सबसे निकट है।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुरु कुमार राय लिखते हैं कि अँग्रेजी ही क्यों? और भी ऐसी कई भाषाएँ हैं जिनमें एक ऐसी विशेषता नहीं है जो हिंदी में है। जापानी अक्षर 'ता', 'ती', 'तु', 'ते' और 'तो' को ऐसे ही बोला जाता है। रूसी अक्षर 'तै' से 'त' वाली आवाज आती है। फ्रेंच अक्षर 'ते' और ग्रीक अक्षर 'टा' से क्रमशः 'त' व 'ट' वाली आवाज आती है। कहने का आशय यह है कि अधिकतर भाषा में 'त' होता है यो तो 'ट' होता है, लेकिन हिंदी ऐसी इकलौती भाषा है जिसमें दोनों ही

है—‘त’ और ‘ट’।

हिंदी भाषा के उक्त सभी विशेषताओं के मूल में उसकी सहजता, लचीलापन के साथ सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि का पाया जाना है। भारत में हिंदी भाषा की लोकप्रियता यह बताती है कि अधिकांश क्षेत्रों में लोग इसे अपने तन और मन की भाषा के रूप में स्वीकारा है।

हिंदी साहित्य भी भरपूर समृद्ध है। कविता, कहानी, उपन्यास, आलेख, हास्य-व्यंग्य, गजल, लघुकथा, संस्मरण, यात्रा-वृत्तान्त, समीक्षा, नाटक, साक्षात्कार, मनोरंजक लोककथाएँ, बाल कथाएँ, चटपटे चुटकुले, पाक कला, कला जगत आदि विधाओं में हिंदी भाषा में रचनाएँ रची गईं और अनेक तो कालजयी बन गईं। अनेक महान लेखकों, साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से हिंदी भाषा को समृद्ध किया है। लेखकों की यह सूची बहुत लंबी है। हिंदी भाषा को समृद्ध और तन व मन की भाषा बनाने में हिंदी साहित्यकारों का योगदान अतुलनीय है। साहित्यकारों, लेखकों के अलावा आज नई प्रौद्योगिकी ने भी हिंदी भाषा के स्वरूप में जबरदस्त बदलाव लाया है। हिंदी भाषा के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। हिंदी भाषा का जो स्वरूप आज हमारे सामने विद्यमान है, उसके निर्माण में लगभग एक हजार साल लगे। लेकिन 19वीं शताब्दी मध्य के बाद से आज तक हिंदी भाषा का विकास अविस्मरणीय है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ के दशकों में अंग्रेजियत का प्रभाव हिंदी पर स्पष्ट देखा जा सकता है, लेकिन उससे पार पाने में भी वह सक्षम हुआ है। तमाम उतार-चढ़ावों के बाद भी हिंदी भाषा पूर्णरूपेण जीवंत है। हिंदी के स्वरूप में आए निरंतर परिवर्तनों के बावजूद भी उसने अपनी आत्मा को सुरक्षित रखा है।

हिंदी भाषा को तन-मन की भाषा बनाने में लेखकों व साहित्यकारों के अलावा हिंदी भाषा के

विभिन्न न्यूज एवं अन्य विधाओं के टी.वी. चैनल, रेडियो, फिल्म, समाचार पत्र-पत्रिकाओं और आज व्यापक फलक के रूप में विद्यमान सोशल मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है। हिंदी बाजारू भाषा नहीं, बल्कि गर्व की भाषा है। यह अपनी मातृभाषा तो है ही, साथ ही एक बहुसंख्यक लोगों की सोचने व बोलने की आदत भी है।

हिंदी भाषा को मन की भाषा बनाने में लेखिका चंद्रकांता का जवाब नहीं है। आधुनिक महिला साहित्यकारों का फेहरिस्त में शामिल पालम, बिहार की रहनेवाली चंद्रकांताजी हिंदी को देश के कोने-कोने में अपनाने की प्रेरणा दी। हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपना पूरा जीवन गुजार देनेवाली लेखिका मूल रूप से कश्मीर की है। 200 कहानियाँ, 30 उपन्यास और 55 से अधिक कविताओं के द्वारा हिंदी भाषा के प्रति जागरूकता का संदेश दे रही है। इसके अलावा अनेक साहित्यकार, पत्रकार और समाजसेवी भी हिंदी भाषा को जन और मन की भाषा बनाने में संलग्न हैं। देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का ‘मन की बात’ कार्यक्रम रेडियो, टी.वी. और अखबारों में चर्चाओं के माध्यम से खूब लोकप्रिय है। अपनी मन की बात को कहने के लिए प्रधानमंत्री ने हिंदी भाषा को ही चुना। ऐसे समय में जब भारत तेजी से विकास की ओर अग्रसर है और विश्व की निगाहें भारत की ओर लगी हैं, भारत के विकास के साथ ही दुनिया में हिंदी का महत्व बढ़ना तय है अर्थात् तन और मन की भाषा हिंदी को एक नई उर्जा प्राप्त होगी। जरूरत है, देश को पुनः विश्वगुरु बनाने के साथ ही हिंदी को भी विश्वभाषा बनाने का संकल्प पूर्ण मनोयोग से लिया जाए।

□

सहायक प्रोफेसर
 मास कम्युनिकेशन एंड वीडियो प्रोडक्शन विभाग
 हरिश्चंद्र पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

जनभाषा से ही विज्ञान और विकास जन-जन तक

— श्री संक्रांत

आजकल अँग्रेजी माध्यम की होड़ में यह कहा जा रहा है की जनभाषा और जन माध्यम को छोड़कर अँग्रेजी माध्यम से पिछड़े और वंचित लोगों का उद्धार होगा। वैज्ञानिक तथ्य कुछ और है। प्रस्तुत है पुस्तक 'अँग्रेजी माध्यम का भ्रमजाल' के द्वितीय संस्करण का एक अंश, जो जनभाषा को माध्यम बनाने की आवश्यकता को दर्शाता है।

क्या अँग्रेजी-माध्यम सुविधा वंचित लोगों के लिए मुक्ति का मार्ग है ?

भारत के अभिजात्य वर्ग के कुछेक अँग्रेजी भाषी लोगों का यह तर्क रहता है कि भारतीय भाषाओं के विरुद्ध राष्ट्र की भेदभाव वाली नीतियों, जिसे मैं अँग्रेजी रंगभेद की संज्ञा देता हूँ, को व्यापक स्तर पर अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों और सभी को धाराप्रवाह अँग्रेजी सिखाने से मिटाया जा सकता है। वे यह समझने में असफल हैं कि भाषा सीखी कैसे जाती है और भारत के ग्रामीण परिदृश्य में अँग्रेजी शिक्षण की कठिनाइयाँ और विशाल जनसंख्या पर एक विदेशी भाषा थोपने से आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से क्या हानि होती है ? जब यह तर्क भारत में व्याप्त अँग्रेजी आधारित भेदभाव को बनाए रखने का बहाना बन प्रस्तुत किए जाता है तो यह अभिजात्य

वर्ग के स्वार्थ-सिद्धि का ही पहलू है।

'महाभारत' में एक कथा है जिसमें अभिमन्यु द्वारा माँ सुभद्रा के गर्भ में ही चक्रव्यूह को भेदने का ज्ञान प्राप्त करने का वर्णन आता है। कथा के अनुसार, अर्जुन द्वारा चक्रव्यूह को तोड़कर सुरक्षित वापिस लौटने का रहस्य सुनने से पूर्व ही सुभद्रा की आँख लग गई। इस कारणवश युद्ध में अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदने के उपरांत ही मारा जाता है। वास्तव में यह एक असामयिक बच्चे की कहानी है जिससे माँ के गर्भ में होने के समय ही अजनमे शिशु द्वारा भाषा और उसके अतिरिक्त और बहुत कुछ सीखने की जानकारी मिलती है।

अन्य बातों की तरह पाश्चात्य विज्ञान द्वारा इस कहानी का भी उपहास उड़ाया गया था क्योंकि उनके अनुसार शिशु उत्पन्न होने के बाद ही सीखना आरंभ करता है जबकि परवर्ती आधुनिक शोधों से गर्भा अवस्था में शिशु द्वारा सीखने की पुष्टि होती है। अध्ययन से पता चला है कि गर्भस्थ शिशु अपनी भाषा के शब्द बल्कि स्वदेशी और अन्य भाषाओं के शब्दों में अंतर करना भी सीखना आरंभ कर देता है।

भारतीय भाषाओं के विरुद्ध संरचनात्मक भेदभाव किया जाता है। अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग), मैडिसिन,

प्रबंधन आदि व्यावसायिक शिक्षा अधिकतर सरकार द्वारा प्रायोजित तथा नियंत्रित होते हैं और केवल अँग्रेजी में ही उपलब्ध होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय एवं अधिकांश उच्च न्यायालय भी अपनी काररवाही अँग्रेजी में ही चलाते हैं। इससे एक तो प्रवेश लेनेवाले विद्यार्थियों की छँटाई हो जाती है, दूसरा, इस व्यवस्था से यह सुनिश्चित हो जाता है कि उच्च वेतनवाली नौकरियों में आनेवाले अँग्रेजी पढ़े-लिखे ही होंगे। जैसा कि भारतीय मानव विकास सर्वेक्षण पर आधारित 'भारत में अँग्रेजी भाषा कौशल की वापसी' पर अध्ययन के दौरान यह तथ्य सामने आया कि 'अँग्रेजी नहीं बोल सकनेवालों की तुलना में कम अँग्रेजी बोलनेवाले कर्मचारियों का वेतन प्रति घंटा की दर से 13 प्रतिशत अधिक और धाराप्रवाह अँग्रेजी बोलनेवालों का वेतन 34 प्रतिशत अधिक था।'

विडंबना है कि अँग्रेजी न बोलनेवालों के विरुद्ध भेदभाव को स्वतः उचित ठहराते हुए निकृष्ट ज्ञानार्जन के बावजूद स्थानीय भारतीय भाषा बोलनेवालों के विरुद्ध संरचनात्मक भेदभाव को समाप्त करने की बजाय अँग्रेजी को और अधिक बढ़ावा दिया जाता है।

अँग्रेजी न तो भारत में और न ही जापान में देशी भाषा है। यदि तर्क यह है कि अँग्रेजी से 'वैश्विक लाभ' मिलता है तो हमें इस बात की जाँच कर लेनी चाहिए कि विश्व स्तर पर आर्थिक उन्नति में अँग्रेजी

की प्रवीणता का योगदान कितना है? वास्तविकता कुछ और ही है। उदाहरण के लिए, भारत और फिलीपीन, दोनों देशों की तुलना में जापान में अँग्रेजी की प्रवीणता कम है परंतु उसकी प्रति व्यक्ति आय दोनों से ही पाँच गुना अधिक है।

भारत में अँग्रेजी रंगभेद प्रणाली से अँग्रेजी के प्रति भेड़चाल को बढ़ावा मिलता है जहाँ अँग्रेजी वातावरण से अनभिज्ञ ग्रामीण बच्चे प्रकट तौर पर 'अँग्रेजी की माँग' को बाध्य हैं। हम इस 'माँग' के मुद्दे की जाँच बाद में करेंगे। समाज द्वारा भाषा को लेकर भेदभाव को समाप्त करवाने की बजाय, अँग्रेजी आधारित भेदभाव का हल सभी के लिए अँग्रेजी की पढ़ाई में है। स्थिति तो यह है कि कुछ भारतीय राज्य तो सरकारी विद्यालयों को अँग्रेजी माध्यम में

परिवर्तित करने में लगे हुए हैं। यह न केवल सभी वैज्ञानिक शोधों, जिनके अनुसार मातृभाषा द्वारा अर्जित शिक्षा से बेहतर बौद्धिक विकास करते हैं, के विरुद्ध जाता है बल्कि यह उन विद्यार्थियों के लिए अच्छी आय का आधार भी नहीं बन पाएगा।

कुछ लोग ऐसे हैं जो आँकड़ों की अनदेखी कर अंधविश्वास की तरह अँग्रेजी की वकालत करते हैं। अँग्रेजी-रंगभेद को बनाए रखने के उद्देश्य से वे अपने तर्क को और आगे बढ़ाते रहते हैं, 'सभी भारतीय अँग्रेजी में प्रवीण क्यों नहीं हो सकते?'

इसका उत्तर बहुत सीधा है। भारत में वर्तमान



शिक्षा की स्थिति कुछ ऐसी है कि बच्चे मुश्किल से पढ़ना-लिखना और साधारण गणित सीख पाते हैं। अपनी मातृभाषा में यह सब कौशल प्राप्त करने की कहीं अधिक संभावनाएँ होना स्वाभाविक है और भरसक प्रयासों के बावजूद भी अँग्रेजी में प्रवीण होने के अवसर कम हैं।

अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों, जो कि आजकल ग्रामीण भारत में भी कुकरमुत्तों की तरह फैल रहे हैं, में यही देखने को मिलता है। मैंने अपनी कंपनी में प्रशासनिक पद के लिए एक युवती सलोनी का इस विषय पर साक्षात्कार लिया। वह उत्तर प्रदेश में कानपुर के निकट उना स्थित अँग्रेजी माध्यम के एक निजी स्कूल में 10 वर्ष तक

पढ़ी थी, तथापि वह साक्षात्कार में 10 मिनट का समय देने पर भी अँग्रेजी का एक सही व पठनीय वाक्य नहीं लिख पाई। मैंने जब इस संदर्भ में उससे प्रश्न किया तो उसने स्पष्ट किया कि भारत के ग्रामों अथवा छोटे नगरों के अँग्रेजी विद्यालयों में जानेवाले बहुत असमंजस वाली स्थिति में होते हैं। वहाँ न तो अध्यापक ही अँग्रेजी समझते हैं और न ही विद्यार्थी, जबकि निर्देश अँग्रेजी में देना 'अपेक्षित' होता है। अब चूँकि यह एक असंभव-सा दुरूह कार्य है अतः इसकी परिणति 'खिचड़ी हिंदी' में होती है। इसका अंत यही होता है कि यहाँ के विद्यार्थी न तो ठीक प्रकार से अँग्रेजी लिख पाते हैं, न ही हिंदी और न ही किसी भी विषय को सही ढंग से सीख पाते हैं।

अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों, जो कि आजकल ग्रामीण भारत में भी कुकरमुत्तों की तरह फैल रहे हैं, में यही देखने को मिलता है। मैंने अपनी कंपनी में प्रशासनिक पद के लिए एक युवती सलोनी का इस विषय पर साक्षात्कार लिया। वह उत्तर प्रदेश में कानपुर के निकट उना स्थित अँग्रेजी माध्यम के एक निजी स्कूल में 10 वर्ष तक पढ़ी थी, तथापि वह साक्षात्कार में 10 मिनट का समय देने पर भी अँग्रेजी का एक सही व पठनीय वाक्य नहीं लिख पाई।

भारत में पढ़ाई की स्थिति, जिसमें मातृभाषा शिक्षण की तुलना में अँग्रेजी का माध्यम बच्चों के बौद्धिक विकास को बाधित करता है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों को दिमागी तौर से विकलांग बना रही है और इस सबके पीछे औपनिवेशिक सरकार द्वारा सभी क्षेत्रों में अँग्रेजी के वर्चस्व को बनाए रखने की नीतियाँ हैं। सरकारी भेदभाववाली नीतियों से अँग्रेजी माध्यम ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रहा है। यह न केवल बच्चों के शिक्षण में बाधा है बल्कि अँग्रेजी-रंगभेद के कारण कम वेतन का भी कारण बनता है। सरकार के दबाव से इस प्रकार अँग्रेजी-रंगभेद और तथाकथित एंग्लीसाइज्ड संभ्रांत

वर्ग द्वारा दिए जानेवाले 'सुझावों' का परिणाम यह हो रहा है कि गरीब और गरीब होता जा रहा है।

समाधान ऐसे अध्यापकों द्वारा, जो स्वयं अँग्रेजी भाषा में कुशल नहीं होते, अँग्रेजी पढ़ाना या अँग्रेजी में अन्य विषयों को पढ़ाने में नहीं है। इस प्रवृत्ति या स्थिति को पलटने में नीति निर्धारकों को बच्चों की सामाजिक आर्थिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए जन शिक्षा के संबंध में पुनर्विचार करना होगा।

□

वैश्विक हिंदी और चित्तभूमि की खेती

—डॉ. अवधेश नारायण मिश्र

—डॉ. राजीव रंजन प्रसाद

‘तस्य वाक् तन्निर्नामानि दामानि, तस्येदं वाचा।
तन्त्यानामपिदार्मभिः सर्वसितम्॥’

वाणी ब्रह्म की सूई है और शब्द डोरे हैं। वाणी और शब्द के द्वारा परम ब्रह्म ने संपूर्ण विश्व को पिरो (गूँथ) रखा है। वाणी ही वह प्रमुख साधन है जिसके माध्यम से मानव अपने अतीत की रक्षा करता है और वर्तमानकालीन ज्ञान तथा अनुभव से मानव-सृष्टि को प्रभावित करता है। (ऐतरेय ब्राह्मण)

‘षयत्वमापन्नैः शब्दैर्नार्थः प्रतीयते, न सत्तायैव
तेऽर्थानाम गृहीताः प्रकाशकाः।’

पाठक या भावक का सीधा संबंध अर्थ से होता है, अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्दों से नहीं; क्योंकि शब्द अपना अर्थ व्यंजित कर चुक जाते हैं, अर्थात् शब्दों से तब तक अर्थ का बोध नहीं होता, जब तक कि शब्द स्वयं अपने श्रोत-गुणों के कारण आकार ग्रहण नहीं कर लेते। शब्दों में जब तक ऐसी ग्राह्यता नहीं आती, वे अपनी सत्ता मात्र से अर्थ के प्रकाशक नहीं हो जाते। (वाक्यपदीय)

वस्तुतः मानव जाति को पाल-पोसकर जवान करने में, मानव-सम्प्रदायों को संगठित करने तथा संस्कृति के प्रवाह को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अविच्छिन्न बनाए रखने में अक्षर, शब्द, वाक्य, भाषा, लिपि सब प्रमुख उपादान हैं। भाषा सम्प्रेषण का सिर्फ

साधन अथवा औजार भर नहीं है। यह एक अनुभव है जो ऐतिहासिक रूप से हमारी रचना करता है तथा हमारे समूहों को सामाजिक-राजनीतिक रूप प्रदान करता है। भाषा परोक्ष या प्रत्यक्ष ढंग से यह बतलाने की भी चेष्टा करती है कि हम कौन हैं, क्या हैं, कैसे हैं, और इस तरह के क्यों हैं? आज जिसे हम भारतीयता या सामासिक संस्कृति कहते हैं, वह हमारे समाज की इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया की देन है जो कि अनगिनत लोगों के साथ मिलकर अनवरत चलनेवाली एक संप्लिष्ट चेतनागत-प्रक्रिया है। ध्यातव्य है कि संस्कृति से नियंत्रित होने का मनोभाव मनुष्य का विशिष्ट गुण है। यदि ऐसा नहीं होता तो सभी जीवों में मनुष्य जैसी सक्षम संस्कृति विकसित नहीं होती। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भाषा-प्रयोग एवं भाषा-व्यवहार को आचरण-स्वभाव में सन्निहित शब्द-शक्ति कहा है। फलतः उनकी दृष्टि में, ‘कौन मनुष्य कैसा है, यह हम उसके कार्यों को देखकर निश्चित करते हैं।’ अतः भाषा विशेषीकृत हो अथवा साधारणीकृत, दोनों स्थितियों में उसे बरतने के लिए शब्दानुशासन आवश्यक है।

मनुष्य केंद्रित इस जीवन-दृष्टि को चाहे-अनचाहे अस्तित्ववादी दर्शन ने बहुत प्रभावित किया है। वैज्ञानिक विनाशकारी आविष्कारों से भविष्य की

अनिश्चयात्मकता ने युग-संक्रास को जन्म दिया है, जिसका परिणाम भविष्य में अनास्था और वर्तमान को सत्य मात्र मानकर उसी में जीने की आकांक्षा है। तुरा यह कि आधुनिक समाज अपने इसी दागदार उजाले को श्रेष्ठ कहने से नहीं चूकता है क्योंकि उसके लिए सेवा, मूल्य, धर्म, सत्य, शुचिता, ज्ञान आदि सभी परिवर्तनशील और बिल्कुल अस्थायी औजार, सुविधा और मार्ग हैं। संचार-विज्ञानी ऑल्विन टॉप्लर ने अपनी पुस्तक 'थर्ड वेव' में जिस 'सूचना-क्रांति' की अवधारणा दशकों पूर्व रखी थी, आज वह जमीनी शक्लसूरत या वेश-बाना धारण कर चुकी है। पूरी दुनिया एक समानांतर आभासी-वैश्विकी दुनिया अर्थात् 'वर्चुअल वर्ल्ड' में तब्दील हो गई है। इस रचाव-बनाव में नयापन है, सुघड़ता है और पर्याप्त लचीलापन भी है। बस, यहाँ उपस्थिति अवास्तविक है, तो भागीदारी संवेदनहीन। इसी प्रकार प्रेरणा पलायित है तो प्रतिरोध की चेतना शून्य अथवा स्थितप्रज्ञता जैसी स्थिति में। परंतु इस से जुड़े होने और इसमें सदैव गतिशील बने रहने की चेष्टा, लिप्सा, आकर्षण, छूट, स्वतंत्रता, पहुँच इत्यादि अद्भुत है। हम सब अपनी उपस्थिति को कई बार जबरिया 'ऑनलाइन मोड' में रखते हैं। हमारी ये दुर्बलताएँ और मनोदैहिक दुर्गुण अंततः हमें रोगग्रस्त कर रहे हैं। इस संबंध में किए जाने वाले शोध गंभीरतम खतरे की ओर इशारा कर रहे हैं जिनकी बाँग सुननेवाला इस घड़ी कोई नहीं है।

इस शब्दज संसार में भाषा को लेकर सिर्फ कहानियाँ गढ़ने अथवा उपदेष्टा-शैली में दिशा-निर्देश जारी करने से हमारा हित-लाभ नहीं होनेवाला है। इसके लिए भाषा के प्रति संवेदनशील-धैर्यशील मानुष की जरूरत है। दरअसल, भाषा के माध्यम से मनुष्य प्रकृति के विभिन्न रूपों, प्रकृति की विभिन्न गतियों, प्रकृति की विभिन्न मुद्राओं का सफल अंकन करता है। इस अंकन हेतु लिपि एक जरूरी साधन है। दुनिया में भाषा की तरह लिपियाँ भी अनेकानेक हैं। इसीलिए

विद्वानों का कहना है कि लिपि की उत्पत्ति भाषा की उत्पत्ति से बहुत बाद में हुई। लिपि मानव समुदाय का महत्वपूर्ण आविष्कार है। लिपि की उत्पत्ति से पूर्व भावाभिव्यक्ति का दायरा बोलने और सुनने तक सीमित था। मनुष्य की उत्कट अभिलाषा रही होगी... तभी तो उसने सोचा कि उसके ज्ञान-विज्ञान संबंधी भाव-विचार दूर-दूर तक पहुँचें और इन्हें भविष्य के लिए संचित किया जा सके, उनका संरक्षण किया जा सके। इस आवश्यकता की पूर्ति करना उनका लक्ष्य बन गया और आगे चलकर यही मनुष्य के लिपि के आविष्कार की प्रेरणा बनी। इस तरह के नवाचारी किंतु स्थायी खोज आवश्यक थे, क्योंकि मनुष्य की सांस्कृतिक निर्मित और उसके आनुवंशिकीगत जैविक-निर्धारण में मानवजन्य अभिलक्षणों और अभिक्रियाओं की भूमिका विशेष है। प्रथमतः भाषा की भूमिका पर विचार-मंथन जरूरी है क्योंकि भाषा इतिहास-चेतन, और वर्ग-चेतन दोनों ही दृष्टिकोण से आमजन की समस्याएँ सुलझाने की मुख्य कड़ी है।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि राजनीतिक वैभव के साथ कई बार भाषा भी पुष्ट एवं संपन्न होती है तथा राजनीतिक पतन भाषा-विशेष के विकास को कुछ सीमा तक अवरुद्ध कर देता है। राजनीतिक संपन्नता और विपन्नता के साथ भाषा की सीमाएँ भी बढ़ती-घटती रहती हैं। अतएव, भाषा इन अर्थों में जीवन को सजीव, जनतांत्रिक एवं समृद्ध बनाने का अचूक हथियार है। हिंदी के संदर्भ में देखें, तो नवाधुनिक विधानों एवं नवाचारी अनुशासनों में हिंदी भाषा सहज ही स्वीकार्य है। हिंदी की भाषिक-संरचना, भाषिक-प्रयुक्ति या संचार आधारित अनुप्रयोग आजकल पहले की तुलना में बेहद स्थूल-सूक्ष्म हो चले हैं। शब्दार्थ की दृष्टि से वाक्-व्यापार एवं भाषा-व्यवहार की जो समाजभाषिक मनोगतिकी हमारे सामने है, उसमें स्थायित्व एवं दीर्घजीवता कम है, किंतु तीव्रता और प्रभावशीलता का 'रेंज' बहुत

अधिक है। अतएव, वैश्विक बनती हिंदी चुनावी भाषणों, खरीद-बिक्री संबंधी सामान्य बातचीतों, नितांत निजी अथवा घरेलू राय-विचारों, सामान्य-विशेष बहस-मुबाहिसों आदि की पटरी पर सरपट दौड़ रही है। इसके अतिरिक्त नवमाध्यमों यानी 'न्यू मीडिया' एवं 'वर्चुअल मीडिया' में भी उसकी भूमिका देखने योग्य है। संचार-क्रांति और सूचना-राजमार्ग वा ली इस उत्तर शती में भारतीय भाषा का वैश्विक वितान 'हिंदी-समय' ही है। यह राष्ट्रीय ही नहीं अंतरराष्ट्रीय दबाव है कि हिंदी बौद्धिकता अँग्रेजी 'आई.पी.आर.' (इंटेलेक्चुअल प्रोपर्टी राइट) को सीधे टक्कर दे रही है। रोजगारपरक और कौशल-निर्माणकारी भाषा की खोज में उभरे हिंदी के प्रयोजनमूलक स्वरूप को देखें, तो इक्कीसवीं सदी का भारत आज जिस जबान में जवान होता दिखाई दे रहा है, वह प्रयोजनमूलक हिंदी ही है। चुनाव से बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है? फिल्म, विज्ञापन, समाचार एवं मनोरंजन माध्यम आदि में हिंदी की पैठ एवं ठाठ जबर्दस्त है। 'न्यू मीडिया' की खूबियों को पूरी तरह आत्मसात कर चुकी हिंदी भाषा को जानने, देखने, समझने की जो नई परिपाटी शुरू हुई है, उसका एक बड़ा उपभोक्ता-वर्ग हिंदी जनसमाज है। यथा वेब, ब्लॉग, ट्विटर, फेसबुक, व्हाट्सऐप, हिंगाउट, हैशटैग इत्यादि।

यह समय अपनी हिंदी भाषा को लेकर रूढ़ाली-गान करने का नहीं है। किसी भाषा-विशेष अथवा अँग्रेजी की आलोचना करने की जगह आज आवश्यकता अंतरभाषायी तथा अंतरानुशासनिक हिंदी अनुवाद की दिशा में उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की है। साहित्य, कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी इत्यादि से संबंधित ज्ञानानुशासनों को हिंदी में लेकर आना, हिंदी भाषा के वैश्विक महत्त्व एवं पहचान को केंद्रीयता प्रदान करना है। जनपक्षधरता की दृष्टि से अँग्रेजी ही नहीं, संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित सभी राष्ट्रीय भाषाओं का अनुवाद संबंधी कार्य महत्त्वपूर्ण है। विशेषतया

विभिन्न देशज भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान-सामग्रियों का हिंदी में संग्रहण-संकलन अत्यावश्यक है। यह कार्य स्वाधीनतापूर्व बड़े जतन से किया गया। यह और बात है कि आजादी से पहले जिस हिंदुस्तानी जबान ने देश की गरिमा और उसका गौरवगान कायम रखा था, स्वाधीन भारत में उसे वह सर्वोचित स्थान नहीं मिला। बहुभाषिक तथा बहुसांस्कृतिक भारतीय जनसमाज में हिंदी के महत्त्व को इरादतन कम कर दर्शाना अँग्रेजीपठित भारतीय नेताओं की सोची-समझी चाल थी। बाद के दिनों में हिंदी भाषा को लेकर जो विवाद-विरोध शुरू हुए, उसे भाषिक राजनीति कहा जाना उचित है। भाषा को लेकर वितंडावाद खड़े करनेवाले अधिसंख्य नेताओं को अपनी-अपनी मातृभाषाओं से लगाववृत्ति न होकर उनमें राजनीतिक हित-लाभ साधने की छटपटाहट और महत्त्वाकांक्षा अधिक थी। हाल के दिनों तक संयुक्त राष्ट्रसंघ में हिंदी भाषा को शामिल किए जाने को लेकर चर्चे खूब हुए, लेकिन हिंदी की दशा और दिशा में आमूल-चूल परिवर्तन नहीं हुआ। विश्व हिंदी सम्मेलनों के माध्यम से भी हिंदी के लोकवृत्त को स्थावर तथा विकासशील बनाने के प्रयास खूब हुए, पर इसमें हमें आंशिक सफलता ही मिल पाई। आज भी हिंदी अपनी तमाम विशेषताओं और गौरवपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद जबर्दस्त उपेक्षा की शिकार है।

यह जानते-समझते हुए भी कि हिंदी भाषा, जिसे नवजागरणकाल में एक भाषाई आंदोलन की तरह गढ़ा गया, में प्रतिरोध की चेतना और आत्मबल की शक्ति प्रचुर मात्रा में सन्निहित थी। यह शक्ति ओजमान और तेजमान थी इसलिए भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता के अवदान एवं योगदान को लेकर बहुत कुछ कहने-सुनने को शेष है। इक्कीसवीं सदी में पैदा और विकसित हुई पीढ़ी को ध्यान में रखकर कहें, तो हमें अपनी भाषा-संस्कृति और उसमें घुली-मिली राजनीतिक चेतना



को लेकर संवेदनशील होने-बनने की जरूरत सबसे अधिक है। अधिसंख्य भारतीय भाषाओं के समक्ष आज अपने को बचाए रखने की जद्दोजहद जबर्दस्त है। ऐसा लगता है कि हमने निज भाषा से सृजित माध्यम-संस्कृति द्वारा एक-दूसरे से जुड़े रहने की अभ्यर्थना का परित्याग कर दिया है। अंग्रेजी की आरोपित माध्यम-संस्कृति ने भारतीय भाषाओं के सत्यानाश का महानुष्ठान जारी रखा है, लेकिन यह सच है, कोई भी अनुष्ठान दीर्घजीवी नहीं होता है। तब भी स्मृतिभ्रंशता के इस मुश्किल दौर में विभिन्न समाज एवं संस्कृतियों के बीच एक सेतु बनाए जाने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। 'एक भाषा, एक राष्ट्र' की परिकल्पना में हिंदी की ज्योत जले, इसके लिए सामूहिक मुहिम छेड़ने पर बल देना होगा; क्योंकि हिंदी अपनी जनपक्षधर प्रकृति के कारण यह सेतु बनने हेतु सर्वथा उपयुक्त है। ध्यातव्य है कि भारतीय परिक्षेत्र से बाहर और भारत के सभी क्षेत्रों में हिंदी समझी जाती है। समझे जाने का मतलब वह भाषा, जिसे बहुत सारे लोग बोलते हैं; अपने भाव, विचार एवं दृष्टि में बड़ी आसानी से बरतते हैं। यह सहजता हिंदी भाषा की खूबसूरती है यानी प्राणतत्त्व। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है। हिंदी लिखावट और उच्चारण, दोनों में सादृश्यता रखती है। इस भाषिक वैशैष्टिक के कारण यह बेहद सुघड़ और सजीव भाषा है। यह कहना उपयुक्त होगा कि दुनिया की हर भाषा से मनुष्य की लगाववृत्ति जन्मजात होती है। भाषिक सामर्थ्य मनुष्य के मस्तिष्क में जन्मना कूटीकृत होते हैं। भाषा-अर्जन की प्रवृत्ति मनुष्य में इसी कारणवश है। भाषा का शाब्दबोध एक अर्थपूर्ण इंद्रधनुष रचता है। रूपबोध, रंगबोध, गंधबोध, ध्वनिबोध आदि प्रकट रूप में भाषा के माध्यम से ही जाहिर होते हैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति में फाँक, फर्क अथवा फेर-फार को भाषा ही जतलाती है, संकेत करती है। भाषा दुविधा एवं द्वंद्व निवारण की दवा है। यह एक प्रयुक्तिजन्य

औजार है, एक मानवसुलभ सुविधा है।

भाषा का पक्ष विचारणीय है क्योंकि यह सहप्रयोग-अनुप्रयोग का मानवोचित पहलू है। अधिसंख्य समाज भाषा विज्ञानियों की बड़ी-बड़ी बातों का सार यही है कि भाषा आंतरिक मन तथा बाह्य संदर्भों के द्वंद्व के परिणामस्वरूप आविर्भूत प्रतीक-व्यवस्था है, ध्वन्यात्मक समुच्चय है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि में भाषा के सामाजिक संदर्भ समरूप नहीं होते। इसलिए भाषा भी अपने प्रकृत रूप में 'विषमरूप' होने के लिए बाध्य होती है। इस तरह प्रत्येक भाषा न तो मन की कैदी है, न विचार की बंदी। यह तो अनुभूति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आचरण और उन्मुक्त आदान-प्रदान पर आधारित 'वार्ता-कौशल' है। यह कौशल अथवा प्रवीणता अर्जित है न कि प्रकृत। इस कारणवश इसका स्वरूप किंचित मात्र भी पूर्व-निर्धारित या नियंत्रित नहीं है। आज हिंदी भाषा ऐसे वितंडावादियों को धूल चटा चुकी है। वह पूरे विश्व में ज्ञान और अनुप्रयोग की भाषा बनने के लिए दृढ़संकल्प है। हिंदी में भाषिक दक्षता, कुशलता, प्रयोग, अनुप्रयोग, प्रकृति, प्रयुक्ति आदि का समाजशास्त्र बदल चुका है। अर्थशास्त्र इसकी चेरी है। विज्ञापन हो या फिल्म, हाट-बाजार हो या उत्तर-दक्षिण—हिंदी सबको जोड़ने में सफल है। हिंदी अन्य प्रदेशों की मातृभाषाओं के संग-साथ राष्ट्र-निर्माण में जुटी है।

□

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221 005

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय
रोनो हिल्स, दोईमुख
अरुणाचल प्रदेश-791 112

हिंदी शिक्षण और प्रकाशन के संदर्भ

— श्री के.एस. फरहतुल्लाह

त्रिभाषा सूत्र की सिफारिशों के अनुसार, द्वितीय भाषा के रूप में दक्षिण भारत में प्रथम भाषा के रूप में उत्तर भारत में, हिंदी भाषा शिक्षण का योगदान महत्वपूर्ण है। पूरे भारत में प्रचलित अनेक बोलियों को (भोजपुरी, मगही, हरियाणवी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी आदि) अपने में समेटकर, हिंदी भाषा का स्वरूप विस्तृत हो चुका।

दक्षिण भारत के हिंदी प्रचारक कॉलेजों एवं सरकारी प्रशिक्षण कॉलेजों में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की ओर से सफल शिक्षण कला (लेखक पी.डी. पाठक, जी.एस.डी. त्यागी), हिंदी भाषा (पी.डी. पाठक) शिक्षण पाठ्य-पुस्तकें जो निर्धारित हैं, उनके द्वारा हिंदी में शिक्षण हो रहा है। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की ओर से चलनेवाली प्राथमिक परीक्षा से प्रवीण उत्तरार्ध परीक्षाओं के द्वारा दक्षिण भारत में हिंदी की बुनियादी शिक्षा दी जा रही है। आजकल विद्यालयों में उच्च अंक पाने की कोशिश में इन परीक्षाओं की ओर ध्यान दिया जा रहा है। हिंदी-शिक्षण प्राप्त शिक्षकों द्वारा हिंदी शिक्षण का प्रचार तो हो रहा है, पर यह प्रयास पर्याप्त नहीं है। विद्यालयों में केवल दसवीं कक्षा की वार्षिक परीक्षाओं में, उच्च अंक प्राप्त करने के उद्देश्य से ही हिंदी शिक्षण चल रहा है।

विद्यालयों में प्रथम भाषा, संपर्क भाषा के रूप में हिंदी, अँग्रेजी भाषा का शिक्षण संपन्न है। आजकल

नब्बे प्रतिशत अँग्रेजी माध्यम विद्यालयों का ही संचालन हो रहा है। इस कारण बालक न तो मातृभाषा में और न ही अँग्रेजी भाषा शिक्षण में सफल नहीं बन रहे हैं। इन दोनों भाषाओं के बीच में हिंदी शिक्षण का स्तर बिगड़ता जा रहा है।

त्रिभाषा सूत्र के अनुसार, तीन भाषाओं की शिक्षा तो लागू हो रही है। पर इन तीनों भाषाओं में समन्वय लाने में विफल हो रहे हैं। इन तीनों भाषाओं की पृथक-पृथक रूप से शिक्षण देने के बजाय समन्वयात्मक शिक्षण देना अनिवार्य है। तीनों भाषाओं में माध्यमिक विद्यालय स्तर तक एक ही विषय-वस्तु निर्धारित (मौलिकता की रक्षा करते हुए) होने पर मातृभाषा के साथ-साथ हिंदी भाषा में भी वाक्य-निर्माण, वर्तनी, व्याकरण एवं साहित्य की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन करने का अवसर बालकों को प्राप्त होगा और उनमें हिंदी शिक्षण के प्रति रुचि और प्रेरणा भी बढ़ जाएगी।

हिंदी शिक्षण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रारंभिक कक्षाओं से ही प्रारंभ होना चाहिए। स्वाभाविक ढंग से कोई भाषा सिखाने पर आसानी से सीख सकते हैं। इसके लिए मातृभाषा के माध्यम से हिंदी भाषा का शिक्षण देना उचित है। साधारण रूप से हिंदी शिक्षण में लेखन और वाचन पर ही ध्यान दिया जाता है, जो स्वाभाविकता सिद्धांत के विरुद्ध है। श्रवण एवं

संप्रेषण कौशलों के विकास की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

माध्यमिक विद्यालय स्तर तक हिंदी शिक्षणों में कुछ सुधार हुए। उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर पर हिंदी शिक्षण की स्थिति दयनीय है। इसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। द्वितीय भाषा के रूप में भी हिंदी का महत्त्व नामोनिशान है। केवल अँग्रेजी का अध्यापन प्रथम भाषा के रूप में हो रहा है। उच्च-माध्यमिक स्तर में हिंदी शिक्षण में शिक्षक-दृष्टिकोण से आगे बढ़ना चाहने पर भी उनसे आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। यहाँ से स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर में भी इधर हिंदी शिक्षण प्राप्त करनेवाले की संख्या के साथ-साथ प्राध्यपकों की संख्या भी बहुत कम है। शोध-क्षेत्र में तो इसकी ओर भी बुरी हालत है, खासकर दक्षिण भारत में यह हालत बड़ी सोचनीय है।

व्यवसायिक शिक्षण में भी यही हालत बनी हुई है। कोई भी इस क्षेत्र में श्रद्धा तथा समर्पण की भावना से पदार्पण नहीं कर रहे हैं। आजीविका की दृष्टि से ही कुछ व्यावसायिक शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं तो कुछ सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए। वैसे ही प्रशिक्षण संस्थाएँ भी हैं। वहाँ न तो योग्य प्रशिक्षणार्थियों द्वारा फिर विद्यालयों में हिंदी-शिक्षण कार्य को आगे बढ़ाना है।

यह तो केवल राज्य सरकार की विफलता नहीं, बल्कि केंद्रीय सरकार की भी है। मानव संसाधन विकास-मंत्रालय की ओर से और जो भी हिंदी सेवी संस्थाएँ हैं, उन सबमें हिंदी शिक्षण के प्रति समन्वय होना चाहिए। प्रमाण-पत्र देने की अपेक्षा परिणाम एवं गुणवत्ता को बनाए रखने में योगदान देने की आवश्यकता है। हिंदी शिक्षण से अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को जुड़ाने के साथ-साथ उन सबको सफल हिंदी प्रचारकों के योग्य बनाना भी आवश्यक है।

हिंदी शिक्षण के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्राथमिक शिक्षा स्तर से ही आवश्यक कदम उठाए

जाने की आवश्यकता है। प्राथमिक विद्यालयों में हिंदी मनोहर कहानियाँ, चित्र-कहानियाँ, बाल मित्रा, चंदामामा आदि मासिक पुस्तकों की व्याख्या होनी चाहिए। विद्यालय की दीवारों पर, कक्षा की दीवारों पर मातृभाषा एवं हिंदी, दोनों का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए। उच्च माध्यमिक स्तर से स्नातक स्तर तक, भाषा की शिक्षा में हिंदी को अनिवार्य बनाकर हर एक विषय-समूह में कुछ अंक निर्धारित करना आवश्यक है। इससे प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा-स्तर का हिंदी शिक्षण कार्य से बालक जुड़े रहते हैं। उच्च स्नातक स्तर में हिंदी भाषा की विशेष-शिक्षा को प्रोत्साहित करना, छात्र-वृत्ति देना, साहित्यिक-कार्य को आगे बढ़ाने के लिए, साहित्य-सृजन की ओर प्रोत्साहित करना, हर एक राज्य में हिंदी विकास-मंडली के नाम से विशेषज्ञों-संघ की स्थापना करना, उनके द्वारा हिंदी भाषा का प्रचार एवं साहित्य-क्षेत्र में विशेष-सेवा करनेवालों को पहचानकर सम्मान करना आदि कार्य निरंतर लागू होना चाहिए।

हिंदी क्षेत्र में शोध कार्य का बड़ा अभाव रहा है। शोध क्षेत्र की ओर उच्च स्नातक छात्रों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। हर एक विश्वविद्यालय में शोधकार्य की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए आवायक पाठ्यक्रम सबके लिए उपलब्ध करानी चाहिए। कोई भी, शोध-कार्य पूरा करने में तनिक भी कष्ट न उठें। शोध-कार्य के आवश्यक निरीक्षकों का भी आजकल अभाव है। आवश्यक निर्देशित पाठ्य-पुस्तकों, निरीक्षकों एवं आवश्यक सूचना आदि की कमी के कारण, दिन-ब-दिन शोध-कार्य कुंठित हो रहा है। आधुनिक हिंदी साहित्य विस्तृत हो रहा है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं का विकास हो रहा है।

□

अध्यक्ष

शारदा हिंदी विद्यालय
कडप्पा, आंध्र प्रदेश

खंड : चतुर्थ

**विदेशों में हिंदी : गिरमिटिया
देशों में हिंदी और साहित्य**

हिंदी का भारतीय और वैश्विक संदर्भ

—प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

भाषा की भूमिका का, उसके महत्व और प्रभाव के बारे में प्रायः गंभीरता से विचार नहीं किया जाता। जो चीज हमें मुफ्त में मिल जाती हैं, जैसे हवा और धूप, उसकी हम उपेक्षा करते हैं। भाषा भी हमें समाज द्वारा मुफ्त ही मिल गई है, अतः हम उसकी गहराइयों में उतरने की कोशिश नहीं करते। जबकि सच्चाई यह है कि मनुष्य ने आज तक जितने आविष्कार किए हैं उनमें सबसे प्राचीन और महान है 'भाषा'। भाषा ने ही सृष्टि की हर चीज को 'नाम' दिया है अन्यथा वह हमारे लिए अबूझ ही होती। छठी शताब्दी के भारतीय आचार्य देवी ने कहा है कि "शब्द की ज्योति से ही यह सृष्टि उद्भाषित है। अगर शब्द न होते तो हमारी दुनिया एक अँधेरी दुनिया होती।" भाषा के कारण ही मनुष्य सृष्टि के अन्य जीवधारियों से ज्यादा सक्षम और ताकतवर है। अन्यथा सृष्टि के लगभग सभी जीव किसी-न-किसी कारण मनुष्य से ज्यादा शक्तिशाली हैं। यहाँ तक कि चींटी में भी घ्राण शक्ति मनुष्य से अधिक है। प्रतीकवादी विचारकों का कहना है कि किसी जीवनधारी का अस्थिपंजर देखकर अनुमान किया जा सकता है कि वह कितना बलवान और सामर्थ्यवान होगा पर किसी मनुष्य के अस्थिपंजर को देखकर

उसकी शक्ति और सामर्थ्य का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इसका सबसे बड़ा कारण है उसमें भाषा की शक्ति का होना।

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम मात्र नहीं होती, न केवल रोजगार प्राप्त करने का साधन। भाषा किसी जाति की अस्मिता और उसकी संस्कृति की वाहक होती है। मनुष्य का संपूर्ण अनुभव, विचार और ज्ञान भाषा में ही सुरक्षित होता है और उसी में वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहता है। राष्ट्रप्रेम अपनी भाषा में ही विकसित होता है। इसीलिए लार्ड मेकाले ने संस्कृत और भारतीय भाषाओं को हटाकर अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने का षड्यंत्र रचा था। उसकी रिपोर्ट पर गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिंग ने 1835 में यह आदेश जारी किया कि शिक्षा के लिए स्वीकृत सारा धन केवल अँग्रेजी शिक्षा के लिए खर्च किया जाए। भारतीय नवजागरण के प्रबुद्ध लेखकों और स्वाधीनता आंदोलन के सचेत सेनानियों ने तभी इसका विरोध किया था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल" कहकर स्वभाषा की शक्ति और सामर्थ्य को रेखांकित किया था। 'हिंद स्वराज' में गांधी ने लिखा था, "करोड़ों लोगों को अँग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मेकाले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी।" माधवराव सप्रे



ने 1917 की 'सरस्वती' पत्रिका में एक लेख लिखा था—'राष्ट्रीयता की हानि का कारण'। इसमें पी.जे. मेहता की पुस्तक—Vernaculars as media of Instruction in Indian Schools and Colleges की समीक्षा के बहाने उन्होंने यह माँग की थी कि देशी भाषाओं को समानता का हक मिले तथा उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाया जाए। इस पुस्तक की प्रस्तावना में गांधीजी ने लिखा था कि देशी भाषाओं की अवहेलना राष्ट्रीय आताघात है।

भारतीय मानस के निर्माण में संस्कृत भाषा, उसके महाकाव्यों और उनमें संरक्षित पुरा कथाओं तथा स्मृतियों का सर्वाधिक योगदान है। किसी विद्वान ने कहा है कि भारत के लोग केवल दो ही भाषाएँ जानते हैं और वे हैं—रामायण तथा महाभारत। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक संपूर्ण भारत के मन को निर्मित करनेवाले ये दोनों काव्य लगभग सभी भारतीय भाषाओं में प्राप्त होते हैं। भारत की अधिकांश भाषाएँ संस्कृत की उत्तराधिकारी हैं। संस्कृत के सारे अवधारणामूलक शब्द देशी भाषाओं में भी हैं। जैसे 'सत्' और 'ऋत्', 'आत्मा', 'ब्रह्म', 'धर्म' आदि। किसी दूसरी भाषा में इनका अनुवाद असंभव है और इनके बिना भारतीयता का निर्वचन भी असंभव है। सिर्फ एक शब्द—'धर्म' का उदाहरण लीजिए जिसके अँग्रेजी अनुवाद 'रेलिजन' ने भारत में कितना बड़ा तूफान खड़ा कर दिया है। 'रेलिजन' से 'निरपेक्षता' तो संभव है पर 'धर्म' से निरपेक्षता संभव नहीं है। 'धर्म' तो सबको धारण किए है अतः उससे अलग कैसे हुआ जा सकता है ?

भारत एक बहुभाषी देश है लेकिन लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाएँ एक सांस्कृतिक सूत्र में बँधी हुई हैं। इनमें भी हिंदी ग्यारह राज्यों की भाषा है। इनके अतिरिक्त लगभग पूरे देश में वह सामान्य तौर पर समझी जाती है। उसका राजकाज की भाषा के रूप में एक लंबा इतिहास है। दकिनी, हिंदवी,

हिंदी आदि नामों से उसका प्रचलन रहा है। 14वीं शताब्दी में बहमनी राज्य की राजभाषा के रूप में तथा गार्सा द तासी के अनुसार मुसलमान बादशाहों के काल में भी उसका प्रयोग होता रहा है। 10वीं 11वीं शताब्दी में गुरु गोरखनाथ तथा मध्यकाल के अनेक संत भक्त कवियों—जैसे श्रीमंत शंकरदेव (असम), जगन्नाथदास (उड़ीसा), गुरु गोविंद सिंह (पंजाब) ने हिंदी में रचनाएँ कीं। गुजरात के मध्यकालीन वैष्णव कवियों की भाषा ब्रजभाषा रही। महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के संतों ने हिंदी का प्रयोग किया। 1857 का स्वाधीनता संघर्ष उर्दू-फारसी मिश्रित हिंदी में ही लड़ा गया। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के सभी अहिंदाभाषी क्षेत्रों के नेताओं—तिलक, सुभाष चंद्र बोस, पटेल, गांधी, विनोबा आदि ने भारत को हिंदी भाषा में ही जोड़ने का काम किया। गांधी ने तो 'हिंद स्वराज' में स्पष्ट कहा, "सारे हिंदुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिंदी ही होनी चाहिए।" दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद उन्होंने अपना प्रथम महत्त्वपूर्ण व्याख्यान काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी में ही दिया।

हिंदी का विस्तार भारत के बाहर पूरे विश्व में है। मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद, गुयाना आदि देशों में हिंदी जानने और बोलनेवालों की संख्या ज्यादा है। फिजी में वह फिजीबात, सूरीनाम में सरनामी तथा दक्षिण अफ्रीका में नैताली के नाम से जानी जाती है। नेपाल भारत का पड़ोसी देश है जिसके तराई क्षेत्र में हिंदी तथा उसकी प्रमुख बोलियाँ—भोजपुरी, मैथिली, मगही, अवधी आदि बोली जाती हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड, नार्वे, डेनमार्क, ऑस्ट्रेलिया, थाइलैंड, इंडोनेशिया, कंबोडिया और खाड़ी देशों में भी हिंदी जानने वालों की अच्छी संख्या है। रोमा लोगों की भाषा में भारतीय भाषाओं—विशेषतः सिंधी, पंजाबी, कश्मीरी, मराठी, गुजराती, संस्कृत, राजस्थानी, हिंदी आदि के 40 प्रतिशत शब्द हैं। दुनिया के अनेक

देशों में प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में हिंदी को स्थान मिल रहा है तथा भारतीय फिल्मों और टी.वी. कार्यक्रमों को देखा जा रहा है। कई देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। दुनिया के सैकड़ों प्रमुख विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है और अनेक विश्वविद्यालयों में तो हिंदी पढ़नेवाली छात्र-छात्राओं की संख्या सैकड़ों में है। चीन, रूस और जापान में हिंदी विभागों में मैंने स्वयं इसे देखा है। 2015 में टोक्यो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का मैंने अवलोकन किया था जिसमें भारतीय भाषाओं की 50 हजार पुस्तकें हैं। इसमें विशाल भारत, माधुरी, जागरण, चाँद, धर्मयुग, दिनमान आदि की फाइलें हैं। साहित्य अकादमी की बहुत सी पुस्तकें तथा कोश भी हैं। ओसाका विश्वविद्यालय के एक कार्यक्रम में हम शामिल हुए जिसके हिंदी विभाग में पचास से अधिक छात्र-छात्राएँ हिंदी पढ़ रही हैं। उन्होंने हमारा स्वागत और सारे कार्यक्रम का संचालन शुद्ध हिंदी में किया।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिंदी भारतीय मूल के लोगों के साथ आज दुनिया के तमाम देशों में पहुँच गई है। दुनियाभर के विश्वविद्यालयों में वह पढ़ाई भी जा रही है। पर अपने ही घर में उसकी स्थिति सम्मानजनक नहीं है। भारत में मध्यवर्ग के हर सक्षम परिवार के बच्चे अँग्रेजी स्कूलों में दाखिल हो रहे हैं। गाँव-गाँव अँग्रेजी के स्कूल खुल रहे हैं। हर माता-पिता अँग्रेजी स्कूलों की फीस, पुस्तकें, ड्रेस, विविध प्रकार के शुल्क आदि का भारी खर्च उठाकर भी बच्चों का दाखिला उन्हीं में कराना चाहता है। केवल गरीब लोग ही सरकारी और हिंदी स्कूलों की शरण में जा रहे हैं, अपनी मजबूरी के चलते। इसका एक कारण तो वह हीनता बोध है जो शताब्दियों से काली छाया के रूप में पूरे देश पर फैला है। मगर दूसरा कारण जो महत्वपूर्ण है, वह यह कि लोगों में आर्थिक दृष्टि से समृद्ध होने की आकांक्षा है और उनका विश्वास है कि जीविका, सुविधा और सम्मान

के अवसर हिंदी की अपेक्षा अँग्रेजी में अधिक है। इस कटु यथार्थ के मुकाबले के लिए सरकारी प्रपत्र जरूरी है। उसे ही इस भाषा को व्यावसायिकता की होड़ में खड़ा करना है। भारतीय बच्चों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करने और उनकी मौलिकता की रक्षा के लिए सरकार को यह कड़ा निर्णय भी लेना चाहिए कि हर बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्यतः उसकी अपनी मातृभाषा में दी जाए। हिंदी प्रेमियों को भी सूचना क्रांति और भूमंडलीकरण के इस दौर में, मीडिया, बाजार और विज्ञापनों के दबाव में 'हिंदी' को 'हिंग्लिश' बनाने की कोशिश का विरोध करना है। उसकी अस्मिता को नष्ट होने से बचाना है। यह जरूर है कि नये संदर्भों में हिंदी को एक विश्वभाषा का रूप लेना है, उसे ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी और यांत्रिकी के साथ चलना है पर ऐसा उसे अपने अस्तित्व को समाप्त करके नहीं करना है।

यह धारणा कि अँग्रेजी विश्वभाषा है, एक शुद्ध भ्रम और मिथ्या है। चीन, जापान, फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि प्रमुख देशों में स्वयं अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ। फ्रांस के लोग तो अँग्रेजी सुन कर चिढ़ते हैं। यह दुष्प्रचार कि सारा ज्ञान अँग्रेजी में है, और भी बड़ा भ्रम है। वास्तविकता तो यह है कि कला और साहित्य के लगभग सारे आधुनिक आंदोलन फ्रेंच में शुरू हुए और बाद में अँग्रेजी ने उनके नकल किए। अँग्रेजी से भारत में आधुनिकता आई, यह मत भी निराधार है। प्रसिद्ध गांधीवादी विचारक धर्मपाल ने अपने शोधों में इसका विद्वतापूर्ण खंडन किया है। 'हिंद स्वराज' में गांधी ने 'सभ्यता' की वास्तविक अवधारणा को रेखांकित करते हुए यूरोपीय सभ्यता को चुनौती दी है। अँग्रेजी द्वारा भारत के यूरोपीकरण की प्रवृत्ति का उन्होंने कड़ा विरोध किया है। यह कहना कि अँग्रेजी ने भारत में ज्ञानोदय और राष्ट्रीय चेतना का विकास किया, तो और भी आपत्तिजनक है। मनुष्यता के ज्ञात इतिहास के प्रथम मानववादी



विचारक बुद्ध की भाषा क्या अँग्रेजी थी? भारत के शंकराचार्य आदि अनेक दार्शनिकों-विचारकों, कबीर, तुलसी आदि संतों-भक्तों की भाषा क्या अँग्रेजी थी? 1857 से लेकर 1947 तक के हजारों स्वाधीनता सेनानियों की भाषा क्या अँग्रेजी थी? वस्तुतः अँग्रेजी भारत में शोषण की भाषा सिद्ध हुई है। इसके कारण भारत की 95 प्रतिशत जनता विकास की दौड़ में पीछे छूट गई। राममनोहर लोहिया ने इसीलिए अँग्रेजी को गैरबराबरी पैदा करनेवाली भाषा कहा। आधुनिक आँकड़ों से सिद्ध होता है कि अपनी आजादी के बाद जिन देशों ने अपनी मातृभाषाओं में काम किया वे अपने विकास के लक्ष्य में डेढ़ गुना आगे बढ़े, उन देशों की तुलना में जिन्होंने गुलामी की भाषा में काम किया। चीन, जापान और भारत का तुलनात्मक उदाहरण प्रमाण है।

जहाँ तक साहित्य का संदर्भ है, हिंदी साहित्य की एक समृद्ध परंपरा रही है और आज भी हिंदी की विविध विधाओं में गंभीर और मूल्यवान साहित्य रचा जा रहा है, जो संसार की किसी भी भाषा के साहित्य के साथ तुलनीय है। इस संदर्भ में मैं एक विनम्र निवेदन करना चाहता हूँ। हिंदी साहित्य का एक आयाम जो ज्यादा प्रबल और उभरा हुआ है, वह है उसका नैतिक आयाम। ऐसा नैतिक आयाम जो व्यक्ति को केंद्र में रखता है। हिंदी साहित्य ने इसे अपनी समृद्ध परंपरा से, अपने आत्मवादी दर्शन और गहन गंभीर चिंतन से उपलब्ध किया है। प्रेम, करुणा, अहिंसा और विराट सृष्टि के प्रति एकात्म भाव हिंदी साहित्य का ऐसा आयाम है जो हमेशा से अन्य भाषाओं के विचारकों को आकृष्ट करता रहा है। एक बार मैंने एक आधुनिक रूसी आलोचक, जो हिंदी साहित्य के भी विद्वान अध्येता हैं, से पूछा कि हिंदी साहित्य में उन्हें सबसे अधिक आकृष्ट करनेवाली विशेषता क्या लगी? उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, “संयुक्त परिवार व्यवस्था”। थोड़ी देर के लिए तो मैं अचकचाया पर

बाद में मुझे लगा कि यही बात तो गुरुदेव रवींद्रनाथ ने तुलसीदास के ‘रामचरित मानस’ के बारे में कही थी। उन्होंने ‘रामचरित मानस’ को ‘गृहस्थ जीवन का महाकाव्य’ कहा था।

मार्क्सवादी विचारधारा बाहर की ओर देखती है। वह दुनिया को बदलना चाहती है, पर स्वयं बदलने का आग्रह करनेवाला उसमें अलक्षित होता है। जबकि भारतीय दर्शनों की दिशा और गति भीतर की ओर देखने की है। ‘अत्त दीपो भव’, ‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’, ‘अपुनपौ आपुन ही विसरयो’ जैसे सूत्र इसी प्रकार के हैं। संपूर्ण भारतीय साहित्य भीतर की ओर देखता है। हिंदी की भक्तिकालीन कविता में अपने को बदलने पर जोर है। स्वयं की कुप्रवृत्तियों से लड़ने पर। काम, क्रोध, मद, लोभ आदि व्यक्ति में पैदा होते हैं। जो इन रिपुओं को जीत सके, उसी को बीर कहा गया है, “अजय महासंसार रिपु, जीति सकैं सो बीर।” मुझे तो लगता है कि हिंदी-साहित्य की मूल चेतना ‘यथार्थवाद’ नहीं, ‘नैतिक चेतना’ है और यही उसका सर्वप्रमुख आयाम है जो सारी आलोचनात्मक कसौटियों से ज्यादा व्यापक और गंभीर है। इस नैतिक संवेदना से ही समता, स्वाधीनता और भ्रातृत्व के मूल्य भी निकलते हैं। इसी को आचार्य शुक्ल ने तुलसीदास से पाया था और उसे ‘लोक मंगल’ कहा था। प्रेमचंद ने इसीलिए अपने यथार्थवाद को ‘आदर्शोन्मुख यथार्थवाद’ कहा था। हिंदी साहित्य को अपने इस नैतिक, आदर्शवादी और आध्यात्मिक आयाम की रक्षा करनी चाहिए, जो उसका बुनियादी स्वरूप है। उसकी अपनी अस्मिता है। आज के अति भौतिक और अतिवांछिक जीवन-प्रवाह में यह एक प्रकाश-स्तंभ हो सकता है।

□

बेतियाहाता,
गोरखपुर-273 001 (उ.प्र.)

हिंदी की वैश्विक निर्मिति के सूत्रधार : प्रवासी तथा विदेशी विद्वान

—प्रो. नंद किशोर पांडेय

आज हिंदी विश्वभाषा की उत्तराधिकारिणी बनकर खड़ी है। विश्वभर में हिंदी को प्रचारित-प्रसारित करने में निःसंदेह भारतीय विद्वानों की बड़ी भूमिका है। इनके अतिरिक्त अप्रवासी भारतीय तथा भारतवंशियों ने हिंदी की ध्वजा को रचनात्मक तथा प्रचारात्मक धरातल पर ऊँचा उठाए रखा। हिंदी के भारतीय तथा प्रवासी भारतीय पत्रकारों ने सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विभिन्न विषयों पर मौलिक आवश्यक लेख लिखकर लोगों को हिंदी पढ़ने के लिए मजबूर कर दिया। विश्वभर में हिंदी सेवियों की संख्या बहुत बड़ी है। विदेशी विद्वानों ने साहित्य, पत्रकारिता, शोध, आलोचना और अनुवाद के रूप में महती कार्य कर इसे प्रतिष्ठित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। विदेशों में रहते हुए भारत की नई पीढ़ी भी निरंतर लेखन कार्य कर रही है। राजनीति, समाज विज्ञान, न्याय, चिकित्सा, कृषि और दर्शन के क्षेत्र में विदेशी विद्वानों द्वारा किए गए कार्य निरंतर अनुवाद के माध्यम से हिंदी में आ रहे हैं। ऐसे अनुवाद स्वतः स्फूर्त किए जा रहे हैं।

कुछ ऐसे विद्वानों की चर्चा आवश्यक है जिन्होंने भारत भूमि से दूर बैठकर हिंदी साहित्य को समृद्ध

किया है। ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस में हो रहा है, इसलिए पहले यहाँ के रचनाकारों की चर्चा करना उचित होगा। अभिमन्यु अनंत के नाम से विश्वभर के हिंदी पाठक परिचित हैं। सम्मेलन से पूर्व दिनांक 4 जून, 2018 को उनका स्वर्गवास हो जाना हिंदी प्रेमियों के लिए बहुत बड़ा आघात है। अभिमन्यु अनंत की प्रतिष्ठा उपन्यासकार के रूप में है। इन्होंने लगभग दो दर्जन नाटक भी लिखे हैं। दो दर्जन से अधिक इनके उपन्यास हैं।

मॉरीशस की प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह प्रह्लाद रामसरन ने किया। इन्होंने 'मॉरीशस का आदि काव्य कानन' और 'मॉरीशस के मध्यकालीन काव्य प्रसून' नाम से दो महत्वपूर्ण काव्य संग्रह तैयार किए। यह संपादित संग्रह ग्रंथ वर्ष 1997 में प्रकाशित हुआ। इनमें उन तमाम कवियों की रचनाएँ हैं जिन्हें लोगों ने विस्मृत कर दिया था। 'मॉरीशस का आदि काव्य कानन' में 110 कविताएँ संग्रहीत हैं। 'मॉरीशस के मध्यकालीन काव्य प्रसून' संग्रह में 172 कविताएँ संकलित हैं। ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' को कवि के रूप में सर्वाधिक यश मिला। वे जनता के बीच में लोकप्रिय थे। उनकी रचनाओं ने जनमानस को झकझोरा। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं : 'मधुपर्क', 'वीरगाथा', 'रागिनी', 'मधुकरी', 'स्वतंत्रता के



सुप्रभात', 'हमारा देश', 'रसरंग', 'अमर संदेश', 'गुंजन', 'वंदेमातरम्', 'स्वराज्य गीतांजलि' एवं 'एक कहानी कुली की' आदि। अन्य प्रसिद्ध कवि हैं : मुनीश्वरलाल चिंतामणि, विष्णुदत्त मधु 'चंद्र', सोमदत्त बखारी, ब्रजभूषण माथुर, इंद्रदेव भोला, मोहनलाल बृजमोहन, हरिनारायण सीता, वेणीमाधव रामखेलावन, मोहनलाल हरदयाल, पूजानंद नेमा, महेश रामजियावन, धनराज शंभू, धर्मवीर घूरा, लखवती हरगोविंद, ठाकुर दत्त पांडेय, जनार्दन कालीचरण, सुमति बुधन, मेहराज सुंदर, राज हीरामन, राजरानी गोबिन, बीरसेन नागासिंह तथा जीऊत आदि।

ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की रचनावली का संपादन डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने किया है। मधुकर ने 'हिंदी स्वागत गान' शीर्षक से बहुत सुंदर कविता लिखी है। उसका प्रवाह और शब्द चयन बेजोड़ है—

जिसकी वाणी पर हिंदी हो,
माथे पर हिंदी बिंदी हो,
नैनों का काजल हिंदी हो,
हाथों के कंगन हिंदी हो,
जो हिंदी-मंदिर जाता है,
हिंदी का दीप जलाता है,
हम उस हिंदी प्रेमी का सम्मान से
स्वागत करते हैं।

फिजी में भी गिरमिटिया मजदूर गए। इन मजदूरों ने अपनी भाषा, धर्म और संस्कृति को बचाने के लिए अनथक संघर्ष और प्रयास किया। डॉ. कमल किशोर गोयनका ने गवेषणा के अंक-103 में लिखा है, "फिजी के बारे में पहली हिंदी पुस्तक तोताराम सनाढ्य की थी जो सन् 1914 में 'फिजी में मेरे इक्कीस वर्ष' शीर्षक से छपी थी। इससे भारत के लोगों को फिजी में गए भारतीय लोगों की दुर्दशा का ज्ञान हुआ। इस पुस्तक के प्रेरक थे, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी। चतुर्वेदीजी पहले भारतीय हिंदी लेखक

थे जिन्होंने प्रवासी भारतीयों की विकट समस्याओं से, पुस्तकें लिखकर देश को अवगत कराया। फिजी के महत्वपूर्ण लेखक हैं—ज्ञानीदास, पंडित कमला प्रसाद मिश्र, जोगिंद्र सिंह 'कंवल', डॉ. सुब्रमणि, डॉ. विवेकानंद शर्मा, कमला प्रसाद मिश्र, अमरजीत कौर, डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, काशीराम कुमुद, बाबू हरनाम सिंह, ज्ञानीदास, ईश्वर प्रसाद चौधरी, बलराम वशिष्ठ, सरस्वती देवी, ए.ए. शमीम, चंद्रदेव सिंह आदि। पंडित कमला प्रसाद मिश्र सन् 1926 में भारत आए उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी और वृंदावन में रहकर अध्ययन किया। उन्हें हिंदी, अँग्रेजी और संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। इतिहास और आयुर्वेद की भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। सन् 1937 में वे फिजी चले गए। भारत उनकी स्मृतियों में हमेशा बसा रहा। फिजी में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने कई स्तरों पर कार्य किया। विद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकें तैयार कीं। 'जयफिजी' और 'जागृति' नाम से पत्रिकाएँ निकालीं। मथुरा की स्मृति में लिखी गई उनकी प्रसिद्ध कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

आज मथुरा की न जाने
याद क्यों आ गई सहसा।
छा गया हम में नशा-सा,
बढ़ गया उन्माद सबका।
वह मधुर यमुना कि जिसमें स्निग्ध
द्रव का जल पड़ा है।
वह मधुर ब्रजभूमि जिसको
कृष्ण के उर ने वरा है।

त्रिनिडाड में भी पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के मजदूर आए गए। 30 मई, 1845 को 212 भारतीय मजदूर यहाँ के बंदरगाह पोर्ट ऑफ स्पेन पहुँचे थे। ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार के बीच 'रामचरितमानस' और 'हनुमान चालीसा' जैसी पुस्तकों के सहारे भारतीयों ने अपने धर्म और संस्कृति की रक्षा की। अँग्रेजी के दबाव में हिंदी शिथिल

पड़ती चली गई। स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1952 में आनंदमोहन सहाय वहाँ भारतीय राजदूत बनकर गए। उनके कारण 'हिंदी एजुकेशनल बोर्ड' की स्थापना हुई। सन् 1966 में प्रो. हरिशंकर आदेश त्रिनिडाड आए। उन्होंने वहाँ 'भारतीय विद्या भवन' की स्थापना की। प्रो. हरिशंकर आदेश का स्वयं का लेखन बहुत बड़ा है। इनकी प्रकाशित पुस्तकों में चार महाकाव्य, अठारह खंड काव्य, पचास मुक्तक काव्य, ग्यारह कहानी संग्रह, दो उपन्यास, इकतीस नाटक तथा चार निबंध संग्रहों के अतिरिक्त संगीत की बहुत सी पुस्तकें हैं। उन्होंने 'जीवन ज्योति' तथा 'प्रगति' नाम से पत्रिकाएँ भी निकालीं। प्रो. भूदेव शर्मा, डॉ. प्रेम जनमेजय तथा डॉ. सीताराम पोद्दार का हिंदी प्रचार-प्रसार की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। डॉ. भूदेव शर्मा मूलतः गणित के प्राध्यापक हैं। डॉ. सीताराम पोद्दार ने 'हिंदी-क्लब' बनाया और उसके माध्यम से हिंदी-शिक्षण किया। सन् 1950 के आसपास सनातन धर्म महासभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, कबीर पंथ भारतीय विद्या भवन, हिंदी निधि, हिंदी एजुकेशन बोर्ड की स्थापना हुई। इन संस्थाओं ने अपने-अपने ढंग से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। मंदिरों की भजन मंडलियों ने कबीर सहित अन्य संत भक्त कवियों की रचनाओं का गायन प्रारंभ किया। अब उच्च स्तर पर हिंदी का शिक्षण होता है।

हिंदी प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इस बीच जागरूकता तेजी से बढ़ी है। कुछ नई संस्थाओं ने कार्य प्रारंभ किया है। हिंदी शिक्षण और प्रचार की दृष्टि से सुश्री कमला रामलखन, पंडित रामप्रसाद परसराम, पंडिता इंद्राणी रामप्रसाद, कु. अलीशा खान, श्री बॉब गोपी, डॉ. कुमार महाबीर, श्री आश्रम जी महाराज, श्री हंस हनुमान सिंह तथा श्री पारस रामौतार आदि प्रमुख नाम हैं।

सूरीनाम में एग्रीमेंट के तहत लगभग तैंतीस हजार भारतीय मजदूर लाए गए। इनमें से कुछ भारत

वापस आए। अधिकांश वहीं बस गए। सूरीनाम की स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीयों की स्थिति सुदृढ़ हो गई। सूरीनाम में भारतीय मूल की जनसंख्या लगभग 50 प्रतिशत है। सूरीनाम में सन् 1873 से 1918 तक के काल खंड को मौखिक साहित्य का समय माना जाता है। भारत से गए लोग अपनी स्मृति के आधार पर लोकगीतों का गायन करते थे तथा कहानियाँ सुनाते थे। सूरीनाम में वहाँ पहुँचने के घटनाक्रम को लेकर गाया जानेवाला एक गीत बहुत प्रसिद्ध है। उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

धान के खेत कर दिखलाई
 लड़की-लड़का दिए पढ़ाए
 कोई माझा कोई कमिसरिस
 कोई इंस्पेक्टर हो जाए
 कोई वकील कोई जज और
 कोई पार्लियामेंट में बैठा जाए
 भारत माता की औलाद
 सूरीनाम में सुखी बनाए
 बार-बार सिव बालक चेतावे
 धर्म न छोड़ियो अपना भाई,
 धर्म न छोड़ियो अपना भाई।

सन् 1960 में बाबू महातम सिंह हिंदी शिक्षण के लिए भारत सरकार की ओर से सूरीनाम भेजे गए। उन्होंने राजधानी पारामारिबो के अतिरिक्त कई स्थानों पर हिंदी शिक्षण केंद्र खोला। प्रमुख हिंदी सेवी हैं— बच्चू प्रसाद सिंह, जीत नराइन, उमादत्त शर्मा, लक्ष्मण सिंह, अमृता प्रसाद, रामसिंह, प्रागनाथ, रामप्रसाद, शिवरतन शास्त्री, गंगाराम पांडेय आदि। पंडित लक्ष्मी प्रसाद बलदेव आर्य समाजी थे। उनकी पद्य में प्रमुख रचना है—सूरीनाम संस्कृति भजन वल्लरी। अमर सिंह रमण ने गद्य और पद्य, दोनों विधाओं में लिखा है। इनकी पद्य रचनाएँ हैं—फूलों के पंछी तथा फूलों का बहार। इनका प्रसिद्ध नाटक है—कृष्ण सुदामा और लक्ष्मी पूजा। डॉक्टर जीत नराइन पेशे से डॉक्टर



हैं। ये डच और सरनामी, दोनों भाषाओं में लिखते हैं। इनके काव्य संग्रह हैं—दाल भारत चटनी-1977, हिंदी परसाद-1980, जोति अतिने गहरा झलका जतने उज्जर-1981, माँगे घाट पे जीवन झेले काहे नाव समुंदर खेवे-1984 आदि। सुरजन परोही ने धर्म, संस्कृति, राष्ट्रीयता, समाज सुधार आदि विषयों को केंद्र में रखकर रचनाएँ की हैं। पंडित हरिदेव सहत की प्रतिष्ठा एक बड़े विद्वान के रूप में है। वहाँ के पाठ्यक्रमों के निर्माण में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अमर सिंह रमण की एक रचना है, 'हिंदी से हिंदुस्तानी'। उसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

अब दुनिया के लोगों सुन लो,
एक खबर मस्तानी
हिंदी सीखो हिंदी बोलो,
हिंदी से ही हिंदुस्तानी
हिंदी हो संसार हमारा,
हिंदी है संसार हमारा
हिंदी हो व्यवहार हमारा,
हिंदी से ही प्यार हमारा
हिंदी दाना हिंदी पानी,
हिंदी मधु जवानी
हिंदी सीखो हिंदी बोलो,
हिंदी से है हिंदुस्तानी
अब दुनिया के लोगों सुन लो,
एक खबर मस्तानी।

कवि सुरजन 'नदी के पानी में' कविता में अपने पूर्वजों को याद करते हैं। उनके बलिदान के कारण सूरीनाम समृद्ध देश है—

प्रवासी भारतवाशियों के पूर्वज
संस्कृति का खजाना लेकर
मजदूरी के लिए
सूरीनाम देश आए
अपनी बलि चढ़ाकर
वे अपनी पहचान बना गए

स्मृतियों में
धरती की मिट्टी में
नदी के पानी में।

विश्व के सबसे प्रभावशाली देश अमेरिका में हिंदी सीखने की ललक बढ़ी है। प्रारंभिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक हिंदी पठन-पाठन की व्यवस्था अमेरिका में है। यहाँ के लगभग 70 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन होता है, जिनमें वहाँ के प्रमुख विश्वविद्यालय भी हैं। इस दृष्टि से वॉशिंगटन विश्वविद्यालय, सेंट लुइस, बोस्टन विश्वविद्यालय बोस्टन, इंडियाना विश्वविद्यालय, ब्लूमिंगटन, शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो, सेमफर्ड विश्वविद्यालय, बर्मिंघम, कैलीफोर्निया स्टेट विश्वविद्यालय, चीको, स्टेन्फर्ड विश्वविद्यालय, स्टेन्फर्ड, कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले, येल विश्वविद्यालय, न्यू हेवन, वॉशिंगटन विश्वविद्यालय, वॉशिंगटन, हवाई विश्वविद्यालय, होनोलूलू, अयोवा विश्वविद्यालय, अयोवा सिटी तथा लोयोला विश्वविद्यालय, शिकागो प्रमुख हैं।

अमरीका में हिंदी का प्रचार-प्रसार करनेवाले समकालीन प्रमुख विद्वान हैं—डॉ. वेद प्रकाश 'बटुक', गुलाब खंडेलवाल, तुलसी जयरामन तथा डॉ. कुँवर चंद्र प्रकाश सिंह। 'अमरीका के हिंदी कवि' पुस्तक में 51 कवियों का सोदाहरण परिचय दिया गया है। डॉ. अंजना संधीर ने 'प्रवासिनी के बोल' शीर्षक से एक पुस्तक संपादित की है। इसमें अस्सी अमरीकी भारतीय प्रवासी कवयित्रियों की रचनाएँ संकलित हैं तथा तैंतीस हिंदी से जुड़ी महिला प्रतिभाओं का परिचय दिया गया है। यह पुस्तक पार्श्व पब्लिकेशन : अहमदाबाद से 2006 में प्रकाशित हुई है। इन रचनाओं में विविधता है। कई रंग हैं। समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को इनसे जोड़कर ही देखा जा सकता है। इन कवयित्रियों की रचनाओं में भारत और अमरीका साथ-साथ बोलता है। द्वंद्व, तनाव, विसंगति, विडंबना, विमर्श, आधुनिकता,

परंपरा, मोह, व्यामोह, बिछोह, राग-विराग, दुराव-छुपाव, खुलापन सबकुछ समवेत रूप से बोलता है।

अंजना संधी ने अमरीका में प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी में हिंदी प्रोग्राम प्रारंभ किया। वे वर्षों तक न्यूयॉर्क की कोलांबिया विश्वविद्यालय में हिंदी शिक्षिका थीं। उनका प्रसिद्ध काव्य संग्रह है, 'अमरीका हड्डियों में जम जाता है'। उनकी एक कविता है, 'संस्कार कभी नहीं डूबते'। उसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, 'इस भीड़ भरी ट्रेन में/यह युवक दुर्गा सप्तपदी पढ़ रहा था' 'जगमगाहट और जादू भरी इस नगरी में/जहाँ ईमान डोल जाता है वृद्धों का भी/वहाँ वह युवक पढ़ रहा था दुर्गा सप्तपदी?/सिर अभिमान से तन गया मेरा/और पूछा मैंने तुम भारत में/कहाँ से हो?/उसने अनसुना किया/मैंने सोचा पाठ में मशगूल है।' 'ट्रेन चलती रही, मुसाफिर उतरते रहे, चढ़ते रहे/वो पढ़ता रहा।/एक बार फिर पूछा मैंने/उसने पलटकर देखा, बोला कुछ भी नहीं/मन दुःखी हुआ मगर उसके अच्छे कर्म ने/फिर झकझोरा-अंग्रेजी में पूछा मैंने/क्या तुम भारत से हो?/बड़ी शालीनता से हँसते हुए उसने देखा/और कहा-जी नहीं, त्रिनीडाड से, हिंदी नहीं आती मुझे/अंग्रेजी शब्दों में लिखी दुर्गा सप्तपदी पढ़ रहा हूँ/दिन सुधर जाता है/मेरा धर्म मुझे बताता है/ मैं एक हिंदू हूँ/छूट गया हूँ अपने वंशजों से/पर उनका ज्ञान, ध्यान, शब्द, उपासना अब भी मेरे साथ है/जो दिए हैं मेरे पितरों ने और इसी तरह मैं दूंगा/अपनी पीढ़ी को/ इसी तरह चलती रहेगी यात्रा पीढ़ियों से पीढ़ियों की ओर/बयालीसवीं गली के स्टेशन पर/दो हाथ जोड़ प्रणाम कर/ट्रेन से उतर गया वह युवक/अमरीका की चमक-दमक में भी/वो गिरमिटिया मजदूर/पढ़ता है दुर्गा सप्तपदी/दिन शुरू करने से पहले/इसीलिए जिंदा है आदमी/कहीं भी रहता है/उसके संस्कार रखते हैं उसे जिंदा/सबकुछ डूब भी जाता है तो भी/ संस्कार कभी नहीं डूबते।'

विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ ही

संदर्भ ग्रंथों के लेखन का कार्य विदेशी मूल के विद्वानों ने किया है।

हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ गार्सा द तासी ने लिखा। ये फ्रांस के थे। इन्होंने सन् 1839 ई. में अपनी इतिहास/इस्त्वार द ला लितरेत्यूर एंडुई-ए-एंडुस्तानी' लिखा। गार्सा द तासी से 8 वर्ष पूर्व एच.एच. विल्सन ने/रिलीजियस सेक्ट्स ऑफ हिंदूज' लिखा। जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का इतिहास, 'दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान' लिखा। एड्विन ग्रीव्स ने 'ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर' लिखा। इस प्रकार इन विद्वानों ने हिंदी साहित्य को प्रचारित करने का महत्वपूर्ण यत्न किया।

- गोदान—डॉ. मारिओला आफरेदी, बेनिस यूनिवर्सिटी (इटली)
- तीसरी कसम—(फणीश्वर नाथ रेणु)—द थर्ड वो एंड अदर स्टोरीज—डॉ. कैथरीन
- मैला आँचल (फणीश्वर नाथ रेणु)—डॉ. मारिओला आफरेदी, वोनिस यूनिवर्सिटी (इटली)
- रामचरितमानस—वारान्निकोव—रूसी पद्यानुवाद
- रामचरितमानस—एडिवन ग्रीव्स—रामायण ऑफ तुलसीदास
- रामचरितमानस—जींग दिंग्जिन—चीनी
- कबीर बीजक—बौद्धमील (फ्रेंच)
- ढोला मारू—बौद्धमील (फ्रेंच)
- बिहारी सतसई—लोठार लुत्से (जर्मन)
- निर्मला (प्रेमचंद)—ओदोनल स्मेकल (चेक)
- प्रेमसागर (लल्लू लाल)—वारान्निकोव (रूसी)।

बड़ी संख्या में हिंदी के रचनाकारों का विदेशी भाषा में अनुवाद विदेशी मूल के विद्वानों ने हिंदी सीखकर किया है। इनमें से कई अनुवाद बेहद लोकप्रिय हुए।



हिंदी भाषा, इसकी बोलियों और देवनागरी लिपि पर भी कार्य विदेशी मूल के हिंदी विद्वानों ने किया है। कई कार्यों का ऐतिहासिक महत्त्व है। एड्विन ग्रीव्स ने 1921 ई. में 'हिंदी ग्रामर' लिखा। आयरलैंड निवासी जॉर्ज ग्रियर्सन ने भारत का भाषा सर्वेक्षण करवाया। यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ। मोनियर विलियम्स का 'ऐन इजी इंट्रोडक्शन टु प्रैक्टिकल हिंदुस्तानी ग्रामर' बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसी तरह बेंजामिन (लैटिन)—हिंदी व्याकरण, जॉन कैटेलर—हिंदी व्याकरण, ग्राहम बेली (हिंदी व्याकरण क्रिया विचार), मैडम मारग्रेड (हिंदी व्याकरण), थॉमस कालब्रुक (भारतीय भाषाओं का अध्ययन), डॉ. जाल्मन दी मिश्र—हिंदी व्याकरण, डॉ. बौर्तिल तिव्कनेन (फिनलैंड)—हिंदी-उर्दू व्याकरण, एफ. रोडोल्फ-पूर्वी हिंदी भोजपुरी व्याकरण, शोलवर्ग (हिंदी व्याकरण), पेंजोनी विकारियो (इटली)—हिंदी व्याकरण, गार्सा द तासी—हिंदुस्तानी भाषा और लिपि, कात्सुरो कोगा (जापान) हिंदी व्याकरण, जॉनकेटलर हिंदी व्याकरण (डच), सैड फोर्ट अनोट—हिंदी व्याकरण, विलियम एंड्रूज—हिंदी व्याकरण। ऐसे और भी अलग-अलग देशों के कई विद्वान हैं जिन्होंने हिंदी और हिंदी की बोलियों के व्याकरण पर गंभीरतापूर्वक काम किया है। कोश निर्माण के क्षेत्र में हम फादर कामिल बुल्के को बहुत आदर से याद करते हैं। उनका अँग्रेजी-हिंदी कोश मानक की तरह प्रयोक्ता स्वीकार करते हैं। उन्होंने मौलिक रूप से शोध कार्य राम कथा पर किया है। राम-संबंधित साहित्य को समझने के लिए यह पुस्तक संदर्भ ग्रंथ है। कोश की दृष्टि से डॉ. गिलक्राइस्ट, तैस्सोतोरी, एम.डब्ल्यू. केलन, एम.टी. एडम तथा जॉन फर्गुसन को अवश्य याद किया जाना चाहिए।

विश्व के प्रमुख ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद हुआ है। इन अनुवादों से हिंदी के पाठक विश्व साहित्य से परिचित हुए हैं। इस कारण भी हिंदी की एक वैश्विक स्थिति बनी है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

- अन्ना करौनिना (लेव टॉल्स्टॉय)—मदनलाल मधु, छिवनाथ पांडेय
- अरबी कविताएँ—महेश प्रसाद
- आलिफ लैला (अरबी)—हिरदास, प्यारे लाल
- आस्तित्ववाद (कीर्कगार्द)—योगेंद्र साही
- ऐज यू लाइक इट (शेक्सपीयर)—गोपीनाथ
- ओथेलो (शेक्सपीयर)—दिवाकर
- काव्य में उदात्त तत्व (लॉंजाइनस)—नेमिचंद्र जैन, डॉ. नगेन्द्र
- चेखव की सात अमर कहानियाँ—देवेन्द्र नाथ शर्मा, आशा गुप्त
- चेखव (चेरी का बगीचा)—राजेंद्र यादव
- चौंसठ रूसी कविताएँ—हरिवंश राय बच्चन
- ट्रेवलर (गोल्ड स्मिथ)—श्रीधर पाठक (श्रांत पिथक)
- जापानी कविताएँ—सत्यभूषण वर्मा

कई महत्त्वपूर्ण विश्वभाषाओं की पुस्तकों का हिंदी में कई-कई अनुवाद हुआ है। हम ऐसे विदेशी विद्वानों को भूल नहीं सकते जिनके कारण हिंदी का मध्यकालीन साहित्य विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित हुआ। भारत की संस्कृति को समझने के लिए और नाथों, सिद्धों और संतों के साहित्य को समझना आवश्यक है। इस दृष्टि से विदेशी विद्वान हिंदी अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। जी.डब्ल्यू. ब्रिक्स ने गोरखनाथ और कनफटा योगी पर कार्य किया। जी.एच. बेस्टकाट, लिंडा हेस तथा डेविड लारेंजन ने कबीर पर कार्य किया। विलियम कैलपर्ट ने संत दादूदयाल और रज्जब पर कार्य किया। वैश्विक धरातल पर प्रवासी कवियों ने हिंदी की धूम मचा रखी है।



निदेशक
केंद्रीय हिंदी संस्थान,
आगरा

विदेशी भाषा के रूप में हिंदी भाषा, साहित्य शिक्षण के आयाम

—श्री सुंदरम् पार्थसारथी ताताचारियर

यह बात हम सभी जानते हैं कि हिंदी भाषा एक 'बहुवचनी' भाषा है। उसके अनेक स्तर एवं भेद हैं। इसका बोली मिश्रित रूप, बोलचाल का रूप, संस्कृतनिष्ठ शैली वाला रूप, उर्दू शैली वाला रूप और फिर हिंदुस्तानी रूप साहित्य लेखन को भी प्रभावित करता है। प्रसाद के साहित्य की संकृतनिष्ठता, प्रेमचंद के साहित्य में उर्दू और हिंदुस्तानी का प्रयोग, रेणु के साहित्य में बोली मिश्रित हिंदी की छटा देखी जा सकती है। इसके साथ ही हिंदी की अपनी सामाजिक शैलियाँ हैं, जिनका सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'विश्व मंच' पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में हिंदी भाषा और साहित्य के इन समस्त भेदों को समेटने की जरूरत होती है।

भाषा और साहित्य दोनों का स्वरूप बहुस्तरीय और बहुआयामी होता है। भाषा की बात करें तो एक ओर उसका व्याकरणसम्मत रूप (मानक भाषा) होता है तो दूसरी ओर उसका व्यावहारिक रूप। भाषा व्याकरण के भी एकाधिक स्तर होते हैं—ध्वनि से लेकर प्रोक्ति तक। इसी तरह व्यावहारिक भाषा के भी अनेक स्तर किसी भाषा-समुदाय में देखे जा सकते हैं। क्षेत्रीय शैली, सामाजिक शैली, सांस्कृतिक उक्तियाँ, प्रयोजनमूलक शैली आदि। अन्य भाषा शिक्षण में

भाषा के इन भेदों को मर्दों में बाँटकर वर्गीकृत ढंग से अभिक्रमित करते हुए शिक्षण योजना का हिस्सा बनाना होता है। विदेशी भाषा शिक्षण के लिए भाषा के भिन्न स्तरों का चयन और अनुस्तरण अत्यंत आवश्यक है, वह कहते की आवश्यकता नहीं।

विदेशी भाषा शिक्षण में एक स्तर के बाद 'साहित्य' की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो जाती है। यहाँ साहित्य का अर्थ केवल ललित साहित्य अर्थात् कविता, नाटक, उपन्यास आदि से नहीं है, यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए। विदेशी भाषा शिक्षण के लिए जो शिक्षण सामग्री है उसमें पत्र-पत्रिकाओं के अंश, फिल्म-खेलकूद, मीडिया पर चर्चा, ललित कलाओं के पाठ, साक्षात्कार, भाषण, यहाँ तक कि विज्ञापन आदि को भी सम्मिलित किया जाता है। इसका कारण यह है कि विदेशी भाषा शिक्षण मात्र भाषा शिक्षण नहीं है, सांस्कृतिक शिक्षण भी है।

यही कारण है कि अन्य भाषा पर संपादित ब्रज काचरू की पुस्तक का आमुख लिखते हुए प्रसिद्ध भाषाशास्त्री फर्गुसन ने अन्य भाषा (विशेष रूप से विदेशी भाषा) की महत्ता एवं भूमिका का उल्लेख करते हुए लिखा है कि विदेशी भाषा के द्वारा प्रयोक्ता कुछ विशेष प्रयोजनों को साधने में समर्थ बनने का लक्ष्य



सिद्ध करता है। विदेशी भाषा को वह एक विशेषीकृत भाषा के रूप में ग्रहण और प्राप्त करना चाहता है।

फर्गुसन के इस वक्तव्य से जो बात सामने उबरकर आती है, वह अन्य भाषा (विदेशी भाषा) के रूप में भाषा-व्यवहार को देखने का आग्रह करती है। वह हमें यह भी देखने को बाध्य करती है कि हम विदेशी भाषा को प्रकार्यात्मक संदर्भ (Functional context) में देखने की ओर प्रवृत्त हों। हिंदी एक बहुवचनी भाषा है, अतः विदेशी भाषा के रूप में उसके प्रकार्यात्मक संदर्भों को देखने का अर्थ होगा—उसके संप्रेषणपरक संदर्भों को देखने की ओर प्रवृत्त होना।

अभी हमने चर्चा में यह देखा कि हिंदी भाषा और उसका साहित्य दोनों ही 'संप्रेषण' के धरातल पर बहुरूपी हैं, हेट्रोजेनेस हैं। अतः इसके 'संप्रेषण-संदर्भ' बहुरूपी हैं। हमें यह मालूम है कि 'शुद्ध भाषा विज्ञान' भाषा अध्ययन को सीमित करता है, क्योंकि वह 'भाषा, भाषा के लिए' के संदर्भ को प्रोत्साहित करता है। इसीलिए इसके अध्ययन का लक्ष्य व्याकरण है और इसकी महत्तम इकाई वाक्य। जबकि इसके ठीक विपरीत 'संप्रेषण-संदर्भ'—से जुड़े 'संप्रेषणपरक वैयाकरण' का उद्देश्य भाषा के संप्रेषण परक/प्रकार्यात्मक गुणों की खोज करके उसे विदेशी भाषा के रूप में भाषा सीखने-सिखानेवाले को उपलब्ध कराना है। संप्रेषणपरक व्याकरण भाषा को सामाजिक प्रतीक के रूप में देखता है तथा प्रयोग को महत्वपूर्ण मानता है। प्रयोग पर महत्व के कारण ही यहाँ 'संवाद' का महत्व है। कहने की आवश्यकता नहीं कि विदेशी भाषा अध्येता भिन्न परिस्थितियों में 'वार्तालाप' कर सके, यह प्रमुख लक्ष्य है।

विदेशी भाषा शिक्षण को संप्रेषणपरक संदर्भ देने में भाषा और साहित्य दोनों की सामग्री से उपयुक्त अंशों का चयन बड़ी सावधानी के साथ करना पड़ता है, तभी शिक्षार्थी की 'संप्रेषणपरक क्षमता' (कम्यूनिकेटिव कांपिटेंस) का विकास होता है। हाइम्स ने संप्रेषणपरक

क्षमता के चार क्षेत्रों की ओर संकेत किया है—

1. (किस सीमा तक) कोई चीज रूपात्मक दृष्टि से संबंध है। इस विचार क्षेत्र का संबंध भाषा-प्रयोग की संरचना से है।
2. (किस सीमा तक) कोई चीज स्वीकार्य है। इस विचार क्षेत्र का संबंध भाषा प्रयोग की स्वीकार्यता के साथ है।
3. (किस सीमा तक) कोई चीज संदर्भोचित है। इस विचार क्षेत्र का संबंध संदर्भ के अनुकूल भाषा प्रयोग के साथ है।
4. (किस सीमा तक) कोई चीज प्रस्तुत: व्यवहृत है। इस विचार क्षेत्र का संबंध वाक्यों के प्रयोग की संभाव्यता से है।

हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार एवं बहुमुखी संग्रह से कक्षा की आवश्यकता के अनुसार चयन करते समय एक समान्वित दृष्टि का होना अनिवार्य है। संप्रेषण परक भाषा/साहित्य शिक्षण के तीन निम्नलिखित आयाम इस समन्वित दृष्टि से संभव किए जा सकते हैं—

पहला आयाम भाषा वैज्ञानिक संदर्भ (व्याकरणिक संरचना का आयाम)।

दूसरा आयाम भाषा व्यवहार का संदर्भ (संदर्भगत परिस्थितियों और प्रयोक्ति प्रयोग का आयाम)।

तीसरा आयाम प्रैगमेटिक का संदर्भ (प्रयोक्ता के बाह्य ज्ञान और मंतव्य का आयाम)।

विदेशी भाषा शिक्षण में व्याकरणिक नियमों की जानकारी के साथ-साथ अब यह भी आवश्यकता हो गया है कि उसकी संप्रेषणपरक एवं प्रकार्यात्मक विशिष्टताओं को भी उभारकर सामने लाया जाए। हिंदी भाषा और साहित्य दोनों में ऐसी विशिष्टताओं का भरपूर भंडार उपलब्ध है।

□

अध्यक्ष, विद्या परिषद्
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा,
चेन्नई-600017

गिरमिटियाओं का हिंदी प्रेम

—सुश्री किरण माला सिंह

हिंदी एक भाषा ही नहीं अपितु जीवन पद्धति का नाम है। हिंदी साहित्य में संपूर्ण भारतीय जीवन दर्शन समाया हुआ है। हिंदी संसार की एकमात्र वह भाषा है, जो जैसी बोली जाती है, वैसी ही लिखी जाती है। हिंदी की गंगधार विदेशों में भी बहने लगी है। विश्व के कई देशों में हिंदी फलने-फूलने लगी है। वास्तव में विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में सर्वाधिक योगदान दिया गिरमिटियाओं ने। सत्रहवीं सदी में आए अंग्रेजों ने आम भारतीयों को एक-एक रोटी तक को मोहताज कर दिया। फिर उन्होंने गुलामी की शर्त पर लोगों को विदेश भेजना प्रारंभ किया। इन मजदूरों को गिरमिटिया कहा गया। 'गिरमिट' शब्द अंग्रेजी के 'एग्रीमेंट' शब्द का अपभ्रंश बताया जाता है। 'गिरमिटिया' शब्द की उत्पत्ति 'गिरमिट' शब्द से मानी जाती है। यह शब्द अंग्रेजी के एग्रीमेंट (Agreement) शब्द का भोजपुरीकरण रूप है—एग्रीमेंट, ग्रीमेंट, गिरमेंट शब्द बना। जिस कागज पर अँगूठे का निशान लगवाकर हर साल हजारों मजदूर दक्षिण अफ्रीका या अन्य देशों को भेजे जाते थे, उसे मजदूर और मालिक 'गिरमिट' कहते थे। इस दस्तावेज के आधार पर मजदूर गिरमिटिया कहलाते थे। हर साल 10 से 15 हजार मजदूर गिरमिटिया बनाकर फीजी, ब्रिटिश गुयाना, डच गुयाना, त्रिनिदाद, टोबेगो, नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) मॉरीशस आदि

देशों को ले जाए जाते थे। यह सब सरकारी नियम के अंतर्गत था। इस तरह का कारोबार करनेवालों को सरकारी संरक्षण प्राप्त था। गिरमिटिया प्रथा अंग्रेजों द्वारा सन् 1834 से आरंभ हुई और सन् 1917 में इसे निषिद्ध घोषित किया गया।

जैसाकि आज समस्त विश्व जानता है शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत जो भारतीय कुली ब्रिटिश साम्राज्य से जुड़े उपनिवेशों में भेजे गए थे, उनके वे दिन उत्पीड़न, कष्ट, दैन्य और वेदना के दिन थे, जब उन्होंने अपनी मातृभूमि से हजारों मील दूर लगभग निस्सहाय स्थिति में गन्ने के खेतों में दिन-रात कड़ा परिश्रम किया और अपने गाढ़े पसीने से उस पराए देश की धरती को सींचा, जहाँ उन्हें निर्वासन के दिन गुजारने पड़ रहे थे। इन विजातीय लोगों के बीच अपने अस्तित्व की रक्षा का संघर्ष कितना कठिन रहा होगा, इसकी कल्पना मात्र से हृदय पसीज जाता है।

विश्व के विभिन्न भागों में अपने धर्म, जाति, संस्कृति व भाषा की रक्षा के लिए किए जानेवाले अनेक संघर्षों की कहानी हम लोगों ने सुनी, पढ़ी है, लेकिन प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा की कड़ी लड़ाई जीती तो केवल हिंदी भाषा के हथियार से ही। संकट और निराशा की चरम स्थितियों में उन्हें साहस और सांत्वना देने का महान् कार्य परमपूज्य तुलसीदास की रामायण ने ही किया

था। जिस प्रकार हिमालय भारत माँ का अडिग प्रहरी है, उसी तरह गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस हमारे देश में प्रवासी भारतीयों की भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करनेवाला प्रहरी है।

इसमें तनिक भी संशय नहीं कि देश के बाहर हिंदी को पहुँचाने में गिरमिटिया मजदूरों की अहं भूमिका रही। गिरमिटिया देश के अंतर्गत फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, टोबैगो इत्यादि देश मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त गिरमिटिया देशों में मॉरीशस भी एक है, जहाँ हिंदी का अंतरराष्ट्रीय स्वरूप देखा जा सकता है। मॉरीशसवासी भारतवंशी अभिमन्यु अनंत के शब्दों में—“मॉरीशस की हिंदी अपनी माटी की सौंधी खुशबू की गंध को आत्मसात् करके ही अपना एक निजी स्थान बना सकी है और हिंदी के शब्द सरोवर में अपने हिस्से की चंद बूँदें जोड़ पाई है।”

अतः देश के बाहर या यूँ कहें कि भारतेतर देशों में हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने में प्रवासी साहित्यकारों ने सेतु का काम किया है। इस प्रकार, गिरमिटिया देशों में हिंदी की दशा एवं दिशा को जानने के लिए निम्न पहलुओं पर विचार किया जाना चाहिए।

उस समय भले ही गिरमिटियाओं की देशभक्ति परिवार की भेंट चढ़ने के लिए बाध्य रही होगी, अपनी जन्मभूमि को फिर कभी न देख पाने की टीस भी हृदय के कहीं अंदरूनी कोने में छिपा दी गई होगी, परंतु उन देशों में पहुँचकर अनजाने में ही सही, अपने देश की संस्कृति, त्योहारों और परंपराओं को इन गिरमिटियों ने छोड़ा नहीं। वे वहाँ गन्ने के खेतों में काम करते हुए रामचरितमानस की चौपाइयों का गान करते थे और संकट में हनुमान चालीसा पढ़ते थे। एग्रीमेंट के कारण वे पाँच साल बाद छूट तो सकते थे, लेकिन उनके पास इतना धन नहीं होता था कि वे वापस भारत लौट सकें। अतः बाध्यतावश वे अपने ही तथाकथित स्वामी के पास काम करने लगते थे या किसी और के गिरमिटिए हो जाते थे। गिरमिटिया एग्रीमेंट के तहत ये

मजदूर बेचे जा सकते थे, काम न करने की स्थिति में अथवा कामचोरी करने पर बुरी तरह दंडित भी किए जा सकते थे। यहाँ तक कि गिरमिटियाओं को विवाह करने की छूट नहीं थी और यदि कुछ गिरमिटिया विवाह कर भी लेते थे, तो भी उन पर गुलामीवाले नियम ही लागू होते थे। इसके तहत उनकी स्त्रियाँ और बच्चे किसी और को बेचे जा सकते थे। शिक्षा, मनोरंजन आदि मूलभूत आवश्यकताओं से भी उनको वंचित रखा जाता था। इन सभी सख्तियों में बँधे उन निरीह भारतीयों को किसी भी तरह से अपना हृदय कठोर बनाकर हजारों किलोमीटर दूर की उस विदेशी भूमि में ही अपनी भारतमाता को स्थापित कर लेना पड़ा। अपने और अपनी मातृभूमि, सब छूट गया था, शेष था तो सिर्फ हृदय में बसी अपनी संस्कृति, अपनी भाषा हिंदी और अपनी परंपराएँ, जिनको गिरमिटिया मजदूरों से किसी तरह का कोई भी एग्रीमेंट नहीं छीन सकता था।

सभी प्रवासी भारतीय विदेश में अपनी भाषा की रक्षा, संरक्षा एवं भाषा के प्रति सचेष्ट हैं, यही कारण है कि सर्वत्र विदेश में जहाँ-जहाँ भारतीय, प्रवासी या अप्रवासी के रूप में गए हैं, वे हिंदी बोलने का प्रयत्न करते हैं और अपनी भाषा एवं संस्कृति पर उन्हें गर्व है। वे अपनी अगली पीढ़ी को हिंदी सिखाना चाहते हैं ‘क्योंकि वही हिंदी उन्हें विदेश में जोड़नेवाली ताकत है।’

सदियों पहले अपना देश छोड़ हजारों किलोमीटर दूर गए भारतीय गिरमिटिया लोगों को एक-दूसरे से जोड़े रखने की डोर एक ही थी—उनकी अपनी भाषा हिंदी, जिसके माध्यम से वे आपस में अपनी संवेदनाएँ बाँट लेते थे। हिंदी ने ही गिरमिटियों को अपनेपन और आत्मीयता के साथ एक-दूसरे से जोड़े रखा। गिरमिटियों ने इन देशों में हिंदी को जीवित रखकर एक अनूठा कार्य किया है, क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिंदी इन देशों में पुष्पित-पल्लवित होती रही है। वैसे

तो सन् 1917 में ब्रिटिश सरकार ने इस गिरमिटिया एग्रीमेंट को महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले के साथ-साथ ब्रिटिश सीएफ एंड्रयूज और हेनरी पोलाक सहित अनगिनत भारतीयों के अथक प्रयासों से इस अमानवीय प्रथा को समाप्त कर दिया था, पर जो भारतीय उन देशों से कभी नहीं आ पाए, वे वहीं बस गए। इनमें से अधिकांश गिरमिटियों ने वहाँ पर या तो

स्वतंत्र मजदूर बनकर या छोटे-मोटे व्यापारी बनकर जीविकोपार्जन आरंभ कर दिया। कुछ देशों में तो इन भारतीय गिरमिटियों की संतानें प्रधानमंत्री से लेकर बड़े-बड़े अधिकारी बने। वर्तमान में एक गिरमिटिया देश फिजी का उदाहरण लें, तो हम पाते हैं कि यहाँ की जनसंख्या 9 लाख है और उसमें से साढ़े तीन लाख से अधिक लोग भारतीय मूल के हैं, जो फिजियन हिंदी बोलते हैं। वर्तमान गिरमिटिया पीढ़ी के लोगों का हिंदी से आत्मीय संबंध आज भी अपने पूर्वजों की

तरह ही है। वे उन भारतीयों की तरह तो कदापि नहीं हैं, जो हिंदी की बात तो बहुत करते हैं, किंतु हिंदी में बात नहीं कर सकते। गिरमिटियाओं ने इस दुराग्रह से स्वयं को मुक्त रखते हुए उन देशों में भारत की संस्कृति के साथ-साथ हिंदी भाषा को जीवित रखा और लगातार समृद्ध किया। गिरमिटिया अपने ऊपर हो रहे अन्यायों और समस्त दुःख-दर्द के बावजूद भी भारतीय त्योहारों को पूरे उत्साह के साथ मनाते थे और वही परंपरा आज भी उनके बच्चे निर्वहन करते आ रहे

हैं। वैश्वीकरण के दौर में भारतीय नई पीढ़ी, जहाँ हिंदी भाषा और संस्कृति से दूर होती जा रही है, वहीं आज भी गिरमिटियाओं की नई पीढ़ियाँ आपस में हिंदी में बात करते हुए दादा, नाना, चाचा, मामा, मौसा-मौसी आदि भारतीय संबोधनों का ही उपयोग करती हैं। यहाँ तक कि बाद में गिरमिटियाओं द्वारा मॉरीशस में भारत की संस्कृति पर आधारित बसाए गाँवों में वे आज भी

पूर्ण भारतीयता के साथ रह रहे हैं।

अतः अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को स्थापित करने में गिरमिटिया देशों में रहनेवाले भारतीय लोगों के व्यापक योगदान से इनकार नहीं किया जा सकता है। आज कहने को तो विश्व के 132 देशों में हिंदी को तीन करोड़ अप्रवासी भारतीयों ने फैलाया है, लेकिन सच यह है कि इनमें वे अप्रवासी भारतीय कदापि शामिल नहीं हैं, जिनको हिंदी बोलने में हीनता महसूस होती है, अपितु इनमें वे गिरमिटिये

शामिल हैं, जिन्होंने हिंदी में बोलना अपनी शान समझा और उसका वैश्विक स्तर पर विस्तार करना अपना धर्म। उन्होंने सही मायनों में विश्व के समक्ष इस बात को प्रस्तुत किया कि अभिव्यक्ति, सामर्थ्य और साहित्य की दृष्टि से हिंदी ही सर्वाधिक समर्थ भाषा है। गिरमिटियों ने हिंदी की वैश्विक स्थिति को बाजार की भाषा के रूप में निरूपित कर एक नया ही स्वरूप दिया है। इस तरह गिरमिटियों ने शताब्दियों पूर्व मजबूरी में ही सही, वैश्विक परिवेश में भारत



की उपस्थिति दर्ज कराकर हिंदी की हैसियत में भी उन्नयन किया और भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाड़ी देशों, मध्य एशियाई देशों—रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय का सबल माध्यम बनाया है। गिरमिटियों द्वारा हिंदी के प्रचार व प्रसार में इतने अधिक कार्य किए गए हैं कि इसी को दृष्टिगत रखते हुए भारत ने हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में संवर्धित करने के लिए विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना हेतु गिरमिटिया देश मॉरीशस को चुना। मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम ने विश्व हिंदी सचिवालय की स्थापना का प्रस्ताव 1975 में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के दौरान रखा था। भारत और मॉरीशस की सरकारों के बीच एक समझौते के तहत 11 फरवरी, 2008 को गिरमिटियों द्वारा बसाए गए मोका गाँव में विश्व हिंदी सचिवालय स्थापित किया। यह सचिवालय तब से आज तक अनवरत विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन को एक संस्थागत व्यवस्था के तहत आयोजित करता आ रहा है।

यदि सही अर्थों में देखा जाए तो हिंदी का विकास दो गिरमिटिया देशों में सर्वाधिक हुआ—फीजी और मॉरीशस। मॉरीशस के इतिहास को झाँककर देखेंगे तो पाएँगे कि डॉक्टर मणिलाल द्वारा सन् 1914 ईसवी में प्रकाशित 'हिंदुस्तानी' समाचार-पत्र ही था, जिसने मॉरीशस के हिंदी साहित्य रूपी वटवृक्ष के लिए बीज का काम किया। इसके बाद 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' (1920-24), 'सनातन धर्मांक' (1933-42), 'जनता' (1948), 'जमाना' (1948), में प्रारंभ हुआ, फिर कुछ समय के बाद बंद हो गया), 'वर्तमान' (1953-54), 'अनुराग' (1960), 'दर्पण' (1970), 'प्रभात' (1980), 'स्वदेश' (1986), इत्यादि अल्पजीवी पत्रिकाओं ने

प्रवासी हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष रूप से योगदान किया।

फीजी में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में रेडियो फीजी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सुबह साढ़े पाँच बजे से रात बारह बजे तक रेडियो पर विभिन्न कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। इसमें सर्वाधिक कार्यक्रम हिंदी भाषा में ही होते हैं। पूरे दिन में लगभग पंद्रह-सोलह घंटे तक हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। रेडियो-विज्ञापनों में भी हिंदी भाषा को ही प्रमुखता प्राप्त है। अधिकांश कार्यक्रम हिंदी फिल्मों के लोकप्रिय गीतों पर आधारित होते हैं। रेडियो के साथ ही रामायण भजन मंडलियों के योगदान को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। फीजी में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का निरंतर कार्य करने में रामायण मंडलियों व महिला मंडलियों का योगदान सराहनीय है। ये मंडलियाँ गाँव-गाँव में साप्ताहिक बैठकों का आयोजन करती हैं। इन बैठकों में आनेवाले लोग आपस में हिंदी भाषा में ही बातें करते हैं। तुलसीकृत रामायण का सस्वर पाठ होता है। निश्चय ही इस प्रकार के आयोजनों से नई पीढ़ी को भी हिंदी भाषा का संस्कार प्राप्त होता है। त्योहारों के अवसरों पर यहाँ विभिन्न प्रकार के आयोजन होते हैं। सभाएँ होती हैं। मेले लगते हैं। बड़े पैमाने पर अधिवेशन आदि भी किए जाते हैं। इन सभी आयोजनों की काररवाई हिंदी भाषा में ही होती है। अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण निर्णय करनेवाली औपचारिक बैठकों में भी हिंदी भाषा का प्रयोग होता है।

मुझे गर्व है कि मैं उन गिरमिटियों की वंशज हूँ, जो आज फीजी गणराज्य का हिस्सा हैं। हिंदी-प्रेम मेरी रगों में दौड़ता है। हिंदी में मेरे द्वारा लिखित पुस्तक 'मुझे भी कुछ कहना है' का लोकार्पण भारतीय उच्चायोग सूवा फीजी में हाल ही में किया गया।

□

हिंदी शिक्षिका, भारतीय उच्चायोग,
सूवा, फीजी

वैश्विक भारतवंशियों की हिंदी भाषा बनाम भारतीय संस्कृति

—प्रो. पुष्पिता अवस्थी

भाषा ही संस्कृति की संवाहिका है, वह अपने समय और समाज की संपूर्ण संस्कृति लेकर चलती है। संस्कृत के माध्यम से भारतीय दर्शन और संस्कृति का सूर्य यूरोप में प्रकाशित हुआ, किंतु भारत वंशी बहुल देशों में यदि विश्व के पश्चिमी गोलाब्द से अवलोकन प्रारंभ करें तो सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना, रुसवा, सेंटलूसिया, इंग्लैंड, नीदरलैंड, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, युगांडा, कीनिया, फिजी आदि देशों के हिंदुस्तानियों में खान-पान, रहन-सहन और भाषा संस्कृति में हिंदुस्तानी अपनी पहचान के कारण दिनोदिन हिंदी संस्कृति का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

सूरीनाम सहित भारत वंशी बहुल अन्य देशों की आबादी में हिंदुस्तानी समाज की बहुलता है फिर मिलने पर आपस में हिंदुस्तानी बोली में ही निसंकोच संवाद करते हैं। उन्हें इस बात की कतई परवाह नहीं रहती है कि इनके आसपास या अगल-बगल में किस भाषा और देश का व्यक्ति खड़ा है। इस तरह से विदेश में भी भाषा और संस्कृति के स्तर पर पूर्णतः स्वाधीन हैं, जबकि भारत देश के मध्यवर्गीय परिवारों के बच्चे तक हिंदी नहीं बोलते हैं कि कहीं उन्हें पिछड़ा हुआ यागंवारूना समझा जाए, जबकि विदेशों में पीढ़ियों से रह रहा भारत वंशी यह बखूबी जानता है कि भाषा और

संस्कृति की पराधीनता से अधिक पीड़ादायी जीवन में कुछ नहीं है, क्योंकि इसमें व्यक्ति के मन-मानस की पराधीनता सन्निहित रहती है, सिर्फ संवेदनशील होकर महसूस करने की आवश्यकता है।

भारत से बाहर, विश्व के अन्य देशों के भारतवंशियों और भारतीयों के जीवन से भोलेशंकर बाबा से जुड़े प्रभु का विशेष माहात्म्य है। हर माह की शिवरात्रि से लेकर महाशिव रात्रि तक का इसमें प्राधान्य रहता है, जिसके अंतर्गत भारतवर्ष में शिवभक्ति की उपासना के विधानों में काँवरिया सावन महामकर संक्रांति का नहान और महाशिव रात्रि के अन्य आयोजनों का प्रावधान शामिल रहता है। विश्व के अन्य देशों में नदी तट और समुद्र तटों को बाहर के श्रद्धालुओं ने गंगा सागर जैसे समानार्थक पर्यायवाची नाम दे रखे हैं। जिससे गंगा माँ के प्रति आस्था और शिव भगवान् के प्रति विश्वास भाव उजागर होता है, जिसका महत्त्व भारत के विभिन्न प्रदेशों और नगरों में आयोजित होनेवाले कुंभ तथा महाकुंभ से किसी मायने में कम नहीं है। अगर कम है तो उनके पास में हजारों वर्ष प्राचीन सांस्कृतिक, पौराणिक और ऐतिहासिक विरासत नहीं है, जो भारत भूमि की धरोहर है—इसलिए भारत देश पावन है, महान् है।



मेरा जन्म तो कानपुर के एक गाँव में हुआ, लेकिन मेरे जीवन का जन्म काशी में हुआ, इसलिए मैं भौतिक और आध्यात्मिक रूप से अपना जन्म शिवनगरी काशी को ही मानती हूँ। दशास्वमेध घाट का वैभव मैंने भारतवंशी बहुल देशों के कई नगरों की नदियों के तट पर देखा है, नाम कोई भी हो, लेकिन आस्था की भीड़ वैसे ही उमड़ती हुई देखी है कि मैं काशी में हूँ, यह तो गंगा-यमुना के संगम प्रयाग या हरिद्वार या उज्जैन में हूँ, यह शिव आस्था के प्रताप का ही सफल है, विश्व की अन्य नदियों के तटवर्ती नगरों में हिंदुस्तानियों (भारतवंशियों) के प्रभुत्व से गाँडेय का वर्चस्व दिखाई देता है, भारत से बाहर कुंभ और नहान की तिथियों में तटवर्ती नगरों में हिंदुस्तानी जन उमड़ पड़ते हैं। नदी का नाम कोई भी हो, लेकिन वह श्रद्धालुओं के लिए गंगा धारा होती है। जिसमें उनकी आस्था का विलय हो जाता है। गंगा जल स्नानार्थियों की चेतना में आत्मविश्वास का अभिषेक करती है और उनकी सांसारिक देवी रक्षा कवच बन जाती है और इसी रक्षा कवच के सहारे वह सारे संघर्ष से जूझती रहती है, संकटों से निपटती है, घर घुटता है, रिश्ते टूटते हैं, लेकिन जीवन के प्रति विश्वास का बीज मंत्र नहीं टूटता है।

नेपाल, श्रीलंका, मॉरीशस जैसे देशों में भारतीय संस्कृति की परछाई का होना सहज और स्वभाविक है, नेपाल और श्रीलंका में शिव आराधना का पौराणिक-सांस्कृतिक इतिहास भी है, लेकिन मॉरीशस देश तो हिंद महासागर में ही शिवलिंग सरीखा है। हिंद महासागर की सुनील लहरी और अहर्निश शिवलिंग सरीखे मॉरीशस के महास्नान के कर्मकांड में सक्रिय रहती हैं। लहरों का नर्तन और वह हर क्षण शिवमंत्रोच्चार में रत रहता है। ऐसे मॉरीशस देश में चतुर्दिक् शिवालय बने हुए हैं, हर कुछ दूरी पर मंदिर है। हर घर में तुलसी का चौरा है, पूजन कालघु मंदिर और जल अर्पित करने के लिए शिवलिंग और हवन यज्ञ की प्रतिगड़ी हुई झाड़ियाँ हैं। समुद्र तट के घेरे की प्राय धरती के तट पर गंगा नहान के तट हैं और गंगासागर उनका नाम है।

महाशिवरात्रि मॉरीशस के हिंदुस्तानियों का महापर्व है, द्वीप के दक्षिण-पश्चिमी हिस्से में झील के एक हिस्से में शिवमंदिर की स्थापना है, राजधानी से वहाँ तक पहुँचने के मार्ग पर तांबई वर्ण की विशाल शिव प्रतिमा है, जो त्रिशूल लिये हुए भक्तों को आशीषी रहती है। मेरा दिसंबर माह में भूतपूर्व मंत्री श्री जगदीश गोवर्धनजी के साथ जाना हुआ था। जो पूरे दिन वहाँ के शिवरात्रि महात्म्य को बताते रहे थे—इस वर्ष डॉक्टर संयुक्ताजी से महाशिवरात्रि से एक सप्ताह पहले बात हुई, उन्होंने बताया कि पूरा देश इस पर्व की तैयारी में लगा हुआ है। इस महोत्सव में सक्रियता के आह्लाद से बीच-बीच में उनकी वाणी ठहर जाती थी। ऐसा ही उज्जैन के महाकुंभ को सिंहस्थ की तैयारी में लगे आत्मारामजी की हृदय गूँज में अनुभव करती रही हूँ। इससे पूर्व सितंबर माह में भगवानजी के साथ मुख्यमंत्री श्रीशिवराज सिंह चौहानजी से शिवमंदिर हिंदू यूनिवर्स मंदिर के संदर्भ में उनके आवास पर मुलाकात की तो उन्होंने सिंहस्थ में उपस्थित होने का आत्मीय प्रस्ताव रखा था।

मॉरीशस की महाशिवरात्रि के लिए कई माह पूर्व ही तैयारी शुरू हो जाती है, सरकार के कई विभाग और संस्थाओं की समितियाँ आयोजन को भव्य सार्थक और सुविधाजनक बनाने में प्राणपण से जुट जाती हैं। काँवरों की तैयारी शुरू हो जाती है, योग, ध्यान, भजन, कीर्तन के रास्ते भर में पंडाल लग जाते हैं। रोशनी की चकाचौंध में भजनों का संगीत अपने तरह का अद्भुत आध्यात्मिक वातावरण रचता है। भक्तों तक प्रसाद भोग-महाभोग वितरित होता रहता है, वैष्णो देवी के दर्शनार्थ जैसी भीड़ उमड़ती रहती है, भक्तों का ताँता लगा रहता है। प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन जैसे शहरों में महाकुंभ का जो रुतबा रहता है, उसका रुआब महाशिवरात्रि के दिन मॉरीशस में दिखाई देता है।

इसी तरह पृथ्वी के पश्चिमी गोलाब्ध लातिन अमेरिका के उत्तरी शीर्ष पर बसे (डच, गयाना) सूरीनाम ब्रिटिश गयाना, फ्रेंच गयाना देशों और कैरीबियाई देश

द्वीप त्रिनिदाद, कुरोसावा, सेंटलूसिया के हिंदू भारतवंशी समुदायों के बीच मंदिरों का साम्राज्य-सा दिखता है। जिससे उनके धर्म की झंडियाँ फहराती हुई आशीषती रहती हैं। विदेश की धरती भी भारत भूमि सरीखी आत्मीय लगती है। यहाँ के मंदिरों में भी धार्मिक प्रभुका भव्य आयोजन होता है। मंत्रोच्चार, भजन और कीर्तन की गूँज उठती हैं, घंटे और शंखों से धर्म के जयघोष का निनाद उठता है—किंवदियाँ पवित्रता के झंकार से आह्लादित होती हैं। इन देशों में भी आम्रमंजरियों, केलों, तुलसी और नीम के पत्तों का धार्मिक अनुष्ठानों में उपयोग होता है। सूरीनाम के हर इलाकों में सनातनी और आर्य समाजियों के मंदिर हैं, पारामारिबो शहर में दोनों ही शाखाओं के प्रधान मंदिर आमने-सामने ही हैं। प्रति सप्ताह मंदिर लगते हैं, अर्थात् विधिवत पूजन, भजन-कीर्तन होता है, उसमें क्षेत्र के सभी नागरिक शामिल होते हैं, पूरा गाँव मंदिर में परिणत सा दिखता है, शेष समय में इन मंदिरों में नृत्य, संगीत, योग और हिंदी भाषा की कक्षाएँ होती हैं, जिसमें न तो विद्यार्थी फीस भरता है और न ही शिक्षक

किसी तरह का वेतन लेते हैं। भारतीय संस्कृति की आस्था के तहत सभी उपासना में लगे रहते हैं, जो किसी कुंभ समागम से कम नहीं होता है।
 सूरीनाम देश की संस्कृति में अनेक देशों की संस्कृतियों का सम्मिश्रण है, वहाँ के हिंदुस्तानियों की अपनी बोली सरनामी भाषा है—भोजपुरी, अवधी, मैथिली और वहाँ 50 वर्षों से साथ रह रहे नीग्रो,

चाइनीस, जापानीस और डच भाषा के अनेक शब्द, जो सरनामी भाषा का हिस्सा हो चुके हैं। कुछ वैसे ही जैसे प्रेमचंद के समय में उर्दू मिश्रित जवान (हिंदुस्तानी) हिंदुस्तान की भाषा थी और जिसे गांधीजी ने पूरे देश की पहचान जुबान और भाषा मानी।

डच कॉलोनाइजर द्वारा सूरीनाम देश में अपने जीवन को धान के बीजण के साथ रोपित हो जाने के बाद हिंदुस्तानी समाज ने अपने खेतिहर जीवन शैली के भी बगैर माथे पर बल दिए हुए ही यह भाँप लिया था कि 'पराधीन सपनेहुँ सुख नहीं' उनकी आत्मा की अंतश्चेतना उनके चित्त और चेतना को मातृभूमि हिंदुस्तान छोड़ने के साथ ही सजग और सतर्क कर दिया था। इस तरह मजदूरी और जीवन-यापन तो उनकी धरती पर करते थे, लेकिन फल, फसल, भाषा और संस्कृति की उपासना में अपनी मातृभूमि को शामिल रखते थे। जिससे उनका खान-पान, रहन-सहन, लोक जीवन, भाषा और लोक संस्कृति प्रदूषित और संक्रमित होने से बच सकी। अपनी हिंदुस्तानी

(कुली कॉलोनी) कॉलोनियों की झोपड़ियों के भीतर किसी विदेशी संस्कृति को नहीं घुसने दिया, जिससे इनके तन-मन और घर के भीतर उनकी अपनी हिंदुस्तानी भाषा और संस्कृति बनी रह सकी। जिस कारण यह अपनी रातों में नींद, चैन और स्वाधीन निजता के सपने को संरक्षित कर सके, जो आज भी इनके जीवन में सुरक्षित है।

भारतवंशी किसानों की मजदूरी में पिसती हिंदुस्तानी जनता यह बखूबी समझ चुकी थी कि विदेश में जीने की विवशता की पराधीनता के बावजूद अपने अंतश्चेतना में भाषा-संस्कृति की लौ जलाए रखेंगे तो स्वाधीनता का प्रकाश सहज ही अनुभव होता रहेगा। इसी एक भावबोध के साथ उन्होंने अपने जीवन में अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, लोकभाषा, लोकाचार, लोकगीत, लोककला, लोक-परंपराओं के साथ अपने धर्म-संस्कृति को साधना और उसी में अपने जीवन की साधना की देह उनकी भले ही मजदूरी के मूल्यों पर पराधीन रही, पर अपनी आत्मा चित्त और चेतना की ताकत को पराधीन नहीं होने दिया।

भारतवंशी किसानों की मजदूरी में पिसती हिंदुस्तानी जनता यह बखूबी समझ चुकी थी कि विदेश में जीने की विवशता की पराधीनता के बावजूद अपने अंतश्चेतना में भाषा-संस्कृति की लौ जलाए रखेंगे तो स्वाधीनता का प्रकाश सहज ही अनुभव होता रहेगा। इसी एक भावबोध के साथ उन्होंने अपने जीवन में अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, लोकभाषा, लोकाचार, लोकगीत, लोककला, लोक-परंपराओं के साथ अपने धर्म-संस्कृति को साधना और उसी में अपने जीवन की साधना की देह उनकी भले ही मजदूरी के मूल्यों पर पराधीन रही, पर अपनी आत्मा चित्त और चेतना की ताकत को पराधीन नहीं होने दिया। इस तरह अपनी सचेत संकल्प शांति के बल पर अपनी हिंदुस्तानी बनाम भारतीय संस्कृति की दुर्लभ पहचान बना सके हैं, जिसकी अस्तित्व और अस्मिता का संकट भारत देश तक में गहराया हुआ है।

भारत के पुरखों की दृढ़ संकल्प शक्ति और हठधर्मिता का ही परिणाम था कि उन्हें उनकी अलग से कॉलोनियाँ बनानी पड़ी थीं, जहाँ कुली स्कूल खोलने पड़े थे। इसके बाद से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति के लिए चार-पाँच पीढ़ियों से स्वैच्छिक संस्था भाषा, कला-संगीत, नृत्य के उपासक कार्यकर्ताओं के द्वारा स्वैच्छिक रूप से साप्ताहिक स्कूल चल रहे हैं। जिसकी कक्षाएँ वहाँ के डेढ़ सौ से अधिक मंदिरों (सनातनी और आर्यसमाजी) और 35 से अधिक मस्जिदों में पूरे उत्सव समारोह के साथ आज भी चल रहे हैं।

सूरीनाम और नीदरलैंड देश के भारतवंशियों द्वारा अपने पुरखों द्वारा अर्जित हिंदुस्तानी बोली बनाम सरनामी भाषा के रूप में सभी अवसरों पर सक्रिय हैं। यह इन देशों के जनजीवन की गतिशील संजीवनी भाषा है। सूरीनाम देश उनकी मातृभूमि है, जिसे वे 'सरनाम देश' के नाम से पुकारते हैं और सरनामी भाषा उनके अपने मन के स्वदेश की प्राणदायी भाषा है। सरनामी बनाम हिंदुस्तानी उनके मात्र हृदय की मातृभाषा है—

जिसमें उन्हें अपने चित्त के पराधीन होने की अनुभूति नहीं होती है।

संचार माध्यमों के समय में कंप्यूटर नेटवर्किंग के प्रकोपकाल में यूँ तो हिंदी वर्तनी भी रोमन लिपि की काया में ढल रही है, लेकिन हिंदी साहित्य की सभी विधाएँ अपना मौलिक विकास देवनागरी लिपि में कर रही हैं। देवनागरी लिपि में हिंदी साहित्य के लाखों प्रकाशक हैं। डिजिटल दुनिया में हिंदी लिपि के साहित्य का प्रभुत्व और वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।

उच्चारण किसी भी भाषा और संस्कृति की वाणी का प्राणतत्व है—तो लिपि की अपनी निजता ही किसी भी भाषा की देह है, 'देह बिनु ना होई न प्रीत देह' के अस्तित्व के बिना किसी भी भाषा की संस्कृति से प्रीत असंभव है, बिना दैहिक वजूद के भाषा की स्थायी पहचान और भविष्य संभव नहीं है। बिना अस्तित्व के अस्मिता कैसे अपना आकार ले सकती है? ब्रिटिश सहित यूरोप के अन्य देशों की भाषाओं की निजी लिपि रोमन है। उन्हें हिंदी या चाइनीज लिपि में वैसे ही नहीं प्रकट किया जा सकता। जिस तरह से उनका अपना वजूद उनकी अपनी भाषा में साँस लेकर धड़क रहा है, वैसे ही हिंदी भाषा को रोमन लिपि में पूर्णता और शुद्धता जैसे ही नहीं लिखा जा सकता है।

भाषा ही संस्कृति की जननी और धारिका है। वह ही संस्कृति का पोषण कर सकती हैं और सभ्यताओं का श्रृंगार करती हैं, पर निर्भर लिपि की स्थिति में भाषा का अस्तित्व और अस्मिता हमेशा संकट में रहेगी। किसी भी भाषा का लिपि के स्तर पर दूसरी ओर सरकरना उस भाषा की पराधीनता और दासता का घोटक है। जिससे विश्व के भारतवंशी की बहुल देशों की हिंदी भाषा परिवार की बोलियों और भाषा को बचाना अनिवार्य है, क्योंकि लिपिविहीन भाषा की पहचान हमेशा संकट में रहेगी।

लिपि के सिर पर निर्भर भाषाओं के अस्तित्व को देखकर ऐसा लगता है, जैसे कि व्याकुल होकर गुहार

लगा रही है, रह-रहकर निवेदन कर रही है—मेरी भाषा की देह की रक्षा करो। यदि उसको दूसरी भाषा की लिपि प्रदान की जाएगी तो कुछ समय बाद में खुद ही वजूदहीन होकर मिट जाएगी, बताएँ जैसे से कैसे कह रही हूँ यदि तुम्हारी वाणी सौंधी भारतीयता की है और तुम्हारी देह यूरोपीय साँचे में ढाल दी जाए तो तुम्हें कैसा लगेगा? वैसी ही दारुण दुर्दशा की अनुभूति होती है।

एक नीग्रो व्यक्ति द्वारा हिंदुस्तानी बोली सुनते हुए जैसे अटपटा लगता है, वैसे ही हिंदी भाषा को रोमन देह में ढले हुए देखकर आँखों की आत्मा को विचित्र और असहज लगता है। इसके साथ-साथ देवनागरी लिपि के ज्ञान के अभाव में समकालीन हिंदी साहित्य और चाल-चलन से अपरिचित रह जाते हैं। लिपि ज्ञान को अभाव और पहचान के कारण हिंदी भाषा परिवार के सदस्य होकर भी हिंदी भाषा साहित्य परिवार से अनचाहे ही अलग-थलग हो जाते हैं और भाई हिंदीभाषा दूसरे देश की द्वीप की भाषा बनकर रह जाती है। भारत देश की हिंदुस्तानी परिवार के सदस्य बनने से रह जाती है और अकेली होती जाती है। अपने समय कि समकालीन साहित्यकारों लिखने से मिलता नहीं गाँठ पाती है।

सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो के बैखनार की रास्ते के अंत में समुद्र तट पर शिवलिंग की स्थापना हुई है। जहाँ मंदिर निर्मित है, अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों के कारण यह ठंडी देवालय सरीखा महिमामंडित दिखाई देता है। सूरीनाम में महाशिवरात्रि के दिन पूरे देश के समुद्र तटवर्ती इलाकों और नदियों के तटों में भारतवर्ष के नहान जैसा वातावरण बना रहता है। सभी नदियाँ उस दिन गंगा का रूप धारण कर लेती हैं। देर रात तक पूजा-पाठ नहान की सक्रियता रहती है। भारतीय पुरखों के द्वारा बनाए गए 1880 के गोवर्धन घाट पर अपनी प्राचीनता के कारण विशेष आकर्षण रहता है। किसान-मजदूरों की खून की कमाई से बना और बचा हुआ वही प्राचीनतम मंदिर है, बैरख नाइजी के शिवालय पर शिवरात्रि के दिन कौम्बे मार्केट

और अन्य व्यवसायिक तथा धार्मिक संगठनों द्वारा प्रसाद और भोज का आयोजन किया जाता है। भारतीय दूतावास के अधिकारी और राजदूत, जो वर्ष भर अन्य उत्सवों में मंदिरों और मस्जिदों में उपस्थित रहते हैं, महाशिवरात्रि के दिन इस शिवालय में उपस्थित होते हैं। उनका विशेष स्वागत होता है। रेडियो द्वारा कई सप्ताह पहले से ही आयोजन की प्रचार-प्रसार की गूँज होने लगती है। दूरदर्शन द्वारा इन कार्यक्रमों का प्रसारण होता है। गयाना, त्रिनिदाद में भी महाशिवरात्रि का महापर्व महाकुंभ सरीखा वैभवशाली दिखाई देता है। भारत से 14 सौ किलोमीटर दूर इन देशों में महाशिवरात्रि का पर्व ही महाकुंभ है। वैसी आस्था और वैसे ही विश्वास की गरिमा से भरपूर इस दिन भारतीय और भारतीय स्वयं को ईश्वरीय रक्षा कवच से पूर्ण अनुभव करते हैं।

भारत के बाहर विशेषकर भारतवंशी बहुल देशों के समुद्र तटों (हिंद महासागर अटलांटिक महासागर प्रशांत महासागर और कैरेबियाई सागर) के स्थल महाशिवरात्रि के दिन गंगासागर नामधारण किए हुए गंगासागर की महिमा में बदल जाते हैं और शिवशंकर का महापर्व महाकुंभ में बदल जाता है। मानव समुदाय आस्था के विलक्षण स्रोत के रूप में तब्दील हो जाता है, जहाँ से शक्ति का विश्वास रमता है।

भारतीय संस्कृति की सामाजिकता के बीच सूत्र में मानव कल्याण का भाव अंतर्निहित है। भारतीय मानस की संस्कृति के राग के मूल में आध्यात्मिकता का ही विलक्षण आलाप है। पूरब से पश्चिम तक, फिजी से लेकर सूरीनाम तक के देशों में भारतवंशियों ने विश्व में मंगलकारी धर्म और भारतीय संस्कृति का अद्भुत वितान तान रखा है। उसी के तले नवरात्रि, होली, दीपावली, हनुमान जयंती, गणेश चतुर्थी, महाशिवरात्रि, पूर्णिमा आदि पर्वों का महाकुंभ सरीखा आयोजन साधते हैं।

□

गिरमिटिया देशों में हिंदी भाषा और साहित्य

—डॉ. श्रुति वित्तेश

‘गिरमिट’ से ‘गिरमिटिया’ शब्द निर्मित हुआ है और गिरमिट का अर्थ है एग्रीमेंट, अनुबंध या शर्तों के आधार पर किया गया समझौता। गिरमिटिया देश अर्थात् वे देश जहाँ अनुबंध या शर्तों के आधार पर ले जाए गए लोग बसते हैं। सन् 1833 में ब्रिटिश संसद् ने दास प्रथा-उन्मूलन विधेयक पारित किया था, जिससे ब्रिटिश उपनिवेश—मॉरीशस, फीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद, गयाना जैसे देशों के दास, दासत्व से मुक्त हो गए। इस स्थिति में रिक्रूटर (जो भारतीय भाषाओं में ‘आरकाटी’ कहे जाते थे) अंग्रेजों ने भारतीय मजदूरों को तरह-तरह के प्रलोभन देकर धोखे और छल से इन ब्रिटिश उपनिवेश देशों में भेजना शुरू किया। जगदीश्वर चतुर्वेदी ने अपने लेख ‘गिरमिट प्रथा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य’ में बड़े विस्तार से इन भारतीय गिरमिट मजदूरों के फीजी भेजे जाने के कारणों और उनके शोषण को व्यक्त किया है। (गगनांचल, सं. कन्हैया लाल नंदन, रजत जयंती विशेषांक, खंड-2, 1982, पृ. 109-121) मॉरीशस के राष्ट्रकवि कहे जानेवाले ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’ की कविता ‘परवासी की राम कहानी’ भी इन शर्तबंदी मजदूरों के दर्द को उजागर करती है—

‘सुनो-सुनो ए भारत वालों! परवासी की राम कहानी।
जो परवासी आँखों से नित आहों का बरसाता पानी।’

अरकाङ्गी ने कौड़ी में ही बेच दिया भाई को।

शर्म, लाज सब छोड़ गली में, लूट लिया माई को।

ग्राम निवासी भोले-भाले, पड़े नीच के पाले।
दानों के मुहताज बन गए, अन्न खिलानेवाले।
मालिक बनकर पूँजीवाले, करते हैं मनमानी।’

—ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’

(ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’ काव्य रचनावली, सं.
कमल किशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, 2003, पृ. 61)

मूलतः बिहार और उत्तर प्रदेश से गए ये मजदूर अपने साथ रामायण, हनुमान चालीसा, सुंदरकांड, आल्हा की प्रतियाँ साथ ले गए थे। प्रवास इनकी विवशता थी और विवशता कभी सुख नहीं देती। अतः ये अपनी मूल जड़ों से, संस्कृति और संस्कारों से आत्मिक रूप से जुड़े रहे। उनकी भीषण यातना, जिल्लत और भूख को सहन करने में रामचरितमानस की पंक्तियों ने मरहम का काम किया। इसीलिए प्रायः सभी गिरमिटिया देश के रचनाकारों ने मानस और तुलसी को बार-बार याद किया है—

“रामायण क्या है, उसका उत्तर देना कठिन है
रामायण में क्या नहीं है, ये बताना और कठिन काम है
जहाँ रामायण है, वहाँ तो स्वयं प्रभु रामजी हैं
और जहाँ राम हैं, वहाँ तो सारा विश्व विराजमान है
ये बताती है रामायण, ये बताती है रामायण”

—सरनामी कवि सुरजन परोही

(कविता सूरीनाम, सं. पुष्पिता,
राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, पृ. 215)

धीरे-धीरे इन प्रवासी भारतीयों को एहसास हो गया था कि अपनी पीड़ा को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि वे सत्यनारायण भगवान् की कथा सुनें, विभिन्न पर्व-त्योहार मनाएँ और चोरी-चोरी ही सही, अपने बच्चों को रामायण, महाभारत की कथा सुनाकर उनमें निर्भीकता लाएँ। उस समय खुलेआम हिंदी या कोई दूसरी भाषा बोलने पर पाबंदी थी कि कहीं भारतीय

मजदूर, पूँजीपतियों या खेत मालिकों के खिलाफ कोई षड्यंत्र न करें। लेकिन इन भारतीय मजदूरों पर जितनी पाबंदी लगाई गई, उतना ही ये अपनी दो भाषाएँ बोलते रहे—हिंदी और भोजपुरी। इन पर जब कोड़े और बाँसों के प्रहार होते तो इनकी आहें भी भोजपुरी और हिंदी में होती थीं। यातना शिविरों में ये एक-दूसरे को अपनी-अपनी राम कहानियाँ हिंदी और भोजपुरी में ही सुनाया करते, चाहे वे भारत के किसी भी प्रांत के रहे हों। उन दिनों हिंदी मेल-मिलाप की भाषा थी। हिंदी में एक-दूसरे के करीब पहुँचने और एक-दूसरे से जुड़कर एक शक्ति बनने की अभिव्यक्ति थी।

—अभिमन्यु अनंत

(अभिमन्यु अनंत के व्याख्यान, के.के. बिड़ला
फाउंडेशन, 1995, पृ. 18)

इन देशों में मॉरीशस एक ऐसा देश है, जो भारत के सबसे निकट है और जहाँ भारतीयों का आना-जाना लगा रहता था। 1901 में जब महात्मा गांधी मॉरीशस पधारे तो उन्होंने भारतीय मजदूरों को शिक्षा तथा राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रेरित किया। 1907 में मणिलाल डॉक्टर मॉरीशस

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा से फीजी से वापस आए तोताराम सनाढ्य ने पुस्तक लिखी 'फीजी में मेरे 21 वर्ष', जो 1914 में छपी। इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् भारतवासियों को पहली बार फीजी गए भारतीय मजदूरों की दुर्दशा के विषय में पता चला। भारतीय नेताओं विशेषकर महात्मा गांधी और डॉ. मणिलाल के अनथक प्रयास से 20 मार्च, 1916 को बड़े संघर्ष के बाद गिरमिट प्रथा समाप्त कर दी गई।

पहुँचे, उन्होंने सायंकालीन पाठशालाओं का निर्माण किया, जिसे 'बैठका' कहा जाता था। बैठका में बच्चों को हिंदी का ज्ञान दिया जाता था और शाम को रामायण, आल्हा आदि का गान होता था। मणिलाल डॉक्टर ने ही समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू किया। मॉरीशस में हिंदी के विकास में 'हिंदुस्तानी' पत्र का उल्लेखनीय योगदान है। उन्ही दिनों 'मॉरीशस आर्य

पत्रिका', 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स' और 'मॉरीशस मित्र' पत्र भी प्रकाशित होते थे। सत्यार्थ प्रकाश, आर्य समाज, स्वामी मंगलानंद, पं. रामअवध शर्मा, बेनिमाधो सुतीराम, सनातन धर्म सभा, आर्य परोपकारिणी सभा आदि ने मॉरीशस में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन तथा साहित्य रचना की नींव रखी।

मॉरीशस की हिंदी कविता का इतिहास 'होली' कविता से आरंभ होता है, जिसे किसी गणेशी उपनामधारी कवि ने 2 मार्च, 1913 को 'हिंदुस्तानी' में प्रकाशित कराया था—

आर्यों ने ऐसी होली मनाई
 सत्य प्रचार सुधार जगत को,
 ऐसी फाग मनाई।
 खेलहूँ-खेलहूँ पर हित कारण,
 देह अविधा नशाई।

गणेशी बलि बलि जाइ।।
 क्या आनंद देत है, वाह रे होली।'

—गणेशी

(मॉरीशस का आदि काव्य कानन,
प्रहलाद रामशरण, आत्माराम एंड संस, 1997, पृ. 37)



‘मॉरीशस का आदि काव्य कानन’ पुस्तक में 1913 से 1930 के बीच प्रकाशित 110 कविताएँ संकलित हैं, जो कर्ण कवि, गणपतिदास आदि 30 नामधारी और 25 अनाम कवियों द्वारा लिखी गई हैं। प्रहलाद रामशरण द्वारा ही संकलित दूसरी पुस्तक ‘मॉरीशस के मध्यकालीन काव्य-प्रसून’ में 172 हिंदी कविताएँ संकलित हैं। इन कवियों में राष्ट्रकवि कहे जानेवाले ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’, पं. हरिप्रसाद रिसाल मिश्र, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी, पं. लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, विष्णुदत्त मधु ‘चंद्र’, जयरुद दोसिया, हरिनारायण सीता, पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र और पं. रामरतन रिसाल मिश्र प्रमुख हैं। मानव मूल्यों एवं नैतिक विचारों पर जोर देना, प्रवासियों की व्यथा-कथा का चित्रण, समाज सुधार, भाषा, धर्म एवं संस्कृति प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति, पराधीनता के दुःख तथा स्वाधीनता की माँग आदि इस काल की कविताओं की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

‘सुनो सुनो हे हिंदी-प्रेमी!

हिंदी की यह अमर कहानी।

हिंदी सरल, सलोनी सुंदर, है देवों की वाणी।
दादा, बाप हमारे पूर्वज जब मॉरीस में आए,
अपने साथ धरम की पोथी वेद-उपनिषद् लाए,
गीता, रामायण, पुराण के कुछ पाठ पढ़ाए,
घर-घर में थे राम-कृष्ण के सुंदर गीत सुनाए,
हिंदी ही, उनकी भाषा थी सकल लोक-कल्याणी।’

—ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’

(ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’ काव्य रचनावली, सं.
कमल किशोर गोयनका, नटराज प्रकाशन, 2003, पृ. 70)

12 मार्च, 1968 को मॉरीशस की स्वतंत्रता के साथ मॉरीशस की हिंदी कविता के आधुनिक काल का भी आरंभ होता है। ब्रजेंद्र कुमार भगत ‘मधुकर’, मुनीश्वरलाल चिंतामणि, सोमदत्त बखोरी, हरिनारायण सीता के साथ अभिमन्यु अनंत, पूजानंद नेमा, इंद्रदेव भोला, वेणीमाधव रामखेलावन, मोहनलाल हरदयाल,

सुमति बुधन, राज हिरामन, हेमराज सुंदर, महेश रामजियावन, चंपावती बुम्मा, राजरानी गोबिन और अनीता ओज आदि लगभग 200 से अधिक कवियों-कवयित्रियों ने विविध विषयों पर कविताएँ लिखकर मॉरीशस की हिंदी कविता को नया आयाम दिया। इनमें अभिमन्यु अनंत का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने मॉरीशस की हिंदी कविता को आधुनिक रूप दिया। ‘अनंत में एक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक तथा भाषिक स्वाभिमान है, जो उसे विश्व मानव की मुक्ति एवं नए सृजन का स्वप्न देता है। अभिमन्यु इसी कारण हर विध्वंस और तूफान के बाद उसी प्रकार नव-निर्माण में प्रवृत्त होते हैं, जैसे कवि के आँगन में आम के पेड़ पर हर तूफान के बाद चिड़िया अपना नया घोंसला बनाती है।

मॉरीशस के हिंदी साहित्य में गद्य की विविध विधाओं, जैसे—उपन्यास, कहानी, नाटक, यात्रा-वृत्तांत, लघुकथा, संस्मरण, निबंध आदि का पर्याप्त विकास दिखता है।

मॉरीशस में मौलिक हिंदी कहानियों का उद्भव सूर्यप्रसाद मंगर की कहानी ‘विनाश’ (1934) से माना जाता है, जो ‘सनातन धर्मांक’ में छपी थी। इस समय ‘सनातन धर्मांक’ (1933-42) के अतिरिक्त ‘मॉरीशस आर्य पत्रिका’ (1911-13), ‘मॉरीशस मित्र’ (1924-32), ‘आर्य पत्रिका’ (1924-40) ‘जागृति’ (1939-45) तथा ‘दुर्गा’ हस्तलिखित पत्रिका (1935-37) जैसी पत्रिकाओं के उदय से कहानी विधा को प्रश्रय मिला।

मॉरीशस के हिंदी साहित्य में रंगमंचीय नाटक, रेडियो नाटक, एकांकी, यात्रा-वृत्तांत, लघुकथा, संस्मरण, निबंध, आलोचना, शोध ग्रंथ, बाल साहित्य, पत्र, अनुवाद आदि भी प्राप्त होते हैं। वस्तुतः मॉरीशस का हिंदी साहित्य प्रचुर है और हिंदी जगत् संपन्न, इसीलिए उसे लघु भारत की संज्ञा दी जाती है।

गिरमिटिया देशों में दूसरा महत्वपूर्ण देश है फीजी। 1879 से 1916 तक लगभग 60,000 से अधिक प्रवासी भारतीय फीजी पहुँचे, जो अपने साथ मानस,

सत्यनारायण की कथा और प्रेमसागर जैसे ग्रंथ ले गए थे। इनके साथ भी वैसा ही अमानवीय व्यवहार हुआ, जैसा मॉरीशस गए भारतीय मजदूरों के साथ हुआ था। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा से फीजी से वापस आए तोताराम सनाढ्य ने पुस्तक लिखी 'फीजी में मेरे 21 वर्ष', जो 1914 में छपी। इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् भारतवासियों को पहली बार फीजी गए भारतीय मजदूरों की दुर्दशा के विषय में पता चला। भारतीय नेताओं विशेषकर महात्मा गांधी और डॉ. मणिलाल के अनथक प्रयास से 20 मार्च, 1916 को बड़े संघर्ष के बाद गिरमिट प्रथा समाप्त कर दी गई। उस समय लगभग 20,000 लोग फीजी से वापस भारत आ गए, शेष वहीं रह गए। इसीलिए इस समय 'फीजी निवासियों में लगभग आधे मूल फीजियन न होकर भारतीय मूल के बसे हुए लोग हैं।

फीजी के राष्ट्र-कवि कहे जानेवाले पं. कमला प्रसाद मिश्र फीजी में भारतीय संस्कृति के संदर्भ में कहते हैं—

'कोई रामायण बांच रहा
 कोई लेकर सत्यनारायण आया
 खूब किया उसका सम्मान
 कोई अनजान जो आँगन आया।'

— पं. कमला प्रसाद मिश्र

(फीजी का सृजनात्मक साहित्य, विमलेश कांति वर्मा,
 साहित्य अकादमी, 2012, पृ. 85)

तीसरा प्रमुख गिरमिटिया देश है—सूरीनाम। 'जैसे-जैसे भारत से और लोग आते रहे, सूरीनाम में हिंदी की एक नई उपभाषा का विकास होने लगा, जिसको आज हम 'सरनामी' के नाम से जानते हैं। इस प्रकार 'सरनामी' अवधी, भोजपुरी, हिंदी, उर्दू, ब्रजभाषा आदि से मिलकर बनी है और उस पर डच तथा अंग्रेजी का प्रभाव है। सरनामी की आत्मा विशुद्ध भारतीय है और उसके शरीर का विकास सूरीनाम की धरती पर हुआ है।'

(प्रकाश चंद्र दीक्षित, स्मारिका, पाँचवाँ विश्व हिंदी
 सम्मलेन, 1996, पृ. 110)

सूरीनाम का आरंभिक हिंदी साहित्य मौखिक था, जिसे दिन भर के श्रांत-क्लांत श्रमिक दोहा, चौपाई, गीत, भजन के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे। सूरीनाम में हिंदी के प्रथम कवि के रूप में मुंशी रहमान खान का नाम लिया जाता है, यद्यपि सूरीनाम के ही प्रसिद्ध हिंदी कवि पं. हरिदेव सहतू ने अपनी पुस्तक सूरीनाम में 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' में इस आम धारणा को सर्वथा सत्य नहीं माना है। (प्रवासी जगत, सं. डॉ. गंगाधर वानोडे, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 2017, पृ. 64) फिर भी मुंशी रहमान खान के दोहे और कुंडलियाँ आज भी सूरीनाम में प्रसिद्ध हैं।

त्रिनिदाद एवं टोबेगो के सर्वाधिक लोकप्रिय और अंतरराष्ट्रीय ख्याति के रचनाकार प्रो. हरिशंकर आदेश ने वहाँ हिंदी की अलख जगा रखी है। प्रवासी भारतीय साहित्यकार के रूप में वे ऐसे प्रथम महाकवि भी हैं, जिन्होंने हिंदी को चार महाकाव्य समर्पित किए—'शकुंतला', 'महारानी दमयंती', 'निर्वाण और रघुवंश शिरोमणि पुरुषोत्तम राम'। उनके अतिरिक्त कमला रामलखन, पंडिता इंद्राणी रामप्रसाद, पं. रामप्रसाद परसराम, कलावती रामदास, जानकी बलदेव सिंह तथा सुमति करीम आदि त्रिनिदाद एवं टोबेगो में हिंदी का परचम फहरा रहे हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा का कथन उचित ही है—'इन्हीं हिंदी भाषी कुली-मजदूरों ने हिंदी को विश्वभाषा बनाया है।' विश्वभाषा के रूप में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है, साम्राज्यवादी प्रभुत्व के दिन गए। हर देश में जनता अपनी राजनीतिक स्वाधीनता के साथ आर्थिक पर-निर्भरता से मुक्त होने के लिए संघर्ष कर रही है। इस संघर्ष में विश्व की जनता के संपर्क की भाषा हिंदी है।'

□

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
 लखनऊ विश्वविद्यालय
 लखनऊ, (उ.प्र.)

गिरमिटिया हिंदीभाषा-व्याकरण और साहित्य का वैश्विक संदर्भ

—डॉ. पृथ्वीनाथ पांडेय

‘गिरमिटिया’ शब्द का ऐतिहासिक महत्व है। मूल शब्द ‘गिरमित’ है, जो अंग्रेजी-शब्द ‘एग्रीमेंट’ का अपभ्रंश है; कारण कि भारत के अशिक्षित, अविकसित लोग एग्रीमेंट का उच्चारण ‘गिरमित’/‘गिरमिण्ट’ करते थे, जो कालांतर में ‘गिरमित’ के रूप में स्थापित हो गया था। जो लोग ‘गिरमित’ कहते थे, उन्हें ‘गिरमिटिया’ नाम दे दिया गया था। इसके लिए हमें सत्रहवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के अध्याय के पन्ने पलटने पड़ेंगे।

मॉरीशस—जैसे ही ‘गिरमिटिया’ शब्द हमारे सामने आता है, वैसे ही सर्वप्रथम मॉरीशस देश का मानचित्र हमारी आँखों के सामने से गुजरने लगता है; कारण यह कि वहाँ बलिया, गाजीपुर, आरा, छपरा तथा बिहार के सर्वाधिक लोग मॉरीशस ही पहुँचाए गए थे। वहाँ उन्हें ‘कुली’ कहा जाता था।

1867 ईसवी में मॉरीशस में जब चुनाव हुआ था, तब उन्हीं गिरमिटिया भारतीयों का प्रभाव दिखा था। वहाँ की 70 सीटों में से 35 सीटें भारतीयों के पक्ष में गई थीं। भारतीय मूल के, छपरा-निवासी डॉ. शिवसागर रामगुलाम प्रधानमंत्री बने थे; फिर क्या था, वहाँ हिंदी-भाषा, विशेषतः भोजपुरी बोली का साम्राज्य स्थापित हो गया था। भारतीय पर्व, उत्सव इत्यादिक के

आयोजन होने लगे थे; हिंदीभाषा-भाषी संस्थान गठित हुए थे। शिक्षा-स्तर पर हिंदी को वरीयता दी जाने लगी; रेडियो, टी.वी., फिल्म, समाचार, पत्र-पत्रिका इत्यादि सशक्त जनसंचार-माध्यमों ने हिंदी को उत्तुंग शिखर पर समासीन कराने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया था।

निस्संदेह, मॉरीशस की मुख्य भाषा ‘क्रियोली’ है; फ्रेंच-भाषा का भी वहाँ प्रभाव है। यही कारण है कि क्रियोली पर भोजपुरी और फ्रेंच का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। अब आप उन शब्द-विन्यास को समझें, जिन्हें ‘संज्ञा’ के रूप में प्रयुक्त किया गया है—

वृहस्पतिवार को ‘बिफे’, उलटी को ‘ओकाई’, पेचिस को ‘पेटझारी’, दूध को ‘दू-दू’, किंवाड़ा को ‘कँवारी’, फैक्टरी को ‘फाक्टरी’ बैल को ‘बइल’ कहा जाता है।

अब आप उन शब्दों को समझिए, जो ‘भोजपुरी’ और ‘फ्रेंच’ को मिलाकर बनाए गए हैं—

मोमबती को ‘लाबूजी’, मटर को ‘चिढवा’, मिर्च को ‘चिम्पिया’, बीमार को ‘लामाद’ जाना जाता है।

यहाँ उन संज्ञा-शब्दों को समझिए, जो फ्रेंच की तुलना में भोजपुरी के अधिक समीप हैं—

पंडित को ‘पांडित’, समोसा को ‘सामोसा’, घूस

को 'गूस', मिठाई को 'मिताई', मचान को 'माचान' कहा जाता है।

अब सर्वनाम-शब्दों पर दृष्टि दौड़ाए—

उनसे को 'हम', 'हमनी', 'उनकरा', तू को 'तोहर'/'तोहार', वह को 'ऊ', उसे को 'ओकरा' कहा जाता है।

वहाँ क्रिया-शब्द को देखिए—

है को 'ह', रखेंगे को 'रखिहन', फैला को 'फैलल', पड़ा को 'पड़ल', लगा को 'लागल', मरा को 'मरल', समझा को 'समझल' कहा जाता है।

गिरमिटिया-इतिहास इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि लगभग एक शताब्दी तक फीजी ग्रेट ब्रिटेन का उपनिवेश था; परिणामतः वहाँ अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व बना रहा था। 9 मई, 1879 ईसवी में गिरमिटिया भारतीयों को गुलाम बनाकर फिजी लाया गया था और 20-

25 वर्षों के भीतर उनकी संख्या 20 से 25 हजार तक पहुँच चुकी थी। अब स्थिति है कि जो प्रभाव अंग्रेजी का था, उसे अब हिंदी ने शिथिल कर, अपनी सत्ता-महत्ता स्थापित कर ली है। वहाँ भी जनसंचार-माध्यमों ने हिंदी-भाषा, विशेषतः अवधी और भोजपुरी का महिमा-मंडन किया है। वहाँ लगभग 55 प्रतिशत भारतीय हैं। फीजी में शताधिक, सामाजिक, बौद्धिक, पत्रकारीय, आध्यात्मिक, साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाएँ-संघटन आदि हैं, जो हिंदीभाषा के उन्नयन-

हेतु संकल्पित हैं। यही कारण है कि उन संघटनों के प्रभाव के चलते फीजी में राजभाषा के रूप में अंग्रेजी के साथ ही 'हिंदी' को भी स्थान मिला है। शिक्षा में हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

फीजी में 'हिंदुस्तानी' भाषा-बोली को प्रमुख रूप से स्थान प्राप्त है। वहाँ की हिंदी में पूर्वी अवधी

और भोजपुरी के अतिरिक्त अरबी-फारसी-भाषाओं की बहुलता है। इनके अतिरिक्त इस पर यूरोपियन शब्दावली (लैटिन, इटैलियन, फ्रेंच, ग्रीक, रोमन, स्पैनिश, पुर्तगाली इत्यादि) का प्रभाव स्पष्टतः दिखता है; और वे शब्द ऐसे हैं, जिन्हें भारतीय भाषिक परिवेश में दैनंदिन जीवन के कार्य-व्यापार में स्वीकार कर लिया गया है।

सूरीनाम में डचों का शासन था। तब सूरीनाम को 'डच गयाना' के नाम से जाना जाता था। वहाँ क्रियोल, जावानीज, चीनी, सन्नागतोगो बुश नीग्रो आदि जनजातियाँ आरंभ से ही रहती आई थीं। 1873 से

1916 ईसवी के मध्य वहाँ गिरमिटिया भारतीयों को 64 जहाजों-द्वारा सूरीनाम लाया गया था। बस्ती, गोंडा, प्रतापगढ़, फैजाबाद, जौनपुर आदि स्थानों से गिरमिटिया लाए गए थे। इस प्रकार वहाँ गिरमिटिया श्रमिकों की इतनी अधिक संख्या हो गई थी कि उनका प्रभाव दिखने लगा और अपने परिश्रम के बल पर उन्होंने स्वयं को स्थापित किया और वहाँ की राजनीति को प्रमुखता के साथ प्रभावित करते हुए, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मंत्री आदि के रूपों में स्थापित किया था।

सूरीनाम में डचों का शासन था। तब सूरीनाम को 'डच गयाना' के नाम से जाना जाता था। वहाँ क्रियोल, जावानीज, चीनी, सन्नागतोगो बुश नीग्रो आदि जनजातियाँ आरंभ से ही रहती आई थीं। 1873 से 1916 ईसवी के मध्य वहाँ गिरमिटिया भारतीयों को 64 जहाजों-द्वारा सूरीनाम लाया गया था। बस्ती, गोंडा, प्रतापगढ़, फैजाबाद, जौनपुर आदि स्थानों से गिरमिटिया लाए गए थे। इस प्रकार वहाँ गिरमिटिया श्रमिकों की इतनी अधिक संख्या हो गई थी कि उनका प्रभाव दिखने लगा और अपने परिश्रम के बल पर उन्होंने स्वयं को स्थापित किया और वहाँ की राजनीति को प्रमुखता के साथ प्रभावित करते हुए, राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मंत्री आदि के रूपों में स्थापित किया था।

अपने देश भारत के लिए सर्वाधिक गौरव का विषय यह है कि वहाँ 'मानक हिंदी' का प्रयोग किया जाता है। वहाँ लगभग 200 हिंदी पुस्तकों का प्रणयन किया जा चुका है। यह वही सूरीनाम है, जहाँ 'सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन' संपन्न हुआ था।

भाषा प्रयोग में वहाँ हिंदी के दो रूप दिखते हैं—
1. गयाना की हिंदी, 2. नीदरलैंड की हिंदी।

सूरीनाम में 'संज्ञा-शब्दों' के प्रयोग में 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग होता है; जैसे—परिवार के स्थान पर 'पलवार', परवाह के स्थान पर 'पलवाह' आदिक।

संज्ञा बहुवचन के अंतर्गत 'न' का प्रयोग अधिक होता है; जैसे—लड़कियों के लिए छोरियों का प्रयोग होता है; परंतु वहाँ 'छोरियन' कहा जाता है। वहाँ के कई संज्ञा-शब्द डच से प्रभावित दिखते हैं; जैसे रसोई को 'कुकर', मेंढक को 'मेंघा' कहते हैं।

सूरीनामी हिंदी-प्रयोग में 'सार्वनामिक शब्द' में भी भिन्नता लक्षित होती है—

तुम के लिए 'तू', 'तोनिया', वह के लिए 'ऊ', तुम्हारा के लिए 'तुहार', 'तोर', 'तोर', 'तुहका' का प्रयोग किया जाता है।

अब 'विशेषण-प्रयोग' पर भोजपुरी-प्रभाव को सुस्पष्टतः समझिए—

एक को 'एगो', तभी को 'तब्बो', यहाँ-वहाँ को 'हियाँ-हुवाँ', हलका को 'हलुक' कहा जाता है।

अब क्रियात्मक शब्दों पर ध्यान करें—

जाऊँगा को 'जाईब', खाऊँगा को 'खाईब', जाते हैं को 'जातनी'/'जाइत हनी', हुआ को 'भइल'/'भैल', नाची को 'नचली', बनवाए को 'बनवले' कहते हैं। सहायक क्रियांतर्गत हवे, रहे, बाड़े, बाटे आदि के प्रयोग होते हैं।

भारत के गिरमिटिया श्रमिकों को चार प्रांतों—नेटाल, केप, ऑरेंज, फ्री-स्टेट में बसाया गया था, जिनमें उनकी सर्वाधिक संख्या नेटाल में बनी हुई है।

वहाँ हिंदी का प्रसार करने में आर्यसमाज की महती भूमिका रही है। वहाँ के राजकीय विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर हिंदी का अध्ययन-अध्यापन किया जाता है। वहाँ अंग्रेजी का वर्चस्व है, जिस कारण हिंदी बोलनेवालों की संख्या अत्यल्प है; उस देश में 'नेटाली हिंदी' का प्रयोग होता है, जिसे 'भोजपुरी चटनी' कहा जाता है।

त्रिनिदाद-टोबेगो में हिंदी-भाषा के नाम पर 'अवधी'-'भोजपुरी' और 'स्पैनिश'—मिश्रित बोलियों का प्रचलन है; जिनके समन्वित प्रयोग को 'त्रिनी'/'ट्रिनी हिंदी' कहते हैं। वहाँ 1845 ईसवी में मॉरीशस और ब्रिटिश गयाना से लाए गए गिरमिटियों की संख्या बहुत बड़ी है। वहाँ लगभग 45 प्रतिशत लोग भारतीय हैं। यद्यपि वहाँ की मुख्य भाषा अंग्रेजी है, तथापि मिली-जुली हिंदी का भी व्यवहार होता है, जिसे 'क्रियोली' कहा जाता है। वे शब्द 'मानक हिंदी' से पृथक् रूप में दिखते हैं; जैसे—पूर्णमासी को 'पन्मासी', दामाद को 'जवाइन', मस्जिद को 'महाजिद', तिलक को 'ढोलोक', मूर्ति को 'मूरी', खिचड़ी को 'कीचरी', झंडा को 'जंडा' कहते हैं।

कुछ अवधी-भोजपुरी शब्द-प्रयोग को देखें—

सब्जी को 'तरकारी'/'तलकारी', चना को 'थाना'/'छाना', गुड़ को 'भेली', कढ़ी को 'करही', मूली को 'मुरई', सिर को 'मूड़ी', केला को 'केरा' कहते हैं।

हिंदी भाषा-व्याकरण और साहित्य को समृद्ध करने में गिरमिटिया लोग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने किसी-न-किसी माध्यम से देवनागरी लिपि और हिंदी-भाषा का प्रचार-प्रसार किया और संबंधित देशों की भाषाओं को प्रभावित किया था।

□

110/2 नई बस्ती

अपोली बाग

इलाहाबाद-211006

गिरमिटिया आप्रवास और रामचरितमानस

—डॉ. विनोदबाला अरुण

गिरमिटिया देशों और तुलसीदासजी के रामचरितमानस का अभिन्न संबंध है, क्योंकि इस ग्रंथ ने हिंदी भाषी जन-मन को शताब्दियों से संजीवनी शक्ति प्रदान कर हिंदी को विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने हेतु अत्यंत प्रभावी भूमिका निभाई है।

किंतु इसी समय एक दुःखद स्थिति का भी निर्माण हुआ। 1857 के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में भारत के जनसागर में स्वराज्य का ज्वार तीव्र गति से तो उमड़ा, लेकिन संगठित प्रयत्न न होने के कारण विफल हो गया। इसी कालखंड में दरिद्रता से पीड़ित भारतीयों को गन्ने के खेतों में काम करने के लिए शर्तबंदी अनुबंध के अंतर्गत अपनी मातृभूमि छोड़कर अन्य देशों में विस्थापित होना पड़ा।

ब्रिटिश सत्ता के आदेश के अधीन सन् 1835 से 1921 के बीच असहाय और दीन-हीन भारतीय मजदूरों को पत्थर हटाकर सोना पाने का प्रलोभन देकर मॉरीशस, दक्षिण अफ्रीका, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिडाड एवं टोबेगो और फीजी आदि देशों में ले जाया गया। ये मजदूर अधिकतर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से गए थे। 5 वर्ष के एग्रीमेंट पर जाने के कारण इन मजदूरों को गिरमिटिया मजदूर कहा गया। यद्यपि ये गए तो थे 5 वर्षों के एग्रीमेंट पर, लेकिन अपने देश भारत वापस नहीं लौट पाए और अपने

प्रवास के देश के ही होकर रह गए।

भारतीय श्रमिकों के पास दो मुख्य साधन थे—
1. उनकी भाषा और संस्कृति एवं रामचरितमानस (या उसका ज्ञान), जिसे वे अपने साथ ले गए थे, और 2. अद्भुत जिजीविषा शक्ति। नितांत असहाय और संसाधनहीन मजदूरों ने शरीर के दुःख भले ही उठाएँ पर आत्मा के ऊपर खरोंच भी नहीं आने दी। कड़ाके की धूप में श्रम करने के कारण तन तो झुलसता रहा पर गगनस्थ सूरज का ताप उनकी आत्मा का स्पर्श भी नहीं कर पाया। अपने घर के आँगन में हनुमानजी के झंडे को गाड़कर जय श्रीराम और जय हनुमान बोलकर उन्होंने सारा हलाहल चुपचाप पी लिया। रामचरितमानस और हनुमान चालीसा उनकी आत्मा के कवच बन गए। उन्होंने राम रसायन के सहारे पत्थर तोड़कर पथरीली जमीन को उपजाऊ खेत बनाया और उसमें गन्ना उगाकर चीनी के रूप में सफेद सोना पैदा किया। उनके श्रम से उत्पन्न उत्पाद जितना मीठा था, उनके जीवन का स्वाद उतना ही कड़वा और तीखा।

रामचरित मानस के कथानक और आदर्श दोनों ने प्रवासी भारतवंशियों को प्रभावित किया। वे रामचरितमानस की चौपाइयों को केवल गाते ही नहीं थे, अपितु उन्हें अपने दुःख-सुख के अनुभव से जोड़ते भी थे। ‘जद्यपि जग दारुन दुख नाना।



सब तें कठिन जाति अवमाना॥' से जहाँ उन्हें स्वाभिमानपूर्वक जीवन जीने की प्रेरणा मिलती थी, वहीं 'जहाँ सुमति तहाँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहाँ बिपति निदाना॥' से नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण जीवन जीने का बल प्राप्त होता था।

भारतीय हिंदू प्रवासियों में रामचरितमानस की लोकप्रियता अत्यंत प्रबल है। रामचरितमानस को पढ़ने के लिए ही वे हिंदी सीखते थे। यदि ये अपने प्रवास के देशों में रामचरितमानस लेकर न गए होते तो अपनी मातृभाषा और अपनी संस्कृति से पूर्णतया वंचित हो जाते।

मॉरीशस की बात करें तो सन् 1835 में मॉरीशस में गन्ने के खेत में काम करने के लिए आए मजदूर अधिकतर भोजपुरी भाषी थे। उन्होंने पराधीनता के पाश में बँधे रहने के बावजूद अपनी भाषा और संस्कृति को बचाए रखा, जिसका मुख्य श्रेय रामचरितमानस को जाता है। हिंदी पाठशालाओं की शिक्षा मुख्य रूप से रामचरितमानस के पाठ की योग्यता प्राप्त करने के लिए होती थी, जो छात्र रामचरितमानस का पठन और गायन करने की सिद्धता प्राप्त कर लेता था, मानो वह स्नातक बन जाता था। वार्षिकोत्सव करके ऐसे 'स्नातक' छात्रों का सम्मान किया जाता था। उन्हें 'रामायणी' कहा जाता था। वे नियमित सत्संगों में रामायण का वाचन और गायन करते थे। रामायण वाचन की परंपरा के ये ही आधार थे। उन्हीं लोगों में से कुछ लोग आगे चलकर धर्म प्रचारक, हिंदी अध्यापक और हिंदी सेवक बने। मॉरीशस के हिंदू लोकमानस पर रामचरितमानस का प्रभाव अत्यंत गहरा है। जन्म, विवाह और मांगलिक अवसर पर गाए जानेवाले गीत श्रीराम या उनके परिवार से ही संबंधित होते हैं। हर बच्चे का जन्म श्रीराम और सीताजी का जन्म माना जाता है; हर विवाह श्री राम और सीताजी का विवाह होता है, हर समधी और समधन दशरथ-कौशल्या और जनक-सुनयना होते

हैं। श्रीराम के प्रति यह अटूट निष्ठा लोक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलती है।

त्योहारों, उत्सवों और मांगलिक अवसरों के अलावा मृत्यु के समय भी रामायण का पाठ मॉरीशस की परंपरा है। मॉरीशस के कानून के अनुसार शव का दाह मृत्यु के 24 घंटों के बाद ही किया जा सकता है, जिससे यदि मृत्यु किसी दुर्भावनापूर्ण कारणों से हुई हो तो शिकायत मिलने पर पुलिस जाँच कर सके। अतः शव को 24 घंटे घर में रखना अनिवार्य है। जिस घर में मृत्यु होती है, वहाँ रात भर जागरण होता है। अतः सत्संगी लोग आकर रात भर रामचरितमानस का पाठ करते हैं। शवदाह के दूसरे दिन से प्रतिदिन ब्रह्मभोज तक परिवार के सदस्य, निकट के मित्र और संबंधी मृत व्यक्ति के घर में रामायण सत्संग करते हैं। कुछ परिवारों में गरुड़-पुराण का वाचन करने की भी परंपरा है।

बैठक, घर, मंदिर और संस्थाओं में साप्ताहिक या मासिक सत्संग के दौरान रामचरितमानस का अखंड परायण और सुंदरकांड का पाठ संगीत और संपुटों के साथ यहाँ अत्यंत लोकप्रिय है। ह्यूमन सर्विस ट्रस्ट ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। बातचीत के दौरान रामचरितमानस के उद्धरण देना आम बात है।

रामचरितमानस का ही यह प्रभाव है कि विश्व के एकमात्र देश मॉरीशस में संसद ने विधेयक पास करके रामायण सेंटर की स्थापना की है और यह सेंटर रामायण के आदर्शों एवं मूल्यों के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

हिंदी शिक्षण और संभाषण को व्यावहारिक रूप से प्रभावी बनाने के लिए आर्य सभा, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा, हिंदी प्रचारिणी सभा, हिंदी स्पीकिंग यूनियन जैसी अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ बहुमूल्य योगदान दे रही हैं। सरकार द्वारा इसमें पूर्ण सहयोग प्राप्त है। रामायण सेंटर और सनातन धर्म

टेम्पल्स फेडरेशन रामायण गायन की प्रतियोगिताओं का आयोजन करते रहते हैं। रामायण की व्याख्या पर कार्यशालाएँ चलाकर रामायण सेंटर हिंदी के प्रचार को भी गति देता है। हिंदी भाषी समुदाय अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों में अनिवार्य रूप से हिंदी का प्रयोग करता है। भागवत पुराण, रामकथा, कीर्तन, प्रवचन, व्याख्यान आदि धार्मिक और

सांस्कृतिक अनुष्ठान हिंदी में ही होते हैं। यद्यपि कई लोग रोमन लिपि में भी रामचरितमानस का पाठ करते हैं, परंतु अभी भी देवनागरी लिपि में ही इसे पढ़ना उन्हें अधिक पसंद है। इसके लिए वे हिंदी सीखना चाहते हैं। रामायण सेंटर ऐसे लोगों को जो रोमन में रामचरितमानस पढ़ते हैं, देवनागरी में पढ़ने के लिए प्रेरित करता है और इस हेतु हिंदी की कक्षाएँ चलाता है।

किसी भाषा की व्यापकता की जानकारी उसके बोलनेवालों की संख्या और उसकी गहनता उसके सृजनात्मक साहित्य से होती है। भारतीय आप्रवास के देशों में हिंदी भाषा में सर्वाधिक सृजनात्मक लेखन मॉरीशस में हुआ है।

संभवतः मॉरीशस एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ स्वैच्छिक और गैर-सरकारी संस्थाओं को हिंदी पढ़ाने के लिए सरकार द्वारा अनुदान दिया जाता है। स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी का अध्ययन सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा धर्म भाव से किया जाता

था, किंतु अब यह अकादमिक स्तर पर भी हो रहा है। देश के लगभग सभी प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में औपचारिक रूप से हिंदी पढ़ाई जाती है। विश्वविद्यालय स्तर पर भी शिक्षण में प्रगति हो रही है। यद्यपि हिंदी मॉरीशस में आम बोलचाल की भाषा नहीं है, फिर भी हिंदी का प्रयोग व्यापक रूप से होता है।

कड़ाके की धूप में श्रम करने के कारण तन तो झुलसता रहा पर गगनस्थ सूरज का ताप उनकी आत्मा का स्पर्श भी नहीं कर पाया। अपने घर के आँगन में हनुमानजी के झंडे को गाड़कर जय श्रीराम और जय हनुमान बोलकर उन्होंने सारा हलाहल चुपचाप पी लिया। रामचरितमानस और हनुमान चालीसा उनकी आत्मा के कवच बन गए। उन्होंने राम रसायन के सहारे पत्थर तोड़कर पथरीली जमीन को उपजाऊ खेत बनाया और उसमें गन्ना उगाकर चीनी के रूप में सफेद सोना पैदा किया। उनके श्रम से उत्पन्न उत्पाद जितना मीठा था, उनके जीवन का स्वाद उतना ही कड़वा और तीखा।

मॉरीशस की ही तरह अन्य गिरमिटिया देशों के लोगों ने भी रामचरितमानस पढ़ने के लिए हिंदी सीखी। दक्षिण अफ्रीका में भी भारतवंशियों के बीच रामचरितमानस अत्यंत लोकप्रिय है। इसका पाठ करके वे अपने धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को प्रखर बनाते हैं। प्रायः हर घर में रामचरितमानस की प्रति उपलब्ध है। मंदिरों और घरों में रामायण का पाठ होता है और भारत से समय-समय पर विद्वान् वहाँ

जाकर रामायण का संदेश सुनाते हैं। सभी गिरमिटिया देशों में प्रायः रामचरितमानस को रामायण कहा जाता है और फीजी में तो रामायण को रामायण महारानी कहते हैं। इन सभी देशों की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँ के हिंदू भारतवंशियों के घरों को दूर से ही पहचाना जा सकता है। मॉरीशस के प्रत्येक सनातनी हिंदू घर के सामने हनुमानजी का चबूतरा है, जिस पर लाल ध्वजा फहराती है और आर्यसमाजी घरों में ओम की पताका लहराती है। दक्षिण अफ्रीका के



घरों के सामने हनुमानजी का लंबा झंडा, तो अन्य गिरमिटिया देशों में प्रतीक रूप में छोटी-छोटी झंडियाँ अपनी पहचान दर्ज कराती हैं।

एक अन्य गिरमिटिया देश गुयाना के जन-जीवन पर यद्यपि रामचरितमानस का प्रभाव तो प्रत्यक्ष देखने को मिलता है, किंतु प्रवचन और व्याख्यान आदि प्रायः अंग्रेजी में होते हैं।

सूरीनाम में भारतवंशी केवल रामायण का पाठ ही नहीं करते, उसका मंचन भी करते हैं। वहाँ रामलीला बहुत लोकप्रिय है और समय-समय पर रामायण संबंधी कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। धार्मिक कार्यक्रमों में भी रामायण का पाठ होता है। सूरीनामी हिंदू रामायण को पारिवारिक संस्कार का बहुत बड़ा आदर्श मानते हैं, उनका विश्वास है कि रामायण ही उनके बच्चों को पाश्चात्य संस्कृति की चपेट से बचा सकेगी। रामायण उनका मुख्य धार्मिक-सांस्कृतिक ग्रंथ है।

त्रिनिदाद एवं टोबेगो की स्थिति भी अन्य गिरमिटिया देशों से भिन्न नहीं है। वहाँ के भारतवंशियों के पारिवारिक, धार्मिक, अध्यात्मिक सांस्कृतिक और जीवन का आधार भी तुलसी की रामायण ही है, जिसे इनके पूर्वज भारत से अपने साथ लाए थे। इसी को आज भी उन्होंने अपने हृदय से लगा रखा है। इसके छंदों को उन्होंने संगीतबद्ध किया है। इससे रामायण का आकर्षण युवा पीढ़ी में भी खूब बना रहता है। यहाँ भी हिंदी शिक्षा की प्रेरणा के मूल में रामायण ही है। लोग सोचते हैं कि हिंदी पढ़ने से उन्हें रामायण बाँचने में आसानी होगी। भाषा, संस्कृति और धर्म की यह त्रिवेणी त्रिनिदाद में अबाधित रूप से प्रवाहमान है।

शर्तबंदी व्यवस्था के अंतर्गत फीजी जानेवाले भारतवंशी हिंदी भाषा को बचाने में बहुत हद तक सफल रहे। यहाँ के भारतवंशी रामचरितमानस से अपनी धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन शक्ति को संपुष्ट करते हैं। यहाँ मंदिरों और सभाओं के अतिरिक्त घरों में भी रामायण के सत्संग बराबर चलते रहते हैं। रामायण के दोहे और चौपाइयाँ वहाँ के भारतीयों के वार्तालाप के स्वाभाविक अंग हैं। फिजी के भारतवंशियों में अवधी-भोजपुरी मिश्रित भाषा प्रचलित है, इसलिए इस ग्रंथ से इनका विशेष लगाव है। भारत से बाहर फीजी एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ हिंदी संसद् की भाषा भी है।

गिरमिटिया देशों ने बड़ी प्रगति की है। वह सबकुछ प्राप्त किया, जो भारत में उनके लिए इतने कम समय में मिल पाना शायद कठिन होता। परंतु भाषा-संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन आज उनकी एक बड़ी समस्या है; क्योंकि भाषा और संस्कृति एक-दूसरे की संपूरक हैं। भाषा संस्कृति को स्वर देती है और संस्कृति भाषा को रूप। संस्कृति जितनी उदात्त होगी, भाषा उतनी ही परिष्कृत। प्रायः मनुष्य उस भाषा को महत्त्व देता है, जो उसे रोजगार के अवसर और आर्थिक संपन्नता प्रदान करती है। परंतु जीवन में अर्थ ही सबकुछ नहीं है। अतीत में हमारे पूर्वजों ने कठिन और प्रतिकूल समय में अपनी भाषा और संस्कृति को सँजोकर रखा तो आज सहज और अनुकूल समय में हम उसे कैसे खो सकते हैं?

□

उपाध्यक्ष

रामायण सेंटर, यूनियन पार्क, मॉरीशस
(पूर्व महासचिव : विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस)

राष्ट्रभाषा की जगह एक हिंदी ही ले सकती है, कोई दूसरी भाषा नहीं।

—महात्मा गांधी

श्रीलंका में हिंदी के बढ़ते कदम

—डॉ. श्रीराम कुरैशी

सिंहल द्वीप, हिंद का मोती और सीलोन आदि कई नामों से जाना गया श्रीलंका भारत का पड़ोसी देश और एक छोटा सा द्वीप, जो चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ है। चारों ओर मादक हरियाली पसरी हुई है। सुंदर प्राकृतिक नजारे मन को मोह लेते हैं। विशाल पर्वत शृंखलाएँ, समतल भूमि, बहते झरने, घने वन, समुंदर की मचलती लहरें, चाय के बड़े-बड़े बागान श्रीलंका की अप्रतिम सुंदरता को बेजोड़ किए हुए हैं। बहुत ही लुभावने व मनमोहक दर्शनीय स्थल, आस्था का केंद्र धार्मिक स्थल और इतिहास के साक्षी ऐतिहासिक स्थल श्रीलंका में स्थित हैं। भारतवासी रामायण काल से श्रीलंका से परिचित हैं और बुद्ध के श्रीलंका पर्दापण, सम्राट् अशोक के पुत्र महिंद्र और पुत्री संघमित्रा के द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार ने भारत और श्रीलंका के इन संबंधों को प्रगाढ़ता प्रदान की है।

उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जो लोग श्रीलंका में मजदूरी करने के लिए भारत से अन्य देशों के साथ श्रीलंका भी गए थे, वे अपने साथ भारत की संस्कृत, परंपराएँ, धर्म रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएँ लेकर गए और वहीं बस गए। 19वीं शताब्दी में एक फारसी नाटक दल मुंबई से श्रीलंका आया 'द एल्फिंस्टन ड्रामेटिक कंपनी' ने न सिर्फ सिंहली रंगमंच को प्रभावित किया, बल्कि सिंहली रंगमंच में नए अध्याय आरंभ करवाए।

श्रीलंकन रंगमंचीय कलाकार भारतीय संस्कृति से न सिर्फ ओत-प्रोत हुए, बल्कि हिंदी भाषा से भी प्रभावित हुए।

60 के दशक में रेडियो सिलोन (राष्ट्रीय रेडियो) यानी श्रीलंका ब्रॉड कास्टिंग कॉरपोरेशन हिंदी गाने प्रसारित होने लगे। जिन्होंने हिंदी भाषा के प्रति श्रीलंकन लोगों के प्रेम को जाग्रत किया, जिससे वे गानों के अर्थ व भावों का मतलब समझने के लिए हिंदी सिखने की ओर प्रेरित होने लगे। हिंदी विषय के अध्यापन कार्य हेतु भारतीय विद्वानों को बुलाया गया। उनमें प्रमुख हैं महापंडित राहुल सांकृत्यायन, प्रो. हेमचंद्र राय, बाबा नागार्जुन पूज्य भिक्षु आनंद कौसल्यायन थेरो, प्रो. शांति भिक्षु शास्त्री। विद्यालंकार विश्वविद्यालय (वर्तमान केलनिय विश्वविद्यालय) में हिंदी भाषा के अध्ययन तथा अध्यापन का श्रीगणेश हिंदी के प्रोफेसर के रूप में पूज्य भिक्षुआनंद कौसल्यायन थेरो द्वारा किया गया। जबकि विद्योदय विश्वविद्यालय (वर्तमान में श्री जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय) में पूज्य भिक्षु गलंगदर प्रज्ञानंद थेरो द्वारा।

वास्तव में श्रीलंका में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। आनेवाले कल में श्रीलंका में हिंदी और विस्तार पाएगी। भाषा ने हमेशा सभी को जोड़ने का कार्य किया है। श्रीलंका-भारत के बीच संबंधों को मजबूत किया है। दोनों देशों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक

पहलुओं को देखा जाए तो दोनों के बीच एकरूपता पाई जाती हैं। हिंदी भाषा ने इन संबंधों को स्थायित्वता तथा प्रगाढ़ता प्रदान की है। दोनों देशों के बीच में हिंदी भाषा ने अनुपम और अद्भुत संबंध कायम किए। निश्चित रूप से सांस्कृतिक आदान-प्रदान में हिंदी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। आज हिंदी श्रीलंकाई सभ्यता का एक अभिन्न अंग बन चुकी हैं। भारत और श्रीलंका का संबंध सदियों पुराना हैं, आज हिंदी भाषा भारत की गौरवशाली परंपराओं का निर्वाह करते हुए वैश्विक स्तर पर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। हिंदी के मामले में अगर हम श्रीलंका की बात करें, श्रीलंका में हिंदी की लोकप्रियता चरम शिखर पर है। बॉलीवुड की फिल्में हिंदी गाने, जो हर व्यक्ति की जुबान पर हैं।

सांस्कृतिक केंद्र में होली, दीपावली, नवरात्रि, राखी और बसंत पंचमी को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इन पर्वों पर श्रीलंका के लोगों की भीड़ देखते ही बनती हैं। यहाँ हिंदी की विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियाँ भी आयोजित की जाती हैं। जिसमें पूरी श्रीलंका के समस्त हिंदी प्रेमियों को आमंत्रित किया जाता है। हिंदी कवि सम्मलेन, हिंदी कार्यशालाएँ, हिंदी सम्मलेन, हिंदी प्रतियोगिताएँ विद्यार्थियों को हिंदी के करीब लाती हैं। बड़े उत्साह से वे लोग इनमें भाग लेते हैं। हिंदी आमजनों के बीच भी बहुत ही लोकप्रिय है। कभी किसी टैक्सी का ड्राइवर हिंदी में बात कर रहा है तो कभी राष्ट्रपति की सुरक्षा में लगा सैनिक, तो कभी सड़क के किनारे नारियल पानी बेचनेवाला, तो कभी अस्पताल का डॉक्टर, नर्स, रिक्शा चालक, दुकानवाला, तो मल्टीप्लेक्स सिनेमा के अंदर पॉपकॉर्न बेचनेवाला हिंदी में बात करते देखे जा सकते हैं। अक्सर टैक्सियों में हिंदी फिल्मी गीत सुनाए देते हैं और साथ ही वे लोग गाते गुनगुनाते भी दिखाई देते हैं।

श्रीलंकावासियों का हिंदी भाषा के प्रति प्रेम

नया नहीं हैं। सिंहली तथा हिंदी दोनों भाषाएँ आर्य परिवार से आई हैं। हिंदी की लोकप्रियता कई कारणों से मानी जा सकती है। हिंदी फिल्मों के लोग दीवाने हैं। हिंदी फिल्मी गीत यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं। आजकल बड़े पैमाने पर हिंदी धारवाहिक भी पसंद किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक यात्रा के कारण बोध गया, बिहार लखनऊ और साँची आदि स्थानों की यात्रा के प्रयोजन से भी हिंदी सीखी जाती है। शास्त्रीय नृत्य संगीत के कारण भी हिंदी की लोकप्रियता यहाँ बरकरार हैं। इसलिए संगीत को समझने के लिए उनका हिंदी जानना आवश्यक होता है। भारतीय लंका फाउंडेशन, पुरानी हिंदी गीत सोसायटी, पेरणी हिंदी गीत संगमय आदि हिंदी गीत संस्थाओं के द्वारा पुराने हिंदी गीत गाए जाते हैं और इनके कार्यक्रम बहुत लोकप्रिय भी रहते हैं। हिंदी गीतों के बड़े-बड़े कार्यक्रम यहाँ प्रतिवर्ष अलग-अलग हिंदी गीत सोसाइटी द्वारा आयोजित किए जाते हैं। वे पूरे गाने सही उच्चारण के साथ गाते दिखाई देते हैं, हालाँकि कई बार वे उनके अर्थ से वाकिफ नहीं होते हैं। हिंदी लोकप्रियता में व्यापार संवाद और पर्यटन भी प्रमुख हैं। आजकल योग भी हिंदी सीखने का एक कारण बनता जा रहा है। साहित्य के क्षेत्र में स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो से लघु पत्रिका 'श्रीलंका हिंदी समाचार' और 'ई-प्रयास' हिंदी पत्रिकाओं के द्वारा हिंदी भाषा के विद्वानों के समाचार और लेख के साथ श्रीलंका में हिंदी गतिविधियों और कार्यक्रमों की जानकारी प्रदान की जा रही है।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक प्रो. नंद किशोर पांडेजी और मंडल उपाध्यक्ष डॉ. कमल किशोर गोयनकाजी, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के कार्यक्रम निदेशक श्री संजय बेदीजी के श्रीलंका की शैक्षणिक संस्थान और विश्वविद्यालयों में शैक्षणिक भ्रमण ने लोगों को हिंदी की दिशा में कई

नए कार्यों के लिए प्रेरित किया, तो डॉ. विजयकुमार मल्होत्राजी पूर्व निदेशक राजभाषा के 'सरल तरीके से हिंदी सीखें' भाषण उपयोगी रहा। जिसने हिंदी सीखने की समस्याओं को दूर किया। विगत दिनों प्रो. राममोहन पाठकजी के साथ स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में हिंदी वार्ता कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा है। श्रीलंका के जाने-माने हिंदी विद्वान् इस कार्यक्रम में न सिर्फ उपस्थित हुए, बल्कि हिंदी के विभिन्न कार्यक्रमों से आपको अवगत भी करवाया। प्रो. पाठक के सरल, सौम्य व्यक्तित्व और विद्वता ने सभी को बहुत आकर्षित किया। आप जैसे विद्वानों की उपस्थिति भी लोगों को हिंदी से जुड़े रहने और उत्कृष्ट कार्यों की प्रेरणा दे जाती है।

हिंदी विश्वविद्यालय और सरकारी विद्यालय, जहाँ पर निरंतर हिंदी शिक्षण का कार्य सुचारू रूप से चल रहा है। केलनिय विश्वविद्यालय इस विद्यालय में हिंदी का एक स्वतंत्र विभाग है। यहाँ पर सुचारू रूप से हिंदी शिक्षण होता है। बी.ए. हिंदी (सामान्य), बी.ए. हिंदी (विशेष) तथा यह एकमात्र विश्वविद्यालय है, जहाँ एम. फिल. तथा पी-एच.डी. की उपाधियों से संबंधित शोध कार्य हिंदी में किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त जयवर्धनपुर विश्वविद्यालय, सबरगमु विश्वविद्यालय, बुद्धिस्ट एवं पॉली विश्वविद्यालय, आर्ट एंड परफार्मिंग विश्वविद्यालय, मोरटुवा विश्वविद्यालय, कटुबद्द विश्वविद्यालयों में भी हिंदी अध्यापन का कार्य चल रहा है।

आनंद बालिका विद्यालय कोलंबो, समुद्रदेवी बालिका विद्यालय कोलंबो, देवी बालिका विद्यालय, कोलंबो, मलय देवी बालिका विद्यालय, कुरुनेगल, रॉयल कॉलेज, कुरुनेगल, महामाया गर्ल्स स्कूल, कैंडी, बटपोल महाविद्यालय अम्बलनगोड़ा आदि विद्यालयों में हिंदी भाषा पढ़ाई जा रही हैं। इन विद्यालयों O लेवल (10th) तथा A लेवल (12th) में हिंदी भाषा पढ़ाई जाती है।

कुछ प्रमुख लोग, जो हिंदी की सेवा और प्रचार में कई वर्षों से लगे हुए हैं। इन लोगों ने कई साहित्यिक रचनाएँ व हिंदी के प्रमुख उपन्यास का सिंहली में अनुवाद कर उन्हें भारतीय साहित्य से भी परिचित करवाया है। हिंदी सेवी डॉ. इंद्रा दसनायक—हिंदी के लिए इंद्राजी के प्रयास बहुत ही सराहनीय हैं। भारत की राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के हाथों से 'प्रियर्सन अवार्ड' प्राप्त इंद्राजी ने हिंदी विभाग की स्वतंत्र स्थापना के साथ-साथ उत्तर भारतीय संस्कृति से भी सबको परिचित करवाया है। आपने हिंदी भाषा के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इंद्रा दसनायक ने भी अनेक पुस्तकें, लेख, अनुवाद की रचना की हैं, जिनमें प्रमुख हैं—हिंदी पद्य संग्रह, हिंदी कहानी संग्रह, अच्छी हिंदी 1,2,3,4,5, पद्यांजली।

हिंदी सेवी वरिष्ठ प्रो. उपुल रंजीत हेवावितांगमगे—श्रीलंका में हिंदी साहित्य एवं हिंदी की विशिष्ट रचनाओं का मूल हिंदी ग्रंथों से सिंहली भाषा में अनुवाद करने में आपका स्थान सर्वोपरि है।

हिंदी सेवी वरिष्ठ प्रो. उपुल रंजीत हेवावितांगमगे—श्रीलंका में हिंदी साहित्य एवं हिंदी की विशिष्ट रचनाओं का मूल हिंदी ग्रंथों से सिंहली भाषा में अनुवाद करने में आपका स्थान सर्वोपरि है।



हिंदी सेवी प्रो. लक्ष्मण सेनेविरत्न—हिंदी भाषा-विज्ञान एवं व्याकरण के क्षेत्र को अपनी रचनाओं से समृद्ध बनाते हुए, आपके द्वारा हिंदी भाषा में अध्ययन व अध्यापन करनेवाले श्रीलंकाई छात्रों को अनुपम सहायता प्रदान की गई। आपके द्वारा रचित प्रमुख पुस्तकें निम्न हैं—प्रायोगिक शब्द संग्रह हिंदी सिंहली हिंदी व्याकरण प्रशिक्षा, लेखन प्रशिक्षा हिंदी लेखन, मौखिक हिंदी प्रशिक्षा, डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक नाटक वर्तमान में आप केलिनीय विश्वविद्यालय में उप-कुलपति के रूप में कार्यरत हैं और निरंतर हिंदी की सेवा में लगे हुए हैं।

कुछ प्रमुख हिंदी संस्थाएँ, जहाँ हिंदी भाषा का अध्यापन कार्य करवाया जा रहा है:—

श्रीलंका हिंदी निकेतन, कोलंबो—शरणगुप्त वीरसिंह तथा श्रीमती पद्मा वीरसिंह दोनों पति-पत्नी सन् 1993 से श्रीलंका में हिंदी प्रचार-प्रसार के पुनीत कार्य में अपनी संस्था के माध्यम से हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन कार्य में लगे हुए हैं। यह वर्ष इनकी हिंदी सेवा कार्य का पच्चीसवाँ वर्ष है। इनकी संस्था का आदर्श वाक्य बड़ा ही सुंदर और हृदय स्पर्शी है 'हिंदी मन में प्रेम जगाए'। पति-पत्नी मो. रफी के हिंदी गानों के दीवाने हैं। इनके हिंदी कार्यक्रमों में अधिकतर विद्यार्थियों द्वारा लता और मो रफी के कर्णप्रिय गीत प्रस्तुत किए जाते हैं। आपके द्वारा कई पुस्तकें लिखी गई, किंतु आर्थिक अभाव के चलते प्रकाशित नहीं हो सकीं। आपके द्वारा प्रतिवर्ष अपने खर्च से 'हिंदी दिवस' का आयोजन किया जाता है। पिछले वर्ष इनके कई आयोजन कार्यक्रमों में मैं मुख्य अतिथि के रूप में सम्मिलित हुई। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो से कई हिंदी लेखकों की पुस्तकें इनकी संस्था को भेंट की गई थीं। इनके कार्यक्रमों में सम्मिलित होकर विद्यार्थियों द्वारा गाए गए हिंदी गीतों का आनंद लिया है। हिंदी के प्रति इनकी आस्था अगाध है।

श्रीलंका हिंदी संस्थान कुरुनेगल अतिलाकीषानी कोतलावाला-वर्ष 2000 से श्रीलंका हिंदी संस्थान हिंदी की दिशा में निरंतर अग्रसर हैं। यह संस्था 18 वर्षों से कुरुनेगल उपनगर में स्थित है, जो श्रीलंका से 100 किलोमीटर की दूरी पर है। अतिला कोतलावाला द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों को हिंदी भाषा का शिक्षण दिया जा रहा है। विभिन्न सांस्कृतिक पर्व 'उत्सव' हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन भी इनके द्वारा किया जाता है। इनके द्वारा भी हिंदी दिवस और त्योहार मनाए जाते हैं। इन्होंने अपने संस्थान में एक सार्वजनिक हिंदी पुस्तकालय भी खोल रखा है।

शिल्पकला आश्रम, गोल-वसंता पद्मिनी जन्मांध होते हुए भी हिंदी की सेवा में लगी हुई हैं। आपने अनुवाद के क्षेत्र में भी कार्य किया है। आपके विद्यार्थियों द्वारा हिंदी दिवस के कार्यक्रमों में भाग लिया जाता है। आपने ब्रेल लिपि में हिंदी की कविताएँ भी लिखी हैं। आप ग्रामीण क्षेत्र में पिछले चालीस वर्ष से हिंदी की सेवा कर रही हैं। आपकी बेटी जननी भी हिंदी की अध्यापिका है। विविध भारती के गाने आज भी सुनती हैं। आप हिंदी संगीत की शिक्षा भी विद्यार्थियों को प्रदान कर रही हैं।

गुरुकुल-गुरुकुल भाषा केंद्र हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन के साथ हिंदी की विभिन्न गतिविधियों का भी केंद्र रहा है। हिंदी गीत संध्या, हिंदी दिवस, होली आदि कार्यक्रम आपके द्वारा आयोजित किए जाते हैं। पद्मांजलि हिंदी निकेतन-केंडी कौशल्या सुमाली द्वारा हिंदी अध्यापन का कार्य करवाया जा रहा है। इस प्रकार हिंदी संस्थाएँ भी हिंदी भाषा और संस्कृति का ज्ञान प्रदान कर रही हैं। हिंदी ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई है और इस दिशा में श्रीलंका अग्रणी है।

□

हिंदी शिक्षक पीठ,
स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र,
(भारत सरकार), कोलंबो, श्रीलंका

खंड : पंचम

विश्व को परस्पर
जोड़नेवाली हिंदी

विश्व को जोड़नेवाली सामासिक संस्कृति

— श्री नंदकिशोर नौटियाल

भारत एक बहुआयामी देश है। कई भाषाएँ, कई नस्लें, कई धार्मिक आस्थाएँ, मत-मतांतर कई, विचारों में भी विभिन्नताएँ! इन सब अनेकताओं के बावजूद इस देश के लोगों के भीतर विद्युत लहर की तरह एक निराकार भावना व्याप्त है—पारस्परिक सहिष्णुता का संस्कार! जिसकी वजह से विश्व में भारत अपने जैसा एक ही देश दिखलाई देता है। आदिकाल से चली आ रही इन अनेकताओं में समय-समय पर कई और विभिन्नताएँ जुड़ती गई हैं और संभवतः जुड़ती जाएँगी, क्योंकि विश्व में कोई देश विभिन्नताओं में एकता बनाकर रख सकता है, तो वह भारत है। क्योंकि भारत के मनुष्यों वह जो एक एक खास तत्व सहिष्णुता का है, वह उन्हें आपस में जोड़े रखता है। इसे हम भारतीयता यानी भारतीय संस्कृति कहते हैं। यह अपने मौलिक स्वरूप में सामासिक यानी सह-अस्तित्व की संस्कृति है—परस्पर निर्भरता के लिए उपजी संस्कृति। हर संस्कृति का एक बैंक होता है, उसकी भाषाओं और साहित्य का बैंक। इन अर्थों में भारत की कोई एक भाषा भारतीय भाषाओं का बैंक अर्थात् संहिता के रूप में 'इंवोल्व' होना स्वाभाविक था। सामासिकता की ललक के कारणों से हिंदी खुद-ब-खुद इस भूमिका में 'इंवोल्व' होती चली आई है। यह एक हद तक हो पाया है, जबकि उसे भारतीय भाषाओं की परिपूर्ण संहिता, अर्थात् संपूर्ण बैंक बन

जाना चाहिए। इस संदर्भ में उसे भारत के स्वतंत्र होते ही, देश की राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाना चाहिए था। जो नहीं हुआ। उसे केवल 'ऑफिशियल लैंग्वेज' का दरजा दिया गया।

स्वाधीन भारत का जो संविधान पारित किया गया, उसके अनुसार अंग्रेजी को, जो ब्रिटिश शासन-काल से ही राज-काज की भाषा चली आ रही थी, उसे भी 15 साल के लिए इस इरादे से इस पद पर जारी रखा गया था कि इस बीच हिंदी में सरकारी, शैक्षिक और अदालती कामकाज करने की जरूरतों को पूरा कर लिया जाएगा। हिंदी में ज्ञान-विज्ञान की लगभग सभी विधाओं की पारिभाषिक शब्दावली तैयार कर ली गई। यह एक बड़ी उपलब्धि थी। लेकिन पठन-पाठन और अन्य आवश्यकताओं के लिए किताबें तैयार नहीं की जा सकीं। संविधान में अन्य भारतीय भाषाओं को भी, जो संविधान की 8वीं सूची में दर्ज हैं, राजभाषा का दरजा दिया गया था और उम्मीद की गई थी कि उनमें भी ये सारी क्षमताएँ उपलब्ध हो जाएँगी।

यों यह एक सच्चाई है कि हिंदी भारत की कई भाषाओं से प्राचीन नहीं है। न देवभाषा संस्कृत जैसी प्राचीन, न दक्षिण की तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ से प्राचीन, न पूर्व की बांग्ला, असमी, ओड़ीसी, न पश्चिम की मराठी, गुजराती, कोंकणी, राजस्थानी से पुरानी और न उत्तर की पंजाबी, हिमाचली, डोगरी,



कश्मीरी, गढ़वाली-कुमाऊँनी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली, अवधी आदि से ही प्राचीन है। देश की छोटी-छोटी बोलियों से भी प्रचीन नहीं है वह। फिर भी उसने इन सभी भाषाओं, बोलियों में से कुछ को समग्रतया तथा कुछ के शब्दों को अपनाया। उनके रंगों को साथ में लिया। यह इसलिए हो सका कि उसने हिंदी-इतर भाषाओं के मुकाबले में देश को जोड़ने का काम अधिक किया, इसीलिए उसे राष्ट्रव्यापी मान्यता मिली, जो उसकी उत्पत्ति का कार्य-कारण बना और वह विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के आपस में जुड़ने, परस्पर संपर्क और संवाद करने की व्यावहारिक आवश्यकता का माध्यम बन गई।

कह सकते हैं कि हिंदी का जन्म ही इस देश की सामासिक संस्कृति की संभावामेच्छा, विभिन्नताओं में एकता की ऐतिहासिक माँग के फलस्वरूप हुआ है। न केवल संपूर्ण भारत में, बल्कि सारे संसार में इसका विस्तार हुआ। अपने इस ऐतिहासिक विस्तार में वह भारत को उसकी संपूर्णता में जानने-पहचाने का माध्यम बनती चली गई। विदेशी जिज्ञासुओं ने हिंदी सीखी। आज वह भारत तथा भारतवंशियों के अन्य देशों की भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। देर-सबेर वह 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में भी विश्व की तीसरे नंबर की बड़ी भाषा, (डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल के दस वर्ष पुराने 'भाषाशोध अध्ययन' के अनुसार विश्व में हिंदी भाषा-भाषियों की संख्या 1 अरब, 10 करोड़ 30 लाख थी, जो इस समय बढ़कर 5 अरब 50 करोड़ से अधिक), हो जाने के नाते

मान्यता-प्राप्त भाषा के रूप में अपनी आधिकारिक जगह प्राप्त कर लेगी। इस उद्देश्य से 10 विश्व हिंदी सम्मेलन आयोजित किए जा चुके हैं। '11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन' मॉरीशस में, जिसकी मान्य भाषा हिंदी भी है, संपन्न होने जा रहा है, भारत के अलावा फीजी है, जिसकी आधिकारिक भाषा हिंदी है। सोचना होगा कि पिछले सभी विश्व सम्मेलनों में एक स्वर से पारित प्रस्तावों के बावजूद आखिर क्या कारण है कि हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की 6 मान्य भाषाओं के साथ—(1) अरबी, (2) अंग्रेजी, (3) फ्रेंच, (4) मैडारिन चीनी, (5) रूसी, और (6) स्पेनी के साथ शरीक नहीं की जा सकी?

यों संयुक्त राष्ट्र की मान्य भाषाओं में हिंदी और बाँग्ला आदि कुछ अन्य भाषाओं को मान्यता देने का प्रस्ताव विचाराधीन है और उम्मीद करना चाहिए कि हिंदी को शीघ्र उसका अधिकार मिल जाएगा।

भाषा के एतबार से, ध्यान देने की बात यह है, जबकि हिंदी ने उर्दू के शब्दों को लिया, अंग्रेजी को भी पचाया, लेकिन दाक्षिण्य भाषाओं के शब्दों-भावों को अपनाने में अक्षम्य संकोच का सबूत दिया है। भाषाओं की निकटता जितना आपसी साहित्य के आदान-प्रदान से हो सकती है, शब्द और अभिव्यक्ति के भंडार से हो सकती है, व्यावहारिक मेल-जोल से हो सकती है, उतना हिंदी-हिंदी की रटंत से नहीं हो सकती। यह बात गंभीरता से सोचने की है। स्वतःसिद्ध है कि स्वदेशी भाषाओं को गले लगाकर ही राष्ट्रभाषा हिंदी अपनी ऐतिहासिक भूमिका को निभा पाएगी। तभी

वह भारत की भाषाई संस्कृति का बैंक बन पाएगी। क्या सर्व भारतीय भाषाई संस्कृति उसके साहित्य में दिखाई देती है ?

इसके लिए हमें हिंदी भाषा के सामासिक स्वरूप के विकास का अध्ययन करना होगा और इन दो टूक सवालों का उत्तर देना होगा—क्या हिंदी अपने उद्भव के कार्य-कारण को आगे बढ़ा सकी है ? किस हद तक वह इस उद्देश्य को पूरा कर पाई है ? कहाँ-कहाँ असफलताएँ हाथ लगी हैं ? यदि कुछ असफलताएँ रही हैं तो उनकी वजह क्या है ?

हमें समझना होगा कि अंग्रेजी को हटाकर यदि हिंदी को पंद्रह साल की निर्धारित अवधि तक उसके आधिकारिक स्थान पर बिठा दिया गया होता तो तकलीफ किसको होती ? हिंदी और भारतीय भाषाओं को या अंग्रेजी को ? जाहिर है अंग्रेजी को ! भारतीय भाषाओं को तो किसी भी सूरत में नहीं। वे अपने संविधान प्रदत्त स्थान पर पूर्ण स्वतंत्रता के साथ बनी रहतीं। पूर्ण स्वतंत्रता में इसलिए कहता हूँ कि जिस तरह अंग्रेजी हिंदी के सिर पर सवार है, ठीक उसी तरह वह सभी भारतीय भाषाओं के सिर पर सवार है। जबकि यह विदेशी भाषा हमारी विराट् जनसंख्या के लिए काला अक्षर भेंस बराबर है, फिर भी सारी भारतीय भाषाएँ उसे झेलती आ रही हैं। क्यों झेल रही हैं, यह एक गंभीर सवाल है, विचारणीय स्थिति है।

प्रथम दृष्ट्या इसके मूल में वे अंग्रेजीदाँ तत्व हैं, जो किसी भी भारतीय भाषा के निष्णात नहीं थे। जिनकी कानून, प्रशासन, ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा-दीक्षा विदेशी भाषा में हुई थी, जिनका लबो-लहजा विदेशी था, जो अपने अंग्रेजी ज्ञान के बदौलत लाभ के स्थानों पर आसीन थे, अगर उनमें ईमानदारी होती, स्व-भाषा का गौरव होता तो इन सब विधाओं, ज्ञान के अनुशासनों को संविधान-प्रदत्त 15 वर्षों की अवधि के भीतर हिंदी में और अन्य भारतीय भाषाओं में सँजो सकते थे। इस षड्यंत्र को परास्त करने के लिए स्वतंत्रता सेनानी

डॉ. ऊषा मेहता की अध्यक्षता में 'राष्ट्रभाषा महासंघ मुंबई' की स्थापना की गई। वर्तमान अध्यक्ष (से.नि.) न्यायमूर्ति डी.आर. धानुका हैं। महासंघ की तरफ से हमने बॉम्बे हाई कोर्ट में याचिका दायर की कि अंग्रेजी को हटाकर हिंदी को उसका संविधान-प्रदत्त अधिकार दिया जाए और जिन संशोधनों के जरिए अंग्रेजी को कायम रखा गया है, उन्हें निरस्त किया जाए। याचिका सुनवाई के लिए स्वीकृत हो गई। एक बार बोर्ड पर भी आ चुकी है, किंतु लंबित है। लंबित इसलिए कि अदालत को उसकी 'अर्जेंसी' नजर नहीं आई।

हिंदी और भारतीय भाषाओं के विकास को रोकने और देश की बहुसंख्य जनता को उस भाषा का गुलाम बनाए रखने के इरादे से तिहरी रणनीति अपनाई गई।

1. हिंदी को पूर्ण सक्षम बनने ही न दो।

2. भारतीय भाषाभाषियों को हिंदी के विरुद्ध भड़काकर हिंदी का विरोध करवाओ, और

3. अंग्रेजी माध्यम का विस्तार करो।

भारतीय भाषा-भाषियों को इस षड्यंत्र को समझ लेना चाहिए था। हिंदी समर्थकों का कर्तव्य था कि वे भारतीय भाषाओं को एकजुट करने की अपनी राष्ट्रीय भूमिका को निभाते। जिसकी जरूरत पहले से कहीं ज्यादा आज है। उन्हें इस सच्चाई को समझना होगा। एक तरफ हिंदी और भारतीय भाषाओं के विरुद्ध गहरे जड़ें जमाए निहित स्वार्थों से प्रेरित तत्वों के हमले हैं और दूसरी तरफ संसार की समानांतर भाषाओं को मिटाने पर जुटा वैश्विक षड्यंत्र है।

आज जबकि हम एक आजाद देश हैं, तथापि हमारी शिक्षा-दीक्षा गुलाम भारत की शिक्षण प्रणाली है, जिसे अंग्रेजीराज ने हम पर थोपा था। इस प्रणाली की नींव 183 साल पहले 1835 में लॉर्ड थोमस बैबिंगटन मैकाले ने डाली थी। मैंने ब्रिटिश पार्लियामेंट में मैकाले का संदर्भित पूरा भाषण पढ़ा है। उसका निचोड़ यही था कि भारत में प्रचलित संस्कृत और अरबी शिक्षा प्रणाली

को बदलकर उसकी जगह पर अंग्रेजी को बिठा दिया जाए। और वही हुआ। अंग्रेजी आकर ऐसी बैठी कि आज तक हटने का नाम नहीं ले रही है। वह भारतीय भाषाओं को हाशिए पर ठेलती जा रही है। स्वतंत्र देश में शिक्षा के प्रसार के लिए सबसे पहली व्यवस्था यह होनी चाहिए थी कि गाँव-गाँव में हिंदी और भारतीय भाषाओं में स्कूल खुलते, ताकि अनपढ़ कोई न रहे। प्राचीन भारत में अनपढ़ ढूँढ़ने पड़ते थे। हमारे संस्कृत के गुरुजी संस्कृत व्याकरण का एक दृष्टांत सुनाया करते थे। राजा भोज अपने राज्य में प्रजा की हालत से सीधे अवगत होने के लिए भ्रमण पर निकला करते थे। एक बार उन्हें एक लकड़हारा लकड़ियों का भारी बोझ ढोते सामने से आता उन्हें दिखाई दिया। उन्होंने उससे पूछा, “भारौ वहति दुर्बुद्धे किम तव स्कंधम् न बाधति?” (हे अनपढ़, तू बोझा ढो रहा है, क्या तेरे कंधे दुखते नहीं?)। लकड़हारा उत्तर देता है, “भारौ न बाधते राजन् यथा बाधति बाधते!” (भार से पीड़ा नहीं होती राजन, जितनी आपके बाधति कहने पर होती है)। संस्कृत व्याकरण के अनुसार दो कंधों के क्रियापद में ‘बाधति’ कहना त्रुटि है, साथ ही असम्मानजनक भी। ‘बाधते’ दोनों दृष्टि से शुद्ध! जो इस बात का सबूत है कि राजा भोज के राज में कोई अनपढ़ नहीं था।

वह भाषा, जिसके माध्यम से समूचे देश में आजादी की लड़ाई लड़ी गई और जीती गई, वह हिंदी भाषा अचानक उन्हें देश को तोड़नेवाली नजर आने लगी। देश के स्वाधीन होते ही गांधीजी के इस कथन को कि “दुनिया को कह दो कि गांधी अंग्रेजी भूल गया है” उन्हें बेमानी लगने लगा। हिंदी के मामले में प्रथम तथा सर्वाधिक सक्षम प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू से भारत के संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित न करके ऐसी भूल हो गई, जिसके दुष्परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं। उन्हीं की जिद पर हिंदी राष्ट्रभाषा घोषित नहीं की जा सकी। नतीजतन हिंदी और सभी भारतीय भाषाएँ आज तक अंग्रेजी के जुए को अपने

कंधों से उठाकर फेंक नहीं पाई हैं। भारतीय भाषाओं को हिंदी के साम्राज्यवाद का झूठा डर दिखाकर उन्हें उन्हें हिंदी विरोध में खड़ा कर दिया गया। और तो और, स्वयं हिंदी की भाषाओं को हिंदी से काटने की मुहिम छेड़ दी गई है। रोजगारपरक शिक्षा के नाम पर पूरे देश में अंग्रेजी के बुखार ने देश को इस हद तक अपनी जकड़ में ले लिया है कि भारतीय भाषाओं के स्कूल बंद हो रहे हैं। अंग्रेजी माध्यम के नाम पर जगह-जगह स्तरहीन शिक्षा की दुकानें खुल रही हैं। विशिष्ट वर्ग के विशिष्ट इंग्लिश माध्यम के शिक्षा-संस्थानों के अलावा हमारे नामी शिक्षण संस्थानों से पढ़े मेधावी डॉक्टर, इंजीनियर आदि देश के काम आने के बजाय विदेशों को पलायन कर जाते हैं। इस तरह स्वदेशी प्रतिभा का क्षरण हो रहा है। स्वदेशी तकनीक और वैज्ञानिक शोध के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता पिछड़ती जा रही है।

प्रश्न है कि स्वदेशी मेधा के बावजूद आखिर हम विदेशी तकनीक पर क्यों निर्भर होते जा रहे हैं? यह पर-निर्भरता अंततः देश की आर्थिक स्वाधीनता के लिए खतरनाक है। मैकलई शिक्षा पद्धति से हम मुक्त नहीं हो पाए हैं। इसका एक और घातक नतीजा है कि आज उस भारत में जहाँ कोई अनपढ़ ढूँढ़े नहीं मिलता था, ‘यूनेस्को’ की वैश्विक आकलन रिपोर्ट (जीएमआर), २०१४ के अनुसार, २८ करोड़ ७० लाख अनपढ़ हैं। यह आँकड़ा समूचे संसार के अनपढ़ों का ३७ प्रतिशत है। यह चिंता का विषय है। कुपड़ता और अनपढ़ता सामाजिक समरसता और आर्थिक विकास को अवरुद्ध कर देती है। सामाजिक समरसता यानी सामासिक संस्कृति, जो इस देश की मूल भावना है, जो अब तक शेष है, उसकी रक्षा करनी है।

□

गुजराती और हिंदी : अंतर्संबंध के परिप्रेक्ष्य

—श्री मनीष विदेह

किसी भाषा के अंतर्संबंधों को समझना हो तो कुछ मानक तय करने होंगे। मसलन एक तरफ हमें देखना होगा कि लिपि, वर्णमाला, व्याकरण आदि के धरातल पर दोनों कितने समान अथवा भिन्न हैं? उनका भौगोलिक विस्तार हमें देखना होगा। उन भाषाओं की सामाजिक-राजनीतिक चेतना को समझना होगा।

भाषा के अंतर्संबंध को समझने से पहले हमें यह भी समझना होगा कि किन्हीं दो भाषाओं का प्रस्थान बिंदु कहाँ है और फिर उनकी यात्रा का विस्तार कहाँ तक है? इस पैमाने पर देखें तो आज की हिंदी संस्कृत से बरास्ता पालि, प्राकृत और अपभ्रंश होती हुई मौजूदा स्वरूप में आ पाई है। इसकी तुलना में देखें तो गुजराती भाषा भी शौरसेनी प्राकृत भाषा के अपभ्रंश से उत्पन्न हुई है।

इस तरह से देखें तो मूल में दोनों एक ही संस्कृत सागर से आती हुई दिखती हैं। दोनों की लिपि में काफी समानता देखने को मिलती है, दोनों की वर्णमाला में भी ज्यादा का अंतर नहीं है। यदि आपको इसे समझना हो तो मोरारी बापू के श्रीराम कथावाचन को सुनें। उनकी हिंदी के बीच में गुजराती का पुट आसानी से हिंदी भाषियों को समझ में आता है। सौ साल पीछे जाएँ तो गांधी अपने भजनों में जब नरसी मेहता के शब्द शामिल करते हैं (वैष्णव जन तो तेने कहिए, पीर पराई

जाने रे...) तो इसे पूरे भारतवासियों ने हाथोहाथ लिया। इसे इस परिप्रेक्ष्य में समझें कि जब गांधी आजादी के आंदोलन की भाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार कर चुके होते हैं, स्थापित कर चुके होते हैं, तब भी वे भजन के रूप में नरसी मेहता के इस भजन को चुनते हैं। जाहिर है, इससे हिंदी भाषा ही और समृद्ध हुई। जबकि उस वक्त रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिली शरण गुप्त से लेकर महावीर प्रसाद द्विवेदी तक हिंदी की सेवा कर रहे थे। यहाँ एक बात और समझने की है कि गांधी खुद गुजराती थे, लेकिन उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन की भाषा के रूप में गुजराती को न चुनकर, हिंदी को स्वीकार किया। ऐसा इसलिए नहीं था कि गांधी को हिंदी प्रिय थी, बल्कि इसलिए क्योंकि वह अफ्रीका से वापस लौटकर स्वदेश का पूरा भ्रमण करने के बाद, खासकर चंपारण में नीलहा आंदोलन के बाद समझ चुके थे कि हिंदी ही वह भाषा है, जो पूरे देश को एक सूत्र में जोड़ सकती है और इसके सहारे ही आजादी पाई जा सकती है। इसलिए आजादी के बाद गांधी यह कहते सुने जाते हैं कि वह अंग्रेजी भूल गए हैं और ऐसा वह हिंदी के परिप्रेक्ष्य में कह रहे होते हैं।

हमें इसे सामाजिक परिघटना के रूप में समझने की जरूरत है, क्योंकि एक गुजराती भाषी अर्थात् गांधी, जिन्होंने अफ्रीका में अंग्रेजी में वकालत की, लेकिन स्वतंत्रता आंदोलन में गुजराती एवं अंग्रेजी पर हिंदी

को प्राथमिकता दी। इतना ही नहीं, आजादी के बाद भी वह हिंदी को ही आगे बढ़ता देखना चाहते हैं। इसे हमें देश की तात्कालिक जरूरत के तौर पर चिह्नित करने की आवश्यकता है। लेकिन आजादी के तुरंत बाद जब देश में भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होना शुरू हुआ, तब १९६० में बंबई राज्य को विभाजित करके महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य बनाया गया। इसके बाद माना गया कि गुजराती भाषा का तेजी से विस्तार होगा। लेकिन ५८ वर्ष बाद आज २०१८ में जब हम इसकी समीक्षा करने बैठे हैं कि गुजराती भाषा का कितना विस्तार हुआ, तो चिंताजनक तस्वीर उभरकर सामने आती है, क्योंकि आज उसी गुजरात में स्थानीय लोगों के मुँह से गुजराती भाषा के मुकाबले हिंदी भाषा अधिक सरलता से निकल रही है।

हमें इस परिवर्तन को समझना होगा। दरअसल आज भारतीय बाजार की भाषा हिंदी होती जा रही है और इस महासमर में गुजराती पिछड़ती जा रही है, या यूँ कहें कि हिंदी धीरे-धीरे उसे अपने में समाविष्ट करती जा रही है। इसे फिल्म, गाने, टीवी सीरियल और यहाँ तक कि विज्ञापनों की भाषा से समझा जा सकता है। मसलन आज हम देखें तो गुजराती साहित्य टेलीविजन एवं सिनेमा के जरिए हिंदी भाषा को समृद्ध कर रहा है। मसलन आप फिल्म 'जिस देश में गंगा रहता है' में गोविंदा पर फिल्माया गया गाना देखें—'मैंने पूछा केम छे...'। 'बागबान' फिल्म

में परेश रावल अमिताभ बच्चन को कहते हैं—'मोटा भाई'। आज की तारीख में कर्नाटक में काम कर रहा युवा बिहारी-भाजपा समर्थक अमित शाह को 'मोटा भाई' कहता है, जबकि वह गुजराती नहीं जानता। ये भाषाओं के अंतप्रवाह के सुंदर उदाहरण हैं। 'लगान'

फिल्म का कैनवास भी गुजराती भाषी समाज के विद्रोह और उसकी जीत की कहानी सुनाता है, हिंदी भाषा के आस-पास से गुजरकर। और फिर इतना दूर न भी जाएँ तो 'तारक मेहता का उलटा चश्मा' सीरियल देख लें। गुजराती चाशनी में डूबी हुई हिंदी मलाई! जब तक कि किसी को यह न बताया जाए कि इसका कोई गुजराती कनेक्शन है, तब तक लोग इसे हिंदी का ही कोई रूप समझते हैं। और अंत में हम गरबा साहित्य को क्यों भूल रहे हैं। न, न, अचरज

न कीजिए, गरबा नृत्य है, यह सभी जानते हैं, लेकिन यह नृत्य एक खास भाषा एवं रूप-सज्जा की सवारी करता हुआ, पूरे देश में, खासकर उत्तर भारत में फैल गया है। जाहिर है, यह नृत्य अपने भाषाई विस्तार के बिना मर जाएगा। और चूँकि यह हर साल नए रूप-रंग में दिख जाता है, यानी इसकी हिंदी में स्वीकार्यता बढ़ती जा रही है।

जब गुजराती इतनी पॉपुलर है, हिंदी में समाविष्ट है, स्वीकार्य है तो फिर गुजराती भाषा का प्रसार रुका हुआ क्यों दिखता है? मसलन गुजराती तो पूरे विश्व भर में फैले हुए हैं, भारत में भी यह व्यापार के सिलसिले

में कमोबेश सभी राज्यों में स्थायी रूप से रचे-बसे हैं। इसके दो मूल कारण समझ में आते हैं। एक तो इसका व्याकरण एवं दूसरा इसके बोलनेवाले लोगों के कार्य-व्यवहार की भाषा। मसलन इसे यूँ समझें कि गुजराती भाषी कर्म वाच्य का ज्यादा प्रयोग करते हैं। साथ ही, इसके वैज्ञानिक संचार में कई दिक्कतें हैं। यही कारण है कि यह रिसर्च की भाषा नहीं बन पाई है।

गुजराती भाषा के सामने जो अहम संकट है— वह है हिंदी एवं अंग्रेजी का बढ़ता प्रभाव। इसे दो स्तर पर समझने की जरूरत है। जो गुजराती समाज सुदूर बिहार, उत्तर प्रदेश अथवा दिल्ली में जा बसे हैं और कार्य-व्यापार कर रहे हैं, उनके कार्य-व्यापार की भाषा या तो हिंदी है अथवा अंग्रेजी। और उनके बच्चों की शिक्षा की भाषा भी हिंदी अथवा अंग्रेजी है। इस तरह देखें तो उनके बीच का आपसी संवाद हिंदी अथवा अंग्रेजी में होता है। उनके घर के आँगन एवं रसोई से गुजराती भाषा का धीरे-धीरे लोप हो रहा है। और कमोबेश यही स्थिति गुजरात की भी है, जहाँ गुजराती भाषा बोली जाती है। गुजराती भाषा पर हालाँकि राजस्थानी भाषा का असर रहा है। गुजरात के धनाढ्य परिवार में अमूमन तीन भाषाएँ बोली जाती हैं—हिंदी, गुजराती एवं अंग्रेजी। लेकिन वहाँ के ऑफिसों, मिलों में हिंदी में बात करना मजबूरी है, क्योंकि वहाँ बिहार एवं यूपी. से हिंदी भाषी जाकर काम करते हैं, जिन्हें हिंदी के अलावा कुछ आता नहीं। सो मजबूरीवश बहुत तेजी से गुजराती समाज के कार्य-व्यापार की भाषा हिंदी हो रही है। इसका नकारात्मक असर यह हुआ है कि उनके घरों की रसोई में गुजराती भाषा धीरे-धीरे गुम-सी होती जा रही है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अभी गुजरात में इस पर चिंता जताई जाने लगी है कि स्कूलों में गुजराती भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाए। इसमें सरकारी तंत्र भी शामिल है।

कोई भी भाषा उतनी ही पुष्पित-पल्लवित होती

है, जितना उस भाषा को बोलनेवाले उसी भाषा में व्यापार फैला पाते हैं। अंग्रेजी के विश्वव्यापी प्रसार को इसी रूप में हमें देखना चाहिए और तमाम मुश्किलों के बावजूद हिंदी की बढ़ रही स्वीकार्यता को भी हमें इसी रूप में स्वीकार करना चाहिए। लेकिन इस तराजू पर तौलें तो गुजराती भाषा पिछड़ती नजर आती है, क्योंकि गुजराती पूरे देश में फैले जरूर, इन्होंने अपना कार्य-व्यापार भी खूब फैलाया, लेकिन अपना कार्य-व्यापार अपनी निज भाषा में नहीं फैला पाए। मुकेश अंबानी इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं। इसलिए इसका उपसंहार इस रूप में समझना होगा कि गुजराती भाषा की एक सीमा है, हिंदी के विस्तार के मुकाबले।

इसे थोड़ा और व्यापक धरातल पर समझें। मीराबाई के भजन हम गाते हैं, लेकिन नहीं जानते कि उनका लेखन गुजराती भाषा में था। नरसी मेहता, केशवदास के साथ यात्रा करते हुए जब हम महात्मा गांधी एवं सरदार वल्लभ भाई पटेल के पास आते हैं तो यहाँ हमें गुजराती नहीं दिखकर, हिंदी दिखती है। मसलन, गांधी की पूरी पत्रकारिता और आंदोलन की भाषा हिंदी है। उनके किसी भी पत्र से दूर-दूर तक इंगित नहीं होता कि एक गुजराती भाषी व्यक्ति हिंदी का प्रयोग कर रहा है, बल्कि लगता है कि एक हिंदी भाषी हिंदी बोल रहा है। इससे गुजराती भाषा की राजनीतिक-सामाजिक चेतना की सीमा दिखती है और वह ये कि गुजराती भाषा सिकुड़ती दिख रही है, जबकि हिंदी भाषा का विकास एवं विस्तार अभी भी जारी है।

और अंत में, बीते चार वर्षों में दिल्ली की राजनीतिक फिजा में गुजरातीभाषियों की चहलकदमी बढ़ी है, लेकिन उस अनुपात में गुजराती भाषा दिल्ली नहीं पहुँची है।

□

संपादक—‘गुजरात वैभव’
 न्यू मिल कॉलोनी,
 अहमदाबाद, (गुजरात)

विश्व को जोड़नेवाली संस्कृति और हिंदी

—प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय

भारतीय संस्कृति अपनी प्राचीनता और कालजयता के कारण विश्वप्रसिद्ध है। वर्तमान उत्तर आधुनिक दौर में जब वैश्वीकरण की आँधी चल रही है और संपूर्ण विश्व को एक रीति-नीति के अंतर्गत लाने का प्रयास हो रहा है, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम अपनी हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता पर नए सिरे से विचार करें। भारतीय संस्कृति आरंभ से ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' के महान् आदर्श को लेकर चली है। वर्तमान उत्तर आधुनिक दौर में जब वैश्वीकरण की आँधी चल रही है और संपूर्ण विश्व को एक रीति-नीति के अंतर्गत लाया जा रहा है, तब उसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता पर खुला विमर्श समय की माँग है।

आज जब समूचा विश्व मूल्यहीनता और भयावह अनास्था का शिकार हो रहा है, तब भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

इस सूत्र को व्यावहारिक अर्थ देनेवाली एक संकल्पना और है, जो भारतीय संसद् के मुख्य द्वार पर भी अंकित है—'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसां 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'।'

अर्थात् यह मेरा है, और वह तेरा, संकुचित हृदयवाले ही सोच सकते हैं, जिसका चित्त विशाल है, उसके लिए तो सारा विश्व एक परिवार के सामान है। यही बात गोस्वामी तुलसीदास 'रामचरितमानस' में

दूसरे ढंग से कहते हैं— मैं अरु मोर तोर यह माया, जिहि बस कीन्हें जीव निकाया।' इससे बचने का वे मार्ग भी सुझाते हैं—'सीय राममय सब जग जानी। करउं प्रणाम जोरि जुग पानी।' प्रसादजी ने 'कामायनी' में दिखलाया है कि जब मनु श्रद्धा की सहायता से आनंद की प्राप्ति करते हैं, तब-तब वे विराट् विश्वचेतना से पुलकित होकर कह उठते हैं—'हम अन्य न और कुटुंबी, हम न केवल एक हमीं हैं। तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमें कुछ कमी नहीं है।।'

भारतीय संस्कृति नाना जातियों, नाना धर्मों, नाना विश्वासों तथा अनेक प्रकार की उपासना पद्धतियों का संश्लेषण है। यह जिन अभिलक्षणों के आधार पर वैविध्य में एकत्व बनाए हुए हैं, उसमें मानवजाति की एकता में विश्वास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति मानवजाति की एकता को लेकर संकल्पित है, जो किसी अन्य संस्कृति में शायद ही मिले। हमारी संस्कृति काल अथवा समय के बजाय महाकाल तथा इतिहास विधाता की अवधारणा में विश्वास रखती है। साथ ही यह प्रतिपादित करती है कि काल जितना न्यायी है, उतना ही क्रूर भी। वह अपने साथ उन्हीं को ले चलना पसंद करता है, जिनमें उसके कंधे पर सवार होने की शक्ति होती है। भारतीय संस्कृति 'चयन' और 'वरण' के प्रति अतिशय सतर्क है। वह हजारों वर्षों की अपनी जय यात्रा में अनेक अनुपयोगी चीजों का

त्याग कर चुकी है। उसमें बहुत सारे बाहरी तत्वों ने अपना स्थान सुरक्षित भी कर लिया है। भाषा, भवन, भेष और भोजन चारों ही आधारों पर इसकी पड़ताल की जा सकती है। भारतीय संस्कृति 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अधमाई।' जैसे आदर्श का पुरस्करण करती है। वह 'नहिं मानुषात् परा धर्मः' अर्थात् मनुष्यता से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, के उद्घोष द्वारा अपनी व्यापक दृष्टि तथा उच्चतर मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित करती है। वह मानवीय धर्म की प्रतिष्ठा करते हुए सर्वधर्म समभाव और सर्वजन हिताय की संकल्पना प्रस्तुत करती है। वह मानव के देवत्व और आत्मोन्नयन में विश्वास व्यक्त करती है। मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से जो सवाल 'राम तुम मानव हो देवता नहीं हो क्या?' के रूप में करते हैं, उसका उत्तर वे स्वयं राम से दिलवाते हैं—

*'संदेश यहाँ नहीं मैं स्वर्ग का लाया,
 इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।'*

इस देश की संस्कृति आत्मिक उत्कर्ष में विश्वास रखते हुए अतिशय भौतिकवादिता तथा स्वार्थधता का निषेध करती है। आज जब विश्व बाजारवाद की आयोजक-नियोजक शक्तियाँ उपभोक्तावाद, स्वार्थपरकता और लाभवृत्ति को विश्व स्तर पर प्रसारित कर रही हैं, तब 'कामायनी' में श्रद्धा द्वारा कथित अग्रांकित पंक्तियाँ अतिशय प्रसांगिक एवं दिशादर्शक बन पड़ी हैं—

*'अपने भर सबकुछ कैसे व्यक्ति विकास करेगा,
 यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
 औरों को हँसते देखो मनु हँसों और सुख पाओ,
 अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।'*

भारतीय संस्कृति अपनी विराट् दृष्टि और सर्वसमावेशकता के साथ-साथ प्रवृत्ति एवं निवृत्ति के मध्य संतुलन साधती है। वह निर्मल भाव से गृहस्थ जीवन जीने के आदर्श की प्रतिष्ठा करती है। इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसीदास का निम्न दोहा विशेष रूप से चिंतनीय बन पड़ा है—

घर राखे घर जात है, घर छांडे घर जाय।

हमारी संस्कृति एवं धर्म मठों, मंदिरों, कर्मकांडों, संग्रहालयों, धर्मध्वजों तथा पोथियों की मर्यादा अक्षुण्ण रखते हुए समता एवं बंधुत्व को अभ्यास एवं आचरण का अविच्छिन्न अंग बनाती है। जिस तरह भारत को जोड़ने का कार्य सहस्राब्दियों से प्रयाग, नासिक, उज्जयिनी तथा हरिद्वार के कुंभ कर रहे हैं, उसी तरह भारतीय संस्कृति अपनी विश्वपरक संदृष्टि तथा लोकोन्मुख गतिशीलता

द्वारा निरंतर अपने को परिमार्जित करते हुए सर्वग्राह्य वरणीय बनाए रख सकती है। जब हम वर्तमान संदर्भ में भारतीय संस्कृति के समक्ष विद्यमान चुनौतियों पर गहनता पूर्वक विचार करते हैं तो पाते हैं कि उसे पश्चिम की उपभोक्तावादी वैश्विक संस्कृति से अपनी अस्मिता को बचाना होगा। उसे धर्मशास्त्रीय तथा तत्त्वमीमांसीय उलझनों से मनुष्य को मुक्त करके विज्ञान द्वारा प्राप्त अनिश्चितताओं तथा बेचैनियों का निदान ढूँढ़ना होगा। उसे अहिंसा जैसे मूल्य को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए यह बताना होगा कि विज्ञान की निस्पृह वस्तुनिष्ठता, मूल्यनिरपेक्षता एवं अवैयक्तिकता के अंतरतम में भयानक हिंसा निहित है। यह हिंसा प्रकृति के प्रौद्योगिकीय-दोहन, आर्थिक उपनिवेशीकरण तथा अत्याधुनिक वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों द्वारा होनेवाले युद्ध के रूप में देखी जा सकती है। प्रसाद ने कामायनी में इस



दिशा में विश्व-मनुष्यता को सचेत किया था, जिसे और भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की जरूरत है। भारतीय संस्कृति अपनी विशद परंपराओं, उच्चतर मानवीय मूल्यों, ज्ञान पद्धतियों तथा वैश्विक एवं ब्रह्मांडीय शांति का आदर्श रखकर ही विश्व मानवता का मार्गदर्शन कर सकती है। भारतीय संस्कृति ब्रह्म और ब्रह्मांड की अनंतता का ज्ञापन करते हुए भारतीय समाज को दीर्घावधि तक संगठित और एकजुट रहने का आश्वासन देती है। संक्षेप में भारतीय संस्कृति हजारों वर्षों की जय यात्रा के बाद अपनी बहुलता, बहुस्तरीयता तथा विविधता में भी आंतरिक संलग्नता एवं एकता का भान कराती है। वह सृष्टि रूपी फूल के समाप्त हो जाने पर भी उच्चतम मानवीय मूल्यों तथा आत्मा को नाभि केंद्र में रखने के कारण सुगंध की तरह विद्यमान रहनेवाली है। जायसी ने ठीक ही कहा है कि—

‘फूल मरै पर मरै न बासू।’

सारांश यह है कि भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक एकता का सबसे दृढ़ एवं स्थायी आधार है भाषा और साहित्य। कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतीय साहित्य और भाषाएँ अनेक निराशावादियों की आशंकाओं को रौंदती हुई एक समंजित इकाई के रूप में निरंतर विकासमान हैं। भारतवर्ष अपनी सांस्कृतिक अविच्छिन्नता एवं एकता के कारण ही प्राकृतिक राष्ट्र बना है, जिसके फलस्वरूप उसकी आंतरिक ऊर्जा एवं महाप्राणता असंदिग्ध है। हमारी संस्कृति में ग्रहण और त्याग का विवेक है, जिससे हमारे राष्ट्रीय मूल्य एवं मान समय-समय पर परिष्कृत होते रहते हैं। हम सदा सर्वदा से विराट् के उपासक रहे हैं, जिसके कारण वैश्विक चेतना और विश्व संदृष्टि से भारतीय संस्कृति अनुप्राणित है। वह ‘स्व’ से ‘पर’ और ‘सर्व’ की ओर बढ़नेवाली सुदीर्घ शृंखला है। वह ऐसा प्रवाह है, जिसकी एक-एक बूँद में विद्यमान चुनौतियों के शिलाखंड को बहा ले जाने की क्षमता

ने ही भारतीय राष्ट्रीयता को विश्वमैत्री, विश्वबंधुत्व और विश्वशांति तक विस्तीर्ण किया है। मानवमात्र के प्रति समदृष्टि तथा समूची मनुष्यता की मंगल-कामना उसका केंद्रबिंदु है।

हमारे समकालीन वैश्विक परिवेश में जब मनुष्य का धैर्य और सहिष्णुता जैसे भाव भौतिक जीवन की आपाधापी के दबाव के चलते तिरोहित हो रहे हैं, तब मनुष्यता के उच्चतम आदर्श को लेकर संकल्पित हमारे मूल्य नूतन अर्थवत्ता पा रहे हैं। आज हिंदी भारतवर्ष की सांस्कृतिक एवं भाषिक एकता का मेरुदंड सिद्ध हो रही है। देश की 78 प्रतिशत जनता उसमें संवाद करने में सक्षम है। यह भी संभव है कि निकट भविष्य में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ने के साथ-साथ हिंदी में संवाद करनेवालों का प्रतिशत भी बढ़े। उसके माध्यम से समूचा भारतीय समाज सांस्कृतिक स्तर पर जुड़ाव महसूस कर रहा है। साथ ही समस्त भारतीय भाषाओं में क्या लिखा जा रहा है, इसकी सूचना भी समूचे भारत को हिंदी के माध्यम से ही पहुँच रही है। आज विश्व का हर छठा व्यक्ति हिंदी बोलने अथवा समझने में सक्षम है और 2030 तक विश्व का हर पाँचवाँ व्यक्ति हिंदी बोलने अथवा समझने में सक्षम होगा। इस तरह आनेवाले समय में हिंद और हिंदी दोनों की भूमिका बढ़ने वाली है। संक्षेप में, हमारी सांस्कृतिक एवं भाषिक एकता की जड़ें बहुत गहरी एवं विस्तृत हैं तथा राष्ट्रभाषा हिंदी उसके प्रतिबिम्ब का सबसे सशक्त माध्यम है। इस दौर में जब समूचा संसार मूल्यहीनता और अनास्था के चलते भटकाव का शिकार हो रहा है, तब भारतीय संस्कृति की सनातन मूल्यवत्ता उसमें जीवन के प्रति स्वीकृति का भाव भर सकती है। उन्हें भौतिक और आत्मिक उन्नति के संतुलित मार्ग पर ले जा सकती। फलतः उसकी प्रासंगिकता भी लगातार बढ़ती जा रही है।

□

प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मुंबई विश्व विद्यालय,
मुंबई-400098, (महाराष्ट्र)

विश्व को जोड़नेवाली संस्कृति की संवाहिका हिंदी

—प्रो. एस. तंकमणि अम्मा

भारतीय संस्कृति की समावेशी और सामासिक प्रकृति ने उसे अखिल भारतीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी बड़ी प्रतिष्ठा प्रदान की है। ‘अनेकता में एकता’ जो भारतीय संस्कृति की अहम् विशेषता है, उसके बल पर उसने समस्त देश को एकता के अनोखे सूत्र में पिरोकर रखा है। ‘एक देश-एक जनता’ की संकल्पना प्राचीन काल से ही भारत में कायम थी। ‘विष्णु पुराण’ में कहा गया है—

‘उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं
वर्षं तत् भारतं नाम, भारती यत्र संतति।’

अर्थात् समुद्र के उत्तर तथा हिमाद्रि के दक्षिण में जो देश है, वह भारत है तथा सारे भारतीय उसकी संतति हैं।

भारत की सामासिक संस्कृति के समर्थक और पोषक तत्वों में संस्कृति की संवाहिका भाषा का भी अहम् महत्त्व रहा है। पहले संपूर्ण देश को जोड़ने का कार्य संस्कृत भाषा करती थी। भारतीय संस्कृति को अपनी उदात्तता और समग्रता के साथ उजागर करने की अद्भुत क्षमता उस भाषा में विद्यमान थी। वैदिक संस्कृत में विरचित ऋग्वेद आदि ग्रंथ तथा वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास आदि द्वारा लौकिक संस्कृत में विरचित रामायण, महाभारत जैसी कालजयी कृतियों का प्रचार और सम्मान

समस्त भारतवर्ष में होता था। इन कृती कलाकारों को भारतवासियों ने कभी भी स्थानीय, जातीय या भाषीय घेरे में बाँधकर नहीं देखा। उन्हें भारतवासी अपने कवि या साहित्यकार ही मानते आए हैं। संस्कृत ने अपने वर्चस्व का उपयोग समस्त भारत को एक इकाई के रूप में देखने के लिए किया। उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम के भेदभाव की गुंजाइश ही संस्कृत वाङ्मय में नहीं थी। इन कालजयी रचनाओं के विदेशी भाषाओं के अनुवाद ने उन्हें वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठा भी दे दी। यहाँ यह भी विशेष ध्यातव्य है कि कालिदास के ‘शाकुंतलम्’ नाटक ने ही विश्वविख्यात जर्मन साहित्यकार गेथे को ‘विश्व साहित्य’ (वर्ल्ड लिटरेचर) की संकल्पना की प्रेरणा दी थी।

वस्तुतः पहले समस्त भारत को एकसूत्र में जोड़ने का जो कार्य संस्कृत भाषा करती थी, आज के संदर्भ में वह गुरुभार हिंदी के कंधे पर है। भारतीय भाषाओं को जोड़नेवाली प्रभावी कड़ी बनने का दायित्व उसे निभाना है। अन्यान्य भारतीय भाषाएँ क्षेत्रीय भाषाएँ हैं तो हिंदी को केंद्रीय भाषा का स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि उसे संपर्क भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा का गौरव मिला है। भारत के विस्तृत भू-भाग में बोली जानेवाली भाषा के अतिरिक्त पर्यटन, व्यापार, राजनीति, प्रशासन,



सूचना-प्रौद्योगिकी आदि की दृष्टि से भी हिंदी भारत देश की प्रतिनिधि भाषा है। उसका नामकरण ही उसकी प्रातिनिध्य प्रकृति का व्यंजक है। जबकि अन्य भारतीय भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्रीय नामों से जानी जाती हैं (यथा असम की भाषा असमिया, पंजाब की भाषा पंजाबी, महाराष्ट्र की भाषा मराठी, कर्नाटक की भाषा कन्नड़, तमिलनाडु की भाषा तमिल, केरल या मलयाळनाडु की भाषा मलयालम) तब हिंदी तो किसी क्षेत्र विशेष से जुड़कर जानी नहीं जाती है, हिंद देश की भाषा के रूप में ही वह जानी जाती है।

भारतीय सामासिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने में संस्कृत भाषा जितनी सक्षम थी, उतनी ही सक्षम है, उसकी सच्ची उत्तराधिकारी भाषा हिंदी भी। समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़कर रखने की क्षमता उस भाषा में है। भारोपीय, द्रविड़ जैसे विविध भाषा परिवारों की भाषाएँ होने के बावजूद भारतीय भाषाओं के बीच सामंजस्य के कई बिंदु विद्यमान हैं। भारतीय भाषाओं में लक्षित

आपसी सामंजस्य के कारण की खोज करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है—‘भारतीय भाषा परिवार, संसार के किसी भी देश, राज्य या राष्ट्र की भाषाओं की अपेक्षा अधिक दीर्घकाल तक साथ-साथ रहते आए हैं। अनेक भाषाविज्ञानी भारत को

‘भाषागत इकाई’ (लिंग्विस्टिक एरिया) मानते हैं। भाषागत इकाई का अर्थ है—एक ही भूखंड में बहुत दिनों तक साथ रहने के कारण भिन्न भाषा परिवारों ने ऐसी सामान्य विशेषताएँ विकसित की हैं, जो भारत के बाहर इन परिवारों से संबद्ध भाषाओं में नहीं मिलती।’ ऐसी स्थिति में भारतीय भाषाओं के बीच अंतर्संबंधों का होना सहज ही है।

अपनी भगिनी भाषाओं को साथ लेकर चलने का दायित्व हिंदी का है। संविधान के अनुच्छेद-351

में हिंदी भाषा के विकास के लिए जो दिशा-निर्देश दिया गया है, ‘संघ का यह कर्तव्य है कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए

मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द-ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।’—उसका कार्यान्वयन सफलतापूर्वक संपन्न होगा तो भारतीय भाषाओं सहित हिंदी का विकास सुगम हो जाएगा।

भारतीय भाषाओं में विरचित साहित्य में अंतर्निहित वैचारिक और भावात्मक समानता, भारतीय साहित्य के आपसी संबंध को सुदृढ़ करने में सक्षम है। काल और देशी परिवेश के प्रभाव के पड़ने के कारण सारी भारतीय भाषाओं के साहित्य में कई समान प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। यह देखा जा सकता है कि हिंदी की भाँति ही अन्य भारतीय भाषाओं में भी साहित्य की शुरुआत लोकगीतों से ही होती है। भक्ति आंदोलन का प्रभाव समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य पर लक्षित होता है। उसी प्रकार आधुनिक काल का नवजागरण, स्वच्छंदतावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नई कहानी, उत्तराधुनिक साहित्य, नारी-विमर्श, दलित विमर्श, पारिस्थितिकी सब सभी भाषाओं के साहित्य में परिलक्षित होते हैं। 'विविध भाषाओं में लिखे जाने पर भी भारतीय साहित्य एक है'—की उक्ति यहाँ सार्थक होती है।

विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में प्रभूत मात्रा में प्रणीत होनेवाला साहित्य मात्र उस भाषा क्षेत्र तक सीमित रह जाता है। भाषा-भेद के कारण उसकी पहुँच दूसरे क्षेत्रों में कम ही होती है। ऐसे हाल में विभिन्न भारतीय भाषाओं में विरचित होनेवाले साहित्य के पारस्परिक अनुवाद की बात उभरकर आती है। भारतीय भाषाओं के साहित्य के अनुवाद के प्रसंग में हिंदी को केंद्रीय भाषा की भूमिका निभानी है। यदि किसी प्रांतीय भाषा की कृति हिंदी में अनूदित होकर आई तो अन्यान्य भारतीय भाषाओं में उसका अनुवाद आसानी से हो सकता है। आजकल अनुवाद के इस महत्त्व से साहित्यकार और पाठक दोनों ही अवगत हैं और साहित्यिक अनुवाद के प्रयास हो भी रहे हैं। विश्वविद्यालयी स्तर पर अनुवाद डिप्लोमा, डिग्री पाठ्यक्रम भी अब चालू हैं।

तुलनात्मक अध्ययन और तुलनात्मक अनुसंधान भी विविध भारतीय भाषाओं तथा साहित्यों के बीच सेतुबंधन का महत्त्वपूर्ण कार्य निभाते हैं।

हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों के हिंदी तथा भाषाविज्ञान विभागों में इस प्रकार के तुलनात्मक शोध कार्य हुए हैं तथा हो रहे हैं। मलयालम, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, बंगला, असमिया जैसी भाषाओं के साथ हिंदी भाषा और साहित्य के विविध पहलुओं के जो अध्ययन और अनुसंधान संपन्न हुए हैं, वे भारतीय भाषाओं के आपसी संबंधों को खोलकर प्रस्तुत करनेवाले हैं। कई विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन' पाठ्यक्रम में आया है।

पत्र-पत्रिकाएँ, फिल्में तथा अन्य संचार माध्यम भी इस दिशा में बहुत बड़ी भूमिका निभाने में सक्षम हैं। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को आम जनता तक पहुँचाने का कार्य यह माध्यम बखूबी कर सकते हैं। हिंदीतर प्रांतों में, विशेषकर दक्षिण भारत में हिंदी को लोकप्रिय बनाने में हिंदी फिल्म तथा फिल्मी गीतों ने अहम् भूमिका निभाई है। केरल के आकाशवाणी केंद्रों से प्रसारित हिंदी पाठ, हिंदी वार्ता आदि ने केरल में हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा दिया है। अन्यान्य भारतीय भाषा साहित्यों से संबंधित कार्यक्रमों के प्रसारण का दायित्व भी उन्हें लेना है। दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण, महाभारत आदि पर आधारित धारावाहिकों की अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृति हुई थी। भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों पर धारावाहिक बनाकर उनके प्रसारण से भारतीय भाषाओं को परस्पर जोड़ने और उनके संबंधों को सुदृढ़ करने का प्रयास ये संचार माध्यम आसानी से कर सकते हैं।

अन्यान्य भारतीय भाषाओं और हिंदी के पारस्परिक संबन्ध को रेखांकित करते हुए दशकों पहले विश्वकवि रवींद्र नाथ ठाकुर ने जो कहा था, वह अक्षरशः सार्थक है—'आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है, जिसका एक-एक दल, एक-एक प्रांतीय भाषा और



उसकी साहित्य-संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ, जिनमें सुंदर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बनकर रहे। प्रांत के जनगण की हार्दिक चिंता की प्रकाशभूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहे और आधुनिक भारतीय भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत-भारती होकर विराजती रहे।'

वैश्विक परिप्रेक्ष्य

भारतीय सामासिक संस्कृति की संवाहिका हिंदी संप्रति विश्वव्यापी स्थिति को प्राप्त कर गई है। हिंदी की विश्व-यात्रा का इतिहास उन्नीसवीं शती से शुरू होता है। मॉरीशस, फीजी, गयाना, सूरीनाम, त्रिनिडाड एवं टोबेगो, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में गिरमिटिया या शर्तबंद मजदूर बनकर पहुँचे भारतीयों द्वारा ही प्रारंभ में उन देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार हुआ था। वस्तुतः हिंदी को विश्वव्यापी बनाने का श्रेय इन्हीं गिरमितियों को जाता है। इन देशों में गए भारतीयों में अधिकांश उस समय के ब्रिटिश राज के अधीनस्थ अवध, बिहार आदि प्रांतों के थे, यानी अवधी और भोजपुरी बोलनेवाले थे। वे अपने साथ 'रामचरितमानस', 'हनुमानचालीसा' जैसे ग्रंथ लेकर गए थे। इन ग्रंथों ने उन प्रवासियों को अपने देश और देशी संस्कृति का अहसास कराया था। इन गिरमितियों ने कड़ी मेहनत करके उन देशों को न केवल सुसमृद्ध बनाया, वहाँ अपनी संस्कृति और भाषा की सुगंधि भी फैलाई। उन देशों में भारतवंशियों ने अवधी, भोजपुरी बोलियों से मंडित हिंदी का प्रचार-प्रसार किया। फीजी

की 'फीजीबात', सूरीनाम 'सरनामी', दक्षिण अफ्रीका की 'नेटाली' आदि हिंदी के ऐसे रूप हैं, जो उसकी सामासिक प्रकृति के द्योतक हैं। इन गिरमितिया देशों में शनैः शनैः हिंदी की शिक्षा चलने लगी तथा साहित्य-सृजन भी शुरू हुआ। मॉरीशस के रामदेव धुरंधर, अभिमन्यु अनंत (जिनका हाल ही में निधन हुआ), सूरीनाम के जीत नाराइन, पुष्पिता अवस्थी, फीजी के प्रो. सुब्रामणी, रामनारायण आदि ने इन गिरमितिया देशों में हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। कई स्वैच्छिक संस्थाएँ भी इन देशों में कार्यरत हैं, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार का काम करती हैं। कतिपय पत्र-पत्रिकाएँ भी यहाँ से प्रकाशित होती हैं।

बीसवीं शती में व्यापार, डॉक्टरी, इंजीनियरी आदि क्षेत्रों में नौकरी की तलाश में भारतीय अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, खाड़ी देश आदि में जा बसे हैं। इन्होंने भी हिंदी की सीमा का विस्तार किया है।

11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन अगस्त 2018 में संपन्न हो रहा है। विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी को विश्वव्यापी पहचान दिलाने के साथ-साथ भारतीय सामासिक संस्कृति की महिमा और गरिमा की उद्घोषणा भी करती हैं। अभी संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा के रूप में हिंदी को स्थान दिलाने का प्रयास भी जारी है। समय लग सकता है, पर इस प्रयास की सफलता असंदिग्ध है।

□

पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्षा
हिंदी विभाग, पूर्व संकायाध्यक्षा
केरल विश्वविद्यालय,
तिरुवनंतपुरम्

हिंदी अपने गुणों से देश की राष्ट्रभाषा है।

—लालबहादुर शास्त्री

विश्व-मानसिकता की संस्कृति और हिंदी

—श्रीमती वासंती वैद्य

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

‘संस्कृति’ शब्द ‘कल्चर’ इस अंग्रेजी शब्द के प्रतिशब्द के रूप में प्रचलित हीन-संस्कार और संस्कृति दोनों सम् अधिक कृ धातु से बने हैं, जो संस्कार धार्मिक क्षेत्र तक सीमित रहा, जबकि संस्कृति धर्मसहित संपूर्ण जीवन की उन्नत अवस्था का परिचायक है। नृविज्ञान के अनुसार संस्कृति से तात्पर्य है—समस्त सीखा हुआ व्यवहार।

संस्कृति को आसान तरीके से जाने तो प्रकृति, विकृति को जानते हैं, दूध प्रकृति है, विशिष्ट जंतु के कारण उसका बिगाड़ाव विकृति और उस पर प्रक्रिया करके पेड़े बनाना दूध की संस्कृति है। बाह्य समृद्धि और आंतरिक उन्नयन यानी आधिभौतिक और आध्यात्मिक दोनों सम्मिलन हो। शाकुंतलम् को पढ़ने के बाद गेट ने कहा था कि स्वर्ग और धरा का उदात्त सम्मिलन है। विश्व की सबसे प्राचीन संस्कृति भारतीय संस्कृति के बारे में भी यही कहा जा सकता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने यही कहा—

हे थाय आर्य हे थाय अनार्य

हे थाय द्रविड़ चीन

शक हूण दल पठान मुगल

एक देहे होलो लीन

विभिन्न संस्कृतियाँ व्यवहारपूर्ण और गतिमय

तरीके से सद्भावपूर्ण ऋजुता की अंतःसलिला सरस्वती की तरह विद्यमान होती हैं। इसे अखंडित परंपरा, राजनैतिक और धार्मिक सत्ता केंद्रीकरण का अभाव तथा संस्कृति संगम की सहज प्रवृत्ति से जाना जा सकता है। इसकी प्रेरणा है—

समानी व आकृति समाना हृदयामिवः

समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति

(ऋ . 10 . 1914)

संघ शक्ति पुष्ट्यर्थ आपके अभिप्राय, अंतःकरण तथा मन एक जैसा हो। संस्कृति का सार्थक अभिमान उचित है, लेकिन उज्ज्वल भविष्य के लिए वर्तमान संदर्भ में सांस्कृतिक स्वरूप को देखना आवश्यक है।

संस्कृति अभिव्यक्ति वहन के रूप में भाषा का महत्त्व अनन्य साधारण है। हिंदी इस तरह सामासिक संस्कृति की सार्थक अभिव्यक्ति का माध्यम है।

H history इतिहास

I Individual व्यक्तिगत

N Nature प्रकृति

D Divinity दैवी

I Integrity एकात्मकता

हिंदी भाषा इंडो-यूरोपियन भाषा समूह की मानी जाती है। संस्कृत ई.पूर्व 1500- 500 कालखंड में लोक व्यवहार की भाषा रही। समय की धारा में



उसके वैदिक और लौकिक दो रूप विकसित हुए। लौकिक रूप से आगे पश्चिमोत्तर, मध्यदेशी व पूर्वी बोलियाँ विकसित हुईं। बोली भाषा से प्राकृत बनी। प्राकृत से भाषाएँ जनमी; उनमें से हिंदी एक है। इस अपभ्रंश भाषा को चंद्रधर शर्मा गुलेरी उत्तर-अपभ्रंश यानी प्राचीन हिंदी मानते हैं। इसे आधार मानते हुए महापंडित राहुल सांकृत्यायन [1893-1963 सरपाद इ.स. 769 को प्राचीन हिंदी का पहले कवि मानते हैं। 'हिंदी काव्यधारा' ग्रंथ हिंदी का आदिम ग्रंथ माना जाता है।

आदिकाल से अब तक काव्य, गद्य, नाटक, समीक्षा, निबंध, यात्रा वर्णन जैसी विभिन्न शाखाएँ अपने परिपक्व आविष्कार का परिचय देती हैं।

हिंदी के साहित्यिक, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा और राजभाषा के विभिन्न रूप और आयाम हैं, जो उसे भारतीय भाषा से वैश्विक स्तर पर ले जाती है।

संपर्क भाषा के रूप में भारतेंदुजी ने कहा—

*एक भाषा, इक जीव, इक मति के सब लोग
तबै बनत है सबन सो मिटत मूढत सोग।*

भक्ति के गान, श्रृंगार वीर रस के बाद हिंदी स्वतंत्रता, स्वाधीनता और बाद में सपनों की अभिव्यक्ति बनी।

संविधान में हिंदी के व्यापक रूप को मान्यता देकर उसे वैश्विक स्वर की जिम्मेदारी दी है।

सामासिक संस्कृति—

अनुच्छेद-351

'संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाएँ, उसका विकास करें, जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ उसके

शब्दभंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।'

यहाँ इस बात की ओर ध्यान दिया गया है कि भारत की अन्य भाषा का विकास, प्रभुता अक्षुण्ण रहे।

विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक कारण हैं, जिनके रहते मानव बाजार की वस्तु रहा है।

बोली, लिखित, टंकलेखन, संगणक, मोबाईल, क्लाऊड, समाचार-पत्र, ई-पत्र, यू-ट्यूब... लोकनाट्य, नाटक, सिनेमा, रेडियो, दूरदर्शन सीरियल, वेब सीरियल सारे परिवर्तन हमने स्वीकारे। हिंदी के श्रेय और प्रेय स्वरूप में संगीत, चित्रपट विशेष रूप से लता मंगेशकर और अमिताभ बच्चनजी का करिश्मा कारणीभूत है। 'उसने कहा था' पढ़ने के लिए कई लोगों ने हिंदी सीखी थी। राजकपूरजी को अब भी रूस में याद किया जाता है। लिपि की समस्या को नकारते हुए ऑडियो—वीडियो ब्लॉग के माध्यम से अभिव्यक्ति हो रही है, जिस पर सेंसरशिप की आवश्यकता महसूस हो रही है। हम अपने ऊपर और दूसरों पर लेबल लगाते हैं। उसका जन्म, लिंग, नाम, भाषा, प्रांत आदि कई खेमों में विभाजन होता है। सहनशक्ति का अभाव हमें एक-दूसरे से अलग कर रहे हैं। ऐसे समय हमारी आंतरिक शक्ति हमें जोड़कर रख सकती है। 'अरुण यह मधुमय देश मेरा' प्रसादजी की पंक्ति और अज्ञेयजी का कथन—

हमें अपनी राह चलना है।

अपनी मंजिल पहुँचना है।

तुम सबसे उसकी रक्षा की

व्यवस्था भी हमें चलते-चलते करनी है।

हम न पिट्टू हैं और पक्षधर हैं

हम हम हैं और हमें सफाई चाहिए साफ हवा

चाहिए और आत्म-सम्मान चाहिए।

जिसकी लीक हम डाल रहे हैं।

हमारी जमीन से हट जाओ।

भारतीय तथा विदेशी विद्वान् हिंदी की गरिमा, महिमा, श्रेयता और प्रेयता बढ़ाने में सहायक हैं। भारतीय भाषा अब सिर्फ भारत में रहनेवालों तक सीमित नहीं है।

भारत के पड़ोसी राष्ट्रों नेपाल, मालदीव, बर्मा आदि की हिंदी, पाकिस्तान और बंगलादेश की उर्दू यदि खड़ी बोली में लिख दी जाए तो वह भी हिंदी ही कही जाएगी।

भारतीय मूलवाले भारतवंशी बहुल राष्ट्रों की हिंदी मॉरीशस, फीजी, गुयाना, त्रिनिदाद आदि जहाँ अंग्रेजी, फ्रेंच, डच और क्रिओल के साथ भोजपुरी अवधी हिंदी प्रचलित है।

अप्रवासी भारतीयोंवाले देशों इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा, खाड़ी देश, वेस्ट इंडीज, अफ्रीका, नार्वे आदि की हिंदी।

हमारे पड़ोसी देश अखंड भारत के अंग रह चुके हैं, अतएव वे कामचलाऊ हिंदी से परिचित हैं। वहाँ हिंदी का सतत विकास अवश्यभावी है। विश्वभाषा के रूप में हिंदी के विकास में इनका और विदेशी विश्वविद्यालयों का भी सहयोग है।

इस हिंदी में तमिल के संगम, तेलुगु के अवधान, मलयालम के मणिप्रवालम, पंजाबी के

रम्याख्यान, मराठी के पवाडा, गुजराती के फाग, बंगाल के मंगलगीत, असमिया के बुरंज गीत, उर्दू की गजल और हिंदी के गीत वैश्विकता के आयाम हैं।

सबसे अधिक सहभाग मेरी दृष्टि से आम आदमी का है, जिसकी जिजीविषा और विजीविषा और कुछ हद तक जुगाड़ है, जो आस्था से विश्व मानव बन रहा है। दादा धर्माधिकारी की कथा में मानव का चित्र जोड़ने से भारत का चित्र बनता है।

क्वांटम सिद्धांत के अनुसार अलग-अलग जगह के पदार्थ एक-दूसरे से क्वांटम सहसंबंध से जुड़ जाते हैं। उनकी स्थिति कायम रखने के लिए संदेश वहन की कूटबद्ध जानकारी दूसरा इस्तेमाल नहीं कर सकता। संत ज्ञानेश्वरजी ने गीता आम आदमी को सुलभ तरह से बताते हुए वैश्विक प्रार्थना की है—

‘जो जे वांछील तो ते लाहो प्राणिजात डना’
सिर्फ मानव, बल्कि हर प्राणी अपनी इच्छा की पूर्ति कर सके।

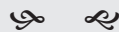
सामासिक संस्कृति वह के ली हिंदी को अपनाना होगा—

*आ नो भद्राः क्रतवो यांतू विश्वतः उदात विचार हमारे
पास हर तरफ से आएँ” ।*

□

भारत की अखंडता और व्यक्तित्व बनाए रखने के लिए हिंदी का प्रचार अत्यंत आवश्यक है।

—महाकवि शंकर कुरुप



हिंदी का शृंगार राष्ट्र के सभी भागों में लोगों ने किया है, वह हमारी राष्ट्रभाषा है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

हिंदी : विश्व को जोड़नेवाली संस्कृति की भाषा

—डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र

हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान करने के बाद जो अपेक्षाएँ व्यक्त की गई हैं, वस्तुतः वे सभी हिंदी की प्रगति में अंतर्निहित हैं। भारतीय आर्य भाषाओं के विकास की थोड़ी बहुत जानकारी रखनेवाला व्यक्ति इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि भारतवर्ष की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में ही भाषा का जन्म एवं विकास हुआ। यहाँ जिसे सामासिक संस्कृति कहा गया है, उसे हम चाहें तो राष्ट्रीय संस्कृति की संज्ञा दे सकते हैं।

यदि राष्ट्रीय संस्कृति नाम की कोई चीज है तो उसकी अभिव्यक्ति करनेवाली कोई एक राष्ट्रभाषा अवश्य होगी। भाषा तो वास्तव में माध्यम या लक्षण ही होती है। भाषा का अर्थ ही लक्षण है। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं, 'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा ?' भाषा हमारी संस्कृति का लक्षण है। स्थानीय भाषाएँ जिन्हें हम बोलियाँ कहते हैं, अंचल विशेष की संस्कृति को लक्षित करती हैं तो उन्हीं के तत्वों को ग्रहण करके, विकसित संपर्क भाषा या राष्ट्रभाषा सार्वदेशिक या राष्ट्रीय संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।

भाषा और संस्कृति का यह संबंध कभी विवाद का विषय नहीं रहा है। भाषा के आधार पर इस देश में कभी प्रांत टूटें या आगे भी इस प्रकार के बिखराव के

दृश्य उत्पन्न हों तो इसका दोष वस्तुतः भाषा के माथे नहीं मढ़ा जा सकता। इस प्रकार के प्रत्येक उदाहरण में भाषा को केवल बहाना बनाया गया होगा और टूटन सदैव राजनीतिक रही होगी। राजनीतिक कारणों से भाषा के साथ छल किया गया होगा अन्यथा इतिहास साक्षी है कि भाषा तो आक्रांत होने पर भी टूटन अथवा बिखराव से बचाने तथा बिखरे हुए लोगों को ऐक्यबद्ध करने की क्षमता रखती है। इस देश पर कितने आक्रमण हुए। हम कितनी बार पराधीन हुए। हमारी भाषाओं की छाती पर सवार होकर दूसरी भाषाएँ शासन सत्ता के केंद्र में आसीन हुईं। कभी अरबी-फारसी-उर्दू का वर्चस्व रहा तो कभी अंग्रेजी का, किंतु पराधीनता के उस दौर में भी न कभी हमारी संस्कृति पददलित हुई और न ही भाषा कमजोर हुई। भाषा और संस्कृति ने विषम परिस्थितियों में भी सदैव आदमी को टूटने से बचाया है।

इतिहास गवाह है कि जिसे आज हम हिंदी के नाम से जानते हैं, वह भाषा इसी रूप में कभी किसी क्षेत्र की बोलचाल की भाषा नहीं रही। भाषाविद् इसे भले ही दिल्ली और उसके पास की बोली से जोड़ते हैं किंतु जिसे हम हिंदी कहते हैं वह उस 'कौरवी' बोली से उतनी ही दूर है जितनी कि अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली और राजस्थानी आदि से। दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्रों की बोलियों से हिंदी की जितनी निकटता है उससे

कहीं अधिक उसकी निकटता अवधी और ब्रज आदि से ही नहीं वरन् पंजाबी, गुजराती और राजस्थानी आदि से है। हिंदी अपने वर्तमान रूप में कभी किसी क्षेत्र की बोली नहीं रही वरन् वह एक समन्वित राष्ट्रीय संस्कृति की भाषा के रूप में विकसित हुई। आज अगर कभी पंजाब में हिंदी का विरोध होता दिखलाई पड़ता हो तो इससे हिंदी के सामर्थ्य तथा अधिकार पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता है। नानक और कबीर की भाषा में अलगाव कैसे किया जा सकता है? मीरा और सूर के बीच भाषा के अंतर की बात कैसे की जा सकती है? हिंदी को लेकर उत्तर और दक्षिण की बात भी कैसे की जा सकती है जबकि इसे सजाने-सँवारने और राष्ट्रीय संस्कृति की भाषा बनाने में दक्षिण भारतीयों

का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी किसी एक की है ही नहीं। वह सबकी है और सबके लिए है। वह जनतांत्रिक मूल्यों की प्रतीक है। इस देश में जनतंत्र सही मायने में तभी स्थापित हो सकता है जबकि हिंदी इस तंत्र के केंद्र में प्रतिष्ठित हो।

जब यह बात कही जाती है कि हिंदी की प्रितप्ठा द्वारा ही जनतंत्रीय व्यवस्था प्रतिष्ठित हो सकती है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि संख्याबल के कारण किसी पर हिंदी लादने की बात की जा रही है। हिंदी लादने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। लादने की बात

तो स्वतंत्रता के बाद की जाने लगी है और निश्चय ही यह सत्यानाशी राजनीति की देन है। शताब्दियों पहले गोरखनाथ दक्षिण पहुँचे थे और दक्षिण के अनेकानेक आचार्य उत्तर भारत में आकर स्थापित हुए लेकिन भाषा उनके लिए कभी बाधक नहीं बनी। जिस भक्ति साहित्य

को हिंदी साहित्य का प्राण माना जाता है, वह क्या उत्तर या दक्षिण की संपदा है? उस भक्ति का जन्म दक्षिण में ही तो हुआ था। मध्यकालीन संत बेरोक-टोक संपूर्ण देश में घूमते थे और उनकी सधुक्कड़ी सर्वत्र समझी जाती थी। संतों की वह सधुक्कड़ी ही हिंदी है जिस पर उत्तर भारत की तमाम समृद्ध बोलियों ने स्वयं को न्योछावर कर दिया। तुलसी की अवधी, सूर की ब्रजभाषा, विद्यापति की मैथिली और मीराबाई की राजस्थानी सबकी सब हिंदी के लिए समिर्पत हो गईं

और आज इन्हें हिंदी की बोलियों के रूप में जाना जाता है।

हिंदी संघात्मक है और इसीलिए वह एकात्मक है। देवभाषा संस्कृत की विरासत को सबसे स्वाभाविक ढंग से आत्मसात् करते हुए हिंदी ने उत्तर और दक्षिण में कभी अलगाव समझा ही नहीं। वह तो दक्षिण में एक नए अंदाज में विकसित हुई जिसे हम दक्खिनी हिंदी के नाम से जानते हैं। वैसे भी हिंदी को आधी से अधिक संपत्ति या तो संस्कृति से ही प्राप्त है जो दक्षिण भारत की भाषाओं की भी शक्ति का स्रोत है। इस दृष्टि से हिंदी तो

यदि राष्ट्रीय संस्कृति नाम की कोई चीज है तो उसकी अभिव्यक्ति करनेवाली कोई एक राष्ट्रभाषा अवश्य होगी। भाषा तो वास्तव में माध्यम या लक्षण ही होती है। भाषा का अर्थ ही लक्षण है।

बापू की अंग्रेजी बहुत अच्छी थी। और निश्चय ही उनकी मातृभाषा गुजराती थी जो किसी दूसरी भाषा की तुलना में अभिव्यक्ति क्षमता में किसी प्रकार कम नहीं है। किंतु गुजराती ही जब प्रदेश की सीमा लाँघकर बाहर निकलती है तो वह हिंदी हो जाती है। हिंदी जब गुजरात में जाकर बैठ जाती है तो गुजराती का रूप ले लेती है। गुजराती और हिंदी में तात्त्विक अंतर तो इतना ही है।

भारत राष्ट्र की समवेत राष्ट्रीय संस्कृति की वाणी बनने के लिए ही अवतिरत हुई थी और इसी रूप में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ उसका विकास भी हुआ। हिंदी न होती तो कदाचित् देश स्वतंत्र न हो पाता। कैसे गूँजती राष्ट्रपिता की वाणी कन्याकुमारी से कश्मीर तक यदि वह हिंदी का माध्यम न प्राप्त करती। यही नहीं कि हिंदी के माध्यम से बापू अधिक लोगों तक पहुँच सकते थे, अपितु सच बात तो यह है कि हिंदी में ही गांधी-दर्शन की समुचित अभिव्यक्ति संभव थी। बापू की अंग्रेजी बहुत अच्छी थी। और निश्चय ही उनकी मातृभाषा गुजराती थी जो किसी दूसरी भाषा की तुलना में अभिव्यक्ति क्षमता में किसी प्रकार कम नहीं है। किंतु गुजराती ही जब प्रदेश की सीमा लाँघकर बाहर निकलती है तो वह हिंदी हो जाती है। हिंदी जब गुजरात में जाकर बैठ जाती है तो गुजराती का रूप ले लेती है। गुजराती और हिंदी में तात्विक अंतर तो इतना ही है। मराठी के संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम और एकनाथ केवल मराठी भाषा के कवि नहीं हैं। यह ठीक है कि उनकी वाणी अधिकांशतया महाराष्ट्र के लोगों को संबोधित तथा वहाँ की जनप्रचलित सुबोध भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त है किंतु वे कभी यह दावा नहीं करते कि वे मराठी भाषा में केवल मराठीभाषी लोगों के लिए रचना करते हैं। यही बात पंजाबी और राजस्थानी आदि के लिए भी सही है। दिल्ली के आस-पास की खड़ी बोली ही पंजाब में एक खास तरह की भंगिमा प्राप्त कर लेती है। एक ही भाषा का विशिष्ट रूप पंजाबी है तो उसी का सामान्य रूप हिंदी है। पवित्र 'गुरु ग्रंथ साहब' को प्राण सर्वस्व मानने वाले पंजाबी कैसे हिंदी को अस्वीकार कर सकते हैं हालाँकि गुरुवाणी केवल पंजाब और पंजाबीभाषियों के लिए नहीं अपितु समग्र राष्ट्र के लिए प्रकाशित हुई थी और उसकी भाषा हिंदी से अभिन्न है। पूज्य संतों के मन में किसी तरह का भाषा का भेद होता तो कबीर और रैदास आदि की

वाणी इस परमपवित्र ग्रंथ में कैसे संगृहीत होती ?

अंग्रेजी में काम करना ही पराधीनता का द्योतक है। ऐसे अवसर प्रायः आते हैं जब हमारे नेता किसी दूसरे देश में जाते हैं अथवा दूसरे देश के नेता हमारे देश में आते हैं। उस अवसर पर जब पूर्व में यह दिखलाई पड़ रहा है कि भारतीय नेता अंग्रेजी में भाषण कर रहा है हालाँकि दूसरे देश का नेता अपने देश की भाषा में अपनी बात कह रहा है तो कैसी लज्जा का अनुभव होता है, यह बतलाया नहीं जा सकता। किंतु ऐसे अवसर प्रायः आते हैं। कई बार तो हमारी हँसी उड़ाई जाती है और बाहर के लोग व्यंग्यपूर्वक पूछते हैं कि क्या आपको हिंदी या अपने देश की कोई भाषा नहीं आती ? लेकिन हम अपनी राह चले जा रहे हैं तो हमारे ऊपर कोई असर नहीं होता। वर्तमान में यह स्थिति बदली है, जब हमारे प्रधानमंत्री, विदेशमंत्री, गृहमंत्री सभी डंके की चोट पर पूरे विश्व में हिंदी में सम्भाषण कर रहे हैं। स्वतंत्रता के साथ ही हमने जैसे अपनी लज्जा गिरवी रख दी। राष्ट्र की स्वतंत्रता के साथ ही जहाँ राष्ट्रभाषा के पद पर हिंदी का विधिवत् अभिषेक होना चाहिए था, वहाँ एक ओर हमने राजकाज में अंग्रेजी का प्रयोग पूर्ववत् जारी रखा तथा दूसरी ओर हिंदी के प्रश्न को विधि-विधान के मकड़जाल में ऐसा उलझा दिया कि जब तक एक भी राज्य हिंदी माध्यम से राजकाज चलाने में असुविधा का बहाना बनाता रहेगा तब तक अंग्रेजी का प्रयोग भी जारी रहेगा।

यह कैसा राष्ट्र है जिसमें एक नागरिक अपने ही देश के किसी भाग में विदेशी समझा जाए ? तमिलनाडु का व्यक्ति उत्तर प्रदेश में तथा उत्तर प्रदेश का व्यक्ति तमिलनाडु में अजनबी समझा जाए तो यह एक दुर्भाग्यजनक स्थिति है। इस स्थिति का सबसे शर्मनाक पहलू यह है कि स्वतंत्रता के पहले यह संकट प्रायः नगण्य था किंतु स्वतंत्रता के इतने वर्षों में हमने राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता की जैसे-जैसे दुहाई

दी, यह संकट गहराता गया। तमिलनाडु की बात जाने दीजिए, बंगाल और महाराष्ट्र के बहुत से भागों में उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश आदि के लोगों को 'हिंदुस्तानी' या 'देशी' कहा जाता है। पंजाब में तो खैर हिंदीवालों को बहुधा पिछड़ा हुआ और अस्पृश्य ही समझा जा रहा है।

राष्ट्रभाषा की जो वर्तमान दशा है, उसके पीछे शासन, प्रशासन और राजनीति का जो हाथ है, वह तो है ही, भाषा वैज्ञानिकों तथा हिंदी के विद्वानों एवं आचार्यों का भी इसमें कम योगदान नहीं है। विश्लेषणप्रिय भाषा वैज्ञानिक यह देखने तथा दिखाने में आज तक अक्षम रहे हैं कि किस

प्रकार शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी तथा महाराष्ट्री अपभ्रंशों से विभिन्न आधुनिक आर्यभाषाओं और बोलियों का विकास हुआ तथा उनके बीच से सबकी भाषिक विशेषताओं को आत्मसात् करते हुए राष्ट्रीय संस्कृति की वाणी के रूप में हिंदी विकसित हुई। हिंदी तथा आधुनिक काल में विकसित अन्य भाषाओं एवं बोलियों में संघ और राज्यों जैसा सहज संबंध है। सबकी विशेषताओं को ग्रहण करते हुए सबको जोड़ने, मिलाने तथा एकीकृत करने के लिए राष्ट्रीय अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में हिंदी का विकास समय की माँग थी और आज भी है।

आगे हिंदी के विद्वानों और आचार्यों को भी हिंदी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करते समय हिंदी के इस राष्ट्रीय स्वरूप का ध्यान रखना होगा। हिंदी पाठ्यक्रम में हम कबीर को पढ़ाते हैं तो हमें बाबा फरीद, नामदेव,

गुरुनानक, नरसी मेहता और देश के विभिन्न भागों के समानधर्मा सूफियों एवं संतों को दक्षिण भारत के हिंदी लेखकों तथा कवियों की रचनाओं को भी महत्वपूर्ण स्थान देना होगा। इसके साथ ही तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से समानधर्मा अहिंदी रचनाओं को भी पाठ्य-

पुस्तकों में सम्मिलित करना होगा। इसके साथ-साथ संसार के विभिन्न देशों में वर्तमान प्रवासी भारतीयों के साहित्य को भी हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में सम्मिलित करना होगा।

इस प्रकार हिंदी को समुचित स्थान प्रदान करना राष्ट्रीय अथवा सामासिक संस्कृति के विकास की पहली शर्त है। हिंदी अनेकानेक विषम परिस्थितियों में अपने

बल व बूते पर विकसित हुई है और आगे भी उसके विकास का क्रम जारी रहेगा क्योंकि वह राज्याश्रय में नहीं अपितु लोकाश्रय में पनपी है। वह जनभाषा है जिसका प्रवाह कभी रुक नहीं सकता। अतः हिंदी के हित या अहित का नहीं अपितु विचारणीय प्रश्न राष्ट्र के हित का है। राष्ट्रहित में हिंदी को दृढ़तापूर्वक राष्ट्रभाषा पद पर स्थापित करके अंग्रेजी को अकादमिक अध्ययन तथा अपिरहार्य प्रयोजनों के अतिरिक्त पूर्णतः बहिष्कृत करना होगा। तभी राष्ट्रीय संस्कृति पनपेगी और सही अर्थों में राष्ट्र में भावात्मक एकता की स्थापना होगी।

□

प्रधान संपादक,
 सोच विचार (साहित्यिक मासिक पत्रिका)
 डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, वाराणसी के
 पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष,
 ईश्वरगंगी, वाराणसी

विश्व को परस्पर जोड़नेवाली संस्कृति और हिंदी : विविध पक्ष

—डॉ. शीतला प्रसाद दुबे

भारतीय संस्कृति में समन्वय को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया। भारतीय जीवन पद्धति को हिंदू जीवन दर्शन से अलग नहीं देखा जाना चाहिए। हिंदू जीवन किसी धर्म विशेष का न होकर समूचे भारतीय जीवन का पर्याय है। आज भले ही कुछ लोग बौद्ध, जैन आदि मतों को हिंदू से पृथक् मानने लगे हैं परंतु सच्चाई यह है कि दर्शन भी हिंदू दर्शन के विकसित रूप हैं। संस्कृत साहित्य में तथागत बुद्ध की विष्णु के अवतारों में गणना की गई है। प्रसिद्ध दार्शनिक पी.टी. राजू ने अपनी पुस्तक ‘द फिलासफिकल ट्रेडीशंस ऑफ इंडिया’ में लिखा है, “जैनमत की ही भाँति बौद्धमत भी भारत के आध्यात्मिक जीवन में मुख्यतः सुधार आंदोलन था।” डॉ. राधाकृष्णन ने भी उक्त मत का समर्थन करते हुए कहा है, “बौद्धमत एक नए और स्वतंत्र धर्म के रूप में आरंभ नहीं हुआ। वह हिंदुओं के अधिक प्राचीन धर्म की एक शाखा था, शायद एक विच्छिन्न संप्रदाय अथवा जनश्रुति।” (इंडियन रिलिजंस)। वस्तुतः बुद्ध ने प्राणी-पीड़ा का विरोध कर ‘करुणा’ को मानव जीवन से संपृक्त कहने का कार्य किया।

प्रसादजी ने ‘कामायनी’ में बुद्ध की इस करुणा का बड़ा ही सटीक वर्णन किया है। मनु के स्वकेंद्रित सुख की अभिलाषा को जानने के बाद उसका प्रतिवाद करती हुई श्रद्धा कहती है कि जगत के सभी प्राणियों

के अपने विशिष्ट अधिकार हैं। दूसरों का सुख छीनकर सुख नहीं मिल सकता। अपने में ही सबकुछ समाहित कर लेने की कामना—भीषण स्वार्थ है। सच्चे सुख का एक ही मार्ग है—

“औरों को हँसते देखो, मनु-हँसो और सुख पाओ,

अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।”

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है कि “वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे।” प्रसादजी ने अपनी कहानियों में बौद्ध और जैन दर्शन के प्रति विशेष प्रीति दिखाई है। वे हिंदी के प्रतिष्ठित रचनाकार थे और बौद्ध तथा जैन मतों को भारतीय जीवन से जोड़कर देखते थे। ‘चक्रवर्ती का स्तंभ’ कहानी में धर्मरक्षित कहता है—

“वह भी सम्राट था जिसने इस स्तंभ पर समस्त जीवों के प्रति दया करने की आज्ञा चुनवा दी है। क्या तुम भी देश विजय करके सम्राट होना चाहते हो? तब क्यों नहीं करते?”

हिंदी के शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने पर-पीड़ा को सबसे अधम मानते हुए परहित को सबसे बड़ा धर्म माना है—

“परहित सरिस धर्म नहीं भाई, परपीड़ा नहीं सम अधमाई।”

संतकवि कबीरदास ने प्राणीमात्र में प्रेम के संचार को ही सबसे अहम् मानते हुए कहा है—

“ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ॥”

जायसी ने भी प्राणि प्रेम को मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व माना है। उनके अनुसार, बिना प्रेम के मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। वे सभी मतों, मान्यताओं के माननेवालों में भी वैमनस्य का भाव भुलाकर प्रेम की भावना का संचार करना चाहते थे। “मानुष पेम भएउ बैकुंठी। नाहिं त काह, छार भरि मूठी?” एक अन्य स्थान पर सच्चे मानव की पहचान बताते हुए उन्होंने कहा है, “पेम पियाला चाखि कै, सांचा मानुस बनि रहा।”

गोस्वामी तुलसीदास ने इसे विश्वबंधुत्व का मंत्र माना। उनके अनुसार स्वार्थ मनुष्य को अधोगति की ओर ले जाता है। अतः हमारे मन में ‘सर्वजन हिताय’ की भावना होनी चाहिए। उन्होंने सबके कल्याण की कामना को प्रतिष्ठित करते हुए कहा है—

कीरति भनिहि भूलि भलि सोई।

सुरसरि सम सब कैह हित होई॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धांत, “सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया” को केंद्र में रखकर हिंदी जगत आगे बढ़ा है।

हिंदी के रचनाकारों ने भारतीय सांस्कृतिक वैभव को चित्रित करने में विशेष रुचि दिखाई है। इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है—देशप्रेम और राष्ट्रीयता। हिंदी-साहित्य में देशप्रेम की भावना आदिकाल से ही दिखाई देती है।

“भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु।

लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु॥”

(भला हुआ जो मारा गया, हे बहिन! हमारा कंत। यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समययस्काओं से लज्जित होती।) इस दोहे के अनुसार देश के लिए अपने पति के प्राण की भी आहुति देना इस देश की संस्कृति रही है। छायावाद की स्वच्छंदतावादी दृष्टि में भी रचनाकारों ने अपने देश और उसकी

संस्कृति की परोकारी की है। निराला ने “भारति, जय, विजय करे कनक-शस्य-कमल धरे!” की अभिलाषा के साथ ही “भारत ही जीवन धन, ज्योतिर्मय परम-रमण, सर-सरिता वन-उपवन।” कहकर स्वयं को देश के एक अंश के रूप में प्रस्तुत किया है। महादेवी वर्मा ने भारत देश को उस परम सत्ता के रूप में देखते हुए कहा, “मैं छाया तू उसका आधार मेरे भारत, मेरे विशाल।” प्रसादजी के नाटकों में तो चारों ओर राष्ट्रीयता के प्रति प्रणति देखी जा सकती है। हिंदी का यह रचनाकार अपने देश भारत की प्रशंसा में कार्नेलिया से कहलवाता है—

“अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा॥”

‘चंद्रगुप्त’ नाटक में ही हिंदी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट अभिमान गीत है। राष्ट्र के आलस करे पौरुष को जाग्रत करने हेतु ओजपूर्ण शब्द संयोजन के साथ गरिमामय संदेश देता हुआ रचनाकार कहता है—

“हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती

अराति सैन्य सिंधु में सुबाड़वाग्नि से जलो

प्रवीर हो जयी बनो बढ़े चलो बढ़े चलो !॥”

प्रसादजी की गीतियों में राष्ट्रीय चेतना का उदार रूप भी दृष्टिगोचर है। भेद-विभेद की राष्ट्रीय भावना में प्रायः विद्वेष की झलक दिखाई देने लगती है। भारतीय संस्कृति उदार स्वरूपा है। वह वैश्विक समाज में विद्वेष-वैर भाव बढ़ाने के बजाय मानवतावादी स्वर के प्रस्फुटन में विश्वास रखती है। वे कहते हैं—

“तुम हो कौन और मैं क्या हूँ? इसमें क्या है धरा सुनो

मानस जलधि रहे चिर चुंबित, मेरे क्षितिज उदार बनो॥”

वस्तुतः जयशंकर प्रसाद का साहित्य, परंपरा और अतीत के जिस भव्य आधार पर अवस्थित है, वह राष्ट्रीयता से पूर्णतः ओतप्रोत है।

भारतीय संस्कृति में नारी प्रतिष्ठा को विशेष महत्त्व प्राप्त है। कामायनी की श्रद्धा की प्रतिष्ठा के साथ ही अपने नायकों और कहानियों में प्रसादजी ने नारी चरित्र की अद्भुत सृष्टि की है। पुरुष चरित्रों के बजाय उनके यहाँ नारी को अधिक गौरवमयी रूप में प्रस्तुत किया गया है। ध्रुवस्वामिनी, पुरस्कार की मधूलिका, आकाशदीप की चंदा, देवस्था की सुजाता, ममता की ममता, स्वर्ग के खंडहर में की लज्जा के चरित्र हमारे मन पर अमिट सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ते हैं। उनकी चूड़ीवाली गृहस्थ कुलवधू की विशेषताएँ उद्धृत करती हुई कहती हैं, “मैंने गृहस्थ कुलवधू होने के लिए कठोर तपस्या की है। इन चार वर्षों में मुझे विश्वास है कि कुलवधू होने में जो महत्त्व है वह सेवा का है, न कि विलास का।” इस प्रकार प्रसाद की कहानियों में नारी की उदात्त छवि प्रस्तुत की गई है।

हिंदी साहित्य में रचनाकारों द्वारा भारतीय संस्कृति की छवि प्रस्तुत की गई है। वर्तमान समय में परिवर्तित मूल्यों के बीच हिंदी साहित्य ने भी अपनी स्थिति को समयानुकूल बना लिया है। इधर तमाम तरह के विमर्श, सामाजिक आंदोलनों और नव संस्कृति के चलन से भारतीयता को परिभाषित करने का मानदंड भी बदला है। हिंदी ने इस आधुनिक राह पर चलते हुए विमर्शों के नए भाषिक संस्कारों को आत्मसात किया है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, सांप्रदायिक विमर्श, पर्यावरण सुरक्षा जैसे अनेक ऐसे मुद्दे हैं जहाँ हिंदी नए साँचे में ढलकर नए क्लेवर में प्रस्तुत हुई है। इतना अवश्य है कि वह नवीन भाषा संस्कार को ग्रहण करते हुए भी अर्थवत्ता बनाए रखती है। वस्तुतः यह अर्थवत्ता केवल हिंदी के मामले में ही नहीं बल्कि भाषा की क्षमता को दर्शाती है।

इधर वैश्वीकरण के प्रचलन ने नवसंस्कृति को जन्म दिया है। इसमें पारंपरिक मूल्यों के नित नवीन मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। आर्थिक या यों कहें कि शुद्ध रूप से वित्तीय-समाज के निर्माण का कार्य किया है इस वैश्वीकरण ने। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद

भारत में बेचने के लिए जिस भाषा की जरूरत है, वह है हिंदी। इस तरह एक नई भाषा, नई हिंदी, इलेक्ट्रॉनिक विज्ञापनों से मुखरित हो रही है। मीडिया में हिंदी भाषा का इस्तेमाल बहुत बढ़ा है। हाँ! यह कोई साहित्यिक हिंदी नहीं है, यह ग्राहकों और उत्पादकों की भाषा है। अंग्रेजी में हिंदी और हिंदी में अंग्रेजी मिलाने का यह कार्य इससे पहले कभी नहीं हुआ था। अंग्रेजी शब्दों का धड़ल्ले से देवनागरी में और हिंदी के शब्दों को रोमन में लिखने की छूट इस समय ने हथिया ली है। नए व्याकरण, नए शब्द और नए मुहावरे के साथ सुसज्जित यह हिंदी विद्वानों में भले ही हिंग्लिश के रूप में उद्धृत की जाए, लेकिन चल खूब रही है। मीडिया की भाषा (हिंदी) वही नहीं है, जो साहित्य की भाषा है। लेकिन भारत इतना बड़ा बाजार है कि मीडिया को भी इसी की भाषा में आना होगा।

हिंदी में यह विवेक है कि वह हिंदी की बोलियों और भारतीय भाषाओं के पोषण से सांस्कृतिक एकता का परचम लेकर चल सके। एक और मुख्य बात जब तक अपनी सांस्कृतिक विरासत को अपनी भाषा में नहीं प्रस्तुत किया जाता, तब तक भाषा को उसकी शक्ति, ऊर्जा नहीं मिल पाती। पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में वक्तव्य देकर उसकी प्रतिष्ठा द्विगणित की थी और वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी भी विदेशी दौरों में हिंदी का प्रयोग कर न केवल हिंदी भाषा बल्कि भारतीय संस्कृति का परचम लहरा रहे हैं। इस तरह विदेशों में भी भारतीय संस्कृति और हिंदी के प्रति लोगों की रुचि प्रगाढ़ होगी और हम राष्ट्रीयता के साथ जोड़कर उसके भविष्य को वैश्विक सम्मान दे सकेंगे। विद्यापति के शब्दों में, ‘देसिल बअना सब जन मिट्ठा’ हिंदी की मिठास इसी तरह बढ़ती रहेगी।

□

समन्वयक, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी,
मुंबई

भारतीय भाषाओं में सौहार्द्र और हिंदी

—श्रीमती उषा किरण टिबड़ेवाल

संपूर्ण विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अपनी राष्ट्रीय भाषा है जो कि उस देश को एक सूत्र में बाँधकर रखने की क्षमता रखती है। हर राष्ट्र की पहचान होती है, वहाँ की राष्ट्रीय भाषा और भारत जैसे विशाल देश की पहचान, हिंदी भाषा के मुख्य देश के रूप में स्थापित हो चुकी है। भारतीय संविधान के अनुसार, हिंदी को सन् 1950 में (परिच्छेद 343 में) राजभाषा घोषित किया गया। संवैधानिक रूप से हिंदी भारत की प्रथम राजभाषा और सबसे अधिक बोली तथा समझी जानेवाली भाषा है।

हिंदी शब्द का संबंध संस्कृत शब्द 'सिंधु' से माना जाता है। 'सिंधु' सिंध नदी को कहा जाता रहा और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को 'सिंधु' कहने लगे। यही 'सिंधु' शब्द इरानी में जाकर 'हिंदू' और फिर 'हिंद' हो गया।

'हिंदी' शब्द अपने विस्तृत अर्थ में हिंदी प्रदेश में बोली जानेवाली सत्रह बोलियों का द्योतक है। इसके अंतर्गत ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, खड़ी बोली, बुंदेली, हरियाणवी, कन्नौजी, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि प्रमुख हैं।

हिंदी संपूर्ण भारतवर्ष की भाषा है। यह बँगला, असमिया, उड़िया, गुजराती, पंजाबी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, कश्मीरी आदि की तरह स्थान विशेष का बोध नहीं कराती, बल्कि हिंदी भाषा पूरे

देश की, पूरे देश के लिए है। इसीलिए श्री विलियम केरी ने कहा कि हिंदी किसी एक प्रदेश की भाषा नहीं, बल्कि देश में सर्वत्र बोली जानेवाली भाषा है।

भारत विभिन्नताओं का देश रहा है। यहाँ धर्म, संस्कृति, वेष-भूषा, खान-पान, भौगोलिक क्षेत्र के साथ-साथ भाषा के स्तर पर भी विभिन्नता देखने को मिलती है। भाषा की इसी अनेकरूपता को देखते हुए शायद यह कहावत प्रचलित हुई होगी, 'चार कोस पर पानी बदले, आठ कोस पर बानी।'

भारत में लगभग 1,652 भाषाएँ या बोलियाँ बोली जाती हैं और इन अनेक भाषाओं में एकता स्थापित करने का काम हिंदी करती है। अपनी सहजता, सरलता, बोधगम्यता, व्यापकता आदि के कारण हिंदी भाषा वर्षों से करोड़ों व्यक्तियों के विचार संप्रेषण, चिंतन तथा सामाजिक नियंत्रण का माध्यम रही है। हिंदी भाषा सदा से उत्तर-दक्षिण के भेद से परे चहुँदशी व्यावहारिक होती चली आई है। उदाहरण के लिए, दक्षिण के प्रमुख संतों बल्लभाचार्य, रामानुज आदि, महाराष्ट्र के नामदेव, गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान के दादू और सूफी संतों ने अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार हिंदी भाषा में ही किया है। बकौल कमलापति त्रिपाठी, 'हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।' इसी तथ्य को हृदयंगम करके उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों में अग्रगण्य बंगवासी



राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन एवं शारदाचरण मित्र ने संपूर्ण भारत की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के महत्त्व को प्रतिपादित किया। इसी पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी ने भी हिंदी की आवश्यकता को समझा और हिंदी भाषा प्रयुक्त कर समस्त भारत को स्वतंत्रता आंदोलन के समय भावात्मक एकता के सूत्र में पिरोया।

आँकड़े बताते हैं कि आज भारत के सबसे ज्यादा 551,416,518 लोग हिंदी, 125,344,736 लोग अंग्रेजी, 91,115,078 लोग बंगाली, 84,992,501 लोग तेलुगु बोलते हैं।

पूरे उत्तर भारत में जन-जन की भाषा बन चुकी हिंदी को दक्षिण भारत में काफी विरोध और चुनौतियों का सामना करना पड़ा। द्रविड़ भाषाओं से बहुत अलग होने के कारण, हिंदी दक्षिण भारतियों के लिए सुगम्य नहीं रही। बहुत जरूरी है कि हर क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषा के अलावा व्यक्ति एक दूसरी भाषा के रूप में हिंदी

भी सीखे और हिंदीभाषी लोग भी दक्षिण की किसी क्षेत्रीय भाषा या ओर कोई भी क्षेत्रीय भाषा को सीखें जिससे कि आपसी सौहार्द स्थापित हो, सबके मन में एक-दूसरे के प्रति आदर, सम्मान की भावना पनपे।

दक्षिण के प्रमुख संतों बल्लभाचार्य, रामानुज आदि, महाराष्ट्र के नामदेव, गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान के दादू और सूफी संतों ने अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार हिंदी भाषा में ही किया है। बकौल कमलापति त्रिपाठी, 'हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।' इसी तथ्य को हृदयंगम करके उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों में अग्रगण्य बंगवासी राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन एवं शारदाचरण मित्र ने संपूर्ण भारत की संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के महत्त्व को प्रतिपादित किया।

सुभाष चंद्र बोस ने कहा था कि प्रांतीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज से नहीं मिल सकती। हमें अपनी सांस्कृतिक अस्मिता अक्षुण्ण रखते हुए, अंग्रेजी भाषा के व्यवहार को कम कर, एक-दूसरे की भाषा को सम्मान देते हुए, हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को उनकी सही जगह पर प्रतिष्ठित करना होगा। तभी विश्व में हिंदी, भारत की रुधिर धारा

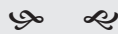
के रूप में प्रतिष्ठापित होगी और विश्वभाषा बन भारत को गौरवान्वित करेगी।

□

गणेश मिल कंपाउंड,
तेजपुर, (असम)

हिंदी की प्रगति से देश की सभी भाषाओं की प्रगति होगी।

—डॉ. जाकिर हुसैन



यदि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के विरुद्ध अंग्रेजी के षड्यंत्र को विफल न किया गया तो जनतंत्र एक मखौल बनकर रह जाएगा।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

खंड : षष्ठ
देवनागरी लिपि और वर्तनी

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

—प्रो. बाबूराम त्रिपाठी

वस्तुतः लिपि का विकास छह चरणों में हुआ—चित्रलिपि, सूत्रलिपि, भावमूलक लिपि, भाव-ध्वनिमूलक लिपि और ध्वनिमूलक लिपि।

प्रतीक लिपि के बाद भावमूलक लिपि सामने आई। अंत में जो लिपि सर्वमान्य हुई, वह ध्वनिमूलक लिपि रही। इसमें एक ध्वनि के लिए एक रेखाचिह्न का प्रयोग किया जाता है। आज की हिंदी, अंग्रेजी, भोट, अरबी आदि लिपियाँ ध्वनिमूलक लिपि ही हैं।

लिपि के विकास की यात्रा चित्रलिपि से शुरू होकर अपने पाँच पड़ावों को पार करती हुई छठवें पड़ाव पर आकर वर्णनात्मक लिपि के रूप में सर्वमान्य हो जाती है।

कुछ विद्वानों का मानना है कि गुजरात में नागर ब्राह्मण इस लिपि का प्रयोग करते थे, इसलिए इसे नागरी लिपि की संज्ञा दी गई। इसके अलावा कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि यह नगरों में व्यवहार की जानेवाली लिपि है, जिसके आधार पर इसका नामकरण देवनागरी लिपि के रूप में हुआ। इनके अतिरिक्त पहले काशी को देवनागर कहा जाता था और वहाँ यह लिपि प्रयुक्त होती थी, उसके आधार पर भी इसे देवनागरी लिपि से उच्चरित किया गया।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ—

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता अक्षुण्ण है। इसकी अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं, जो इसे लोकप्रिय बनाती हैं, वे

विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह जिस रूप में उच्चरित होती है, उसी रूप में लिखी भी जाती है।

(ख) इसमें स्वरों की मात्राएँ सुनिश्चित हैं। ह्रस्व और दीर्घ, कुल मिलाकर ग्यारह मात्राएँ हैं, जिनका अंतर सुस्पष्ट है।

(ग) देवनागरी लिपि में संयुक्त व्यंजनों का स्वतंत्र अस्तित्व होता है—क्ष, त्र, ज्ञ, श्र, घ इन संयुक्त व्यंजनों के लिए भी स्वतंत्र चिह्न हैं। इनके स्थान पर क्रमशः क्ष, त्र, ज्ञ, श्र, घ आदि रूप नहीं प्रयुक्त किए जा सकते।

(घ) छपाई और लिखाई की दृष्टि से भी देवनागरी लिपि सबसे उपयुक्त लिपि है।

(ङ) इसमें ध्वनि और लिपि में अत्यधिक साम्य है। इसके अलावा यह लिपि सुस्पष्ट एवं सुंदर है।

(च) इस लिपि में प्रत्येक वर्ण तथा अंक के लिए स्वतंत्र चिह्न हैं।

नागरी लिपि सुधार हेतु अनेक समितियाँ बनीं, उनकी संस्तुतियों के आधार पर निरंतर सुधार होता रहा। इस दिशा में गोविंद राना डे, सावरकर, महात्मा गाँधी, विनोबा भावे और काका कालेलकर के सुधार संबंधी जो सुझाव सामने आए, वे इस प्रकार हैं—‘अ’ के आधार पर सभी स्वरों का लेखन इस रूप में होना



चाहिए—अि, अी, अु, अू, अे, अै। गुजराती लिपि की तरह देवनागरी लिपि में भी सिरों रेखा को हटा देना चाहिए। इस तरह के सुझाव देने वाले विद्वानों में केशव राम, काशी प्रसाद शास्त्री, गोरख प्रसाद तथा श्रीनिवास के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन् 1941 में हिंदी साहित्य सम्मेलन में लिपि-सुधार की दिशा में जो संस्तुति की वह इस प्रकार थी— (1) उ, ऊ, ए, ऐ की मात्राओं, अनुस्वार तथा रेफ को ऊपर या नीचे लगाकर उच्चारण क्रम से उन्हें अलग रखना चाहिए जैसे—खेल खे ल, कूद कू द, पंकज पं क ज।

इसी तरह मात्राओं के प्रयोग को लेकर भी दिक्कतें आती हैं। उदाहरण के तौर 'इ' की मात्रा लगती कहीं है और उच्चरित कहीं और होती है। उदाहरण के लिए मंदिर शब्द को ले सकते हैं इ 'ि' की मात्रा अपने उपयुक्त स्थान से काफी पहले लगी है।

सन् 1947 ई. में आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में लिपि-सुधार समिति का गठन हुआ जिसमें समिति ने यह सुझाव दिया कि संयुक्त वर्णों के रूपों—क्ष, त्र, ज्ञ, श्र, घ आदि को निकाल देना चाहिए और ह, र, इ, ई की मात्रा तथा ध, भ को इस प्रकार लिखा जाना चाहिए—ध, भ।

देवनागरी लिपि विश्व की लिपियों में एक महत्वपूर्ण लिपि है। इसके अनेक शब्दों का जैसा उच्चारण होता है, उसी के अनुसार यह लिखी जाती है।

मात्राओं की दृष्टि से देखा जाए, तो हमारा ध्यान 'इ' स्वर और इसकी मात्रा 'ि' पर जाता है। यदि 'सि' प्रत्यांत शब्द हो, तो वह स्त्रीलिंग होता है जैसे, मति, शांति, दुर्गति, कृति आदि। इसके अलावा यदि 'टि' प्रत्यांत हो, तो वे ह्रस्व इकारांत होंगे—दृष्टि, पुष्टि, बुद्धि, शुद्धि। यदि 'त' प्रत्यांत शब्द हों और उसके पूर्व 'इ' भी ह्रस्व होंगे। जैसे—सम्मानित, लिखित, पठित आदि।

इसी तरह उ और ऊ की मात्राएँ हैं। ये दोनों व्यंजनों के नीचे लगाई जाती हैं। जैसे—सुधा, साधु,

सिंधु, जंतु आदि लेकिन 'र' व्यंजन में ये मात्राएँ इस प्रकार लगाई जाती हैं—पुरुष, सुरूष, कुरूष आदि।

'श', 'ष', 'स' इन तीनों वर्णों को लिखते समय प्रायः भ्रम हो जाता है। इनके प्रयोग में हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(क) 'ष' केवल संस्कृत के शब्दों में प्रयुक्त होता है जैसे—संतोष, मूषक, पुरुष, शुश्रूषा आदि। संस्कृत की जिन धातुओं में ष होता है, उनसे बने शब्दों में भी ष होता है। जैसे—शिष्ट, शेष आदि।

(ख) जब क, ख, ट, ठ और प, फ के पूर्व विसर्ग (:) हो तो संधि के बाद विसर्ग का ष हो जाता है और यदि किसी शब्द में 'स' हो और उसके पहले या आ के अतिरिक्त कोई भिन्न स्वर हो, तो 'स' के स्थान पर ष हो जाता है और ट वर्ण के पूर्व भी केवल ष ही आता है। इतना ही नहीं ऋ के बाद ष ही आता है। जैसे ऋषि, कृषि आदि।

(ग) संस्कृत शब्दों में च, छ के पूर्व भी श् ही आता है।

(घ) जहाँ श और स एक साथ प्रयुक्त हों, वहाँ श पहले आता है—शासन, प्रशंसा आदि। और यदि श और ष एक साथ आएँ, तो वहाँ भी श के पश्चात् ष आएगा। जैसे—विशेष, शोषण, शेष आदि।

(ण) यदि उपसर्ग निः या वि आए, तो 'स' अपने स्थान पर बना रहेगा। उदाहरणार्थ निःसंदेह, विस्तार आदि।

ब और व का प्रयोग—

इन दोनों अक्षरों के प्रयोग में भी अशुद्धियों का होना स्वाभाविक है। अतः इनके प्रयोग में सावधान रहने की आवश्यकता है।

यदि इन दोनों अक्षरों के प्रयोग में सावधानी न बरती गई, तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जैसे—बहन-वहन, बाद-वाद, बार-वार आदि।

अनुस्वार (.) एवं चंद्रबिंदु (ँ) का प्रयोग—

वर्ग के पाँचवें अक्षर अर्थात् इ, उ, ए, न, नू,

म् के बाद यदि उस वर्ग के चारों वर्णों में से कोई भी वर्ण आए तो पंचम अक्षर के स्थान पर अनुस्वार (ँ) का प्रयोग करना चाहिए। जैसे—कङ्गन, पुञ्ज, पण्डित, अंत, सम्पादक के स्थान पर क्रमशः कंगन, पुंज, पंडित, अंत, संपादक लिखना चाहिए। लेकिन यदि पंचम अक्षर के बाद किसी दूसरे वर्ग का कोई वर्ण आ जाए अथवा उसी वर्ण का पुनः पाँचवाँ वर्ण आ जाए, तो पंचम अक्षर की जगह अनुस्वार (ँ) नहीं होगा। जैसे—वाङ्मय, चिन्मय, उन्मुख, सम्मान आदि।

वस्तुतः अनुस्वार (ँ) और चंद्रबिंदु (ँ) में मौलिक अंतर है। अनुस्वार (ँ) स्वर के पश्चात् उच्चरित होता है जबकि चंद्र बिंदु (ँ) स्वर के साथ प्रयुक्त होता है। इन दोनों के लेखन में सावधानी न बरतने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उदाहरणार्थ—

| | |
|--------------------------|-------------|
| हंस (एक प्रकार का पक्षी) | हँस (हँसना) |
| रंग (वर्ण) | रँग (रँगना) |

छ और क्ष के प्रयोग—

इन दोनों के प्रयोग में भी प्रायः भूल हो जाती है। छ एक स्वतंत्र व्यंजन है जबकि क्ष (क्+ष) संयुक्त अक्षर है। इसके अलावा 'क्ष' संस्कृत के शब्दों में ही प्रयुक्त होता है। जैसे—कक्षा, दीक्षा, परीक्षा, साक्षी, अधीक्षक आदि।

ड, ढ और ङ, ढ का प्रयोग—

ड, ढ और ङ, ढ के प्रयोग को लेकर हमें सावधान रहने की आवश्यकता है। ड और ढ स्पर्श ध्वनियाँ हैं जबकि ङ और ढ उल्क्षिप्त। ड और ढ का प्रयोग शब्द के शुरु में होता है तथा ङ और ढ का प्रयोग शब्द के मध्य और अंत में किया जाता है। जैसे—ड—डोरी, डाल, डाकू। ढ—ढक्कन, ढेला, ढेर। इसी प्रकार ङ और ढ के उदाहरण देखिए—ङ— पङ्ना, लङ्गा, पेङ्गा। ढ—गढ़, गढ़ना, चढ़ना, गूढ़, मूढ़।

इसी प्रकार 'य' के प्रयोग को लेकर लोग असमंजस में पड़ जाते हैं। इस वर्ण का कब और कहाँ प्रयोग होना चाहिए, इस संदर्भ में डॉ. हरदेव बाहरी का यह सुझाव

ध्यातव्य है—“दो स्वरों के बीच में य की स्थिति बड़ी संदिग्ध है। नया, गया, आया, खाया, पिया, दिया, भैया, मैया में यह ठीक माना जाता है। विद्वानों का कहना है कि जिन शब्दों के एकवचन में 'य' हो उनके बहुवचन और स्त्रीलिंग रूपों में भी 'य' ही रहना चाहिए। जैसे—गये, गयी, नया, नये, लाया, लाये, लायी।”

आज्ञार्थ अन्य पुरुष में 'ए' लगता है। जैसे—लिखें, सुनें। इस 'ए' का पूरी तरह निर्वहन होना चाहिए। उदाहरण—खाए, सोए, बनाए, चलाए, पढ़ाए आदि। आइए, खाइए, दीजिए, चाहिए, जगाइए आदि।

भाषा के सौंदर्य के लिए उसकी वर्तनी का शुद्ध होना बहुत जरूरी है। वर्तनी शुद्धता उसके उच्चारण पर निर्भर होती है। वर्तनी शुद्ध हो, इसके लिए हमें मात्राओं एवं उनके सही प्रयोग पर विशेष ध्यान देना होगा। इसके अतिरिक्त वर्ण चिह्नों और उनके क्रम पर भी विचार करना चाहिए। इन दोनों बातों पर सावधानी बरतने से वर्तनी संबंधी अशुद्धियों के होने की संभावना कम हो जाती है। इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी की ये पंक्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं—“भाषाओं के लेखन में वर्तनी की संकल्पना प्रायः उतनी ही पुरानी है स्वयं जितना लेखन और उस लेखन में अशुद्ध न होने देने के लिए लोगों को दो बातों पर ध्यान रखना होता है—ठीक ध्वनि चिह्न प्रयुक्त हो और वे ठीक क्रम में आएँ।”

अच्छी वर्तनी के लक्षण पर प्रकाश डालते हुए रमेश चंद्र मेहरोत्रा का यह कथन द्रष्टव्य है, “अच्छी वर्तनी वह है, जो रटनी न पड़े, अर्थात् जैसे-जैसे आँख की चाल के साथ वर्णाक्षर बढ़ते जाएँ, वैसे-वैसे उनसे उच्चारण जुड़ता जाए। देवनागरी को हिंदी के लिए सर्वथा आदर्श लिपि सिद्ध करने के लिए हमें समय के साथ उसमें परिवर्तन करने ही पड़ेंगे। संशोधन में काट-छाँट अच्छी होती है।”

□

विजिटिंग प्रोफेसर
 तिब्बती केंद्रीय विश्वविद्यालय
 सारनाथ, वाराणसी

देवनागरी लिपि का मानकीकरण

—डॉ. कैलाशनाथ पांडेय

वेदवाणी से संबद्ध होने के कारण देवनागरी शास्त्रपूत है। इसका वर्तमान स्वरूप युगों के प्रयोग पर आधारित है। यदि तटस्थ, पूर्वग्रह और व्यामोह रहित होकर विचार करें तो हमें स्वीकारना होगा कि अन्य भारतीय लिपियों की अपेक्षा देवनागरी में ही अधिक भावाभिव्यक्ति संभव है। अधिसंख्य विद्वानों ने माना है कि देवनागरी संसार की समस्त वर्तमान लिपियों में अधिक सुगम तथा वैज्ञानिक है। इसमें 52 वर्ण हैं। इतने अधिक वर्ण विश्व की किसी अन्य लिपि में नहीं हैं। स्वर तथा व्यंजन चिह्न दो भागों में विभक्त हैं। स्वर जब स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते हैं तो वे एक वर्ण या अक्षर की ध्वनि को प्रकट करते हैं, पर जब उनकी मात्राओं का प्रयोग व्यंजनों के साथ होता है तो उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है। संस्कृत की सभी ध्वनियों के लिए इस लिपि में चिह्न विद्यमान हैं। सच पूछा जाए तो मराठी, संस्कृत, अंग्रेजी, गुजराती, बँगला आदि लिपियों का उदात्त संगुफन इसमें एक साथ देखने को मिल जाता है, जो एक विषाक्तशील लिपि के लिए शुभ संयोग है।

देवनागरी लिपि के मानकीकरण तथा सुधारों का एक जीवंत इतिहास है। समय-समय पर विभिन्न समितियों ने अपनी प्रज्ञा की छेनी-रेती से तराशकर देवनागरी को सक्षम, सुघड़ और मानक भाषा के

अनुकूल वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया। उक्त समितियाँ सरकारी व गैर-सरकारी दोनों तरह की थीं। अनेक प्रयास निजी स्तर पर भी किए गए। इनमें देशी-विदेशी दोनों तरह के लोग थे। पश्चिम के सर विलियम जॉंस, फ्रेडरिक जानशोर, पी.टी. प्रिंसेप, एफ.एस. ग्राउस आदि भाषा-चिंतकों ने हिंदुस्तान में प्रथमतः देवनागरी के मानकीकरण तथा उसके रूप में एक सार्वजनीन लिपि की अवधारणा पर बल दिया। हिंदी भाषा की लिपि यही देवनागरी है। भाषा के संदर्भ में सभी प्रबुद्धजन वर्तनी के महत्त्व को जानते हैं। शुद्ध वर्तनी किसी भी भाषा की प्राणशक्ति होती है। शुद्ध वर्तनी से ही भाषा में सौष्ठव और कमनीयता पैदा होती है। इसके बिना भाषा निष्प्राण, तेजहीन, ऊबड़-खाबड़ और विकारग्रस्त हो जाती है। उत्तम कोटि के विचार भी शुद्ध वर्तनी के अभाव में प्रदूषित हो जाते हैं। अब सवाल यह उठता है कि वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ आखिर किस कारण से जन्मती हैं? मेरे विचार से उक्त प्रश्न के कई उत्तर दिए जा सकते हैं, जैसे शब्दों की सही व्युत्पत्ति की जानकारी न होना, व्याकरण के ज्ञान का अभाव, जल्दी-जल्दी लिखने में वर्तनी पर ध्यान न देना, गलत वर्तनी लिखने की आदत पड़ जाना तथा कभी-कभी लेखन में एक विशेष चमत्कार या वैशिष्ट्य उत्पन्न करने के प्रयास में वर्तनी संबंधी भूलों का हो

जाना आदि। लेकिन उक्त कारणों के अलावा कुछ और भी कारण हैं, जिनसे वर्तनी संबंधी अनेकरूपता या भ्रांतियाँ पैदा हो जाती हैं, जैसे—देश-भेद, काल-भेद तथा उच्चारण-भेद। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि केवल हिंदी भाषा में ही उक्त कारणों से वर्तनी संबंधी दोष पैदा नहीं होते, बल्कि विश्व की अनेक भाषाएँ भी इस दोष से दूषित हुई हैं। उदाहरण के लिए हम अंग्रेजी भाषा को देख सकते हैं। अंग्रेजी भाषा में भी कई ऐसे शब्द हैं, जिनके दो-दो रूप अमेरीका और इंग्लैंड में प्रचलित हैं।

कुछ हिंदी विरोधियों का विचार है कि वर्तनी संबंधी दोषों (जैसे—गई-गयी, गए-गये) के कारण हिंदी भाषा वैज्ञानिकता की परिधि में नहीं आ सकती। एक ही शब्द के कई रूप भ्रम पैदा करते हैं। चूँकि हिंदी संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश से विकसित हुई है, इसलिए हिंदी की वर्तनी इन भाषाओं के प्रभाव के कारण विविधरूपा हो गई है। दूसरी बात यह कि अनेक भाषा-भाषियों के प्रभाव के कारण भी इसकी वर्तनी में भेद पैदा हुआ है एवं तीसरी बात यह कि चूँकि हिंदी बहुत बड़े क्षेत्रफल और रकबे की भाषा है, अतः यदि हिंदी में उच्चारण या लेखन संबंधी दोष उत्पन्न होता है तो बहुत आश्चर्य की बात नहीं। इधर, डी.पी. पटनायक इस संबंध में एक बहुत ही महत्त्व की बात कहते हैं—हमारे देश में लेखन की सुडौलता और शुद्धता पर सदा ही बल रहा है। निस्संदेह लेखन में सुलेख का उतना ही महत्त्व है, जितना भाषण में शुद्ध उच्चारण का। पर भारत में लिपि को एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक महत्त्व प्राप्त है। परिणामतः सुंदर, सुडौल तथा शुद्ध लेखन के लक्ष्य का पालन बड़े धार्मिक भाव से किया जाता है।

बहरहाल, हिंदी वर्तनी में उत्पन्न दोषों की खरोचों को दूर करने तथा उसके विविध रूपों में एकरूपता स्थापित करने अर्थात् वर्तनी में

मानकीकरण के लिए समय-समय पर सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर अनेक प्रयास किए गए, अनेक समितियों और विद्वतजनों की टोलियों का गठन किया गया, जिनका काफी बड़ा इतिहास है। भारतेंदु पूर्व या भारतेंदु युग में व्याकरणिक अस्थिरता, शब्द प्रयोग वैविध्य, शिथिल वाक्य-योजना, अन्वय रहितता बराबर बनी रही। भारतेंदु के पश्चात् बाबू राधाकृष्णदास और बाबू श्यामसुंदर दास आदि के प्रयास से काशी में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई और उसके तत्त्वावधान में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इस पत्रिका का संपादन कुछ दिनों बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सँभाला। द्विवेदीजी ने मैदान में आते ही व्याकरण की व्यवस्था पर ध्यान दिया। द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के माध्यम से गद्य तथा पद्य की भाषा का परिमार्जन कर खड़ी बोली को व्याकरण की दृष्टि से व्यवस्थित किया। इसके बाद छायावादी, प्रयोगवादी तथा प्रगतिवादी युग में हिंदी वर्तनी के मानकीकरण का प्रयास हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिंदी वर्तनी के मानकीकरण की दिशा में अनेक सुझाव हुए। भारत सरकार के निर्देश पर केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा भारतीय हिंदी परिषद् ने वर्तनी में उत्पन्न विसंगतियों को दूर करने के लिए अपनी-अपनी संस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा एक पुस्तिका 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी की वर्तनी का मानकीकरण' शीर्षक से प्रकाशित की गई, जिसमें हिंदी वर्णमाला दी हुई है। इसमें संयुक्त व्यंजन के रूप में चार वर्ण—क्ष, त्र, ज्ञ, श्र दिए गए हैं। हिंदी का एक अन्य संयुक्त वर्ण है—घ, यथा—यद्यपि, उद्यान, द्योतक। इस 'घ' को प्रकट करनेवाला कोई रूप स्पष्ट नहीं किया गया है। हिंदी वर्तनी के बारे में इस पुस्तिका में लिखा गया है। किसी भाषा के सीखने-सिखाने में सहायक या बाधा बननेवाले दो प्रमुख तत्त्व हैं—व्याकरण और

लिपि। लिपि का एक पक्ष है—सामान्य और विशिष्ट स्वरों के पृथक् प्रतीक वर्णों में समृद्धि, उनका परस्पर स्पष्ट आकार भेद, लिखावट में सरलता तथा स्थान प्रयत्न एवं लाघव प्रयत्न। लिपि का दूसरा पक्ष है—वर्तनी। एक स्वर को प्रकट करने के लिए विविध वर्णों का प्रयोग वर्तनी को जटिल बना देता है और यह लिपि का एक सामान्य दोष माना जाता है। यद्यपि देवनागरी लिपि में यह दोष न्यूनतम है, फिर भी उसकी कुछ विशिष्ट कठिनाइयाँ भी हैं।

- (1) अवयवों का पृथक् प्रयोग, जैसे विस्मयादि बोधक अवयव, ओह, हाय, आह आदि, निपात—ही, तो, न भी, भर मात्र आदि, क्रिया विशेषण—अब, जब, तब, कब, यहाँ, वहाँ, जहाँ, कहाँ, सदा, क्या आदि, समुच्चय बोधक अव्यय—कि, किंतु, अगर, मगर, यदि, लेकिन, परंतु, चाहे, या अथवा, तथा, और आदि संबंध बोधक अव्यय—के बाहर, के नीचे, के ऊपर। समस्त पदों के अवयव संयुक्त प्रयुक्त होंगे, जैसे—प्रतिदिन, जीवमात्र, यथाविधि।
- (2) अर्धस्वर—य, व के स्थान पर विकल्प से, ऐ स्वर प्रयोग उचित है, जैसे—गए, आए, हुवा, हुआ, कुएँ। यही नियम क्रिया-विशेषण, संज्ञा आदि सभी रूपों में लागू किया जाए। जैसे—नयी-नई, चतुरायी-चतुराई, लेकिन जहाँ य-श्रुति व्याकरणिक परिवर्तन से नहीं बनती, वहाँ परिवर्तन नहीं होगा, जैसे—स्थायी, उत्तरदायी।
- (3) कुछ द्विरूपी शब्दों को बनाए रखा जाए, जैसे—गर्दन-गरदन, कुरसी-कुर्सी।
- (4) तत्सम शब्दों की वर्तनी संस्कृतवत् रखी जाए।

संख्यावाची शब्दों के मानक रूप—

निदेशालय ने संख्यावाची शब्दों के मानक रूप निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किए—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस, बीस, इक्कीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस, तैंतीस, चौंतीस, पैंतीस आदि अट्ठावन, उनसठ, उन्नासी, इक्यानबे, बानबे, अट्ठानबे, निन्यानबे, सौ।

संविधान के निर्देशों के अनुसार हिंदी के मानकीकरण का दायित्व भारत का संघ प्रशासन वहन कर रहा है। इसके अधीन भारत सरकार ने हिंदी प्रचार-प्रसार की विविध उपयोगी योजनाओं को हाथ में लेने के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दावली निर्माण, देवनागरी लिपि के मानकीकरण एवं हिंदी वर्तनी के मानकीकरण की योजनाओं पर कार्य किया तथा मानकीकृत हिंदी वर्णमाला, परिवर्द्धित देवनागरी एवं मानक हिंदी वर्तनी से संबंधित सूची एवं पुस्तिकाएँ आदि प्रकाशित कर वितरित किया।

हिंदी वर्तनी में प्रचलित विविध रूपों को दूर कर उसमें एकरूपता स्थापित करने के उद्देश्य से शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने 1961 में आठ सदस्यीय हिंदी वर्तनी समिति का गठन किया। इस समिति ने 19 अप्रैल, 1961 को संपन्न अपनी अंतिम और चौथी बैठक में सभी पहलुओं पर गंभीर विचार-विमर्श के बाद हिंदी वर्तनी के संबंध में एक नियमावली निर्धारित की। इस नियमावली को अन्य विद्वानों एवं संस्थानों के पास प्रेषित कर उनके सुझावों के आधार पर समिति ने अपनी सिफारिशें सरकार के पास अप्रैल 1962 में प्रेषित कीं। शिक्षा मंत्रालय ने इस विषय पर विभिन्न भाषाविदों से हिंदी वर्तनी की सिफारिशों पर गंभीरता से विचार-विमर्श के बाद अपनी संस्तुतियाँ 1967 में 'हिंदी

वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर 1983 में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार ने देश के लगभग 50 भाषाविदों से परामर्श कर 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नाम से एक 30 पृष्ठीय पुस्तिका प्रकाशित कर प्रसारित की, जिसमें मानकीकरण से संबद्ध कुछ नए बिंदु जोड़ दिए गए। वस्तुतः मात्र सरकार के प्रयासों से हिंदी या किसी भाषा के मानकीकरण की समस्या का समाधान नहीं मिल सकता। हिंदी भाषा के प्रयोक्ता जब मानकीकृत रूप को प्रयोग में लाएँगे तभी भाषा में एकरूपता आ जाएगी तथा हिंदी भाषा शक्ति एवं एकता की भाषा बन पाएगी।

भारतीय वैज्ञानिकों ने देवनागरी के मानकीकरण और आधुनिकीकरण के संदर्भ में कंप्यूटरीकरण के लिए पहला प्रयास 1965 ई. में शुरू किया। सन् 1970 तक आते-आते इस सिलसिले में उन्हें काफी सफलता मिली। सच कहा जाए तो देवनागरी के कंप्यूटरीकरण का पहला श्रेय भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) कानपुर को है। इस संस्थान के कंप्यूटर वैज्ञानिकों में डॉ. आर.एम.के. सिन्हा, अनुसंधान इंजीनियर मोहन लांबे, प्रो. डी.एस. के मलिक आदि के अनथक श्रम से 1971-72 में एक बहुत ही सरल कुंजीफलक (Key-Board) और उसकी प्रणाली तैयार की गई। इसे सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हो सकनेवाला 'प्रोटॉ टाइप टर्मिनल' तैयार किया गया एवं यहीं पर पूर्णांकृत देवनागरी कंप्यूटर (Integrated Devanagari

Computer) भी जन्मा। इस देवनागरी कंप्यूटर का निर्माण महज छह महीने की अल्पावधि में ही किया गया। यहीं नहीं, नई दिल्ली में तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर इस कंप्यूटर को प्रस्तुत भी किया गया था। आपको यहाँ बता दें कि सौभाग्य से अमरीका और जापान में भी देवनागरी कंप्यूटर तैयार किए जा चुके हैं। आई.आई.टी. कानपुर ने अंग्रेजी-हिंदी का जो कंप्यूटर तैयार किया, वह अधिक विकसित किस्म का है। इसमें अंग्रेजी के 7 बिट मानक संकेत प्रणाली को 8 बिट प्रणाली में विस्तृत कर देवनागरी के लिए स्थान बनाया गया है। डॉट मैट्रिक्स से देवनागरी के जो अक्षर बनते हैं, वे काफी सुंदर दिखाई देते हैं।

हिंदी बहुविधि संपर्कशील भाषा है। सहजता और सरलता-स्वाभाविकता हिंदी का आकर्षण है। बोलियाँ इसकी सौंदी महक हैं तो पंजाबी, मराठी, बाँग्ला, गुजराती आदि भाषाओं के शब्द गमक। हिंदी बहुलताभरी भाषा है। अपने बहुविध संपर्क से कहीं यह कलकतिया हिंदी बन जाती है तो कहीं मुंबइया, तो कहीं अपने पिजिन भेद से मदरासी और दक्खिनी हिंदी बन जाती है। इस तरह यह जहाँ भी रहती है, वहाँ घुल-मिलकर अपना समाज निर्मित कर लेती है। अतः यहाँ यह आवश्यक है कि हिंदी की वर्तनी, लिपि देवनागरी को कंप्यूटर के नितांत अनुकूल बनाने के लिए, उसका मानक रूप तय करने के लिए कुछ जरूरी कदम उठाए जाएँ।

□

नवकापुरा, लंका,
जनपद-गाजीपुर-233001 (उ.प्र.)

सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है।

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

बहुरूपी हिंदी

—श्रीमती मालती जोशी

बहुत पुरानी बात है। मैं अपनी मौसी के पास नागपुर गई थी। खाना खाते समय मौसी ने अपने रसोइए के साथ परिचय करवाते हुए कहा, “हमारे पंडित भी भोपाल के हैं।”

पंडित ने पूछा, “बहिनजी क्या भोपाल से हैं?”

मैंने कहा, “पंडितजी! मैं तो भोपाल की हूँ, पर आप भोपाल के नहीं हैं। रीवा या उस तरफ के हैं?”

“कइसे पहिचाना?”

“बस अइसे ही।”

मौसी को भी आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, जिस टोन में उन्होंने ‘बहिनजी’ बोला, उसी समय मैं जान गई थी। फिर भी ‘कइसे पहिचाना’ ने तो बात साबित ही कर दी।

एक समारोह में मैं अतिथि के रूप में आमंत्रित थी। कार्यक्रम के आरंभ में मेरा परिचय पढ़ा गया। ये हिंदी की ख्यातनाम लेखिका हैं। हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं में लिखती हैं। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर लिखती हैं। कई सम्मानों से विभूषित हैं। उनका हर वाक्य मेरे कानों पर चाबुक की तरह पड़ रहा था। मेरी विरुदावली समाप्त होने तक मैं लहलुहान हो गई थी।

चाय-पान के समय मैंने उनसे सहज ही पूछ लिया, “आप कहाँ से हैं?” वे बोले, “मैं इंदोर से हूँ।” मैंने राहत की साँस ली। मेरी प्रशंसा करते समय वे ‘हैं’ की बिंदी भूल रहे थे और “हैं” को ‘हे’ कह रहे थे। “मैं” को भी उन्होंने ‘में’ कहा और “इंदौर”

को ‘इंदोर’। इसमें अवज्ञा अथवा उपहास का भाव नहीं था, यह तो उनके इंदौरी होने का परिणाम था।

इस तरह हर आदमी अपनी बोली से अपनी प्रांतीयता उजागर कर देता है। किसी का ‘फुनवा’ खो जाने की वजह से कोई ‘नरवसा’ जाए तो समझ लीजिए बिहार से है। अगर कोई स्त्री पाठक कहती है, “आपसे मिलना चाहती हूँ। कीसी दीन समय दीजीए।” तो समझ लेती हूँ—गुजरात से है। अगर कोई कहे, “अरुणाजी आपके बारे में बताई थी। फिर हम फोन भी किए। लेटर भी लिखे थे हम। पर जवाब मिलाच नहीं।” तो समझ लेती हूँ—बहन छत्तीसगढ़ से है।

एक बार एक सज्जन ने मेरी भी प्रांतीयता पहचान ली थी। एक बार मुंबई में टैक्सी से कहीं जाना पड़ा। मुंबई में कहीं भी जाइए—एक डेढ़ घंटा आराम से लग जाता है। उतरते समय ड्राइवर ने पूछा—“माताजी कहाँ से पधारी हैं?”

मैंने कहा—“भोपाल से।”

“मैं वही सोच रहा था। मुंबई में तो इतनी तमीज से कोई बात करता नहीं है।”

मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने तो कोई खास बात की नहीं थी। “यहाँ मोड़िए, यहाँ रोकिए, आपके पास पाँच सौ का छुट्टा है क्या?” बस इसी तरह के दो-चार जुमले बोले थे।

बाद में माजरा मेरी समझ में आ गया। मुंबई की

हिंदी भी मराठी से प्रभावित है। मराठी में 'आपण' शब्द अत्यंत आदरणीय और पूज्यनीय व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होता है। कामचलाऊ आदरसूचक शब्द 'तुम्हीं' है जो हिंदी में 'तुम' हो जाता है। अनजान व्यक्ति अगर 'तुम' कहकर संबोधन करे तो अपमानजनक लगता ही है विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार जैसे प्रांतों में।

वैसे मुंबई की स्थानीय हिंदी तो बहुत ही घटिया है। "कल शाम से हम इदरीच पडेला है। हमारे घर पानी च पानी भरेला है।" करेला, सडेला, पडेला—पता नहीं किस भाषा का अपभ्रंश है पर यह भाषा मुंबई की आम भाषा है।

अपनी भाषा की तारीफ सुनने का एक और प्रसंग याद आ रहा है। हम लोग मद्रास में (तब वह चेन्नई नहीं था) पान ले रहे थे। मैं बता रही थी, "चूना कम लगाइएगा, सुपारी मत डालिएगा, थोड़ी सी गुलकंद चलेगी। लौंग मत लगाइए—बेकार चली जाएगी। मैं निकाल ही देती हूँ।"

हम दोनों को पान देते हुए दुकानदार ने कहा, "आज कितने दिनों बाद देश की हिंदी सुनी है, मजा आ गया।" गोरखपुर से आए पानवाले भाई उस अहिंदी प्रदेश में रहते हुए शुद्ध हिंदी सुनने के लिए तरस गए होंगे, मैं समझ सकती हूँ।

मद्रास की एक और बात याद आ रही है। बिटिया छोटी होने के कारण उन दिनों बहू नौकरी नहीं कर रही थी। पर उसके पास घर पर कई बच्चे हिंदी सीखने आते थे। लोग जानते थे कि प्रदेश से बाहर पाँव रखते

ही हिंदी से सामना होगा, इसलिए बच्चों को तैयार कर रहे थे।

मैं अपने कमरे में बैठकर सुनती रहती थी, 'मुझे काना काया' फिर बहू कहती—नो नो—सेकंड क—मतलब 'ख'। फिर बच्चे कहते—मुझे (मैंने) खाना खाया। बच्चे कहते, 'मेरा बाई आया।' बहू समझाती—सेकंड 'ब' का मतलब 'भ' तब बच्चे कहते—मेरा भाई आया।

मुझे यह सब बड़ा मजेदार लगता। सिद्धि विनायक श्री गणेश दक्षिण में 'विनायगा' हो जाते हैं। मैंने अपनी पोती का नाम बड़े चाव से 'कनुप्रिया' रखा था। जब तक वे लोग मद्रास में रहे —बेचारी 'गनुप्रिया' ही बनी रही।

यह तो अक्षरों की बात हुई। कई बार शब्द भी अपने अर्थ बदल देते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, मालवा आदि में चाचा-चाची को काका-काकी कहा जाता है। पर पंजाब और दिल्ली में यह शब्द छोटे बच्चों के लिए प्रयुक्त होता है। आमतौर पर माँ के माता-पिता नाना-नानी कहलाते हैं। पर मालवा और निमाड़ अंचल में छोटे बच्चों के लिए यह संबोधन प्रयुक्त होता है।

पंजाब और दिल्ली में 'बीबीजी' आम संबोधन है। पर अगर मध्य प्रदेश में कोई इसका उपयोग करे तो मार खानी पड़ सकती है।

मालवांचल में 'बाई' शब्द आदरसूचक है। अक्सर लोग माँ को बाई कहते हैं। बड़ी बहन को भी प्यार और आदर से 'बाई' कहा जाता है।

हम लोग इंदौर में स्कूल में पढ़ते थे तो टीचर्स

को बाईजी कहते थे। मैं दसवीं में थी तब हमारे यहाँ एक नई टीचर आई। वे दिल्ली की थीं और इंदौर में ब्याही गई थीं। उन्होंने पहले ही दिन हम लोगों से हाथ जोड़कर कहा, “आप लोग चाहें तो मुझे नाम से बुला लिया करें, पर प्लीज ‘बाईजी’ न कहें।” पता चला, उत्तर भारत में कोठेवालियाँ ‘बाईजी’ कहलाती हैं। ये ‘कोठेवालियाँ’ शब्द भी हमने पहली बार सुना था। आज के मुकाबले में उस समय बच्चों का आईक्यू और जनरल नॉलेज कम ही था।

फिर उन्होंने ‘बहनजी’ कहने की सलाह दी। आजकल सुना है ‘बहनजी’ भी आउटडेटेड हो गया है। मिस और मेम का प्रचलन है।

यह ‘बहनजी’ शब्द भी प्रांत के अनुसार रूप बदलता है। बहनजी, बेहनजी, बहिनजी, भैनजी, बेन आदि।

मेरे बंगाली समथी सालो-साल भोपाल में रहे पर लिंग भेद न समझ पाए। अक्सर अपने दामाद के बारे में पूछते, “नंदू ऑफिस गई?” तब हँसी भी आती और गुस्सा भी। बाद में मैंने मन को समझा लिया कि जिस भाषा में सुंदरता भीषण हो सकती है, मिठास दारुण हो सकती है, वहाँ कुछ भी हो सकता है।

अंत में एक हैदराबादी लटका, हम किसी के यहाँ मेहमान थे। मेजबान महिला ने मुझसे कहा, “आप पानी नहा लीजिए। फिर नाश्ता लगाती मैं।”

मेरा मन हुआ उनसे कहूँ—आप कहती हैं तो आज पानी से नहा लेती हूँ। वैसे रोज दूध से नहाती हूँ।

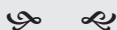
ऊपर दिए संस्मरणों का उल्लेख किसी की गलती निकालना या किसी का उपहास करना नहीं है। उद्देश्य यह है कि हम हिंदी के बहुरूपी स्वरूप को समझें। हिंदी अपने अलग-अलग रूपों में भारत में और विश्व के अलग-अलग स्थानों पर छाई हुई है। स्थानीयता का सम्मान करते हुए हिंदी ने अपना रूप बदला भी है और उस स्थान की आवश्यकता के अनुरूप अपने को ढाला भी है। हिंदी का यही लचीलापन और सर्वसमावेशी भाव हिंदी को इतर भाषाओं से श्रेष्ठ बनाता है। ‘हिंदी’, ‘शुद्ध हिंदी’, ‘हिंदुस्तानी’ जैसे भेदभाव में न पड़कर यदि हम सर्वसुलभ, सर्वसाध्य हिंदी की बात करें तो निश्चित ही हम बेहतर कल की ओर बढ़ रहे होंगे।

□

119, मदनलाल ब्लॉक,
एशियाड गेम्स विलेज,
नई दिल्ली-110049

‘अगर स्वराज अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय का और उन्हीं के लिए होनेवाला है तो निस्संदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों निरक्षरों, निरक्षर बहनों, दलित और अत्यंजों का हो और इन सबके लिए होनेवाला हो, तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।’

—महात्मा गांधी



‘अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए अपने लड़के-लड़कियों की शिक्षा बंद करवा दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बरखास्त करा दूँ। मैं पाठ्यपुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूँगा।’

—महात्मा गांधी

देवनागरी : विश्व की आधुनिकतम लिपि

—डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र

ऋषि-मुनियों ने अपने ज्ञान को चिर-संचित रखने के लिए श्रुति-स्मृति यानी वाचिक परंपरा को ही विशेष निर्भर योग्य माना। इसलिए वाणी की शुद्धता पर अधिक जोर दिया। यहाँ तक कि भारत में सदियों तक 'शिक्षा' का अर्थ उच्चारण का शिक्षण ही रहा। व्याकरण के पितामह महर्षि पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में सूत्र रूप में जो भाषिक व्यवस्था की, उसे स्पष्टतर करने के लिए दो सौ वर्ष बाद महर्षि कात्यायन ने उन सूत्रों पर वार्तिक लिखा और बचे-खुचे प्रश्नों के समाधान के लिए महर्षि पतंजलि ने 'महाभाष्य' रचा, जो भाषा के दर्शन की विशद व्याख्या है। इतना सब होते हुए भी पाणिनि की स्थापनाओं के अनुशीलन के लिए उनके अनुयायियों ने 'पाणिनीय शिक्षा' की रचना की, जिसमें मुख्यतः उच्चारण की बारीकियों को समझाया गया है। इसलिए कि जब सारी विद्या कंठस्थ रखने की अनिवार्यता है, जब सारा ज्ञान, सारी विद्या 'वाङ्मय' है, तब वाणी को शुद्ध रखना ही पड़ेगा। उच्चारण की विधि बताते हुए उसमें कहा गया है कि जैसे बाधिन अपने नवजात शिशु को अपने दाँतों से संतुलित ढंग से पकड़कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है, वैसे ही शब्दों का उच्चारण अत्यंत सावधान होकर करना चाहिए। उसमें उच्चारण की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए वृत्रासुर की कथा दी

गई है, जिसने इंद्र के वध के लिए बहुत बड़ा यज्ञ किया था, मगर उसमें हवन के मंत्र 'इंद्रशत्रुर्वर्धस्व' के उच्चारण में श्रोताओं द्वारा उदात्त-अनुदात्त की भूल के कारण परिणाम उलटा हो गया।

मानव सभ्यता के भाषिक विकास में जो तीन महत्त्वपूर्ण पड़ाव रहे हैं, वे हैं—आंगिक संकेतों को ध्वनि-समूह में परिवर्तित कर शब्द बनाना, उन शब्दों को बोलना और फिर उन्हें लिपिबद्ध करना। इन तीनों भाषिक क्रांतियों में हमारे पूर्वजों ने अग्रणी भूमिका निभाई, जिसके कारण भारत सहस्राब्दियों तक विश्व-गुरु रहा। आज चौथी क्रांति के रूप में 'संगणक तंत्र' का युग आया है, जिसमें सबसे उपयुक्त लिपि होते हुए भी हमारी जड़ता के कारण देवनागरी लिपि समुचित स्थान नहीं पा रही है, जिसका नुकसान भारत को ही नहीं, संपूर्ण विश्व को हो रहा है। यदि थोड़ा विस्तृत फलक पर सोचें, तो देवनागरी वर्णमाला केवल संस्कृत, हिंदी, मराठी, मैथिली और कुछ आदिवासी भाषाओं की ही वर्णमाला नहीं है, बल्कि सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ श्रीलंका की सिंहली, तिब्बत की तिब्बती, नेपाल की नेपाली, म्यांमार की बर्मी, थाईलैंड की थाई, यहाँ तक कि इंडोनेशिया और मलेशिया तक की भाषाओं की वर्णमाला है। उनकी लिपियों की आकृतियाँ भिन्न भले दिखती हैं, मगर



सभी के जीन्स एक हैं। जैसे एक माँ-बाप की संतानें आकृतियों से भले भिन्न हों, मगर सबके भीतर एक ही जींस है। अन्य विकसित राष्ट्रों की भाँति अगर हमने अपनी वर्णमाला के वैशिष्ट्य को समय से जान लिया होता तो चौथी (कंप्यूटर) क्रांति के दौर में हम नहीं पिछड़ते! कितनी बड़ी विडंबना है कि विश्व की सिलिकन वैली में भारतीय युवकों का दबदबा होते हुए भी भारतीय वर्णमालाएँ विश्व की अन्य प्रमुख वर्णमालाओं की तुलना में बहुत पीछे हैं।

अपनी मानसिक गुलामी की वजह से भारत का शिक्षित वर्ग अंग्रेजी को ही ओढ़ता-बिछाता रहा और दुनिया उस पर हँसती हुई आगे बढ़ गई!

मानव ने सर्वप्रथम नाद से शब्द की परिकल्पना की। फिर उसे स्थायित्व देने के लिए चित्रलिपि का आविष्कार किया। गुहचित्रों से अक्षरों का आविष्कार हुआ। तदनंतर वर्णमाला

विकसित हुई। अक्षरमाला पर आधारित लिपि में केवल ध्वनियों के चिह्न ही सीखने होते हैं। इन चिह्नों को जोड़कर उस भाषा के सभी शब्द पढ़ सकते हैं। अपरिचित शब्दों को भी पढ़कर उच्चारित किया जा सकता है। इसके विपरीत, चीनी-जापानी भाषा की चित्रलिपियों में सैंकड़ों-हजारों चिह्न सीखने पड़ते हैं। लेकिन इसका एक बड़ा लाभ भी है। चीनी और जापानी भाषा में चिह्न को देखकर चीनीभाषी और जापानीभाषी दोनों 'बिल्ली' का अर्थ प्राप्त करते हैं, लेकिन जापानी इसे 'नेको' पढ़ते हैं और मंदारिन में चीनी लोग इसे 'माओ' पढ़ेंगे।

◆ ◆ ◆

देवनागरी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है—कंप्यूटर के साथ इसका तालमेल बिठाना। नागरी लिपि पूर्ण तर्क-संगत, आधुनिकतम और सर्वाधिक वैज्ञानिक होने के बावजूद भारतीयों में विलुप्त राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण आज के दौर में पिछड़ रही है। यदि भारतीय विकसित देशों की ओर नजर दौड़ाएँ तो उन्हें पता चलेगा कि कितनी कठिनाइयों को झेलकर जापानियों ने अपनी चित्रलिपि को कंप्यूटर की लिपि बनाया।

भारतीय मनीषियों ने ध्वनि के उच्चारण में शरीर के विभिन्न अवयवों की हरकतों को पहचानकर शरीर-विज्ञान के अनुरूप भारतीय वर्णमाला की रचना की। सर्वप्रथम स्वर और व्यंजन दो पृथक् वर्ग बनाए। फिर व्यंजनों में कंठ-तालु-मूर्धा-दंत-ओष्ठ से उच्चरित व्यंजनों को वर्णमाला में क्रमशः स्थान दिया। ऋषियों ने यह भी पाया कि प्रत्येक वर्ग के पाँचों अक्षर—क ख ग घ ङ का एक क्रम से उच्चारण करने पर शरीर की ऊर्जा कम खर्च होती है। हमारे यहाँ मान्यता है कि अमंत्रमक्षरम् नास्ति।

अर्थात् वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर में मंत्र-शक्ति है। विश्व की अन्य तीन प्रमुख वर्णमालाओं (चीनी, यूरोपीय और अरबी-फारसी) में यह सूक्ष्म विवेचन नहीं है।

भारत में लेखन का इतिहास भी कम प्राचीन नहीं है। वेदों को लिखना मना था, मगर महाभारत को तो महर्षि व्यास ने

गणेशजी को कहकर लिखवाया था। मतलब यह कि वाचिक परंपरा का वर्चस्व होते हुए भी लिपि का आविष्कार विधिवत् हो चुका था, क्योंकि संस्कृत के श्लोकों को लिपिबद्ध करना मामूली बात नहीं थी। वैसे, भारत की सबसे पहली लिपि सरस्वती लिपि (सिंधु लिपि) मानी जाती है। इसी प्राचीन सरस्वती लिपि से ब्राह्मी लिपि निकली। सरस्वती लिपि के तिरोहित होने के बाद संस्कृत लिखने के लिए ब्राह्मी लिपि ही प्रचलन में आई। यह वैदिक शिक्षा पर आधारित लिपि है और आज की देवनागरी की भाँति बाएँ से दाएँ की ओर लिखी जाती थी। ये प्राचीन

लिपियाँ आकृतियों में कुछ-कुछ भिन्नता लिये हुए हैं—तमिल लिपि, देवनागरी लिपि, मैथिली, बांग्ला, असमिया, ओडिया लिपि, गुजराती, गुरुमुखी लिपि, मलयालम लिपि, सिंहल लिपि, कन्नड़ लिपि, तेलुगु लिपि, तिब्बती लिपि, भुजिमोल, कोरियाली, थाई, बर्मेली, लाओ, ख्मेर लिपि आदि।

भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रांतों में चौथी-तीसरी शताब्दी ई.पू. में खरोष्ठी लिपि भी प्रचलित थी, जो अरबी लिपि की तरह दाएँ से बाएँ को लिखी जाती थी। भारत में इस्लामी शासन के साथ जैसे अरबी-फारसी लिपि के आधार पर दाईं ओर से बाईं ओर लिखी जानेवाली उर्दू लिपि बनाई गई, उसी प्रकार भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर ईरानियों का अधिकार हो जाने के बाद वहाँ ई.पू. पाँचवीं शताब्दी में आरमेई लिपि के आधार पर दाईं ओर से बाईं ओर लिखी जानेवाली खरोष्ठी लिपि का निर्माण हुआ। ईरान के हखामनी शासन-काल में संपूर्ण पश्चिम एशिया में आरमेई भाषा तथा लिपि का प्रचार था। यूनानियों के बाद शक, क्षत्रप, पहलव, कुषाण तथा औदुंबर राजाओं ने भी इस लिपि का प्रयोग किया।

भाषाओं को लिखने के लिए प्रयुक्त मानक प्रतीकों के क्रमबद्ध समूह को वर्णमाला (वर्णों की माला यानी समूह) कहते हैं। देवनागरी की वर्णमाला में अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लू ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ

ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह को 'देवनागरी वर्णमाला' कहते हैं। देवनागरी लिपि में प्रत्येक वर्ण और उसका नाम एक ही है। रोमन, अरबी आदि में यह वैज्ञानिक व्यवस्था नहीं है।

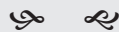
देवनागरी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है—कंप्यूटर के साथ इसका तालमेल बिठाना। नागरी लिपि पूर्ण तर्क-संगत, आधुनिकतम और सर्वाधिक वैज्ञानिक होने के बावजूद भारतीयों में विलुप्त राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण आज के दौर में पिछड़ रही है। यदि भारतीय विकसित देशों की ओर नजर दौड़ाएँ तो उन्हें पता चलेगा कि कितनी कठिनाइयों को झेलकर जापानियों ने अपनी चित्रलिपि को कंप्यूटर की लिपि बनाया। इसी तरह रोमन जैसी अराजक लिपि कंप्यूटर के उपयुक्त लिपि बन गई, मगर राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षितों की उपेक्षा की शिकार हिंदी उत्तरोत्तर पिछड़ रही है। स्वतंत्र भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए यह अच्छा लक्षण नहीं है। हमारी वर्णमाला और उसमें संरक्षित विशाल ज्ञान-भंडार तभी बच पाएगा, जब अगली कई सदियों पर राज करनेवाले कंप्यूटर तंत्र से इसे पूरे मन से और पूरी ऊर्जा से जोड़ दिया जाए।

□

देवधा हाउस, 5/2 वसंत विहार एन्क्लेव,
 देहरादून-248006

यदि हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के विरुद्ध अंग्रेजी के षड्यंत्र को विफल न किया गया तो जनतंत्र एक माखौल बनकर रह जाएगा।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी



भारत में अंतःप्रांतीय व्यवहार के लिए समान भाषा का दर्जा हिंदी को ही दिया जा सकता है।

—डॉ. भंडारकर

भाषा पुल है मन के दूरस्थ किनारों पर...

—डॉ. नंदलाल पाठक

भाषा मानवता की सबसे बड़ी उपलब्धि है, संपत्ति है। मनुष्य आग का उपयोग करने से पहले ही भाषा का उपयोग करता आ रहा है। उसे नहीं मालूम था कि उसकी वाणी से जो ध्वनियाँ निकलती हैं, उनमें एक व्यवस्था है। परिस्थितियों से उत्पन्न इन ध्वनियों को अनजाने व्यवस्थित करने का काम स्वयं वह कर रहा था, उसके पूर्वज कर रहे थे। यह व्यवस्था ही भाषा है। मनुष्य के पास अन्य प्राणियों की तुलना में एक उन्नत मस्तिष्क है, जिसकी सहायता से वह भाषा का विकास करता रहा और आज वही भाषा सभ्यता के केंद्र में है।

भाषा का प्रारंभ वाक्य से हुआ। मुँह से निकली हुई कोई भी ध्वनि जो मन की बात को अभिव्यक्ति दे सकती थी, वाक्य बन गई। वाक्य का अर्थ है बोलने लायक, अर्थ देने में समर्थ। फिर वाक्य का रूप बदला, शब्द बनते गए। धरती पर जहाँ-जहाँ मानवता का निवास था, भाषा के माध्यम से मानवता का अलग-अलग विकास होता रहा। मानव मात्र मन-ही-मन है। भाषा उसकी उसके मन की यात्रा है। मनुष्य भाषा बोलता ही नहीं वह सोचता भी भाषा में है। विचार की रेलगाड़ी भीतर ही भीतर मन की पटरियों पर चलती रही है। भाषा के बिना बाहर ही क्या भीतर का भी कारोबार नहीं चल सकता।

भाषा को संस्कृत वाणी कहते हैं। वाणी माने

जीभ व मुँह के भीतर स्थित एक अंग। हम जीभ से बोलते हैं, इसलिए भाषा को वाणी कहा। सारी दुनिया की भाषाओं में भाषा के अर्थ में एक ऐसा भी शब्द मिलता है, जिसका संकेत मुँह के भीतर के अंग जीभ से होता है। अंग्रेजी में टंग, फारसी में जुबान, अरबी में लिस्सान, जर्मन में श्प्रारवे इत्यादि। राजा मन है। वाणी तो मन की दासी है। उपनिषद् ने कहा है “मन एवं मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।” मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण मन है। यही मन वाणी में खुलता है और तहलका मचा देता है। यह दुनिया भाषाओं का मेला है। जितने मन उतने मुँह, उतनी बातें।

मैं नहीं कहता, लोग कहते हैं—औरतों की जीभ बहुत चलती है। मैं कहता हूँ चलनी भी चाहिए, नहीं तो बच्चे गूँगे रह जाएँगे। माताएँ केवल जन्मदात्री ही नहीं, भाषादायी भी होती हैं। सारी दुनिया मातृभाषाओं से भरी है। पितृभाषा कहीं नहीं होती। कैसे होगी? बाप में इतना धैर्य नहीं कि वह नन्हे शिशु से व्यर्थ की बकवास करता रहे। बच्चे को दूध पिलाने का काम माँ का ही होता है, इसलिए बच्चा सबसे अधिक समय माँ की संगत में बिताता है। माँ उसके साथ खेलती है, चूमती-चाटती है और बीच-बीच में बोलती जाती है। बित्ते भर का है लेकिन सब समझता है। बहुत बदमाश है। एक

दम बाप पर गया है... एक पक्षीय संवाद चलता है और बच्चे के मानस पर ध्वनि के संस्कार पड़ते रहते हैं और धीरे-धीरे भाषा का रूप लेते रहते हैं। यह है मातृभाषा के रूप लेने की प्रक्रिया।

भाषा समय के साथ चलती है। साक्षात् बनती है न बिगड़ती है। वह केवल बदलती रहती है। इस बदलने के कई कारण हैं। जितनी जिह्वाएँ उतने उच्चारण। टेलीफोन पर हम अगणित ध्वनियाँ सुनते हैं, उन्हें पहचान लेते हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का

हिंदी के परिप्रेक्ष्य में सौभाग्य से हमें आज एक ऐसा विश्वपुरुष मिला है, जिसे विश्व सुन रहा है। वह दिन दूर नहीं जब विश्व में हिंदी कविता भी ध्यान से सुनी जाएगी।

उच्चारण दूसरे के उच्चारण से भिन्न होता है। “मुंडे-मुंडे मति: भिन्ना:” इसी प्रकार प्रत्येक शब्द मन में पहुँचकर अर्थ की दृष्टि से भिन्न होता है। यह सब अनजाने चलता रहता है। लोग बोलते रहते हैं,

भाषा पर हमें और आपको छोड़कर कौन ध्यान देता है? इसलिए भाषा आगे बढ़ जाती है। ध्वनि और अर्थ दोनों में। व्यक्ति-समाज और देश की महत्ता उसकी भाषा को भी महत्त्वपूर्ण बना देती है। हिंदी के परिप्रेक्ष्य में सौभाग्य से हमें आज एक ऐसा विश्वपुरुष मिला है, जिसे विश्व सुन रहा है। वह दिन दूर नहीं जब विश्व में हिंदी कविता भी ध्यान से सुनी जाएगी।

ये रंग-बिरंगे फूलों जैसी भाषाएँ
 इनसे शोभित होता बगिया का आँचल है।
 दिल के कालेपन का इलाज करना होगा
 आदमी छली होता है, भाषा निश्छल है।
 भाषा तो है मुस्कानों का ही एक रूप
 अधरों से बहता यह आँखों का पानी है।
 भाषा पुल है, मन के दूरस्थ किनारों पर
 पुल को दीवार समझ लेना नादानी है।

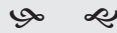
□

कार्याध्यक्ष

महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी,
 मुंबई

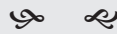
हिंदी हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक व्यवहार में आनेवाली भाषा है।

—राहुल सांकृत्यायन



हिंदी राष्ट्रीयता के मूल को सींचती है और दृढ़ करती है।

—राजर्षि टंडन



हिंदी ही एक भाषा है, जो भारत में सर्वत्र बोली और समझी जाती है।

—डॉ. ग्रियर्सन

खंड : सप्तम

जनमाध्यम और हिंदी

हिंदी : संभावनाएँ एवं चुनौतियाँ

—श्री हरिवंश

दुनिया में संवाद, संपर्क, सरोकार और बाजार के विस्तार के लिए प्रयोग की जा रही तकरीबन 3500 भाषाओं और बोलियों के बीच हिंदी की क्या स्थिति है ? आज संसार में 16 भाषाएँ ऐसी हैं, जिनके बोलनेवालों की संख्या पाँच करोड़ से अधिक है। यह गर्व की बात है कि इन 16 में पाँच भारतीय भाषाएँ हैं। हिंदी की बात करें, तो हिंदी दुनिया की चार प्रमुख भाषाओं में शामिल है। हाल में आए 2011 की जनगणना के भाषा संबंधी आँकड़े बता रहे हैं कि हिंदी भारत की सबसे तेजी से बढ़नेवाली भाषा है। 2001 से 2011 के बीच के दस सालों में हिंदी बोलनेवाले लोगों संख्या में करीब 10 करोड़ की वृद्धि दर्ज की गई है। आँकड़ों के मुताबिक हिंदी की वृद्धि दर 25.19 फीसदी रही। इससे पता चला कि लगभग 44 फीसदी भारतीयों की मातृभाषा हिंदी है। 2001 में यह 41.03 फीसदी थी, अब 43.63 फीसदी है। ताजा आँकड़ों के मुताबिक भारत में सबसे ज्यादा करीब 52 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं। जनगणना के आँकड़ों से इतर भाषाविदों का कहना है कि भारत में हिंदी समझने-बोलनेवालों की संख्या 70 करोड़ है। प्रयोग की दृष्टि से चीन की मंदारिन (चीनी भाषा) के बाद दुनिया की दूसरी बड़ी भाषा है। इस तरह देश की सबसे तेजी से बढ़ती भाषा हिंदी है। दिसंबर 2016 में वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम ने जो पावर इंडेक्स तैयार किया है, उसके अनुसार दुनिया की 10 शक्तिशाली

भाषाओं में हिंदी शामिल है। इस फोरम की रिपोर्ट में यह निष्कर्ष भी है कि 2050 तक हिंदी सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की कतार में होगी। हिंदी की बढ़ती ताकत और बढ़ते दायरे को हम सिर्फ इकोनॉमिक फोरम के इंडेक्स से ही नहीं समझ सकते। दुनिया के अलग-अलग प्लेटफॉर्मों पर मौजूद आँकड़े और तथ्य इसके विस्तार को पुष्ट करते हैं। पिछले वर्ष बिजनेस स्टैंडर्ड अखबार की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के 30 देशों के करीब 100 विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन केंद्र खुले हैं, चल रहे हैं। एक ताजा रिपोर्ट यह है कि दुनिया के 176 विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। इन संस्थानों में केंब्रिज यूनिवर्सिटी (ब्रिटेन), पेइचिंग यूनिवर्सिटी (चीन), टोक्यो यूनिवर्सिटी (जापान), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी (ब्रिटेन), अमेरिका के येल, न्यूयॉर्क, विस्कॉसिन यूनिवर्सिटी जैसे संस्थान शामिल हैं। यू.एस. सेंसस 2011 कहता है कि पिछले एक दशक में यानी 2000 से 2011 के बीच अमेरिका में हिंदी बोलनेवालों की संख्या में 105 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। हिंदी का यह गौरवशाली सफर, सुनहरे वर्तमान और आगत भविष्य की झलक देता है। इस मुकाम तक हिंदी को पहुँचाने में किसी एक कारक की भूमिका प्रभावी नहीं रही। राजनीति, साहित्य, सिनेमा, बाजार और उससे ज्यादा आम लोगों के सरोकार ने इसे इतना विस्तार दिया है।

आज हिंदी, देश में राजनीति की भाषा है। सत्ता पाने की भाषा है। चुनावों में संवाद की भाषा है। डॉ. लोहिया ने बहुत पहले हिंदी को देशव्यापी बनाने का श्रेय फिल्मों को दिया था। अब इस सूची में टी.वी. सीरियल्स, सोशल मीडिया, समाचार-पत्र, रेडियो वगैरह जुड़ गए हैं। आज किसी उत्पाद या उपभोग की चीज का जो विज्ञापन, बड़ा बाजार गढ़ता है, उसकी सबसे सशक्त भाषा हिंदी ही है। यह लोगों से दिल और भावना के स्तर पर जोड़नेवाली भाषा है। इस तरह आज हिंदी बोलनेवालों की तादाद दुनिया में बढ़ी है। हिंदीभाषी इन बातों से उत्साहित होते हैं कि हिंदी, विश्व भाषा बनने की राह पर है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति ओबामा ने अमेरिकियों को कई मौकों पर सलाह दी कि वे हिंदी सीखें। आज अमेरिका की शिक्षण संस्थाओं में हिंदी सिखाने के लिए वहाँ की सरकार अनुदान दे रही है। रूस के पीटर बरान्निनिकोव, जापान के अंकियो हागा से लेकर ब्रिटेन के हिंदी साहित्य के इतिहासकार, व्याकरण के विद्वान रोनाल्ड स्टुअर्ट मेक्ग्रेगोर जैसे अनेक विदेशी विद्वानों ने हिंदी में बड़े मौलिक काम किए हैं। भारत के संदर्भ में देखें तो लगभग सभी विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। उत्तर से दक्षिण, पूरब से पश्चिम तक हिंदी पढ़नेवाले हैं। कोई ऐसा विश्वविद्यालय नहीं, जहाँ हिंदी का विभाग नहीं हो। हिंदी भाषा की समृद्धि के लिए न जाने कितनी संस्थाएँ आजादी से पहले और आजादी के बाद बनीं। गांधी के प्रभाव में न जाने कितने गैर हिंदीभाषी लोगों ने हिंदी के लिए अपना जीवन लगा दिया। संस्थाओं की बात करें, तो नागरी प्रचारिणी सभा (बनारस), हिंदी विद्यापीठ, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, राष्ट्रभाषा परिषद, साहित्य अकादमी, केंद्रीय हिंदी संस्थान-आगरा, उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान जैसे कार्यरत अनेक संस्थान हैं। दिल्ली, लखनऊ, आगरा, राजस्थान, भोपाल से लेकर वर्धा, हैदराबाद,

चेन्नई, तिरुअनंतपुरम समेत देश के कई भागों में हिंदी के नाम पर पसरी और फैली नई-पुरानी संस्थाएँ हैं। वर्धा में महात्मा गांधी अंतराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय जैसा संस्थान है, जिसकी शाखा आज देश के कई शहरों में है, तथा दुनिया के दूसरे देशों में भी है। पूर्वोत्तर भारत में नेहू जैसे विश्वविद्यालय हैं। ऐसे अनेक सरकारी, गैर सरकारी प्रयासों से हिंदी फैली और बढ़ी है। हिंदी सिनेमा की अपनी दुनिया है, जिसने हिंदी को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये सारे तथ्य हिंदी को विश्व भाषा बनानेवालों का उत्साह बढ़ानेवाले हैं। हिंदी के सुखद भविष्य के प्रति आश्वस्त करनेवाले हैं। लेकिन यह एक पक्ष है। यह शुक्ल पक्ष है। अगर इसके दूसरे पक्षों पर बात करें और व्यावहारिक धरातल पर हकीकत का आकलन करें तो सब कुछ सुनहरा नहीं दिखता। आज जरूरत है कि हम आत्मनिरीक्षण करें कि ऐसे आयोजनों से हिंदी क्या ग्रहण कर रही है ?

हिंदी को लेकर आज जो सांस्थानिक प्रयास हो रहे हैं या जो कोशिशें चल रही हैं, क्या उनसे विश्वभाषा बनने का सपना पूरा होगा ? हिंदी के संबंध में वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम ने पावर इंडेक्स के तहत जिस सपने की झलक दिखाई है, वह साकार होगा ? उसी फोरम ने यह भी आगाह किया है कि हिंदी का इतना विस्तार तो हो रहा है, तेजी से बढ़त भी हो रही है लेकिन यह अर्थव्यवस्था में भूमिका निभाने में 16वें नंबर पर है। संचार में आठवें नंबर पर है। कूटनीति की भाषा बनने में दसवें नंबर पर है। असल चुनौतियाँ यही हैं कि क्या हिंदी की संस्थाओं, हिंदी प्रेमियों या हिंदी पक्षधरों की ओर से कोई ऐसा प्रयास हो रहा है कि हिंदी समग्रता में सिरमौर भाषा बने ? संयुक्त राष्ट्र संघ में 1977 से अब तक हिंदी में बोलनेवाले भारत के कई राजनेता हो गए, पर क्या हिंदी संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनी ? 50-60 की दुनिया अलग थी। जब भाषा की पहचान अस्तित्व से जुड़ी थी। भाषा देश, संस्कृति

और अस्मिता की पहचान के रूप में स्वीकृत थी। पर आज की दुनिया बदल चुकी है। सूचना क्रांति और दूरी के खत्म होने ('डेथ ऑफ डिस्टेंस' पर लगभग दो दशक पहले द इकोनोमिस्ट में कार्यरत एक महिला पत्रकार फ्रांसिस केर्नक्रास की चर्चित पुस्तक आई थी) ने दुनिया को ग्लोबल विलेज बना दिया है। इस नए दौर का मूल मंत्र है—आर्थिक विकास अधिकाधिक मुनाफा कमाना (आज प्रबंधन का आदर्श वाक्य है—प्रॉफिट मेक्सिमाइजेशन)। इस ढाँचे में हिंदी कहाँ है? क्या वह आर्थिक विकास, प्रगति और नौकरी की भाषा है? दुनिया को तेजी से बदल रहे विज्ञान या टेक्नोलॉजी की भाषा या माध्यम हिंदी है? अगर नहीं है, तो इसके लिए कहाँ कोशिश हो रही है? एक दौर था, जब हिंदी लेखन से हमें अपने बदलते समाज की आहट मिलती थी। सामाजिक बदलाव, समाजशास्त्र, संस्कृति, मूल्य, सरोकार वगैरह हिंदी उपन्यासों, कथाओं, कविताओं, नाटकों से प्रतिबिंबित होते थे। विद्यार्थी जीवन में जब हमने चार उपन्यास पढ़े, राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' या श्रीलाल शुक्ल की कृति 'रागदरबारी' या शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी', तो लगा हिंदी इलाके को समझने-जानने के लिए किसी समाजशास्त्री को पढ़ने की जरूरत नहीं। प्रसाद, निराला, पंत, बाद में नागार्जुन, अज्ञेय, भारतीजी वगैरह की पीढ़ी या उस दौर को छोड़ भी दें, तो धूमिल जैसे कवियों ने बेचैन किया। आज हिंदी समाज कई स्तरों पर करवटें ले रहा है, अंदर से बेचैन-तनावपूर्ण है, पर यह बदलाव, बेचैनी या भावनाएँ या हालात कहाँ प्रतिबिंबित हो रहे हैं? जैसे बंगाल, असम, महाराष्ट्र, केरल वगैरह में साहित्य मंच या साहित्यकार अपने-अपने समाज में प्रतिष्ठित हैं, हिंदी में क्या ऐसी स्थिति है? देश के ही कुछ राज्यों में साहित्य, घर-घर प्रभावित करनेवाली विधा है। पर क्या हिंदी में यह स्थिति है? ऐसे राज्यों

में साहित्य परिवार की, समाज की जरूरत का हिस्सा है। पर हिंदी समाज में यह स्थिति है? अगर नहीं, तो हम हिंदीभाषियों को यह समझ लेना होगा कि यह काम सिर्फ सरकार के भरोसे नहीं हो सकता। देश-भर में बड़े पैमाने पर १४ सितंबर को 'हिंदी दिवस' का आयोजन होता है। सरकारी संस्थाओं में, सरकारी खर्च के बल पर। ऐसे आयोजन से हम मुदित होते हैं।

माना जाता है कि मानव इतिहास या दुनिया को दो चीजों ने गहराई से बदला है। पहला, विचार और दूसरा अब टेक्नोलॉजी। यह विचारों की ताकत थी कि उसके गर्भ से दुनिया में हिंसक उथल-पुथल, खूनी क्रांतियाँ, उलटफेर, बदलाव, विद्रोह निकले। उन्होंने मानव समाज को प्रेरणा दी, कल्पना दी, ऊर्जा दी, नए समतामूलक समाज के गठन का विश्वास दिया। गरीबी, ईश्वर का अभिशाप नहीं व्यवस्थागत देन है, यह बताया और रास्ता दिखाया कि व्यवस्थागत परिवर्तन से इसका अंत संभव है। विचारों ने ही यथास्थिति या सामाजिक विषमता को बदलने की बेचैनी दी। एक नई सुबह की झलक दी। पर हजारों साल से मानव इतिहास को बदलनेवाली वह प्रेरक ताकत व विचार आज पीछे हैं।

अब टेक्नोलॉजी दुनिया बदल रही है। उस टेक्नोलॉजी, बाजार, व्यापार, कूटनीति (डिप्लोमेसी) की भाषा आज कौन सी है? नए विश्व व्यापार, अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंध, पर्यावरण, विश्व कानून, विश्व स्तर के शोधों में हिंदी कहाँ है? क्या हम हिंदी प्रेमी कभी इन तथ्यों पर गौर करते हैं? हिंदी साहित्य का पुराना इतिहास जरूर हमें गौरव देता है। पर क्या वह अतीत मौजूदा पाठ्यक्रम, अध्ययन-अध्यापन हिंदी को समृद्ध, सामयिक और आधुनिक भाषा का गौरव दिला रहा है? 'अमरीका के सिलिकॉन वैली और ईस्ट के सिलिकॉन वैली बेंगलुरु' (जिस पर अमेरिका के मशहूर पत्रकार थॉमस फ्रीडमैन की चर्चित किताब आई 'द वर्ल्ड इज फ्लैट') समेत दुनिया के नए ऐसे

टेक्नोलॉजी केंद्र, जो भविष्य के मानव समाज और नई दुनिया की इबारत लिख रहे हैं, उनमें हिंदी कहाँ है? क्या हम वाकिफ हैं कि आज दुनिया में जिस भाषा के पीछे आर्थिक ताकत नहीं है, वह कमजोर स्थिति में है। आज भारत में ही विश्व की सबसे कठिन चीनी भाषा मंदारिन, भारतीय युवा क्यों सीख और पढ़ रहे हैं। उस विदेशी भाषा में महारत हासिल कर रहे हैं? क्योंकि चीन दुनिया की नई बड़ी आर्थिक ताकत या महाशक्ति है। हम चाहें या न चाहें, आज ग्लोबलाइजेशन का असर है कि सुदूर हिंदी इलाके के अति पिछड़े गाँवों में, टाट-फूस की झोपड़ी में अंग्रेजी स्कूलों की नींव पड़ चुकी है। जहाँ मास्टर को हिंदी या अपनी बोली शुद्ध रूप से नहीं आती, वे अंग्रेजी पाठशाला की दुकान चला रहे हैं। क्योंकि रोजगारविहीन भारतीय हिंदी समाज को लगता है, अंग्रेजी में ही मुक्ति है। खासतौर से हिंदी इलाकों में यह मानस है। यह विश्वास बन गया है कि यही भविष्य की भाषा है। यही रोजी-रोटी की भाषा है। जिन हिंदी इलाकों में डॉ. राममनोहर लोहिया के नेतृत्व में यह नारा लगा, 'अंग्रेजी में अब काम नहीं होगा, देश फिर गुलाम नहीं होगा', वहाँ गाँवों की गलियों में मिशनरियों के नाम गलत उच्चारण से लिखे, असंख्य स्कूल चल रहे हैं। अब गरीब बच्चों को अध्यापक सुझाव देते हैं, कक्षा एक से अंग्रेजी पढ़ें। विज्ञान और गणित में बेहतर कौशल और ज्ञान, साथ में फरटिदार अंग्रेजी ही आधुनिक ग्लोबल विलेज में सफल होने की बुनियादी शर्त मानी जा रही है। क्या आजादी के 70 वर्षों बाद, विज्ञान और गणित में हम हिंदी माध्यम से श्रेष्ठ शिक्षा दे सकने की स्थिति में हैं या दे रहे हैं? हद तो यह है कि खांटी हिंदी इलाके से हिंदी माध्यम से बी.ए., एम.ए. करनेवाले, सही हिंदी नहीं लिख पाते हैं। अब हिंग्लिश में बात होती है। अखबारों में हिंग्लिश का प्रयोग होता है। पूरा हिंदी समाज, सरकार के भरोसे है कि वह हिंदी का विकास कर दे, वह हिंदी को

राष्ट्रभाषा बना दे, घर-घर पहुँचा दे। पर क्या हिंदी में श्रेष्ठ और सामयिक शब्दकोश आ रहे हैं? अंग्रेजी के शब्दकोषों में, हिंदी शब्दों की संख्या बढ़ रही है। पर क्या इस आधुनिक दुनिया के अनुरूप हिंदी शब्दकोश खुद को समृद्ध कर रहे हैं या सामयिक बन रहे हैं?

वर्षों पहले हिंदी विद्यापीठ, देवघर, के साथ मिलकर प्रभाष जोशी की देखरेख में एक योजना बनी थी कि कुछ समूह बनें, जो दो-तीन स्तर पर काम करें। आदिवासी भाषाओं-बोलियों के प्रचलित और स्वीकार्य शब्दों के हिंदी पर्याय या अर्थ से संबंधित कोष तैयार हो। इसका मकसद था कि इससे हिंदी और आदिवासी समाज के बीच भाषाई स्तर पर संवाद बढ़ेगा। उनके पापुलर, प्रचलित और सटीक शब्दों को हिंदी ग्रहण करे, तो हिंदी का संसार भी फैलेगा। इसी तरह देश की अन्य भाषाओं के सहज, लोकप्रिय और स्वीकार्य शब्दों को एकत्र कर, हिंदी शब्दकोष बने। इन शब्दों की क्रिया, लिंग, अर्थ, महत्त्व सब बताया जाएँ और अलग-अलग भाषाओं, बोलियों के सहज शब्द हिंदी में लाये जाएँ। इस तरह देश की महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हिंदी शब्दकोष उपलब्ध होंगे, तो हिंदी की जड़ें गहरी होंगी। इन विषयों पर विस्तार से चर्चा हुई, गैर-सरकारी स्तर पर। लेकिन योजना आगे नहीं बढ़ सकी।

यह भी ध्यान रखना होगा कि हिंदी शुद्धता का अर्थ यह नहीं है कि उसे उर्दू या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से काटकर रखा जाए। एक ओर हिंदी में आज संभावनाओं के अनंत द्वार खुलते नजर आ रहे हैं, वहीं विडंबनाओं का भँवरजाल भी बढ़ा होता दिख रहा है। आज हिंदी में अपने वर्चस्व को स्थापित करने या उसे व्यक्तिवादी परिधि में समेटने के लिए कई लोग, कई संस्थान हिंदी को अपने ही देश की दूसरी भाषाओं, बोलियों के मुकाबले खड़ा करते रहते हैं। श्रेष्ठता बोध की लड़ाई छेड़ते हैं। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि हिंदी, सभी भाषाओं और बोलियों का भी समुच्चय है।

सभी बोलियों और भाषाओं ने ही उसे समृद्ध किया है। अंग्रेजी दुनिया की दूसरी भाषाओं से ही समृद्ध हुई है, तो हिंदी को अपनी ही उपभाषाओं से अलगाव-विलगाव की भाषा बनाने की जरूरत नहीं।

हिंदी को सिर्फ साहित्य की सीमा में समेटना, इसकी संभावनाओं को विडंबना में ही बदलना होगा। हिंदी के जो संस्थान हैं, आज वे क्या आयोजन करते हैं? कभी साहित्य से इतर हिंदी में महत्वपूर्ण कार्य करनेवालों को हिंदी का नायक मानते हैं? ऐसे कई उदाहरण हैं। समाजशास्त्री-मानवशास्त्री श्यामाचरण दुबे, राजनीतिक विचारक सच्चिदानंद सिन्हा जैसे अनेकानेक लोग हैं, जिन्होंने हिंदी में अप्रतिम काम किए, लेकिन चूँकि ये साहित्य के लोग नहीं रहे, तो हिंदी संस्थान ऐसे गैर साहित्यिक विचारकों व लोगों को हिंदी के विकास में भूमिका निभाने के लिए याद नहीं करते। हिंदी को ज्ञान, विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, संस्कृतिशास्त्र, रोजगार, तकनीक, राजनय या बदलती राजनीति की भाषा बनने से रोकना, उसे अपनी उपभाषाओं और बोलियों से सहचरी रिश्ता बनाने से रोकना, हिंदी की संभावनाओं को सीमित करना होगा।

हिंदी का संसार विस्तृत हो और गुणवत्ता श्रेष्ठ, इसके लिए क्या करना चाहिए?

इस पर अलग-अलग पृष्ठभूमि और विधा के जानकार विचार करें, तो एक दिशा मिलेगी। मसलन कुछ सवाल हैं, जिन पर गौर करना चाहिए।

1. ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में हिंदी को राजकाज, प्रशासन, ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय कानून, व्यापार, विकास और सामाजिक विज्ञान की विधाओं की भाषा बनाना होगा। टेक्नोलॉजी, उच्चस्तर शोध के माध्यम के रूप में विकसित करना पड़ेगा। यह रोजगार की भाषा बने, इस पर विचार-प्रयास करना होगा।

2. कॉलसेंटरो, अंतरराष्ट्रीय बिजनेस-व्यापार,

ऑटोमोबाइल, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मेडिकल, लाइफ साइसेंस वगैरह में नित नई टेक्नोलॉजी या शोध हो रहे हैं, उनसे हिंदी समाज जुड़े।

3. आत्मकेंद्रित बनती दुनिया में, खुशी का मापदंड (हैप्पीनेस इंडेक्स) बड़ा मुद्दा है। भौतिकता का असर पूरे संसार में है। क्या इस माहौल में उच्चस्तरीय जेनूइन अध्यात्म, योग वगैरह की समृद्ध भाषा या माध्यम हिंदी बन सकती है? हमें याद रखना चाहिए, यह हमारी विरासत रही है। सूर, कबीर, तुलसी, महज कवि नहीं, ये जीवन दर्शन की बात करनेवाले अमर व्यक्तित्व हैं। कुछ ही दिनों पहले सूर साहित्य पर अमरीका के एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर का काम देखा। खासतौर से भ्रमर गीतों पर। इस पुरानी विरासत को सहेजने के साथ-साथ टेक्नोलॉजी के बल पर बन रही नई दुनिया के अनुरूप भी हिंदी विकसित हो, यह प्रयास करना होगा।

4. 'मेक इन इंडिया', 'डूइंग बिजनेस', 'स्टार्टअप्स', इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी, कंप्यूटर विज्ञान, इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट, पर्यावरण जैसे क्षेत्रों में हिंदी कैसे बढ़े? यह प्रयास होना चाहिए। कहा जाता है कि शिक्षा क्षेत्र में, देश के शोध सूचकांक (इनोवेशन इंडेक्स ऑफ द कंट्री, क्वालिटी इंडेक्स) में हिंदी पिछड़ रही है। मेडिकल विज्ञान में स्तरीय हिंदी किताबें नहीं हैं। इस दिशा में पहल हो। यह उत्साहवर्धक है कि याहू, गूगल, माइक्रोसॉफ्ट वगैरह पर हिंदी उपलब्ध है।

5. कृषि-उद्योग, वित्तीय मसलों पर देश में जो सेमिनार, कॉन्फ्रेंस, सिंपोजियम वगैरह होते हैं, उनमें एक सीमा तक हिंदी (20 फीसदी ही सही) का प्रयोग-इस्तेमाल बढ़े, यह नीति बननी चाहिए।

6. विज्ञान, मेडिकल, टेक्नोलॉजी, रक्षा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस वगैरह में जो नई चीजें या महत्वपूर्ण खोज हो रही हैं, उनके बारे में सहज-सरल शब्दों में हिंदी में नियमित जानकारी दी जाए, यह प्रयास हो।



7. अखिल भारतीय स्तर पर 'लैंग्वेज कमेटियों' व 'लैंग्वेज इंस्टीट्यूट्स' के बीच तालमेल हो। सभी भारतीय भाषाओं समेत हिंदी की मौजूदा स्थिति व भविष्य के ट्रेंड पर एक पुष्ट नीति बने। इसमें मीडिया को भी जोड़ा जाए।

8. कम-से-कम हिंदीभाषी राज्य 'त्रिभाषा फर्मूला' को सख्ती से क्रियान्वित करें।

9. आजादी के बाद ही वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन हुआ था। आधुनिक परिवेश में शब्द निर्माण में, हर भाषा के भाषाविद् रखे जाएँ। साथ ही विज्ञान, कानून, प्रशासन, अर्थ, व्यापार, उद्योग समेत सभी क्षेत्रों के कठिन शब्दों का प्रयोग होता है, उसे सुविधापूर्ण-सरल बनाया जाए, इसके लिए इन क्षेत्रों के विशेषज्ञों की मदद ली जाए। सरकारी शब्दकोषों और दस्तावेजों से कठिन शब्द हटाए जाएँ।

10. यह दौर कंप्यूटर और स्मार्टफोन का है। अब कागज पर लिखने के बजाय लोग की बोर्ड पर काम करते हैं। इसलिए बच्चों को स्कूलों में कागज पर हिंदी सीखने के साथ-साथ हिंदी कंप्यूटर टाइपिंग में भी प्रशिक्षित किया जाए।

11. केंद्र सरकार अपने दस्तावेजों और वेबसाइटों का सहज हिंदी में अनुवाद उपलब्ध कराएँ।

12. राजभाषा हिंदी सीखने के लिए केंद्र सरकार अपने कर्मचारियों को आर्थिक पुरस्कार देती है। नौकरी

करते हुए इसमें हिंदी की परीक्षा पास करनी होती है। पर हिंदी प्रोत्साहन के नाम पर पैसे पानेवाले कम कर्मचारी ही हिंदी में कामकाज करते हैं। यह बंद होना चाहिए।

13. आकलन है कि देश के 20 प्रतिशत लोग हिंदी में इंटरनेट पर सामग्री ढूँढ़ते हैं। लेकिन इंटरनेट पर इस भाषा में अच्छी सामग्री उपलब्ध नहीं है। इसलिए यह प्रयास होना चाहिए कि महत्वपूर्ण विषयों पर हिंदी में श्रेष्ठ सामग्री तैयार करवाकर इंटरनेट पर उपलब्ध कराई जाए।

14. हिंदी शब्दों की वर्तनी से जुड़ी विसंगतियों को दूर करने का काम होना चाहिए।

15. सुप्रीम कोर्ट से सहमति व संवाद के बाद हिंदीभाषी क्षेत्रों में स्थित देश की अदालतों में हिंदी को जिरह करने और फैसला लिखने की भाषा बनाने का काम होना चाहिए। कम-से-कम हिंदी क्षेत्र की निचली अदालतों में फैसले हिंदी में हो, अन्य राज्यों में वहाँ की स्थानीय भाषाओं में, इसकी कोशिश हो।

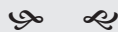
इस तरह अनेक मोर्चों पर सृजनात्मक और मौलिक प्रयासों से ही हिंदी की विश्वयात्रा पूरी होगी। आपसी सहयोग-समन्वय से ही 'विश्व गाँव' बनती दुनिया में हिंदी अपनी जगह पा सकेगी।

□

501, ब्रह्मपुत्र, डॉ. बी.डी. मार्ग
नई दिल्ली

‘अपनी सर्वांग पूर्णता से नागरी लिपि भारत की सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रतिष्ठित लिपि है। भारत के संविधान में इसे राष्ट्र लिपि के स्थान पर आसीन किया गया है।’

—महात्मा गांधी



‘यदि गुजरात के युवक कॉलेजों से निकलकर गंभीरतापूर्वक विचार करके लोगों की संरक्षकता स्वीकार करेंगे तो मैं उन्हें बहुत साहसी मानूँगा।’

—महात्मा गांधी

हिंदी हैं हम

— श्री राजीव सचान

इस पर आश्चर्य किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए कि 2011 की जनगणना के भाषा संबंधी आँकड़े सात साल बाद यानी 2018 में क्यों सामने आए, लेकिन यह संतोष की बात है कि इन आँकड़ों के अनुसार हिंदी देश की सबसे तेजी से बढ़नेवाली भाषा है। ये आँकड़े यह बताते हैं कि 2001 से 2011 के बीच यानी दस सालों में हिंदी को अपनी मातृभाषा बतानेवालों की संख्या में वृद्धि दर्ज की गई। 2001 की जनगणना में हिंदी को मातृभाषा बतानेवालों का प्रतिशत 41.03 था तो 2011 में यह 43.63 प्रतिशत दर्ज किया गया। एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि केरल और तमिलनाडु में भी हिंदी बोलनेवाले लोगों की संख्या में बढ़ोतरी दर्ज की गई। इन दोनों राज्यों में हिंदी के साथ-साथ उड़िया और असमिया बोलनेवालों की संख्या में वृद्धि दर्ज की गई है। इससे यह संकेत मिलता है कि दक्षिण भारतीय राज्यों में हिंदी, असमिया या फिर उड़िया बोलनेवाले अच्छी-खासी संख्या में रोजी-रोजगार के सिलसिले में वहाँ पहुँचे हैं। इसका अर्थ है कि गैर हिंदीभाषी राज्यों में हिंदी बोलनेवालों के लिए रोजगार के अवसर हैं और साथ ही इन प्रांतों, विशेषकर तमिलनाडु में हिंदी के प्रति वैर भाव कम हुआ है। यह कोई नई व अनोखी बात भी नहीं, क्योंकि यह बात पहले ही सामने आ

चुकी है कि तमिलनाडु में जो राजनीतिक दल एक समय हिंदी का विरोध किया करते थे वही अब चुनाव के दौरान हिंदीभाषी लोगों को आकर्षित करने के लिए हिंदी में पोस्टर-बैनर लगाते हैं।

हिंदी केवल सबसे ज्यादा भारतीयों की ओर से बोली जानेवाली भाषा ही नहीं है, यह रोजगार के साथ ही व्यापार की भी भाषा है। इ से हिंदी भाषा के बढ़ते समाचार एवं मनोरंजन आधारित टी वी चैनल भी बयान करते हैं और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हिंदी में जारी होनेवाले विज्ञापन भी। अब तो विभिन्न देशों के दिल्ली स्थित दूतावास भी इस पर नजर रखने लगे हैं कि हिंदी के अखबारों में उनके देश के बारे में क्या छप रहा है ? हाल में चीनी दूतावास ने हिंदी के एक प्रमुख समाचार पत्र में छपी उस खबर पर आपत्ति जताई जिसमें कहा गया था कि चीन पड़ोसी देशों से उलझने-झगड़नेवाला देश है। खास बात यह रही कि दूतावास के अधिकारियों ने अपनी बात हिंदी में लिखकर दी।

बीते कुछ समय से खेलों के प्रचार-प्रसार में भी हिंदी की अहमियत साबित हुई है। क्रिकेट के साथ अन्य खेलों की कमेंट्री हिंदी में देने का चलन तेजी से बढ़ा है। हिंदी में कमेंट्री देने वाले खेल चैनलों को इससे लाभ भी हो रहा है। उल्लेखनीय यह भी है कि



कई अहिंदी भाषी क्रिकेटर भी हिंदी में कमेंट्री करना पसंद कर रहे हैं। वे लोकप्रियता भी हासिल कर रहे हैं। शायद इसी कारण रवि शास्त्री भी हिंदी में कमेंट्री करने की सोच रहे हैं। रूस में आयोजित फुटबॉल विश्वकप का प्रसारण जिन पाँच भारतीय भाषाओं में किया गया उनमें मलयालम, बांग्ला, तमिल और तेलुगु के साथ हिंदी भी थी और वह भी तब जब बांग्ला और मलयालम भाषियों की तुलना में हिंदीभाषियों के बीच फुटबॉल की दीवानगी कहीं कम मानी जाती है। हिंदी में ज्यादा-से-ज्यादा खेलों का प्रसारण केवल खेलों की लोकप्रियता को ही बयान नहीं करता, बल्कि यह भी रेखांकित करता है कि बड़ी कंपनियाँ हिंदीभाषी लोगों तक उनकी भाषा में पहुँचना चाहती हैं। यही काम बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भी कर रही हैं।

हिंदी का प्रभुत्व मनोरंजन की दुनिया में खूब नजर आता है। बॉलीवुड फिल्मों को इसका श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने हिंदी को लोकप्रिय बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। सच तो यह है कि फिल्मों से ज्यादा उनके गानों ने हिंदी को देश में और साथ ही देश के बाहर भी लोकप्रिय बनाया है। एक बड़ी संख्या में गैर हिंदीभाषी ऐसे हैं जो हिंदी फिल्में देखकर या फिर हिंदी गाने सुनकर हिंदी बोलने-समझने में दक्ष हुए हैं। हिंदी के प्रचार-प्रसार

और उसकी ताकत को देश के प्रमुख समाचार-पत्र भी रेखांकित करते हैं। ताजा इंडियन रीडरशिप सर्वे के अनुसार, देश के शीर्ष दस अखबारों में पहले चार स्थानों पर हिंदी के समाचार-पत्र काबिज हैं। खास बात यह है कि इस सूची में अंग्रेजी का एक

भी अखबार नहीं। इसी के साथ इस पर भी गौर करें कि 2011 की जनगणना के अनुसार महज दो लाख साठ हजार लोगों ने ही अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा बताया। आश्चर्य है कि बावजूद इसके देश में अंग्रेजी का दबदबा कायम है। भारत में अंग्रेजी केवल एक भाषा के तौर पर नहीं, बल्कि एक संस्कृति की तरह है। इस संस्कृति को अंग्रेजीयत ही कहा जा सकता है। न केवल नौकरशाही की भाषा अंग्रेजी है, बल्कि गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा

और शोध की भाषा भी अंग्रेजी ही है। अंग्रेजी के समक्ष जो स्थिति हिंदी की है वही करीब-करीब अन्य भारतीय भाषाओं की भी है, लेकिन विडंबना यह है कि जब-तब अन्य भारतीय भाषाओं के चंद लोग हिंदी को अपने पर हावी होने का हौवा खड़ा करते रहते हैं। इससे तो अंग्रेजी और उसके बहाने अंग्रेजीयत का ही हित सधता है। शायद भारतीय भाषाओं में समन्वय की कमी के कारण ही अंग्रेजी सरकारी कामकाज के साथ देश की संपर्क भाषा बनी हुई है।

यह सही कहा जाता है कि भाषा के तौर पर

यह सही है कि फेसबुक एवं अन्य लोकप्रिय सोशल मीडिया कंपनियाँ हिंदीभाषी लोगों को आकर्षित करने के लिए हर संभव कदम उठा रही हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तकनीक की भाषा हिंदी हो गई है। यह तो अंग्रेजी ही है, ठीक वैसे ही जैसे मेडिकल, इंजीनियरिंग, कानून, प्रबंधन आदि की पढ़ाई की भाषा अंग्रेजी है। अब तो हिंदी फिल्मों की पटकथा की भाषा भी रोमन लिपिवाली अंग्रेजी होती जा रही है। इस सवाल का कोई समाधान खोजा ही जाना चाहिए कि मेडिकल, इंजीनियरिंग, कानून, प्रबंधन आदि की गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई के लिए हम अंग्रेजी पर ही क्यों निर्भर हैं?

अंग्रेजी से परहेज नहीं करना चाहिए, लेकिन समस्या अंग्रेजी भाषा से नहीं, उस मानसिकता से है जिसके तहत अंग्रेजी न जानने-समझने वाले कमतर समझे जाते हैं। भारत में अंग्रेजी श्रेष्ठताबोध का परिचायक बन गई है। अक्सर यह कहा जाता है कि हिंदीभाषियों को अन्य भारतीय भाषाएँ सीखनी चाहिए। इस अपेक्षा में कुछ भी गलत नहीं, लेकिन ध्यान रहे कि कोई भी भाषा जरूरत पड़ने पर ज्यादा सीखी जाती है, शौकिया तौर पर कम। अगर ऐसा न होता तो संस्कृत जानने-समझने वाले इतने कम नहीं होते। यह एक तथ्य है कि अन्य भारतीय भाषा के लोगों के लिए हिंदी सीखना जितना जरूरी है उतना हिंदीभाषियों के लिए नहीं है। इसका कारण यही है कि दैनिक कार्य-व्यवहार में हिंदी कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है। भारत में राजनीति, मनोरंजन जगत और व्यापार जगत का काम हिंदी के बगैर नहीं चल सकता।

भारत में केवल अपनी भाषा में इंटरनेट प्रयोग करने वालों की संख्या अभी 24 करोड़ है। 2021 तक यह संख्या 50 करोड़ होने की संभावना है। इस संभावना के बाद भी इंटरनेट में हिंदी में पर्याप्त और गुणवत्तायुक्त सामग्री नहीं है। यह सही है कि फेसबुक एवं अन्य लोकप्रिय सोशल मीडिया कंपनियाँ हिंदीभाषी लोगों को आकर्षित करने के लिए हर संभव कदम उठा रही हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि तकनीक की भाषा हिंदी हो गई है। यह तो अंग्रेजी ही है, ठीक वैसे ही जैसे मेडिकल, इंजीनियरिंग, कानून, प्रबंधन आदि की पढ़ाई की भाषा अंग्रेजी है। अब तो हिंदी फिल्मों की पटकथा की भाषा भी रोमन लिपिवाली अंग्रेजी होती जा रही है। इस सवाल का

कोई समाधान खोजा ही जाना चाहिए कि मेडिकल, इंजीनियरिंग, कानून, प्रबंधन आदि की गुणवत्तापूर्ण पढ़ाई के लिए हम अंग्रेजी पर ही क्यों निर्भर हैं?

यह मान्यता एक हद तक ही सही है कि भारत की तरक्की में अंग्रेजी का हाथ है। अगर अंग्रेजी तरक्की की भाषा होती तो दक्षिण कोरिया और चीन भारत से कहीं पीछे होते। इसमें दो राय नहीं कि अंग्रेजी अंतरराष्ट्रीय संपर्क-संवाद की भाषा है, लेकिन यह निराधार धारणा है कि उसके बल पर ही प्रगति की जा सकती है। हिंदी भाषी समुदाय सबसे बड़ा समुदाय है, लेकिन आज जरूरत इसकी है कि यह विशाल समुदाय अपनी भाषा में सब कुछ जानने-समझने-पढ़ने के लिए अंग्रेजी पर निर्भर न रहे या फिर कम-से-कम रहे। हिंदी का विस्तार हो रहा है और उसे बोलने-समझने वालों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन यह ठीक नहीं कि विधि निर्माण और न्याय के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी की भी स्थिति दोयम दर्जे की है। यह अच्छी स्थिति नहीं कि संसद में विधेयकों के मसौदे हिंदी में भी उपलब्ध होते हैं, लेकिन उनकी अंग्रेजी प्रति ही विश्वसनीय और आधिकारिक मानी जाती है। ऐसा ही सरकारी कामकाज के अन्य क्षेत्रों में है। हिंदी का भविष्य और उज्ज्वल बनाने के लिए कुछ करने की जरूरत है। बेहतर हो कि इस जरूरत की पूर्ति अन्य भारतीय भाषाओं के साथ मिलकर की जाए। एक बार हिंदी श्रेष्ठ ज्ञानार्जन की भाषा बन जाए तो फिर अंग्रेजी की अनावश्यक अहमियत खुद ही खत्म हो जाएगी।

□

वरिष्ठ संपादक, दैनिक जागरण
नोएडा, (उ.प्र.)

हिंदी की प्रगति से देश की सभी भाषाओं की प्रगति होगी।

—डॉ. जाकिर हुसैन

जनमाध्यम और हिंदी

— श्री के.जी. सुरेश

भाषाएँ संस्कृतियों की संवाहक मात्र नहीं होतीं, बल्कि उन्हें गढ़ती भी हैं! हम अपने विचार, खान-पान, वेश-भूषा सभी अपनी भाषा के माध्यम से ही व्यक्त करते हैं, परंतु जो भाषा हमें विरासत में मिलती है, उसके शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि बड़ी महीनता से हमारे विचारों को गढ़ने लगते हैं! मान लीजिए किसी भाव या विचार के लिए किसी भाषा में कोई शब्द नहीं है, इसका क्या यह अर्थ नहीं कि उस भाषा में वह विचार ही दुर्लभ है! एक और उदाहरण से इसे समझा जा सकता है—हिंदी में प्यार और दुलार शब्द से जो भाव मन में उठते हैं, बिल्कुल वैसे ही भाव अंग्रेजी के शब्द लव एंड केयर से नहीं आते। आइए, इसी पृष्ठभूमि में हम हिंदी और जनसंचार के संबंधों की पड़ताल करें। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नायकों को यह समझ में आ चुका था कि भारत को भावनात्मक रूप से एकता के सूत्र में बाँधने का काम जन-भाषा हिंदी के व्यापक प्रचार-प्रसार के बिना संभव नहीं! इसी बोध का परिणाम था कि लगभग सभी बड़े नेताओं ने हिंदी में अखबार प्रकाशित किए! जनसंचार जन-भाषा में न हो तो अभीष्ट लक्ष्य कैसे प्राप्त हो? आज आजादी के इतने वर्षों बाद भी हिंदी अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए जूझ रही है।

आश्चर्य की बात यह है कि यह वही हिंदी है, जिसका जनसंचार के माध्यमों ने उस भावनात्मक एकता के लिए इस्तेमाल किया था, जो आजादी के लिए अपेक्षित थी! अब प्रश्न यह उठता है कि भारत की विघटनकारी शक्तियों को एक बार फिर करारा जवाब देने के लिए क्या हिंदी एक माध्यम बन सकती है? यहाँ ध्यान देनेवाली बात यह है कि विघटनकारी शक्तियों के बदले हुए रूप को पहले पहचाना जाए! आज भारत में जो भी तकनीकी विकास हो रहा है या विज्ञान के क्षेत्र में जो तरक्की हो रही है, इसका जनमानस को तभी लाभ मिल सकता है, जब यह जनभाषा में उन तक पहुँचे! भारत में हिंदी बोलनेवालों की जनसंख्या यहाँ की कुल जनसंख्या का 41 प्रतिशत है। बाकी के 59 प्रतिशत में बांग्ला आठ प्रतिशत बोलनेवालों के साथ दूसरे पायदान पर हैं और गुजराती 4 प्रतिशत बोलनेवालों के साथ तीसरे पायदान पर उसके बाद कन्नड़, मलयालम, तमिल और तेलुगु का स्थान है! वहीं यदि अंग्रेजी बोलनेवालों की बात करें तो भारत की जनसंख्या का लगभग 10 प्रतिशत अंग्रेजी बोलनेवालों का है! ऐसे में हिंदी एक विशाल जनसमूह की भाषा के रूप में उभरती है और जनसंचार के माध्यमों द्वारा इसे तरजीह दिए जाने का कोई और विकल्प नहीं बचता है। यही कारण

है कि हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं और टेलीविजन चैनलों की संख्या बढ़ी है, बॉलीवुड में तो हिंदी का ज्ञान एक विशेष अहर्ता माना जाता है, परंतु यहाँ मसला सिर्फ संख्या का नहीं बल्कि गुणवत्ता का भी है; और गुणवत्ता के मामले में 10 प्रतिशत 41 प्रतिशत पर भारी पड़ रहा है!

हाँ, यह सच है कि भारत में हिंदी बोलनेवालों का एक बड़ा समूह साक्षर भले ही हो, पर शिक्षित नहीं है और इसका सीधा संबंध उस समूह की बौद्धिक आवश्यकताओं और रुचियों से है! हिंदी मीडिया भी इसी समूह के तुष्टीकरण का शिकार है! लगातार गुणवत्ता से समझौता इसी तुष्टीकरण का परिणाम है! यहाँ आवश्यकता इस बात की है कि मीडिया मात्र प्रोफेशन से अलग एक बार फिर मिशन की ओर बढ़े! लोकतंत्र के चौथे स्तंभ होने का अपना दायित्व वहन करे! अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, गुयाना, मॉरीशस, फिजी, त्रिनिदाद, टोबेगो, सूरीनाम, नीदरलैंड और दक्षिण अफ्रीका सहित विश्व के पचास से अधिक देशों में हिंदी पढ़ाई जाती है और लगभग विश्व के 140 देशों तक यह किसी-न-किसी रूप में पहुँच चुकी है, यानी पूरे विश्व में इसे बोलने और समझनेवाले लोग हैं! विकसित देश भी अपनी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए बाजार की खोज में हिंदी को महत्त्व दे रहे हैं और इसी पृष्ठभूमि में डिजिटल मीडिया में हिंदी के प्रवेश को समझा जा सकता है!

यदि पत्रकारिता और हिंदी भाषा के संबंधों की पड़ताल के लिए हम अतीत में जाएँ तो यह तथ्य सामने आता है कि पत्रकारिता के शुरुआती दौर में ज्यादातर साहित्यकार ही पत्रकार हुआ करते थे! इस स्थिति में भाषा के संवर्धन में पत्रकारों की भूमिका स्वमेव ही सुनिश्चित हो जाती थी! आज भी देश के कई नामी-गिरामी विश्वविद्यालयों के भाषा विभाग के अंतर्गत ही पत्रकारिता का अध्ययन-

अध्यापन होता है! समय के साथ विश्वविद्यालयों में जनसंचार के विभाग स्थापित हुए। यह कई मायनों में बेहतर था, पर भाषा से संचार का सीधा संबंध टूटता गया! हाल के वर्षों में जो तकनीकी क्रांति आई, उसने इस संकाय का पूरा ध्यान इन्हीं तकनीकों और उपकरणों को समझने में लगा दिया; भाषा कहीं पीछे छूट गई! चूँकि इसका कोई तात्कालिक दुष्परिणाम सामने नहीं आया, अतः यह महत्त्वपूर्ण पहलू उपेक्षित होता गया! आज 'हिंगलिश' का दौर है! अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर भाषा के साथ भरपूर खिलवाड़ हो रहा है! स्थिति चिंतनीय है! हिंदी का विकास जिस मध्ययुगीन अपभ्रंश से हुआ, दुबारा यह भाषा उसी अपभ्रंश की ओर लौट रही है! भाषा में शुद्धता का नितांत अभाव दिखता है, परंतु देर अब भी नहीं हुई है। यही वक्त है पूरी दृढ़ता और विश्वास के साथ परिमार्जित हिंदी की प्रतिष्ठा स्थापित करने का!

एक बड़ा ही रोचक तथ्य सामने आया है और सकारात्मक परिपाटी की शुरुआत हुई है; बीते एक वर्ष के भीतर देश के प्रमुख अंग्रेजी समाचार चैनलों ने अपने कार्यक्रमों में हिंदी को भी स्थान दिया है। यह एक सकारात्मक संकेत है और जनमानस के बीच हिंदी की माँग को दर्शाता है! इस अभिलेख द्वारा पत्रकारिता में साहित्यिक भाषा के इस्तेमाल की वकालत बिलकुल नहीं की जा रही है, बल्कि आम बोलचाल की भाषा के रूप में ही हिंदी का प्रयोग पत्रकारिता के विविध क्षेत्रों में करने की बात दुहराई जा रही है! यह सच है कि भाषा एक प्रवाहमान नदी की तरह है। यह अपने साथ कई तरह के मलबों को भी ले कर बहती है और वक्त आने पर उन्हें मुहानों पर छोड़ भी देती है और यदि कलम के सिपाही थोड़े जागरूक हो जाएँ तो भाषाई नदी का यह बहाव परिष्कृत होता जाएगा! आज के हिंदी पत्रकारों का सबसे बड़ा तर्क यह



है कि यदि हिंदी का कोई शब्द प्रचलित नहीं है तो क्यों न उसके लिए अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया जाए! इस आलेख के माध्यम से मैं इस तर्क का पुरजोर विरोध करता हूँ! ऐसे शब्द यदि परिचित मात्र हैं तो प्रयोग करने से हीं प्रचलित होंगे! एक पत्रकार के रूप में हमें अपने भाषाई दायित्वों को समझना होगा!

भारत जैसे विशाल लोकतंत्र को यदि किसी एक ही भाषा से संबोधित करना हो तो हिंदी सबसे उपयुक्त है और यही कारण है कि राजनेता से अभिनेता तक, सभी हिंदी की अनिवार्यता से बखूबी परिचित हैं! यही हिंदी की ताकत है! जनसरोकार रखनेवाले किसी भी पेशे के लिए हिंदी का कोई दूसरा विकल्प नहीं! यहाँ

इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि हिंदी की यह जरूरत मात्र मजबूरी नहीं, बल्कि इच्छा के रूप में स्थापित हो और यह तभी संभव है, जब हिंदी बोलनेवाला समाज इसे बोलने में गौरवान्वित अनुभव करे! जो उपनिवेशवादी मानसिकता हमें हिंदी के दोयम दर्जे पर होने का एहसास कराती है, उससे छुटकारा पाना असंभव नहीं पर आसान भी नहीं! हिंदी का प्रयोग पूरे सम्मान के साथ किया जाए, इसके लिए व्यक्तिगत स्तर से लेकर संगठनात्मक स्तर तक दृढ़ इच्छाशक्ति और निरंतर प्रयास की जरूरत है! हिंदी के क्षेत्र में व्यापक संभावनाओं को देखते हुए कंप्यूटर पर इसके उपयोग को सहज और सरल बनाने की कोशिश लगातार चल रही है!

एक और गंभीर विषय जिसकी ऊपर भी चर्चा की गई है, वह है, हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं और टी.वी. चैनलों पर स्तरीय सामग्री के अभाव का; और इसका कारण पूरी तरह से हिंदी मीडिया के दर्शकों की रुचि को मान कर पत्रकार इस आरोप से बरी होने की पूरी कोशिश करते हैं! यह सच है कि हिंदी मीडिया के दर्शकों का एक बड़ा वर्ग या तो निरक्षर है या फिर अशिक्षित;

परंतु यह भी सच है कि मीडिया लाभ कमाने का एक व्यवसाय मात्र नहीं है और सकारात्मक पत्रकारिता की यह जिम्मेदारी हिंदी मीडिया को उठानी ही पड़ेगी, जिसकी पहली शर्त है, सकारात्मक भाषा का प्रयोग! माध्यम जितना त्वरित है, भाषा उतनी अनौपचारिक ही

नहीं, बल्कि अपरिष्कृत भी होती चली जा रही है! तो क्या माध्यम को भाषा पर इस तरह हावी होने देना सही है? क्या पत्रकारों की नयी पीढ़ी भाषाई कलाकारी में सक्षम नहीं? क्या पत्रकारिता का प्रशिक्षण मात्र तकनीकी प्रशिक्षण है? क्या सूचनाओं को आवश्यकता अनुसार भाषा में पिरोए बिना इनका प्रभावी संप्रेषण संभव है? इन सभी प्रश्नों के उत्तर पत्रकारिता में हिंदी के जिम्मेदाराना प्रयोग पर निर्भर हैं!

सिनेमा, टेलीविजन और पत्र-पत्रिकाओं से लेकर विज्ञापन तक सभी हिंदी के व्यापक विस्तार और इसके दर्शक वर्ग का इस्तेमाल कर रहे हैं, मुनाफा कमा रहे हैं पर बदले में हिंदी को वह सम्मान नहीं दे रहे, जिसकी यह हकदार है! एक

मसला यह भी है कि हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी के लेखकों का अनुवाद जिस उत्साह और प्रतिष्ठा से छपता है, उससे हिंदी लेखक वर्ग में एक क्षोभ का माहौल है! जब पाठक और दर्शक हिंदी के हैं तो अंग्रेजी के प्रति यह आग्रह क्यों? हिंदी का पाठक और दर्शक वर्ग जब इतना वृहत् है तो हिंदी के पत्रकारों के लिए अंग्रेजी के पत्रकारों से कम पारिश्रमिक क्यों? जब सिनेमा से लेकर समाचारों और फिर विज्ञापनों तक हिंदी का बाजार समृद्ध है तो हिंदी के साथ ऐसा सौतेला व्यवहार क्यों?

समस्याएँ हमीं ने खड़ी की हैं तो समाधान भी हमें ही ढूँढ़ना होगा! हिंदी की विकास यात्रा को समृद्ध बनाने के लिए संभावनाएँ तलाशनी नहीं, बल्कि गढ़नी हैं!

हमने राष्ट्रीय मीडिया विकास संकाय केंद्र बनाया है, जिसका उद्घाटन स्मृति ईरानीजी ने किया था। मीडिया शिक्षा में मानक तय करना जरूरी है, जैसे दूसरे व्यवसायों में मेडिकल कौंसिल, बार कौंसिल जैसे संस्थान हैं, लेकिन मीडिया के लिए कोई ऐसा संस्थान नहीं है। मीडिया संस्थान खोलने के लिए कोई लाइसेंस की जरूरत नहीं है, इसलिए दुकानें खुल रही हैं। लाखों की फीस ले रहे हैं, बच्चे ग्लैमर की वजह से आकर्षित हो रहे हैं, लेकिन यह देखनेवाला भी कोई नहीं है कि वे न्यूनतम मानक भी पूरा करते हैं या नहीं? इन सब के बीच भाषा की बात करना तो बिल्कुल बेमानी है! यह संस्थान प्रैक्टिकल प्रशिक्षण भी नहीं देते, उन्हें न्यूजरूम में आकर फिर से सीखना पड़ता है। ज्यादातर टी.वी. चैनल्स बच्चों को इंटरशिप कराने के लिए तैयार नहीं हैं जो तैयार हैं उनमें से ज्यादातर संस्थान इंटरशिप के लिए पैसा लेते हैं। इंटरशिप में कुछ सिखाने पर जोर नहीं होता, वे सीनियर की सेवा में लगे रहते हैं तो सुधार कैसे होगा?

एक समय था, जब मीडिया भाषा का संरक्षक

था, लेकिन आज भाषा को भ्रष्ट करने में टी.वी. का योगदान कम नहीं है। हम संस्थान में छात्रों की भाषा की कमजोरी पर ध्यान दे रहे हैं कि कैसी भाषा लिखी जाए, कैसी बोली जाए, किन शब्दों का और कब प्रयोग किया जाए? इसमें मुद्दा संस्कृत या उर्दू का नहीं है, उपयुक्त और संदर्भ के हिसाब से उपयोग का है। मीडिया की भाषा में संयम होना चाहिए, लेकिन उसमें लगातार आक्रामकता बढ़ रही है, खासतौर से हिंदी टेलीविजन में। एक और बड़ी वजह है कि किसी भी दूसरे प्रोफेशन में 'ऑन जॉब ट्रेनिंग' होती रहती है यानी बदलते वक्त के साथ सीखने की कोशिश, लेकिन मीडिया में तकनीक के लिए तो प्रशिक्षण होता है, भाषा को लेकर कोई कोशिश नहीं होती।

याद आता है मुझे कि एक बड़े प्राइवेट चैनल में ज्यादातर काम अंग्रेजी में होता, फिर हिंदी के लिए अनुवाद होता, उसमें अंग्रेजी बोलनेवाले ही एंकर हिंदी के शो करते और अक्सर शो के बाद गर्व से इस बात का जिक्र भी करते कि उन्होंने हिंदी बोलते वक्त कितनी गलतियाँ कीं, लेकिन यह उनके रिपोर्ट कार्ड के लिए नेगेटिव नहीं रहा कभी। चैनल की हिंदी दुरुस्त करने के लिए एक वरिष्ठ साहित्यकार संपादक को लाया भी गया, लेकिन उन्हें काम करने का मौका ही नहीं मिला। कहने को तो स्टाइल शीट भी बनी, मगर इस्तेमाल नहीं हुई। हिंदी के प्रति ऐसे दुराग्रहों और दुलमुल रवैए को छोड़ना होगा! जनमाध्यम की सार्थकता जनभाषा हिंदी के बिना कैसे संभव हो सकती है? जितनी सबल और सशक्त हिंदी होगी, जनमाध्यम उतना ही प्रभावी होगा! हिंदी के प्रति यह उपेक्षा क्या इन जनमाध्यमों को इनके उद्देश्यों से दूर नहीं ले जा रही?

□

हिंदी पत्रकारिता में भाषा का बदलता स्वरूप

— श्रीमती कुमुद शर्मा

आज गर्व के साथ यह कहा जा सकता है इक्कीसवीं सदी में उपलब्ध नए यांत्रिक उपकरणों के साथ सामंजस्य बैठते हुए हिंदी ने अपनी सामर्थ्य को दर्शाया है। नित नए हिंदी टी.वी. चैनलों तथा हिंदी अखबारों की लोकप्रियता और प्रसार संख्या ने जनसंचार माध्यमों के क्षेत्र में हिंदी की शक्ति का अहसास कराया है। वर्ष 2017 के इंडियन रीडरशिप सर्वे और फिक्की के.पी.एम.जी. की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। इंडियन रीडरशिप सर्वे में बीस अखबारों की सूची में शीर्ष बीस अखबारों में हिंदी के आठ अखबार हैं। 'दैनिक जागरण' नंबर एक पर है। दूसरे नंबर पर 'हिंदुस्तान', तीसरे पर 'अमर उजाला', चौथे पर 'दैनिक भास्कर', सातवें पर 'राजस्थान पत्रिका', दसवें पर 'प्रभात खबर', तेरहवें पर 'पंजाब केसरी' और बीसवें पर 'पत्रिका'। फिक्की-के.पी.एम.जी. की रिपोर्ट में भी हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं के अखबारों में वृद्धि की बात स्वीकार की गई है।

इसी तरह इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के क्षेत्र में रेडियो की दुनिया में एफ.एम. हिंदी चैनलों की लोकप्रियता, हिंदी टी.वी. चैनलों की बढ़ती संख्या, हिंदी फिल्मों का बढ़ता बाजार दंभ के साथ यह कहने की छूट भी देता है कि 'मीडिया मंडी' में हिंदी ने अंगद की तरह अपने पैर जमा लिए हैं।

मीडिया की ताकत से हिंदी बढ़ रही है।' सच्चाई यह है कि मीडिया की ताकत से हिंदी नहीं बढ़ रही, बल्कि हिंदी की ताकत से मीडिया बढ़ रहा है। हिंदी अखबारों के पास, हिंदी टी.वी. चैनलों के पास संख्या बल तो है, लेकिन दुःख इस बात का है, चिंता इस बात की है कि जिस हिंदी की ताकत से समाचार संस्थान अपना कारोबार चला रहे हैं, उसी हिंदी के मूल स्वभाव पर प्रहार भी कर रहे हैं। कभी हिंदी को 'हिंगलिश' बनाकर तो कभी हंग्रेजी बनाकर और कभी 'इंग्दी' के रूप में परोसकर।

बात बहुत स्पष्ट है आज भूमंडलीय मीडिया के सरोकार बदल गए हैं, उसके मानक बदल गए हैं, इसके आदर्श बदल गए हैं। भूमंडलीय समय में विकसित और साम्राज्यवादी देशों की गर्वोक्ति है कि 'नई उद्भूत वैश्विक जीवन पद्धति एक प्रकार की साझा संस्कृति को प्रकट करती है'। मगर साझा संस्कृति का सत्य अपनी विद्रूपता के रंग भी दिखा रहा है। साझेपन के इस गणित में एक ही विश्व संस्कृति, एक ही विश्व मानव और एक ही विश्वभाषा का जाप चल रहा है और विश्वभाषा है अंग्रेजी।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के विज्ञापनों के बूते फल-फूल रहे मीडिया संस्थानों के लिए भाषा का मुद्दा ऐसा मुद्दा नहीं है, जिस पर सोचा जाए। उनके लिए संप्रेषण का माध्यम भर है। कई वर्ष पूर्व प्रसार भारती बोर्ड के

एक सम्मानित सदस्य ने एक बैठक में दूरदर्शन पर प्रसारित होनेवाले समाचारों में प्रयुक्त होनेवाली भाषा पर आपत्ति दर्ज की तो जबाब में कहा गया कि 'हम हिंदी में समाचार देते हैं न कि समाचारों में हिंदी'। यह सारा वाक्या मैंने प्रसार भारती के सम्मानित सदस्य के मुख से ही सुना था, जिसे सुनकर मुझे रघुवीर सहाय की कविता की ये पंक्तियाँ याद आ गई—'हिंदी का प्रश्न अब हिंदी का प्रश्न नहीं रह गया/हम हार चुके हैं।' एक अत्यंत त्रासदायक घटना का जिक्र किसी टी.वी. चैनल के पत्रकार ने किया। हिंदी के किसी मूर्धन्य साहित्यकार की मृत्यु पर जब उसने उनके दाह-संस्कार के स्थल पर जाकर साहित्यिक बिरादरी से बाइट लेने की बात कही तो जबाब मिला 'कोई जरूरत नहीं ये.. बिकेंगे नहीं।' यानी इस मीडिया मंडी में हिंदी का सम्मान और स्वाभिमान बचा है और न ही हिंदी के लेखक का।

आजादी से पूर्व की पत्रकारिता के इतिहास में भाषा की सजगता के अनगिनत उदाहरण दर्ज हैं। हिंदी का हर संपादक भाषा को लेकर सजग, सचेत और चौकन्ना था। इसका ऐतिहासिक उदाहरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू बालमुकुंद गुप्त के बीच अनस्थिरता शब्द को लेकर चला विवाद है। 7 अगस्त, 1946 को 'हिमालय' में शिवपूजन सहाय ने भाषा के क्षेत्र में भ्रष्टता फैलानेवाले पत्रकारों को लक्ष्य करके कड़ी टिप्पणी लिखी थी। जिसमें कहा गया कि 'प्रचार के नाम पर संस्कार का संहार असह्य अनाचार है। जान पड़ता है कि यह भाषा संस्कार के बदले भाषा-संहार का युग है। पत्रकारों का न इधर ध्यान है, न इसमें अनुराग ही।' शिवपूजन सहाय भाषा संस्कार के दायित्व को संपादक के दायित्व से जोड़कर देखते थे। इसीलिए उन्होंने 4 मई, 1946 के हिमालय में संपादकों को भाषा के साथ व्यभिचार का दोषी मानते हुए यह टिप्पणी भी की—'दोषी वास्तव में हम संपादक ही हैं, जो अपने पत्रों या पत्रिकाओं के माध्यम से भाषा

को पवित्र क्षेत्र में भ्रष्टता फैलाते हैं।'।

आजादी के बाद धर्मवीर भारती, अज्ञेय जैसे संपादकों ने भी हिंदी हित की अवहेलना नहीं की। अज्ञेय ने 'दिनमान' के माध्यम से पत्रकारिता की भाषा में चिंतन की शक्ति भरी। वे भाषा के प्रति उदासीनता को संस्कारहीनता का पर्याय समझते थे। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता जब तक भाषा की दृष्टि से पत्रकारिता के पूर्व मानदंडों पर चलती रही तब तक उसने भाषा के संस्कार की रक्षा की, लेकिन धीरे-धीरे भाषा को संस्कारित करने का दायित्व भूमंडलीकरण से प्रभावित संपादकीय नीतियों के कारण घटता चला गया, मगर आज मीडिया पर आयोजित होनेवाली संगोष्ठियों में प्रायः इस तरह की बातें अकसर सुनने को मिलती हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, शिवपूजन सहाय आज पत्रकारिता के आदर्श नहीं हो सकते। हम बिजनेस हाउस चलाते हैं न कि सेवा संस्थान।

जैसे-जैसे समाचारों के स्वरूप और विषय सामग्री में बदलाव आया है, उसी तरह उसकी भाषा का मिजाज भी बदला है। हिंदी प्रिंट मीडिया के समूचे परिदृश्य में हिंदी भूमंडलीय चुनौती से जूझ रही है, टकरा रही है। खबरों के बाजारोन्मुखी चरित्र ने हिंदी के स्वाभाविक सहज प्रवाह का रुख 'हिंग्लिश' की तरफ मोड़ दिया है। हिंदी के अखबार जिस भाषा को रच रहे हैं, वह अंग्रेजी की संपन्नता और हिंदी की दरिद्रता का नमूना बनकर पेश होती है। हिंदी के अखबारों में हिंदी के वितान में अंग्रेजी के लिए जगह बनाई जा रही है। अंग्रेजी को दी जानेवाली जगह में केवल अंग्रेजी के शब्द ही विराजमान नहीं हैं वरन् अंग्रेजी के मुहावरे और वाक्य विन्यास हिंदी को दबोच रहे हैं। यहाँ तक की अंग्रेजी की लिपि को भी सम्मान मिल रहा है। एक राष्ट्रीय अखबार के प्रथम पृष्ठ की खबरों तथा स्तंभों

के शीर्षक के कुछ नमूने समाचार पत्रों में अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि के वर्चस्व के प्रमाण के लिए काफी हैं—

‘पीपली लाइव के को-डायरेक्टर रेप में अरेस्ट’,
/ ‘A N M Sipeece रद्द’, / ‘गुड़गाँव-रेवाड़ी रोड
NH घोषित’, / ‘मणिपुर जाँच NIA के हाथ’, / ‘फूड
पार्क पर फाइट’, / ‘चिल्ड्रन थियेटर वर्कशॉप’, / ‘फास्ट
न्यूज’, / ‘फ्रंट पेज-2’, / ‘थॉट शॉट’।

हिंदी में अंग्रेजी की इस मिलावटी संगति को
‘रीडर्स फ्रैंडली’, ‘मार्केट
फ्रैंडली’ तथा ‘कॉमन मैन’
की भाषा के रूप में दर्ज कर
सम्मानित किया जा रहा है।

आज कोई संपादक
भाषा संस्कार की चिंता में
सिर उठाने की हिम्मत नहीं
कर सकता, क्योंकि भाषा नीति
उसके दायरे से बाहर हो गई
है। इसीलिए पत्रकार बिरादरी
ने भाषा की नई बाजार चाल

को अवश्यसंभावी मान लिया है। उसी में औचित्य की
अवधारणा के सूत्रों को खोज लिया है, क्योंकि यही
सोच ही उनकी रोजी-रोटी की सुरक्षा कर सकती है।
हिंदी के योद्धा की निर्भीक और साहसिक मुद्रा आज
के भूमंडलीय युग से मेल नहीं खाती।

इस तरह हिंदी पत्रकारिता में शब्द और वाक्य-
व्यवहार में मनमानी का नया अंदाज दिखाई पड़ रहा
है। पहले पत्रकार दूसरी भाषा के शब्दों को अपना
बनाकर प्रयुक्त करते थे। उसे अपनी भाषा के व्याकरण
में ढाल लेते थे, लेकिन आज अंग्रेजी का व्याकरण,
अंग्रेजी का वाक्य-विन्यास, अंग्रेजी के मुहावरे हिंदी
को जकड़ रहे हैं। कभी अखबारों में लिखे जानेवाले
अग्रलेख, संपादकीय टिप्पणियाँ पत्रों की नीतियों और
आदर्शों का आईना हुआ करती थीं, मगर आज वे भाषा

की अराजकता का दस्तावेज बन रही हैं। ‘आग के
गोले पर चल रही हैं बसें’, ‘खुखरी खोलेगी कत्तल
का राज’, ‘10 आतंकवादियों को गोलियों से भूना’,
‘जीवन का फर्हाटा’ जैसे समाचार स्टोरी के शीर्षक
हिंदी के साथ खिलवाड़ की कहानी कह रहे हैं। यह
एक विडंबनापूर्ण स्थिति है। हिंदी प्रिंट मीडिया अपनी
भाषा की गरिमा और मर्यादा की रक्षा करने में असमर्थ
है। भूमंडलीय दुष्चक्र में फँसी भाषा के नए अंतःसूत्रों
को हमारे बुद्धिजीवी बखूबी पहचान रहे हैं—‘संस्कृति

की दुनिया से हमारा कोई
संबंध नहीं, ज्ञान की दुनिया
से हमारा कोई संबंध नहीं।
हमारा संबंध खेलकूद से होगा
और इस हास्यास्पद, दयनीय,
राजनीतिक खिलाड़ियों की
नौटंकी से, और अधिक-से
-अधिक अधनंगी औरतों से
होगा। इससे क्या आप भाषा
को बाजारवाद का प्रतिरोध
करने के लिए तैयार कर

सकते हैं? हिंदी के ज्यादातर अखबारों को इसका
पता नहीं है।’

बाजारवाद की संस्कृति को विकसित करने में
अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले विज्ञापनों ने भी
भाषा को भ्रष्ट करने में अपनी भूमिका निभाई है।
‘विज्ञापनी आतंकवाद’ ने शब्द संसार के साथ ऐसी
छेड़खानी और जोर-जबरदस्ती की है कि शब्द से
जुड़े सीधे और आत्मीय अर्थ अपनी शक्ति खो बैठे हैं।

हिंदी के समाचार-पत्रों में विवाह, व्यापार और
आवास संबंधी 75 प्रतिशत विज्ञापन अंग्रेजी में दिए
जाने लगे हैं। ‘अंग्रेजी की खुरचन के रूप’ के रूप
में जो विज्ञापन हिंदी पत्रों में प्रकाशित होते हैं, वे
हिंदी की प्रकृति को बिगाड़ते हैं।

आजादी से पूर्व हिंदी पत्रकारों ने हिंदी गद्य को

इतना समर्थ बना दिया था कि उसमें 'मुरदे में भी जान' फूँकने की शक्ति समाहित थी, लेकिन आजादी के बाद धीरे-धीरे हिंदी गद्य की शक्ति क्षीण होने लगी। आजादी के लगभग तीन दशक के बाद राजेंद्र माथुर को कहना पड़ा कि—'हिंदी पत्रकारिता का अधिकांश गद्य प्राणहीन और और मुरदा है।' राजेंद्र माथुर की यह बात गलत नहीं थी। यह सच है कि इस प्राणहीन गद्य को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि 'एक-एक शब्द का इतिहास निराला होता है।'

उच्च प्रौद्योगिकी के नए स्वरों और संचार क्रांति की जरूरतों ने हिंदी में नए रंग भरे और उसे वह शक्ति देने की कोशिश की है, जिससे वह 'सूचनाओं के वाहक' की भूमिका निभा सके, लेकिन इस कोशिश में भाषा में केवल उत्तेजना भरी गई, चिंतन को धारण करने की शक्ति नहीं। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता में प्राथमिकता केवल सूचना-निर्माण, सूचना-संकलन और 'ब्रेकिंग न्यूज' की रह गई है। ब्रेकिंग न्यूज, फेक न्यूज और पेज न्यूज मीडिया के गाइडिंग सिद्धांत बनने लगे तो भाषा की चिंता प्राथमिकता की श्रेणी में नहीं आती। इसीलिए आज अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'गूँगी जनता के मुखर वकील' कहे जानेवाले हिंदी के दुर्धर्ष रचनाकार बालमुकुंद गुप्त की तरह जीवंत और बोलते हुए गद्य की सर्जना का कोई उद्देश्य सामने नहीं रह गया है। 'मार्केटिंग' संपादकों की दृष्टि भाषिक संरचना पर नहीं वरन विज्ञापन के बाजार पर गड़ी रहती रहती है। विज्ञापन की लड़ाई में जीत ही पत्रकारिता का असली मिशन है। इसी कारण आज विज्ञापन से बाजारोन्मुखी हुए हिंदी प्रिंट मीडिया ने हिंदी की स्वाभाविकता को, उसकी गरिमा को और उसकी शक्ति को बाजार के हवाले कर दिया है।

आज हिंदी पत्रकारिता के भाषाई परिदृश्य का एक ही सकारात्मक पक्ष उभरता हुआ दिखाई दे रहा है कि उसमें क्षेत्रीय भाषा के शब्दों और बोलचाल के शब्दों से हिंदी को बल प्रदान करने की कोशिश दिखाई पड़ने लगी

है। यद्यपि यह कोशिश अभी किसी अभियान का हिस्सा नहीं बन पाई है, इसलिए व्यापक स्तर पर इसका प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। कुछ ही क्षेत्रीय हिंदी पत्रों का यह पक्ष सराहनीय है। राष्ट्रीय अखबार तो पूरी तरह भूमंडलीय दुष्चक्र की चपेट में आ चुके हैं। आज 'तकनीक के वर्चस्व' के कारण तकनीक भी भाषा निर्माण की दिशा और दशा को तय कर रही है। भूमंडलीकरण की आँधी हमारी सांस्कृतिक विरासत की जड़ों को उखाड़कर उपभोक्तावादी संस्कृति के फैलाव का जो रास्ता तैयार कर रही है, उसने हिंदी प्रिंट मीडिया के सामने भाषा के संस्कार को विकसित करने की चुनौती खड़ी कर दी है। स्व. निर्मल वर्मा की यह चिंता और शंका सही है—'जहाँ अपनी परंपरा और सांस्कृतिक विरासत से नाता तोड़ने की प्रतिस्पर्धा हो, वहाँ सांस्कृतिक जड़ता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? सांस्कृतिक दरिद्रता के इस वातावरण में भाषा का विकास करने की गुंजाइश बहुत कम बची रहती है।'

हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि पत्रकारिता के क्षेत्र में हिंदी का अवमूल्यन हमारे विश्वास का, हमारी संकल्पबद्धता का अवमूल्यन होगा। टैक्नो संस्कृति के दौर में हिंदी को अपनी समृद्धि के लिए भारतीय भाषाओं से शब्दग्रहण और समन्वय स्थापित करना होगा। बाजार की भाषा को काटकर लोकभाषा की मिट्टी से, क्षेत्रीय भाषा की आंतरिक शक्ति से अपने अस्तित्व को गढ़ना होगा। भाषा के नवाचार में अराजकता और व्याकरणहीनता को दूर करना होगा। यह विश्वास भी अर्जित करना होगा हिंदी अपनी शक्ति और सामर्थ्य से बाजार की जंग को भी जीतने का हौसला रखती है। उसे बाजार में दौड़ लगाने के लिए अंग्रेजी शब्दों या अंग्रेजी वाक्य-विन्यास की बैसाखी की कतई जरूरत नहीं है।

□

हिंदी और जनसंचार : राष्ट्रीय एकता का आधार

—प्रो. बल्देव भाई शर्मा

ब्रिटिश शासनकाल में सर्वाधिक आघात यदि कहीं हुआ तो राष्ट्रीय एकता की भावना पर; अंग्रेज जान गए थे कि भारत की जीवनी शक्ति इसकी संस्कृति है और यहाँ की सांस्कृतिक चेतना में ही राष्ट्र की एकात्मता के बीज हैं, जो हजारों वर्षों से भारत को एक राष्ट्र के रूप में न केवल अखंड और सशक्त बनाए हुए हैं, बल्कि उसकी समृद्धि और गौरव के मूल स्रोत भी हैं। इसलिए अंग्रेजों ने बड़ी चालाकी से रणनीतिक तौर पर भारतीय जनमानस में हमारी संस्कृति, जीवनमूल्य, राष्ट्रीय अवधारणाओं व राष्ट्रीय एकता के भाव को विशृंखलित करने का षड्यंत्र रचा। लॉर्ड मैकाले का यह कथन इसी ओर इंगित करता है—‘मैंने भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा करते हुए ऐसा नहीं देखा कि कोई व्यक्ति भीख माँगता हो या चोरी करता हो, क्योंकि इस देश में पर्याप्त समृद्धि है; इस देश में इतने उच्च जीवन मूल्य हैं और लोग इतने क्षमतावान हैं कि हम इस देश को पूरी तरह कभी नहीं जीत सकते, जब तक कि हम भारत की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक विरासत जो इस राष्ट्र की रीढ़ है, को तोड़ न दें, इसलिए भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था और यहाँ की संस्कृति के स्थान पर भारतीय जनमानस में विदेशी, विशेषकर अंग्रेजियत के प्रति गौरव का भाव जगाना होगा’।

इसके विपरीत भारत में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध राष्ट्रीयता का अलख जगाने के लिए हिंदी पत्रकारिता का शुभारंभ 30 मई, 1826 को कोलकाता से ‘उदंत मार्तंड’ साप्ताहिक पत्र के रूप में हुआ, जिसमें उद्घोषणा की गई—‘यह उदंत मार्तंड अब पहले-पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु, जो आज तक किसी ने नहीं चलाया...’। आज हिंदी जनसंचार माध्यमों का भले ही काफी विस्तार हो गया हो, लेकिन वह दौर बड़ा भयावह था, जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीयता की बात करना राजद्रोह का अपराध माना जाता था। इसके बावजूद हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ व साहित्य ही जनसंचार का प्रमुख साधन थे, भारतेंदु हरिश्चंद्र व महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भारत की स्वाधीनता और राष्ट्रीय जागरण का अलख जगाया। सरस्वती, कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र चंद्रिका, हिंदुस्तान, कर्मयोगी, अभ्युदय, प्रताप, विशाल भारत, कर्मवीर जैसे अनेक हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय जनमानस को राष्ट्रभाव से अनुप्राणित कर उद्वेलित कर दिया। ‘अथर्ववेद’ के 12वें मंडल में वर्णित जो पृथ्वी सूक्त ‘माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः’ भारत की मौलिक एकता का आधार है, हिंदी जनसंचार माध्यमों यानी पत्रकारिता और साहित्य ने उसी भावभूमि पर राष्ट्रीय एकता

की भावना को बलवती कर देश में स्वाधीनता आंदोलन की यज्ञ ज्वाला को खूब दहकाया। ये लपटें भारत की भाषाई पत्रकारिता, यहाँ तक कि अंग्रेजी पत्रकारिता तक भी पहुँचीं और उर्दू, बांग्ला, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि अनेक भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। हालाँकि ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इनका प्रकाशन एक कठिन चुनौती थी। इसके लिए आर्थिक साधन जुटाना तो मुश्किल था ही, अंग्रेजी शासन का कोपभाजन बन अत्याचार, उत्पीड़न और भीषण कारावास सभी झेलना पड़ता था, लेकिन प्राणों की बाजी लगाकर भी पत्रकारिता की यह मशाल बुझने नहीं दी गई। इसी तरह भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'भारत दुर्दशा' हो या मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती', इन सभी साहित्यिक कृतियों ने राष्ट्रभक्ति की भावना को मजबूत किया और भारत की राष्ट्रीय एकता के ताने-बाने को सुदृढ़ बनाया। वस्तुतः उस दौर में हिंदी पत्रकारिता और साहित्य राष्ट्रभक्ति की साधना के दो छोर थे, जो एक ही सूत्र में गुँथे थे। पंडित जुगलकिशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्तंड' के रूप में हिंदी पत्रकारिता की जो लौ प्रज्वलित की माधवराव सप्रे, बाबूराव विष्णु पराड़कर, मदनमोहन मालवीय, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे पुरोधाओं ने उसे राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता यज्ञ की ज्वालाओं में बदल दिया। इनके द्वारा प्रकाशित हिंदी अखबारों ने जनमानस को जाग्रत कर आजादी की लड़ाई के लिए सन्नद्ध कर दिया। 1922 में प्रकाशित हिंदी पत्रिका 'चांद' के 1928 नवंबर में प्रकाशित 'फाँसी' अंक ने तो देश भर में ऐसा तहलका मचा दिया कि ब्रिटिश जज ने उसके छपने के बाद ही प्रतिबंध लगा दिया, क्योंकि उसमें भारत के देशभक्त बलिदानियों के साथ अंग्रेजी शासन की क्रूरताओं और कुत्सित मनोवृत्तियों का तथ्यपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया था। इतना ही नहीं, इसके लिए ब्रिटिश राज

की खुलकर निंदा भी की गई थी। हिंदी पत्रकारिता की निर्भीक राष्ट्रवादी अभिव्यक्ति का सशक्त और सार्थक दस्तावेज था 'चांद' का फाँसी अंक, जो आज की भ्रमित हिंदी पत्रकारिता के लिए भी 'राष्ट्र सर्वोपरि' के उद्घोष के साथ दिशा बोधक माना जाना चाहिए।

वस्तुतः जनसंचार माध्यमों का कार्य समाज की ऊर्जा और क्रियाशीलता को राष्ट्रहित में जगाना तथा सामाजिक उन्नयन में आ रही बाधाओं व विकृतियों के प्रति लोकजागरण है। इसके विपरीत आज एक वर्ग जनसंचार माध्यमों में अधिकांश लगी विदेशी पूँजी के प्रभाव में अथवा औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त होकर कथित बौद्धिक प्रगतिशीलता के नाम पर भारतीय जनमन में आत्महीनता का बोध जगाने के कुत्सित भाव से पत्रकारिता में संलग्न है। इनके द्वारा राष्ट्रीय जीवन में अनेक झूठ और भ्रम बड़ी चालाकी से फैलाए जाते हैं। ऐसा ही एक भ्रम अकसर फैलाया जाता है कि भारत को एक राष्ट्र के रूप में रहना अंग्रेजों ने सिखाया अन्यथा यह देश तो रियासतों में बँटा था। ऐसी बौद्धिक स्थापनाएँ देनेवाले कथित बुद्धिजीवी या पत्रकार या तो भारत को जानते ही नहीं हैं अथवा वे भारत से अनभिज्ञ रहकर अंग्रेजों की मानसिक गुलामी में आज भी जी रहे हैं। शायद मैकाले के कथन और षड्यंत्र को वह आज भी स्वतंत्र भारत में सार्थक कर रहे हैं। 'ऋग्वेद' में तो हजारों वर्ष पहले 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता' कहकर हमारे ऋषियों ने राष्ट्र की संकल्पना प्रस्तुत कर दी थी, जबकि यूरोप तो प्रायः फ्रांस की क्रांति के बाद 18वीं सदी के उत्तरार्ध में नेशन और नेशनलिज्म को जान पाया, हालाँकि यूरोप का नेशन भारत की राष्ट्र संकल्पना के समक्ष बेहद बौना है, क्योंकि वह उत्पीड़क है, लुटेरा है, दूसरों को बल से जीत कर उनकी पहचान छीननेवाला है। ब्रिटिश राज और हिटलर का नाजीवाद इसके



सर्वाधिक क्रूर उदाहरण हैं। इसके विपरीत भारत का राष्ट्र कोई राजनीतिवाचक संज्ञा न होकर एक सांस्कृतिक चेतना का प्रतिफलन है। यह मनुष्यता का पोषक है, सुख-शांति और सौहार्द का प्रतीक है, क्योंकि यह संकल्पना यूरोप की तरह थियोक्रेटिक स्टेट यानी मजहबी राज्य के उत्पीड़न के विरुद्ध अपनी पहचान बनाने की प्रतिक्रिया में से नहीं उपजी, बल्कि भारत के ऋषियों ने 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम' और 'ऊँ सहना ववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवाव है' जैसे मानवीय चेतना के एकात्मबोध से इस संकल्पना का सृजन किया। भारत के इस राष्ट्रबोध को जाने बिना तो अंग्रेज ही यहाँ राष्ट्रभाव के सर्जक दिखाई देंगे।

भारत के प्रति औपनिवेशिक काल में पैदा की गई यह हिकारत आज भी भारतीय मीडिया, जो जनसंचार का एक समुच्चय रूप बन गया है, में इस कदर व्याप्त है कि अपने आप को दिल्ली का सबसे बड़ा हिंदी अखबार कहनेवाला पत्र कुछ साल पहले एक लेखमाला छाप रहा था 'भारत में गर्व करने लायक क्या है? पत्रकारिता की आड़ में भारत की छवि भंग करने की यह कुत्सित मनोवृत्ति मीडिया में अकसर देखने को मिलती है जबकि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध हिंदी कविता 'जो भरा नहीं है भावों से/ बहती जिसमें रसधार नहीं/ वह हृदय नहीं है पत्थर है/ जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं', आज भी हमारे हृदय को स्वदेश प्रेम से अनुप्राणित कर देती है। ये पंक्तियाँ स्पष्ट कर देती हैं कि पत्रकारिता हो या अन्य लेखन, राष्ट्रीय हितों और सामाजिक सरोकारों

की अनदेखी स्वीकार्य नहीं है। कोई भी विचार जो भारत की सांस्कृतिक चेतना, हमारे सामाजिक-मानवीय जीवन मूल्यों व राष्ट्रीयता का पोषण नहीं करता, वह प्रगतिशीलता या आधुनिकता के नाम पर बौद्धिक विलासिता भर है।

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता ने देश भर में जो राष्ट्रीयता का भाव जगाया और भाषा के रूप में राष्ट्रीय एकता का जो सेतु निर्माण किया, उसे महात्मा गांधी ने बड़ी सहजता से समझा और व्यक्त

हिंदी साहित्य और पत्रकारिता ने देश भर में जो राष्ट्रीयता का भाव जगाया और भाषा के रूप में राष्ट्रीय एकता का जो सेतु निर्माण किया, उसे महात्मा गांधी ने बड़ी सहजता से समझा और व्यक्त किया—'हिंदी भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है। हिंदी हृदय की भाषा है।'

किया—'हिंदी भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है। हिंदी हृदय की भाषा है।' दूसरी ओर देश में राष्ट्रीय भावना और देशप्रेम की भावनाओं का ज्वार उठानेवाले कविवर रामधारी सिंह 'दिनकर' ने

राष्ट्रभाषा और 'राष्ट्रीय एकता' नामक अपनी पुस्तक में स्पष्ट लिखा है—'हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए माना गया कि केवल वही भारत की सांस्कृतिक एकता और राजनीतिक अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में समर्थ है। हिंदी के प्रति सभी देशवासियों का अनुराग व इसके महत्त्व को इससे भी समझा जा सकता है कि देश के पूर्वोत्तर छोर से लेकर दक्षिणी भारत तक अनेक गैर-हिंदी भाषी हिंदीसेवियों ने हिंदी की प्रतिष्ठा व समृद्धि के लिए अथक प्रयत्न किए। इनमें महात्मा गांधी, काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, सी. राजगोपालाचारी जैसे अनेक नाम उल्लेखनीय हैं। इससे स्पष्ट है कि हिंदी ने एक राष्ट्रीय भावबोध के साथ पूरे भारतवर्ष को बाँध रखा है। आज के तकनीकी दौर में जब जनसंचार

माध्यमों का विस्तार न्यू मीडिया से लेकर सोशल मीडिया तक हो गया है, तब हिंदी की उपयोगिता भी निरंतर बढ़ रही है। इंटरनेट से लेकर मुद्रित सामग्री तक हिंदी का प्रयोग बढ़ता देखा जा सकता है। विश्व के करीब 200 विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षण हो रहा है। इसके पीछे भारत जैसे विशाल जनसंख्यावाले देश में बाजार की जरूरतों भी एक प्रमुख कारण है, जिससे उपभोक्ता वस्तुओं के विज्ञापन में भी हिंदी का प्रयोग बढ़ा है। आज के समय में विज्ञापन भी जनसंचार का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। इन विज्ञापनों के माध्यम से भले ही बाजार की जरूरत के कारण, परंतु भारतीयता की पोषक कुछ बातें संवाद के रूप में जन-जन तक पहुँच रही हैं। लक्स साबुन के एक विज्ञापन में एक लोकप्रिय अभिनेत्री कहती है—‘आधुनिकता का मतलब अपनी परंपराएँ छोड़ना नहीं है’ हालाँकि इसका आशय विज्ञापन में इतना भर है कि लक्स साबुन में सौंदर्य के आधुनिक तत्वों के साथ-साथ पारंपरिक तत्वों को भी समेट कर रखा गया है, ताकि भारत की नई पीढ़ी के साथ-साथ सौंदर्यबोध की पारंपरिक सोच रखनेवाली महिलाओं की बड़ी आबादी भी लक्स के आकर्षण से अछूती न रहे।

यह प्रसन्नता की बात है कि हिंदी का विस्तार हो रहा है, लेकिन एक भाषा के रूप में इसकी गुणवत्ता और इसके प्रति राष्ट्रीय स्वाभिमान का भाव बड़ा आवश्यक है। गांधीजी कहा करते थे कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को भारत की राजभाषा बनाए जाने का आधा-अधूरा संकल्प लिए जाने के 69 साल बाद भी यदि हिंदी शासन की भाषा नहीं बन पाई और उसका प्रयोग करने में हेयता या पिछड़ेपन का अनुभव होता है तो यह गंभीर चिंता का विषय है। इस उदासीनता का दुष्परिणाम यह हो रहा है कि जनसंचार माध्यमों,

विशेषकर हिंदी समाचार-पत्रों में तो हिंग्लिश या अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग खूब बढ़ रहा है। विश्व हिंदी सम्मेलन के माध्यम से दुनिया भर में हिंदी की प्रतिष्ठा बढ़ाने का उपक्रम श्लाघ्य है, विशेषकर भोपाल में संपन्न दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन को साहित्य की बजाय हिंदी भाषा के उन्नयन और दैनिक व्यवहार में उसकी प्रयोगधर्मिता बढ़ाने पर केंद्रित करके जो कार्य-योजनाएँ बनीं और फिर उनके क्रियान्वयन का प्रयास हुआ। भारतीय जनमानस में, विशेषकर शासकीय काम-काज में हिंदी का महत्त्व परिलक्षित हो, उसकी उपयोगिता बढ़े और उसकी गुणवत्ता के साथ भी कोई खिलवाड़ न हो, इसके लिए गंभीर प्रयत्न आवश्यक हैं। आजकल जनसंचार माध्यमों में रोमन में हिंदी लिखने का चलन बढ़ रहा है और विडंबना यह है कि उसे हिंदी में लिखना बताकर प्रोत्साहन दिया जा रहा है। इन भ्रमों से बाहर निकलने की आवश्यकता है। वस्तुतः लिपि किसी भी भाषा की रक्त वाहिका धमनी होती है। उस से पृथक् कर भाषा को जीवंत बनाकर नहीं रखा जा सकता। इसलिए गांधीजी ने कहा था—‘हिंदी के लिए देवनागरी लिपि का ही प्रयोग होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता।’ इन सब बिंदुओं पर विचार करते समय इस सच्चाई की अनदेखी किया जाना देश हित में उचित नहीं होगा कि हिंदी जितनी समृद्ध और व्यापक होगी, राष्ट्रीय एकता का भाव उतना ही परिपुष्ट होगा। दूसरी भारतीय भाषाओं के लिए इसे खतरे के रूप में या हिंदी थोपने के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। वस्तुतः सभी भारतीय भाषाएँ और उनका साहित्य राष्ट्रीय चेतना और संस्कृति की पोषक हैं, परंतु हिंदी पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधे हुए है।

□

अध्यक्ष, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास
नई दिल्ली

संप्रेषण की भाषा और हिंदी पत्रकारिता

—प्रो. राममोहन पाठक

हिंदी पत्रकार के सामने यह समस्या आज भी विद्यमान है कि वह कौन सी हिंदी का प्रयोग करे, मातृभाषा हिंदी का या राष्ट्रभाषा हिंदी का? मातृभाषा हिंदी की विशेषता यह है कि वह उसमें चुन-चुनकर देशी मुहावरों का इस्तेमाल कर सकता है, जनपदीय शब्दों की चाशनी डालकर उसे मधुर बना सकता है और बोलचाल के उर्दू शब्दों का प्रयोग उसकी भाषा की शक्ति और प्रवाह को अधिक बल देता है। उसका शब्द भंडार बढ़ाता है। एक प्रकार से हिंदी पत्रकार के लिए यह आदर्श प्रयोग है। इसी भाषा के लिए श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने कहा था—‘हिंदी और उर्दू’ के शब्द वाक्य रचना में कोई अंतर नहीं है। उर्दू साहित्य के ग्रंथों के मुहावरे बहुत लाभ के साथ हिंदी में ग्रहण किए जा सकते हैं। हिंदी भारतीय राष्ट्र की समस्त निधि की रक्षिका होनी चाहिए, इसलिए प्राचीन विशाल भारत पर भी उसमें साहित्य होना चाहिए।

वैसे तो यह शिकायत अंग्रेजी सहित सभी भाषाओं के पत्रों के बारे में की जाती है कि आज जिस भाषा का प्रयोग हो रहा है, वह भाषा का उज्ज्वल या तेजस्वी स्वरूप नहीं है, जो किसी समय हुआ करता था। कहा जाता है कि एक वक्त था जब ‘स्टेट्समैन’ पत्र में एक कर्मचारी इसी काम पर नियुक्त होता था कि वह छपे अखबार में भाषा की गलतियाँ निकाले और उसे प्रत्येक अशुद्ध प्रयोग का पता लगाने के लिए

एक रुपया मिलता था। उस समय एक रुपया बहुत मूल्यवान होता था, कम-से-कम दस-बारह सेर गेहूँ आ जाता था।

हिंदी पत्रकारिता की भाषा संबंधी कठिनाइयाँ दो हैं। सबसे पहले तो यह कि यह एक बहुत बड़े जन-समूह द्वारा प्रयुक्त की जाती है। उस समूह में अधिकांश लोगों की मातृभाषा वह शैली नहीं है, जिसे हम आधुनिक हिंदी या पुराने नाम—‘खड़ी बोली’ से संबोधित करते रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी बोलियाँ हैं, उनके उच्चारण और बोलने के ढंग का असर लिखने पर भी पड़ता है। हिंदी के पत्र भारत के सभी प्रांतों से प्रकाशित होते हैं, शिलांग से भी, गुवाहाटी से भी और अंदमान द्वीप समूह से भी। हर नगर में जो लोग हिंदी पत्रकारिता करते हैं, उनके अपने संस्कार हैं, परंतु हिंदी की कोई निश्चित मानक शैली नहीं है। इसलिए जो भी संपादक जिस शैली को उपयोगी और उचित समझता है, उसका प्रयोग करता है। परिणामस्वरूप, हिंदी कहलाने वाली भाषा के विभिन्न पत्रों में तरह-तरह के प्रयोग दिखाई देते हैं।

भाषा संबंधी इस कठिनाई को हिंदी पत्रकारिता पर लिखने वालों ने बहुत पहले से सोचा है। सभी लोग जानते हैं कि श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा ‘अनस्थिरता’ शब्द के प्रयोग को लेकर श्री बालमुकुंद गुप्त ने ‘आत्माराम’ के नाम से नौ लेख लिखे थे और

श्री गोविंद नारायण मिश्र ने उसके जवाब में 'आत्माराम की टें-टें' के नाम से आठ लेखों की एक लेखमाला लिखी थी। उस समय शब्दों के प्रयोग पर बहुत जोर दिया जाता था। पुराने युग के पत्रकार केवल इस बात का ही ध्यान नहीं रखते थे कि भाषा प्रभावशाली हो, बल्कि यह भी सोचते थे कि वह व्याकरण और प्रयोग की दृष्टि से शुद्ध हो। हिंदी पत्रों की प्रारंभिक भाषा के सिलसिले में यह ध्यान रखने की बात है कि हिंदी गद्य जिन लोगों के नाम से हमें ज्ञात है, वे खड़ी बोली के क्षेत्र के तो थे ही नहीं। उन्होंने ऐसे स्थान में लिखा, जो हिंदी भाषी क्षेत्र से काफी दूर था। पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' है, यह कोलकाता से निकला था। इसके संपादक श्री युगलकिशोर सुकुल थे, जो कानपुर के रहनेवाले थे। इससे यह समझना चाहिए कि उनकी हिंदी टकसाली होगी, क्योंकि कानपुर हिंदी क्षेत्र के बीचोबीच स्थित है, लेकिन स्वयं 'उदंत मार्तंड' के संपादक ने दो प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। प्रारंभ में उन्होंने ब्रज भाषा में कविता दी और इस प्रकार लिखा—

“यह 'उदंत मार्तंड' पहले-पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंगरेजी ओ पारसी ओ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है, उसका सुख उन बोलियों के जानने ओ पढ़नेवालों को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिंदुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेव ओ पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषा की उपज न छोड़ें, इसलिए बड़े दयावान करुणा और गुणनि के निधान सबके कल्याण के विषय गवर्नर जेनेरेल बहादुर की आयससे जैसे साहस में चित लगाय के एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा—”

लेकिन जब डेढ़ वर्ष पश्चात् यह पत्र बंद हुआ तो श्री सुकुल को अपना दुःख प्रकट करने के लिए यह शैली अपर्याप्त लगी और उन्होंने अपने हृदय की कचोट को पहले ब्रज भाषा में लिखा और फिर जिसे हम आजकल की हिंदी कहते हैं, उसमें लिखा। इससे

प्रकट होता है कि प्रारंभ से ही हिंदी पत्रकार के सामने अभिव्यक्ति की समस्या विद्यमान थी। सुकुलजी ने ब्रज भाषा में जो लिखा है, वह काफी शक्तिशाली है, लेकिन वह संकेतों में है। बाद में यह समझकर कि कोलकाता का हिंदी पाठक, जो ब्रज भाषा के मुहावरों से परिचित नहीं है, शायद उनकी कटूक्तियों का ठीक-ठाक अर्थ न समझे, उन्होंने उसे कोलकाता की बोलचाल की हिंदी में लिखा। उन्होंने लिखा—“जबसे या कलकत्ता नगरी में 'उदंत मार्तंड' को प्रकाश भया, तबते लै आज दिवस लो काहू प्रकार से ढाडस बाँध, विद्या के बीच बैचेको हिंदुस्तानियान के जटता के खेत को बहुविधि जोत्यो पहिले तो ऐसी कठोर भूमि काहेको जुते ताहू पै काया कष्टकर जैसा तैसा हर चलाय बाक्षेत्र में गाँठ की ब्यू बखेर बड़े यतन सेसींच फल लुन्या चाह्यों तो समय लोभ रूपी टाड़ी परि बा खेत के फल फूल पाती सिगरी चरि गई अब तो फिरफिरि या नाशें क्षेत्रको गोडियो तो श्रमही के फल फलेंगे।”

इसके बाद दो दोहे देकर उन्होंने लिखा था—
“प्रथमि या काजको जो कारण कह्यो ताको विस्तार सयानिको जनावनो उचित है ताते अब कछु मध्यदेशीय भाषा लिखतु हों। इस 'उदंत मार्तंड' के नाव पड़ने के पहिले पछाहियों के चितका इस कागज न होने से हमारे मनोर्थ सफल होने का बड़ा उतसा था, इसलिए लोग हमारे बिन कहे भी इस कागज की सहीकी बही पर सही करते गए पै हमें पूछिये तो इनकी मायावी दया से सरकार अँगरेज कंपनी महाप्रतापी की कृपाकटाक्ष जैसे औरों पर पड़ी, वैसे पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैंने इस विषय में उपाय यथोचित किया पै करमकी रेख कोन मेटे।”

यह उद्धरण हमने यह प्रकट करने के लिए दिया है कि आदिकाल से हिंदी पत्रकार के समक्ष यह समस्या रही है कि किस प्रकार वह अपने सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विचार को अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुँचाए? उसका कारण हिंदी की प्रवृत्ति है। इसके दो



स्वरूप हैं, एक मातृभाषा का और दूसरा राष्ट्रभाषा का। उस समय हिंदी में ब्रजभाषा कोमल और कठोरतम विचारों के लिए एक आदर्श माध्यम थी। उसी में श्रेष्ठ कविताएँ लिखी जाती थीं और समाचार-पत्रों के लिए आदर्श वाक्य, चाहे वह हिंदी मासिक 'उदंत मार्तंड' का हो, बांग्लाभाषी राजा राममोहन राय का 'बंगदूत' हो, ब्रजभाषा में होता था। यहाँ तक कि जिस 'बनारस अखबार' की भाषा को श्री अंबिका प्रसाद वाजपेयी 'रदूदी उर्दू' की संज्ञा देते हैं, उसके शुभंकर की भाषा भी शुद्ध और बढ़िया ब्रजभाषा थी, जैसे—

सुबनारस अखबार यह शिव प्रसाद आधार।

बुधि विवेकजन विधुनको चितहित बारंबार॥

गिरजापति नगरी जहाँ, गंग अमल जलधार।

नेत शुभाशुभ मुकुरको, लखो विचार-विचार॥

और यह प्रवृत्ति काफी समय तक रही। इसलिए एक तरफ श्री युगलकिशोर सुकुल ने ब्रजभाषा का प्रयोग किया तो दूसरी तरफ यह जानते हुए कि कोलकाता के उन व्यापारियों में, जिनके सुख के लिए उन्होंने पत्र निकाला था, राजस्थान और पंजाब के ऐसे लोग भी थे, जो ब्रजभाषा की बारीकियों को ठीक से समझ नहीं सकते थे, उन्होंने स्पष्ट शब्दों में आधुनिक हिंदी की पूर्वज खड़ी बोली, जिसे उन्होंने मध्यदेशीय भाषा कहा है, लिखा। वैसे 'मध्यदेशीय भाषा' और हिंदुस्तानी समानार्थक हैं, क्योंकि सुकुलजी जिन लोगों को अपने ग्राहकों में गिनते हैं, उनको हिंदुस्तानी कहते हैं और उनकी भाषा को मध्यदेशीय भाषा कहा है। वस्तुतः जो लोग पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी अथवा पूरबिया की श्रेणी में नहीं आते थे, उन्हें अहिंदी भाषी हिंदुस्तानी ही कहकर संबोधित करते थे, जिसमें उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश का काफी हिस्सा आ जाता था। बिहार के लोगों को सर जॉर्ज ग्रियर्सन के जमाने में 'बिहारी' कहा जाता होगा, इसलिए उन्होंने 'बिहारी' नाम की भाषा का भी उल्लेख किया है, जबकि भाषाशास्त्र की दृष्टि में बिहार में मैथिली, भोजपुरी,

मगधी और अनेक आदिवासी बोलियाँ अब भी बोली जाती हैं, परंतु शिष्ट समाज में ओर अधिकारी वर्ग में खड़ी बोली का रूप भी प्रचलित था।

हिंदी जगत् की यह बड़ी दुविधा है। एक ओर हिंदी को हम हिंदी और उर्दू में जो कुछ अच्छा है, उसके मेल की भाषा के रूप में देखना चाहते हैं, दूसरी तरफ उसके द्वारा भारत की सभी भाषाओं की निधि की रक्षा करना चाहते हैं। यह वस्तुतः दो विरोधी विचारधाराएँ हैं, जिनके मेल की समस्या स्वाधीन भारत की एक बड़ी समस्या रही है। संविधान बनने के बाद, जब उसको हिंदी में अनूदित करने का प्रश्न उठा और उसके लिए उचित शब्दावली ढूँढ़ी गई तो आचार्य रघुवीर ने यह विचार प्रकट किया कि संविधान में एकरूपता तभी आ सकती है, जबकि शब्दावली का आधार संस्कृत की धातुएँ हों और उन्हीं से शब्द बनाए जाएँ, यानी हम यदि अंग्रेजी 'लॉ' के लिए 'विधि' शब्द स्वीकार कर लेते हैं तो उसी से विधान परिषद्, विधान मंडल, विधायिनी शक्ति या विधायी शक्ति, विधायी प्राधिकारी, विधि प्रवर्तन, विधि प्रश्न, विधि प्राधिकार, विधि बल, विधिवक्ता, विधिवत्, विधेयक, विधेय अनुकूल आदि शब्द बना सकते हैं। उनका यह मानना था कि अगर शब्द हिंदी या उर्दू से ही लिये जाएँ तो वह एक क्षेत्र विशेष के लिए उपयोगी होंगे, जहाँ हिंदुस्तानी समझी जाती है, पर उनकी शब्दावली बांग्ला, मलयालम, गुजराती, कन्नड़, मराठी और असमिया—सभी भाषाओं के निकट होगी, क्योंकि उन सबमें संस्कृत से बहुत से शब्द लिये गए हैं। यद्यपि उस समय आचार्य रघुवीर की विचारधारा का बहुत विरोध हुआ, परंतु अंततोगत्वा अहिंदीभाषियों के आग्रह के कारण और उनके विद्वानों की एक विद्वत् परिषद् के समर्थन के आधार पर संविधान सभा ने शब्दों का वह स्वरूप स्वीकार कर लिया। यह बात अलबत्ता दूसरी है कि यद्यपि संविधान सभा की एक समिति ने श्री घनश्याम सिंह गुप्त और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के नेतृत्व में उस अनुवाद को पूर्ण

कर लिया था, पर उसे मान्यता कुछ वर्षों पहले ही मिली है, जबकि हिंदी अनुवाद को अंग्रेजी मूल के समकक्ष माना गया है। यह सही है कि अहिंदी प्रांतों के बहुत से लोगों ने संस्कृत शब्द बहुल हिंदी पढ़ी है और आज जो हिंदी पढ़ाई जा रही है, चाहे वह हिंदी प्रांतों में हो अहिंदी प्रांतों में, उसका वही रूप है, जो हिंदुस्तानी से दूर है। परंतु यह शिकायत भी होती है कि यह क्लिष्ट है, समझ में नहीं आती है, इस भाषा को समझने के लिए अंग्रेजी मूल को सामने रखना पड़ता है और बहुत से लोग तो यह भी कहते हैं कि अगर हिंदी राज-काज की भाषा के रूप में स्वीकार नहीं हुई है तो उसका स्वरूप इसके लिए उत्तरदायी है।

हिंदी भारत सरकार के कार्यालयों की भाषा हो न हो, यह एक अलग प्रश्न है। भारत सरकार यह निर्णय कर सकती है और यदि वर्तमान अखिल भारतीय दल या उनके समूह सत्तारूढ़ रहें, तो हमेशा यह निर्णय करती रहेगी कि जब तक उनकी पीढ़ी जिंदा है, अंग्रेजी से ही काम निकाला जाए और अगली पीढ़ी भी शायद यही कहे, क्योंकि पिछले चालीस वर्षों में पीढ़ियाँ बदली हैं, परंतु अंग्रेजी का आग्रह बदला नहीं है। आज का नेता और आज का अधिकारी यह मानकर चलता है कि अगर उसे अखिल भारतीय पद प्राप्त करना है तो उसे अंग्रेजी का सहारा लेना आवश्यक है।

लेकिन हिंदी पत्रकार की समस्या बिल्कुल अलग है। भले ही उसके पत्र का नाम अब बिल्कुल अंग्रेजी हो जाए—जैसे 'इंडिया टुडे', 'आउटलुक', 'संडे ऑब्जर्वर', 'संडे मेल' या हिंदी 'ब्लिट्ज'; अगर उसे ऐसे लोगों में बेचना है, जो नागरी अक्षरों में लिखा अखबार ही पढ़ सकते हैं या उसके द्वारा ही समाचारों, विचारों और अन्य सामग्री का रस ले सकते हैं तो उसे जिस भाषा का प्रयोग करना पड़ेगा, उसे हिंदी ही कहा जाएगा। यह तो हो सकता है कि जिस प्रकार दूरदर्शन की हिंदी में देहाती कार्यक्रमों में भी क्रिया पदों के अलावा बाकी सारे शब्द अंग्रेजी के होते हैं, लेकिन उन्हें हिंदी

कार्यक्रम कहा जाता है, वैसे ही धीरे-धीरे समाचार पत्रों की भाषा में अंग्रेजी के शब्द उसी तरह समा जाएँ, जिस तरह हमें संविधान सम्मत भाषा में संस्कृत के शब्द दिखाई देते हैं, परंतु उस भाषा को हिंदी पत्रकारिता के लिए आदर्श भाषा नहीं कहा जाएगा। आदर्श भाषा वह मानी जाती है, जिसे पढ़े-लिखे संभ्रांत लोग बोलते हैं और जो नितान्त बाजारू न हो। जब अंग्रेजी का प्रयोग बाजारू और घटिया लगने लगेगा तो अपनी शिक्षा और संस्कृति का प्रदर्शन करने के लिए शिष्ट शब्दावली का प्रयोग आवश्यक होगा। तब यह सवाल उठता है कि हिंदी पत्र की भाषा क्या है?

हिंदी के मासिक और साप्ताहिक पत्रों की भाषा भी दैनिक पत्रों की अपेक्षा अधिक सुस्पष्ट है। जो पत्र केवल क्षेत्रीय प्रयोग के लिए होते हैं, उनमें क्षेत्रीय शब्द और मुहावरे अधिक पाए जाते हैं, जिनकी परिधि अखिल भारतीय होती है अथवा यूँ कहिए कि अखिल हिंदी पाठक समाज की होती है, उनकी भाषा संस्कृत की ओर कुछ ज्यादा झुकी होती है, लेकिन उस पत्र की भाषा एक ढाँचे की नहीं होती। विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे जाने के कारण उसमें विभिन्न शैलियाँ, यहाँ तक कि विभिन्न वर्तनियाँ भी प्रकट होती हैं, परंतु दिक्कत हिंदी के दैनिकों की है। उसमें भी उन दैनिकों के सामने और भी कठिनाई है, जो महानगरों से प्रकाशित होते हैं और दूर-दूर तक बिकने जाते हैं। उन्हें ऐसी भाषा शैली अपनानी पड़ती है, जो उन पत्रों को सभी स्थानों पर पाठकों के लिए समान रूप से ग्राह्य हो।

दैनिक पत्रों की दूसरी कठिनाई यह है कि प्रायः पत्र का आधे से अधिक कलेवर अनूदित होता है। समाचार समितियाँ अंग्रेजी की हैं, विदेशी समाचार तो अंग्रेजी में आते ही हैं, देशी समाचार भी प्रायः अंग्रेजी में ही प्राप्त होते हैं। यह कहा जा सकता है कि 'भाषा' और 'यूनीवार्ता' एजेंसियाँ हिंदी में समाचार देती हैं, पर उनमें और समाचार पत्रों में केवल अंतर होता है कि अंग्रेजी समाचारों का अनुवाद समाचार पत्र कार्यालय

में न होकर समाचार एजेंसी के कार्यालय में हो जाता है, सिवा उन थोड़े से समाचारों के, जो उन एजेंसियों के संवाददाता हिंदी में देते हैं यानी हिंदी में लिखते हैं— प्रायः सारे समाचार अंग्रेजी समाचारों का अनुवाद होते हैं। मुहावरेदार भाषा का बड़ा जबरदस्त असर पड़ता है और मुहावरा ढूँढ़ने के लिए किसी कोश को देखने की जरूरत नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए, तत्कालीन जनता दल के बजट पर जनसत्ता ने शीर्षक दिया था— ‘मधु कम दंड अधिक’। इसमें उन्होंने तत्कालीन वित्त मंत्री मधु दंडवते नाम के ही दो हिस्सों को इस प्रकार प्रकट कर दिया कि उसमें बजट की पूरी आलोचना और उसका खाका पाठक के मस्तिष्क पर उतर गया।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि संस्कृत शब्दों का प्रयोग लोकप्रियता में बाधक नहीं होता। ‘तातश्री’, ‘पिताश्री’ और ‘माताश्री’ आदि संबोधन हिंदी में पहली बार दूरदर्शन धारावाहिक के माध्यम से

आए और ऐसे जम गए कि तमिलनाडु में भी ‘पिताश्री’ और ‘माताश्री’ चलने लगे हैं। कुछ कठिन लगनेवाले शब्द कठिन नहीं होते। ‘तात’ का प्रयोग हम नहीं करते इसलिए वह दुरुह लगता है, जबकि वह संस्कृत के लिए बड़ा साधारण है। मैथिलीशरण गुप्त ने उसका प्रयोग भी किया है और ‘भारत भारती’ तथा ‘जयद्रथ वध’ में भी वह बिना ‘श्री’ के भी प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत में भी ‘श्री’ कहीं नहीं है, मराठी में बड़े को ‘तात्या’ आज भी बोला जाता है और ‘ताई’ स्त्री का सम्मानजनक याचक है। पंजाबी का ‘ताया’ हिंदी भाषा का ‘ताऊ’ या ‘ताऊना’ जिससे ब्रजभाषा में ‘बाऊ’ बन गया, यह बड़े के लिए है और बुंदेलखंड में भी चला।

साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिकाओं की भाषा अलग तरह की होती रही है। प्रेमचंद, प्रसाद, निराला के समय से ही यह भेद चला आ रहा है, लेकिन माखनलाल चतुर्वेदी या गणेशशंकर विद्यार्थी की भाषा अलग थी। गणेशशंकर विद्यार्थी की भाषा में सपाटपन तो था, किंतु ओज भी कम न था। माखनलालजी ओजपूर्ण तो लिखते थे, किंतु उनका कवि भी उनके लेखन में सदैव विद्यमान रहता था। उनके लेखन का एक उदाहरण लें—“क्या हम शांतिपूर्ण आनेवाली परिस्थितियों में प्राणदान का आमंत्रण स्वीकार करेंगे?

अब हमारी पुष्पमालाओं को शांति पथ के घायलों के लिए सुरक्षित रहना चाहिए और हमारी पूजा को उनके लिए जो दान करने उठें, तो देश के पथ में प्राणदान के लिए उठें, उस समय जब परिस्थितियों ने माँग की हो। आत्महत्याओं का तथा आपस की मारपीट का कायर मरण उस दिन शांत मरण के सम्मुख लज्जित हो जाएगा।” इस उद्धरण में कायर मरण और शांत मरण का उल्लेख देखिए—यह एक कवि ही कर सकता है।

लिखने और बोलचाल की भाषा हमेशा से अलग रही है। गालियाँ और प्रयोग में आनेवाले कुछ अभद्र शब्द निकाल भी दें तो जिस भाषा में हम बात करते हैं, उसे ज्यों-का-त्यों पत्रकारिता में नहीं लिया जा सकता। हाँ, उसमें से देशज और बहुप्रचलित शब्द लिये जा सकते हैं, खासतौर पर ऐसे शब्दों के स्थान पर जिनके लिए लिखित भाषा में कठिन शब्द हैं। आंचलिक और देशज प्रयोगों को बहुतायत में शामिल करने से भाषा की संप्रेषण क्षमता जरूर बढ़ेगी, किंतु इसमें एक खतरा

पत्रकारिता की भाषा वह होनी चाहिए, जिस भाषा में हम और आप अपने दोस्तों, संबंधियों को चिट्ठी लिखते हैं। यह नहीं कि जिस भाषा में तमाम औपचारिक-कार्यालयीन पत्र लिखे जाते हैं। मेरा खयाल है कि ऐसी भाषा में पाठक से संवाद सीधा ओर रु-ब-रु हो सकेगा। दरअसल, लिखित और संवाद की भाषा का भेद मेरे विचार से बेमानी है।

भी है। ऐसी भाषा का दायरा छोटा हो जाएगा। अखबार एक क्षेत्र या अंचल का ही होकर रह जाएगा। आजकल हो भी यही रहा है। यह नहीं कि क्षेत्रीय या आंचलिक अखबारों की जरूरत नहीं है, बल्कि यह जरूरत तो बहुत ज्यादा है, किंतु आजकल देश में अनेक 'राष्ट्रीय' कहे जानेवाले अखबार हैं। बड़ी-बड़ी प्रसार संख्यावाले इन अखबारों को तो देश भर में पढ़ा जाता है। उनके लिए तो एक मानक भाषा की जरूरत होगी। उत्तर भारत में उर्दू-बहुल हिंदी ज्यादा लोकप्रिय हो सकती है, लेकिन महाराष्ट्र और दक्षिण में संस्कृतनिष्ठ भाषा की जरूरत हो सकती है। दोनों ही दो अलग छोर हैं। यही तर्क इस माँग के खिलाफ जाता है कि हम बोलचाल की भाषा में अखबार क्यों नहीं निकाल सकते? बल्कि निकालने भी चाहिए, लेकिन वे क्षेत्रीय अखबार होंगे। शायद यह करके बहुत संभव है कि क्षेत्रीय अखबार पाठक को धीरे-धीरे मानक भाषा की ओर ले जाने में सफल भी हो सकें। इसी तरह राष्ट्रीय अखबार भी देशज और क्षेत्रीय या आंचलिक शब्दों का प्रयोग करेंगे तो अखबार की संप्रेषणीयता में वृद्धि होगी, लेकिन यह एक दिन का काम नहीं है। यह निरंतर और लगातार करते रहना होगा और लगातार यह दुतरफा प्रयोग किया जाए तो और भी फायदेमंद साबित होगा यानी एक मोर्चे पर क्षेत्रीय अखबार अपने क्षेत्र के शब्दों के साथ-साथ मानक शब्दों का प्रयोग भी करते रहें, दूसरी ओर राष्ट्रीय अखबार वैकल्पिक रूप से कठिन शब्दों के साथ-साथ बोलचाल के आसान शब्द भी इस्तेमाल करते रहें।

पत्रकारिता एक तात्कालिक प्रक्रिया है। खबर को या खबर पर होनेवाली प्रतिक्रिया या विश्लेषण को तुरत-फुरत लिखना होता है। अखबार का पेट भरना रात्रि की पालीवाले पत्रकार का संकट होता है। संपादकीय टिप्पणी के लिए तो फिर भी समय मिल जाता है, किंतु खबर को अखबार में ढालनेवाले पत्रकार के पास यह फुरसत नहीं होती। पत्रकारिता को कुछ लोग 'जल्दी में लिखा हुआ साहित्य' कहते हैं। अंग्रेजी में खबर को

'स्टोरी' यानी कहानी कहा जाता है। कहानी निस्संदेह साहित्य की विधा है, किंतु हिंदी में साहित्यिक विधा के प्रतिमानों के अनुरूप खबर को लिख पाने का कौशल हर एक के पास नहीं होता। उस हबड़-तबड़ में भी सुचारु रूप से खबर को स्टोरी बना पाना अनुभव से ही आता है। ऐसे में श्रेष्ठ शब्दों की जमावट तभी हो सकती है जबकि संप्रेषण का आपका अपना ढाँचा सुनिश्चित और सुस्थापित हो। हर व्यक्ति के पास शब्दों की निजी पूँजी होती है। यह संपदा बड़ी भी होती रहती है, इसमें संदेह नहीं है। अनुभव, अध्ययन, बातचीत, नियमित लेखन ओर फौरी जरूरतें इस पूँजी को बढ़ाने के साधन हैं। फिर भी, सबकी शब्द-संपदा अपनी अलग-अलग ही होती है। इसी तरह सबकी एक अलग तरह की शैली भी बन जाती है, जो लेखक के व्यक्तित्व का अंग होती है। इसलिए यह निश्चित है कि एक ही समाचार को दो व्यक्ति अलग-अलग तरीके से लिखेंगे। हो सकता है, उसमें शब्दों का अधिक हेर-फेर न हो, क्योंकि दोनों के पास ज्यादातर मानक शब्दों का भंडार वही होगा, लेकिन फिर भी हर व्यक्ति अपनी शैली और अपने अनुभव से 'स्टोरी' को अपना व्यक्तित्व जरूर प्रदान कर सकता है।

शैली की चर्चा से यह बात याद आई। शैली की सरसता और लुभावने अंदाज के कारण हमारे एक वरिष्ठ पत्रकार बंधु को 'हिंदी पत्रकारिता का गुलशन नंदा' कहा जाता रहा है। साहित्य में गुलशन नंदा का कुछ भी स्थान रहा हो, उनके साहित्य में जिसे 'साहित्य' शब्द से अलंकृत करने में भी परहेज हो सकता है, संप्रेषणीयता का जबरदस्त गुण रहा है। यह निर्विवाद है कि यह अत्यंत लोकप्रिय रहा है। लोकप्रियता और संप्रेषणीयता एक-दूसरे पर आश्रित गुण हैं। तो, मुझे कतई गलत नहीं लगता कि कोई पत्रकारिता का गुलशन नंदा बने, लेकिन शर्त यह है कि उसमें पत्रकारिता के समस्त गुण ज्यों-के-त्यों हों। गुलशन नंदा और शिवानी में जो अंतर रहा है, उस

तरह का अंतर रखना होगा। शिवानी ने लोकप्रिय कथ्य को हमेशा साहित्यिकता की चाशनी में पाग कर पेश किया, यानी उसमें साहित्यगत मूल्य भी बरकरार रखे और लोकप्रियता के लटके भी। यानी शैली लोकप्रिय, सरस, आलंकारिक हो तो वह सुपाठ्य होगी ही, लेकिन उसमें गहन गंभीर और मौलिक विचार भी हों। शायद इस शैली में गहरे और कठिन विचार भी सामान्यजन को समझाए जा सकते हैं। एक ही विषय पर लिखे गए विभिन्न समाचार-पत्रों के संपादकीय देखकर मिलान कीजिए—शैली, विचारों, भाषा-प्रयोगों का अंतर सुस्पष्ट हो जाएगा। कोई अपने विचार प्रतीकों, किंवदंतियों, पौराणिक या लोक कथाओं के सहारे से रखेगा; किसी की की शैली सीधी, सपाट किंतु तार्किक होगी, तो ऐसे भी लेखक हैं, जो इतनी सीधी बात कहते हैं, जैसे कि पाठक को झापड़ मार रहे हों। यह आप स्वयं चुन लीजिए कि इसमें से कौन सा ढंग आप पसंद करना चाहेंगे, कौन सा ढंग पत्रकारिता की ज्यादा सेवा करने में समर्थ होगा, कौन सा ढंग लोकप्रिय होगा?

भाषा कैसी होनी चाहिए, इसका एक सीधा स्पष्ट मंतव्य मेरे विचार से है—पत्रकारिता की भाषा वह होनी चाहिए, जिस भाषा में हम और आप अपने दोस्तों, संबंधियों को चिट्ठी लिखते हैं। यह नहीं कि जिस भाषा में तमाम औपचारिक-कार्यालयीन पत्र लिखे जाते हैं। मेरा खयाल है कि ऐसी भाषा में पाठक से संवाद सीधा ओर रू-ब-रू हो सकेगा। दरअसल, लिखित और संवाद की भाषा का भेद मेरे विचार से बेमानी है। मैंने पहले ही कहा कि यह भेद सनातन युग से चला आ रहा है, लेकिन क्यों नहीं हम इस भेद को कम करने की कोशिश करें? यह दूरी जितनी कम होती जाएगी, पत्रकारिता की भाषा जन-जन के निकट होती जाएगी।

मानक भाषा और मानक शब्दावली की बात पुरानी हो चुकी है। बड़ी जरूरत मानक हिज्जे, व्याकरण और विराम-चिह्न-विधान की भी है। इसमें बड़ी अराजकता देखने में आती है। कोई 'जो' से पहले अर्ध-

विराम लगाता है, कोई नहीं। कोई 'और' से वाक्य शुरू करने को गलत मानता है। कोई 'लिये' और 'लिए' के भेद को नहीं जानता। कोई 'चाहिए' में 'ये' लिखता है तो कोई 'ए', कोई अभी तक 'बहिन' लिखे चला आ रहा है। दुःख तो तब होता है, जब एक ही अखबार में, बल्कि अकसर तो एक ही व्यक्ति की लिखी सामग्री में ये असंगतियाँ दिखाई देती हैं। हिज्जे और विराम-चिह्न-विधान के लिए एक जैसी नियमावली बहुत जरूरी है।

अंत में, एक बात अनुवाद के बारे में। यह हिंदी का दुर्भाग्य ही है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी हिंदी पत्रकारिता अनुवाद-आधारित पत्रकारिता बनी रहने के लिए अभिशप्त है। समाचार एजेंसियाँ हिंदी की भी बनी हैं, किंतु उनकी स्थिति कैसी है, यह बात छिपी नहीं है। 'समाचार भारती' एवं 'हिंदुस्थान समाचार' तो ऑक्सीजन पर चलती रहीं और फिर ठप पड़ गईं। वैसे हाल के वर्षों में पुनर्जीवित 'हिंदुस्थान समाचार' की प्रगति विशेष उल्लेखनीय रही है। हिंदी पत्रकारिता अंग्रेजी संवाद एजेंसियों पर आश्रित रहने को बाध्य है और इस तरह हिंदी पत्रकार मात्र अनुवादक भर रह जाता है। स्थानीय समाचार तथा रिपोर्टिंग को छोड़कर उसे शेष कार्य अनुवादक का ही करना पड़ता है। हमारे घर-परिवार में बोली जानेवाली, हाट-बाजार, गली-मुहल्ले, खेत-खलिहानों में जीवन के गहन से गहनतम संदर्भों को विश्लेषित करने में समर्थ सीधी-सादी भाषा की हत्या होती जा रही है। हिंदी का अपना मुहावरा, अपनी निजी प्रकृति, अपनी चुहल, अपना रंग और उसकी अपनी जीवनी शक्ति क्या अनुवाद की हिंदी में रह सकती है? अनूदित मुर्दाभाषा को संजीवनी देने के लिए बड़े धैर्य की जरूरत है। यह धीरज पत्रकारों की नई पीढ़ी में है कि नहीं, यह उत्तर तो आप ही दे सकते हैं।

□

पूर्व निदेशक

म.मो.मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ

वाराणसी-221 002

हिंदी की शक्ति और जनमाध्यम

—प्रो. संजय द्विवेदी

राष्ट्रभाषा के रूप में खुद को साबित करने के लिए आज वस्तुतः हिंदी को किसी सरकारी मुहर की जरूरत नहीं है। उसके सहज और स्वाभाविक प्रसार ने उसे देश की राष्ट्रभाषा बना दिया है। वह अब सिर्फ संपर्क भाषा नहीं है, इन सबसे बढ़कर वह आज बाजार की भाषा है, जीवन की भाषा है, मीडिया की भाषा है, फिल्मों की भाषा है। हमारे अपनों की भाषा है और सपनों की भाषा है। अंग्रेजी के वर्चस्ववाद को लेकर हिंदी भक्तों की चिंताएँ कभी-कभी अतिरंजित रूप लेती दिखती हैं। वे एक ऐसी भाषा से हिंदी की तुलना कर अपना दुःख बढ़ा लेते हैं, जो वस्तुतः विश्व की संपर्क भाषा बन चुकी है और ज्ञान-विज्ञान के विविध अनुशासनों पर उसमें लंबा और गंभीर कार्य हो चुका है। अंग्रेजी दरअसल एक प्रौढ़ हो चुकी भाषा है, जिसके पास आरंभ से ही राजसत्ताओं का संरक्षण ही नहीं रहा, वरन ज्ञान-चिंतन, आविष्कारों तथा नई खोजों का मूल काम भी उसी भाषा में होता रहा।

हिंदी एक युवा भाषा है, जिसके पास उसका कोई ऐसा अतीत नहीं है, जो सत्ताओं के संरक्षण में फला-फूला हो। आज भी ज्ञान-अनुसंधान के काम प्रायः हिंदी में नहीं हो रहे हैं। उच्च शिक्षा का लगभग अध्ययन और अध्यापन अंग्रेजी में हो रहा है। दरअसल, हिंदी की शक्ति यहाँ नहीं है। अंग्रेजी से उसकी तुलना इसलिए भी नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि हिंदी

एक ऐसे क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा है, जो विश्व मानचित्र पर अपने विस्तारवादी, उपनिवेशवादी चरित्र के लिए नहीं बल्कि सहिष्णुता के लिए जाना जानेवाला क्षेत्र है। फिर भी आज हिंदी, दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी आबादी द्वारा बोली जानेवाली भाषा है, क्या आप इस तथ्य पर गर्व नहीं कर सकते? दरअसल, अंग्रेजी के खिलाफ वातावरण बनाकर हमने अपने बहुत बड़े हिंदी क्षेत्र को 'अज्ञानी' बना दिया तो दक्षिण के कुछ क्षेत्र में हिंदी विरोधी रुझानों को भी बल दिया। सच कहें तो नकारात्मक अभियान या भाषा को शक्ति नहीं दे सकते। एक भाषा के रूप में अंग्रेजी को सीखने तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को समादर देने, मातृभाषा के नाते मराठी, बांग्ला या पंजाबी का इस्तेमाल करने में कोई बुराई नहीं है, किंतु किसी भाषा को समाज में यदि प्रतिष्ठा पानी है तो वह नकारात्मक प्रयासों से नहीं पाई जा सकती।

अंग्रेजी के खिलाफ चीखने से क्या होगा ?

अंग्रेजी के विस्तारवाद को हमने साम्राज्यवादी ताकतों का षड्यंत्र माना और प्रचारित किया। फलतः भावनात्मक रूप से सोचने-समझनेवाला वर्ग अंग्रेजी से कटा और आज यह बात समूचे भारतीय उपमहाद्वीप के लिए गलत प्रमाण बन गई। यद्यपि अंग्रेजी मुट्ठीभर सत्ताधीशों, नौकरशाहों और प्रभुवर्ग की भाषा है। वह

उनकी शक्ति बन गई है तो शक्ति को छीनने का एकमेव हथियार है, उस भाषा पर अधिकार। यदि देश के तमाम गाँवों, कस्बों, शहरों के लोग निज भाषा के आग्रहों आज मुट्ठी भर लोगों के 'अकड़ और शासन' की भाषा न होती। इस सिलसिले में भावनात्मक नारेबाजियों से परे हटकर 'विश्व परिदृश्य' में हो रही घटनाओं-बदलावों का संदर्भ देखकर ही कार्यक्रम बनाने चाहिए। यह बुनियादी बात हिंदी क्षेत्र के लोग नहीं समझ सके। आज यह सवाल महत्वपूर्ण है कि अंग्रेजी सीखकर हम साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी कुछ ताकतों से जूझ सकेंगे या उससे अनभिज्ञ रहकर। अपनी भाषा का अभिमान इसमें कहीं आड़े नहीं आता। भारतेंदु की यह बात—'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' आज के संदर्भ में भी अपनी प्रासंगिकता रखती है। आप इसी भाषा प्रेम के रुझानों को समझने के लिए दक्षिण भारत के राज्यों पर नजर डालें तो चित्र ज्यादा समझ में आएगा। मैं नहीं समझता कि किसी मलयाली भाषी, तमिल भाषी का अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम किसी बिहार, उ.प्र. या म.प्र. के हिंदी भाषी से कम है, लेकिन दक्षिण के राज्यों ने अपनी भाषा के प्रति अनुराग को बनाए रखते हुए अंग्रेजी का भी ज्ञानार्जन किया, हिंदी भी सीखी। यदि वे निज भाषा का आग्रह लेकर बैठ जाते तो शायद वे आज सफलताओं के शिखर न छू रहे होते। आग्रहों से परे स्वस्थ चिंतन ही किसी समाज और उसकी भाषा को दुनिया में प्रतिष्ठा दिला सकता है। भाषा को अपनी शक्ति बनाने के बजाय उसे हमने अपनी कमजोरी बना डाला। बदलती दुनिया के मद्देनजर 'विश्व ग्राम' की परिकल्पना अब साकार हो उठी है। सो, अंग्रेजी विश्व की संपर्क भाषा के रूप में और हिंदी भारत में संपर्क भाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित हो चुकी है, यह चित्र बदला नहीं जा सकता।

अपनी उपयोगिता से बढ़ेगी हिंदी

हिंदी की ताकत दरअसल किसी भाषा से

प्रतिद्वंद्विता से नहीं वरन उसकी उपयोगिता से ही तय होगी। आज हिंदी सिर्फ 'वोट माँगने की भाषा' है, फिल्मों की भाषा है। बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ में अभी आधारभूत कार्य होना शेष है। उसने खुद को एक लोकभाषा और जनभाषा के रूप में सिद्ध कर दिया है, किंतु ज्ञान-विज्ञान के विविध अनुशासनों पर उसमें काम होना बाकी है, इसके बावजूद हिंदी का अतीत खासा चमकदार रहा है। नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन में स्वामी दयानंद से लेकर विवेकानंद तक लोगों को जगाने के अभियान की भाषा हिंदी ही बनी। गांधी ने भाषा की इस शक्ति को पहचाना और करोड़ों लोगों में राष्ट्रभक्ति का ज्वार पैदा किया तो उसका माध्यम हिंदी ही बनी थी। दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा क्रांतिकारी ग्रंथ हिंदी में रचकर हिंदी को एक प्रतिष्ठा दी। जानकारी के लिए ये दोनों महानायक हिंदी भाषा नहीं थे। तिलक, गोखले, पटेल—सबके मुख से निकलनेवाली हिंदी ही देश में उठे जनज्वार का कारण बनी। यह वही दौर है जब आजादी की अलख जगाने के लिए ढेरों अखबार निकले। उनमें ज्यादातर की भाषा हिंदी थी। यह हिंदी के खड़े होने और संभलने का दौर था। यह वही दौर जब भारतेंदु हरिचंद्र ने 'भारत दुर्दशा' लिखकर हिंदी मानस झकझोरा था। उधर पत्रकारिता के क्षेत्र में 'आज' के संपादक बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, माधवराव सप्रे, मदनमोहन मालवीय, गणेशशंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी एक इतिहास रच रहे थे। मिशनरी पत्रकारिता का यह समय ही हमारी हिंदी पत्रकारिता की प्रेरणा और प्रस्थान बिंदु है।

आंदोलन से बढ़ी है भाषा की शक्ति

आजादी के बाद भी वह परंपरा रुकी या ठहरी नहीं है। हिंदी को विद्यालयों विश्वविद्यालयों, कार्यालयों, संसद् तथा अकादमियों में प्रतिष्ठा मिली है। तमाम पुरस्कार योजनाएँ, संबर्धन के, प्रेरणा के

सरकारी प्रयास शुरू हुए हैं लेकिन इन सबके चलते हिंदी को बहुत लाभ हुआ है, सोचना बेमानी है। हिंदी की प्रगति के कुछ वाहक और मानक तलाशे जाएँ तो इसे सबसे बड़ा विस्तार जहाँ आजादी के आंदोलन ने, साहित्य ने, पत्रकारिता ने दिलाया, वहीं हिंदी सिनेमा ने इसकी पहुँच बहुत बढ़ा दी। सिनेमा के चलते यह दूर-दराज तक जा पहुँची। दिलीप कुमार, राजकुमार, राजकपूर, देवानंद के 'स्टारडम' के बाद अमिताभ की दीवानगी इसका कारण बनी। हिंदी न जाननेवाले लोग हिंदी सिनेमा के पर्दे से हिंदी के अभ्यासी बने। यह एक अलग प्रकार की हिंदी थी। फिर ट्रेनें, उन पर जानेवाली सवारियाँ, नौकरी की तलाश में हिंदी प्रदेशों क्षेत्रों में जाते लोग गए तो अपनी भाषा, संस्कृति, परिवेश सब ले गए। तो कलकत्ता में 'कलकतिया हिंदी' विकसित हुई, मुंबई में 'बंबइया हिंदी' विकसित हुई। हिंदी ने अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से तादात्म्य बैठाया, क्योंकि हिंदी के वाहक प्रायः वे लोग थे, जो गरीब थे, वे अंग्रेजी बोल नहीं सकते थे। मालिक दूसरी भाषा का था, उन्हें इनसे काम लेना था। इसमें हिंदी के नए-नए रूप बने। हिंदी के लोकव्यापीकरण की यह यात्रा वैश्विक परिप्रक्ष्य में भी घट रही थी। पूर्वी उ.प्र. के आजमगढ़, गोरखपुर से लेकर वाराणसी आदि तमाम जिलों से 'गिरमिटिया मजदूरों' के रूप में विदेश के मॉरीशस, त्रिनिदाद, वियतनाम, गुयाना, फिजी आदि द्वीपों में गई आबादी आज भी अपनी जड़ों से जुड़ी है और हिंदी बोलती है। सर शिवसागर रामगुलाम से लेकर नवीन रामगुलाम, वासुदेव पांडेय आदि तमाम लोग अपने देशों के राष्ट्राध्यक्ष भी बने। बाद में शिवसागर रामगुलाम गोरखपुर भी आए। यह हिंदी यानी भाषा की ही ताकत थी, जो एक देश में हिंदी बोलनेवाले हमारे भारतीय बंधु हैं। इन अर्थों में हिंदी आज तक 'विश्वभाषा' बन चुकी है। दुनिया के तमाम देशों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का काम हो रहा है।

बन गई है समर्थ भाषा

देश में साहित्य-सृजन की दृष्टि से, प्रकाश-उद्योग की दृष्टि से हिंदी एक समर्थ भाषा बनी है। भाषा और ज्ञान के तमाम अनुशासनों पर हिंदी में काम शुरू हुआ है। रक्षा, अनुवांशिकी, चिकित्सा, जीवविज्ञान, भौतिकी क्षेत्रों पर हिंदी में भारी संख्या में पुस्तकें आ रही हैं। उनकी गुणवत्ता पर विचार हो सकता है, किंतु हर प्रकार के ज्ञान और सूचना को अभिव्यक्ति देने में अपनी सामर्थ्य का अहसास हिंदी करा चुकी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के बड़े-बड़े 'अंग्रेजीदां चैनल' भी हिंदी में कार्यक्रम बनाने पर मजबूर हैं। ताजा उपभोक्तावाद की हवा के बावजूद हिंदी की ताकत ज्यादा बढ़ी है। हिंदी में विज्ञापन, विपणन, उपभोक्ता वर्ग से हिंदी की यह स्थिति 'विलाप' की नहीं 'तैयारी' की प्रेरणा बननी चाहिए। हिंदी को 21वीं सदी की भाषा बनना है। आनेवाले समय की चुनौतियों के मद्देनजर उसे ज्ञान, सूचनाओं और अनुसंधान की भाषा के रूप में स्वयं को साबित करना है। हिंदी सत्ता-प्रतिष्ठानों के सहारे कभी नहीं फैली, उसकी विस्तार शक्ति स्वयं इस भाषा में ही निहित है। अंग्रेजी से उसकी तुलना करके कुढ़ना और दुःखी होना बेमानी है। अंग्रेजी सालों से शासकवर्गों तथा 'प्रभुवर्गों' की भाषा रही है। उसे एक दिन में उसके सिंहासन से नहीं हटाया जा सकता। हिंदी का इस क्षेत्र में हस्तक्षेप सर्वथा नया है, इसलिए उसे एक लंबी और सुदीर्घ तैयारी के साथ विश्वभाषा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

मीडिया और हिंदी

मीडिया की दुनिया में इन दिनों भाषा का सवाल काफी गहरा हो गया है। मीडिया में जैसी भाषा का इस्तेमाल हो रहा है, उसे लेकर शुद्धता के आग्रही लोगों में काफी हाहाकार व्याप्त है। चिंता हिंदी की

हैं और उस हिंदी की, जिसका हमारा समाज उपयोग करता है। बार-बार यह बात कही जा रही है कि हिंदी में अंग्रेजी की मिलावट से हिंदी अपना रूप-रंग-रस और गंध खो रही है। सो, हिंदी को बचाने के लिए एक हो जाइए। हिंदी हमारी भाषा के नाते ही नहीं, अपनी उपयोगिता के नाते भी आज बाजार की सबसे प्रिय भाषा है। आप लाख अंग्रेजी के आतंक का विलाप करें, काम तो आपको हिंदी में ही करना है, यह मरजी आपकी कि आप अपनी स्क्रिप्ट देवनागरी में लिखें या रोमन में? यह हिंदी की ही ताकत है कि वह सोनिया गांधी से लेकर कैटरिना कैफ सबसे हिंदी बुलवा ही लेती है। उड़िया न जानने के आरोप झेलनेवाले नेता नवीन पटनायक भी हिंदी में बोलकर ही अपनी अंग्रेजी न जाननेवाली जनता को संबोधित करते हैं। इतना ही नहीं, पूर्व राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की सुन लीजिए। वे कहते हैं कि वे प्रधानमंत्री नहीं बन सकते, क्योंकि उन्हें ठीक से हिंदी बोलनी नहीं आती। कुल मिलाकर हिंदी आज मीडिया, राजनीति, मनोरंजन और विज्ञापन की प्रमुख भाषा है।

हिंदुस्तान जैसे देश को एक भाषा से सहारे संबोधित करना हो तो वह सिर्फ हिंदी ही है। हिंदी को लेकर किसी तरह का भावनात्मक आधार भी नहीं बनता, न वह अपना कोई ऐसा वृत्त बनाती है, जिससे उसकी अपील बने। हिंदी की बोलियाँ इस मामले में ज्यादा समर्थ हैं, क्योंकि उन्हें क्षेत्रीय अस्मिता एक आधार प्रदान करती है। हिंदी की सही मायने में अपनी कोई जमीन नहीं है, जिस तरह भोजपुरी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, बघेली, गढ़वाली, मैथिली, बृजभाषा जैसी तमाम बोलियों ने बनाई है। हिंदी अपने व्यापक विस्तार के बावजूद किसी तरह का भावनात्मक आधार नहीं बनाती।

यह समझना बहुत मुश्किल है कि विज्ञापन, मनोरंजन या मीडिया की दुनिया में हिंदी की कमाई खानेवाले अपनी स्क्रिप्ट इंग्लिश में क्यों लिखते हैं?

देवनागरी में किसी स्क्रिप्ट को लिखने से क्या प्रस्तोता के प्रभाव में कमी आ जाएगी, फिल्म फ्लॉप हो जाएगी या मीडिया समूहों द्वारा अपने दैनिक कामों में हिंदी के उपयोग से उनके दर्शक या पाठक भाग जाएंगे? यह क्यों जरूरी है कि हिंदी के अखबारों में अंग्रेजी के स्वनामधन्य लेखक, पत्रकार एवं स्तंभकारों के तो लेख अनुवाद कर छापे जाएँ, उन्हें मोटा पारिश्रमिक भी दिया जाए, किंतु हिंदी में मूल काम करनेवाले पत्रकारों को मौका ही न दिया जाए। हिंदी के अखबार क्या वैचारिक रूप से इतने दरिद्र हैं कि उनके अखबारों में गंभीरता तभी आएगी, जब कुछ स्वनामधन्य अंग्रेजी पत्रकार उसमें अपना योगदान दें। ऐसा क्यों? क्या अंग्रेजी के अखबार भी इतनी ही सदाशयता से हिंदी के पत्रकारों के लेख छापते हैं?

रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स में जब आप अपने अखबार का पंजीयन कराते हैं तो नाम के साथ घोषणापत्र में यह भी बताते हैं कि यह अखबार किस भाषा में निकलेगा? क्या ये अंग्रेजी के पन्ने जोड़नेवाले अखबारों ने द्विभाषी होने का पंजीयन कराया है? आप देखें तो पंजीयन हिंदी के अखबार का है और उसमें दो या चार पेज अंग्रेजी के लगे हैं। हिंदी के साथ ही आप ऐसा कर सकते हैं। मीडिया की बढ़ी ताकत ने उसे एक जिम्मेदारी भी दी है। सही भाषा के इस्तेमाल से नई पीढ़ी को भाषा के संस्कार मिलेंगे। हिंदी किसी जातीय अस्मिता की भाषा भले न हो, यह इस महादेश को संबोधित करनेवाली सबसे समर्थ भाषा है। इस सच्चाई को जानकर ही देश का मीडिया, बाजार और उसके उपादान अपने लक्ष्य पा सकते हैं क्योंकि हिंदी की ताकत को कमतर आंककर आप ऐसे सच से मुँह चुरा रहे हैं, जो सबको पता है।

□

आचार्य-अध्यक्ष, जनसंचार विभाग
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार
विश्वविद्यालय,
भोपाल, (म.प्र.)

संचार प्रक्रिया और हमारी लोकसंस्कृति

— श्रीमती मालिनी अवस्थी

संसार में पहली ध्वनि पंछियों का गान रहा होगा या फिर जन्मते शिशु का रुदन ! और फिर शायद उसे शांत कर सुलाने का प्रयास करती मां की गाई लोरी... प्रथम लोकगीत बना होगा ! जनजाति-समुदायों में मुँह से ध्वनि निकालकर खतरे से आगाह करने की परंपरा है, वन की लकड़ी से साज बनाकर ताली बजाते हुए हर्ष जताने का रिवाज है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मानव जीवन के लिए अनिवार्य शर्त है। इसीलिए बोली, भाषा, राग-विराग-अनुराग, धर्म-चेतना-विश्वास और दर्शन सबने आकार पाया और निरंतर प्रवहमान रहे...।

आकाश के बादल देख वर्षा का अनुमान लगा लेनेवाले किसान घाघ की कहावत को जब दुहराते हैं,

‘रोहिनी बरसे मृग तपे, कुछ कुछ अद्रा जाय।

कहे घाघ सुने घाघीनि, स्वान भात नहि खाये।।’

ऐसे में वे साथ-साथ अपने भाई, बेटे, भतीजों को कृषि का गूढ़ ज्ञान भी बाँटते चलते हैं। घाघ की कहावतों से सीख ले खेती करनेवाले आज भी मानते हैं कि मौसम और कृषि विज्ञानी की भविष्यवाणी असत्य साबित हो सकती है, लेकिन घाघ की कहावतें नहीं।

जीवन को पूर्णता के साथ जीना और उन अनुभवों की कसौटी पर रची सीख उदारता के साथ अग्रिम पीढ़ी को सौंपना, यह सत्कृत्य हमारे पूर्वज अनंत काल से करते आए हैं, संवर्धन करने के लिए, प्रवहमान बनाए

रखने के लिए, हमें चैतन्य बनाए रखने के लिए।

याद कीजिए अपने बचपन की दादी-नानी की वो कहानियाँ, जिन्हें सुन कर हमने भारत को जाना, अपनी संस्कृति को जाना। यदि मैं कहूँ कि हिंदी और लोक संस्कृति को जीवंत कर हमारे अंतर्मन से संप्रेषण करने का सबसे सशक्त माध्यम यही लोककथाएँ थीं, तो गलत न होगा। हमारे बुजुर्गों का इन कहानियों को सुनाने का तरीका बड़ा जीवंत हुआ करता था, ऐसे, जैसे सारी घटनाएँ सामने ही घटित हो रही हों। शौर्य, त्याग, चतुराई, विनम्रता, मैत्री कर्तव्यपरायणता का संदेश लिये इन सहज सरल लोककथाओं ने हमारे मन-मस्तिष्क पर सशक्त प्रभाव डाला।

हमारे ताऊजी की किस्सागोई की शैली तो इतनी प्रभावी हुआ करती थी कि लगता था कि सारी घटनाएँ सामने घटित हो रही हों। जब रेडियो-टेलीविजन नहीं थे, तब यही कथाएँ समाज के लिए एक मर्यादा एवं मानवीय कर्तव्यों का निर्धारण करती थीं। वैदिक और पौराणिक कथाएँ, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाओं में निहित शिक्षा एवं आदर्शों ने भारतीय संस्कृति की नींव रखी। हिंदी की विविध बोलियों में पगी ये लोककथाएँ हिंदी का प्राण बन गईं, लोकसंस्कृति की आत्मा बन गईं। इन कथाओं के नायक भारतीय जीवन दर्शन का सार्थक संदेश देते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी अजर-



अमर हैं। राम कृष्ण की कथाएँ हों या फिर पन्ना धाय की! अकबर-बीरबल की कथाएँ हों या तेनालीराम की! विक्रम-बेताल में छुपा रहस्यवाद हो या फिर क्रूर शेर से मुक्ति पाने की युक्ति निकालते जंगल के हाथियों की दंतकथा! सभी कहानियों में अच्छाई जीत जाती थी, बुराई हार जाती थी।

जन-जन से होते हुए ये कथाएँ गीत और रिवाज पहले लोकप्रिय हुए, फिर विभिन्न कलाओं और विधाओं में ढलकर हमारी संस्कृति का अंग बन गए। दशावतार की कथा भरतनाट्यम के रूप में संरक्षित रहा तो पंडवानी ने महाभारत की कथाओं को सुर-लय में बाँध प्रसरित किया। राजा मोरध्वज और सत्यवादी हरिश्चंद्र की कथा नौटंकी जैसे जन नाट्य से फैली तो बंगाल, उड़ीसा व झारखंड में छाऊ नृत्य ने देवी द्वारा महिषासुर वध को जीवंत कर जन-जन तक पहुँचाया। भारतीय कलाओं के सभी अंग हमारी कथाओं को कहते आए हैं, आगे बढ़ते आए हैं। अनंत उदाहरणों से यह बात समझी जा सकती है।

दरअसल, मीडिया जिसे हम आज के संदर्भ में समझते हैं, उससे कहीं अधिक सशक्त और कारगर था हमारा प्राचीन मीडिया, अर्थात् नैसर्गिक जनसंपर्क प्रवाह! लेकिन आज स्थिति बदल चुकी है। लोक से प्रेरणा लेनेवाली प्रवृत्ति ने आज लोक को बदलने की ठान ली है। मुहल्लों की परवरिश छूट गई, संयुक्त परिवार टूट गए, संदेसा पहुँचानेवाले नऊवा और नसीहत देनेवाली बुआएँ अब खो गई हैं। लोक संस्कृति में संदेश भेजने की चमत्कारिक क्षमता है। जहाँ आँख का उठना, झुकना, खाँसना, खंखारना भी समाचार देते हों, उसकी गहनता अपरंपार है।

लेकिन अब इसमें भी तब्दीली आ रही है, इसका प्रभाव स्पष्ट दिखता है, हिंदी पर भी!

मीडिया अपने आप में एक औपनिवेशिक शब्द है, जिसका मूल उद्देश्य है, राष्ट्र के अंतःकरण की

रक्षा! यही तो हमारी लोक संस्कृति आज तक करती आई है—हमारे अंतःकरण की रक्षा! तकनीक के युग में आज मीडिया की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण दिखती है, लेकिन अदृश्य रहकर भी देश की चेतना को सदा झकझोरनेवाली लोकसंस्कृति का योगदान सबसे मजबूत है।

मनुष्य ने जब से होश सँभाला, उसे सरस्वती की कृपा से विद्याधर्मी प्रवृत्ति प्राप्त हुई। इसी प्रवृत्ति ने मानव को कला का विस्तार दिया और भाषा का संस्कार दिया। हमारे यहाँ शास्त्र रचे गए, लेकिन लोक की आधारशिला पर! लोक से प्रेरणा लेकर शास्त्र बने। भारतीय ज्ञान पद्धति के दो मूलधार हैं, श्रुति परंपरा एवं स्मृति परंपरा! यह मौखिक परंपरा है। इसीलिए अधिकतर शास्त्र एवं लोकविधाएँ कंठस्थ की गईं, इनका श्रवण किया गया और आगे हस्तांतरित किया गया। यह एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है।

भाषा का भी रोचक विकास हुआ। प्राकृत, संस्कृत आंचलिक बोलियों के समानांतर विकसित हुई और इन सबका परिष्कृत रूप मिला हिंदी के रूप में! भारतीय ग्रामों में सदियों से बोली जानेवाली विभिन्न आंचलिक बोलियाँ ब्रज, अवधी, बुंदेली और भोजपुरी का प्रवाह अपने में सँजोए संस्कृत और उर्दू का आधार ले जन्मी हिंदी स्वयं में भारत है। किस्से-कहानियाँ कहने-सुनने की पुरानी परंपरा से कहीं आगे बढ़कर हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य लिखा गया है; काव्य रचे गए, लेकिन कालजयी साहित्य वही हुआ, जिसने लोक की आभा में सृजन किया! 'वाल्मीकि रामायण' के राम हो या तुलसी के राम... राम लोक संस्कृति के नायक के रूप में ही प्रतिष्ठित होते हैं, क्योंकि वो नायक हैं! अनंत काल से भारतीयों के मानस पर विराजमान आदर्श नायक! प्रेमचंद ने भारत की आत्मा को समझा, भारतीय समाज को अपनी लेखनी में उतार लिया और उनकी रचनाएँ कालजयी हो गईं।

जब-जब सामाजिक चेतना को केंद्र में रख सृजन का कार्य हुआ, तब-तब उस कृति को समाज ने सिर-आँखों पर रखा।

दरअसल, भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य उसकी अदम्य संप्रेषण क्षमता है, जो विभिन्न कलाओं में मुखरित होती है।

संगीत हो या नृत्यकला, कला-चित्रकला हो या शिल्प कला, सभी भारतीयता के संदेशवाहक हैं। लोक की कथा कहती इन कलाओं ने कथावाचक बन बड़े सेतु का काम किया है। सभी कलाएँ देखने-सुनने और करने के माध्यम से अर्थपूर्ण बनती हैं, इसीलिए इन्हें लिख-पढ़कर नहीं, देख और गुनकर ही समझा जा सकता है और स्मरण किया जा सकता है, लेकिन आज इन्हें देखने का संस्कार कितनों में है, कहाँ है?

इसलिए सबसे बड़ा प्रश्न और चिंता यह है कि लोक का संरक्षण कौन करेगा और यह कैसे होगा? विडंबना यह है कि आज लोक को खतरा स्वयं लोक से है। जब हम यह मान चुके हैं कि जो कुछ गोचर है, वह लोक है तो आज टी.वी., अखबार और सोशलमीडिया भी लोक ही है। अपने हाथों में हमें जिसने जकड़ लिया है, वह मोबाइल फोन भी लोक ही है। हमारा बदलता परिवेश लोक है। आज फेसबुक ने पुराने मुहल्ले-चौबारों का स्थान ले लिया है, जहाँ गंभीर विमर्श भी नजर आता है तो आत्ममुग्ध, तत्वहीन स्त्री-पुरुष भी! पहले पचास वर्ष में पीढ़ी बदलती थी पर आज हर पाँच वर्ष में नई सोच के साथ नई पीढ़ी सामने है। आज हमारे घरों से ऑनगन लुप्त हो गए, तुलसी का चौबारा नहीं रहा और न उसे नित प्रणाम कर दीया बारने (जलाने) वाली अम्मा! संयुक्त परिवार विघटित हुए हैं, अनुशासन के बंधन शिथिल हुए हैं, परिणामस्वरूप संस्कारों का क्षरण हुआ है, इसलिए लोक को आज जागना होगा। प्रश्न है कि जगाएगा कौन? क्या वह टी.वी. जिस

पर एंकर उस आधे घंटे अपने को विश्व का सबसे बुद्धिमान प्राणी मानता है या वह सोशल मीडिया, जहाँ आत्मश्लाघा आकाश से बातें करती है या फिर अखबार, जहाँ राजनीति और अपराध शेष हर खबर पर हावी हैं।?

सच यह है कि लोक का सबसे सुंदर संरक्षण सरकारी माध्यमों से ही हुआ। आजादी के बाद से ही आकाशवाणी और दूरदर्शन की प्राथमिकता रही, हमारी हिंदी और लोकसंस्कृति! लोकगीतों के संरक्षण का जितना सुंदर और सार्थक कार्य आकाशवाणी ने किया है, वह साधुवाद के पात्र हैं। उनके पास अनगिनत एवं अनमोल रिकॉर्डिंग्स हैं। कभी सशक्त हिंदी उच्चारण के लिए हम सिर्फ आकाशवाणी के उद्घोषकों को सुनते थे, लेकिन आज नव स्थापित असंख्य रेडियो के उद्घोषकों की हिंलिश सुन जो कोफ्त होती है, वह व्यक्त नहीं की जा सकती। रेडियो की तरह आज अनगिनत सेटेलाइट चैनल हैं। जाने कितने समाचार चैनल हैं, जिनमें समाचार के अतिरिक्त सबकुछ होता है। कई बार तो ये समाचार चैनल वाद-विवाद प्रतियोगिता के आयोजक ज्यादा लगते हैं। दृश्य माध्यम से दिखाई गई बात लंबा असर छोड़ती है। अतः ऐसे चैनलों को नकारात्मक खबरों से बचना चाहिए, इसका समाज पर घातक प्रभाव पड़ता है।

समाज मीडिया को प्रेरणा देता है तो लेता भी है। इस जिम्मेदारी से मीडिया बच नहीं सकता कि उसके द्वारा प्रदर्शित या प्रसारित कार्यक्रम से समाज पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है?

इसलिए मैं कहती हूँ कि लोक को लोक ही बचाएगा। अपनी मातृभाषा और संस्कार, यह सामूहिक चेतना से ही बचेंगे। ये अपना मीडिया बनने में स्वयं सक्षम हैं। लोक के पहरउवा सदैव जागृत रहते हैं। पराधीन भारत को दासता से मुक्त कराने, जनता को जगाने के लिए ये कभी आल्हा गाकर उठ खड़े होते

हैं तो कभी युद्ध कला में निपुणता के लिए केरल की 'कलरीपयट्टू' एवं मणिपुर की 'थांग टा' के रूप में प्रशिक्षित करते हैं। हमारे पूर्वजों ने कुश्ती एवं आत्मरक्षा के लिए लाठी चलाने की कला सिखाई तो सामाजिक मूल्य समझने को अनेक लोकगीत, लोकपर्व, लोककथाएँ, तीज-त्योहार व अनुशासन रचे, जिनमें समस्त विश्व को एक मानने की मूल शिक्षा थी! लेकिन आज हम स्वयं से पूछें, हमने अपने बच्चों को आंचलिक बोलियों के प्रति प्रोत्साहित कब किया? क्या उसे ग्राम से, ग्रामीण परिवेश से, रिश्ते-नातों से दूर करने के लिए हम सब जिम्मेदार नहीं? आपने अपने बच्चों को हिंदी की एक अच्छी पुस्तक पढ़ने का कब आग्रह किया? पढ़ना तो दूर, आम बोलचाल की भाषा में परिवार में सब हिंदी में ही बात करें, इस पर कितनों का ध्यान है?

यदि आप अपनी कार के चालक से कहते हैं कि आगे से राइट लेना तो आप हिंदी के शब्द 'दाएँ'

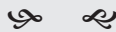
या 'दाहिने' की हत्या कर रहे होते हैं। ध्यान दें कि अब चालक मर्सिडीज का हो या ऑटोरिक्षा का, वह दाहिने को 'राइट' ही कहता है। यह सब इसलिए कि हमने अपने पूर्वजों से जुड़ी बोली, रहन-सहन, खान-पान सबके प्रति एक हीन भावना का भाव नई पीढ़ी को सौंपा है, जिससे वह सब पीछे छोड़ती जाती है। प्रयास करें कि बच्चों को उनके मूल परिवेश से जोड़ें, उन्हें लोकतत्व का मर्म समझाएँ, तभी समझेंगे वे तभी अनुकरण करेंगे, जब आपको करते देखेंगे। हिंदी और लोकसंस्कृति का मान बनाए रखने के लिए आप बनावटीपन से निकल खुली हवा में साँस लीजिए। जैसे है, वैसे ही रहिए। बच्चों को भारतीयता पर अभिमान सिखाइए, मातृभाषा का सम्मान सिखाइए।

□

द्वारा - श्री अवनीश अवस्थी
सूचना सचिव उ.प्र. शासन
लखनऊ-226 001

‘हरेक व्यक्ति को अपनी मातृभाषा संपूर्ण रूप से आनी चाहिए और भारत की अन्य भारतीय भाषाओं के महान् साहित्य को हिंदी के माध्यम से जानना चाहिए और अपने अनुभव से मैं आपको से बता सकता हूँ कि दूसरी भारतीय भाषाओं को सीखना जरा भी मुश्किल काम नहीं है।’

—महात्मा गांधी



‘युवक और युवतियाँ अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएँ खूब पढ़ें। मगर मैं हरगिज यह नहीं चाहूँगा कि कोई भी हिंदुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाए अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊँचे से ऊँचा चिंतन नहीं कर सकता है।’

—महात्मा गांधी

संस्कृति, कलाएँ और हिंदी

—सुश्री नलिनी कमलिनी

कलाकार, पत्रकार, लेखक या कवि ही क्यों न हो, उसके धारा-प्रवाह विचारों को पढ़कर, सुनकर व देखकर सभी भाव विभोर हो जाते हैं। माना कि भाव एक मूक संवाद है विचार को अभिव्यक्त करने का, किंतु जब उसे भाषा का आवरण मिल जाता है तो उसमें स्वर-रूपी आत्मा का प्रवेश होता है। अतः भाषा-भाव के प्राण हैं।

चूँकि विज्ञान हमारा विषय था, हिंदी से हमारा संबंध मात्र हिंदी विषय तक ही सीमित रहा। न जाने क्यूँ उस समय अंग्रेजी की तुलना में हिंदी को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता था, शायद समय का चलन रहा हो। हम भी इससे अछूते नहीं रहे। उन दिनों मेरी माँ हिंदी में साहित्य रत्न कर रही थीं। घर में हिंदी साहित्य की पुस्तकों का भंडार था। एक दिन अचानक जयशंकर प्रसादजी का काव्य संग्रह (आँसू) मेरे हाथ लगा। उसकी पहले पृष्ठ की पंक्तियाँ—

इस करुणा कलित हृदय में
अब निकल रागिनी बनती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।

इन्हें पढ़ते ही मेरा मन रोमांचित हो उठा। हिंदी साहित्य से यह मेरा पहला परिचय था। सुउपयुक्त भाषा का चयन कर्म भाव से परिपूर्ण ये पंक्तियाँ

मेरे मन में यूँ उतर गईं, जैसे किसी बीज का रोपण गहराई में कर दिया हो और बरखा की बौछार से भीगकर कठोर भूमि का सीना चीर अंकुरित हो पौध बाहर झाँकने लगी। यदा-कदा जब भी समय मिलता, मैं जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त एवं विद्यापतिजी की पुस्तक उठाकर पढ़ती और अपने को आनंदित और उल्लासित पाती।

शशी मुख पर घुँघट डाले
आँचल में दीप छिपाए
जीवन की इस गोधूली में
कौतुहल से तुम आए।

अपने हमउम्र साथी मुझसे दूर होते गए। उनका साथ छूटता चला गया और साहित्य की आगोश में मैं सिमटती चली गई। संभवतः यह मेरे संस्कार की प्रबलता थी, जो नृत्य रचनाओं के माध्यम से इन महान् कवियों की रचनाओं को प्रदर्शन हेतु सँजोने की पृष्ठभूमि बना रहे थे। अतः सफलतापूर्वक हमने राम की शक्तिपूजा, यशोधरा, कामायनी, उत्तर साकेत, अग्निसागर, विनय प्रत्रिका, परिमल, रुद्रअवतार आदि नृत्य नाटिकाओं का व्यापक रूप से नृत्य मंचन किया। सभी कृतियाँ अति उत्तम व दर्शकों, कलाप्रेमियों व मीडिया द्वारा सराही गईं।

हिंदी हमारी राष्ट्र भाषा के साथ व्यवहार की भी भाषा है। सामान्य चलन में अन्य भाषाओं के



बीच यह सेतु का कार्य करती है।

समय के बदलाव के साथ कला सीमित नहीं रही, उसका भी विस्तार हुआ, और समस्त विश्व में भारतीय कला के प्रदर्शन, प्रचार-प्रसार से इसकी लोकप्रियता बढ़ी। शनैः-शनैः हिंदी भी सहज रूप में समग्रता की ओर बढ़ चली। जहाँ हिंदी साहित्य अपने में प्राचीन संस्कृति व इतिहास समेटे हुए हैं, वहीं हमारी नृत्य विधा सूर, तुलसी, मीराबाई के पदों को नृत्य बद्धकर प्रदर्शित करते हैं। मीरा के गीत उनके हृदय की झनकार है, ये गीत उनकी मनोदशा को प्रगट करते हैं, ये उनके प्यास और प्रतीक्षा के प्रतीक हैं, उनके हृदय की पुकार है, उनका मान-मनोबल हैं। ये इतने हृदयस्पर्शी हैं कि मन को झकझोर देते हैं। इनमें आँसू है—आनंद है, ‘मीरा ने अपना हृदय ढाला है, ‘साजण जो मैं जानती प्रीत करे दुःख होय। नगर ढिंढोरो पीटती प्रीत करे न कोए।’

नृत्यांगना होने के नाते नृत्य ही मेरा जीवन है। नृत्य की गरिमा उसकी जीवंतता को परिभाषित करती है। नृत्य सामाजिक, धार्मिक, प्राकृतिक पहलुओं से ओत-प्रोत है। भारतीय नृत्य विधा से जीवन का कोई भी पहलु अछूता नहीं रहा है। भाव-विचार अभिव्यक्ति से परिपूर्ण इस विधा में विचार आधार है, भाव का तथा विचार मंथन, अभिव्यक्ति की क्षमता, जीवन में कर्म की गति से नृत्यकार को मानव से मनुष्यता की श्रेष्ठतम उँचाई को प्राप्त करने में सहायक होती है। कर्म जीवन का आधार

है, वैचारिक मंथन से ज्ञान अर्जित कर भी लें तो उसकी सार्थकता को प्रमाणित करने के लिए कर्म का आश्रय लेना ही होता है।

इसकी नृत्य प्रस्तुति में काव्य और कला का एकाकार मीरा के काव्य-भाव को साक्षात् कर आत्म विभोर कर देता है। नव रसों से परिपूर्ण हिंदी भाषा की रस धारा प्रवाहित हो, जन मानस को नृत्य-संगीत के माध्यम से केवल आनंदित ही नहीं करती, अपितु जन मानस के हृदय पटल पर अमिट छाप छोड़ देती है।

मीडिया इसे विभिन्न माध्यमों से प्रसारित करता है तो विदेशी दर्शक आतुर हो जाते हैं, भारत दर्शन हेतु। आज हमारी संस्कृति ही हमारी पहचान बनी हुई है। विज्ञापन हो या कोई संदेश, गीत-संगीत के बिना अधूरा है; हिंदी भाषा इसे और प्रभावशाली बनाती है, क्योंकि यह सहज, सरल और संवेदनशील है। युगों से चली आ रही हिंदी भाषा का साहित्यिक इतिहास, काव्य रचनाएँ, भारत की गौरवान्वित संस्कृति का स्तंभ हैं।

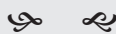
हिंदी भाषा को यदि पुष्प मानें तो कला उसकी आकृति है, स्वर उसकी सुगंध और मीडिया हवा का झोंका, जो उस सुगंध को वातावरण में बिखेर विस्तारित रूप से उसका वास्तविक साक्षात्कार कराता है।

□

द्वारा - श्री के.जी सुरेश
भारतीय जन संचार संस्थान
नई दिल्ली-110 067

हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।

—महर्षि दयानंद सरस्वती



भारतीय जनता के बीच काम करने के लिए हिंदी ही एकमात्र साधन है।

—जयप्रकाश नारायण

हिंदीतरभाषी संपादकों की हिंदी सेवा

—डॉ. किंशुक पाठक

हिंदी पत्रकारिता और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। हिंदी भाषा, साहित्य और प्रयोजनमूलक हिंदी के विकास में पत्रकारिता और पत्रकारों के योगदान का हिंदी साहित्य का इतिहास साक्षी है। जिन पत्रकारों-संपादकों ने हिंदी की सेवा की, हिंदी का संवर्धन किया, उनमें अनेक ऐसे हिंदीतर भाषी संपादक थे, जिनकी मातृभाषा और भाषिक पृष्ठभूमि का आधार हिंदी नहीं थी। ऐसे संपादकों-पत्रकारों के अवदान का स्मरण एक संपूर्ण परंपरा का स्मरण और इस परंपरा के प्रति नमन है।

हिंदी पत्रकारिता और साहित्य को समृद्ध करने में हिंदीतर (अहिंदी) भाषी संपादकों का योगदान अविस्मरणीय है। यशस्वी भारतीय संपादक-परंपरा को यथेष्ट स्थान पर प्रतिस्थापित करने में अहिंदी भाषी संपादकों ने समर्पित भाव से कार्य किया। पत्रकारिता के माध्यम से अपनी मातृभाषा की बाध्यताओं और विवशताओं को दर-किनार कर संपादकों ने देश और समाज की भरपूर सेवा की और इसे अपना 'मिशन' बनाया। उनके इस मिशनरी भाव से हिंदी पत्रकारिता समृद्ध हुई। हिंदीतरभाषी संपादकों ने पत्रों को जनाकांक्षा का मुखर प्रवक्ता बनाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी।

अंतर-भाषायी संवाद एवं आदान-प्रदान के सेतु के रूप में हिंदी पत्रकारिता की आधारभूमि का

अहिंदीभाषी संपादकों ने सार्थक उपयोग किया। हिंदी में जो कुछ रचनाधर्मिता थी, उस पर अन्य भाषाओं के प्रभाव तथा अन्य भाषाओं की रचना पृष्ठभूमि पर हिंदी के रचना जगत् का आधारभूत प्रभाव ऐतिहासिक रहा है। जनसंचार माध्यम के महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में हिंदी पत्रकारिता तथा हिंदी के पत्रों को इस अंतर्भाषाई और अंतर्सांस्कृतिक संवाद का सेतु बनाने में हिंदीभाषी संपादकों की भूमिका ऐतिहासिक रही है। पत्रकारिता के इतिहास को देखा जाए तो विदित होता है कि हिंदीतर भाषा साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने भी हिंदी साहित्य की अभिवृद्धि का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। स्वतंत्रता संघर्ष काल में ही गैर हिंदीभाषियों ने यह महसूस कर लिया था कि हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो देश के जनमानस की आशा-आकांक्षों को सही ढंग से अभिव्यक्त कर राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ भूमिका तैयार कर सकती है।

यद्यपि 'उदंत मार्टंड' (कलकत्ता) हिंदी का प्रथम पत्र था किंतु हिंदी प्रदेश से निकलनेवाले प्रथम हिंदी पत्र का प्रकाशन जनवरी, सन् 1845 में काशी से हुआ। 'बनारस अखबार' हिंदी पत्र बनारस से मराठी भाषी पत्रकार पं. गोविंद रघुनाथ थत्ते के संपादन में प्रकाशित हुआ। सन् 1850 में 'सुधाकर' का प्रकाशन बनारस से हुआ, जिसके संपादक



तारामोहन मित्र बांग्ला भाषी थे। प्रारंभ में 'सुधाकर' पत्र का प्रकाशन दो भाषाओं, बांग्ला और हिंदी में हुआ, किंतु सन् 1853 से यह हिंदी में ही प्रकाशित होने लगा था। भाषा तथा संपादन की दृष्टि से यह पत्र उस युग का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पत्र था, जिसने आनेवाले युग के पत्रों और पत्रकारों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

हिंदी-बांग्ला भाषा में प्रकाशित 'समाचार सुधा वर्षण' पत्र को हिंदी के प्रथम दैनिक समाचार पत्र के रूप में मान्यता दी जाती रही है किंतु केवल हिंदी का प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' मान्य है। कलकत्ता से सन् 1854 में प्रकाशित 'समाचार सुधा वर्षण' के संपादक श्री श्याम सुंदर सेन थे। बांग्लाभाषी होते हुए भी श्री सेन का हिंदी पत्रकारिता में योगदान महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में 'पयामे आजादी' पत्र की भूमिका भी सराहनीय रही। 8 फरवरी, 1857 से अजीमुल्ला खाँ के संपादन में प्रकाशित यह पत्र प्रारंभ में हिंदी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में निकलता था, किंतु शीघ्र ही केवल हिंदी में निकलने लगा।

हिंदीतरभाषी संपादकों में महात्मा गांधी, बाबूराव विष्णुराव पराड़कर, श्याम सुंदर सेन, लक्ष्मण नारायण गर्दे, माधवराव सप्रे, रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर, राहुल बारपुते, प्रभाकर माचवे, क्षितींद्र मोहन मित्र, बालशौरि रेड्डी तथा हेमंत कुमारी देवी का नाम उल्लेखनीय है।

महात्मा गांधी की मातृभाषा गुजराती थी,

इसलिए हिंदी में पत्र निकालना उनके लिए आसान नहीं था। लेकिन वे जानते थे कि यदि भारतीय जनमानस के एक विशाल समूह को प्रभावित करना है तो हिंदी में पत्र का प्रकाशन आवश्यक है। फलस्वरूप, गांधीजी ने 1921 ई. में अहमदाबाद से

साप्ताहिक पत्र 'हिंदी नवजीवन' निकाला जिसमें अंग्रेजी में प्रकाशित 'यंग इंडिया' की अनूदित सामग्री रहती थी, लेकिन व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद गांधीजी कभी-कभी हिंदी में लिखते थे। सन् 1903 में 'हिंद केसरी' का प्रकाशन गांधी और तिलक की प्रेरणा से हुआ था। सन् 1933 में पत्र 'हरिजन सेवक' का प्रकाशन हुआ। गांधीजी इसमें समाज-सुधार के

विषयों पर निरंतर लिखते रहे।

गांधीजी पत्रों में विज्ञापनों के प्रकाशन के पक्ष में नहीं थे। वह इसे मिशनरी भाव से पाठकों के सहयोग से संचालित करने के प्रबल समर्थक रहे। उन्होंने एक बार लिखा था—'नवजीवन' द्रव्योपार्जन का साधन नहीं है। वह प्रत्येक प्रवृत्ति का प्रचार साधन भी नहीं। वह तो केवल मेरे विचारों के प्रचार का ही साधन है। इसे कर्ज लेकर नहीं चलाया जा सकता है। वह एक या अनेक मित्रों से दान लेकर पाठकों को मुफ्त भी नहीं दिया जा सकता। 'नवजीवन' के पाठक खुद अपने को उसका मालिक समझें। उन्हें जब तक उसमें दिए गए विचार पसंद आते हैं, तब तक वे उसे मूल्य देकर लें और संभालकर रखें, क्योंकि मैं प्रति सप्ताह उसमें अपनी आत्मा उड़ेलता हूँ और मुझे ज्ञात है कि जिस रचना में

कोई अपढ़ मनुष्य भी अपनी आत्मा उड़ेलता है, उनको पढ़ने और उस पर विचार करने में कल्याण है।’

अहिंदी भाषी हिंदी संपादकों में बाबूराव विष्णुराव पराङकर का नाम अप्रतिम है। हिंदी पत्रकारिता के शिखर पुरुष पराङकरजी ने मराठी मूल के अहिंदी भाषी होते हुए भी अपना पूरा जीवन हिंदी पत्रकारिता के उन्नयन को समर्पित कर दिया। 6 नवंबर, 1883 को जन्मे पराङकरजी का महाप्रयाण 12 जनवरी, 1955 को हो गया। 72 वर्ष की अवस्था तक हिंदी की सेवा उन्होंने जिस तरह समर्पित भाव से की, वह अद्वितीय है।

बाबूराव विष्णु पराङकर ने अपना संपूर्ण जीवन मुख्यतः ‘आज’ एवं ‘संसार’ पत्रों के माध्यम से पत्रकारिता और देश सेवा में लगा दिया। सन् 1920 से लेकर 1942 और 15 अगस्त, 1947 से लेकर जनवरी, 1955 तक वे ‘आज’ में थे। सन् 1942 से लेकर 1947 के बीच का समय पराङकरजी के लिए बहुविध प्रयोगों में बीता। इस बीच उन्होंने ‘खबर’ एवं ‘संसार’ के माध्यम से हिंदी की सेवा की। सन् 1938 में पराङकरजी अखिल भारत वर्षीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के सत्ताइसवें शिमला सम्मेलन के सभापति निर्वाचित हुए। आपसे सभापति का आसन ग्रहण करने का अनुरोध करते हुए पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने कहा था, “यह बात हमारे कितने गर्व की है कि आज हम एक ऐसे पत्रकार को सभापति बना रहे हैं, जिनकी मातृभाषा मराठी है, किंतु संस्कार उनके हिंदी के ही हैं। पराङकरजी हिंदी के बहुत बड़े मर्मज्ञ हैं और मर्मज्ञता का परिचय एक इसी बात से हमें मिलता है कि जिस ‘आज’ पत्र का वह संपादन करते हैं, उसने हिंदुस्तान के पत्रकार जगत् में एक नई शैली चलाने का श्रेय प्राप्त कर लिया है। इस समय हमारे देश में यह प्रश्न बड़े जोरों से हमारे सामने आ गया है कि हमारी भाषा का स्वरूप क्या होगा?”

पराङकरजी अपने पाठकों के मनोभावों को

बेहतर ढंग से समझते थे और उन्हें बेबाकी से प्रस्तुत करने में कभी संकोच नहीं करते थे। उनके संपादकत्व में किसी लेख का ‘आज’ में प्रकाशित होना, उसके लिए किसी खजाने की प्राप्ति से कम नहीं थी। राष्ट्रपति, मुद्रास्फीति, श्रीमती आदि सैकड़ों पराङकरजी ने हिंदी शब्द भंडार को दिए और उसे सर्वमान्य बनाया।

भाषा के पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर जिन थोड़े हिंदीतर भाषी व्यक्तियों ने हिंदी पत्रकारिता को सर्वश्रेष्ठ ऊँचाई प्रदान की है, उनमें बाबू श्यामसुंदर सेन का नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिया जाता है। भाषी होते हुए भी श्री सेन ने हिंदी पत्र ‘समाचार सुधावर्षण’ का कुशलतापूर्वक संपादन किया। यह पत्र कलकत्ता से सन् 1854 में हिंदी और बंगला भाषाओं में एक साथ प्रकाशित हुआ। इसे हिंदी का पहला दैनिक पत्र भी माना जाता रहा है। श्यामसुंदर सेन अपने जातीय स्वर को बुलंद करने और परंपरागत शैली को अपनाने के कारण सुखियों में रहते थे। इसके कारण उन्हें कई बार हानि भी उठानी पड़ी। बाद में शोध के बाद ‘उदंत मार्तंड’ को प्रथम हिंदी पत्र की मान्यता मिली।

समय-समय पर जनमानस को राष्ट्र एवं समाज के प्रति कर्तव्य और औचित्य का खास ध्यान, बाबू श्यामसुंदर सेन अपने लेखों के माध्यम से दिलाया। लोगों को जागरूक करना और कठिन विषयों पर फटकार लगाने में सेन कभी हिचकते नहीं थे। सेन की दृष्टि बंगाल के अलावा देश के अन्य प्रांतों, विशेषकर हिंदी प्रदेशों पर रहती थी। समसामयिक मुद्दों एवं देश की गतिविधियों के प्रति हर संभव ‘समाचार सुधा वर्षण’ पत्र सचेत रहता था।

‘भारत मित्र’ के संपादक पंडित लक्ष्मण नारायण गर्दे ने हिंदीतर भाषी होते हुए भी आधुनिक हिंदी पत्रकारिता के सर्वांगीण विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया। पंडित गर्देजी सफल पत्रकार के साथ कुशल संपादक भी थे। उनकी संपादन की रीति और

नीति का सुफल था कि 'भारत मित्र', 'श्रीकृष्ण संदेश', 'नवनीत', 'नवजीवन' और 'सन्मार्ग' आदि पत्र-पत्रिकाएँ पठनीय तथा जनोपयोगी बनीं। गर्देजी में मानवीय मूल्यों की परख थी। उनके लेखों और संपादन के सिद्धांतों में व्यक्ति के सदाचार, विनय, शील, स्वाध्याय, संयम और सृजन और सहृदयता जैसे आचरणों को प्राथमिकता के आधार पर शामिल होना तथा व्यक्ति एवं राष्ट्र के निर्माण की बात की जाती थी। गर्देजी सफल अनुवादक भी थे। अंग्रेजी की पुस्तक 'योग प्रदीप', 'गीता प्रबंध' और 'मदर' का हिंदी भाषा में समुचित एवं लोकप्रिय अनुवाद किया था।

गर्देजी की एक विशिष्ट संपादकीय उपलब्धि गांधीवाद और साम्यवाद का प्रमुख रूप से समर्थन और प्रचार भी थी। गांधीजी को 'महात्मा' विशेषण से गर्देजी ने ही अलंकृत किया था। वे संपादकों की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। लगभग आधी शताब्दी तक हिंदी पत्रकारिता और साहित्य की जो सेवा गर्देजी ने की, वह अतुलनीय है।

हिंदी पत्रकारिता के युग पुरुष, देश प्रेमी और स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी लेखनी के माध्यम से संपूर्ण योद्धा के रूप में जाने जानेवाले संपादक पं. माधवराव सप्रे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। उन्होंने स्वयं के खर्चे पर जनवरी 1900 में पेण्ड्रा (विलासपुर) से 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक हिंदी मासिक पत्रिका निकाली। इसके संपादक पं. सप्रेजी और रामराव चिंचोलकरजी थे। मराठी मूल

के सप्रेजी में हिंदी के प्रति गजब का अनुराग था। सप्रेजी के लेख 'सरस्वती', 'अभ्युदय', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं में खूब छपते थे। सप्रेजी राष्ट्रभाषा को अपने जीवन के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान देखना चाहते थे।

इसी क्रम में हिंदी पत्रकारिता के विकास स्तंभ 'बृहत्त्रयी' संपादक रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर ने अपने गहन चिंतन-मनन अध्ययन और अध्यवसाय से हिंदी पत्रकारिता को समुन्नत किया। बाबूराव विष्णु पराड़कर और पं. लक्ष्मण नारायण गर्देजी सरीखे पत्रकारों की तरह खाडिलकरजी ने भी हिंदीतर भाषी होते हुए भी काशी को अपना कर्मक्षेत्र चुना। खाडिलकरजी ने 'आज', 'खबर' और 'संसार' के संपादन हेतु जिस तरह पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ कार्य किया, वह ऐतिहासिक है। उनके संपादन में ये पत्र निरंतर लोकप्रियता के नए-नए मानदंड स्थापित करते गए। 'नवजीवन' में भी गर्देजी के साथ उप-संपादक का कार्य बखूबी किया।

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न राहुल बारपुते ने पत्रकारिता, नाटक, संगीत, चित्रकारी और समाजसेवा के क्षेत्र में अनोखा कार्य किया। 11 फरवरी, 1954 को 'नई दुनिया' के संपादक का कार्यभार ग्रहण किया और अपने संपादन कौशल से जनमानस को निरंतर प्रभावित किया। देखते-ही-देखते पाठकों के बीच 'नई दुनिया' लोकप्रियता के शिखर चूमने लगी। मराठी मूल के राहुल बारपुते

ने सदैव हिंदी पत्रकारिता को समृद्ध करने के लिए संघर्ष किया। राहुल बारपुते ने राजेंद्र माथुर और प्रभाष जोशी जैसे नामचीन पत्रकारों को अपनी छत्रछाया से अभिसिंचित किया। उन्हें प्यार से लोग 'बाबा' कहते थे।

मराठीभाषी डॉ. प्रभाकर माचवे को हिंदी पत्रकारिता का 'भीष्म पितामह' कहा जाता है। साहित्यकार, संपादक और कवि के रूप में डॉ. माचवेजी की एक पत्रकार के रूप में यात्रा 'मालवा भूमि' से प्रारंभ की। सन् 1988 के सितंबर से वे 'चौथा अखबार' में कार्य करने लगे। पैनी नजर और सिद्धहस्त लेखनी के माध्यम से 'चौथा संसार' समाचार पत्र को मध्य प्रदेश का नंबर वन अखबार बना दिया। माचवेजी के लेख विलक्षण भाषा वैविध्य, विषय-वैविध्य और विधा वैविध्य और विचारों के लिए प्रसिद्ध थे। प्रकृति और समसामयिक विषयों से ओत-प्रोत डॉ. प्रभाकर माचवे अग्रलेख में व्यंग्यात्मक भाषा का भी प्रयोग करने से नहीं चूकते थे।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'माया', 'मनोहर कहानियाँ', 'सत्यकथा' और 'मनोरमा' पत्रिकाएँ अपने समय में पाठकों के बीच खूब लोकप्रिय थीं। इसका पूरा श्रेय इन पत्रों के संपादक क्षितींद्र मोहन मित्र को जाता है। मित्र प्रकाशन के बैनर तले प्रकाशित पत्रिकाओं को निकालने में क्षितींद्रजी को तमाम आर्थिक परेशानी भी उठानी पड़ी। बंगाली कायस्थ परिवार में जन्मे क्षितींद्र मोहन मित्र का हिंदी प्रेम जग जाहिर था। इससे हिंदी भाषा ही नहीं, बल्कि हिंदी पत्रकारिता दिनोदिन समृद्ध होती गई।

सरल, सहज, सौम्य और बालमन से ओत-प्रोत लब्ध प्रतिष्ठ संपादक डॉ. बालशौरि रेड्डी ने उपन्यासकार, बाल साहित्यकार, लेखक और अनुवादक के रूप में हिंदी में साहित्य सेवा की और खूबसूरत जीवन जीया। आंध्र प्रदेश के कडपा

(नेल्लूर) में 1 जुलाई, 1928 को जन्मे डॉ. रेड्डी ने 'चंदामामा' (हिंदी बाल पत्रिका) का 24 वर्ष तक संपादन किया। सांस्कृतिक चेतना के सूत्रधार डॉ. रेड्डी एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार थे।

हिंदीतरभाषी संपादकों में प्रथम महिला संपादक होने का गौरव हेमंत कुमारी देवी चौधरी को प्राप्त है। अहिंदी भाषी होते हुए भी संपादक के रूप में हिंदी पत्रकारिता को ऊँचाइयों पर पहुँचाने में हेमंत कुमारी का अतुलनीय योगदान रहा। उनका जन्म एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवार में हुआ। हेमंत कुमारी के हिंदी प्रेम ने उन्हें 'सुगृहिणी' पत्रिका की ओर उन्मुख किया। पत्रकार पिता की प्रेरणा से 20 वर्ष की कम उम्र में ही उन्होंने रतलाम से 1888 से 'सुगृहिणी' मासिक पत्रिका का सफलता पूर्वक प्रकाशन-संपादन किया। हेमंत कुमारी देवी चौधरी ने पत्रकारिता को सफलतापूर्वक महिला सशक्तीकरण का हथियार बनाया।

स्पष्ट है कि हिंदीतरभाषी संपादकों की हिंदी सेवा के क्षेत्र में यशस्वी और सुदीर्घ परंपरा रही। खासकर भारतीय मिशनरी पत्रकारिता का वह ऐतिहासिक चरण एक सुखद दस्तावेज के रूप में हम सब के समक्ष समुपस्थित है, जब महात्मा गांधी, बाबू राव विष्णु पराङ्कर, श्यामसुंदर सेन, लक्ष्मण नारायण गर्दे, माधवराव सप्रे, रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर, राहुल बारपुते, प्रभाकर माचवे, क्षितींद्र मोहन मित्र, बालशौरि रेड्डी और हेमंत कुमारी देवी जैसे अनेकानेक स्वनामधन्य हिंदीतरभाषी संपादकों ने हिंदी पत्रकारिता और साहित्य की सेवा से देश और समाज को प्रकाशमान किया।

□

असिस्टेंट प्रोफेसर,
 जनसंचार एवं पत्रकारिता,
 दक्षिण बिहार केंद्रीय विश्वविद्यालय,
 गया, (बिहार)

हिंदी है हर जगह—विंडोज, ऑफिस, ऑनलाइन और मोबाइल!

—श्री बालेंदु शर्मा दाधीच

सन् 2000 से पहले कंप्यूटरों पर हिंदी में काम-काज बड़े बेतरतीब और कामचलाऊ तरीके से होता था। कारण कि कंप्यूटरों पर हिंदी में काम-काज का सही ढाँचा मौजूद नहीं था। सिर्फ हिंदी फॉन्ट ही एक चीज थी, जिसके जरिए हम कंप्यूटरों पर हिंदी में लिख-पढ़ लेते थे, लेकिन ये फॉन्ट मूल अंग्रेजी (लैटिन) फॉन्टों को आधार बनाकर काम करते थे। इन फॉन्टों में सिर्फ चिह्न (ग्लिफ) हिंदी के थे, जबकि अंदरूनी ढाँचा अंग्रेजी पर ही आधारित था। चिह्नों की वजह से हमें स्क्रीन पर हिंदी के अक्षर दिख जाते थे, लेकिन कंप्यूटर की नजर में हिंदी और अंग्रेजी के टेक्स्ट में कोई फर्क नहीं था। वह हिंदी टेक्स्ट को भी अंग्रेजी का समझकर काम करता था। वर्ष 1991 में यूनिकोड के आने के बाद कंप्यूटर अलग-अलग भाषाओं को पहचानने लगा। अब भाषाएँ फॉन्टों पर निर्भर नहीं रहीं, बल्कि ऑपरेटिंग सिस्टमों के साथ उनका सीधा तालमेल बन गया। ऑपरेटिंग सिस्टम हिंदी, उर्दू और मंदारिन जैसी भाषाओं को भी पहचानने लगे।

कैसे हुई शुरुआत ?

माइक्रोसॉफ्ट ने यूनिकोड के माध्यम से हिंदी और दूसरी भाषाओं को कंप्यूटर पर लाने में अहम

भूमिका निभाई। विंडोज-2000 ने यूनिकोड एनकोडिंग का इस्तेमाल करते हुए हिंदी में काम करना संभव बनाया। इससे फॉन्ट और की-बोर्ड की समस्याओं के स्थायी समाधान का रास्ता खुल गया। 'मंगल' नामक यूनिकोड फॉन्ट जारी किया गया। हिंदी में टाइप करने के लिए इनस्क्रिप्ट की-बोर्ड आया और कई तरह के इनपुट मैथड एडिटर (आई.एम.ई.) जारी हुए, जिन्होंने रोमन में टाइप करते हुए देवनागरी में काम करना संभव बना दिया। कुछ और आई.एम.ई. भी आए, जिन्होंने लोगों को अपने ढंग से काम करने की सुविधा दी। तब से विंडोज के अलग-अलग संस्करणों में और एम.एस. ऑफिस में हिंदी को लेकर इतना काम हो चुका है कि पुराने फॉन्टों में काम करना मुश्किल लगता है और यूनिकोड समर्थित फॉन्ट्स का प्रयोग आसान। माइक्रोसॉफ्ट के इन ऑपरेटिंग सिस्टमों में हिंदी यूनिकोड समर्थन मौजूद है—

—विंडोज-2000

—विंडोज एम.ई.

—विंडोज एक्स.पी.

—विंडोज सर्वर-2003

—विंडोज विस्टा

—विंडोज-7

—विंडोज सर्वर—

2008

—विंडोज-8

—विंडोज-10

विंडोज-2000 के जमाने से माइक्रोसॉफ्ट ने कई यूनिकोड समर्थित हिंदी फॉन्ट जारी किए हैं। इनमें से कुछ विंडोज में

हिंदी को सक्रिय करने पर इंस्टॉल होते हैं और कुछ माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस के माध्यम से आते हैं। विंडोज पर उपलब्ध प्रमुख यूनिकोड हिंदी फॉन्ट हैं—

—मंगल

—एरियल यूनिकोड एमएस

—अपराजिता

—कोकिला

—उत्साह

—निर्मला

गूगल और टी.डी.आई.एल. ने भी हिंदी में दर्जनों यूनिकोड आधारित फॉन्ट उपलब्ध कराए हैं, जिन्हें इंटरनेट से डाउनलोड किया जा सकता है।

विंडोज पर हिंदी में काम करने के लिए इनस्क्रिप्ट की-बोर्ड ले-आउट बेहतरीन माना जाता है। यह भारतीय भाषाओं में काम करने के लिए भारतीय मानक ब्यूरो की ओर से प्रमाणित आधिकारिक की-बोर्ड ले-आउट भी है, लेकिन जिन्हें इस ले-आउट के जरिए टाइपिंग का अभ्यास नहीं है, वे रोमन लिपि में टाइप करते हुए देवनागरी में टेक्स्ट कनवर्जन के लिए इनपुट मैथड एडीटरों (आई.एम.ई.) का प्रयोग कर सकते हैं। ये आई.एम.ई. अंग्रेजी क्वर्टी की-बोर्ड के माध्यम से देवनागरी में टाइपिंग के लिए कई तौर-तरीकों का इस्तेमाल संभव बनाते हैं। माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट 'भाषाइंडिया' से आप इन आई.एम.ई. को

हिंदी में अब हस्तलिपि की पहचान भी संभव हो गई है तो दस्तावेजों को स्कैन करके उनकी सामग्री को कंप्यूटर पर सॉफ्ट कॉपी के रूप में सहेजना भी संभव है। इतना ही नहीं, हिंदी में मशीनी अनुवाद अब पहले से बहुत बेहतर हो गया है।

डाउनलोड कर सकते हैं—

—इंडिक इनपुट-1

—इंडिक इनपुट-2

—इंडिक इनपुट-3

—इंडिक इनपुट वेब

(वेब पेजों पर हिंदी में टेक्स्ट इनपुट के लिए)

सन् 2004 में

माइक्रोसॉफ्ट ने खास हिंदी

भाषा में एक ऑफिस सुइट भी जारी किया था। इसके मेनू, संदेशों, डायलॉग बॉक्स वगैरह को आप अपनी सुविधा के लिहाज से अंग्रेजी या हिंदी में देख सकते थे। यह दो संस्करणों में उपलब्ध था—ऑफिस हिंदी प्रोफेशनल और ऑफिस हिंदी स्टैंडर्ड।

बहुत से लोगों का सवाल होता है कि विंडोज पर हिंदी में काम करना तो संभव है, लेकिन उसके सारे संदेश, मेनू, आइकनों के नाम वगैरह अंग्रेजी में क्यों आते हैं? इस सवाल का जवाब लैंग्वेज इंटरफेस पैक (एल.आई.पी.) के रूप में हाजिर है। माइक्रोसॉफ्ट ने हिंदी में इन ऑपरेटिंग सिस्टमों के एल.आई.पी. मुहैया कराए हैं, जिन्हें 'भाषाइंडिया' वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है। इन्हें इंस्टॉल करने के बाद इन विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टमों में सब कुछ हिंदीमय दिखाई देता है—आइकनों के नाम, लेबल, मेनू, संदेश वगैरह-वगैरह—

—विंडोज एक्सपी

—विंडोज विस्टा

—विंडोज-7

—विंडोज-8

—विंडोज-8.1

—विंडोज-10

पहले पाँच विंडोज संस्करणों के एल.आई.पी.

bhashaindia.com/Downloads/Pages/



home.aspx पर मिलेंगे या फिर सर्च इंजन में 'भाषाईंडिया' डाउनलोड के नाम से सर्च करके देखें। विंडोज-10 का हिंदी एल.आई.पी. यहाँ मिलेगा—

<http://windows.microsoft.com/en-IN/windows/language-packs#lptabs=win10>

माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस सुइट (ऑफिस-2007 और उसके बाद) के यूजर हिंदी में बेहतर ढंग से काम करने के लिए कई तरह की भाषाई सुविधाएँ डाउनलोड कर सकते हैं। इन्हें प्रूफिंग टूल्स के नाम से जारी किया गया है। अगर आपके पास लाइसेंसशुदा ऑफिस सुइट है तो इन्हें माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट से मुफ्त डाउनलोड कर इस्तेमाल करें। इनके इंस्टॉल होने के बाद आपके ऑफिस सॉफ्टवेयरों में अंग्रेजी की ही तरह हिंदी वर्तनी जाँच सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

ऑफिस-365 और ऑफिस-2016 के यूजर अब माइक्रोसॉफ्ट बिंग ट्रांसलेटर के माध्यम से दी जानेवाली अनुवाद सुविधा का भी इस्तेमाल कर सकते हैं। हिंदी से अंग्रेजी और अंग्रेजी से हिंदी में क्लाउड आधारित अनुवाद सुविधा का इस्तेमाल बहुत आसान है। हालाँकि इसके लिए आपके कंप्यूटर का इंटरनेट से कनेक्ट होना जरूरी है।

अगर आप एक डेवलपर हैं तो माइक्रोसॉफ्ट विजुअल स्टूडियो में इंटरफेस आइटमों (मेनू, संदेश आदि) को हिंदी में देखने के लिए कैप्शंस लैंग्वेज इंटरफेस पैक का इस्तेमाल कर सकते हैं। ये भी भाषाईंडिया वेबसाइट पर मिलेंगे। विजुअल स्टूडियो-2008 और विजुअल स्टूडियो-2010 के लिए ये टूल फ्री डाउनलोड के लिए उपलब्ध हैं।

—भाषाईंडिया.कॉम से आप हिंदी भाषा से संबंधित और भी कई औजार डाउनलोड कर सकते हैं, जैसे—

—इंडिक इनस्क्रिप्ट ट्यूटर (टाइपिंग शिक्षक)

—टी.बी.आई.एल. कनवर्टर (फॉन्ट कनवर्टर)

—द्विभाषीय स्मार्ट टैग डिक्शनरी (अंग्रेजी-हिंदी)

—त्रिभाषीय स्मार्ट टैग डिक्शनरी (अंग्रेजी-हिंदी-गुजराती)

माइक्रोसॉफ्ट का 'बिंग' सर्च इंजन अब पहले से काफी बेहतर हो गया है। यहाँ हिंदी सहित कई भारतीय भाषाओं में सर्च करना संभव है।

बिंग का एक अहम फीचर है—बिंग ट्रांसलेटर, जिसके जरिए हिंदी और अंग्रेजी भाषाओं के बीच दस्तावेजों का अनुवाद संभव है। हिंदी से दूसरी कई भाषाओं में अनुवाद किया जा सकता है और इसके उलट क्रम में भी। बेहतर अनुवाद के लिए कोशिश रहे कि आपके वाक्य छोटे हों। यह सुविधा यहाँ मिलेगी—

bing.com/translator/?ref=TThis&text=&from=eNto=hi

सन् 2003 में माइक्रोसॉफ्ट ने भाषाईंडिया.कॉम नामक वेबसाइट शुरू की थी जहाँ पर भारतीय भाषाओं में काम करनेवाले यूजर्स और डेवलपर्स की जरूरतों की चीजें और जानकारी उपलब्ध है। अगर आप भी हिंदी में काम करने के लिए टूल्स या जानकारी की तलाश कर रहे हैं तो यहाँ जाएँ—bhashaindia.com

अगर आप कंप्यूटर, इंटरनेट, सोशल मीडिया वगैरह के बारे में हिंदी में पढ़ना चाहते हैं तो माइक्रोसॉफ्ट की डिजिटल लिटरेसी वेबसाइट पर जाएँ। यह कई भाषाओं में उपलब्ध है, जिनमें से हिंदी भी एक है। यूआरएल है—

<https://www.microsoft.com/hi-in/digitalliteracy/curriculum2.asp>

एपल मैकिन्टोश कंप्यूटरों पर हिंदी में काम करने के लिए जरूरी सेटिंग्स इस तरह करें—

सिस्टम प्रेफरेंसेज इंटरनेशनल लैंग्वेज एंड

टेक्स्टइनपुट सोर्सेज देवनागरी क्वर्टी या देवनागरी (की-बोर्ड ले-आउट)

इनमें से पहला की-बोर्ड ले-आउट रोमन में टाइप करते हुए देवनागरी टेक्स्ट अंकित करने की सुविधा देता है। दूसरा की-बोर्ड लेआउट इनस्क्रिप्ट आधारित है। अनुकूल की-बोर्ड लेआउट का चुनाव करने के बाद जब भी टाइप करना चाहें, ऊपर दाईं तरफ

दिखनेवाली भाषा वरीयता पर क्लिक करके अपना पसंदीदा लेआउट चुनें और टाइप करना शुरू कर दें।

गूगल प्ले स्टोर पर जाकर गूगल इंडिक की-बोर्ड नामक फ्री एप्प डाउनलोड कीजिए और इन्स्टाल कर लीजिए। यह आपके मोबाइल में हिंदी और 10 दूसरी भारतीय भाषाओं में यूनिकोड के जरिए काम करना संभव बना देता है। आपको अपने काम-काज की भाषा के रूप में हिंदी का चुनाव करना होगा। आप चाहें तो अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं को भी जोड़ सकते हैं। जितनी भाषाएँ आप चुनेंगे, उतने ही विकल्प टाइपिंग के समय दिखाए जाँएंगे।

एपल के आई.ओ.एस. ऑपरेटिंग सिस्टम पर आधारित गैजेट्स (आइफोन, आइपैड) में हिंदी में काम करने के लिए जरूरी सेटिंग्स इस तरह हैं—

सेटिंग्स जनरल की-बोर्ड्स एंड न्यू की-बोर्ड्स हिंदी (की-बोर्ड चुनें)

अब जब भी आप टाइपिंग शुरू करें, की-बोर्ड के साथ दिखनेवाले ग्लोब के निशान पर टैप करके

माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस सुइट (ऑफिस-2007 और उसके बाद) के यूजर हिंदी में बेहतर ढंग से काम करने के लिए कई तरह की भाषाई सुविधाएँ डाउनलोड कर सकते हैं। इन्हें प्रूफिंग टूल्स के नाम से जारी किया गया है। अगर आपके पास लाइसेंसशुदा ऑफिस सुइट है तो इन्हें माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट से मुफ्त डाउनलोड कर इस्तेमाल करें। इनके इंस्टॉल होने के बाद आपके ऑफिस सॉफ्टवेयरों में अंग्रेजी की ही तरह हिंदी वर्तनी जाँच सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

देवनागरी में टाइप करना शुरू कर दें।

अब एंड्रॉइड ऑपरेटिंग सिस्टम के जरिए मोबाइल पर तो हिंदी में बोलकर टाइप करना संभव है ही, माइक्रोसॉफ्ट ऑफिस के नए संस्करणों में भी एक प्लग-इन की मदद से ऐसा किया जा सकता है। गूगल ट्राइव, जो कि एक ऑनलाइन उत्पादकता सुइट और क्लाउड स्टोरेज है, में भी आप बोलकर टाइप कर

सकते हैं। इन दस्तावेजों को बाद में अपने सिस्टम पर डाउनलोड भी कर सकते हैं।

हिंदी में अब हस्तलिपि की पहचान भी संभव हो गई है तो दस्तावेजों को स्कैन करके उनकी सामग्री को कंप्यूटर पर सॉफ्ट कॉपी के रूप में सहेजना भी संभव है। इतना ही नहीं, हिंदी में मशीनी अनुवाद अब पहले से बहुत बेहतर हो गया है। माइक्रोसॉफ्ट के बिंग ट्रांसलेटर और गूगल ट्रांसलेट, दोनों ही अब अनुवाद के लिए न्यूरोल नेटवर्कों का इस्तेमाल करते हैं, जिसने मशीनी अनुवाद को कम-से-कम 25 फीसदी बेहतर बना दिया है। विंडोज का नैरेटर टूल अब हिंदी के दस्तावेजों को पढ़कर सुनाने में भी सक्षम है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जहाँ तक उत्पादकता का सवाल है, हिंदी में काम करने के इच्छुक लोगों के सामने कोई बाधा शेष नहीं रह गई है।

□

नित नया होता मीडिया और हमारी भाषा हिंदी

—डॉ. धनंजय चोपड़ा

तकनीकी के बलबूते जैसे-जैसे हमारा समय और समाज बदल रहा है, वैसे-वैसे सामाजिक मान्यताएँ बदल रही हैं। परंपराएँ-संस्कृतियाँ-भाषाएँ भी अपने-अपने पक्ष-विपक्ष के साथ बदलाव की ओर बढ़ चली हैं। हम हिंदी पट्टी के कहे जाने वाले स्वयं को एक अनोखे और अद्भुत 'डायनेमिक कल्चर' कही जानेवाली संस्कृति के बीच पाकर अभिभूत हो रहे हैं। आशंकाओं के साथ ही सही, पर हम लोग उसी दिशा में बढ़ते जा रहे हैं, जिस दिशा में हमारा समय, समाज, संस्कृति, परंपराएँ और भाषाएँ बढ़ चली हैं। हर तरफ पूँजी और मुनाफे का अद्भुत खेल चल रहा है। ऐसे में यह कैसे हो सकता था कि हमारा मीडिया अलग-थलग छूट जाता? लिहाजा, वह भी बदलाव की बयार में सबके संग-संग हो लिया है। मीडिया आखिर मीडिया है, सो सबकी निगाहों में है। मीडिया में हो रहे बदलाव निशाने पर हैं। सच तो यह है कि जो मीडिया अब तक समाज, सत्ता, बाजार और समय के बीच की पारस्परिक नातेदारी को बखूबी निभाता आ रहा था, उससे आगे भी ऐसा ही करते रहने की उम्मीद रखनेवालों को बदलाव देखकर डर सता रहा है। डर तो लगेगा ही न, जब पूँजी और मुनाफे की मुठभेड़ में मिशन को हाशिए पर रखकर आगे निकल जाने की होड़, हड़बड़ी और हड़कंप मची हो। इस डर में अपनी

भाषा यानी हिंदी को लेकर भी चिंताएँ शामिल हैं।

बीसवीं शताब्दी के मध्य में संचार शास्त्री मार्शल मैक्लुहान ने अपनी पुस्तक 'अंडरस्टैंडिंग मीडिया : द एक्सटेंशन ऑव मैन' में घोषणा की थी कि आनेवाले समय में संचार माध्यम पूरी दुनिया के साथ-साथ मानवीय चेतना को पूरी तरह बदल देंगे। 'मीडियम ही मैसेज है' का सिद्धांत देनेवाले मैक्लुहान ने यह भी कहा कि 'अखबार, रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि ही नहीं, हम स्वयं भी मीडियम हैं। हमारा शरीर, मन-मस्तिष्क और हमारी चेतना लगातार अपने को संप्रेषित करती रहती हैं। अपने को संप्रेषित करने की कोशिश ही इन बाहरी उपकरणों के द्वारा टेक्नोलॉजिकल विस्तार के रूप में व्यक्त होती है यानी मीडिया अंततः हमारी चेतना का ही विस्तार है। ...मीडिया 'मैं' को दूसरे जोड़ती है और यही मीडिया मैसेज का रूप ग्रहण कर लेती है।'

वास्तव में हिंदी मीडिया की स्मृति परंपराएँ इतनी अधिक मजबूत हैं कि वह बिना किसी रूकावट और बदलाव के अपने पाठकों, श्रोताओं और दर्शकों से आत्मीय नातेदारी निभाता आ रहा है। यह अनायास नहीं है कि दुनिया के मीडिया विशेषज्ञ इस बात से अचंचित हैं कि जब पूरी दुनिया में अखबार बंद होते जा रहे हैं या फिर उनकी प्रसार संख्या कम होती जा रही है, तब

भारत में हिंदी के अखबारों के लगातार नए संस्करण कैसे निकल रहे हैं और उनकी प्रसार संख्या कैसे बढ़ती जा रही है? सच तो यह है कि यह कमाल हिंदी भाषा की स्मृति परंपरा का है, जो हिंदी समाज की बनावट और मंजावट में पूरा योगदान देती है। यही वजह है कि प्रारंभ से ही हिंदी जन माध्यमों के नीति निर्धारकों ने भाषा को सर्वोपरि रखा। हिंदी पत्रकारिता के बनने के दिनों से ही मूर्धन्य पत्रकारों और साहित्यकारों ने भाषा को लेकर नए-नए प्रयोग किए और पत्रकारिता की भाषा और शैली को गढ़ने का काम किया। यह कहना गलत नहीं होगा कि पत्रकारिता की हिंदी भाषा को लेकर चिंताएँ शुरू से थीं। यहाँ प्रख्यात पत्रकार राजेंद्र माथुर की उस बात को दोहरा लेने का मन कर रहा है, जो उन्होंने कई दशकों पहले कही थी—‘दैनिक पत्रकारिता अनुशासित लेखन और तेजी माँगती है। यह साहित्यिक लेखन से अलहदा है। आलेख को साँचों में टकसाली सिक्कों की तरह ढालना है। शीर्षक हैं। इफ्ट्रो हैं। नई शब्दावलियाँ, अभिव्यक्तियाँ और वाक्य विन्यास हैं। पड़ताल और डेस्क वर्क है। फैसलों का वरिष्ठता क्रम और प्रस्तुति का डिजाइन है। पत्रकार को घटनाओं और ब्योरों और हालात के सहारे नतीजों तक पहुँचना होता है। मानक और शिल्प में सुधार के बावजूद हिंदी खबरनवीसी उथले पानी में है। हिंदी पत्रकारिता को तैयार साँचे चाहिए और भाषा में मंजावट।’

यह कहने में कतई गुरेज नहीं करना चाहिए कि आज भी हिंदी को लेकर इसी तरह की चिंताएँ बनी हुई हैं। भाषा के क्रियोलीकरण को जायज ठहराकर और यह कहकर कि जो लिखा जाए, वह बदलते समय व उस समय में तैयार हो रही पीढ़ी के अनुकूल हो, मीडिया की हिंदी को अराजकता का शिकार नहीं होने दिया जा सकता। जो लोग भाषा की बात आते ही बाजार की जरूरत और दर्शक-पाठक की माँग की दुहाई देने लगते हैं, उन्हें यह समझने की जरूरत है कि

बाजार को भाषा से नहीं, अपने कारोबार से मतलब होता है। भाषा जितनी छिछली, सरल और इकहरी होती जाएगी, वह उसके उतने ही काम की होती जाएगी। इस इस तरह भी कहा जा सकता है कि शब्दों की अपनी स्मृति जितनी कम होगी, उनमें विज्ञापनबाज चमक उतनी ही पैदा की जा सकेगी। जिस मीडिया से भाषायी अनुगूँज ही गायब हो जाएगी, वह मीडिया स्मृतिविहीन हो जाएगा और अपने समय व समाज का प्रतिनिधित्व न करके तदर्थ बाजार का प्रतिनिधि बनकर रह जाएगा। हमें यह तय करना ही होगा कि हमें क्या चाहिए—बाजार की पिछलग्गू भाषा या फिर बाजार की जरूरत बनती भाषा? यह इसलिए भी जरूरी है कि जब से भूमंडलीकरण का दौर चला है, तब से भारत की हिंदी पट्टी दुनिया के बाजार के निशाने पर है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अब से पहले लिखने और बात कहने के न तो इतने सारे ठिकाने और ठीके थे और न ही हिंदी में इतना कुछ लिखा जा रहा था या फिर कहा जा रहा था। हिंदी के प्रचार-प्रसार का यह बड़ा ही अनोखा और अप्रतिम समय है। एक तरफ नई-पुरानी पीढ़ी को साथ लेकर चल पड़ी सोशल नेटवर्किंग की दुनिया है तो दूसरी तरफ ब्लॉगिंग और माइक्रोब्लॉगिंग में असंपादित टिप्पणियों के संसार में आवाज बुलंद करते लोग। नागरिक चेतना और नागरिक प्रतिरोध को समाचार बनते देखने के लिए लालायित रहनेवालों ने स्वयं को नागरिक पत्रकार यानी सिटीजन जर्नलिस्ट बना लेने में सहजता का अनुभव किया है। हिंदी समाचारों और साहित्य के अद्भुत प्रवाह का समय है।

इंटरनेट के विस्तार के इस समय में जब दुनिया सपाट होकर सूचनाओं के जखीरे को हमारे सामने पलक झपकते लाकर रख दे रही है, तब हिंदी मीडिया नए-नए शब्दों के अनुवाद की समस्या से भी जूझ रही है। तकनीकी शब्दों के अनुवाद की समस्या तो है ही,



साथ ही कई शब्द जैसे फैबुलस फोर, यूजर फ्रेंडली या फिर पॉलिटिकली करेक्ट का ऐसा हिंदी अनुवाद नहीं हो पा रहा है, जो मूल शब्द के भाव को समझा सके। इसी बात का सहारा लेकर कई मीडिया उपक्रम हिंग्लिश यानी हिंदी-अंग्रेजी शब्दों को मिलाकर समाचार परोसने की जुगत

लगा बैठे हैं। मीडिया की हिंदी पर अंग्रेजी के प्रभाव की दो वजहें समझ में आती हैं—एक तो यह कि जो लोग इन दिनों पत्रकारिता या किसी भी किस्म का प्रशिक्षण प्राप्त करके आ रहे हैं, उनके समूचे अभ्यास में अनुवादधर्मी भाषा का समावेश है। दूसरी बात यह कि हमारी वर्तमान पत्रकारिता के अधिकतर

सरोकार और संदर्भ देश के बाहर से आ रहे हैं, जो अपने साथ सिर्फ भाषा ही नहीं, एक पूरा परिवेश भी ला रहे हैं। वैसे यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि भाषाओं में शब्दों के लेन-देन की बात नई नहीं है। अंग्रेजी का 'ऑफिसर' हिंदी में 'अफसर' हो जाता है। हिंदी का 'ब्राह्मण' उर्दू में 'बिरहमन' हो जाता है। सच तो यह है कि जो भाषाएँ ऐसे लेन-देन से बचती हैं, वे असमय मर जाया करती हैं, लेकिन जो गलत हो रहा है, वह यह कि हिंदी पत्रकारिता में अंग्रेजी के शब्दों को ज्यों-का-त्यों लेने की प्रवृत्ति बढ़ी है। अंग्रेजी के शब्दों की घुसपैठ तब अधिक खराब लगती है, जब उन शब्दों के बरक्स हमारी भाषा के पास बेहतर शब्द होते हैं और खूब बोले-लिखे जाते हैं, लेकिन अखबार के लेखन और टेलीविजन के संवाद से गायब रहते हैं।

मीडिया विशेषज्ञों का मानना है कि पत्रकारिता

की भाषा वह होनी चाहिए जिस भाषा में हम और आप अपने दोस्तों और संबंधियों को चिट्ठी लिखते हैं। वह नहीं, जिस भाषा में तमाम औपचारिक-कार्यालयी पत्र लिखे जाते हैं। ऐसी भाषा में पाठक से सीधा संवाद हो सकेगा। नए पत्रकारों का सीधा सवाल होता

है कि आखिर हम कैसी हिंदी का प्रयोग करें और शब्दों का चयन कैसा हो? इसके उत्तर में वरिष्ठ मीडिया विश्लेषक प्रो. राम मोहन पाठक की यह बात मायने रखती है कि 'भाषा संवादवाहिका होती है। जब तक वह संवाद नहीं कर सकेगी, अखबार की बात पाठक तक पहुँचेगी कैसे? संप्रेषण पहली शर्त है। जो इस शर्त पर खरी उतरे, वही भाषा सर्वोत्तम है। समाचार को सिर्फ आपका पाठक समझ ले, सिर्फ यह काफी नहीं है। उसे पढ़कर वह उद्बलित भी हो, उस समाचार से पैदा हुए सवाल उसके मन में उथल-पुथल मचा सकें, उसकी चिंतन प्रक्रिया को चालू कर सकें।' मुझे यह कहने में कतई गुरेज नहीं कि हिंदी भाषा में यह सामर्थ्य है।

एक बात और यह कि पत्रकारिता की भाषा, विशेषकर टेलीविजन समाचार चैनलों के एंकरों की हिंदी पर हाय-तौबा मचानेवाले हिंदी के शुद्धतावादियों को यह ध्यान में रखना होगा कि हिंदी पट्टी के कई इलाकों में उच्चारण को लेकर ढेर सारी कठिनाइयाँ हैं। 'नया ज्ञानोदय' के एक संपादकीय में कथाकार रवींद्र कालिया ने इसे बखूबी समझाने का प्रयास भी किया। उनका कहना था कि 'हिंदी प्रदेशों में 'स' आर 'श' को लेकर एक बड़ी व्यावहारिक कठिनाई है। अवधी में

है कि आखिर हम कैसी हिंदी का प्रयोग करें और शब्दों का चयन कैसा हो? इसके उत्तर में वरिष्ठ मीडिया विश्लेषक प्रो. राम मोहन पाठक की यह बात मायने रखती है कि 'भाषा संवादवाहिका होती है। जब तक वह संवाद नहीं कर सकेगी, अखबार की बात पाठक तक पहुँचेगी कैसे? संप्रेषण पहली शर्त है। जो इस शर्त पर खरी उतरे, वही भाषा सर्वोत्तम है। समाचार को सिर्फ आपका पाठक समझ ले, सिर्फ यह काफी नहीं है। उसे पढ़कर वह उद्बलित भी हो, उस समाचार से पैदा हुए सवाल उसके मन में उथल-पुथल मचा सकें, उसकी चिंतन प्रक्रिया को चालू कर सकें।' मुझे यह कहने में कतई गुरेज नहीं कि हिंदी भाषा में यह सामर्थ्य है।

‘श’ वर्ण है ही नहीं, केवल ‘स’ है। अवध और पूरब के लोगों को ‘श’ के उच्चारण का अभ्यास ही नहीं है, जबकि खड़ी बोली में ये दो अलग-अलग वर्ण हैं। इसी प्रकार ‘ज’ और ‘झ’ के अंतर को समझा तो जा सकता है, बोलना कठिन है।

जन-माध्यमों की भाषा के संबंध में कई और बातें हैं, जिन पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। पहली यह कि भाषा को समाज निरपेक्ष मानकर चलना ठीक नहीं है। मीडिया की भाषा आनेवाले समय में भी व्यवस्था, पूँजी, तकनीक व राज्य संचालन के व्यवहार पर निर्भर करेगी। दूसरी यह कि भाषा का शास्त्रीयकरण और मानकीकरण दो अलग चीजें हैं। इनमें से मानकीकरण पर अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है। तीसरी यह कि मीडिया की भाषा की बात करते समय जातीय व हैसियत संबंधी पूर्वाग्रहों से मुक्त होना होगा। भाषा में प्रयोग के नाम पर भाषा को भ्रष्ट करने या फिर शाब्दिक अराजकता उत्पन्न करने की छूट नहीं होनी चाहिए, लेकिन दूसरी भाषाओं से जरूरी व प्रचलित शब्द लेने से परहेज भी नहीं करना चाहिए। अंतिम बात यह कि हर भाषा का अपना परिवेश व सरोकार होता है, उस समझे बिना मीडिया की भाषा को समृद्ध नहीं किया जा सकता।

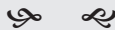
यह अनायास नहीं है कि सोशल मीडिया में सर्वाधिक प्रयोग में आनेवाली भाषाओं में हिंदी अग्रसर की भूमिका में आ गई है। जितने ब्लॉग हिंदी में लिखे जा रहे हैं, उतने अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में शायद ही हों। हिंदी के पोटकास्ट और वेबकास्ट की धूम मची हुई है। यू-ट्यूब पर हिंदी का बोलबाला होने जा रहा है। इन सब के साथ जब हम यह कहते हैं कि हिंदी के अखबारों के संस्करण बढ़ रहे हैं और हिंदी के टेलीविजन चैनलों की बाढ़-सी आती जा रही है तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम उस हिंदी के प्रति अपनी जिम्मेदारी को भी निभाएँ, जिसने हमारे जन-माध्यमों को जीवनी देने का उत्तरदायित्व निभाते रहना जारी रखा हुआ है। याद रखना होगा कि जन-माध्यम किसी भी समाज और उसकी भाषा की जीवंतता का पर्याय होते हैं, या यूँ कहें कि किसी समाज के लोगों और उनकी भाषा के जिंदा होने का सुबूत उस भाषा के जन-माध्यम ही देते हैं।

□

वरिष्ठ पत्रकार, पाठ्यक्रम समन्वयक
 सेंटर ऑफ मीडिया स्टडीज,
 इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
 इलाहाबाद

‘राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है...’

—महात्मा गांधी



आज भारतवर्ष में ‘दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा’ एक ऐसा उच्च शिक्षा संस्थान है, जो भारतीय विचारानुकूल सही शिक्षा प्रदान कर रहा है। यह केवल भारतीय भाषाओं ही नहीं, परंतु संपूर्ण हिंदी के भविष्य के लिए आशा का केंद्रबिंदु है, ऐसा मैं मानता हूँ।

—महात्मा गांधी

बदलती—बनती मीडिया की हिंदी

—डॉ. सुनील कुमार तिवारी

संप्रेषणीयता के तर्क के सहारे आज मीडिया में भाषा के कई रूप प्रचलित हैं। मीडिया के अनेक माध्यम हैं और हर माध्यम की जरूरतें, विशेषताएँ एवं सीमाएँ अलग-अलग हैं। एक ही माध्यम के भीतर कई-कई विधाएँ हैं। फलतः मीडिया की भाषा, भाव और भंगिमा में फर्क स्वभाविक है, पर दूसरी ओर आज बाजार का दबाव मीडिया की भाषा को एक लापरवाह और हड़बड़ी वाली राह पर धकेल रहा है। मीडिया में भाषा अजीब खेल-खिलवाड़ की चीज बन गई है। तोड़-फोड़ और खींच-तान के सहारे उसे लुभावना और मनोनुकूल बनाने की रवायत चल पड़ी है। इधर संचार साधनों ने हिंदी का भरपूर दोहन किया है और वे भाषा संकरता के अँधेरे और संकरे रास्तों पर चल पड़े हैं।

आजादी के बाद की पत्रकारिता में लगभग दो-तीन दशकों तक एक भाषिक सजगता, भाषा निष्ठा और संतुलित भाषिक चेतना का स्फुरण दिखता है। तत्सामयिक पत्रों को भाषा-प्रेम के प्रतिमान के रूप में भी पढ़ा जा सकता है। अज्ञेय ने 'दिनमान' के द्वारा हिंदी पत्रकारिता को नए विचारों के साथ नई भाषा दी। वस्तुतः इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आगमन के साथ भाषिक क्षेत्रों में बदलाव का अहम दौर शुरू होता है। एफ.एम. रेडियो हिंदी की प्रयुक्ति को

विस्तार देते हैं, तो वहीं पारंपरिक भाषिक मर्यादा और शैली को चुनौती भी मिलती है। इसी तरह टेलीविजन की पत्रकारिता ने सत्य, तथ्य, तार्किकता, वैज्ञानिकता के मानदंड ही नहीं बदले, बल्कि भाषा के प्रतिमान को आस्वाद के धरातल पर ला खड़ा किया।

टी.वी. समाचार की समग्र भाषा कैसी हो? इस सवाल का आदर्शपरक जवाब ढूँढ़ा जा सकता है, पर उसके व्यावहारिक प्रचलन और समकालीन यथार्थ से नाता जोड़ने में दिक्कतें आएँगी। दरअसल टी.वी. समाचार की भाषा में एकरूपता एवं मानक स्तर के प्रति सचेतता का अभाव पहले भी था और आज भी है। दूरदर्शन की समाचार-भाषा और निजी चैनलों पर प्रसारित खबरों की भाषा में विरोध की स्थितियाँ मौजूद हैं। कहीं 'हिंग्लिश' पर ज्यादा जोर है, कहीं हिंदुस्तानी भाषा के गठन का यत्न, कहीं 'संस्कृत' के शब्दों से बचने की कोशिश, कहीं उर्दू-फारसी की चाशनी में हिंदी को पगाने का प्रयास और इन सबके बीच किसी भाषा का स्वावलंबी चरित्र विलुप्त है यानी मनोरंजनपरक टी.वी. कार्यक्रमों की तरह टी.वी. समाचारों में भी हिंदी भाषा का रूप अभी स्थिर नहीं हो सका है। कुछ लोगों का मानना है कि वर्तमान भाषा ही भविष्य की भाषा होगी, अतः इसे ही चलाया जाना चाहिए, पर कुछ लोग नए प्रयोगों

से यूँ बिदके और डरे हुए हैं कि भाषा के सत्यानाश की आशंका उनका पीछा नहीं छोड़ पा रही।

टेलीविजन समाचार से अलग टी.वी. की मनोरंजन भाषा में भी कम तोड़-फोड़ नहीं है। यहाँ रोज-ब-रोज हिंदी बदलती और बनती दिख रही है। व्यावहारिकता का तकाजा यह है कि टी.वी. और रेडियो, दोनों की मनोरंजन-भाषा आसान होनी चाहिए, जिसे हर आसन में यानी बैठे-बैठे, लेटकर या बस और दुकान में खड़े-खड़े भी सहज भाव से आत्मसात किया जा सके। लहरदार भाषा सबको तरंगित करती चलती है, पर भाषा को लहरदार बनाने का जिस तरह का काम निजी चैनल कर रहे हैं, उससे फायदा कम, नुकसान ज्यादा है।

दिक्कत यह है कि रेडियो तथा टी.वी. पर स्वतः स्फूर्त ढंग से मनोरंजन करनेवाली, भीतरी आह्लाद को छूने-जगानेवाली कोई स्वावलंबी भाषा नहीं है। दिक्कत और भी है—मिलावट, भाषा को थोड़ी देर के लिए रोचक बना देती है, पर उसे सृजनात्मक नहीं बना पाती। दूसरे, मनोरंजन की भाषा; मानवीय भावनाओं-संवेदनाओं के सहारे उमड़-धुमड़ कर अभिव्यक्त नहीं हो पा रही है।

सुबह उठते ही हम अखबार के पन्ने खोलते हैं तो दो-चार पैम्फलेट गिर पड़ते हैं और अखबार के दाएँ-बाएँ कोने-अँतरे में खबरों-लेखों के बीच सुरुचिपूर्ण छपाई में विज्ञापनों की कतारें शोभायमान

दिखती हैं, तो कभी-कभी पूरा-का-पूरा पेज ही विज्ञापनमय नजर आता है। फिर रेडियो खोलिए या टी.वी. देखिए, बिना विज्ञापनों के किसी कार्यक्रम को आगे बढ़ता नहीं देखा-सुना जा सकता। समाचारों के प्रसारण के बीच भी अब तो विज्ञापनों की झड़ी लगी होती है। सिनेमा हॉल में फिल्म देखने जाइए तो केवल 'इंटरवल' के दौरान विज्ञापन आते हैं, लेकिन टी.वी. या वी.सी.डी. पर फिल्म देखते हुए विज्ञापनों की भरमार होती है। आज विज्ञापन दिनोदिन तरक्की करनेवाला उद्योग बन चुका है। सन् 2020 तक विज्ञापनों से प्राप्त होनेवाली आय दो करोड़ खरब डॉलर हो जाएगी। विज्ञापन की दुनिया चौंकानेवाली है। उसका अपना शास्त्र है, विज्ञान और कला भी। एफ.एम. रेडियो पर जारी विज्ञापनों में हाइब्रिड या संकर भाषा का प्रयोग सर्वाधिक जमता है।

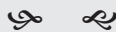
कुल मिलाकर, मीडिया में भषिक बदलाव नाक-भौं सिकोड़ने की चीज नहीं है। हिंदी आज वैश्विक अभिव्यक्ति की समर्थ भाषा बन चुकी है और इसमें मीडिया का बहुत बड़ा योगदान है। सोशल मीडिया ने हिंदी का दायरा बढ़ाया है। आज हिंदी का पाट चौड़ा हुआ है और प्रवाह बहुत तेज!

□

सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग),
 शहीद भगत सिंह कॉलेज,
 दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी हमारे देश की एकता में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होगी,
 इसमें दो राय नहीं।

—जवाहरलाल नेहरू



हिंदी को भारत की एक भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज में ही एकता संपन्न
 हो सकती है।

—केशवचंद्र सेन

हिंदी का संवर्धन और हिंदी फिल्में

— श्री प्रदीप सरदाना

जिस तमिलनाडु में हिंदी के विरोध में कुछ राजनीतिक दल अपने स्वर मुखर करते नहीं थकते, उसी तमिलनाडु में हिंदी फिल्मों ने हिंदी को जन-जन से जोड़ दिया है। हिंदी फिल्मों का ऐसा ही चमत्कार मैंने बरसों पहले श्रीनगर, कश्मीर में सन् 1976 में अपनी किशोरावस्था में तब भी देखा था, जब वहाँ मैं घूमने गया था। तब वहाँ आज की तरह आतंकवाद की गूँज नहीं थी। तब श्रीनगर के लाल चौक के एक सिनेमा घर-पैलेडियम-में राजेश खन्ना की सुप्रसिद्ध फिल्म 'हाथी मेरे साथी' चल रही थी। फिल्म को देखने के लिए पर्यटकों की ही नहीं, स्थानीय श्रीनगर निवासियों की भी अपार भीड़ जमा थी। यहाँ तक वहाँ पैलेडियम थिएटर के बाहर कुछ दूरी पर खड़ा एक कश्मीरी कुली भी फिल्म 'हाथी मेरे साथी' का ही एक गीत—'नफरत की दुनिया को छोड़ के प्यार की दुनिया में, खुश रहना मेरे यार' बहुत ही मीठे स्वर और स्पष्ट उच्चारण के साथ गा रहा था। मैं उसे गाता देख वहाँ रुका और मैंने उससे हँसकर पूछा—“हाथी मेरे साथी देख आए?” वह बोला—“ओ कबसे, मैं तो सारी फिल्में देखता हूँ।” मैंने पूछा, “काफी शौकीन हो फिल्मों के?” वह बोला—“ये फिल्में देखता, तभी आपसे हिंदी में बात कर पाता। पहले नहीं देखता तो टूरिस्ट को हमारी बात समझ ही नहीं आती थी। लेकिन फिल्में देखते-देखते अब मुझे भी हिंदी आ गई है।

टूरिस्ट मुझे हिंदी में बात करता देख मुझ पर ज्यादा भरोसा करते हैं।”

अनेक उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि हिंदी के संवर्धन में हिंदी सिनेमा का अपार योगदान है। हिंदी सिनेमा एक ऐसा सेतु है, जिसने देश के एक प्रांत के लोगों को दूसरे प्रांत के लोगों से जोड़ने का एक बड़ा कार्य किया है।

हिंदी फिल्मों ने भारत में तो अहिंदी भाषावाले दक्षिण के पाँच राज्यों के साथ पश्चिम बंगाल, ओडिशा और उत्तर पूर्व आदि के राज्यों में तो हिंदी का परचम लहराया ही, साथ ही विदेशों में भी हिंदी को अपार ख्याति दिलाने में अहम् भूमिका निभाई। हिंदी और हिंदी फिल्मों के योगदान पर प्रख्यात फिल्मकार और गीतकार गुलजार ने भी न्यूयॉर्क में आयोजित आठवें विश्व हिंदी सम्मलेन में कहा था—‘हिंदी के प्रसार में साहित्य अकादमियों और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से अधिक योगदान तो हिंदी फिल्मों का रहा है’।

गुलजार की यह बात चाहे कुछ लोगों को खटकी भी थी, लेकिन यह पूर्ण सत्य है कि हिंदी फिल्मों और इन फिल्मों के कलाकारों तथा हिंदी गीतों ने सांस्कृतिक दूत की ऐसी भूमिका निभाई है कि आज हिंदी विश्व में तीव्रता से लोकप्रिय हो रही है। आज विश्व में सर्वाधिक फिल्में भारत में ही बनती हैं और भारत में सर्वाधिक फिल्में हिंदी में बनती हैं। फिल्म निर्माण में अपनी

गुणवत्ता और उच्च तकनीक के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हॉलीवुड से भी भारत में दोगुनी से अधिक फिल्में बन रही हैं। साथ ही 'बाहुबली' जैसी फिल्मों के बाद भारत तकनीक के मामले में भी हॉलीवुड को टक्कर देने लगा है। कथानक और संगीत में तो भारतीय फिल्मों पहले

से ही अपनी अच्छी स्थिति में रही हैं। इससे भारतीय फिल्मों, विशेषकर हिंदी फिल्मों की लोकप्रियता पूरे विश्व में इतनी अधिक हो गई है कि हमारी बहुत-सी बड़ी फिल्मों तो भारत के साथ-साथ विश्व के करीब 65 देशों में एक साथ प्रदर्शित हो जाती हैं। यूँ कुल मिलाकर 100 से अधिक देशों में हिंदी सिनेमा अपनी अच्छी पहुँच बना चुका है, जिससे हिंदी भी उन देशों में पहुँच रही है। हमारी फिल्मों के गीत-संगीत को सुन दर्शक इस तरह दीवाने हो जाते हैं कि

वह गीत, वह संगीत उनकी रगों में बस जाता है। इससे गीत में पिरोए हिंदी के वे शब्द विदेशी दर्शकों के मन-मस्तिष्क में अपना घर बना लेते हैं।

हिंदी सिनेमा की आज की तारीख में सबसे वरिष्ठ अभिनेत्री कामिनी कौशल और गीत-संगीत और आवाज की दुनिया में क्रांति लानेवाले अमीन सयानी हिंदी के फिल्म दूत रहे हैं।

कामिनी कौशलजी की आयु आज चाहे 91 वर्ष हो गई है, लेकिन आज भी वह काफी सुंदर, चुस्त-दुरुस्त और भली-चंगी हैं। कामिनी कौशल उस फिल्म 'नीचा नगर' की नायिका हैं, जिस फिल्म ने सबसे पहले

भारतीय सिनेमा की विश्व स्तर पर, कान अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में जाकर ऐसी पहचान बनाई कि दुनिया को मानना पड़ा कि भारत में अच्छी फिल्में बनती हैं। यह बात है सन् 1946 की। जब तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू को पता लगा कि हमारे देश की फिल्म

विदेश में सम्मानित हुई है तो उन्होंने स्वयं इस फिल्म को देखा और उसके बाद यह फिल्म कुछ और फिल्म समारोहों में भी दिखाई गई। यह फिल्म हिंदी-उर्दू में सम्मिलित थी, लेकिन इसी फिल्म के माध्यम से पहली बार हिंदी अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में पहुँची।

उधर अमीन सयानी ने रेडियो सिलोन पर हिंदी फिल्म गीतों का पहला कार्यक्रम 'बिनाका गीतमाला' प्रस्तुत करके फिल्म गीतों के साथ हिंदी को भी देश-विदेश में नए आयाम दिलाए। अमीन सयानी बताते हैं—'मुझे तब आश्चर्य होता था कि हिंदी फिल्मों के गीत अहिंदी भाषी प्रदेशों में भी लोकप्रिय हो रहे थे और विदेशों में भी। इसलिए हिंदी को लोकप्रिय करने में हिंदी फिल्मों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।'

विदेशों में यदि हिंदी फिल्मों और गीतों को पहली बार किसी ने सर्वाधिक लोकप्रियता दिलाई तो वह थे, राज कपूर और उनकी फिल्म 'आवारा'। यह सन् 1951 में जब भारत में प्रदर्शित हुई तो इस फिल्म ने सफलता और लोकप्रियता का नया इतिहास लिख दिया। जितनी फिल्म अच्छी थी, उतना फिल्म का गीत-संगीत। बाद

अमिताभ बच्चन तो राज कपूर के बाद ऐसे दूसरे अभिनेता हैं, जो विदेशों में जमकर लोकप्रिय हुए। फिर अमिताभ बच्चन एक ऐसे अभिनेता भी हैं, जो विभिन्न मंचों पर अंग्रेजी की जगह हिंदी में अधिक बोलते हैं, वह भी बहुत अच्छी हिंदी। इससे वह अपनी फिल्मों के संवादों के साथ व्यक्तिगत रूप से भी हिंदी के विकास में अविस्मरणीय भूमिका निभा रहे हैं। यहाँ एक बात और बताना चाहूँगा कि कई बरस पहले अमिताभ रूस गए तो वहाँ की कई महिलाओं ने उन्हें घेर लिया। अमिताभ ने उनसे उनके नाम पूछे तो किसी ने कहा श्रीदेवी, किसी ने रेखा तो किसी ने हेमा।



में जब यह फिल्म रूस में प्रदर्शित हुई तो फिल्म को ऐसी अप्रत्याशित सफलता मिली कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस फिल्म के प्रदर्शन के बाद राज कपूर तो विदेशी धरती पर लोकप्रिय होनेवाले पहले इंडियन स्टार बने ही, साथ ही 'आवारा हूँ' गीत भी, किसी भारतीय फिल्म का ऐसा प्रथम गीत बना, जिसने परदेस में धूम मचा दी।

फिल्मों में गीतों की शुरुआत सवाक् फिल्मों के साथ 1931 में हो गई थी। लेकिन इन गीतों में दम-खम 1940 के बाद ही आया, जब फिल्म संगीत से उस दौर के कई जाने-माने शायर और कवि जुड़ते चले गए। फिल्म गीतों में बड़ी पहचान बनानेवाले गीतकारों में कवि प्रदीप का आगमन तो सन् 1939 में ही हो गया था जबकि पंडित भरत व्यास, मजरूह सुल्तानपुरी, शकील बदायूनी, शैलेंद्र, साहिर लुधियानवी, इंदीवर और कैफी आजमी जैसे गीतकार सन् 1941 से 1951 के बीच आए। इनमें प्रदीप, भरत व्यास, इंदीवर और शैलेंद्र तो अपने गीतों में शुरू से ही हिंदी को अधिक महत्त्व देते थे, लेकिन बाकी शायर क्योंकि उर्दू से थे, इसलिए उनके गीतों में उर्दू शायरी और उर्दू के अल्फाज ज्यादा होते थे। हालाँकि इन सभी गीतकारों ने हिंदी सिनेमा के गीतों को लोकप्रियता के चरम पर पहुँचाया। इनके बाद आए आनंद बख्शी, गुलशन बावरा, गुलजार और नीरज जैसे गीतकारों ने तो हिंदी गीतों की तसवीर ही बदल दी। यहाँ में नीरज जैसे महान् कवि और गीतकार का उल्लेख अवश्य करना चाहूँगा, जिन्होंने अपने फिल्म गीतों में हिंदी के ऐसे-ऐसे शब्द प्रयोग किए, जिनको लेकर सोचा नहीं जा सकता था कि ये लोकप्रिय हो सकते हैं। हिंदी फिल्म गीत-संगीत में कितनी शक्ति है, इस बात को नीरज ने भी बहुत अच्छे से सिद्ध कर दिया। असल में उनका एक गीत— 'स्वप्न झरे फूल से, मीत चुभे शूल से। लुट गए सिंगार सभी बाग के बबूल से, और हम खड़े-खड़े बहार देखते रहे, कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे।' 'धर्मयुग' पत्रिका में प्रकाशित

हुआ था, लेकिन तब इस गीत को कोई विशेष महत्त्व नहीं मिला, लेकिन जब यह गीत सन् 1965 में फिल्म 'नई उम्र की नई फसल' में आया तो यह सदाबहार गीत बन गया।

हिंदी गीतों के साथ हिंदी भी दुनियाभर में पहुँच रही है, लेकिन बहुत से देशों के ऐसे अपने कार्यक्रमों में भी हिंदी गीतों का बोलबाला साफ देखा जा सकता है। हालाँकि कुछ लोगों को इस बात पर सहज विश्वास नहीं होगा कि विदेशों में बसे किशोर और युवक-युवतियाँ अपने देश की गायन या प्रतिभा प्रतियोगिता में हिंदी गाने गाते या नृत्य करते होंगे। लेकिन यू-ट्यूब पर जाकर भी इस बात की प्रामाणिकता को खँगाला जा सकता है। अर्जेन्टीना में 'जय हो' जैसे हिंदी गीत की धूम दिखती है तो उक्रेन टैलेंट शो में हिंदी गीत 'चिकनी चमेली' और कनाडा के टैलेंट शो में वहाँ के प्रतियोगियों को 'मुन्नी बदनाम हुई' और अरब्स टैलेंट शो में हिंदी गीत 'आजा नच लै' गाते या इन पर नृत्य करते हुए साफ देखा जा सकता है। सिर्फ इतना ही नहीं, रशियाज टैलेंट में 'जग घुमया' के साथ 'देवा श्री गणेशा', ब्रिटेन गौट टैलेंट में 'नगाड़ा संग ढोल बाजे' और फिनलैंड गौट टैलेंट में 'धूम तना' खूब चल रहा है। इससे यह पता लगता है कि हिंदी फिल्म गीतों ने हिंदी को सभी की जुबान पर ला दिया है।

'मदर इंडिया', 'मुगल-ए-आजम', 'शोले' और 'दीवार' तो हिंदी सिनेमा के ऐसे मील के पत्थर हैं, जिनके संवाद अपने-अपने समय की पीढ़ी पर जादुई प्रभाव छोड़ते रहे। जबकि कुछ संवाद आज भी अमर हैं। इनमें 'दीवार' का संवाद— 'मेरे पास माँ है' अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी खूब गूँजता रहा है। यहाँ तक सुप्रसिद्ध संगीतकार ए.आर. रहमान ने 'जय हो' गीत के संगीत के लिए ऑस्कर अवार्ड प्राप्त करते हुए भी यही संवाद बोला था— 'मेरे पास माँ है', जिसे सुनने के बाद वहाँ का पूरा सभागार तालियों से गूँज उठा था।

हिंदी सिनेमा को विश्व में लोकप्रिय बनाने में

हम राज कपूर का नाम तो लेते हैं, लेकिन राज कपूर के बाद अमिताभ बच्चन, देव आनंद और यश चोपड़ा के साथ शाहरुख खान, आमिर खान और सलमान खान का नाम भी हमको नहीं भूलना चाहिए, जिन्होंने हिंदी सिनेमा को नए क्षितिज दिए। इधर ऐश्वर्या राय और प्रियंका चोपड़ा जैसी अभिनेत्रियों ने भी अपनी हिंदी फिल्मों के बल पर विश्व के कई देशों में अपनी जगह बना ली है। यहाँ तक नर्गिस, रेखा, हेमामालिनी, श्रीदेवी और माधुरी दीक्षित जैसी नायिकाएँ भी अपनी फिल्मों से हिंदी और भारत, दोनों का गौरव बढ़ाती रही हैं। अमिताभ बच्चन तो राज कपूर के बाद ऐसे दूसरे अभिनेता हैं, जो विदेशों में जमकर लोकप्रिय हुए। फिर अमिताभ बच्चन एक ऐसे अभिनेता भी हैं, जो विभिन्न मंचों पर अंग्रेजी की जगह हिंदी में अधिक बोलते हैं, वह भी बहुत अच्छी हिंदी। इससे वह अपनी फिल्मों के संवादों के साथ व्यक्तिगत रूप से भी हिंदी के विकास में अविस्मरणीय भूमिका निभा रहे हैं। यहाँ एक बात और बताना चाहूँगा कि कई बरस पहले अमिताभ रूस गए तो वहाँ की कई महिलाओं ने उन्हें घेर लिया। अमिताभ ने उनसे उनके नाम पूछे तो किसी ने कहा श्रीदेवी, किसी ने रेखा तो किसी ने हेमा। असल में रूस सहित ऐसे कुछ और भी देश हैं, जहाँ लोगों ने अपने नाम हिंदी फिल्मों की नायिकाओं पर या नायकों के नाम पर रखे हुए हैं, जो यह बताता है कि हिंदी सिनेमा सात समंदर पार भी कितना लोकप्रिय है। इसी का परिणाम है कि विदेशों में मैडम तुसाद के विभिन्न

संग्रहालय हमारी हिंदी फिल्मों के कलाकारों के मोम के पुतलों से पटे पड़े हैं।

इधर यश चोपड़ा का भी हिंदी सिनेमा में योगदान कमतर नहीं है। उन्होंने अपनी कई फिल्मों की शूटिंग कई बार स्विट्जरलैंड में करके वहाँ पर्यटकों की संख्या बढ़ा दी है। यह देख वहाँ की सरकार ने स्विट्जरलैंड में यश चोपड़ा की मूर्ति लगाने के साथ एक विशेष क्षेत्र को पूरी तरह यश चोपड़ा और भारतीयों को समर्पित कर दिया है। कुछ देशों ने भारतीय कलाकारों, जैसे अमिताभ बच्चन, शाहरुख खान, यश चोपड़ा, लता मंगेशकर और अक्षय कुमार को डॉक्टरेट की मानद उपाधि दी है तो कुछ देशों ने अपने यहाँ का सर्वोच्च नागरिक सम्मान भी हमारे कलाकारों को दिया है। इससे भी हिंदी फिल्मों के कलाकारों का दुनिया भर में कद ऊँचा हुआ है।

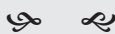
हॉलीवुड की कुछ फिल्मों में हमारी हिंदी फिल्मों के गीतों को दिखाया जाने लगा है। हाल ही में एप्पल के आई फोन-एक्स के एक अंतरराष्ट्रीय विज्ञापन में तो बी.आर. चोपड़ा की फिल्म 'द बर्निंग ट्रेन' के संगीत का प्रयोग किया है। यानी हिंदी और हिंदी फिल्मों को अब किसी के लिए भी नजरअंदाज करना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन हो गया है।

□

वरिष्ठ पत्रकार एवं फिल्म समीक्षक,
 ई-22, हरि विला, विकास मार्ग,
 लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110 092

‘वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर पराई जाणे रे...’

—नरसी मेहता



‘संसार की समस्त वर्णमालाओं में हिंदी सर्वाधिक संपूर्ण तथा व्यवस्थित है।’

—महात्मा गांधी

अपना मीडिया और हिंदी

—डॉ. दुर्गेश त्रिपाठी

यह हिंदी के जरिए आगे बढ़ने का समय है। जो हिंदी का जानकार है, उसका कोई उत्थान, प्रगति, विकास चाहे हो या न हो, हिंदी को माध्यम बनाकर बड़े-बड़े उद्योग जरूर खड़े किए जा रहे हैं। भले ही हिंदी ठीक से बोलने और लिखनेवालों की तादाद देश की आबादी के 30 हो या 40 फीसद, लेकिन इस देश में कुछ फीसद लोग ही होंगे, जो हिंदी न समझते हों। अगर कोई हिंदी समझता हो तो वह अपनी आँखों और अपने कानों के जरिए हिंदी मीडिया अपने विकास के लिए बेचैन है और विकास के लिए लगातार दौड़ते चला जा रहा है, बिना रुके, बिना थमे। दरअसल यह हिंदी ही है, जिसमें इतनी दरियादिली है कि दूसरी भारतीय भाषाओं के शब्दों को ही नहीं, विदेशी भाषाओं के शब्दों को भी पुचकारकर और दुलार देकर खुद में शामिल कर लेती है। ऐसा होते-होते यह हाल हो गया है कि नाम अंग्रेजी में होते हैं और उत्पाद हिंदी में। ये जो मिला-जुला रूप है—यही बड़ दिल है। जाहिर है, यही खासियत भी है। इसी खासियत पर गौर करते हुए पीछे मुड़कर देखो तो अचरज के अलावा कोई दूसरा भाव नहीं आएगा। एकतरफ अखबार, रेडियो, टी.वी., एडवर्टाइजमेंट और सिनेमा जैसे संचार माध्यमों में हिंदी की पकड़ बढ़ी है। कुछ विशेषज्ञ कहते नहीं थकते हैं कि दुनिया की भाषाओं में इंटरनेट की वजह से हिंदी ने अपनी जगह बना ली है। इसमें कोई शक

नहीं कि हिंदी मीडिया तेजी से आगे बढ़ रहा है, इसके कई रूप सामने आ रहे हैं, यह अलग बात है कि इसका उलटा असर अभी से ही दिखाई पड़ने लगा है।

आजकल 'मीडिया' शब्द का खूब इस्तेमाल हो रहा है। कई लोग मीडिया का मतलब टी.वी. खबर से लेते हैं, जबकि रेडियो, अखबार, टेलीविजन, फोन, इंटरनेट आदि मीडिया के ही रूप हैं। मीडिया का मतलब है, संचार माध्यम। किसी भी सूचना, विचार या भाव, फोटो, वीडियो को दूसरों तक पहुँचाने को मोटे तौर पर संचार या कम्युनिकेशन कहलाता है। एक साथ लाखों-करोड़ों तक जानकारी, सूचना, संदेश, या खबर पहुँचाना ही मास कम्युनिकेशन मीडिया माना जाता है। यह अंदाजा लगाना आसान है कि पुराने जमाने में हम किसी-न-किसी रूप में सूचनाएँ पाते और भेजते होंगे, मसलन, कबीलेवाले नगाड़ा या तुरुही बजाकर, परिंदों के जरिए चिट्ठी भेजना, आदमी या हरकारा भेजना, डाक के जरिए चिट्ठी भेजना, टेलीफोन से सूचना देना, टैलेक्स, फैक्स भेजना और अब इ-मेल, मैसेंजर, फेसबुक ट्वीटर और व्हाट्सएप्प तक पहुँच गए हैं। एक बात और, संचार का मतलब किसी एक को सूचना या खबर देना नहीं है। हमें अपने प्रदेश, देश के अलावा पूरी दुनिया की खबरें जानने की चाहत होती है। इसी चाहत, इच्छा या जरूरत की वजह से इसका इतना फैलाव हुआ है। अगर जरा-सा गौर करिए तो

लगभग हर जानकारी या सूचना हम संचार माध्यमों से ही पाते हैं। क्रिकेट का स्कोर, शेयर बाजार, सर्राफा बाजार, मौसम का हाल आसपास की घटना-दुर्घटना वगैरह की जानकारी हमें इससे मिल जाती है।

सबसे पहले घर बैठे सूचना पाने और मनोरंजन के लिए एक अकेला साधन रेडियो था। यह भी कहा जा सकता है कि अब तक सुदूर गाँवों का अब तक यही एक जरिया है। पहले के रेडियो में साफ आवाज के लिए छत पर एक जालीनुमा ऐंटीना लगाया जाता था। पहले लोग रेडियो के जरिए ही आकाशवाणी ही नहीं रेडियो सीलोन और बी.बी.सी. सुना करते थे। ज्यादातर पढ़े-लिखे लोग किसी खास खबर के लिए बी.बी.सी. का हवाला दिया करते थे। गाँव में रेडियो की रौनक है। खेतों और बागों से अगर कोई मीठी धुन

सुनाई देती है, वो रेडियो की होती है। आज तक हम आकाशवाणी के विविध भारती से 'भूले-बिसरे गीत' और शाम सवा आठ बजे 'हवामहल' सुनते पाए जाते हैं। बिजली न आने की हालत में लोगों का सहारा रेडियो ही होता है। जब से एफ.एम. का जन्म हुआ है, तब से मनोरंजन के नाम पर सिर्फ फिल्मी गाने ही प्रसारित किए जाते हैं। 24 घंटे चलनेवाले ये चैनल सुबह-सुबह कुछ भजन सुनाते हैं। शायद खबरों के झंझट से दूर हैं। कुछ चैनलों पर ट्रैफिक का हाल बताया जाता है।

आजादी के पहले अखबार निकालनेवाला रोज एक महाभारत लड़ता था और आज का अखबार रोज नए आसमान छूता है। दरअसल, आजादी के पहले

इंग्लिशतानियों की दबी जबान खिलाफत की जाती थी। कइयों को हैरानी होगी कि अखबार के मालिक ग्राहक के चंदे और बिक्री के भरोसे एक मिशन में लगे रहते थे। कभी हारे नहीं, कभी टूटे नहीं। जितनी ताकत थी, उसी के साथ अखबार निकलते रहे। कोई जितनी आलोचना करना चाहे करे, लेकिन इस मुल्क के अखबार गरीबों, किसानों, मजदूरों, मजबूरों और बेसहारों की आवाज हुआ करते थे। सरकारें कान लगाकर इनकी आवाजें सुनती थीं और अपनी नीतियों में बदलाव करती थीं। अखबारों की टिप्पणी पर ऐलान वापस लिए जाते थे या कानून ठंडे बस्ते में आराम करता था। आठवें दशक के बीच में राजनीतिक उथल-पुथल के बाद जगह-जगह से अखबार निकले और अखबार बाकायदा व्यापार हो गए। हिंदी प्रिंट मीडिया

का भारी विकास हुआ। पहले प्रदेशों की राजधानियों से निकलने के कुछ सालों में उस प्रदेश के जिलों या शहरों से प्रकाशन और मुद्रण होने लगा। पूरे-पूरे पेज के विज्ञापनों से भरे 16, 20, 24 पेजवाले अखबारों से स्टॉल पट गए। इस कामयाबी या भारी कमाई के बावजूद कुछ-न-कुछ डगमगाने लगा। पहले विचारधारा, फिर राजनीतिक पार्टियों का साथ, बाद में नेताओं को प्रमोट करने तथा चुनाव जिताने का काम किए जाने की बातें कही जाने लगीं। इसी बीच अखबार का रीडर घटने लगा, जितने रीडर उतनी बातें। एक तो दसियों अखबार और ऊपर से शहरी अखबार कुछ और, कस्बों के लिए कुछ और। अभी हाल में ही कुछ ऐसे ऐसे इल्जाम लगाए गए हैं, वह भी शायद एक

वजह हो सकती है। जो इल्जाम हैं वे ज्यादातर लोगों को पता हैं और मेरी निजी राय है कि वे दोहराने लायक नहीं हैं।

20वीं सदी जब जाने की ओर थी, अखबारों के रौब और रुतबे का झंडा बुलंद था, तभी संचार की एक नई तकनीक आई—टेलीविजन। पहले इसके जरिए मनोरंजन परोसा गया। कुछ साल बाद न्यूज खबर ने अपना चेहरा दिखाया। इस इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने प्रिंट मीडिया का मुनाफा भले ही कम न किया हो, रुतबे को हलकी-सी चोट पहुँचाई। गाँव का प्रधान हो या तहसीलदार, डी.एम. हो या एम.एल.ए. या मिनिस्टर, सभी को कैमरे के सामने आने का इंतजार होता है। इसकी सीधी-सी वजह है कि अखबार को छपकर आने में काफी समय लगता है, जबकि कैमरे से तसवीरें लेकर टी.वी. स्क्रीन तक कम समय लगता है। महानगरों की हर बड़ी खबर को दिखाया ही जाता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को द्रुत माध्यम माननेवाले एक ही खबर के जरिए सुबह से शाम करने की आदत से ऊबते हैं और फिर कुछ दिन तक टी.वी. की खबरें नहीं देखते हैं। इस आदत की वजह शायद इसलिए है कि इन्हें अखबारों की तरह यह डर नहीं है कि छपी-छपाई प्रतियाँ लौट आएँगी। इनका सारा काम टी.आर.पी. से चल जाता है और टी.आर.पी. किसी से शेर नहीं करते। कहा तो यहाँ तक जाता है कि चैनल में काम करनेवालों को भी यह बात पता नहीं होती। कहते हैं कि कुछ सरकारी और गैर सरकारी एजेंसियाँ हर हफ्ते टीआरपी जारी करती हैं। शायद पर प्रोग्राम की होती है।

संचार माध्यम का सबसे नया रूप फेसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब और वाट्सएप्प है। सुबह से देर रात तक जाने क्या लोग लिखा करते हैं। कहाँ-कहाँ से पुराने फोटो, वीडियो, बयान, लाकर बाकायदा बवाली भाषा में लिखते रहते हैं। उन्हें कतई कोई लिहाज

या शिष्टाचार नहीं है कि वे क्या, किसके लिए और क्यों लिख रहे हैं? एक नई तरह की भाषा लिखना, इशारे-इशारे में अश्लील गंदी बात कहना, बेशर्मी और बेहयायी की हदें पार करने की कुटेंव के शिकार हो चुके। कोई शोहदा या गुंडा सड़क पर जो शब्द कहने में हिचकता है, वह सब इन पर आप पढ़ सकते हैं। कई बार ऐसे पोस्टों पर विवाद भी हुआ है, जो डर पैदा करते हैं। कई ऐसे भी वाक्य सामने आए हैं कि वीडियो में छेड़छाड़ और फोटोशॉप करके तसवीरें वायरल कर दी जाती हैं। मकसद सिर्फ सनसनी, रियूमर फैलाना और माहौल को खराब करना ही होता है। कभी-कभार भी लोग किसी वारदात को बड़ी बारीकी से शूट करके चैनलों को भेजते हैं। जिससे उक्त खबर को दर्शक या पाठक तक पहुँचाने में मदद मिलती है

इंटरनेट के जरिए एक और बड़ा माध्यम हमें मिला है, वह है—यूट्यूब। इसको चमकाने में कुछ चौंकानेवाली हेडिंगों का हाथ है। वीडियो में कुछ और है और लिखा कुछ और है। चैनलों की पुरानी और बेकार-सी खबरों के वीडियो भी पड़े हैं और हेडिंग लगी है कि जैसे ब्रेकिंग न्यूज हो। देखने बच्चों के लिए कार्टून, विविध जानकारीवाले वीडियो अच्छे और ठीक-ठाक होते हैं।

अपने पाठकों तक तुरंत खबर पहुँचाने के लिए समाचारों की साइटों की भरमार है। मसलन, सभी बड़े अखबारों की न्यूज साइट है। इसी तरह हिंदी न्यूज चैनलों की भी है। अभी बंद हो चुके अखबारों की साइटों का भी जन्म हुआ है। इसके अलावा सैकड़ों की तादाद में और भी हैं। जिन्हें कितने लोग देखते हैं, पढ़ते हैं, इसकी कहीं जानकारी नहीं मिलती।

□

जनसंचार विभाग
गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ
विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

जनसंचार माध्यम और हमारी संस्कृति

— श्री संदीप पुरोहित

हमारी संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, कला और ज्ञान एक अविरल धारा है, जो अतीत से भी अधिक पुरातन है। वैदिक काल से लेकर आज तक यह परंपरा और आधुनिकता दोनों को समाहित किए हुए है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जब आक्रांताओं और विभिन्न शासकों ने भारतीय संस्कृति को सुनियोजित तरीके से छिन्न-भिन्न करने का प्रयास किया पर उसका प्रति उत्तर हमारी पावन संस्कृति ने बड़े ही संयमित भाव से दिया है। इसने कुछ को अपने भीतर समाहित कर लिया और जो कुछ हमसे निकल कर अलग हो गए, उनके मूल में आज भी भारतीय संस्कृति ही रची-बसी है। यह महान संस्कृति और इसके मूल्य आज इस विज्ञान के दौर में भी पूरी तरह प्रासंगिक की हैं और पूरी दुनिया में गर्व से अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं।

प्राचीन काल खंड पर न जाते हुए अगर हम सीधा स्वतंत्रता के पश्चात् अवलोकन करेंगे तो पाएँगे हमारे जन माध्यमों ने दोनों काम किए। कुछ ने हमारी संस्कृति और सभ्यता पर हमले किए तो कुछ ने इसके प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

नवजागरण में हमारे जन माध्यमों की भूमिका से हम सभी परिचित हैं। आजादी के आंदोलन में प्रिंट मीडिया की भूमिका को हम सभी जानते हैं। उसके पश्चात् हमारे सांस्कृतिक उत्थान में भी इनका

महत्वपूर्ण योगदान रहा है। देश के अनेक लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं ने इस क्षेत्र में कार्य किया है। इन्होंने खाली तीज-त्योहार की जानकारी ही नहीं दी, बल्कि इनके मूल्यों में भारतीय संस्कृति परिलक्षित होती है। मुख्यधारा की मीडिया में संस्कृति को लेकर विरोधाभास के स्वर भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। कार्टूनों के माध्यम से भी हमारी संस्कृति पर बहुत प्रहार हुए हैं। मीडिया को कुरीतियों पर प्रहार करना चाहिए। इसमें कोई बुराई नहीं है पर हमारी सभ्यता और संस्कृति को पाखंड या ढोंग की संज्ञा दी जाए तो यह स्वतंत्रता का दुरुपयोग है। समाज में अराजकता फैलाने की चेष्टा है। उसे समझे बिना, जाने बिना निंदा उचित नहीं है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने यह काम किया है, उनका जिक्र करने की आवश्यकता इसलिए महसूस नहीं करता कि कालखंड ने खुद उनका भविष्य तय कर दिया। अधिकांश तो अपना अस्तित्व ही नहीं बचा पाई। जो कुछ बची हैं वे विलुप्त होने के कागार पर हैं। वैसे भारत में वर्तमान समय में पत्र-पत्रिकाओं का बाजार कुछ कमजोर भी पड़ा है।

दुनिया की संस्कृतियों को हम वैश्विक परिदृश्य में देखें तो पाएँगे कि संचार क्रांति का इस्तेमाल अविकसित देशों की संस्कृति को नष्ट करने के लिए भी किया जा रहा है। विकसित देशों के जनमाध्यम हमारे जैसे विकासशील देशों के मीडिया का एजेंडा



भी सेट करने की कुचेष्टा करने लगे हैं। आश्चर्य की बात है कि उनके इंटरनेट वेस्ट हमारे यहाँ के अखबारों की सुर्खियाँ बनते हैं। उनके छोटे-छोटे सर्वे हम प्रमुखता से छापते हैं। उनके पन्ने-के-पन्ने अनुवाद करके लगा रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया उनके वायरल वीडियो दिखा कर वाहवाही लूट रहा है। हॉलीवुड के ब्रेकअप ऐसे पढ़ा रहे हैं, जैसे किसी पवित्र ग्रंथ का अध्ययन करा रहे हों। उनकी संस्कृति और सभ्यता को हम पर छद्म रूप से लादने का प्रयास लंबे समय से हो रहा है। इसका प्रभाव हमारे जनजीवन पर अब स्पष्ट परिलक्षित भी हो रहा है। वक्त रहते न सँभले तो हमारी भाषाएँ और हमारी विविध संस्कृतियों के अस्तित्व पर भारी संकट खड़ा हो सकता है। हमारा जनमाध्यम भटका हुआ है, बँटा हुआ है। दिशाहीन है। चिंता होना स्वभाविक है पर निराश होने की जरूरत नहीं है। बस आवश्यकता है तो सजग रहने की और संस्कृति को आसन्न खतरों से बचाने की।

भारतीय संस्कृति से रूबरू होने के लिए प्राचीन काल से ही लोग विदेशों से हमारे यहाँ आते रहे हैं। ऐसे ही तीन चीनी यात्रियों के बारे में जानकारी हमें इतिहास से भी मिलती है, जो बौद्ध धर्म के बारे में जानकारी के लिए हमारे यहाँ आए थे। ये थे फाह्यान, ह्वेन सांग और इत्सिंग। इनमें इत्सिंग सबसे बाद में आया था, जिसने 26 वर्ष भारत देश के विभिन्न स्थानों पर रहकर शब्द विद्या व संस्कृत सीखी। इन्होंने काफी दिनों तक भारत में रहकर बौद्ध धर्म व यहाँ की संस्कृति को करीब से देखा और जाना। इन चीनी यात्रियों ने इसका उल्लेख अपनी पुस्तकों में भी किया है। चीनी यात्री फाहान तो पैदल ही भारत आ गया था। यह सिलसिला प्राचीन काल से आज भी बदस्तूर जारी है। आज भी पुष्कर बनारस में मेला लगा रहता है। भारतीय संस्कृति और संस्कार देश-विदेश तक देखे जा सकते हैं और पढ़े जा रहे हैं। इसका बड़ा माध्यम

है जनसंचार भी है। बदलते दौर में भावी पीढ़ियों को संस्कृति से रूबरू कराने में जनसंचार का भी बड़ा योगदान रहा है।

इनमें भी शिक्षाप्रद सांस्कृतिक जानकारीयें मिलती हैं, रेडियो एक ऐसा माध्यम है, जहाँ आज तक दादी-नानी की कहानियाँ सुनाई दे सकती हैं। आकाशवाणी और निजी रेडियो में हालाँकि बहुत फर्क है। आकाशवाणी ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि सांस्कृतिक मूल्य हमारी आने वाली पीढ़ियों में भी रच बस जाएँ। यदि हम बात करें टेलीविजन की तो उसने हमारी संस्कृति को काफी सहेज कर रखा है। इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि सांस्कृतिक मूल्य हमारी आनेवाली पीढ़ियों तक चलें। सुनने में शायद यह थोड़ा अजीब लगे, क्योंकि आज टेलीविजन और सिने दुनिया कुछ बदल रही है, लेकिन आज भी कुछ ऐसे कार्यक्रम हैं, जो बच्चों को हमारी संस्कृति और समृद्ध परंपराओं से रूबरू कराते हैं।

कुछ पत्रिका हैं, जिसने बच्चों के विकास और सांस्कृतिक उत्थान में अतुलनीय कार्य किया है। आधुनिकता का समावेश करते हुए इस पत्रिका ने भारतीय लोक कथाओं, पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं पर जो कुछ भी प्रकाशित किया, उसकी बालमन पर एक अमिट छाप रही है। यह है चंदा मामा। वर्ष 1947 में इस पत्रिका की स्थापना दक्षिण भारत के नामचीन फिल्म निर्माता बी. नागी रेड्डी ने की थी। इसमें उनके मित्र चक्रपाणी संपादक बने। वर्ष 1975 से नागी रेड्डी के पुत्र विश्वनाथ इसका संपादन करते रहे हैं। मार्च, 2007 में मुंबई स्थित सॉफ्टवेयर कंपनी जीयोडेसिक ने पत्रिका समूह का अधिग्रहण कर लिया। जुलाई 2008 में समूह ने अपनी वेबसाइट पर हिंदी, तमिल व तेलगु में पत्रिका के पुराने अंक उपलब्ध कराने शुरू कर दिए। चंदामामा अपनी बहुरंगी सामग्री से वर्षों से भारत के बच्चों को लुभा रही है और उन्हें हमारी संस्कृति से रूबरू करा

रही है। रोचक कहानियों के माध्यम से यह पत्रिका जिंदगी जीने का फलसफा भी बच्चों को सिखाती है।

भारतीय टेलीविजन के इतिहास में रामानंद सागर ने भी एक महान् कार्य किया है। उन्होंने टी.वी. सीरियल रामायण के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का संदेश जन-जन तक पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। भारतीय टेलीविजन में रामायण एक बहुत ही सफल टी.वी. कार्यक्रम रहा है। प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथ रामायण का टी.वी. रूपांतरण है और मुख्यतः वाल्मीकि रामायण और तुलसीदासजी की रामचरितमानस पर आधारित है। रामायण के सारे चरित्र अपने धर्म का पालन करते हैं। रामायण से हमारी पीढ़ियों और खासतौर पर बच्चों को जो शिक्षा मिली है, उसका दूसरा उदाहरण देखने को नहीं मिलता है।

बी.आर. चोपड़ा निर्देशित 'महाभारत' का जिक्र नहीं किया जाए तो यह न्यायसंगत नहीं होगा। महाभारत और रामायण इन दोनों ने भारतीय जनमानस को अपनी धर्म संस्कृति और अध्यात्म से सीधा जोड़ा था। जनमानस के स्मृति पटल पर हमारे इतिहास और संस्कृति की अमिट छाप कोई और नहीं छोड़ पाया है, जैसी कि इन दोनों टी.वी. सीरियलों ने छोड़ी। इसके अलावा चाणक्य, चंद्रगुप्त, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे टी.वी. सीरियल हमारे गौरवशाली इतिहास और संस्कृति हस्ताक्षर हैं। इसके अतिरिक्त देवी-देवताओं पर भी अनेक सीरियल बने, जो काफी लोकप्रिय रहे हैं।

भारतीय संस्कृति व परंपराओं के प्रचार-प्रसार में हिंदी सिनेमा का योगदान भी कम नहीं है। साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण ने इसमें अपनी बड़ी भूमिका निभाई है। हिंदी फिल्मों राष्ट्रीय विमर्श के मुद्दों को लगातार गंभीरता और सहजता से उठाती हैं। भारत की राष्ट्रीय संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन राजनीतिक घटनाचक्र का बैरोमीटर बनकर

हिंदी फिल्मों भारतीय राष्ट्र की मुख्य चिंताधरा का उद्घाटन करती हैं। 1912 में बनी दादा साहब फाल्के की फिल्म राजा हरिश्चंद्र भी साहित्यिक कृति का ही सिनेमाई रूप था, जिसने भारतीय संस्कृति और आदर्शों से लोगों को रूबरू कराया।

फिल्मों ने साहित्य को उन लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की है, जो या तो निरक्षर हैं या लिख-पढ़ नहीं सकते हैं। साहित्यिक कृतियों का सिनेमाई रूपांतरण साहित्य को नई संचारात्मक और संप्रेषण शक्ति प्रदान कर देता है। साहित्य संरचना का मूलाधार भाषा है। साहित्य जब फिल्मी पर्दे पर आता है तो दृश्य उसके केंद्र में होता है। भाषाओं का भूगोल सीमित और दृश्यों का व्यापक होता है। 'तीसरी कसम' फणीश्वरनाथ रेणु की महत्त्वपूर्ण कहानी है। इसी पर बासु भट्टाचार्य ने जब फिल्म का निर्माण किया तो वह गैर हिंदी भाषियों के लिए भी सहजद संप्रेष्य हो उठी।

जनसंचार माध्यमों में संस्कृति का प्रच्छन्न प्रवाह बना रहता है। यही नहीं, हमारी संस्कृति और हमारे समुदायों की चुनौतियाँ, संघर्ष-सपनों और चाहतों को भी विश्व फलक पर पहुँचाया है। देश दुनिया में लोगों को भारत की समृद्ध परंपराओं और संस्कृति को जीवंत करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रही है। हमारे जनसंचार माध्यम साहित्य और संस्कृति का लोकदूत बनकर इसे देश-दुनिया में प्रतिष्ठित करने की दिशा में निरंतर अग्रसर हैं। पर आज आवश्यकता इस बात की भी है कि हमारे जनसंचार माध्यमों से क्या दिखाया जा रहा है, क्या पढ़ाया जा रहा है? इसका ध्यान रखा जाए कि दिशाहीन नहीं हो। भटके नहीं। पर इनकी स्वतंत्रता का पूरा ध्यान भी रहे।

□

वरिष्ठ संपादक
 'राजस्थान पत्रिका' समूह
 जयपुर, (राज.)

संचार माध्यम और हिंदी

—श्री दुष्यंत कुमार राय

भारत को आजाद हुए साठ वर्ष होने को आए। स्वतंत्र भारत में हिंदी की प्रगति क्रांतिकारी रही है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान ही हमारे राष्ट्र के पुरोधा चाहते थे कि कम-से-कम एक ऐसी भाषा हो जो पूरे देश में बोली और समझी जाती हो। ऐसी भाषा, जो भारत को एक राष्ट्र के रूप में सामाजिक-सांस्कृतिक एकता दे। ऐसे में देश के लगभग सभी भागों के लिए हिंदी ही एक सर्व समर्थ भाषा के रूप में सामने आई। यह एक ऐसी भाषा थी जो भारत की बहुत बड़ी आबादी और इलाकों में बोली और समझी जाती थी। जन-सामान्य की इससे जुड़ी भावना राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत थी। अतः राष्ट्र के तत्कालीन नियंताओं ने संपर्क भाषा के रूप में हिंदी को प्रोत्साहित किया। यह हिंदी, संस्कृत-उर्दू के मिश्रित प्रभावों से युक्त थी। हिंदी का लगभग वैसा ही रूप अभी तक संपर्क भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। समय के साथ इस भाषा के मानकीकरण के अनेकों कदम उठाए गए हैं और उर्दू के प्रभाव को कम किया गया है। यद्यपि कोर्ट-कचहरी में उर्दू का प्रभाव अभी भी जारी है, संपर्क भाषा के रूप में मानकीकृत हिंदी अब व्यापक रूप से प्रचलित हो गई है। इसमें स्वतंत्रता आंदोलन के साथ चलनेवाली हिंदी पत्रकारिता का बहुत योगदान है।

हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग में स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'हरिश्चंद्र मैगजीन' व 'चंद्रिका' से लेकर प्रताप नारायण मिश्र के पत्र 'ब्राह्मण' तक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की एक अक्षुण्ण शृंखला चलती रही जिससे संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग बढ़ा। बाद के समय में भी यह सिलसिला जारी रहा और महावीर प्रसाद द्विवेदी (सरस्वती), निराला (मतवाला), प्रेमचंद (हंस), बालमुकुंद गुप्त (शिवशंभू के चिट्ठे) जैसे लोकप्रिय साहित्यकारों ने हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के साथ हिंदी का प्रचार-प्रसार जारी रखा।

यह संयोग की ही बात है कि जिस तरह भक्ति आंदोलन दक्षिण से उपजकर उत्तर तक फैला और संपूर्ण राष्ट्र को सांस्कृतिक एकता में बाँध गया, ठीक उसी प्रकार हिंदी भी 'दक्खिनी' के रूप में दक्षिण भारत से उपजकर उत्तर, पूर्व तक फैल गई। लगभग सन् 1930 से ही दक्षिण भारत के प्रदेशों—कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु में हिंदी के प्रचार-सभा की अनेक शाखाओं ने हिंदी का प्रसार शुरू कर दिया था। सन् 1952 से दक्खिन के विश्वविद्यालयों में हिंदी पर शोध-कार्य शुरू हो गया था। आंध्र प्रदेश से कई नामचीन हिंदी पत्रिकाएँ निकलीं—'कल्पना', 'दक्षिणी भारती', 'अंजना' का इसमें मुख्य स्थान था। हिंदी के प्रसार के लिए अनेक नाटक मंडलियों

का भी आयोजन किया गया। इन सबका उद्देश्य हिंदी का संपर्क-भाषा के रूप में अधिकाधिक प्रसार करना था। 'वृंदावन नाट्य' मछलीपट्टनम में एलूर, भीमावरम में 'हिंदी प्रेमी नाट्य-समाज', चित्तूर, विजयवाड़ा में हिंदी नाट्य मंडली अभी तक हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में प्रसरित करने में

महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। तमिलनाडु की राजधानी (तत्कालीन नाम) मद्रास में गोखले हॉल में महात्मा गांधी के पुत्र देवदास गांधी, एनी बेसेंट, सर पी.वी. रामास्वामी अय्यर आदि के नेतृत्व में हिंदी प्रसार का काम शुरू हुआ। 1937 में राजगोपालचारी के आ जाने से हिंदी के प्रसार का काम तेजी से चलने लगा।

हिंदी की संपर्क-शक्ति की ताकत दक्षिण के

अलावा अन्य हिंदीतर प्रदेशों में भी जमकर विकसित हुई। गुजरात विद्यापीठ, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा, पुणे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, सौराष्ट्र, राजकोट, मुंबई, हिंदी विद्यापीठ देवधर, ओडिया राष्ट्र भाषा परिषद् आदि कई संस्थानों की स्थापना की गई। इन सभी के समवेत सार्थक प्रयासों से हिंदी जन-जन, गाँव-गाँव में संपर्क-भाषा के रूप में विकसित होती गई। यह हिंदी का ऐसा क्रांतिकारी आंदोलन था जो सरकारी व गैर-सरकारी, दोनों स्तर पर हुए प्रयासों से आगे बढ़ता गया। सन् 1960 में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना की गई। निदेशालय ने विज्ञान, इंजीनियरिंग और चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में लाखों की संख्या में तकनीकी शब्दों को प्रचलित किया। सी.एस.आई.आर. (Council of

Scientific and Industrial Research) ने अपने प्रयोगों को हिंदी में प्रकाशित करना शुरू कर दिया। 'विज्ञान-प्रगति', 'अनुसंधान-पत्रिका', 'रसायन-समीक्षा' आदि कई पत्रिकाएँ हिंदी में निकलने लगीं। स्थानीय स्तर पर विज्ञान, तकनीकी के साथ ही हिंदी भी लोकप्रिय होने लगी।

टेलिविजन और सिनेमा गाँवों में भी तेजी से भाषा की स्वीकार्यता को बढ़ा रहे हैं। विज्ञापन की दुनिया में भी व्यापक जन-पहुँच के लिए हिंदी का महत्त्व बढ़ गया है। मनोरंजन के माध्यमों-सिनेमा, नाटक आदि में उपलब्ध अंग्रेजी सामग्री हिंदी में अनूदित होकर अब बाजार में उपलब्ध है और ई-लोकप्रियता भी। विशेष रूप से हॉलीवुड की फिल्मों अब बड़ी मात्रा में हिंदी में डब होकर रिलीज हो रही हैं।

विदेशों में भी हिंदी संपर्क भाषा के रूप में फल-फूल रही है। विश्व के 236 विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई विधिवत् हो रही है। विश्व के लगभग 100 देशों में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जा रही है। मैनचेस्टर विश्वविद्यालय में हिंदी पीठ की स्थापना हुई है। त्रिनिदाद, चिली, पुर्तगाल, जिम्बाब्वे, नामीबिया, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, कीनिया, ब्रिटेन,

फ्रांस तथा स्विट्जरलैंड आदि देशों में हिंदी मिशन विश्वविद्यालय स्तर सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। इस मिशन ने अपने अनुभवों को निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें कहा गया है कि हिंदी को प्रायः सभी देशों में आदर और आत्मीयता प्राप्त है। ये सभी देश हिंदी के द्वारा भारत से जुड़ना चाहते हैं। साथ-ही-साथ, उन्होंने अपने निष्कर्ष में यह भी कहा कि यदि भारत में हिंदी के प्रति आत्मीयता नहीं बढ़ाई गई तो विदेश में भी हिंदी के प्रति सम्मान नहीं बढ़ेगा।

एक समर्थ संपर्क-भाषा के रूप में हिंदी के विकास की इस ऐतिहासिक यात्रा का अगला पड़ाव हिंदी के अस्मिता के विमर्श का है। भाषा की अस्मिता अब बाजार और तकनीकी के दोहरे

द्वंद्व में उलझकर रह गई है। यह सच है कि बाजार की स्वीकार्यता और राजनीतिक प्रोत्साहन भाषा के विकास को ताकत देते हैं। इसी के कारण भाषा रोजगार देने की क्षमता पाती है और सम्मान अर्जित करती है।

रेडियो, टी.वी. और कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करना अब सरल होता जा रहा है। कृतिदेव, मंगल, यूनीकोड आदि हिंदी फॉण्ट के प्रचलन से हिंदी में कार्य करना सुविधाजनक हो गया है। स्मार्ट फोन जैसे आधुनिक उपकरणों में इनबिल्ट हिंदी भाषा के फॉण्ट दिए जा रहे हैं। इन कारणों से इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों पर हिंदी तेजी से लोकप्रिय हो रही है। विभिन्न अखबार, पत्रिकाएँ और पुस्तकें अब कंप्यूटर और मोबाइल पर अब हिंदी में पढ़ने और डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं। बाजार में हिंदी अपनी पैठ बढ़ा रही है, इस बात में भी अब कोई संदेह नहीं रह गया है।

टेलिविजन और सिनेमा गाँवों में भी तेजी से भाषा की स्वीकार्यता को बढ़ा रहे हैं। विज्ञापन की दुनिया में भी व्यापक जन-पहुँच के लिए हिंदी का महत्त्व बढ़ गया है। मनोरंजन के माध्यमों—सिनेमा, नाटक आदि में उपलब्ध अंग्रेजी सामग्री हिंदी में अनूदित होकर अब बाजार में उपलब्ध है और ई-लोकप्रियता भी। विशेष रूप से हॉलीवुड की

फिल्में अब बड़ी मात्रा में हिंदी में डब होकर रिलीज हो रही हैं। वहाँ के कलाकारों की हिंदी में रुचि बढ़ी है। इस सबके बीच हिंदी के स्वरूप में भी बाजार के अनुसार विकृति आ गई है। अंग्रेजी और हिंदी के मिश्रण से बनी 'हिंग्लिश' प्रचलित हो गई है। बोलचाल में इसका इस्तेमाल बढ़ रहा है। यह प्रवृत्ति हिंदी को नुकसान पहुँचा रही है और अंग्रेजी को मजबूत कर रही है। यह एक विचारणीय बिंदु है, इस पर पर्याप्त ध्यान रखने की जरूरत है। क्या यह हमारे अतीत से उपजा पुराना दास-बोध तो नहीं है जो नए कलेवर में सामने आ रहा है? प्रसिद्ध लेखक गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में लिखा है, "जब तक भारतीय संसद में बहसें अंग्रेजी में होती रहेंगी, तब तक समझ लीजिए भारत पूर्ण रूप से आजाद नहीं हुआ।" इसलिए भारत के हर नागरिक को कर्तव्यनिष्ठा और आत्मविश्वास से हिंदी को अपनाना चाहिए। मात्र इसी एक उपाय से भारत की राष्ट्रीय चेतना सुदृढ़ और तेजस्वी बन सकेगी, भारत एक बार पुनः विश्व गुरु के गरिमापूर्ण आसन पर सुशोभित हो सकेगा।

□

राजभाषा सलाहकार,
रेलमंत्रालय
564/1 नई दिल्ली

‘मेरा यह सुचिंतित मत है, जिस रूप में अंग्रेजी की शिक्षा यहाँ दी गई है, उससे अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिंदुस्तानी कमजोर हो गए हैं। इस पद्धति ने भारतीय छात्रों की स्नायविक ऊर्जा पर भयानक दबाव डाला है तथा हम सबको नक्काल बना दिया है। कोई भी जाति नक्कालों की कौम पैदा करके बड़ी नहीं हो सकती। अगर किसी बहाने अंग्रेजी हमारे यहाँ दो दिन के लिए भी घर कर जाती है तो भावी संतति के भाल पर कलंक का टीका हम मढ़ेंगे, जिसे धोना सदा के लिए असंभव हो जाएगा। अंग्रेजी से हिंदी में परिवर्तन के लिए हमें कुछ समय चाहिए, यह कहना मानसिक शिथिलता के सिवा और कुछ नहीं है।’

—महात्मा गांधी

दक्षिण भारत में हिंदी का प्रसार

—श्री. एस. जयराज

यह निर्विवाद सत्य है कि भाषा अभिव्यक्ति एवं विचार विनिमय का साधन है। यह विचार-विनिमय विश्व की किसी भी भाषा में संभव हो सकता है। परंतु भाषा की भूमिका यही पर समाप्त नहीं होती, क्योंकि यह केवल भावों और विचारों की संप्रेषिका ही नहीं, बल्कि वह अपने समाज एवं संस्कृति की संवाहिका भी होती है। इसलिए अगर हम यह कहें कि भाषा अपने समाज के व्यक्तित्व से अभिन्न होती है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इतना ही नहीं, बल्कि भाषा समाज का अनुभव एवं चिंतन रूप होता है। अगर कोई भाषा सामाजिक अनुभव के अथवा चिंतन के स्तर पर समृद्ध है, तो समझ लेना कि उस भाषा में उस समृद्धि को वहन करने की क्षमता अवश्य है। इसी विचार को डॉ. रघुवंश जी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—‘भाषा अपने सहज रूप में अपने समाज को जोड़ती है, धारण करती है, साथ ही हर प्रकार के जीवन स्तर को धारण करती हुई अभिव्यक्त भी करती है’।

विश्व के सभी देशों में किसी-न-किसी सर्वस्वीकृत भाषा की प्रतिष्ठा दिखाई देती है। यह स्वाभाविक भी है कि हर भाषा के अनेक रूप क्षेत्रीय स्तर पर परस्पर भिन्नता लेकर प्रचलित होते हैं और उनमें से ही कोई एक रूप सर्वाधिक प्रचलित होकर समाज द्वारा स्वीकृत होकर राजभाषा और राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त कर संपूर्ण राष्ट्र द्वारा स्वीकृत हो जाती है। भाषा की यह सहज ग्राह्यता राष्ट्रीय एकता की

निशानी बन जाती है। साथ ही राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधकर उसकी प्रगति का पथ प्रशस्त करती है। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि भारत बहुभाषी देश है। इसके विभिन्न भागों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। प्रत्येक भाषा अपने-अपने क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक विरासत का संरक्षण एवं संवर्द्धन करने में समर्थ है। बात स्पष्ट है कि संपूर्ण देश की सांस्कृतिक ऐतिहासिक विरासत के सम्यक संवहन हेतु किसी एक सर्वमान्य भाषा की महती आवश्यकता देश में अवश्य रही है। निज भाषा मानव अस्मिता की पहचान है। भाषा मानव की सतत साधना का नवनीत होती है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के पास भारत देश में अपना सार्वजनिक जीवन आरंभ करने से पूर्व दक्षिण अफ्रीका में बिताए हुए बीस वर्ष के अनुभव की जमा पूँजी उनके पास थी। इसलिए सन् 1915 में भारत लौटकर उन्होंने एक वर्ष तक भारत भ्रमण किया। तब हिंदीतरभाषी-क्षेत्रों में अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से गांधीजी चिंतित हुए, क्योंकि गाँधी जी का विचार था कि अगर कोई भाषा कमजोर है, तो उसका सीधा अर्थ है कि उस भाषा का प्रयोग करनेवाली जाति, उसका चिंतन, रहन-सहन और इतिहास कमजोर है। इसलिए दक्षिण के सभी चार समृद्ध भाषाओं का भविष्य सुरक्षित करने के लिए ही गाँधीजी ने दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार पर जोर दिया। इसी उद्देश्य से दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की। महात्मा गांधीजी ने



स्पष्ट कहा था कि “जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं”। 15 अक्टूबर, 1917 ई. को भागलपुर में ‘बिहार छात्र सम्मेलन’ की अध्यक्षता करते हुए गाँधीजी ने कहा था—‘मातृभाषा का अनादर माँ के अनादर के समान है। जो मातृभाषा का अपमान करता है, वह देशभक्त कहलाने लायक नहीं है। यदि हम मातृभाषा की उन्नति नहीं कर सके और हमारा सिद्धांत रहे कि अंग्रेजी के जरिए हम ऊँचे विचार प्रकट कर सकते हैं तो इसमें जरा भी शक नहीं कि हम सदा के लिए गुलाम रहेंगे।’ यहाँ पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत की स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय एकता की संप्राप्ति के सहयोगी साधनों के रूप में जिन प्रमुख रचनात्मक कार्यक्रमों को अपनाया था उनमें राष्ट्रभाषा का प्रचारप्रसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मद्रास को हिंदी प्रवेश का सिंहद्वार मानकर यहाँ दक्षिण में ‘दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा’ को स्थापित किया।

सन् 1918 मार्च महीने में हिंदी साहित्य सम्मेलन (स्थापना सन् 1910) का वार्षिक अधिवेशन इंदौर में हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता गाँधीजी ने ग्रहण की और इसी के फलस्वरूप हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में दक्षिण भारत में प्रचार करने का कार्य आरंभ किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में हिंदी को एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक सम्मेलन का उद्देश्य उत्तर भारत की जनता में हिंदी भाषा के प्रति प्रेम बढ़ाना मात्र था। हिंदी अखिल भारतीय अंतर प्रांतीय व्यवहार की भाषा बन सकती है, इसकी कल्पना नहीं थी। यह नई दृष्टि महात्माजी ने उसे दी और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का प्रचार करने का अनुरोध किया। दक्षिण में हिंदी प्रचार का उद्देश्य प्रथमतः दक्षिणवासियों को हिंदी भाषा सीखने, लिखने और बोलने का प्रशिक्षण देना, उसकी समुचित जानकारी प्राप्त कर विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के साथ संपर्क बढ़ाना, राष्ट्रीय चेतना को दृढ़ करना, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान

करना आदि रहा है। फलस्वरूप दक्षिण के उत्साही देश-प्रेमी युवकों का ध्यान हिंदी की ओर आकृष्ट हुआ और हिंदी सीखने की इच्छा प्रकट करते हुए गांधीजी से प्रार्थना की कि हिंदी सिखाने के लिए एक सुयोग्य अध्यापक को दक्षिण में भेजें। तब गाँधीजी ने अपने सबसे कनिष्ठ 18 वर्षीय युवा पुत्र देवदास गांधी को मद्रास भेजा। उनके द्वारा 17 जून, 1918 के दिन पहला हिंदी वर्ग चेन्नई (तत्कालीन मद्रास) के गोखले हॉल में चलाया गया, जिसका उद्घाटन डॉ. एनीबेसेंट ने किया था। दक्षिण में धीरे-धीरे हिंदी प्रचार का क्षेत्र विस्तृत होता गया। हिंदी प्रचारकों की माँग भी बढ़ती गई। इसे पूर्ण करने के लिए हिंदी को समर्पित संस्था ‘दक्षिण भारत हिंदी सभा’ की स्थापना हुई।

इस वर्ष (2018) दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, शतमानोत्सव-शताब्दी वर्ष मना रही है। सौ वर्ष की ऐतिहासिक यात्रा में सभा के चारों केंद्रों के पल्लवन में कई निवर्तमान एवं वर्तमान हिंदी प्रचारक, अधिकारी, पदाधिकारी, प्राध्यापक एवं प्रोफेसरों का स्मरणीय योगदान रहा है। वर्तमान में सभा के अध्यक्ष न्यायमूर्ति शिवराज वी. पाटील, कुलाधिपति श्री. एच. हनुमंतप्पा, उपाध्यक्ष श्री. ए.पी.सी.वी. चोक्कलिंगम, समकुलपति श्री. आर.एफ़. नीरलकट्टी कार्यरत हैं।

सभा की कार्य दिशा जितनी हिंदी के प्रचार-प्रसार की है, उतनी ही साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ भारतीय भाषाओं के बीच सेतु बनाने की भी। सभा की संरचना में यह प्रशंसनीय है कि तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम मूल के अहिंदीभाषी अधिकारी एवं पदाधिकारी सभा का संचालन कर रहे हैं।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का अपना सूत्र वाक्य है— “एक राष्ट्रभाषा हिंदी हो—एक हृदय हो भारत जननी।”

□

प्रधान सचिव,
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास टी. नगर,
चेन्नई-600 017

खंड : अष्टम
स्मरणिका

देशज-चिंतन और लोकमन के अध्येता—अनिल माधव दवे

— श्री रजनीश अग्रवाल

दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल (10-12 सितंबर, 2015) के सफल आयोजन के समर्पित मुख्य नियोजक श्री अनिल माधव दवे (पूर्व केंद्रीय मंत्री एवं राज्यसभा सदस्य) का तिरोधान हिंदी की अपूरणीय क्षति है। श्री दवे का पुण्य स्मरण।

—संपादक

“सभी मुझे भाषा व लेखन दोष के लिए क्षमा करें”... ‘यह वाक्य किसी वक्ता के उद्बोधन का नहीं है’; यह किसी पुस्तक में लिखे गए किसी वक्तव्य का अंश भी नहीं है। यह हमारी कल्पना से भी परे जाकर एक वसीयत का है, अंतिम इच्छा का है। अनिलजी की वसीयत का अंतिम वाक्य यही था। वसीयत में लिखे इस वाक्य को ही मैं उद्धृत कर रहा हूँ। वसीयत में लिखी गई बातें व्यक्ति के अंतर्मन के निर्णयों की अभिव्यक्ति होती हैं। कतिपय वसीयत के लेखन में बुद्धि का कम और भावनाओं का अधिक प्रभाव होता है। दरअसल वे उज्जैन जिले के बड़नगर में जनमे, लेकिन उनकी प्रांरिभक शिक्षा-दीक्षा गुजरात में हुई। गुजराती के प्रभाव के कारण हिंदी लेखन में कई बार मात्राओं और व्याकरण की सामान्य गलती जो कई बार हिंदी क्षेत्रों के निवासियों से भी हो जाती है, उनसे भी हो जाती थी। उनके वसीयत में लिखे इस वाक्य और इच्छा के पीछे भाषा के प्रति उनकी अपनी प्रतिबद्धता और सम्मान दिखाई देता है। वे हिंदी को माँ के रूप में ही देखते थे। वे कहते थे कि भाषा के साथ उसकी अपनी संस्कृति होती है।

अनिलजी लंबे समय तक ‘चरैवेति’ पत्रिका

के संपादक रहे। अपने एक संपादकीय में हिंदी दिवस पर हिंदी को संबोधित करते हुए उन्होंने लिखा—‘देख माते! मैं तो एक कार्यकर्ता हूँ; इतना जानता हूँ कि सत्ता का सुख पाने की चाह एक साधारण इच्छा है, सबमें होती है पर उसका संचालन और उसमें भी आपदाओं व समस्याओं को सँभालने एवं सुलझाने का सामर्थ्य एक असाधारण गुण है, जो भगवान के यहाँ खैरात में नहीं, पुरस्कार में मिलता है। हिंदी और हिंदुस्तान का जो रायता इन मानसपुत्रों ने ढोला है, वह कब सिमटेगा, ये तो भगवान् को ही मालूम है, अगर वो मिले तो पूछकर बताऊँगा।’



अनिलजी मौलिक चिंतक थे, लेकिन उनकी प्रेरणा विशुद्ध देशज थी। वे भारत को भारतीयता के आधार पर ही चलने देने के पुरजोर आग्रही थे। उन्होंने हिंदुत्व या एकात्म मानववाद या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को अलग-अलग आयामों में, जीवन के विविध पक्षों में सिद्ध करने में स्वयं को खपाया। उनके जाने के बाद उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर जब हम नजर

डालते हैं, तो उसके पीछे एक समग्र दृष्टिकोण, गहरा विचार और उसको साकार करने का सामर्थ्य दिखाई पड़ता है।

स्वर्गीय दादा बट्टीलाल दवे के सुपौत्र और स्वर्गीय श्री माधवलाल दवे के बेटे अनिलजी का बचपन न अभावों में बीता, न प्रभावों में पला। संघ के संस्कार शैशवकाल से उनको विरासत में मिले। पिता की सरकारी नौकरी के कारण उनका विद्यालयीन समय गुजरात के सौराष्ट्र में निकला, इंदौर में उनकी महाविद्यालयीन पढ़ाई हुई। इंदौर के गुजराती कॉलेज में छात्र संघ अध्यक्ष चुने गए। छात्र राजनीति के उस दौर में उन्होंने अपनी साख बनाई। सबको अपना बना लेने और सबको अपना लगने का भाव, वे बना दिया करते थे। संघ से संपर्क, स्वयंसेवक से प्रचारक तक की यात्रा में उन्होंने लगातार विचार की भव्यता और दिव्यता को संपादित करने का प्रयास किया। प्रचारक रहते हुए युगानुकूल परिवर्तन, अद्यतन तकनीक का उपयोग, नवाचार के हामी और किसी भी परिस्थिति में विचारधारा के साथ कोई समझौता नहीं करना, उनकी अपनी जीवन-शैली रही।

यूँ तो उन्होंने छोटी-बड़ी कई पुस्तकें भी लिखीं, लेकिन उनकी कुछ पुस्तकें समाज को बड़ी देन बन गईं। वे हिंदू संस्कारों को आज के युग में भी प्रतिपादित करनेवाले रहे। उन्होंने हिंदू संस्कारों पर 'सृजन से विसर्जन तक' पुस्तक लिखकर आधुनिक जीवन-शैली में जीते हुए हिंदू संस्कारों के अनुपालन की सहज विधा सुझाई। देश-विदेश में संस्कारों पर उन्होंने व्याख्यान भी दिए। शिवाजी एक योद्धा के रूप में तो सबको आकर्षित करते हैं, लेकिन अनिलजी को शिवाजी में एक सुशासक दिखाई पड़ता था। लंबे अन्वेषण और स्पष्ट दृष्टि के कारण शासन संचालन के नियम-धर्म को शिवाजी के शासनकाल के प्रसंगों और तथ्यों के साथ अपनी पुस्तक 'शिवाजी और सुराज' में लिपिबद्ध किया, जो देशकाल से परे किसी भी शासक के लिए हर परिस्थिति में मार्गदर्शी बन गई। शासन संचालन के बारे में उनके अपने मत शिवाजी के सहारे अभिव्यक्त

हुए हैं। यही कारण रहा कि वे जब केंद्र सरकार में पर्यावरण मंत्री बने तो कम समय में ही उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ दी। संयुक्त राष्ट्र संघ से संबद्ध संस्था ने उन्हें पर्यावरणीय मामलों में राजनैतिक नेतृत्व के लिए 'ओजोन अवॉर्ड' से सम्मानित किया। दुनिया के तमाम देशों के बीच होनेवाली वार्ताओं, सम्मेलनों, सेमिनारों में आत्मविश्वास से भरे दृढ़ निश्चयी भारत-केंद्रित निर्णय कराने में उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही है। पर्यावरण के प्रति उनका चिंतन शुद्ध सनातनी चिंतन रहा। इस कारण वे अपने निर्णयों को कराने में संकोच और हिचक नहीं करते थे। जब वे दुनिया के मंचों पर इस चिंतन को संदर्भ और प्रसंगों के साथ प्रतिपादित करते थे, तो कई छोटे-बड़े देश उनके साथ हो लेते थे। उनके कार्यकाल के दौरान हुई ऐसी कॉन्फ्रेंस या वार्ता के परिणाम उदाहरण हैं। स्वतंत्र भारत की राजनीति में दीनदयालजी ने पर्यावरण के सरोकारों को रखा था।

यूँ तो दलगत राजनीति में वे सीधे तौर पर 2004 में आए, लेकिन 2003 विधानसभा चुनाव प्रबंधन में उनकी भूमिका अविस्मरणीय रही। यहाँ उल्लेख करना इसलिए उचित है क्योंकि दलगत राजनीति के दलदल में भी उन्होंने कभी सामाजिक मूल्यों के साथ समझौता नहीं किया। कार्यकर्ता भाव को उकेरना, सँवारना और उसी का ही रंग देना उनके चुनाव प्रबंधन की अद्वितीय कला थी। शांत चित्त और गांभीर्य शैली में वे आज की राजनीति के हर चुनावी दौड़-पेंच का मुकाबला करने में दक्ष थे। उन्होंने अपने पहले चुनावी प्रबंधन कार्यालय का नाम 'जावली' रखा, जो शिवाजी के अफजल से आमने-सामने मुकाबले का स्थान रहा है। इसके बाद विभिन्न राजनीतिक जिम्मेदारियों को निष्कलंक और निष्कपट तरीके से निभाते चले गए। वे समय, काल, परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग स्वरूप में दिखाई जरूर दिए पर उन्होंने कभी स्वयं से समझौता नहीं किया। उनका मानना था कि राजनीति के साथ-साथ स्वयं का अपना कोई सामाजिक कार्य के प्रति सीधा जुड़ाव होना चाहिए। राजनीति के उतार-चढ़ाव के बीच

यह सामाजिक कार्य मन को बाँधे रखता है। सार्वजनिक जीवन की रचनात्मकता नष्ट नहीं होने देता, ध्येय के प्रति अनुराग बनाए रखता है। माँ नर्मदा से उनको अटूट लगाव था। वे अपने राजनैतिक कार्य के साथ-साथ माँ नर्मदा की सेवा में अलग-अलग आयामों के माध्यम से जुटे रहे। उन्होंने 2006 में वायुयान से 1312 कि. मी. की माँ नर्मदा की परिक्रमा की। 2007 में रॉफ्ट के द्वारा जलमार्ग से माँ नर्मदा की परिक्रमा की। माँ नर्मदा से उनका अपना विलक्षण संवाद था। वे कहते थे माँ नर्मदा को छोड़कर मेरे जीवन में अब कुछ कहने के लिए नहीं हैं। उन्होंने प्रख्यात साहित्यकार एवं नर्मदा पुत्र अमृतलाल वेगड़ की अध्यक्षता में ‘नर्मदा समग्र ट्रस्ट’ बनाकर एक नदी से जुड़ी तमाम गतिविधियों की श्रृंखला खड़ी की। नदी के बारे में समग्र विचार की अवधारणा रखी। व्यावहारिक तौर पर उसे नर्मदा के संरक्षण और संवर्धन में किए जानेवाले विभिन्न कार्यों से साकार स्वरूप दिया। नर्मदा व तवा के संगम स्थल पर उन्होंने अंतरराष्ट्रीय नदी महोत्सव की श्रृंखला शुरू की, जहाँ नदियों पर कार्य करनेवाले विभिन्न कार्यकर्ता एक साथ, एक मंच पर जुटकर विचार-विमर्श करने लगे। ‘नर्मदा समग्र’ के माध्यम से काम करते हुए वे नदी की अपनी संपूर्ण अभिव्यक्ति न केवल उसकी जलधारा बल्कि उसके जल-ग्रहण क्षेत्र से लेकर जैव-विविधता, संस्कृति और उसके किनारे बसनेवाले समाज की बात करते थे। इसके पहले नर्मदा उन आंदोलनों के लिए जरूर मुद्दा बनी कि हमें क्या मिला और उसे क्या मिला, लेकिन नर्मदा को देश-दुनिया में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विषय-वस्तु बनाने का श्रेय अनिलजी को जाता है। उनका यह कार्य उनके जाने के बाद जारी है, उनके बनाए और बढ़ाए कार्यकर्ता अब उसे आगे ले जाने का कार्य कर रहे हैं। अनिलजी मानते थे कि यह उनका नहीं समाज का कार्य है और उनकी इसमें अपनी भूमिका है। इसलिए उनके जाने के बाद भी यह कार्य बदस्तूर चलते रहने की व्यवस्था भी अपने रहने के दौरान उन्होंने कर दी। खेती और किसान

के हालात पर वे सीधी और सपाट भाषा में कहते थे कि किसान की समस्या न सरकारी पैसों से, न भाषण से दूर हो सकती है; उसे सच्चे अर्थों में उसकी खेती के बल पर स्वावलंबी बनाना होगा। वे ‘जीरो बजट’ खेती या ऋष-कृषि के अभियान में जुटे थे। स्वयं नर्मदा के तट पर ‘जीरो बजट’ खेती करते और चयनित किसानों को प्रशिक्षित करने में लगे हुए थे। जल, जंगल, जमीन और जानवर के बारे में भारतीय अवधारणा के आधार पर वे लगातार कार्य करते रहे। जब लोग उनसे नर्मदा, यमुना, गंगा के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते तो वे तपाक से कहते थे कि आप अपने गाँव का तालाब ठीक करिए, बाकी की सब समस्याएँ हल होती जाएँगी। ख्यातिनाम राजनेता, देश-विदेशों में व्याख्यान, कई पुस्तकों के लेखक और केंद्रीय मंत्री रहते हुए भी कई बार उन्हें देखने से लगता था कि वे फक्कड़ मिजाज और एक अलहदा व्यक्तित्व के धनी हैं क्योंकि उनको प्रकृति में रमना, संतों से जमना और माँ नर्मदा के समीप आकर ठहर जाना लुभाता था। वे कई बार मंत्री रहते हुए भी राज-प्रासादों की ठसक से दूर समय चुरा-चुराकर माँ नर्मदा के आँचल में आ सिमटते थे। माँ नर्मदा के पास उन्होंने अपना आश्रम ‘शिवनेरी’ बनाया था, जहाँ वे रुका करते थे। शायद शिवनेरी ही उस राजऋषि का निवास हो गया था। जब वे गए तो उनकी अंत्येष्टि उनकी इच्छानुसार उसी बांद्राभान में की गई। अपनी वसीयत में उन्होंने एक मर्यादा बाँध दी थी कि उनके जाने के बाद कोई दिखावा या आडंबर न हो, उनकी स्मृति में न स्मारक, न प्रतियोगिता, न पुरस्कार और न ही उनकी कोई प्रतिमा स्थापित हो। यदि कोई उन्हें स्मरण करना चाहे तो बस इतना करे कि धरती माँ की गोद में एक छोटा सा बीज रोप दे, जो एक-न-एक दिन अपनी शीतलता से पीढ़ियों तक उनका संदेश पहुँचाए।

□

एम-203, ब्लॉक-बी, पं. भीमसेन जोशी परिसर,
 साकेत नगर, सैक्टर-2 सी, भोपाल, (म.प्र.)

...और कारवाँ गुजर गया...

— श्री हरीश नवल

जीवन और साहित्य से जुड़ी अविस्मरणीय रचनाओं के सर्जक श्री गोपाल दास 'नीरज' को हिंदी के युगप्रवर्तक कवि-गीतकार थे। 'नीरज' के अवसान से हिंदी जगत् शोकमग्न है। 'नीरज' को स्मरण-श्रद्धांजलि—

—संपादक

नीरज का जाना एक अप्रतिम गीत विधा का जाना है। 'गीतों के राजकुमार' विशेषण उनके साथ लगता था। गीत को उन्होंने सच्चे अर्थों में जिया था और जिलाया भी था। गीत-रचना की स्वर्ण जयंती भी पार कर चुके थे। लगभग 77 वर्ष ने निरंतर रचते रहे और शनैः-शनैः जन-मानस में बसते रहे। जनप्रिय रचनाकार थे, नीरज, जो साहित्य के गांभीर्य और आम नागरिक के हृदय को छू पाए थे। उनके देहावसान के तुरंत बाद चर्चा छिड़ी की नीरजजी को 'भारत रत्न' प्रदान करना चाहिए और लोकप्रियता लक्षित करते हुए बॉब डिलन और उनको नोबल पुरस्कार मिलने के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे...

...यह विवाद का विषय हो सकता है, परंतु भीतर का सत्य उगलकर यह आया कि नीरज के काव्य को कितना अधिक पसंद किया जाता है। स्टारडम उनके भाग्य में आधी शती पूर्व से ही आ गया था। उनके कवि सम्मेलनों में गाए गीत, पत्रिकाओं में प्रकाशित गीत और हिंदी सिनेमा के रजत-पट के लिए जिसे गीतों ने नीरज को एक घरेलू नाम बना दिया। वे लोकप्रियता के शिखर वैसे ही कायम हुए जैसे बड़ा फिल्म हीरो

अथवा कुशल क्रिकेट खिलाड़ी। उनके हस्ताक्षर लेने को उत्सुक हजारों-हजार हाथ अपनी ऑटोग्राफ बुक में आज भी उनके हस्ताक्षर न पाकर उदास हो रहे हैं।



नीरज यानी गोपाल दास मात्र सोलह वर्ष के थे, जब हरिवंश राय बच्चन की कविता 'निशा निमंत्रण' पढ़कर उनमें कविता रचना की कोंपले फूट पड़ी। तब बच्चन चौतीस वर्ष के थे और लोकप्रियता की सीढ़ियाँ द्रुत गति से चढ़ रहे थे। तब किसे ज्ञात था, वैसी ही लोकप्रियता किशोर गोपाल प्रसाद 'नीरज' को मिलेगी? वे अट्ठारह वर्ष के थे, जब सन् 1939 में उन्होंने अखिल भारतीय कवि सम्मेलन, कोलकता में पहला गीत पढ़ा, 'मुझको जीवन का आधार नहीं मिलता' और यह गीत उनके कवि सम्मेलनीय जीवन का आधार गीत बन गया। देखते-ही-देखते युवा कवि 'नीरज' और कवि-सम्मेलन पर्यायवाची पथ पर अग्रसर होने लगे और 'बच्चन' के साथ-साथ भी उनका गीत कार्य चला।

उल्लेखनीय है कि कतिपय आलोचकों ने 'नीरज' को हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में रखने से इनकार किया। 'नीरज' ने परंतु पग पीछे न हटाए। 'मैं विद्रोही हूँ, जग में विद्रोह करने आया हूँ' को आत्मसात् किया और गीतों में दर्शन का पोषण कर उन्हें पुष्ट किया। तब दिनकर, जो स्वयं भी कवि सम्मेलनों के शोभा-पुरुष थे, 'नीरज' को 'हिंदी काव्य की वीणा' विशेषण से विभूषित किया—

'कितने ही कटुतम काँटे
 तुम मेरे पग में आज बिछाओ
 और अरे चाहकर भी
 धुँधला दीप बुझाओ
 किंतु नहीं मेरे पग ने
 पथ पर बढ़कर फिरना सीखा है
 मैंने बस चलना सीखा है।'

नीरज के गीतों में एक अजब-सी उदास किरण कौंधती है, जिससे उनके गीत अधिक मृदु और ग्राह्य लगते हैं। कहते हैं कि नीरज के उदासत्व के मूल में उनका एकतरफा प्रेम था। उनके गीतों में एक नाम अकसर आता है, जिसकी धारिका के साथ वे प्रेमपाश में थे—

और हम अज्ञान से,
 दूर के मकान से
 पालकी लिए हुए कहार देखते रहे—

उसी के निर्मित लिखी पंक्तियाँ मानी जाती हैं। यह पंक्तियाँ उनके सर्वाधिक प्रसंद गीत 'कारवाँ गुजर गया, गुबार देखते रहे' से हैं। यह गीत उनके फिल्मी सफर का एक यशस्वी गीत है, जिसे 45 वर्ष पूर्व 'नई उमर की नई फसल' में सुना गया था। फिल्म जैसी भी चली, किंतु नीरज के गीत खूब चले। 'देखती ही रहो दर्पण न तुम / प्यार का ये मुहूरत बदल जाएगा' आदि ने तसवीर बदल दी और अलीगढ़ से मुंबई का सफर नीरज का सिने कारवाँ बन गया। उन्हें फिल्म फेयर अवॉर्ड भी मिले और अन्य संस्थाओं के भी। 'मेरा नाम जोकर' में उनका

लिखा गीत 'ऐ भाई जरा देख के चलो' राजकपूर की सबसे पसंदीदा गीतों में था। 'प्रेम पुजारी' और 'शर्मिली' के गीत भी बहुत लोकप्रिय हुए।

वे 19 वर्ष के थे, जब उनका प्रथम गीत-संग्रह 'संघर्ष' प्रकाशित हुआ। अंतर्ध्वनि 'विभावरी', 'प्राणगीत', 'दर्द दिया है', 'बदर बरस गयो', 'कारवाँ गुजर गया' उनके प्रसिद्ध संकलनों में हैं। उनके गीतों में व्याप्त रोमानी तत्व उन्हें यशस्वी बनाते हैं।

गीत लेखन, नौकरी और घर के साथ-साथ नीरज ने प्राइवेट परीक्षाएँ देकर इंटर और बी.ए. के बाद 1953 एम.ए. में हिंदी से किया। ज्ञातव्य हो कि एम.ए. उनकी प्रथम श्रेणी थी, जिसके कारण उन्हें मेरठ कॉलेज में हिंदी प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति मिली। कालांतर में वे अलीगढ़ में धर्म समाज कॉलेज में पढ़ाने लगे और अलीगढ़ ही उनका स्थायी पता बन गया। यहीं से वे देश के विभिन्न भागों में कवि सम्मेलनों में भाग लेने जाते रहे। वे एक कुशल ज्योतिषाचार्य भी थे, यह उनका शौक था। उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष के भी मुरीद अनेक थे।

सम्मान, पुरस्कार नीरज को अंत तक प्राप्त होते रहे। यश और अर्थ उनकी परिक्रमा लगाते रहे। साहित्य, वाचस्पति, विद्यावाचस्पति और मानद डी.लिट्. भी उन्हें प्राप्त हुए। सम्मान और सामान, दोनों की कमी न थी।

19 जुलाई, 2018 को गीतों का यह बेताज बादशाह बीमारी से लड़ते हुए स्वयं 'मृत्यु गीत' हो गया—

'अब आँसू की आवाज न मैं सुन सकता हूँ
 अब देख न सकता मैं कोरी तसवीरों को
 अब चूम न सकता हूँ मैं अधरों की मुसकानें
 अब बाँध न सकता बाँहों की जंजीरों को—
 मेरे अधरों में घुला हलाहल है काला
 नयनों में नई मौत खड़ी मुसकाती है
 है राम नाम की सत्य-असत्य और सब कुछ
 बस यही ध्वनि कानों से टकराती है

□

मॉरीशस हिंदी साहित्य में 'अभिमन्यु अनत' युग

—डॉ. कमल किशोर गोयनका

मॉरीशस के श्री अभिमन्यु अनत, विख्यात हिंदी साहित्यकार थे। उनके निधन से हिंदी जगत शोकमग्न है। अभिमन्यु अनतजी की रचनाधर्मिता और व्यक्तित्व का स्मरण : भारत से हिंदी विद्वान डॉ. कमल किशोर गोयनका और मॉरीशस से साहित्यकार श्रीमती सरिता बुधू।

—संपादक

आज मॉरीशस के विश्वविख्यात साहित्यकार अभिमन्यु अनत हमारे बीच नहीं हैं पर उनका स्मरण एक कृतिजीवी जीवन का स्मरण है। मॉरीशस में हिंदी पत्रकारिता एवं साहित्य-रचना का इतिहास लगभग सौ वर्ष पुराना है और इस कालखंड में सूर्यप्रसाद मंगर भगत, बुजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', वासुदेव विष्णु दयाल, जयनारायण राय, मोहनलाल मोहिते, सोमदत्त बखोरी, मुनीश्वर लाल चिंतामणि आदि धर्म-साहित्य के क्षेत्र में जाने-पहचाने नाम हैं, परंतु अभिमन्यु अनत के कृतित्व से हिंदी मानस एवं साहित्य में मॉरीशस की विशिष्ट पहचान बनी है। अभिमन्यु अनत अपने देश की सीमाओं को पार कर भारत एवं भारतेतर देशों में अपने देश के सबसे सशक्त हिंदी साहित्यकार बनकर अपने देश के प्रतीक बन गए। अनत के कुछ समकालीन लेखकों ने भी साहित्य-साधना की है, परंतु अभिमन्यु अनत जैसी बहुमुखी प्रतिभा, साहित्य एवं जीवन में एकरूपता, अस्मिता एवं

संस्कृति की रक्षा का युद्ध, सत्ता से जुझारू संघर्ष, आम आदमी के सुख-दुःख के प्रति इतनी कठोर प्रतिबद्धता, देश के समकालीन एवं युवा लेखकों की पीढ़ी को



सहयोग, विश्व-मंच पर प्रतिष्ठा तथा भारत में लोकप्रियता किसी अन्य हिंदी साहित्यकार ने इतने ठोस रूप में अभी तक नहीं प्राप्त की थी। अभिमन्यु अनत की लगभग पाँच दशकों तक निरंतर साहित्य-साधना तथा इक्कीसवीं शताब्दी के आगमन तक साहित्य रचना में प्रवृत्त रहना भी उनके वैशिष्ट्य का प्रमाण है। वे मॉरीशस के एकमात्र ऐसे हिंदी साहित्यकार भी हैं, जिनकी अभी तक सबसे अधिक हिंदी पुस्तकें (32 उपन्यास, 5 कहानी-संग्रह, 5 नाटक, 4 कविता-संग्रह, 3 जीवनी, 1 अनुवाद, 4 संपादकीय ग्रंथ, एक प्रतिनिधि संकलन तथा लगभग 10 कृतियाँ प्रकाशनार्थ प्रकाशित हुई हैं।

अभिमन्यु अनंत मॉरीशस के हिंदी साहित्य के इतिहास में एक संपूर्ण युग है। वह एक नए युग का शुभारंभ भी करता है और इस नए युग को विभिन्न दिशाओं में विकासमान बनाते हुए मॉरीशस से बाहर अपने देश के हिंदी साहित्य को प्रतिष्ठित, प्रचारित और सम्मानित कराता है। यह मॉरीशस के हिंदी साहित्य का 'अभिमन्यु अनंत युग' है। मॉरीशस के हिंदी साहित्य के इतिहास में अभिमन्यु अनंत को उचित स्थान देने की माँग सबसे पहले मॉरीशस के राजेंद्र अरुण (भारतीय नागरिक, परंतु अब मॉरीशस के नागरिक) ने अपने एक लेख में की थी जो डॉ. श्यामधर तिवारी के शोध-प्रबंध—'अभिमन्यु अनंत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' की समीक्षा के रूप में लिखा गया था। यह लेख सन् 1985 'वसंत' पत्रिका के वर्ष 7, अंक 43 में प्रकाशित हुआ था।

अभिमन्यु अनंत से मेरा संपर्क सन् 1980 से है, जब मैं 'हिंदी प्रचारिणी सभा' द्वारा आयोजित 'प्रेमचंद शताब्दी समारोह' में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में, जैनेंद्रजी के साथ मॉरीशस गया था। दिल्ली में मैंने 'प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति' बनाई थी और मैं उसका संस्थापक-महासचिव था तथा जैनेंद्रजी इसके अध्यक्ष बने। महासचिव के रूप में मैंने देश-विदेश में 'प्रेमचंद शताब्दी समारोह' मनाने के लिए अनेक संस्थाओं को पत्र लिखे थे। मॉरीशस की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने हमारे प्रस्ताव का स्वागत किया और भव्य कार्यक्रम हुआ। इस अवसर पर मैं अभिमन्यु अनंत से मिला तथा उनकी माताजी के भी दर्शन किए। इस यात्रा ने मुझे स्थायी रूप से मॉरीशस से जोड़ दिया। इसके बाद मैं सन् 1989, 1994 तथा 1996 में और बाद में 2002 में भी मॉरीशस गया और अनंत के घर पर ही ठहरा। इन सभी यात्राओं में मैंने अभिमन्यु अनंत के जीवन को देखा तथा उन व्यक्तियों और स्थानों को भी देखा जिनके बीच रहकर अभिमन्यु ने अपना जीवन जीया है। उनके जीवन के

अनेक रोमांचक, कारुणिक तथा साहसी घटनाओं से अवगत हुआ।

अभिमन्यु अनंत मॉरीशस के एकमात्र ऐसे लेखक हैं जिन्होंने सर्वाधिक विधाओं में सर्वाधिक पुस्तकें लिखी हैं। यह उनका अपना वैशिष्ट्य है, जो उन्हें संपूर्ण मॉरीशस के हिंदी साहित्य में ही नहीं, देश की विभिन्न भाषाओं के संपूर्ण साहित्य में विशिष्ट बनाता है। यह विशिष्टता केवल उनके पास है। इसके पीछे चार दशकों की साहित्य-साधना है। अभिमन्यु ने कविता के साथ उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा, रिपोर्टाज, डायरी, लेख, भेंटवार्ता, लघुकथा, संपादकीय, आदि गद्य-पद्य की अधिकांश विधाओं में लिखा है।

अभिमन्यु अनंत प्रमुख रूप से कथाकार हैं। कथा की प्रायः सभी विधाओं—उपन्यास, कहानी, लघुकथा आदि का उन्होंने उपयोग किया है। ये तीनों कथा-कुल की संतानें हैं और अनंत तीनों विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हैं। उनके अभी तक 28 वर्षों में 25 उपन्यास, 4 कहानी-संग्रह तथा 1 लघुकथा-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। वे मॉरीशस के प्रेमचंद के समान 'उपन्यास-सम्राट्' हैं। मॉरीशस के हिंदी उपन्यास का इतिहास यद्यपि लालकृष्ण बिहारी के लघु उपन्यास 'पहला कदम' से सन् 1960 से आरंभ होता है, लेकिन हिंदी उपन्यास का वास्तविक उद्भव और विकास अभिमन्यु अनंत से ही शुरू होता है। अनंत के आगमन से पूर्व अंग्रेजी-फ्रेंच के तीन उपन्यासों के अनुवाद भी मिलते हैं, लेकिन आधुनिक उपन्यास का श्रीगणेश अनंत से ही होता है। देश की स्वतंत्रता के बाद हिंदी उपन्यास का यह इतिहास मुख्यतः एक प्रकार से अभिमन्यु अनंत के उपन्यासों का ही इतिहास है और इसलिए इसे 'अभिमन्यु अनंत युग' कहना सर्वथा औचित्यपूर्ण है।

अभिमन्यु अनंत के सन् 1970 से 1998 तक 25 उपन्यास प्रकाशित हुए हैं तथा अनंत के 25 मार्च, 99

को लिखे पत्र से स्पष्ट है कि उनका 26वाँ उपन्यास 'आसमान अपना आँगन' की पांडुलिपि प्रकाशन के लिए लगभग तैयार है। इस प्रकार लगभग 30 वर्ष में 26 उपन्यासों की रचना करनेवाले वे मॉरीशस के एकमात्र उपन्यासकार हैं। संख्या की दृष्टि से ही नहीं, मॉरीशस के जीवन के अतीत, वर्तमान और भविष्य के चित्र खींचने में भी अनंत का कोई सानी नहीं हैं।

मॉरीशस की हिंदी कहानी में अभिमन्यु अनंत की स्थिति कुछ भिन्नता और कुछ समानता की है। उनके कहानी-क्षेत्र में आगमन से पहले मॉरीशस में हिंदी कहानी की नींव रखी जा चुकी थी और विभिन्न पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। पं. दौलत राम शर्मा ने जब 'अनुराग' पत्रिका निकाली तो अभिमन्यु से कहानी की माँग की और तब उन्होंने अपनी पहली कहानी लिखी। इसके साथ ही वे

मॉरीशस के पहले कहानीकार थे जिनकी आरंभिक लगभग दस कहानियाँ सातवें दशक में भारत की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं और संभवतः पहली बार भारत के हिंदी पाठकों को मॉरीशस के हिंदी साहित्य का ज्ञान हुआ। यह सातवाँ दशक मॉरीशस के राजनीतिक इतिहास तथा कहानी के इतिहास, दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मॉरीशस 12 मार्च, 1968 को स्वतंत्र देश बना और एक नए युग का आरंभ हुआ। मॉरीशस की हिंदी कहानी-यात्रा के विकास में, इसी

सातवें दशक में, अभिमन्यु अनंत के कहानीकार का जन्म हुआ और हिंदी कहानी के उत्थान का पहला चरण आरंभ हुआ। यह हिंदी-कहानी के नूतन युग का आरंभ था, क्योंकि इसमें नई दिशाएँ और संभावनाएँ उसके द्वार पर खड़ी हुई थीं। यह एक प्रकार से अभिमन्यु अनंत का युग था। इसका शुभारंभ इतना शुभ था कि इस दशक में मॉरीशस पराधीनता से ही मुक्त नहीं हुआ, बल्कि मॉरीशस की हिंदी कहानी भारत के द्वार तक आकर दस्तक देने लगी। भारत से हजारों किलोमीटर दूर एक छोटे-से टापू में जनमी हिंदी कहानी का भारत तक पहुँचना उसकी विकास-यात्रा की बहुत बड़ी घटना थी।

अभिमन्यु अनंत की अब तक मॉरीशस तथा भारतीय पत्र-पत्रिकाओं तथा निजी संग्रहों में लगभग 150 कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। उनके प्रकाशित चार कहानी-संग्रहों 'खामोशी के चीत्कार' (1976), 'इंसान और मशीन' (1976), 'वह बीच का आदमी' (1981) तथा 'एक थाली समंदर' (1987) में कुल 55 कहानियाँ तथा 44 लघुकथाएँ संगृहीत हैं तथा 100 से अधिक कहानियाँ तथा लघुकथाएँ संग्रहों में प्रकाशित होने की प्रतीक्षा में हैं। यह सर्जनात्मक निरंतरता अनंत की पीढ़ी के कहानीकारों में प्रायः दुर्लभ है। वह मॉरीशस के एकमात्र ऐसे कहानीकार हैं, जिनका कहानी का रचना-काल चार दशकों तक फैला हुआ

है। अभिमन्यु अनंत के काव्य-क्षेत्र में आने से पहले मॉरीशस में हिंदी कविता प्रतिष्ठित हो चुकी तथा लगभग 62 निजी कविता-संग्रह तथा 10 सामूहिक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। अभिमन्यु अनंत का मॉरीशस की हिंदी कविता में प्रवेश उनके पहले कविता-संग्रह 'नागफनी में उलझी साँसें' (1977) से होता है। इसके उपरान्त उनके तीन और कविता-संग्रह 'कैक्टस के दाँत' (1982), 'एक डायरी बयान' (1987) तथा 'गुलमोहर खौल उठा' (1994) प्रकाशित हुआ तथा उनका नवीनतम अप्रकाशित कविता-संग्रह 'लरजते लम्हें' भी मेरे द्वारा संपादित पुस्तक 'अभिमन्यु अनंत : समग्र कविताएँ' (1998) में प्रकाशित हो गया है। असल में, कविता के संसार में आने से पहले अभिमन्यु के 6 उपन्यास, 2 कहानी-संग्रह तथा 1 नाटक प्रकाशित हो चुके थे। अतः हिंदी साहित्यकार के रूप में मॉरीशस तथा भारत दोनों देशों में प्रतिष्ठित होने के बाद ही वह काव्य-संसार में प्रवेश करते हैं। इस समय तक मॉरीशस स्वतंत्र हो चुका था तथा जनता में अपने स्वदेशी शासन के प्रति मोह-भंग होने लगा था। यह ऐसा ही था, जैसे भारत में नेहरू युग के 'माया-लोक' से जनता का मोह-भंग हुआ था।

अभिमन्यु अनंत की पहली कविता थी, 'पसीना किसी का, फसल किसी की।' इसमें मजदूर और मालिक के संबंधों पर अनेक प्रश्न उठाए गए हैं। अनंत स्वयं खेतिहर मजदूर रहे थे, इस कारण कविता में आक्रोश के साथ भावुकता आ गई है।

मॉरीशस के हिंदी नाटक के इतिहास में भी अभिमन्यु अनंत की उपस्थिति और स्थिति महत्वपूर्ण है। अभिमन्यु के नाट्य-रचना में आने से पहले मॉरीशस में खुले आकाश के नीचे रामायण, महाभारत, पुराण की कथाओं पर आधारित नाटक तथा 'रामलीला' एवं 'इंदर-सभा' आदि खेले जाते थे। इसी प्रकार धार्मिक उत्सवों, विवाह आदि पर भी

नाटकों का मंचन होता था। इन नाटकों के रचनाकार हिंदू पुरोहित, बैठकों के अध्यापक तथा कुछ सामान्य लेखक थे। रंगमंच प्रायः बैठक से लगा मैदान, मंदिर या खुला स्थान होता था तथा स्त्रियों का अभिनय पुरुष पात्र करते थे।

इसी समय लगभग 1940 से रेडियो पर नाटकों का प्रसारण शुरू हुआ और जयनारायण राय, ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', शिवगोविंद शर्मा, सोमदत्त बखोरी, डी.के. जानकी तथा एल.पी. रामयाद आदि ने रेडियो के लिए अनेक नाटक लिखे। ये नाटक प्रायः भारतीय नाटककारों के अथवा प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित होते थे। कुछ मौलिक नाटक 'मेरा तोता', 'आदर्श बेटी' आदि सिनेमा हॉल में भी प्रस्तुत किए गए। इसी समय अभिमन्यु अनंत ने 17 वर्ष की आयु में अर्थात् 1954 में 'अजंतास आर्ट्स' की स्थापना की और अपने सामाजिक नाटक 'परिवर्तन' का मंचन त्रिओले के माहेश्वर मंदिर के प्रांगण में किया। अभिमन्यु ने सन् 1954 से 1960 के बीच लगभग एक दर्जन नाटक देश के विभिन्न स्थानों पर मंचित किए और इस प्रकार मॉरीशस के हिंदी नाटक में अपनी युवावस्था में ही महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। सन् 1961 में टैगोर शताब्दी पर टैगोर के 'चित्रा', 'मालिनी', 'वरदान', 'डाकघर' तथा 'विसर्जन' नाटकों का मंचन किया गया।

सन् 1965 में टेलीविजन की शुरुआत ने हिंदी नाटक के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान किया। अभिमन्यु अनंत के अनेक प्रकाशित नाटक टेलीविजन पर दिखाए गए। टेलीविजन पर भोजपुरी नाटकों का भी प्रसारण हुआ। सन् 1975 में प्रथम 'विश्व हिंदी सम्मेलन' के अवसर पर नागपुर में मॉरीशस के अभिनेताओं ने डॉ. धर्मवीर भारती के प्रसिद्ध नाटक 'अंधा युग' का मंचन किया।

अभिमन्यु अनंत का हिंदी नाटक की रचना, अभिनय तथा उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान

रहा है। अनंत ने अपने त्रियोले गाँव में अपना नाट्य-आंदोलन शुरू किया और 'परिवर्तन' का मंचन किया। इसमें उसकी ही मुख्य भूमिका थी और मंदिर के प्रांगण में लगभग 5000 दर्शकों के भीड़ में इसका मंचन हुआ था। इसकी सफलता के बाद दूसरे-तीसरे महीने में वह नया एकांकी लेकर आए और लोकप्रिय होने लगे। रेडियो पर भी अनेक नाटक प्रस्तुत किए तथा टेलीविजन के लिए 'अजंता' मंच की और से 30 से ऊपर नाटक लिखे तथा उनको निर्देशित किया एवं भूमिकाएँ कीं।

हिंदी गद्य की कुछ अन्य विधाओं में भी अभिमन्यु अनंत का उल्लेखनीय योगदान है। इन विधाओं में जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, लेख, संपादकीय, भेंटवार्ता, लघुकथा आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अभिमन्यु अनंत ने जन-आंदोलन के प्रणेता प्रो. वासुदेव विष्णुदयाल (1986) तथा 'मजदूर नेता रामनारायण' (1988) शीर्षक जीवनियाँ लिखीं लेकिन 'आत्मकथा' को लेकर उन्होंने लगभग 60 लेखों में अपनी आत्मकथा लिखने का प्रयत्न किया है। यह आत्मकथा प्रसंग अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं। इसी प्रकार अभिमन्यु ने अनेक संस्मरण तथा यात्रा-वृत्तांत लिखे हैं, जिनमें से कुछ प्रकाशित हुए हैं, लेकिन बड़ी संख्या में अप्रकाशित हैं।

अभिमन्यु अनंत ने 'वसंत' पत्रिका में काफी संपादकीय लिखे और अपने सहयोगी पूजानंद नेमा तथा रामदेव धुरंधर को भी संपादकीय लिखने का अवसर दिया। ये संपादकीय देश के सम्मुख ज्वलंत समस्याओं पर बड़ी साफगोई से लिखे गए हैं और सत्ता की भी अनेक बार आलोचना की गई है। भेंटवार्ता के क्षेत्र में 'वसंत' में कुछ भेंटवार्ताएँ प्रकाशित हुई हैं। अभिमन्यु अनंत ने कुछ लेखकों के इंटरव्यू लिये तथा अनेकों ने रेडियो, टेलीविजन तथा पत्र-पत्रिकाओं के लिए अभिमन्यु अनंत से इंटरव्यू लिये। मैंने 117 पृष्ठों का इंटरव्यू लिया जो सन् 1984 में 'अभिमन्यु

अनंत : एक बातचीत' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। अभिमन्यु अनंत ने स्वयं अपने से भेंटवार्ता लेकर एक नया प्रयोग भी किया। यह आत्म-भेंटवार्ता 'आईने के सामने' शीर्षक से 'आत्म विज्ञापन' में पहली बार छपी थी।

इस लंबी भूमिका के बाद मॉरीशस के हिंदी साहित्य में अभिमन्यु अनंत की परिस्थिति, उपस्थिति, स्थिति तथा उसके योगदान को रेखांकित करना सरल होगा। मॉरीशस के हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं के साहित्य के इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि अभिमन्यु अनंत अपने देश के बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं तथा सर्वाधिक प्रतिष्ठित साहित्यकार भी वही हैं। वे अपने देश के राष्ट्र-साहित्यकार हैं। यह युग 'अभिमन्यु अनंत युग' है, जो उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, आदि प्रमुख विधाओं में लगभग चार दशकों तक उनकी निरंतर साहित्य-साधना के कारण इस नामकरण को सार्थक करता है। अभिमन्यु अनंत युग-सर्जक और इतिहास-सर्जक साहित्यकार हैं।

अभिमन्यु अनंत में तुलसीदास की लोकमंगल की दृष्टि, कबीर की दो-टूक कथन-शैली, महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसा संपादकीय दायित्व, निराला का विद्रोह और तेज, प्रेमचंद की सामाजिक, राष्ट्रीय, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि एवं दासत्व से मुक्ति, जयशंकर प्रसाद का नाटकीय-कौशल तथा कुछ स्वातंत्र्योत्तर कवियों की आम आदमी की नियति एवं मानव-अधिकारों के प्रति घोर चिंता का गहरा भाव संश्लिष्ट रूप में विद्यमान है। अभिमन्यु अनंत के इस संश्लिष्ट सृजनात्मक व्यक्तित्व में यदि हम उनके चित्रकार एवं छायाकार को भी समाहित कर लें तो उनके इस संश्लिष्ट कलाकार एवं रचनाकार का दूसरा उदाहरण उनके देश में मिलना दुर्लभ ही होगा।

□

उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान,
नई दिल्ली

अभिमन्यु अनत : रचना के शीर्ष पुरुष

—डॉ. सरिता बुधू

4 जून, 2018 को एक लंबी बीमारी से ग्रस्त होकर आखिर अभिमन्यु अनत ने दम तोड़ ही दिया। 9 अगस्त, 1937 को जनमे अभिमन्यु अनत चल बसे और 5 जून को उनका अंतिम संस्कार किया गया। उनके निवास त्रियोले गाँव में जहाँ से उन्होंने लगातार 6 दशकों तक अपनी तीखी और निर्भीक साहसी कलम चलाई।

कहा जाता है कि जब यमराज किसी को उठाकर ले जाते हैं तब हम किसी की कमी, हमारे बीच में न होने का अहसास, महसूस करते हैं।

लेकिन क्या हम यह सोच सकते हैं कि विश्वविख्यात हिंदी साहित्यकार हमारे बीच नहीं हैं? ऐसा तो नहीं लगता। अभिमन्यु अनत का बहु प्रतिभाशाली व्यक्तित्व प्रेरक है।

हाँ, शरीर से तो नहीं हैं। घर पर अर्धांगिनी सरिता रो-रोकर अपने को उनकी यादों से, मन और हृदय को संतुलित करती होंगी। लेकिन उनकी 75 से ज्यादा कृतियों के हर पन्ने से गिरमिटिया पूर्वजों के प्रति श्रद्धांजलि शब्दबद्ध होकर हमें बुलंद कर रहे हैं कि अभिमन्यु अभी हैं, जीवित हैं।

अभिमन्यु हिंदी के लिए जीते और मरते थे। रात-दिन हिंदी को अपने अंतःकरण में समा लिया था—

‘जिस भाषा में बोलती
तुलसी की रामायण
मीरा करती जिस में
कृष्ण प्रेम के गायन
हमारे माथे जो है
संस्कृति की बिंदी
हमारी पहचान की
भाषा हमारी हिंदी’

त्रियोले गाँव में जनमे अभिमन्यु मॉरीशस की मिट्टी, हवा, धूप, पानी, सृष्टि के सुगंध से, सोंधी जमीन से पल्लवित हुए। मॉरीशस के सुपुत्र हैं, गौरव हैं लेकिन उन को सम्मानित किया, उनको पहचान दी, उनको विश्व के सुप्रसिद्ध हिंदी लेखक व साहित्यकार बनाया भारत ने और भारत के अनगिनत पाठकों ने।

छोटे द्वीप हिंद महासागर के मोती, मॉरीशस में सर्वश्रेष्ठ सृजनात्मक अभिमन्यु अनत ने मॉरीशस को हिंदी साहित्य में उच्च मंच पर प्रतिष्ठित किया।

अभिमन्यु मॉरीशस के होते हुए भी सिर्फ मॉरीशस के न रहकर अपितु उस दुनिया के अप्रतिम साहित्यकारों, कर्मियों और पहुँचे हुए सृजनात्मक रचनाकारों में से हैं, जो न किसी देश, जाति, समाज या भूगोलिक सीमा की आड़ में होते हैं बल्कि उससे परे होकर बढ़ते हुए क्षितिज पर होते हैं।

अभिमन्यु एक सृजनात्मक लेखक होते हुए वे

भी क्रांतिकारी थे, बहु आयामी थे। उनके बारे में कहा जाता है कि वह विद्रोही लेखक थे। उन्होंने उच्च स्तरीय साहित्य की हर विधा को स्पर्श किया। उन्होंने उपन्यास, कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक, लघुकथा, भेंटवार्ता, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत को आत्मसात् किया। जीवनी भी लिखी और संपादन भी किया। वे मॉरीशस के आधुनिक हिंदी गद्य के निर्माता थे।

अभिमन्यु ने अपने मन की बातों को आवाज देने हेतु हिंदी भाषा को माध्यम बनाया और चौदह साल की उम्र से ही उन्होंने कलम चलाना शुरू किया।

गरीबी के कारण वह अन्य बच्चों जैसा स्कूली जीवन नहीं जी पाए। शुरू में अभिमन्यु ने कई तरह के काम भी किए। वह बस कंडक्टर भी रहे, लेकिन रात भर पढ़ाई जारी रखी और कैंब्रिज स्कूल सर्टिफिकेट पास करके सरकारी प्राइमरी शिक्षण सेक्टर में 18 साल तक टीचर रहे। उसके बाद सफलता के सोपानों पर चढ़ते गए और 1970 के दशक में युवा एवं स्पोर्ट्स मंत्रालय में नाट्य परामर्शी का पद सँभाला और हिंदी नाट्य विधा को एक नया आयाम दिया।

बाद में महात्मा गांधी संस्थान में हिंदी के प्राध्यापक/प्रभारी और सृजनात्मक लेखन और प्रकाशन विभाग के प्रमुख बने।

इलोट गाँव में जब रवींद्रनाथ टैगोर इंस्टीट्यूट बना तो अभिमन्यु अनंत उसके पहले निर्देशक नियुक्त हुए। महात्मा गांधी संस्थान में उन्होंने दो साहित्यिक पत्रिकाओं को शुरू किया—बच्चों के लिए 'रिमझिम' और त्रैमासिक 'वसंत', जो आज तक प्रकाशित होती

हैं। इन्होंने अनेक युवा लोगों को हिंदी में लिखने को प्रेरित किया।

अभिमन्यु की लेखन कला के कौशल को सबसे पहले भारत में पहचाना गया। उनके सामयिक लेख और कहानियाँ भारत की कई साहित्यिक पत्रिकाओं जैसे 'धर्मयुग', 'सारिका', 'आजकल' तथा समाचार-पत्रों जैसे 'नवभारत टाइम्स', बनारस के 'आज', साप्ताहिक 'हिंदुस्तान', 'हिंदुस्तान टाइम्स' आदि में प्रकाशित होने लगीं। उसी समय 'धर्मयुग' के वरिष्ठ संपादक धर्मवीर भारती से गहरी दोस्ती हुई और बाद में मॉरीशस तथा भारत में उनके नाटक 'अंधा युग' (महाभारत पर आधारित) का मंचन हुआ।

भारत के प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद के विशेषज्ञ तथा 'मॉरीशस बंधु' कहलानेवाले डॉ. कमल किशोर गोयनका ने तो अभिमन्यु को 'मॉरीशस के हिंदी उपन्यास का सम्राट' और 'मॉरीशस का प्रेमचंद' का नाम दिया। फिर उन्होंने ये भी प्रश्न उठाए कि क्यों मॉरीशस के प्रेमचंद ही हों? बल्कि 'मॉरीशस के अभिमन्यु' ही कहें, वह कहते हैं, 'यदि अभिमन्यु अनंत मॉरीशस के प्रेमचंद हैं', बल्कि कहूँ कि वे 'मॉरीशस के अभिमन्यु अनंत' हैं तो निश्चय ही आज नहीं तो कल, अनंत के अध्ययन, अध्यापन तथा मूल्यांकन की परंपरा मॉरीशस देश की जमीन पर भी अवश्य ही आरंभ करनी पड़ेगी।'।

शुरुआती युग में 60 के दशक में जब मॉरीशस में टीवी नहीं आया था, अभिमन्यु अनंत ने मॉरीशस रेडियो के लिए भी अनेक रेडियो नाटक लिखे, मंचन भी किए—1984 में मॉरीशस में प्रवासी भारतीयों

के आगमन का 150वीं वर्षगाँठ समारोह के अवसर पर उन्होंने 'गूँगा इतिहास' नामक नाटक के जरिए गिरमिटिया मजदूरों के दुःख भरे जीवन, शोषण, दमन, अत्याचार, यातनाओं को दर्शाया—जो इतिहास बरसों से गूँगा रहा। इसके न सिर्फ मॉरीशस में बल्कि भारत में भी सफल मंचन हुए।

वास्तव में अभिमन्यु अनंत ने मॉरीशस के नाटक के इतिहास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वह एक श्रेष्ठ नाटककार/ व अभिनेता भी थे। उन्होंने अपनी नाटक संस्था 'अजंता आर्ट्स' 1954 में सत्रह साल की तरुण अवस्था में ही स्थापित की। त्रियोले के महेश्वरनाथ मंदिर के प्रगाण में सब से पहले 'परिवर्तन' नामक नाटक का मंचन किया। कहा जाता है, उस समय 5,000 लोग उसे देखने आए थे।

'लाल पसीना' 1977 में छपा गया। उसके बाद 'गांधीजी बोले थे' 1984 में और तीसरा उपन्यास 'और पसीना बहता रहा' जो 1993 में लिखा गया। एक साथ पढ़ने पर प्रतीत होता है कि ये तीनों उपन्यास तीन खंडों का एक ही महाकाव्य-उपन्यास के रूप हैं। गिरमिटिया मजदूरों की कथा को लेकर 1901 में गांधीजी के मॉरीशस आगमन और मजदूरों को संबोधित करना और पं. रामनारायण का श्रम आंदोलन 1944 में, इन दोनों घटनाओं पर आधारित 'गांधीजी बोले थे' और 'और पसीना बहता रहा' रचे हुए हैं।

'लाल पसीना' लिखने के लिए अभिमन्यु अनंत ने पूरे टापू में घूम-घूमकर सौ से अधिक वृद्धों और वृद्धाओं का साक्षात्कार लेकर उनके यातनाओं भरे इतिहास का वास्तविक बोध कराया।

विश्व हिंदी सम्मेलन 1996 (त्रिनिदाद और टोबेगो)

- डॉ. जॉर्ज प्रियर्सन पुरस्कार 1998
- साहित्य भूषण पुरस्कार 2000
- राजीव गांधी मेमोरियल पुरस्कार 1997
- नेशनल अवॉर्ड 2018 मॉरीशस

- साहित्य अकादेमी फेलोशिप 2014 साहित्य अकादेमी इंडिया से

अभिमन्यु में विविध व्यक्तित्व बसते हैं और एक-दूसरे को पहचानते भी हैं। एक-दूसरे को समझते हैं। एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखते हैं और सहयोग देते हैं। उनमें एक राजनीतिज्ञ भी वास करता है। उन्होंने उपनिवेशों के शोषण पर खूब जमकर विरोध किया और 12 मार्च, 1968 के स्वतंत्रता मिलने के बाद पर राजनीतिज्ञों पर क्रांतिकारी दृष्टि अपनाई। समाज में नए औद्योगीकरण का 'सेटअप' होने पर भारतीय संस्कृति, सभ्यता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था और विसंस्कृतीकरण और संयुक्त पारिवारिक विभाजन होने लगा था। उनकी कहानियाँ और कविताओं इन सभी अवस्थाओं का प्रभाव भी दिखाता है। उन्होंने महिलाओं पर होनेवाले शोषण का भी विरोध किया। प्रेम और त्याग, बलिदान की भावनाएँ भी उनकी रचनाओं में दिखती हैं।

अभिमन्यु अनंत ने अनेक कविताएँ लिखीं जिनके संग्रह हैं—'गुलमोहर खौल उठा', 'कैक्टस के दाँत', 'नागफनी में उलझी साँसें' आदि। इन कविताओं में मॉरीशस के श्रमजीवियों की वेदना उभरती है।

'मेरे अपने भीतर'

आज फिर खौल उठा है गुलमोहर'

जीवन के दुःखों को और संघर्षों को झेला है अभिमन्यु ने। चक्रव्यू में फँसकर भी निकलना भी जाना, जागरूक व्यक्तित्व, साहित्यिक समन्वय उनके व्यक्तित्व का अंग है।

जैसे प्रेमचंद आजीवन कलम के सिपाही रहे, कलम को दौड़ाते हुए अभिमन्यु भी लिखते रहे जब वह 2011 से अस्वस्थ हुए, तब कलम को विराम दिया।

अभिमन्यु अनंत मॉरीशसीय आधुनिक हिंदी गद्य के निर्माता हैं। उनकी कृतियों में मॉरीशस की अन्य भाषाओं का भी स्पर्श है। उनके अनेक पात्र भोजपुरी,



फ्रेंच, क्रियोली का भी प्रयोग करते हैं।

अभिमन्यु अनंत सरल और सशक्त भाषा में लिखते थे, लेकिन शब्दों का चयन गौर से करते थे। अभिमन्यु की शैली धाराप्रवाह है, सरल है। अभिमन्यु अनंत एक अनुशासित लेखक थे।

वे अपने लेखों, कविताओं व कहानियों में शब्दिक चुनाव तथा वाक्य विन्यास पर विशेष ध्यान देते थे। उनकी कृतियों में इसकी बानगी देखें—

शब्द—

‘शब्द ही मेरी अस्मिता
अतीत, भविष्य, वर्तमान मेरा
शब्द मेरी शक्ति
शब्द मेरी भक्ति
शब्द मेरा विद्रोह
शब्द मेरी अस्वीकृति

उसे धमनियों (धमकियों) से भय नहीं...’

कला के संस्कार उनके स्वभाव के अंग बन गए हैं। भारतीय संस्कृति ने मॉरीशस की मिट्टी, हवा और पानी में मिलकर उनको सदैव प्रेरणा दी। उनका साहित्य जैसे कि उनका जीवन एक जैसा होकर संस्कृति की कलात्मक व्याख्या का माध्यम हो गया। वह संस्कृति का मूर्त प्रतिबिंब थे। उनका पूरा जीवन लेखन के प्रति समर्पित था।

गिरमिटियों पर गोरों मिल मालिकों के शोषण, उनकी तड़प, चीख, यातनाएँ, कष्टपूर्ण व्यवहार उनकी सभी रचनाओं और विधाओं में, चाहे उपन्यास हो चाहे कविता, ये दर्दाली भावनाएँ उपस्थित रही हैं, जो हमेशा अभिमन्यु अनंत को चुनौती देती रही। इस शोषण के बारे में उन्होंने अपनी माँ से मामा द्वारा

बार-बार कहे गए बयानों से सुना जिसने उनके कोमल हृदय पर असर किया।

अभिमन्यु में एक प्रकार की बेचैनी थी, जो उनको लिखने को मजबूर करती रही जिसे अंग्रेजी में रेस्टलेस एनर्जी कहा जाता है। इसी ‘रेस्टलेस एनर्जी’ ने उनको एक विशेष लेखन साधना दी जिससे प्रेरित व अनुशासित होकर रोज सुबह दो बजे उठकर वह लिखते, लगातार सुबह पाँच बजे तक।

अभिमन्यु के हृदय में प्रकृति के लिए प्रचुर प्रेम था, वे अपने प्रांगण के फूलों और पौधों की देख-भाल में अपना समय लगाते। जिसकी सुगंध और बास उनकी कविताओं में झलकती है और पास के त्रू ओ बीश या श्वाजी समुंदर तट की लहरों से बातें करते और प्रेरणा लेते।

मॉरीशस में 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन का होना एक इतिहास या संयोग नहीं है। यह अभिमन्यु अनंत का एक विश्वसम्मान है अतः श्रद्धांजलि सुमन हैं। इससे और बड़ा सम्मान क्या हो सकता है? तीसरी बार यह विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस भूमि पर हो रहा है। इसमें अभिमन्यु अनंत की अतुल्य वैचारिकी का अदृश्य योगदान है क्योंकि उन्होंने मॉरीशस को भारत से बाहर अपनी कलम से हिंदी का देश बनाया। अपनी कलम की शक्ति से मॉरीशस हिंदी साहित्य की नींव गढ़ी। हम यह नहीं मानते कि अनंत सिर्फ गिरमिटिया लेखक हैं। वह विश्व हिंदी साहित्य के मुक्तामणि हैं।

□

अध्यक्ष

भोजपुरी स्पीकिंग यूनियन
मॉरीशस

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिंदी प्रचार के द्वारा एकता स्थापित करनेवाले सच्चे भारतबंधु हैं।

—अरविंद

डॉ. बालशौरि रेड्डी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

—डॉ. सु. कृष्णचंद चोरड़िया

‘चंदामामा’ के संपादक तथा हिंदी, तेलुगु, तमिल के साहित्यकार श्री बालशौरि रेड्डी की हिंदी साहित्य सेवा तथा अवदान के प्रति स्मरण, नमन—

—संपादक

साहित्य मानव के विचारों तथा अनुभूतियों को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। साहित्य का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि भाषा एवं साहित्य के विविध आयामों के माध्यम से ही मानव की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। एकांकी, कहानी, उपन्यास, कविता, संस्मरण आदि के सहारे लेखक अपने अनुभवों को व्यक्त करता है। डॉ. बालशौरि रेड्डी एक ऐसे ही महान् प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। डॉ. रेड्डी कवि, उपन्यासकार, अनुवादक, कहानीकार, नाटककार, एकांकीकार और बाल साहित्यकार होने के साथ-साथ एक अच्छे आलोचक भी थे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा के संबंध में उनके जीवनकाल में प्रख्याल लेखक श्री कमलेश्वर ने लिखा था, “डॉ. बालशौरि रेड्डी एक व्यक्ति नहीं, संस्था हैं। उन्होंने हिंदी की जितनी सेवा की है और जो उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, वे एक वीतराग भाषा-संत की उपलब्धियाँ हैं। डॉ. रेड्डी निष्काम, निःस्वार्थ काम करनेवाले भारतीय की अनुपम मिसाल हैं।”

हिंदी साहित्य जगत के महान् लेखकों में डॉ. रेड्डी का नाम उल्लेखनीय है। वे आधुनिक हिंदी

साहित्य के श्रेष्ठ रचनाकार थे। वे तेलुगु भाषी होने पर भी हिंदी भाषा तथा साहित्य क्षेत्र में अपनी अलग ही पहचान रखते थे। राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए अपना जीवन समर्पित करनेवाले महान् साहित्यकारों में डॉ. रेड्डी का नाम स्मरणीय है। डॉ. रेड्डी सृजनशील साहित्यकार थे। उन्हें हिंदी साहित्य में उपन्यासकार के रूप में पहचाना जाता है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज की समस्याओं और समाधानों को अपनी विशेष शैली में अभिव्यक्त किया है।



बालशौरि रेड्डी का जन्म 1 जुलाई, 1928 को आंध्रप्रदेश के कड़पा जिले के गोल्लगुडुरु गाँव में एक मध्यमवर्गीय किसान परिवार में हुआ। वे गंगि रेड्डी और ओबुलम्मा दंपती के इकलौते पुत्र थे। बालशौरि के जन्म से पूर्व ही उनके दादा का परिवार भरा-पूरा था, जिनके सात पुत्र और एक पुत्री थी। ऐसा सुखी परिवार सात टुकड़ों में बँट चुका था,



इससे सारी संपन्नता बिखर गई थी। बालशौरि की चार वर्ष की आयु में उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। उनकी मौसी के साथ पिताजी का दूसरा विवाह करने के लिए उनकी नानी और नाना ने जोर डाला, मगर उनके पिता इस माताविहीन बच्चे को देखकर दुःखित हो उठे और दूसरा विवाह न करने की प्रतिज्ञा की और अपना संपूर्ण वात्सल्य बालक बालशौरि को ही अर्पित किया। इस प्रकार गंगि रेड्डी का जीवन सर्वस्व बालशौरि ही बना।

बालशौरि ने पाँचवीं कक्षा तक अपने गाँव में ही पढ़ाई की। उसके बाद नेल्लूर में छठी कक्षा में प्रवेश किया। पढ़ाई से ज्यादा खेल-कूद में अभिरुचि होने से वे कक्षा में हमेशा तीसरे-चौथे स्थान पर आया करते थे। वे कबड्डी और फुटबाल के खिलाड़ी थे। स्काउट्स में कई बैच हासिल किए थे। उन्होंने तैरना पाँचवीं में और साईकिल चलाना सातवीं कक्षा में सीख लिया था। द्वितीय महासंग्राम के समय बालशौरि रेडियो के सामने बैठकर समाचार सुनते थे। उस समय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्वतंत्र आंदोलन बहुत ही जोरों से चल रहा था। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' ने जनमानस को बहुत ही प्रभावित किया था। उससे प्रभावित होकर बालशौरि ने छुट्टियों में राष्ट्रीय नेताओं के मार्गदर्शन में स्वयंसेवक का दायित्व निभाया।

रेड्डीजी हाईस्कूल की शिक्षा के पश्चात् शिक्षक बनना चाहते थे, परंतु उनके मामा को कोई संतान न रहने से वे रेड्डीजी को गोद लेना चाहते थे। उनकी दृष्टि में शिक्षक का काम बेरोजगार के समान था। उन्होंने पिताजी और नानी के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मामा के प्रस्ताव को भी सबने स्वीकार कर लिया। रेड्डीजी ने बहुत ही गहराई से सोचकर तुरंत अपने विचारों में थोड़ा-बहुत बदलाव कर दिया। फिर शिक्षक का प्रशिक्षण लिया और उसके बाद उन्होंने अपने गाँव के नजदीक एक कस्बे में दो वर्ष तक शिक्षक का काम किया। वहाँ

पर वे ग्रामवासियों के साथ स्नेह, सौहार्द, आत्मीयता तथा आदर के पात्र बन गए थे। तब उस गाँव की जनसंख्या ढाई हजार थी। वे इन स्नेहासिक्त लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन के समाचारों से अवगत कराने लगे। समय-समय पर राष्ट्रीय नेताओं को बुलवाकर व्याख्यान कराने लगे। साथ ही, खुद दूर-दूर के गाँवों में जाकर व्याख्यान भी देने लगे। उनकी गतिविधियों का पता पुलिस को लग गया और एक-दो बार पुलिस के हाथों में गिरफ्तार होते होते बच भी गए थे।

सन् 1946 में मद्रास हिंदी प्रचार सभा की रजत जयंती के सुअवसर पर उनकी महात्मा गांधी से भेंट हुई थी। खुशी के मारे उन्होंने उनके हस्ताक्षर लिए थे। उस समय गांधीजी ने युवा पीढ़ी को राष्ट्रभाषा हिंदी सीखने का संदेश दिया था। गांधीजी की प्रेरणा के फलस्वरूप बालशौरि रेड्डी ने हिंदी सीखना शुरू किया और दक्षिण भारत राष्ट्रभाषा विद्यालय में भर्ती होकर विशारद तक की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। फिर अपने आचार्य श्री पी. नारायण की सलाह पर वे इलाहाबाद चले गए। अपने खर्च से नैनी विद्यापीठ, तदुपरांत काशी में राष्ट्रभाषा विद्यालय में अध्ययन करते हुए उन्होंने साहित्य रत्न, साहित्यालंकार आदि उपाधियाँ हासिल कीं।

हाईस्कूल के उपरांत कॉलेज के लिए अधिक सुविधाएँ न मिलने पर भी कठिन परिश्रम के फलस्वरूप वे दक्षिण के एक महान हिंदी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। हाई स्कूल में पढ़ते समय इतिहास उनका अत्यंत प्रिय विषय रहा। उत्तर भारत के इतिहास को पढ़ने के बाद उनके मन में उन इतिहास प्रसिद्ध स्थानों को देखने की जिज्ञासा मन में हुई थी, इससे और भी उनके मन में हिंदी भाषा के प्रति श्रद्धा जाग्रत हुई थी।

बालशौरि रेड्डी के विवाह की प्रक्रिया भी बड़ी रोचक थी। विवाह प्रक्रिया के दौरान उन्होंने अपनी शर्तें बताई कि—

1. कन्या भले ही अनुपम सुंदर न हो, पर आकर्षक हो।
2. कम-से-कम आठवीं कक्षा तक पढ़ी-लिखी हो।
3. कन्या का परिवार सुसंस्कृत हो।

इन शर्तों के बाद रेड्डीजी का रिश्ता उनके मित्र रामचंद्र रेड्डी की बहन के साथ तय हुआ। वधू पक्ष की ओर से बालशौरि रेड्डी को 15 हजार रुपए दहेज के रूप में देने का प्रस्ताव किया गया, लेकिन रेड्डीजी ने दहेज लेने से इनकार कर दिया। इस तरह डॉ. बालशौरि रेड्डीजी का विवाह 14 जून, 1951 में उन्हीं के जिला केंद्र कड़पा शहर में धूमधाम से संपन्न हुआ।

मूलतः डॉ. बालशौरि रेड्डी एक मध्यवर्गीय किसान परिवार के थे। उन्होंने बी.ए. के उपरांत शिक्षक प्रशिक्षण लेने की इच्छा प्रकट की, परंतु उनके मामा ने उनकी शिक्षक बनने की इच्छा का विरोध किया। फिर भी रेड्डीजी ने उन्हें समझाकर बी.एड. का प्रशिक्षण लिया और उसके बाद शिक्षक का काम किया। रेड्डीजी दूसरों की संपत्ति पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। वे हमेशा खुद कमाने की इच्छा प्रकट करते थे। वे बहुत स्वाभिमानी व्यक्ति थे। रेड्डीजी अपने जीविकोपार्जन के लिए दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री एस.आर. शास्त्री की सहायता से हिंदी प्रशिक्षण विद्यालय में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए। उसके बाद डॉ. रेड्डी को त्रिचिरापल्ली शाखा में स्थानांतरित किया गया।

यह सन् 1950 की बात है। उन्हीं दिनों में त्रिचिरापल्ली में शाखा कार्यालय का नया भवन बना था। त्रिचिरापल्ली की जलवायु रास न आने के कारण रेड्डीजी पुनः मद्रास चले आए। यहाँ थोड़े दिन कार्य करने के पश्चात उनको आंध्रा के चित्तूर शहर में संचालित प्रशिक्षण महाविद्यालय का सहायक प्राचार्य बनाकर भेजा गया। इस तरह बालशौरि रेड्डी अपने

जीविकोपार्जन के लिए प्रथमतः शिक्षक के रूप में लगे रहे। बाद में वे अपने परिवार के साथ मद्रास में ही घर बनाकर रहने लगे।

1951 में डॉ. बालशौरि रेड्डीजी हिंदी प्रचार सभा में लेक्चरर के पद पर नियुक्त हुए। 1951 से 1965 तक लगातार उसकी सेवा करते रहे। अपनी प्रामाणिकता और आदर्शों के कारण उन्होंने सभा में एक कुशल प्राध्यापक के रूप में अपना स्थान बनाया। वे हमेशा छात्रों के भविष्य की ओर ध्यान देने के लिए सचेत करते थे। कुशल वक्ता डॉ. रेड्डी बड़े-बड़े सम्मेलनों और विचार गोष्ठियों में सफलता पूर्वक वक्तव्य देते थे। वे मौजूदा सामाजिक समस्याओं को लेकर ज्यादा विचार-विमर्श करते थे। अपनी प्रामाणिकता के कारण वे प्रचार सभा में प्रिंसिपल और प्रशासक के पद पर पहुँचे। इन पदों पर रहते हुए वे 'चंदामामा' पत्रिका के संपादकत्व का काम सँभालते थे। डॉ. रेड्डी ने कलकत्ता के भारतीय भाषा परिषद् के निदेशक के रूप में भी कार्य किया था।

डॉ. रेड्डीजी को अपने मित्रों के साथ चर्चा गोष्ठी करने में मन को खुशी मिलती थी। उन्हें हमेशा अपने साहित्य प्रेमी और साहित्यिक मित्रों के साथ साहित्यिक चर्चा करने का शौक था। इस बीच दक्षिण या उत्तर भारत से आनेवाले शोध छात्रों का वे विशेष आतिथ्य करते थे। उन्हें अपनी साहित्य संबंधी जानकारी देते हुए भी समकालीन सृजनकर्ताओं का परिचय दिलाते थे। इससे उनकी आत्मीयता का पता चलता है।

डॉ. रेड्डी को देशाटन का शौक बचपन से ही रहा। उन्होंने विवाह-पूर्व वाराणसी के विद्याध्ययन काल में ही दिल्ली, कलकत्ता, शांतिनिकेतन, वर्धा, नागपुर आदि नगरों का भ्रमण किया था। उनकी विदेश भ्रमण की इच्छा बनी रही। अनायास ही दो बार अमेरिका और दो बार मॉरीशस की यात्रा के

साथ लंदन, सिंगापुर नगरों के भ्रमण का भी उन्हें सुयोग मिला था। भारतीय भाषा परिषद् के निदेशक के पदभार सँभालते वक्त उन्हें समस्त प्रमुख भारतीय भाषाओं के संपर्क में जाने व संगोष्ठियों के आयोजन का अवसर प्राप्त हुआ था। डॉ. रेड्डी ने अपने कलकत्ता प्रवास और वहाँ के लोग और नगरों के बारे में अपनी राय इस तरह बताई, “मैं सही अर्थों में कलकत्ता प्रवास में समाज शास्त्र का एक विद्यार्थी बना। यह मेरे जीवन में सबसे बड़ी उपलब्धि है। कलकत्ता महानगर है। उसका दिल भी बड़ा है। मैं उस महानगर और वहाँ के सभी नागरिकों के प्रति आभारी हूँ। मेरे जीवन का यह स्वर्णिम काल माना जा सकता है।”

तेलुगु भाषी, हिंदी प्रेमी सज्जनों में डॉ. रेड्डी का एक विशिष्ट व्यक्तित्व था। उन्होंने अपना पूरा जीवन हिंदी भाषा की सेवा में बिता दिया था। सर्वप्रथम वे एक शिक्षक थे। बाद में एक बड़े साहित्यकार बने। वे लगभग चालीस वर्षों से साहित्य के विभिन्न अंगों के माध्यम से हिंदी साहित्य की वृद्धि करते रहे।

जीवन की धारा कब, कैसे और कहाँ मोड़ लेती है, कोई नहीं जानता। उन्होंने कभी कल्पना तक न की थी कि वे अपने जीवनकाल में हृदयाघात का शिकार होंगे। वैसे इसका आभास आपको कलकत्ता के प्रवास में अक्सर हुआ करता था। 11 मार्च, 1995 को चेन्नई के एक स्थानीय अस्पताल में डॉ. रेड्डी की बाईपास सर्जरी हुई थी। बाद में उन्हें स्वास्थ्य की कोई समस्या नहीं रही।

डॉ. बालशौरि रेड्डी सहृदय व्यक्तित्व के धनी थे। महान् साहित्यकार होते हुए भी वे बहुत ही सरल

व्यक्तित्व थे। उनके बाह्य व्यक्तित्व और आंतरिक व्यक्तित्व के बीच साम्य दिखाई देता था। मुखौटों की जिंदगी से वे कोसों दूर थे। यही वजह रही कि वे श्रेष्ठ रचनाएँ लिख सके। कोई भी व्यक्ति एकाध दिन में लेखक नहीं बन बैठता। यद्यपि सृजनात्मक प्रवृत्ति अभिव्यक्ति की राह ढूँढ़ती रहती है, तथापि अनुभूतियों के परिपक्व होने पर ही वे स्पष्ट रूप से बहिर्गत होती हैं। अध्ययन, सामाजिक अनुभव, चिंतन-मनन, पर्यटन इत्यादि विचारों में गहनता, व्यापकता और संपन्नता लाते हैं।

डॉ. रेड्डी ने 1948 में लिखना शुरू किया। उस समय काव्य गान का जमाना था और डॉ. रेड्डी ने विंध्याचल की प्रकृति से अत्यंत प्रभावित होकर कविता करना शुरू किया। फिर भी वे असंतुष्ट रहे। पं. गंगाधर मिश्रजी की प्रेरणा से उन्होंने गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखना शुरू कर दिया। फिर उनका लेखन साहित्य की विभिन्न विधाओं में निरंतर गतिमान रहा। उनकी साहित्यिक उपलब्धियों का व्यापक मूल्यांकन भी हुआ। सितंबर-2015 में भोपाल (म.प्र.) में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेकर लौटने के उपरांत अचानक डॉ. रेड्डी का स्वर्गवास हो गया। वे हिंदी के लिए जिए और हिंदी की सेवा करते हुए चले गए। एक महान साहित्यकार, बाल साहित्यकार और उपन्यासकार के रूप में उन्हें सदैव याद किया जाएगा।

□

अध्यक्ष : तमिलनाडु हिंदी अकादमी,
सुगन हाउस, 18, रामानुज अय्यर स्ट्रीट,
साहूकारपेट, चेन्नई-600001

देश को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की शक्ति केवल हिंदी में है।

—श्रीमती इंदिरा गांधी

नीलगगन में : बालकवि बैरागी

—प्रो. अशोक चक्रधर

हिंदी भाषा के प्रबल समर्थक और वाचिक परंपरा को गति देनेवाले युग सर्जक लेखक बालकवि बैरागी अब हमारे बीच नहीं हैं। उनकी सर्जनात्मक क्षमता से साहित्य में एक नई ऊर्जा का संचार हुआ। बैरागीजी के प्रति श्रद्धासुमन...

—संपादक

कविवर बालकवि बैरागी के बचपन में गरीबी गूँजती थी। अपने दिव्यांग पिता को चार छोटे-छोटे पहियों की गाड़ी पर बिठाकर वे रस्सी से खींचते थे, और टीपदार स्वर में देशभक्ति के गीत गाते थे। लोग कटोरे में सिक्के डाल देते थे। उनसे घर का खर्च और स्वाभिमान से उनकी पढ़ाई चलती थी। अपनी गरीबी का गौरवीकरण करने में उन्हें अंत तक कोई संकोच नहीं हुआ। मँगता से मिनिस्टर होने की अपनी गाथा गर्व से सुनाते थे और अपने अंतिम समय तक एक उलाहना-गीत गाते थे—

‘हैं करोड़ों सूर्य लेकिन सूर्य हैं बस नाम के,
जो न दें सबको उजाला, सूर्य वे किस काम के!’

अब तो बैरागीजी निरंतर गूँज रहे हैं। गूँज रहा है, लघुता में एक महामानव। उस विराट की अनुगूँज सुनाई दे रही हैं। अनुगूँज उनकी गगनचुंबी कविताओं की, उनकी लोकप्रियता की, बिन माँगे की तालियों की, हिंदी के प्रबलतम समर्थन की। अनुगूँज यारानापूर्ण

यायावरी की, आवारा फक्कड़पन की, दूसरों को परास्त करनेवाली हँसी की, बुक्काफाड़ ठहाकों की, भावनाजन्य निर्भीकता की, विदेशी शत्रु के प्रति हुंकार की, देशी के प्रति प्यार की।

अनुगूँज की भी अनुगूँजें सुनाई दे रही हैं, लगभग छह दशक के सान्निध्य की स्मृतियों की अनुगूँजें।

मेरे पिता श्री राधेश्याम ‘प्रगल्भ’ को वे अपना बड़ा भाई मानते थे। वे हमारे घर आते थे। हम जिन-जिन शहरों में रहे, वे घर आए। खुर्जा, हाथरस, मथुरा और दिल्ली, कोई भी शहर रहा हो। वे कहीं भी रहे, हम उनके घर गए—मनासा, नीमच, भोपाल और दिल्ली। दरअसल, हमारे घुमंतू घरों में कवियों का आना-जाना निरंतर रहता था। बैरागी चचे, काका हाथरसीजी और मेरे पिताजी





छोटी-छोटी बातों पर खूब हँसा करते थे और उनके हास्य का कारण चलित-प्रचलित लतीफे नहीं होते थे, बल्कि वे लतीफे बनाते थे, गढ़ते थे। प्रत्युत्पन्न मतियाँ गतिपूर्वक संवाद करती थीं। वे जो कह देते थे, हास्य का नया प्रकार बन जाता था। कविता में तरह-तरह के वाद उन्होंने

चलाए, जैसे, पर्यायवाद, वर्णविपर्ययवाद। खेलो शब्दों के साथ, नए गढ़ो। शब्दों के आगे-पीछे विशेषण-उपमान मढ़ो। वर्णों का क्रम बदल दो। शब्दों को नई अर्थवत्ता दे दो। अर्थों को नए शब्द दे दो। सिर्फ दो नहीं, तीन-तीन चार-चार दे दो। बैरागीजी पूछते हैं मेरे पिता से, 'कहाँ हो?' पिताजी उत्तर देते हैं, 'व्योम के, आकाश के, नीले

गगन में!' काकाजी पूछते हैं, 'वहाँ कौन मिलौ?' उत्तर मिला, 'एक विद्युत्, एक बिजली, दामिनी थी।' बैरागीजी पुनः पूछते हैं, 'महल के, प्रासाद के ऊँचे भवन में कौन था?' पिताजी कहते हैं, 'एक महिला, एक रमणी, कामिनी थी।' काकाजी सराहना में छड़ी उठा लेते हैं, 'पिटोगे दोनों!' काकाजी मुसकराते हैं, शेष दो ठहाके लगाते हैं।

काकाजी मेरे पिता को 'बेटा राधेश्याम' कहते थे। बैरागीजी काकाजी को गोद लिए हुए 'पिताजी' कहते थे। वर्ण-विपर्यय का खेल चला तो सबके नाम बदल गए। काका हाथरसी, हाका काथरसी हो गए। राधे श्याम प्रगल्भ, प्रादेशाम रगल्भ हो गए। बालकवि बैरागी, काल बबी गैराबी हो गए। फिर मिलते तो परस्पर इन्हीं नामों से संबोधित भी करते। हाँ, काथरसीजी! सुना रगल्भ! हाँ, गैराबी बोल! यहाँ तक तो ठीक, कुछ भ्रम

प्रयोग भी कर लेते थे, उन पर तो और ज्यादा हँसते थे। समझ की सीमा के कारण मेरे किशोर मन को पता नहीं कैसा लगता था। जैसे, लोहे के पुल को पोहे का लुल कहते थे। काकाजी विकट-शोधी थे। उन्होंने वर्ण-विपर्यय, नाम-विपर्यय, काम-विपर्यय की

अनेक कविताएँ रचीं। उन्नीस सौ सत्तावन में अठारह सौ सत्तावन के मुक्ति-संग्राम की शत-वार्षिकी मनाई जा रही थी। लालकिले के कवि-सम्मेलन में काकाजी ने वीररस में हास्य घोल दिया। 'युद्ध-भूमि में मैंने मुर्दे पटक-पटक कर दे मारे। इतनी ताकत है मेरी इस टूटी हुई कलाई में, आज्ञा दें तो आग लगा दूँ फौरन दियासलाई में। लालकिले का घंटाघर मेरे धक्के से टूटा है।'

मैंने बैरागीजी को कहते हुए सुना 'लाल किले का धक्काघर, मेरे घंटे से टूटा है'। मैंने मंच के पीछे दबे-घुटे, कम आवाज के अथमनीय ठहाके सुने हैं।

स्मृतियों से स्मृतियाँ जुड़ी हैं। सन् चौंसठ या पैंसठ की बात होगी। लालकिले के कवि-सम्मेलन के अगले दिन 'इंडियन एक्सप्रेस' में खबर छपी 'द कवि-सम्मेलन वाज स्टार्टेड बाई ए चाइल्ड पोएट अशोक शर्मा, अनंदर चाइल्ड पोएट बैरागी ऑल्सो रिसाइटेट हिज पोयम्स'। मैं तो बालकवि था ही, बैरागीजी मुझसे दो दिन कम बीस साल बड़े थे, उनके नाम के बालकवि को भी 'चाइल्ड पोएट' कर दिया। अखबार बैरागीजी ने ही मुझे दिखाया था। अब तक है मेरे पास वह कतरन।

नाम तो उनका नंदराम था। बालकवि बैरागी कैसे हुआ, डॉ. वेद प्रताप वैदिक ने बताया कि तब

की बात है जब बैरागीजी मुश्किल से आठ-नौ बरस के रहे होंगे। जावरा के कैलाश नाथ काटजूजी ने, जो बाद में गृहमंत्री रहे, बालक से कहा, 'कोई कविता सुनाओ!' बालक नंदराम ने राष्ट्र-प्रेम की ऐसी जबर्दस्त कविता सुनाई कि वे ही नहीं आस-पास के सब लोग गद्गद हो गए! काटजू बोले, "अब से इस लड़के का नाम होगा, बालकवि बैरागी।"

जब मैं किशोर से युवा होने की दहलीज पर था तब हमने एक प्रिंटिंग प्रेस लगाई थी। कम पूँजी में बढ़िया काम करने के संकल्प के साथ उसका नाम पिताजी ने 'संकल्प प्रेस' रख दिया था। शुरू के कुछ महीने जॉबवर्क किया। मैंने कंपोजिंग सीखी, छोटे भाई ने मशीन से कागज उठाना। हमने जो पहली किताब प्रकाशित की, वह थी बालकवि बैरागीजी की 'दादी का कर्ज'! अभी मैं जब समाचार-पत्रों में उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची पढ़ रहा था, तो हैरान रह गया। 'दादी का कर्ज' कहाँ गई? वह पुस्तक तो मैंने खुद कंपोज की थी! उसका कवर दुर्गंगी था। मथुरा के एक कलाकार ने बनाया था। दो ब्लॉक बने थे। लाल और आसमानी रंग में दो बार छपाई हुई थी। एक चित्ताकर्षक पुस्तक लेकर मैं प्रकाशक और सप्लायर के तौर पर भोपाल पहुँचा। तब वे नए-नए मंत्री बने थे। पिताजी को आशा थी कि ये किताब सरकारी खरीद में आ जाएगी, अब तो मंत्री बन गए हैं। खैर, मैं भोपाल गया तो खूब आवभगत हुई। मिलनेवालों की भीड़ को छोड़कर वे मुझे अंदर अध्ययन कक्ष में ले गए। पुस्तक देखकर बेहद प्रसन्न हुए। मुझे उन्होंने अपनी आनेवाली फिल्म 'रेशमा और शेरा' का गीत उसी धुन में सुनाया, जो बाद में हमने फिल्म में सुना, 'तू चंदा मैं चाँदनी...'। मैं पहाड़ी पर उनके बँगले में दो दिन रुका। पेड़ों से घिरे हुए, ऊँचाई पर बने उस बँगले में चाचीजी ने बड़ा स्नेह दिया। उनके बड़े

पुत्र मुन्ना और छोटे गोर्की के साथ भी खूब खेले। वे दोनों मुझसे छोटे थे। बहुत अच्छा लगा। शानदार विदाई के साथ मैं मथुरा लौट आया। कुछ दिन के बाद पिताजी के पास बैरागी जी का पत्र आया कि क्योंकि अब मैं मंत्री हो गया हूँ, इसलिए सरकारी खरीद में अपनी किताब का प्रस्ताव नहीं रख सकता। कोई और रखेगा तो समर्थन नहीं करूँगा। आप मध्य प्रदेश में नहीं किसी और प्रांत में प्रयत्न करें। पिताजी भी घर फूँक, तमाशा देख संप्रदाय के थे। उन्होंने कहीं और प्रयास किया हो, मुझे याद नहीं पड़ता। वह पुस्तक उदारता से बाँट दी गई। दोबारा छपी नहीं। शायद इसीलिए सूची में उस पुस्तक का नाम नहीं आया। बिना अपनी पूरी उम्र पाए काल के चक्र में समा गई। मुन्ना और गोर्की से पूछूँगा, एक प्रति तो हो शायद उनके पास।

फिर तो उनके साथ सैकड़ों कवि सम्मेलन किए! उनके पोस्टकार्ड्स और अंतर्देशीय पत्र मेरे पास भी आते रहे। ऊपर लिखते थे 'माँ'। सुंदर-सुंदर मोती जड़े अक्षर। हृदय से निकले अक्षर। हृदय में प्रवेश करने की क्षमता रखनेवाले अक्षर।

अस्सी के आस-पास मैंने एक व्यंग्य-कविता लिखी थी, 'अपना देश तो महान है'। उसकी शुरुआत कुछ इस तरह करता था, 'हमारे मित्र शार्दूल सिंह विक्रीड़ित, देश की दशा से बहुत पीड़ित! मैंने कहा, इन बहते पनालों को रोकिए, आँसुओं को अंदर ही सोखिए! वे बोले, "भैया अशोक! इन आँसुओं को मत रोक!" कविता लंबी थी। ये बात मैंने आपको इसलिए बताई कि पिछले पैंतीस सालों में चचे बैरागी मुझे जब भी मिलते थे दुख की नाटकीय मुद्रा बनाकर चहकते हुए कहते थे, "भैया अशोक! इन आँसुओं को मत रोक!" मैं हँसकर उनके पैर छूता था। बीच में कुछ दिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, जब चची बीमार थीं और उनसे मिलने मैं ऑल इंडिया

मेडीकल इंस्टीट्यूट जाता था। आदरणीया चची को कैंसर था। रोग ने हरा दिया, वे चली गईं। मैंने पहली बार चचे को रोते देखा। मेरी आँखें भी आँसुओं से भरी थीं। इस बार उन्होंने पहली और अंतिम बार दुःखी स्वर में गले लगाते हुए कहा था, “बेटा अशोक! इन आँसुओं को मत रोक!” हम दोनों के पास रूमाल नहीं थे।

अभी पिछले साल, सन दो हजार सत्रह के नवंबर महीने की ग्यारह तारीख को उनसे उदयपुर के कवि सम्मेलन में भेंट हुई थी। संवाद अपने मूल नाटकीय रूप में बहुत पहले ही आ चुका था, इस बार भी चंचलता के साथ मुखरित हुआ, “भैया अशोक! इन आँसुओं को मत रोक!” आवाज में वही खनक, सम्मोहन और प्रेम का जादू। हालाँकि चची के गोलोक-गमन के बाद से उन्होंने गाना छोड़ दिया था,

पर स्वर में नाटकीयता की चुंबक थी। घुटने के दर्द के कारण बैठकर, लेकिन घंटे भर कविताएँ सुनाई। वाणी की ऊर्जा में कोई कमी नहीं थी। उनकी कविताएँ हमेशा लगेगा जैसे आज भी खड़ी हैं, समय के श्रोताओं के सामने! इस इंटरनेट के जमाने में भी डाक विभाग का भला करते रहे अंत तक। खादी परिधान और खादी के झोले में खूब सारे पोस्टकार्ड रखते थे।

सकर्मक क्षमताओं के बावजूद कितनी सहजता से वे चले गए। किसी कार्यक्रम से घर लौटे थे। परिवार के साथ गप-गोष्ठी की। भोजन किया और सो गए। देर तक नहीं उठे तो पुत्र ने जगाने की कोशिश की। उनकी लाडली पौत्री रौनक ने भी उन्हें हिलाया, लेकिन

वे तो जा चुके थे मेरी चची को गाकर गीत सुनाने।

वे चले गए। धरती पर उनके अपार आत्मीयों के आस-पास उनके असंख्य संस्मरण गूँज रहे होंगे। प्रायः किसी श्रद्धांजलि सभा में ऐसा नहीं देखा गया कि किसी के उद्बोधन के बाद तालियाँ बजें, लेकिन चिराग ने इतने ढंग से अपनी बात कही कि स्वतः स्फूर्त

तालियाँ नहीं रुकीं। वाचिक परंपरा की कविता की यही तो ताकत है कि हर मर्मस्पर्शी कविता पर तालियाँ बजती हैं। शोक की मनोभूमि पर भी हम तालियाँ बजा सकते हैं। चिराग ने अपने शब्दों में बैरागीजी के व्यक्तित्व को सजीव कर दिया, “सूरज-वूरज होते होंगे, बैरागी अस्त नहीं होते।”

रह-रहकर गूँज रही हैं बैरागीजी की शब्द-ध्वनियाँ, “हैं करोड़ों सूर्य लेकिन सूर्य हैं बस नाम के, जो न दें सबको उजाला, सूर्य वे किसे काम के”।

डॉ. गोविंद व्यास ने बैरागीजी की शोक सभा में कुछ सारगर्भित बातें कहीं कि हिंदी के मंच पर वे पहले ऐसे कवि थे जिन्होंने कविता को परफॉर्मिंग आर्ट के बहुत निकट ला दिया था। उन्हें मालूम था कि किस माहौल में कैसी कविता सुनानी चाहिए? किस की तरफ देख कर सुनानी चाहिए? माइक से कितना पीछे हटकर बोलना चाहिए? कौन व्यक्ति नहीं सुन रहा है, इसकी उन्हें पहचान थी। कौन अच्छी तरह सुन रहा है, इसकी उनको अच्छी जानकारी थी। बैरागीजी दिनकरजी के बाद उदात्त कविता के प्रथम पंक्ति के हस्ताक्षर थे। सही कहा गोविंद भैया ने।

उनके हस्ताक्षर बहुत सुंदर थे। उसमें 'बालकवि' साफ, सुगढ़, वर्तुल रेखाओं से बना चित्ताकर्षक और पठनीय अंश होता था। इस अंश को वे हृदय के उल्लास की स्निग्ध गोलाइयों से बनाते थे, लेकिन 'बैरागी' लिखते समय उनकी लेखनी जीवन के राग-विराग से जूझकर निकलने को अकुलाती हुई, उस जंजाल से तत्काल निकलने की कामना में शीघ्रातिशीघ्र हस्ताक्षर को निपटाने में लग जाती थी। रेखाएँ जैसे एक मानसिक आवेग में काफी ऊपर की ओर जा रही हों और फिर उसी गति से नीचे उतरकर एक तिपाई-सी बना रही हों, जिस पर उनका हस्ताक्षर जादूगर गोगिया पाशा की छड़ी पर एक कमनीय कन्या के समान बिना किसी अन्य अवलंब के धरती के समानांतर, कुछ ऊपर हवा में टिक सके। वे अपने हस्ताक्षर में यदि केवल 'बैरागी' लिखते तो अबूझ हो जाते। पढ़े न जा पाते, लेकिन अपनी संपूर्णता में हस्ताक्षर अद्भुत थे उनके। उनका पत्र आता था तो मैं इबारत पढ़ने से पहले, कुछ पल बस उनके हस्ताक्षर ही निहारता था।

सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में भारत के सर्वदलीय सांसदों द्वारा लिया गया एक 'सूरीनाम संकल्प', उस पर भी हस्ताक्षर थे उनके। मुझे याद है वह 'संकल्प-पत्र' जो उन्होंने आठ जून सन् दो हजार तीन को डिक्टेड किया था और मैंने अपने लैपटॉप पर टाइप किया था। वे उस सर्वदलीय समिति के अध्यक्ष थे, लेकिन बारह सांसदों के इस दल में उन्होंने तीसरे क्रम पर अपने हस्ताक्षर किए। हस्ताक्षर कराने से पहले उन्होंने सब से अनुरोध किया कि हिंदी में हस्ताक्षर करें। दो सांसद ऐसे थे जिन्होंने अंग्रेजी में किए, लेकिन नीचे ब्रैकेट में अपना नाम हिंदी में लिखा। अब चूँकि इस वर्ष अगस्त माह में मॉरीशस में ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन होने जा रहा है, और वह संदर्भ अभी भी जीवंत है, इसलिए

यहाँ यथावत दे रहा हूँ—

सूरीनाम संकल्प

सूरीनाम में आयोजित 7वें विश्व हिंदी सम्मेलन में भारतीय संसद की ओर से अधिकृत रूप से उपस्थित हुए संसद सदस्यों का यह प्रतिनिधिमंडल विश्व हिंदी सम्मेलन के समग्र परिवेश का अध्ययन करने के पश्चात भारत सरकार से यह आग्रह करता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी को आधिकारिक भाषा की मान्यता दिलाने के लिए संसद एक संकल्प पारित करें और उसे शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाए।

उन दिनों में जामिया मिल्लिया इस्लामिया में हिंदी विभाग का अध्यक्ष था और रचनात्मक लेखन और टी.वी. पत्रकारिता के नए पाठ्यक्रमों के छात्रों के साथ ज्यादा समय बिताता था। लेखकों, कवियों, पत्रकारों और मीडियाकर्मियों से अपने छात्रों की मुलाकात कराता था। आदरणीय बैरागीजी अनेक बार हमारे विभाग में आए और उन्होंने छात्रों को संबोधित किया। उन्होंने रचनात्मक लेखन और पत्रकारिता के अपने अनुभव साझा किए। हमारे कुलपति जनाब शाहिद मेहदी उनसे मिलकर बेहद प्रभावित हुए।

सूरीनाम के सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में मैंने अपने पत्रकारिता के शिक्षकवाले स्वरूप का व्यावहारिक इस्तेमाल किया। वस्तुतः इस प्रयोग से मैं अपने विद्यार्थियों को बताना चाहता था कि कैसे एक व्यक्ति अकेले ही एक अखबार प्रतिदिन निकाल सकता है, अगर उसके पास एक डिजिटल कैमरा है, कंप्यूटर है, उसे टाइप करना आता है और वह इर्द-गिर्द के समाचारों को इकट्ठा कर सकता है। सूरीनाम में हमने चार दिन तक लगातार 'सम्मेलन समाचार' निकाला। लोग हतप्रभ रह जाते थे क्योंकि मुद्रण और प्रकाशन की नई तकनीकों से अभी रू-ब-रू नहीं



हुए थे। मेरे पास एक लैपटॉप था, एक कलर प्रिंटर एक डिजिटल कैमरा, वरिष्ठ पदों पर काम करनेवाले कुछ मित्र टाइपिंग के लिए उपलब्ध हो गए। सत्रों से लौटनेवाले लेखकों से मैंने संवाददाता जैसी रिपोर्ट लिखने के लिए कहा। अद्भुत अनुभव था वह। बैरागी जी निरंतर प्रोत्साहित करने के लिए हमारे मीडिया-अड्डे पर आते रहते थे। एक बार उन्होंने हमारे सामने ही बैठकर एक कागज पर कुछ लिखा और कहा कि इसे आज के अंक में छाप दिया जाए। पर्ची पर लिखा था—

अपनी तरह का यह एक अकेला समाचार-पत्र है जिसका अपना कहीं कोई संवाददाता नहीं है लेकिन जिसमें संवाद हैं, सूचनाएँ हैं और विशेषतः एक सोच है। बधाई!

बालकवि बैरागी

6 जून, 2003

बैरागी जी अब तक के

संभवतः सभी विश्व हिंदी सम्मेलनों में प्रतिभागी रहे। आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन में न्यूयॉर्क में भी मैंने 'सम्मेलन समाचार' निकाला था। उसमें उनकी टिप्पणी प्रकाशित हुई थी—

सूरीनाम में तब के विदेश राज्यमंत्री ने एक घोषणा की थी सौ करोड़ रुपए वाली और हम सभी इसमें शामिल थे; और मैं तो अध्यक्ष के रूप में उस सभा में शामिल था। इस बैठक के तत्काल बाद आपका एक वक्तव्य आ जाना चाहिए कि किसी-न-किसी माध्यम से इस पर भारत सरकार दृढ़ता से

अमल करेगी कि कोशिशों में पाई भर भी कमी नहीं होनेवाली।

बालकवि बैरागी

12 जुलाई, 2007

भोपाल वाले सम्मेलन में वे आए थे, लेकिन अपरिहार्य कारणों से कवि-सम्मेलन ही स्थगित हो गया। नैतिक आदर्शों की अनुपालना में उनसे चूक नहीं होती थी। एक साफगोई के साथ आत्मीयता के सारे अलिखित नियमों का पालन करते हुए वे लोगों के अपने हो जाते थे। बारंबारता के साथ गूँज रहा है, लघुता में एक महामानव।

हिंदी भाषा के प्रबल समर्थक और हमारी वाचिक परंपरा को गति देनेवाले, मति देनेवाले, अचानक इति तक चले जाएँगे, ऐसा किसी ने सोचा भी नहीं था। जहाँ जाएँगे वहाँ एक यति है, जिसमें विराम और अर्धविराम

के बाद भी चीजें चलती हैं। वे सदैव हमारे साथ रहेंगे क्योंकि वे एक ऐसा व्यक्तित्व थे जो लघुत्तम में महत्तम था। वे बड़े थे, लेकिन अपने बड़प्पन को दिखाने के स्थान पर सदैव धरती से जुड़े रहते थे। वैसे वे व्योम के आकाश के नीले गगन की एक विद्युत्, एक बिजली, दामिनी थे, इसमें रत्तीभर संदेह नहीं।

□

सदस्य, परामर्श मंडल
11वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन
नई दिल्ली

स्मृति शेष : डॉ. मधु धवन

—डॉ. श्रावणी भट्टाचार्य

विश्व हिंदी सम्मान से दसवें विश्व हिंदी सम्मेलन, भोपाल में समादृत श्रीमती मधु धवन यशस्वी रचनाकार और 'तमिल हिंदी साहित्य अकादमी' की अध्यक्ष थीं। उनके देहावसान से दक्षिण में हिंदी का एक स्तंभ टूट गया। पुण्य स्मरण—

—संपादक

मुझे अक्सर लगता है,
क्षितिज के उस पार
महाशून्य मुझे बुलाता है।
बैठे-बैठे
भीड़-भाड़ वाले स्थल में भी,
मन एकांत शून्य में,
एक अप्रत्याशित परिवेश में,
खो जाता है,
मुझे अक्सर प्रतीति होती है,
उड़ते पंछी, बहती हवाएँ,
धुमड़ते मेघ, सागर की लहरें,
असीम नील गगन में छिटके चाँद-सितारे,
मुझे बुला रहे हैं,
मैं तत्क्षण शून्य हो,
महाशून्य में विलीन हो जाती हूँ।

—महाशून्य, अमृतमयी, डॉ. मधु धवन

26 जून, 2017 की रात को, चेन्नै के अपोलो अस्पताल में, दक्षिण में हिंदी की ध्वज वाहिका डॉ. मधु धवन ने अंतिम साँसें लीं। वह क्षितिज के उस पार

महाशून्य में विलीन हो गईं।

हिंदी साहित्याकाश का
एक बड़ा नक्षत्र बुझ गया,
जिनसे, विशेषकर दक्षिण के
हिंदी क्षेत्र को काफी आशाएँ
थीं। हिंदी में उनकी 165
पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी

हैं। उनके व्यक्तित्व पर मूल्यांकनपरक वृहद ग्रंथ का
लोकार्पण हो चुका है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—

महाकाव्य—कालचक्र

खंडकाव्य—हुतात्मा, भारत ललाट, कारगिल
की ललकार, धरा पर खिला दिव्य फूल।

काव्य-संग्रह—स्वर्णिम भारत, अमृतमयी, तुम
बदल गए।

समीक्षा—मैथिलीशरण गुप्त का नहुष, हमारे
सपनों का भारत।

डिक्शनरी कार्य—लिंक इंग्लिश, हिंदी, तमिल,
फ्रेंच।

संपादन तथा लेखन—महिला लेखन एवं





समसामयिक समाज, 2011, भारत दर्शन 2000, जगद्गुरु की नगरी कांचीपुरम (आध्यात्मिक दर्शन)

समरसता (गवाक्ष के पार)-2013 कर्म और कलम के उपासक-गुलाबचंद कोटडिया 2002, भारतीय भाषाओं में राष्ट्रीय चेतना (2017), हिंदी का बदलता स्वरूप (2017)

उपन्यास—करवट लेता वक्त, जुर्माना, आकांक्षा, महासागर के शंख, शिखरों से ऊँचा, शक्तिपुंज, मैं सृष्टि की आत्मा हूँ, उस मोड़ पर, साइबर माँ, प्यार भरे दादाजी, जलती चाहतें, तमिल का वीर पुरुष कल्कि।

कहानी—झरते अश्रु, इंटरनेट का माउस, अमृत बूँदें, खौफ, लक्ष्मी कहाँ रहती है ?

नाटक—मैंने कब चाहा, भूल, भगत सिंह, भारत कहाँ जा रहा है, आज की पुकार।

नाटक संग्रह—चिनगारियाँ।

डॉ. मधु धवन की रचनाओं में आस-पास देखी, अनुभव की हुई सामाजिक समस्याओं को वाणी मिली है। इंटरनेट का बच्चों पर जो कुप्रभाव पड़ा है, उसको उन्होंने बहुत पहले ही महसूस कर लिया था। इसकी विवृति 'इंटरनेट का माउस' और 'साइबर माँ' में दी है। भारत की संस्कृति और हास होते मूल्यों की चुभन 'भारत कहाँ जा रहा है' में प्रकट होती है। कैंसर पीड़ितों की समस्या को उन्होंने आज की पुकार में उठाया है। 'झरते अश्रु' कहानी संकलन में समाज से संघर्ष करती महिलाओं के दर्द की गाथा है।

तमिलभाषी क्षेत्र में हिंदी का काम करने के लिए वह हिंदी के साथ द्रविड़ भाषाओं को जोड़कर आगे बढ़ी थीं और हिंदी को उसका दर्जा दिलाने के लिए पुरजोर मेहनत करती रहीं।

वर्ष 1979 में डॉ. मधु धवन स्टेल्ला मॉरिस

कॉलेज, चेन्नै के हिंदी विभाग में प्रवक्ता बनकर आई थीं। उनका जन्म पंजाब के तरनतारन जिले में 1952 में हुआ था। पिता राष्ट्रवादी थे और देश प्रेम उनको जन्म से ही संस्कार के रूप में मिले थे। इस कारण हिंदी विभाग में पदभार सँभालने के बाद उन्होंने यह नियम बना दिया था कि हिंदी कक्षा में सभी छात्र हिंदी में ही बात करेंगे, चाहे वाक्य गलत ही क्यों न हो। अध्यापिका वाक्य को सुधार देगी।

तमिलनाडु में जब उन्होंने हिंदी का काम करना शुरू किया था तो वहाँ हिंदी विरोधी स्वर प्रबल थे,

लेकिन इन विरोधों के आगे वे कभी झुकी नहीं। अपनी कुशाग्र प्रज्ञा शक्ति का प्रयोग कर उन्होंने कैंपस नेटवर्किंग का काम शुरू किया। प्रयोजनमूलक हिंदी, विज्ञापन कला, समाचार वाचन, कंप्यूटर टाइपिंग, पत्रकारिता, अनुवाद कला, भाषांतरण कला को स्टेल्ला मॉरिस कॉलेज के हिंदी पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित किया। यह काम उस समय किया जब हिंदीभाषी क्षेत्रों में भी ये पाठ्यक्रम लागू नहीं हुए थे। अपने सामर्थ्य पर तमिलनाडु के मैट्रीकुलेशन बोर्ड के पाठ्यक्रम में परिवर्तन कर उसे कारगर बनाया।

32 साल के अपने कॉलेज जीवन के कार्यकाल में उन्होंने हिंदी विभाग को इतना मजबूत बना दिया था कि आज भी देश भर में इनकी पहचान है। स्टेल्ला मॉरिस कॉलेज के भाषा विभागों में सिर्फ हिंदी विभाग ही ऐसा विभाग है, जो छात्राओं द्वारा संपादित हिंदी पत्रिका 'खिलती कलियाँ' निकालता है।

तमिलनाडु में हिंदी की ज्योति को जलाए रखने का काम मधुजी जी-जान से करती रहीं। मैं तो ये कहूँगी कि मधुजी अपने परिवार से ज्यादा हिंदी से प्यार

करतीं थीं। नहीं तो दिन-रात एक कर इस प्रकार की सेवा मैंने विरले ही देखी है। उन्होंने अन्ना नगर स्थित अपने घर को 'तमिलनाडु हिंदी साहित्य अकादमी' का कार्यालय बना डाला था।

डॉ. धवन भारत सरकार के अनेक मंत्रालयों में राजभाषा सलाहकार समितियों में सदस्य थीं। वो दूरदर्शी थीं और हिंदी के महत्त्व को स्थापित करने के लिए हमेशा कहती थी कि हिंदी को रोजगार से जोड़ो। जब तक हिंदी को रोजगार से नहीं जोड़ोगे तब तक हिंदी अपने ही देश में अकेली रह जाएगी। भारत की सभी भाषाओं से उन्हें प्यार था और वे हिंदी के साथ-साथ भारत की अन्य भाषाओं को बढ़ावा देने के लिए सतत प्रयत्नशील रहती थीं। स्टेल्ला मॉरिस कॉलेज में उन्होंने जनवरी 2017 को एक त्रिदिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया था जिसका विषय था, 'भारतीय भाषाओं में राष्ट्रीय चेतना'। तमिल भाषा हेतु एक पूरा सत्र दिया गया था तथा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रपत्र यद्यपि हिंदी में पढ़े गए थे किंतु विषय-वस्तु विभिन्न भारतीय भाषाओं की थी। मधुजी तो यहाँ तक कहती थी कि हमें 'हिंदी दिवस' न मनाकर 'भारतीय भाषा दिवस' मनाना चाहिए क्योंकि विश्व की कोई भी संस्कृति इतनी भाषाओं को साथ लेकर चलने का दावा

नहीं कर सकती।

डॉ. मधु धवन को अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुए तथा उन्होंने अनेक हिंदी पत्रिकाओं में अतिथि संपादक के रूप में काम किया। बहुआयामी व्यक्तित्व की धनी मधुजी अपने व्यक्तिगत जीवन में ममतामयी और मृदुभाषी थीं। उभरते साहित्यकारों के लिए वह बिल्कुल माँ जैसी थी। मेरी तो वो गुरु माँ थी। सेवानिवृत्ति के बाद भी उन्होंने हिंदी को समृद्ध करने में अपना अधिकतम समय लगाया। तमिलनाडु हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा नियमित रूप से 'तमिलनाडु साहित्य बुलेटिन' का प्रकाशन होता रहा।

मधुजी को भारत के साहित्य प्रेमी हमेशा याद रखेंगे। उन्होंने सुदूर दक्षिण में हिंदी को जीया और हिंदी को जीने की प्रेरणा दी।

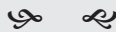
एक मीनार ढहती रही,
 एक मीनार बनती रही,
 लेकिन अनथकी अनरुकी
 नदी सी तुम बहती रही।

□

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
 स्टेल्ला मॉरिस कॉलेज,
 17, केथीड्रल रोड, चेन्नई

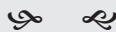
हिंदी साहित्य की नकल पर कोई साहित्य तैयार नहीं होता।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'



हिंदी में हम लिखे-पढ़ें, हिंदी ही बोलें।

—पं. जगन्नाथप्रसाद शर्मा



हिंदुस्तान को छोड़कर दूसरे मध्य देशों में ऐसा कोई अन्य देश नहीं है, जहाँ कोई राष्ट्रभाषा नहीं हो।

—सैयद अमीर अली मीर



विश्व हिंदी सम्मेलन

क्रम

| | | |
|-----------------|---------------------|--------------------------------------|
| प्रथम सम्मेलन | 10-12 जनवरी, 1975 | नागपुर, भारत |
| द्वितीय सम्मेलन | 28-30 अगस्त, 1976 | पोर्ट लुई, मॉरीशस |
| तृतीय सम्मेलन | 28-30 अक्टूबर, 1983 | नई दिल्ली, भारत |
| चतुर्थ सम्मेलन | 02-04 दिसंबर, 1993 | पोर्ट लुई, मॉरीशस |
| पंचम सम्मेलन | 04-08 अप्रैल, 1996 | पोर्ट ऑफ स्पेन, त्रिनिदाद एंड टोबेगो |
| षष्ठ सम्मेलन | 14-18 सितंबर, 1999 | लंदन, यू. के. |
| सप्तम सम्मेलन | 06-09 जून, 2003 | पारामारिबो, सूरीनाम |
| अष्टम सम्मेलन | 13-15 जुलाई, 2007 | न्यूयॉर्क, यू.एस.ए. |
| नवम सम्मेलन | 22-24 सितंबर, 2012 | जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका |
| दशम सम्मेलन | 10-12 सितंबर, 2015 | भोपाल, भारत |
| एकादश सम्मेलन | 18-20 अगस्त, 2018 | पाई, मॉरीशस |

हिंदी गीत

भारत जननी एक हृदय हो,
भारत जननी एक हृदय हो,
एक राष्ट्रभाषा हिंदी में,
कोटि-कोटि जनता की जय हो।
भारत जननी एक हृदय हो ॥

स्नेह-सिक्त मानस की वाणी,
गूँजे गिरा यही कल्याणी,
चिर उदार भारत की संस्कृति,
सदा अभय हो, सदा अजय हो।
भारत जननी एक हृदय हो ॥

मिटे विषमता सरसे समता,
रहे मूल में मीठी ममता,
तमस कालिमा को विदीर्ण कर,
जन-जन का पथ ज्योतिर्मय हो।
भारत जननी एक हृदय हो ॥

जाति-धर्म-भाषा विभिन्न स्वर,
एक राग हिंदी में सजकर,
झंकृत करें हृदय तंत्री को,
स्नेह-भाव प्राणों में लय हो।
भारत जननी एक हृदय हो ॥

—पं. रामेश्वर दयाल दुबे